

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मुद्रक : शशुनाथ वाजपेयी, राष्ट्रभाषा मुद्रण, वाराणसी

संवत् : २०१६, तृतीय संस्करण, प्रतियाँ ११००

मूल्य : ८.००

समर्पण

प्राचीन राजस्थानी संस्कृति की ज्वलंत प्रभा के
प्रतिभाशाली निरूपक

राजपूत इतिहास के अमर लेखक
वीरभूमि राजस्थान के समुज्ज्वल रत्न

विश्वविश्रुत विद्वान्

महामहोपाध्याय रायचहादुर

श्री गौरीशंकर हीराचंद श्रोभा

के करकमलों में

राजस्थानी जातीय काव्य का प्रतिनिधिस्वरूप

यह परंपरानुगत लोकप्रिय प्राचीन काव्य

उनके स्नेहमय निरंतर प्रोत्साहन के लिये

संपादकों द्वारा

श्रद्धा के साथ सविनय समर्पित है ।

निवेदन

जयपुर राज्य 'के अंतर्गत हणोतिया ग्राम के रहनेवाले बारहट नृसिंहदासजी के पुत्र बारहट बालाबख्शजी की बहुत दिनों से इच्छा थी कि राजपूतों और चारणों की रची हुई ऐतिहासिक और (डिंगल तथा पिंगल) कविता की पुस्तके प्रकाशित की जायें जिसमें हिंदीसाहित्य के भांडार की पूर्ति हो और ये ग्रंथ सदा के लिए रक्षित हो जायें । इस इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने नवम्बर सन् १९२२ में ५०००) काशी नागरीप्रचारिणी सभा को दिए और सन् १९२३ में २०००) और दिए । इन ७०००) से ३॥) वार्षिक सूद के १२०००) के अंकित मूल्य के गवर्मेंट प्रामिसरी नोट खरीद लिए गए हैं । इनकी वार्षिक आय ४२०) होगी । बारहट बालाबख्शजी ने यह निश्चय किया है कि इस आय से तथा साधारण व्यय के अनंतर पुस्तकों की विक्री से जो आय हो अथवा जो कुछ सहायताार्थ और कहीं से मिले उसमें 'बालाबख्श राजपूत चारण पुस्तकमाला' नाम की एक ग्रंथावली प्रकाशित की जाय जिसमें पहले राजपूतों और चारणों के रचित प्राचीन ऐतिहासिक तथा काव्यग्रंथ प्रकाशित किए जायें और उनके छप जाने अथवा अभाव में किसी जातीय संप्रदाय के किसी व्यक्ति के लिखे ऐसे प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ, ख्याति आदि छापे जायें जिनका संबंध राजपूतों अथवा चारणों से हो । बारहट बालाबख्शजी का दानपत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के तीसवें वार्षिक विवरण में अविकल प्रकाशित कर दिया गया है । उसकी धाराओं के अनुकूल काशी नागरीप्रचारिणी सभा इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करती है ।

विषयसूची

क्रमविषय				पृष्ठांक
(१) भूमिका	१—४
(२) प्रवचन	५—११
(३) प्रस्तावना—(क) पूर्वार्ध—ऐतिहासिक विवेचन				
और साहित्यिक आलोचना	...			१—१०५
(ख) उत्तरार्ध—भाषा और व्याकरण का विवेचन				१०७—१६६
(४) सहायक पुस्तकों की सूची		१७१—१७३
(५) ढोलामारुरा दूहा—मूलपाठ, हिंदी अनुवाद और पाठांतर				१—१६३
(६) परिशिष्ट—(१) टिप्पणी		१६७—२७६
(७) परिशिष्ट—(२) विभिन्न प्रतियों के पाठ		...		२७७—४१६
(८) शब्दकोष	४१६—४८४
(९) प्रतीकानुक्रमणिका	४८७—४९६

भूमिका

महाकवि महाराज पृथ्वीराज राठोड़ की 'क्रिसन-रुकमणीरी वेलि' नामक ग्रथ का सपादन करते समय, हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के सिलसिले में हमें राजस्थान के इस सुप्रसिद्ध, प्राचीन 'ढोला मारुरा दूहा' नामक काव्य की अनेक प्रतियाँ देखने को मिलीं। तभी हमारा विचार हुआ कि इस सुंदर काव्य को सुंदर रूप से सपादित करके हिंदी जनता के सामने रखा जाय। यह आज से कोई पाँच छः बरस पहले की बात है।

वेलि का कार्य समाप्त होते ही हमने तुरत इस कार्य को हाथ में लिया और आज लगभग पाँच बरसों के परिश्रम के बाद हम इसे पाठकों की सेवा में उपस्थित कर सके हैं।

ढोला मारुरा दूहा काव्य की हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान के पुस्तक भंडारों में बहुतायत से मिलती हैं। परंतु उनमें से अधिकांश दूहा-चौपाइयों में हैं। असली काव्य आरंभ में सबका सब दूहों में ही लिखा गया पर आगे चलकर बहुत से दूहे लोग भूल गए, केवल बीच बीच के कुछ दूहे बच रहे जिनका कथासूत्र बिलकुल छिन्नभिन्न था। इस कथासूत्र को मिलाने के लिये जैन कवि कुशललाभ ने सवत् १६१८ के लगभग चौपाइयाँ बनाई और उनको दूहों के बीच में रखकर कथासूत्र ठीक कर दिया। आजकल अधिकांश प्रतियाँ इसी कुशललाभ की रचना की ही प्राप्त होती हैं। केवल दूहों के मूलरूप की प्रतियाँ कहीं भूले भटके ही मिलती हैं। इस प्राचीन मूलरूप की पाँच प्रतियाँ हमे बीकानेर राज्य में प्राप्त हुईं। दोनों रूपों की कोई १७ प्रतियाँ एकत्र करके हमने अपना सपादन कार्य आरंभ किया। इन प्रतियों की खोज में हमे जोधपुर, जयपुर, नागौर और बीकानेर राज्य के चूरू, सरदार शहर आदि भिन्न भिन्न स्थानों की यात्राएँ करनी पड़ीं।

ढोला मारुरा दूहा एक प्राचीन जनप्रिय लोक गीत था। राजस्थान में इसका बहुत प्रचार था। यहाँ तक कि इसके नायक नायिका ढोला और मारवणी के नाम साहित्य और बोलचाल में नायक नायिका के अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। सिंध, गुजरात, मध्यभारत और मध्यप्रदेश के कतिपाय भागों में इसकी कथा अभी अनेक भिन्न भिन्न रूपों में प्रचलित मिलती है। राजस्थान

मे यह इस समय भी दोली, दादी प्रादि गाने का पेगा करनेवाली जातियों के मुँह से नाना विकृत रूपों में सुना जाता है। ये रूप यहाँ तक विकृत हो गए हैं कि लोग इसका नाम सुनकर नाक भी सिकोड़ने लगते हैं। जब हमने श्री गौरीशंकर हीराचदजी आंभा ने इसका सर्वप्रथम जिक्र किया तो वे चाँद और करुने लगे कि क्यों इसके पीछे समय नष्ट करते हैं। ग्रंथ की कथा ज्ञात होने और वास्तविक ज्ञात मालूम होने पर उनका परितोष हुआ।

नपाटन का कार्य हमने जितना सम्भक्त था उतना सफल न निकला। किसी प्रति में चार सौ, सवा चार सौ, ने अधिक दूरे नहीं थे पर समय भिन्नता बहुत अधिक थी। समस्त प्रतियों के दूहों की कुल संख्या डेढ़ दो हजार से कम न निकली। हमने प्राचीन प्रतियों के आकार पर ६७४ दूहे चुन लिए और उन्हीं को मूलपाठ में समिलित किया। इनमें भी कुछ दूहे ऐसे हैं जो प्राचीन नहीं ज्ञात होते पर काव्यसौंदर्य की दृष्टि से स्वीकृत किए गए हैं। ऐसे दूहों को [] इस प्रकार के कोष्ठकों के भीतर रखा गया है। अन्योन्य दूहों को, तथा इस संबंध में प्राप्त समस्त सामग्री को, हमने परिशिष्ट में दे दिया है जिससे पाठकों को सब कुछ एकत्र ही प्राप्त हो जाय।

पाठांतर तैयार करने के कार्य में बहुत अधिक समय लगा। प्रत्येक दूहे में अनेक पाठांतर मिले। इस विषय में पर्याप्त सावधानी रखी गई है पर फिर भी कुछ प्रतियों के पाठांतर दृष्टिदोष से, या प्रतिलिपि उतारते समय, बच गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इस काम ने इतना समय लिया कि अंत में हमने कई एक प्रतियों के, जो विशेष महत्त्व की नहीं थीं, केवल महत्त्वपूर्ण पाठांतर ही लिए। (य) प्रति हमें बहुत वाद में मिली अतएव उसके भी पूरे पाठांतर हम नहीं दे सके।

इस ग्रंथ को तैयार करने में हमें अनेक दिशाओं से अनेक प्रकार की सहायता मिली और यहाँ पर हम अपने समस्त सहायकों के प्रति सधन्यवाद हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। राजपूत इतिहास के विश्वविश्रुत विद्वान् परम अद्वेय महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचदजी आंभा, हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और काशी के हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रधान रायबहादुर श्यामसुंदरदासजी बी० ए०, राजस्थानी साहित्य के विद्वान् जयपुर निवासी पुरोहित हरिनारायणजी बी० ए०, विद्याभूषण, और राजस्थान के स्वनामधन्य उदारमना सेठ धनश्यामदासजी बिड़ला ने हमें प्रत्येक प्रकार से

उत्साहित किया। श्रीश्रीभाजी ने बहुत कष्ट उठाकर संपूर्ण ग्रथ को सुना और हमें कई उपयोगी और आवश्यक सूचनाएँ देकर अनुगृहीत किया। अपना अमूल्य समय देकर उन्होंने इतिहास-संबंधी बातों का विस्तृत स्पष्टीकरण लिखवा भेजा और मूल की अनेक कठिनाइयों को सुलभाने में हमारी सहायता की। पूर्वपरिचय न होने पर भी इस प्रकार अत्यंत प्रेमपूर्वक उन्होंने जो सहायता दी उसके लिये हम नहीं जानते कि किन शब्दों में उनका धन्यवाद करें। बाबू श्यामसुंदरदासजी ने अन्यान्य सहायताओं के साथ इस ग्रथ के कुछ अंश के प्रूफ देखने का भी कष्ट उठाया। सेठ घनश्यामदासजी ने हमें सब प्रकार से प्रोत्साहित करने के साथ-साथ इस ग्रथ में दिए गए तीन चित्रों का प्रकाशन व्यय अपने ऊपर उठा लिया। इसके अतिरिक्त बिड़ला परिवार ने ग्रथ की दो सौ प्रतियाँ लेने का पहले ही वचन देकर इसके मुद्रण और प्रकाशन में बड़ी भारी सहायता की। हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त और राय कृष्णदासजी से भी हमें इस विषय में बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला।

जोधपुर के सरदार म्यूजियम के सुपरिंटेंडेंट, इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विश्वेश्वरनाथ रेड तथा प० रामकरण आसोपा ने इस ग्रथ की अनेक प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त करने में हमारी अमूल्य सहायता की। उनकी सहायता के बिना हमारा कार्य इतना सफलतापूर्वक सिद्ध न होता। बीकानेर के राँगड़ी-स्थित जैनों के बड़े उपासरे के श्रीपूजजी तथा अन्य प्रबंधकों ने वहाँ के पुस्तक-भंडार से कई प्रतियाँ उदारतापूर्वक हमें प्रदान कीं। श्रीयुत रामनरेशजी त्रिपाठी ने भी गुजराती की इस संवध की एकाध छपी पुस्तक हमें भेजने की कृपा की।

ग्रथ में जो तीन प्राचीन चित्र दिए गए हैं। वे जोधपुर के सरदार-म्यूजियम में सुरक्षित चित्रमाला से लिए गए हैं। उन्हें ग्रथ में देने की अनुमति प्रदान करने के लिये हम जोधपुर राज्य और उक्त म्यूजियम के प्रधान पदाधिकारी श्री विश्वेश्वरनाथजी रेड के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा इस बृहत् ग्रथ के प्रकाशन का भार यदि अपने ऊपर न ले लेती तो इस रूप में इसका प्रकाशित होना असंभव-सा था। अतः इसके लिये सभा के प्राण बाबू श्यामसुंदरदासजी, तथा (अब,

मे यह इस समय भी ढोली, ढाढी आदि गाने का पेगा करनेवाली जातियों के मुँह से नाना विकृत रूपों में सुना जाता है। वे रूप यहाँ तक विकृत हो गए हैं कि लोग इसका नाम सुनकर नाक भी सिकोड़ने लगते हैं। जब हमने श्री गौरीशंकर हीराचढजी ओम्भा से इसका सर्वप्रथम जिक्र किया तो वे चौंके और कहने लगे कि क्यों इसके पीछे समय नष्ट करते हैं। ग्रथ की कथा ज्ञात होने और वास्तविक ज्ञात मालूम होने पर उनका परितोष हुआ।

सपाठन का कार्य हमने जितना सम्भवा था उतना सहज न निकला। किसी प्रति में चार सौ, सवा चार सौ, से अधिक दूहे नहीं थे पर सत्रमें भिन्नता बहुत अधिक थी। समस्त प्रतियों के दूहों की कुल संख्या डेढ़ दो हजार से कम न निकली। हमने प्राचीन प्रतियों के आधार पर ६७४ दूहे चुन लिए और उन्हीं को मूलपाठ में संमिलित किया। इनमें भी कुछ दूहे ऐसे हैं जो प्राचीन नहीं ज्ञात होते पर काव्यसौंदर्य की दृष्टि से स्वीकृत किए गए हैं। ऐसे दूहों को [] इस प्रकार के कोष्ठकों के भीतर रखा गया है। अन्यान्य दूहों को, तथा इस संबंध में प्राप्त समस्त सामग्री को, हमने परिशिष्ट में दे दिया है जिससे पाठकों को सब कुछ एकत्र ही प्राप्त हो जाय।

पाठांतर तैयार करने के कार्य में बहुत अधिक समय लगा। प्रत्येक दूहे में अनेक पाठांतर मिले। इस विषय में पर्याप्त सावधानी रखी गई है पर फिर भी कुछ प्रतियों के पाठांतर दृष्टिदोष से, या प्रतिलिपि उतारते समय, बच गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इस काम में इतना समय लिया कि अंत में हमने कई एक प्रतियों के, जो विशेष महत्त्व की नहीं थीं, केवल महत्त्वपूर्ण पाठांतर ही लिए। (य) प्रति हमें बहुत बाद में मिली अतएव उसके भी पूरे पाठांतर हम नहीं दे सके।

इस ग्रथ को तैयार करने में हम अनेक दिशाओं से अनेक प्रकार की सहायता मिली और यहाँ पर हम अपने समस्त सहायकों के प्रति सघन्यवाद हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। राजपूत इतिहास के विश्वविश्रुत विद्वान् परम श्रद्धेय महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचढजी ओम्भा, हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और काशी के हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रधान रायबहादुर श्यामसुंदरदासजी वी० ए०, राजस्थानी साहित्य के विद्वान् जयपुर निवासी पुरोहित हरिनारायणजी वी० ए०, विद्याभूषण, और राजस्थान के स्वनामधन्य उदारमना सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला ने हमें प्रत्येक प्रकार से

उत्साहित किया। श्रीश्रीभोजी ने बहुत कष्ट उठाकर सपूर्ण ग्रंथ को सुना और हमें कई उपयोगी और आवश्यक सूचनाएँ देकर अनुग्रहीत किया। अपना अमूल्य समय देकर उन्होंने इतिहास सबधी बातों का विस्तृत स्पष्टीकरण लिखवा भेजा और मूल की अनेक कठिनाइयों को सुलभाने में हमारी सहायता की। पूर्वपरिचय न होने पर भी इस प्रकार अत्यंत प्रेमपूर्वक उन्होंने जो सहायता दी उसके लिये हम नहीं जानते कि किन शब्दों में उनका धन्यवाद करें। बाबू श्यामसुंदरदासजी ने अन्यान्य सहायताओं के साथ इस ग्रंथ के कुछ अंश के प्रूफ देखने का भी कष्ट उठाया। सेठ घनश्यामदासजी ने हमें सब प्रकार से प्रोत्साहित करने के साथ-साथ इस ग्रंथ में दिए गए तीन चित्रों का प्रकाशन व्यय अपने ऊपर उठा लिया। इसके अतिरिक्त बिडला परिवार ने ग्रंथ की दो सौ प्रतियाँ लेने का पहले ही वचन देकर इसके मुद्रण और प्रकाशन में बड़ी भारी सहायता की। हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त और राय कृष्णदासजी से भी हमें इस विषय में बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला।

जोधपुर के सरदार म्यूजियम के सुपरिंटेंडेंट, इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विश्वेश्वरनाथ रेड तथा प० रामकर्ण आसोपा ने इस ग्रंथ की अनेक प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त करने में हमारी अमूल्य सहायता की। उनकी सहायता के बिना हमारा कार्य इतना सफलतापूर्वक सिद्ध न होता। बीकानेर के रॉगड़ी-स्थित जैनों के बड़े उपासरे के श्रीपूजजी तथा अन्य प्रबंधकों ने वहाँ के पुस्तक-भंडार से कई प्रतियाँ उदारतापूर्वक हमें प्रदान कीं। श्रीयुत रामनरेशजी त्रिपाठी ने भी गुजराती की इस सबध की एकाध छपी पुस्तक हमें भेजने की कृपा की।

ग्रंथ में जो तीन प्राचीन चित्र दिए गए हैं। वे जोधपुर के सरदार-म्यूजियम में सुरक्षित चित्रमाला से लिए गए हैं। उन्हें ग्रंथ में देने की अनुमति प्रदान करने के लिये हम जोधपुर राज्य और उक्त म्यूजियम के प्रधान पदाधिकारी श्री विश्वेश्वरनाथजी रेड के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा इस बृहत् ग्रंथ के प्रकाशन का भार यदि अपने ऊपर न ले लेती तो इस रूप में इसका प्रकाशित होना असंभव-सा था। अतः इसके लिये सभा के प्राण बाबू श्यामसुंदरदासजी, तथा (अब,

भूतपूर्व) प्रधानमंत्री गय कृष्णदासजी एवं समा का प्रथममंडल, विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं ।

अतः मैं हम अपने सुहृद्गण अजमेर-निवासी श्रीयुन लेफ्टिनेंट महेशचंद्र शर्मा एम० ए०, एल०-एल० बी० और जोधपुर के जयवत कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर श्रीष्टत् वेदारनाथ तिवारी एम० ए०, एल०-एल० बी० को धन्यवाद देना सबसे आवश्यक समझते हैं जिन्होंने बड़े प्रेम और निःस्वार्थ भाव से एक नहीं अनेक प्रकार से, हमारी सहायता की ।

रामसिंह
सूर्यकरण
नरोत्तम दास

प्रवचन

(१)

‘ढोला मारूरा दूहा’ राजस्थानी भाषा का एक प्रसिद्ध काव्य है। इस काव्य के दो रूप पाए जाते हैं—पहला केवल दोहों में है, जो प्राचीन है और दूसरा दोहे और चौपाइयों में है। संवत् १६०० के लगभग जेसलमेर में कुशललाभ नाम के एक जैन कवि थे। उनके समय में ‘ढोला मारू काव्य’ प्रसिद्ध था परंतु संभवतः वह अपने संपूर्ण रूप में नहीं मिलता था। जितना कुछ मिल सका उतना उन्होंने एकत्र किया और कथासूत्र मिलाने के लिये उसमें अपनी ओर से चौपाइयाँ बनाकर जोड़ दीं। इन चौपाइयों के अंत में उन्होंने लिखा है कि ‘दूहा घणा पुराणा अछै’—अर्थात् दोहे बहुत पुराने हैं, अनुमानतः ‘घणा पुराणा’ का अर्थ सौ वर्ष पुराना तो होगा ही। इस अनुमान पर असली काव्य का समय स० १५०० विक्रमी के लगभग होगा। इसकी भाषा को देखने से भी प्रायः इसी अनुमान की पुष्टि होती है। अतः यह काव्य लगभग ५०० वर्ष पुराना तो अवश्य है। इसके संपादकों ने परिश्रमपूर्वक इस काव्य के प्राचीन रूप—अर्थात् केवल दोहोंवाले रूप—का पता लगाकर उसका सुचारु रूप से संपादन किया है। दोहे चौपाइयोंवाला रूप तो हस्तलिखित प्रतियों में भी बहुत मिलता है परंतु केवल दोहोंवाला प्राचीन रूप अभी तक अप्राप्य सा ही था।

यह काव्य भाषा एवं भाव दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसकी भाषा कृत्रिम ढिंगळ (राजस्थानी) नहीं है जो साहित्य में प्रसिद्ध है। यह तत्कालीन बोलचाल की राजस्थानी भाषा में लिखा गया है। भाषा के इतिहास के अध्ययन के लिये यह काव्य उपयोगी सिद्ध होगा। कविता की दृष्टि से भी यह काव्य महत्वपूर्ण है। यह एक विचित्र (रोमेंटिक) प्रेम-गाथा है और इसमें मानवहृदय के कोमल मनोभावों एवं बाह्य प्रकृति के मनोहर चित्र अंकित किए गए हैं।

काव्य का नायक ऐतिहासिक व्यक्ति है परंतु घटनाओं एवं वर्णनों में कल्पना का बहुत बड़ा पुट है जो ऐसी रचनाओं में प्रायः स्वाभाविक है। काव्य का मूल रूप तो प्राचीन है परंतु बाद में समय समय पर इसमें नए

दोहे भी मिलाए जाते रहे हैं। सपादकों ने प्रायः १६-१७ हस्तलिखित प्रतियाँ एकत्र कर इमका संपादन किया है और स० १६६७ की लिखी एक प्रति तथा स० १७२० के लगभग की लिखी दूसरी प्रति सपादन के आधारस्वरूप ग्रहण की है। नई मिलावट विशेषकर इस समय के बाद ही हुई है। इमसे पूर्व जो मिलावट हुई है वह नगण्य है, फिर भी सपादकों ने सावधानी से काम लिया है।

इन्हीं सपादकों ने राजस्थानी भाषा के एक अन्य सुप्रसिद्ध काव्य पृथ्वीराज कृत 'किसन रुकमिणीरी वेलि' का उत्तम सपादन किया है जो प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित हो रहा है। यह इनका दूसरा प्रयत्न है। इस ग्रन्थ के साथ ही 'वेलि' की भाँति विस्तृत भूमिका, अर्थ, पाठांतर, शब्द-कोष एवं विस्तृत टिप्पणियाँ रहेंगी। ग्रन्थ प्रकाशित होने पर राजस्थानी एवं हिंदी साहित्य के लिये उपयोगी होगा, इसमें सन्देह नहीं। इसका प्रकाशन किसी भी प्रकाशन संस्था के लिये गौरव की बात होगी। मैं उस काव्य को शीघ्र ही प्रकाशित रूप में देखना चाहता हूँ।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

ता० १३-७-३१

(२)

ढोला मारूरा दूहा नामक राजस्थानी भाषा के इस काव्य का प्रवचन लिखते हुए मुझे बड़ा हर्ष होता है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन साहित्य-भंडार बहुत विस्तृत है जिसमें अनेक अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। परंतु अभी तक वे अज्ञान के अधकारपूर्ण गहरे गर्त में ही छिपे हैं, उनको प्रकाश में लाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं हुआ। राजस्थान के विद्वानों और धनकुवेरों के लिये यह कोई गौरव की बात नहीं है।

यह ढोला मारू काव्य भी राजस्थानी साहित्य का एक श्रेष्ठ रत्न है। इसकी मनोमुग्धकारिणी कहानी का संबंध आँवेर के आख्यानों तथा वीर ऋद्धवाहा राजवंश से लोक में प्रकट है। हूँदाहड़ देश की कहानियों तथा

बातों के सहित्य मे राजकुमार ढोला और रूपराशि राजकुमारी मारुवणी की सुंदर कहानी का स्थान बहुत ऊँचा है। उसका प्रचार यहाँ तक है कि बाजार मे पोथी बेचनेवालों के पास भी ढोला मारु की बात अथवा ढोला-मारु का ख्याल नाम की छोटी-छोटी पुस्तकें हम देखते है। वह मोहिनी कथा कितने ही लालों को पलने मे हुलराने और उनके कमलनयनों मे सर्वेद्रिय-दुःखहारिणी सुखनिदिया को बुलाने मे जादू का सा कार्य करती रही है। मैं अपनी ही कहूँ कि न जाने कितनी रातों मे अपनी पूज्य मातुश्री तथा अपने प्रिय कहानी कहनेवाले ब्राह्मण गगाबख्श से राज रानी की इस सुमधुर कहानी को चाव के साथ सुनकर मैंने इसका पीयूष पान किया है और इसके कई अश तो अभी तक मेरे स्मृतिपटल पर खचित हैं। चारणों और भाटों ने इस कहानी को नाना रूप देने मे अपनी बुद्धि और चतुराई का खूब उपयोग किया है और इसके कथानकों एवं वृत्तों को चित्राकित करने में अग्रणित चित्रकारों ने अपने कौशल का प्रदर्शन किया है। इसको यदि राजस्थान के सर्वोत्तम जातीय काव्यों मे से एक कहा जाय तो कोई असंगति नहीं।

इतिहास की कसौटी पर कसे जाने से इसकी काति में कुछ भी न्यूनता नहीं आने की। वास्तविक वृत्त एवं तिथि आदि के भेद से इसके अमरत्व और गौरव को कोई बाधा नहीं पहुँच सकती। अवश्य ही ढूँढाहड़ राज्य के मूल सस्थापक के साथ इस कहानी का उतना संबध नहीं। सोढदेवजी के पुत्र दूलहरायजी अपने पिता की गद्दी पर मि० माघ सुदी ६ सवत् १०६३ को^१ विराजे थे और उनका स्वर्गवास खोह स्थान में मि० मार्गशीर्ष सुदी ३ सं० १०६३ को हुआ था जब वे ग्वालियर पर आक्रमण करनेवाले दक्षिण के राजाओं को पराजित कर लौट रहे थे। महामति टाड साहब ने भाटों से जिस रूप में इस कहानी को सुना उसी रूप मे लिख दिया। इतने पर भी यह कहानी अपनी उत्तमता के कारण राजस्थानी साहित्य-भंडार मे एक निराला महत्व रखती है और कृतविद्य अथच कार्यकुशल और परिश्रमी

१ संपादकों की सम्मति में ढोला और दूलहराय एक ही व्यक्ति नहीं जैसा कि टाड ने लिखा है। परंतु, जैसी कि श्री ओम्नाजी की सम्मति है, दूलहराय का समय ग्यारहवीं शताब्दी न होकर तेरहवीं शताब्दी है तथा ढोला दूलहराय का पूर्वज था और दसवीं शताब्दी के लगभग हुआ है।—संपादक।

संपादकत्रय के हाथों में पढ़कर इसे वह सुंदर रूप मिला है कि जिससे इसकी शोभा में द्विगुणित श्रीवृद्धि हुई है।

राजस्थान के पुस्तक भण्डारों में अभी बहुसंख्यक अमूल्य ग्रन्थएन पड़े हैं जो कीड़ों के आहार बने जा रहे हैं। उनका अखिलत्र प्रकाशित होना नितान्त आवश्यक है जिससे उनका योगक्षेम हो सके। इस ग्रन्थएन को इस सुसंपादित रूप में प्रकाशित करने के लिये विद्वान् संपादक तथा नागरीप्रचारिणी सभा के प्रबंधक हार्दिक अभिनंदन के पात्र हैं।

जयपुर
ता० २०-२-३१ }

पुरोहित हरिनारायण शर्मा
(वी० ए०, विद्याभूषण)

(३)

राजपूताना अपने पराक्रमी वीरों और साहसिक एवं कुशल व्यापारियों के लिये वैसे तो काफी प्रसिद्ध है, किंतु यह कम लोग जानते हैं कि राजपूताने ने कविता और कला की भी काफी सेवा की है। राजपूत सभ्यता भी एक निराली चीज है, यहाँ तक कि आज भी अन्य प्राचीन नरेश राजपूत सभ्यता का अनुकरण करने में अपना गौरव समझते हैं। चित्रकला में राजपूताने का स्थान किसी समय बहुत ऊँचा था और राजपूत नरेशों के दरबारी कवियों ने कविता में काफी नाम कमाया था। इस समय राजपूत चित्रकला तो अजायबघरों या कद्वदान शौकीनी के सग्रहों तक ही परिमिमत है, किंतु राजस्थानी कविता का तो इससे भी बुरा हाल है। सतोष इतना ही है कि पुरानी पूँजी नष्ट नहीं हुई है। राजपूताने के पुस्तकालयों एवं भाट-चारणों के कठों में, यह कला आज भी मौजूद है। बात यह है कि कला मर नहीं गई है, जिंदा है सही, मगर नींद में है। इसे जगा देना राजस्थानी सपूतों का काम है; ठाकुर रामसिंहजी, पंडित सूर्यकरणजी पारीक और पंडित नरोत्तमदासजी स्वामी ने इस सोती हुई कला को जगाने का बीड़ा उठाया है। किसन-रुकमिणीरी वेत्ति का उद्धार तो हो चुका, राजस्थान का एक अमूल्य रत्न तो ससार के सामने आ गया। 'ढोला मारूरा दूहा' के उद्धार का यह प्रयत्न इनका द्वितीय प्रयास है। पाठकों को इसमें पर्याप्त रस मिलेगा। मारवाड़ी चित्त को चाहे इसमें विशेष नवीनता भले ही प्रतीत न हो, किंतु मीठी चीज

चरावर खाने पर भी मीठी ही लगती है। इस न्याय से मरुजन इसके रसपान से अघा जायेंगे, ऐसा भय नहीं है। यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी कि यह पहली पुस्तक होगी जिसमें राजस्थान की आत्मा का हूबहू चित्र पाया जाता है।

इसका जो प्रसंग मुझे सबसे अधिक पसंद आया और जिसकी ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँगा, वह है इसमें किया हुआ मरुभूमि का वर्णन। वह कितना स्वाभाविक एवं कितना सच्चा है ! पाँच सौ साल पहले का किया हुआ वर्णन ऐसा मालूम होता है मानो आज का ही हो।

माळवणी (मालवे की) और मारवणी (मारवाड़ की) दोनों ढोला की छिरियाँ थीं। दोनों एक दूसरे के प्रात की, विनोद मे, निंदा करती है। माळवणी कहती है—

बाबा, म देहस मारुवाँ सूधा एवाळाँह ।
 कंधि कुहाड़उ, सिरि घड़उ, वासउ मजि थळाँह ॥६५८॥
 बाबा, म देसइ मारुवाँ, वर कुँआरि रहेसि ।
 हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सीचंती य मरेसि ॥६५९॥
 मारु, थँकइ देसइइ एक न भाजइ रिडु ।
 ऊचाळउ, क अवरसणउ, कइ फाकउ, कइ तिडु ॥६६०॥
 जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर कँटाळा रूँख ।
 आके फोगे छँहड़ी, हूँछँ भँजइ भूख ॥६६१॥

अनुवाद—हे बाबा, मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत ब्याहना, जो सीधे सादे पशु चरानेवाले होते हैं। वहाँ कधे पर कुल्हाड़ा और सिर पर घड़ा रखना होगा और जंगल में वास करना होगा।

हे बाबा, मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत देना, चाहे मैं कुँवारी ही रह जाऊँ। वहाँ दिन भर हाथ में कटोरा और सिर पर घड़ा—इस प्रकार पानी भरती भरती ही मर जाऊँगी।

हे मारवणी; तुम्हारे मारवाड़ देश में एक भी कष्ट दूर नहीं होता, या तो ऊचाळा (अकाल में परदेस गमन) या अवर्षण या फाका या टिड्डियाँ, कोई न कोई उपद्रव अवश्य रहता है।

मारवाड़ की भूमि में पीनेवाले (पैंणे) साँप रहते हैं, कैर (करील) और ऊँटकटारा (एक भ्लाड़ी विशेष) ही पेड़ों की गिनती में आते हैं, आक

श्रीर फोग की ही छाया मिलती ? और भुग्ट बास के दानो से पेट भग्ना पढ़ता है ।

मागवर्गी चुपचाप मुन लेती है, किंतु माळवर्गी फिर ताना मागती है—

पहिरण ओढग कवळा, साटे पुग्गिमे नीर ।

आपण लोऊ उभॉन्वग, गाडर छाळा गीर ॥६६२॥

वाळुँ, वावा, देसड्ड पाँगी जिहाँ कुवाँह ।

आधीगत कुदकड़ा, ज्यउँ मागसाँ मुवाँह ॥६५५॥

अनुवाद—जहाँ पहनने और ओढने से मोटे ऊनी कवज ही मिलने हैं, जहाँ पानी साठ पुरुष गहरा होता है, लोग भी जहाँ एक जगह नहीं टिकने और जहाँ बरूरी और भेड़ का दूध मिलता है, ऐसा तुम्हाग मागवाड देश है ।

हे वावा, ऐसे देश को जला दूँ जहाँ पानी केवल गहरे कुँओँ में ही मिलता है, जहाँ कुँओँ पर पानी निकालनेवाले आधीगत को ही पुकारने लगते हैं, वैसे मनुष्यों के मग्ने पर पुकारा करते हैं ।

अवनी वार मागवगी तुकी व तुकी फटकग वताती है और कहती है—

वाळुँ, वावा, देसड्ड, जहाँ पाँगी सेवार ।

ना पगिहारी फलगड, ना कूवह लँकार ॥६६४॥

दुख वीसारण, मनहरण, जड ई नाड न हुति ।

दियड्ड रतन तळाव ज्यउँ फूटी दह दिसि जती ॥११६॥

अनुवाद—वावा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी पर सेवार छाई रहती है, जहाँ न तो पनिहारियों का झुड आता-जाता रहता है और न कुँओँ पर पानी निकालनेवालों का लयपूर्ण शब्द ही सुनाई देता है ।

दुःख को विन्मरण कग्नेवाला और मन को हरनेवाला यदि यह सगीत न होता तो हृदय रत्न-सरोवर की तरह फटककर दर्शों दिशाओं में बह जाता ।

सच है, कुएँ पर मालियों के 'बारे' की ध्वनि की अन्य प्रात के लोग चाहे कद्र न करें और 'आधीरात कुदकड़ा' को 'ज्यउँ मागसाँ मुवाँह' की उपमा देते रहें परंतु मारवाड़ी चित्त का तो यह आज भी 'दुख वीसारण मनहरण' नाड है ।

कौन ऐसा मारवाड़ी है जो मस्त होकर नीचे लिखे दोहे न गाता हो—

वाजरियाँ हरियाळियाँ, विचि विचि त्रेलॉ फूल ।

जड भरि बूठड भाद्रवड, मारु देस अमूल ॥२५०॥

देस सुहावउ, जळ सजळ, मीठा-बोला लोइ ।

मारू-काँमण भुईँ दखिण, जइ हरि दियइ त होइ ॥४८५॥

थळ भूरा, वन भंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ ।

गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ ॥४८६॥

अनुवाद—बाजरियाँ हरी हो गई हैं और बीच बीच में वेलें फूल रही हैं ।
यदि भादों भर बरसता रहा तो मारू देश अमूल्य (निराली शोभावाला)
होगा ।

मरुस्थल बड़ा सुहावना देश है, जहाँ का जल स्वास्थ्यप्रद है और लोग
मधुरभाषी हैं । ऐसे मारू देश की कामिनी दक्षिण देश में यदि भगवान् ही
दें तो मिल सकती है ।

भूमि (बालुकामयी होने से) भूरी है, वन भंखाड़ हैं । वहाँ चंपा उत्पन्न
नहीं होता । मारवणी के गुणों की सुगंधि से ही सारा वनखड महक उठा है ।

ऐसे मरुदेश को मेरा शतशः प्रणाम ।

धनश्यामदास बिड़ला



प्रस्तावना

पूर्वार्ध—ऐतिहासिक विवेचन और साहित्यिक आलोचना

(१) प्राक्कथन

प्रत्येक जाति के प्रारंभिक इतिहास में गीतकाव्य, प्रेमगाथाएँ, दंतकथाएँ और कल्पित आख्यायिकाएँ विशेष रूप से प्रतिष्ठित, प्रख्यात और लोकप्रिय पाई जाती हैं। उनमें एक प्रकार की अनिर्वचनीय सरलता, चमत्कार, रससौष्टव और रुचिग्राहक शक्ति रहती है, जो अर्वाचीन काल के कलापरिपुष्ट साहित्य में मिलनी दुर्लभ है। प्राचीन काल के गीतों और गाथाओं में यद्यपि शब्दों और भावों की वह बुद्धिसगत जोड़-तोड़, वर्णन-शैली का वह प्रगल्भ पांडित्य और अलंकार शास्त्र की वह विचित्र और सूक्ष्म छानबीन आदि नहीं पाए जाते, जो उत्तर काल के महाकाव्यों, नाटकों और कहानियों में पाए जाते हैं, फिर भी इनके बदले उनमें एक अद्वितीय सरलता, सादगी, निश्छलता और मानवजीवन के आदिम भावों और मनोवृत्तियों का दिग्दर्शन मिलता है।

गीतकाव्यों की प्राचीन लोकप्रियता की ओर जब ध्यान जाता है तब यह धारणा होने लगती है कि जातीय संस्कृतिनिर्माण में इनका बहुत हाथ रहा है। इन प्राचीन गाथाओं ने हमारे उत्तरकालीन जातीय चरित्र का निर्माण करने में बहुत सहायता दी है। गीतों के प्रसिद्ध वीरों को हम श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते हैं और उनके कार्यों का स्मरण कर करके हमारे हृदय में जातीय भावना की ज्योति स्फुरित होती है। अतएव जातीयता की दृष्टि से इनका बड़ा महत्व है।

मानव समाज ने कृत्रिम सभ्यता की चमक से चकाचौंध होकर अतस्तल की बहुत सी सरल और निष्कपट ईश्वरीय विभूतियों का विस्मरण सा कर दिया है। यही नहीं, उसने हृदय की सरल उन्मादना को 'ग्रामीणता' के दुष्ण से लाञ्छित करके परित्याज्य समझ लिया है। हृदय के सच्चे भावों को सहज स्वाभाविकता के साथ प्रकट करना बहुधा काव्यसमत नहीं समझा जाता, अच्छी कविता तब तक नहीं बनी समझी जाती जब तक अलंकार

श्रौरी रीतिशास्त्र के जटिल बधनों में जकड़कर अतःकरण के स्वच्छद और सरल भावों को बुद्धिसंगत, ऊहा-समन्वित, कृत्रिम और अलंकृत वेश में प्रकट नहीं किया जाता। प्रकृति के सरल सौंदर्य को रत्नों और सुवर्ण से निर्मित निर्बाध आभूषणों से लदे हुए रूप में जब तक हम देख नहीं पाते तब तक हमारी कृत्रिम भावनाएँ रीझती नहीं। मनुष्य ने दुर्भाग्यवश अपने जीवन को इतना बनावटी बना लिया है कि क्या वस्तु, क्या पदार्थ, क्या भावनाएँ और क्या विचार, सभी में कृत्रिमता की प्रतिभा देखकर ही उसे तृप्ति होती है।

मानवजीवन की सहचारिणी कविता के उद्गम स्थल की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं, और पीछे से उसके विकास और समृद्धि के इतिहास सूत्र को लेकर आधुनिक काल में उसके परिवर्तित स्वरूप की तुलना करते हैं, तो हमको आकाश-पाताल का अंतर प्रतीत होने लगता है। इस महान् परिवर्तन को देखकर मन खिन्न हो जाता है। कविता की उत्पत्ति अनादि काल से है और उसने ईश्वरीय प्रतिभा की झलक के रूप में मनुष्य के हृदय में जन्म लिया था। उसने मानवजीवन में एक विचित्र आलोक, सुखद संवेदना, व्यापक सहानुभूति, एकता और प्रेम के ऐक्यसूत्र के रूप में विकास पाया था। जब तक उसका वह सरल, मधुर, निष्कपट रूप बना रहा तब तक उसने मानवजीवन का बड़ा उपकार किया। विषय वेदनाओं और जटिल आध्यात्मिक आपत्तियों के निवारण करने में उसने मनुष्य को अमृत सजीवनी का काम दिया। परंतु ज्यों ज्यों मनुष्य जटिल जगत् की दुर्भेद्य माया के जाल में फँसता गया, ज्यों ज्यों वह सरलता को छोड़कर कृत्रिमता की आराधना करने लगा और अतःकरण के सरल सत्कारों को तिलाजलि देने लगा, त्यों त्यों उसे कविता देवी के प्राकृतिक, सुदूर, सरल और सौम्य रूप के प्रति उदासीनता होने लगी। समयान्तर में उसी कृत्रिम और जटिलताप्रिय बुद्धि ने व्याकरण, रीति, अलंकार और छंद शास्त्र के बधनों में जकड़कर कविता का एक ऐसा रूप प्रकट किया जिसने काव्य को बहुरूपिए का एक स्वाँग सा बना डाला। इसी स्वाँग को सच्ची कविता और उत्तम काव्य समझकर मनुष्य सतुष्ट और प्रसन्न रहने लगा।

निष्पाप क्रौंच-मिथुन को शरद् ऋतु के निर्मल आकाश में आनदपूर्वक विहार करते हुए देखकर क्रूरहृदय निषाद ने बाण मार ही तो दिया। आहत प्रेमी के वियोग में विरही पत्नी ने जो करुण क्रन्दन किया उसके प्रबल आघात ने

कवि की मूक हृत्तत्री को भङ्कृत कर दिया। रुका हुआ काव्यप्रवाह प्रवल वेग के साथ सारे प्रतिवर्धों को तोड़कर अविच्छिन्न रूप से चल पड़ा। वेदना और अभिशाप की तरल तरंगे दर्शों दिशाओं में गूँज उठीं और क्षितिज के अदृश्य किनारों पर टकराकर प्रतिध्वनित होने लगीं। आदि कवि वाल्मीकि की सवेदनात्मक अतःकरण की पुकार ने जिस दिन जन्म लिया उसी दिन कविता का प्रथम प्रभातोदय हुआ—

‘मा, निषाद, प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत्कौच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्’ ॥

कविता का वह प्रथम उद्रेक सरल था, स्वाभाविक था, निष्कपट था, कृत्रिम अलकरणों के निर्जीव भार से निर्मुक्त था, रीति के जटिल बंधनों से रहित था, छद्म था, परंतु स्वच्छन्द। हृदय के रग में वह रँगा हुआ था। वह कविता थी और आज भी कविता होती है। अंतर क्या है? दुःख की वह मर्मभेदी कहानी कौन कहेगा ?

उपर्युक्त विवेचन से हमारा आशय काव्य के कल्पनात्मक और प्राकृतिक भेदों के भिन्न भिन्न स्वरूपों को बतलाने का है। कल्पनात्मक साहित्य ने भारत में बड़ी उन्नति की है, यह तो सभी जानते हैं। संस्कृत साहित्य में महाकवि भास, शूद्रक, कालिदास, भारवि, बाण, भवभूति, श्रीहर्ष आदि ने काव्य, नाटक गद्य, आख्यायिका आदि साहित्य को कलात्मक उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। यही हाल प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यों का भी रहा। इधर वर्तमानकाल में भारतीय भाषाओं ने भी कलात्मक दृष्टि से खूब साहित्यसृष्टि की है। बँगला, गुजराती, मराठी और हिंदी भाषाओं में काव्यकला की दृष्टि से उत्तम साहित्य भरा पड़ा है। बिहारी, भूषण, मतिराम, केशव प्रभृति कवि कलात्मक कविता के बड़े आचार्य हो गए हैं। परंतु इन बहुमूल्य जगमगाते हुए रत्नों के होते हुए सभी भाषाओं ने अपने प्राचीन सरल लोकसाहित्य को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा है। यह स्वाभाविक भी था। मानवकौशल द्वारा निर्मित सुदूर से सुदूर चित्रविचित्र पुष्पों, वृक्षों और फलों से लदी हुई वाटिकाओं के होते हुए भला शिष्ट समाज जगल के सरल और कटकित परंतु सरस और सुगंधित वन्य कुसुमों की सुवास लेने को क्यों जाने लगा ? यही कारण हुआ कि एक समय में सारे देश की जनरुचि और काव्यभावनाओं को आकर्षित करनेवाला गीत-गाथा और दोहामय लोकसाहित्य आधुनिक काल

को कलात्मक चमचमाहट के आगे लुप्तप्राय हो गया। इसमें देश, जाति और साहित्य की बड़ी हानि हुई।

हमारे सौभाग्य से साहित्य में अब क्रांति का युग उपस्थित हो रहा है। नवीन दृष्टिगोचर भावनाएँ, नवीन जागृति और नवीन सृष्टि चांगों और हो गयी हैं। सारा भर में क्रांति का एक चक्र चल पड़ा है जिसका मूल मंत्र Back to nature प्रकृति की ओर लौटने, प्रकृति का पुनः परिशीलन करने के लिये प्रबल प्रेरणा कर रहा है। पाश्चात्य देशों ने इस क्रांति का सबसे पहले लाभ उठाया है। वे अपने प्राचीन साहित्य के पुनरुद्धार में कटिबद्ध होकर लग गए हैं और अब तक इस ओर प्रशंसनीय कार्य कर चुके हैं। भारतीय भाषाओं के द्वार पर भी यह लहर टकरा चुकी है। बंगला, गुजराती और मराठी ने अपने प्राचीन साहित्य की बहुत कुछ खोज कर ली है। परंतु हिंदी की नींद अभी तक पूर्ण रूप से खुली नहीं। उसे खुमारी में अब भी नखशिख, नायिका-भेद, पद्मसूत, वर्णन, अलंकार, रस, छंद की स्मृति बनी हुई है। पद्य शुभ लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से हिंदी ने भी अपने प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात करना आरंभ कर दिया है।

प्रस्तुत ग्रंथ कोई लब्धप्रतिष्ठ काव्य अथवा महाकाव्य नहीं है। इसमें साहित्यिक कला की जाण्वल्यमान चमत्कृति नहीं है और न प्रबंध का शास्त्र-विहित निर्वाह है। इसके विपरीत यह एक सीधी सादी दोहामय कहानी है, जिसमें मानवहृदय की सरल और स्वाभाविक भावनाओं को प्राकृतिक रंगों में रंगकर प्रकट किया गया है। यह एक ऐसा बन्धुसुम है जो अब तक विशाल कानन की शांतिपूर्ण शून्यता में स्वतंत्रतापूर्वक आत्मानंद में लीन था। इसे यह कभी आशंका न रही होगी कि इस प्रकार उसके स्वतंत्र जीवन को बड़ी बनाकर कुछ पढ़ेलिखे लोग सदा के लिये उसकी त्वच्छदता को छीन लेंगे।

भारतवर्ष में राजस्थानी भाषा का साहित्य इस प्रकार के प्राचीन लोकगीतों और गाथाकाव्यों से परिपूर्ण है। कुछ लोगों का कथन है कि राजस्थान देश की प्राकृतिक परिस्थिति और राजस्थानी जनता की स्वाभाविक उग्रता और रूखेपन के अनुरूप ही राजस्थानी भाषा का साहित्य भी रूखा, उग्र, उद्वेग एवं वीररस प्रधान है और उसमें हृदय के कोमल, कात एव स्निग्ध भावों को व्यक्त करने के लिये न तो उपयुक्त शब्दावली है और न भावप्रदर्शन की योग्यता ही। यह एक बड़ा भारी अभियोग है। पर इसके लिये हम आलोचकों को

सर्वथा दोषी नहीं ठहरा सकते । कारण, अब तक जो कुछ थोड़ा सा राजस्थानी का साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें पाठकों को अधिकाश में तलवारों की चमचमाहट, वीर हृदयों का सामरिक उत्साह, राजपूत-प्रण-प्रतिज्ञा की दृढ़ता अथवा किसी विकट युद्ध की दिल को दहलानेवाली भयकरता का ही वर्णन मिलता है । परंतु हमारा कथन यह है कि राजस्थानी का साहित्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता ।

राजस्थान की पुण्यभूमि प्राचीन काल में भारत के अतीत गौरव, पुण्यशील कीर्ति और शिखरारूढ सभ्यता का महत्वपूर्ण केंद्र और स्तंभ रही है । कोई भी विचारशील पुरुष निष्पक्ष सत्यता के साथ यह नहीं कह सकता कि भारत के इतिहास में अग्रणी रहनेवाली इस भूमि का साहित्य भी उतना ही महत्वपूर्ण, सर्वांग संपूर्ण, उतना ही उज्ज्वल, आदर्शमय एवं उतना ही पथप्रदर्शक नहीं रहा होगा । परंतु यह सब होते हुए भी सत्य को प्रकाशित करने के लिये प्रमाणों की आवश्यकता होती है । दुःख तो इस बात का है कि विद्वानों ने राजस्थान के साहित्य को अब तक उपेक्षा की दृष्टि से देखा है । यही कारण है कि राजस्थानी साहित्यभांडार के उत्तमोत्तम रत्नों से परिपूर्ण होते हुए भी उनकी भूलक सूर्य के प्रकाश में बाह्य जगत् को अब तक नहीं मिली । कुछ एक सस्थाओं, यथा काशी की 'नागरीप्रचारिणी सभा' और कलकत्ता की 'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', तथा कुछ विद्वानों, यथा महामहोपाध्याय श्री गौरी-शंकर हीराचंद ओझा, डाक्टर टैसीटरी, पंडित रामकर्ण, मुशी देवीप्रसाद आदि, का हमको बड़ा उपकार मानना चाहिए, जिन्होंने अनवरत परिश्रम-पूर्वक खोज करके सर्वप्रथम साहित्यिक जगत् को यह महत्वपूर्ण सूचना दी कि इस भाषा में भी बहुमूल्य साहित्यभांडार भरा पड़ा है । अब यदि आवश्यकता है तो उन परिश्रमशील श्रद्धालुओं की, जिनके हृदय में राजस्थान के पूर्वगौरव के प्रति अक्षुण्ण श्रद्धा हो और जो दृढ़प्रतिज्ञ महाराणा प्रताप और बाप्पा रावल, चक्रवर्ती दिल्लीपति महाराजा पृथ्वीराज, महाकवि राठोड़ महाराज पृथ्वीराज, वीरश्रेष्ठ दुर्गादास, साहित्यरथी महाराजा जसवंतसिंह एवं सवाई जयसिंह और भक्तशिरोमणि मीरबाई एवं कविश्रेष्ठ चंदबरदाई के उज्ज्वल यश और कृतियों को सुरक्षित रखने का उद्योग करें ।

इस बात को हिंदी के सभी ज्ञाता एवं विद्वान् जानते हैं कि राजस्थानी और हिंदी का चोलीदामन का साथ है । वास्तव में देखा जाय तो हिंदी का अधिकांश प्राचीन साहित्य अपने राजस्थानी रूप में प्रकट हुआ है । हिंदी

साहित्य के इतिहास-निर्माण में राजस्थानी का बड़ा महत्वपूर्ण हाथ रहा है। चन्द्ररदाई हिंदी का आदि कवि रहा है और बड़ी राजस्थानी का एक श्रेष्ठ कवि भी। मीरजाई की कवियों में हिंदी की श्रेष्ठ कवयित्री गमभी जाती है और वही राजस्थानी काव्य की भी आत्मा है। उस नाते में राजस्थानी हिंदी की बड़ी बहिन हुई। अतएव राजस्थानी साहित्य का जितना उद्वार होगा, हिंदी साहित्य की समृद्धि भी उतनी ही बढ़ेगी। हमारी तो वह धारणा है कि हिंदी साहित्य यदि त्रिवेणी का मुखद और महत्त्वपूर्ण सगम रहे, तो राजस्थानी उसकी एक शाखा यमुना है और अवधी उसकी दूसरी शाखा सरस्वती। इन दोनों के बीच ब्रजभाषा रूपी गंगा की पावन तरंगिणी अपने सरस काव्य-प्रवाह को लिए हुए उत्तर भारत के रमिक समुदाय को आह्लादित करती हुई अनर्गल बह रही है। जब तक हिंदी हिंदी है, तब तक इनका साथ छूट नहीं सकता।

हिंदी भाषा के आदिकाल की ओर दृष्टि डालने पर पता लगता है कि हिंदी के वर्तमान स्वरूपनिर्माण के पूर्व गाथा और दोहा साहित्य का उत्तर भारत की प्रायः सभी देशभाषाओं में प्रचार था। उस समय की राजस्थानी और हिंदी में इतना रूपभेद नहीं हो गया था जितना आजकल है। यदि यह कहा जाय कि वे एक ही थीं, तो अत्युक्ति होगी। उदाहरणों द्वारा यह कथन प्रमाणित किया जा सकता है।

(२) ढोला मारूरा दूहा काव्य का परिचय

ढोला मारूरा दूहा राजस्थान का एक बहुत प्रसिद्ध प्राचीन काव्य है। यह एक दूहावद्ध प्रेमगाथा है जो राजस्थान में बहुत लोकप्रिय रही है। मानवहृदय के कोमल मनोभावों तथा ब्राह्म प्रकृति के बड़े ही मनोहर चित्र इसमें अंकित किए गए हैं। प्रेमगाथा होने पर भी इसका शृंगारवर्णन बहुत ही मर्वादापूर्ण है। इसके विषय में, राजस्थान में, यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

‘सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी बात ।

जोवन छाई धण भली तारो - छाई रात’ ॥

अर्थात्, दोहों में सोरठिया दोहा (सोरठा) अच्छा है, वार्ताओं में ढोला मारवणी की वार्ता अच्छी है, यौवन से छाई हुई स्त्री अच्छी होती है और तारों से छाई हुई रात अच्छी होती है।

यह काव्य राजस्थान का जातीय काव्य कहा जा सकता है। राजस्थानी भाव-भावनाएँ इसकी आत्मा में ओतप्रोत है। जनता में इसका खूब प्रचार रहा है। राजस्थान में शायद ही कोई दूसरा लोकगीत इतना लोकप्रिय रहा हो। शायद ही राजस्थान का कोई पुस्तकभांडार ऐसा होगा जिसमें इसकी एकाध प्रति न पाई जाय। इसके दूहे शताब्दियों पर्यंत राजस्थानी जनता की जिह्वा पर रहे हैं और आज भी अनेको मनुष्यों को वे याद हैं। इस काव्य की घटनाओं को लेकर अनेकों चित्र और चित्रमालाएँ बनाई गई हैं। राजस्थानी घरों पर आज भी ऊँट पर जाते हुए ढोला-मारवणी के चित्र अंकित मिलेंगे। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा सूचित करते हैं कि उन्होंने अपनी ऐतिहासिक यात्रा में अलवर राज्य के किसी ग्राम में ढोला मारु की मूर्तियाँ भी देखी थीं जो कम से कम दो सौ वर्ष की पुरानी होंगी।

इस काव्य में ढोला और मारवणी की प्रेमकथा का वर्णन है। यह ढोला कछवाहा वंश के राजा नळ का पुत्र था। इसका समय विक्रमी संवत् १००० के लगभग है। मारवणी पूगळ के राजा पिंगळ की कन्या थी। दोनों का विवाह ऐतिहासिक घटना है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासलेखक मुँहणोत नैणसी की ख्यात में ढोला के मारवणी और माळवणी नामक दो स्त्रियों के होने का उल्लेख है।

ढोला मारवणी की कथा आज भी राजस्थान और मध्यभारत के विभिन्न भागों में विभिन्न रूपों में प्रचलित है। लोगों की जिह्वा पर रहते रहते इस कथा में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है और इसके अनेक विकृत रूप बन गए हैं। यहाँ तक कि, जैसा श्रद्धेय ओझाजी हमें सूचित करते हैं, अजमेर में होली के दिनों में ढोला-मारु की एक सवारी निकलती है जिसमें औरत पुरुष को जूतों से मारती है।

ढोला-मारु काव्य एक लोकगीत (Ballad) है। यह आरंभ से लोकप्रिय और लोगों की जिह्वा पर रहा है। ऐसे जनप्रिय लोकगीतों की जो हालत होती है वही इसकी भी हुई। समय समय पर इसमें अनेक परिवर्तन और परिवर्धन हुए। नए दूहे और नई घटनाएँ समय समय पर जुड़ती गईं।

१ ऐसी एक चित्रमाला, जिसमें इस कथा की विविध घटनाओं पर कोई १२१ चित्र हैं, जोधपुर के सरदार म्यूजियम में विद्यमान है। उसके तीन चित्र इस ग्रंथ के साथ दिए गए हैं।

और पुराने दूहे और पुरानी घटनाएँ कभी कभी लुप्त भी होती गईं। आरम्भ में यह किमी एक लेखक की—संभवतः दोली दादी जाति के किमी व्यक्ति की—रचना रही हो यह संभव है परंतु इसके वर्तमान रूप का निर्माता तो कोई एक कवि न होकर समस्त जनता ही है।

आरम्भ में यह कृति दूहा छंद में लिखी गई थी, जो अपभ्रंश के जमाने से जनता का सबसे प्यारा छंद रहा है। इसका लेखक जैन या और यह कब लिखी गई इसके विषय में निश्चिन्त रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। दोला का समय सन् १००० के आसपास है और यही उसका रचनाकाल की ऊपरी सीमा है^१।

धीरे धीरे दूहे छिन्नभिन्न होने लगे और उनका स्थासूत्र टूट गया पर कथा लोगों को अब भी ज्ञात थी, यद्यपि उसमें भी बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था। जेमळमेर के गवळ हरिगज ने अपने समय में प्राप्य दूहों को एकत्र करवाकर अपने आश्रित जैन कवि कुशललाम को उनका कथासूत्र मिलाने की आज्ञा दी। उक्त कवि ने चौपाइयों बनाकर और उनको दूहों के बीच बीच में जोड़कर यह कार्य संपन्न किया^२। जैनों में कुशललाम

१ रचनाकाल की निचली सीमा जैन कवि कुशललाम का समय (१६१८ के आसपास) है जिसके समय में उस काव्य के अधूरे दूह ही मिलते थे और जिन्होंने कथासूत्र मिलाने के लिये बीच बीच में चौपाइयों जोड़ी थीं। उसने लिखा है कि—

‘दूहा घणा पुराणा अद्दह’।

सो कम से कम १५०-२०० वर्ष पुराने तो होंगे ही। इस प्रकार इन दूहों की रचना संवत् १४५० के बाद की नहीं हो सकती।

२ इसके विषय में प्रसिद्ध चारहठे कवि गोविंद गिराभाई ने मनोरजक कथा लिखी है जो इस प्रकार है। सम्राट् अकबर का विद्याप्रेम प्रसिद्ध है। उसके दरबार में वीकानेर नरेंद्र राजा रायासहजी के छोटे भाई पृथ्वीराज राठोड़ रहते थे जो डिंगल के बड़े भारी कवि थे। ये वही पृथ्वीराज हैं जिन्होंने महाराणा प्रताप को उत्तेजित करने के लिये वीररस के दूहों में पत्र लिखा था। पृथ्वीराज ने किसन रुक्मणीरी बेलि नामक एक बड़ा सुंदर शृंगार रसात्मक काव्य बनाकर अकबर को सुनाया। अकबर उस काव्य को प्रतिदिन काव्य-चर्चा के समय सुनता और उसकी प्रशंसा करता। उस समय जेरालमेर के राजकुमार हरराज ने भी यह प्रशंसा सुनी। वीकानेरवालों और जेमळमेरवालों में प्रतिद्वंद्विता का भाव था। हरराज को यह प्रशंसा सहन न हुई। जब वह राजा हुआ तो उसने अपने दरबार के कवियों को आज्ञा दी कि दोला मारू की कथा के प्रचलित दूहे जितने मिल सकें उन्हें एकत्र करके यथाक्रम लगाकर ग्रंथरचना करो और जो ग्रंथ सर्वोत्तम होगा उस पर पुरस्कार

की ढोला-मारू-चउपई का बहुत प्रचार हुआ और शायद ही कोई जैन पुस्तक भांडार मिले जहाँ इसकी प्रतियाँ न पाई जायँ ।

पर दूहोंवाला रूप सर्वथा लुप्त नहीं हुआ । उसकी कई प्रतियाँ अनुसंधान करने पर हमें प्राप्त हुई । सबसे दूहो की संख्या लगभग समान है और कथासूत्र बराबर मिलता है, कहीं खडित नहीं होता ।

कई अन्य लोगो ने, जिन्हे पूरे दूहे नहीं मिले, कथासूत्र मिलाने के लिये बीच बीच में गद्यवार्ता जोड़ी । इस गद्य पद्यात्मक रूप की प्रतियाँ बहुत कम मिलती हैं । कुछ प्रतियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें दूहे, कुशललाभ की चौपाइयाँ और गद्यवार्ता तीनों हैं । इनमें कुशललाभ की चौपाइयाँ पूरी नहीं हैं और दूहे भी बहुत कम हैं । दोनों प्रकार के रूप विशेष प्राचीन नहीं हैं, अतः कोई महत्त्व नहीं रखते ॥

दिया जायगा । कुशललाभ की रचना सर्वोत्तम निकली । हरराज ने उसे अकबर को भेंट किया । अकबर ने उसे पसंद दिया और काव्यचर्चा के समय उसके दूहे भी पढे जाने लगे । एक दिन सम्राट ने हँसी में पृथ्वीराज से कहा तुम्हारी वेलि को तो ढोला का करहत्ता (ऊँट) चर गया है । इस श्लेषयुक्त वाक्य को सुनकर पृथ्वीराज ने कहा कि इस ससाररूपी उद्यान में से अन्य मकरंद परिपूर्ण पुष्पोंवाले वृक्ष सेवा में भेंट करते कोई देर नहीं लगेगी । और इसके बाद सदेवत सावर्लिगा की शृंगारपरिपूर्ण वार्ता बनाकर पृथ्वीराज ने भेंट की जो अकबर को बहुत पसंद आई ।

यह कथा केवल कथा मात्र ही है । इसमें सत्य का कुछ भी अंश नहीं जान पड़ता । रावल हरराज युवराजत्व में तो अकबर के दरबार में गया ही नहीं । उसने सवत् १६२७ में, अपने राजा होने के नौ वर्ष बाद अकबर की अधीनता स्वीकार की थी । फिर पृथ्वीराज की वेलि तो सं० १६३७ या १६३८ में बनी थी, जैसा उसके अंतिम छंद से ज्ञात होता है । ढोला-मारू-चउपई की रचना कुशललाभ संवत् १६१८ के पूर्व ही कर चुका था, जैसा कि इस ग्रंथ की पुष्पिका से सिद्ध होता है । सुदबुद सालगा की वार्ता भी पृथ्वीराज की बनाई नहीं है । पृथ्वीराज की रचनाओं में उसका कहीं नाम नहीं और न बीकानेर राज्य के पुस्तकालय में उसकी जो एक दो प्रतियाँ हैं उनमें इस बात का कहीं उल्लेख है । ये प्रतियाँ भी उस समय के बहुत बाद की हैं ।

ऐसी ही एक कहानी पृथ्वीराज की वेलि और चारण भूला साइयाँ के रुक्मिणीहरण के विषय में कही जाती है कि दोनों बादशाह की नजर से गुजरे और हरण की रचना वेलि से अच्छी देखकर उसने यह श्लेषमय वाक्य कहा कि पृथ्वीराज, तुम्हारी वेलि को चारण बाबा की हरणियाँ (= हरण) चर गईं (राजरसनामृत, मुं० देवीप्रसाद कृत, पृष्ठ ४३-४४) ।

इस प्रकार इस समय ढोला मारु काव्य के चार रूपांतर मिनते हैं—(१) पहला—जिसमें केवल दूहे हैं और जो प्राचीन है। (२) दूसरा—जिसमें दूहे और कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं, यह प्राचीनता में दूसरे नंबर पर आता है। (३) तीसरा—जिसमें दूहे और गणवार्ता हैं (४) और चौथा—जिसमें दूहे, कुशललाभ की कुछ चौपाइयाँ और गणवार्ता हैं।

इनमें केवल पहले दो रूपांतर ही महत्वपूर्ण हैं। पिछले दो रूपांतरों में असली दूहों का भाग बहुत ही कम रह गया है और जो कुछ रह गया है वह भी बहुत कुछ विकृत हो गया है। दूसरे रूपांतर में भी बात में जाकर परिवर्तन हुआ और बहुत से नए दूहे जोड़ दिए गए पर उसका असली रूप लिखित रूप में रह जाने के कारण निश्चित किया जा सकता है।

पहले और दूसरे रूपांतरों में भी काफी अंतर पाया जाता है, विशेषतः आरंभ के भाग में। हम यहाँ पर दोनों में जो अंतर है उसका मत्तिव विवेचन करेंगे। विशेष मालूम करने के लिये परिशिष्ट में दिए हुए भिन्न भिन्न रूपांतरों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

(१)

रूपांतर नं० १ की कथा का आरंभ एक गाथा से होता है। उसके बाद ढोला मारवणी के विवाह का प्रसंग है। पूगळ देश में एक समय अकाल पड़ा तो राजा पिंगल अपने परिवार के साथ नळर देश को गया जहाँ के राजा नल ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। नल के पुत्र ढोला को देखकर पिंगळ की रानी रीझ गई और उसने अपनी पुत्री मारवणी का विवाह उसके साथ कर दिया। उस समय मारवणी की अवस्था बहुत छोटी होने के कारण उसे सतुराल में न रखकर पिंगल अपने साथ पूगळ लेता आया। उधर बड़ा होने पर ढोला का विवाह माळवे की राजकुमारी माळवणी के साथ हो गया। ढोला को मारवणी की और उसके साथ विवाह होने की बात ज्ञात नहीं हुई। युवावस्था में प्रवेश करने पर मारवणी ने अपने पति ढोला को स्वप्न में देखा और उसी समय से विरह व्याकुल रहने लगी। विरह से अभिभूत होकर कभी पपीहे को फट मारती है तो कभी कुरजों से सदेश ले जाने के लिये कहती है। राजा पिंगळ ने ढोला को बुलाने के लिये कई आदमी भेजे पर माळवणी के पड्यत्र के कारण उसे सफलता न हुई। इतने में एक सौदागर आता है और मारवणी के ढोला के साथ विवाह होने की बात जानकर माळवणी का सब भेद बतलाता है। पिंगल

फिर अपने ब्राह्मण को ढोला के पास भेजना चाहता है पर अत मे रानी की सलाह के अनुसार ढाढी भेजे जाते हैं। ये ढाढी किसी प्रकार माळवणी के रत्नों से बचकर ढोला के महल के पास ठहरते हैं और रात में करुण शब्द में मारवणी के संदेश को गाते हैं जिसको सुनकर ढोला व्याकुल हो उठता है। प्रातःकाल उठकर वह ढाढियों को अपने पास बुलाकर पूछता है और ढाढी उसे मारवणी का सब हाल सुनाते हैं जिसे सुनकर ढोला मारवणी से मिलने के लिये व्याकुल हो उठता है।

रूपान्तर नं० २ के आरम्भ मे मगलाचरण, उसके बाद वस्तुसूचना और उसके बाद पूगळ के राजा पिंगळ का वर्णन करके कथा का आरम्भ होता है। राजा पिंगळ एक बार शिकार खेलने गया। वहाँ उसे भाऊ नामक एक भालू मिला जिसने जाळोर के देवड़ा राजा सामतसो की कन्या उमा के रूप की बहुत प्रशंसा की जिससे पिंगळ का मन उमा की ओर आकर्षित हुआ। महल मे लौटने पर राजा ने अपने प्रधान और सेवक जेसळ को, उमा को माँगने के लिये, जाळोर भेजा। उमा की सगाई गुजरात के राजकुमार रणधवल के साथ हो चुकी थी पर उमा की माता अपनी कन्या को उतनी दूर नहीं देना चाहती थी। उसने राजा से सलाह की कि विवाह का दिन निश्चित करके हम ठीक मौके पर गुजरात को समाचार भेजेंगे जिससे वहाँकी बरात समय पर नहीं पहुँच सकेगी। लग्न के समय यदि राजा पिंगळ यहाँ आबू-यात्रा के वहाने आ जाय तो हम लग्न टलता देखकर उमा का विवाह उसके साथ कर देंगे। फिर गुजरात की बरात आवेगी तो हम कह देंगे कि आप समय पर नहीं आए, हल्दी चढी हुई कन्या नहीं रह सकती थी अतः हमने उसका विवाह पूगळ के राजा के साथ, जो यात्रा करने के लिये आबू जा रहा था, कर दिया। सामतसो ने अपनी सम्मति दे दी और रानी ने सब बातें जेसळ की मारफत पिंगळ को कहला भेजीं। इसी के अनुसार कार्यवाही हुई और पिंगळ के साथ उमा का विवाह हो गया। उधर दूत गुजरात नरेश उदयचद के पास पहुँचा और उसने जाकर कहा कि मै मार्ग मे बीमार पड़ गया अतः ठीक समय पर नहीं पहुँच सका। उदयचद की धाक बड़ी भारी थी एव वह बड़ा प्रबल राजा था। उसने सोचा कि मेरे लड़के की माँग (वाग्दत्ता) को विवाहने का साहस और किसी राजा को नहीं हो सकता। उसने रणधवल को बरात के साथ रवाना कर दिया। रणधवल जाळोर पहुँचा तो उसे मालूम हुआ कि उमा का विवाह पिंगळ के साथ हो गया। उसने

सब हाल पिता को कहला भेजा और एक भारी सेना ने जाळोर को घेर लिया । सामतसी ने पिंगळ को पहले ही पूगळ भेज दिया था और उमा को वाट में भेजने के लिये कटा था । गुजरात की सेना चारों ओर उत्पात मचाने लगी । उधर पिंगळ के सेवक जेसळ ने बलों की एक जोड़ी को ऐसा साधा कि वह एक दिन में जाळोर जाकर लौट आये और एक रोज रात उमा को लेकर पूगळ लौट आया । उमा को हाथ में गई दख गुजरात की सेना चली गई । पिंगळ से उमा के मारवणी नाम की कन्या हुई । एक बार अकाल पड़ने पर पिंगळ सपरिवार पुष्कर जा पहुँचा ।

इसके बाद ढोला के जन्म की कथा इस प्रकार कही गई है । गजा नळ के कोई मंतान न थी । उसने पुष्कर यात्रा की मनीर्ता की जिसने उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम ढोला रखा । ढोला के तीन वर्ष का हो जाने पर राजा नळ सपरिवार पुष्कर यात्रा को गया । वहाँ नळ ने मारवणी को देखा । वह पिंगळ से मिली और ढोला के लिये मारवणी को माँगा । फिर दोनों का विवाह हो गया ।

मारवणी की अवस्था छोटी होने के कारण पिंगळ ने उस नळ के साथ नहीं भेजा और पूगळ ले आया । पीछे में पूगळ ने दूर जानकर और रास्ता खतरनाक समझकर नळ ने ढोला का दृसग विवाह माळवे के राजा की कन्या माळवणी से कर दिया । मारवणी के साथ विवाह होने की बात ढोला से छिपी रही । पर माळवणी को यह बात मालूम हो गई और उसने ऐसा प्रबंध कर लिया कि पूगळ का कोई आदमी नगर में न आने पावे ।

उधर मारवणी ने यौवन में पैर रखा । एक बार एक घोड़े का सौदागर पूगळ आया और पिंगळ के यहाँ ठहरा । मारवणी को देखकर और उसका परिचय पाकर उसने ढोला और माळवणी का सब हाल कह सुनाया । माळवणी के पड़्यत्र का भी हाल कहा । प्रियतम के समाचार सुनकर मारवणी विरहसंतप्त हो उठी । इसके बाद पपीही को कोसना और कुरजों से संदेश ले जाने की प्रार्थना है । राजा अपने पुरोहित भीमसेन को ढोला के पास भेजना चाहता है परंतु मारवणी माता के द्वारा दाढ़ियों को भेजने के लिये कहती है । मारवणी का मिखाया संदेश लेकर दाढ़ी नळवर जाते हैं । पहरेदार उनको साधारण याचक जानकर छोड़ देते हैं । वहाँ जाकर वे भाऊ भाट से, जो अब नळवर में था, मिलते हैं । भाऊ भाट मौका पाकर माळवणी की अनुपस्थिति में ढोला से उनकी भेट करवा देता

है। उनसे मारवणी का सदेशा सुनकर ढोला मारवणी के लिये आतुर हो उठता है। फिर ढाढियों को पुरस्कार के साथ विदा करता है।

यहाँ तक के कथा भाग में मुख्य अंतर निम्नलिखित बातों में है—

(१) रूपांतर नंबर २ आरंभ में एक लक्ष्मी प्रस्तावना है जिसमें पिंगळ और उमा के विवाह, मारवणी के जन्म और ढोला के जन्म की कथा है।

रूपांतर नंबर १ में यह नहीं है।

(२) रूपांतर नंबर १ में पिंगळ नळ के देश में आता है और वहाँ पिंगळ की रानी ढोला को देखकर रीझती है और मारवणी का विवाह ढोला के साथ हठपूर्वक करवा देती है।

रूपांतर नंबर २ में नळ और पिंगळ दोनों ही पुष्कर में एकत्र होते हैं। एक अपने पुत्र ढोला की जात देने के लिये आता है और दूसरा अकाल के कारण। इस रूपांतर में नळ पहले मारवणी को देखता है और ढोला के लिये उसे माँगता है। पिंगळ रानी से पूछकर संबंध करता है और रानी यद्यपि कन्या को इतनी दूर देने में सकोच करती है फिर भी स्वीकार कर लेती है।

(३) रूपांतर नंबर २ में ढोला और माळवणी के विवाह की कथा दी गई है।

रूपांतर न० १ में वह नहीं है, केवल आगे जाकर सौदागर के कथन द्वारा उसकी सूचना दी गई है।

(४) नंबर १ में मारवणी का विरह ढोला को स्वप्न में देखकर जागृत होता है और वह कुरजों से सदेशा ले जाने के लिये कहती है। फिर सौदागर आकर ढोला और माळवणी का हाल सुनाता है।

रूपांतर नंबर २ में सौदागर आकर ढोला का हाल कहता है। तब मारवणी का विरह जागृत होता है और वह कुरजों से सदेशा भेजना चाहती है।

(५) रूपांतर नंबर १ में ढाढियों को भेजने की सलाह रानी देती है। रूपांतर नंबर २ में मारवणी ढाढियों को भेजने के लिये पिता से कहलाती है।

(६) रूपांतर नंबर १ में ढाढी ढोला के महल के नीचे डेरा लेकर ठहरते हैं और रात में मारवणी का सदेशा गाते हैं। प्रातःकाल ढोला उन्हें बुला कर सब हाल पूछता है।

रूपांतर नंबर २ में टाढी पहले भाऊ भाट से मिलते हैं। वह उपयुक्त समय पर उन्हें ढोला के पास ले जाता है और वे माण्वणी का संदेश ढोला को सुनाते हैं।

(२)

रूपांतर नंबर १—ढोला मारवणी से मिलने के लिये आतुर हो उठता है। माण्वणी का भी उमे भय है। इस चिंतित अवस्था में माण्वणी उसे देखती है और चिंता का कारण पूछती है। पहले ढोला बहाने फरके टालता है पर अंत में बतला देता है। कारण सुनकर माण्वणी विरह की संभावना में वेसुध हो जाती है। होश में आने पर वह ढोला को पूगळ जाने से रोकती है। उसके प्रेम में ढोला ग्रीम भर के लिये रुक जाता है। वर्षा आने पर वह फिर जाने की अनुमति माँगता है। वह रोफनी है और ढोला दो मास के लिये और रुक जाता है। दशहरा आ पहुँचता है। माण्वणी फिर भी अनुमति नहीं देती। पर अब ढोला नहीं रुक सकता। अंत में माण्वणी ने ढोला से वचन ले लिया कि जन्म में जो जाऊँ तब जाना। अब ढोला एक तेज चलनेवाले ऊँट को तैयार करता है। माण्वणी ऊँट के पास जाकर उसे न जाने के लिये और लँगडा हो जाने के लिये प्रार्थना करती है जिसे ऊँट अंत में स्वीकार कर लेता है। पर ढोला को मालूम हो जाता है कि ऊँट वास्तव में लँगडा नहीं किंतु जान बूझकर लँगड़ाता है। अब माण्वणी के पास ढोला को रोकने का केवल यही उपाय रह जाता है कि वह सोचे नहीं। पंद्रह दिन तक वह बराबर जगती रहती है पर अंत में रात को थोड़ी डेर के लिये भूपत्नी आ जाती है। मौका पाकर ढोला चल देता है। ऊँट की बलबलाहट को सुनकर माण्वणी तुरग जाग पड़ती है और ढोला को गया देख खूब विलाप करती है। वह एक सुग्गे को ढोला के पीछे भेजती है कि वह उसके मरने का समाचार सुनाकर ढोला को लौटा लावे। सुग्गा प्रातःकाल ढोला के पास पहुँचता है और भूडा बहाना बनाकर कहता है कि माण्वणी मर गई सो आप तुरत लौटिए। पर ढोला उसके भूड को ताड़ लेता है और नहीं लौटता। सुग्गा यों ही लौट आता है।

रूपांतर नंबर २—में यह कथा इसी प्रकार है। केवल आरंभ में इतना विशेष है कि ढाढियों के पूगळ लौटकर पिगळ को सब समाचार सुनाने का वर्णन दिया गया है। नंबर १ में माण्वणी ढोला को लौटाने का उपाय भी बतलाती है कि ढोला को मेरे मरने की बात कहना। नंबर २ में वह केवल इतना ही कहती है कि किसी प्रकार ढोला को लौटा ला।

रूपांतर नं० १—ढोला आगे चलता है। तीसरे पहर वह आडावळा की घाटी को लॉघ जाता है। वहाँ ऊँट को पानी पिलाता है। फिर दिन थोड़ा रहा देखकर ऊँट को तेजी से चलाता है^१। मार्ग में ऊमरसूमरे का एक चारण मिलता है जो कहता है कि मारवणी तो बूढ़ी हो गई अब तू जाकर क्या करेगा ? ढोला दुःखी होकर सोच में पड़ जाता है कि इतने में बीसू नाम का एक चारण आ जाता है जो उसे सच्ची बात कहकर उसका सदेह दूर करता है। फिर ढोला के पूछने पर वह मारू के रूप की प्रशंसा करता है। ढोला प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार देता है और अपने आने का समाचार देकर पूगल भेज देता है। थोड़ा आराम करके फिर स्वयं चलता है। उधर उस दिन के पूर्व की रात को मारवणी स्वप्न में ढोला से मिलती है और प्रातःकाल उसका हाल सखियों को सुनाती है। ढोला के आने के पूर्व उसके बाएँ अंग फड़कने लगते हैं और इतने में बीसू आ जाता है। सब लोगो को बड़ा हर्ष होता है और इस समय ढोला पूगल पहुँचता है। ढोला मारवणी का मिलाप होता है। इसके बाद दोनों के मिलन और पारस्परिक विनोद का वर्णन है।

रूपांतर नंबर २ में भी यही कथा है पर कुछ फेरफार के साथ। सुग्गे के चले जाने पर ढोला आगे चलता है। चदेरी के पास उसे एक बनिया मिलता है जो ढोला से अपना एक पत्र बीस योजन दूर एक गाँव तक पहुँचा देने को कहता है। ढोला कहता है कि तू पत्र लिखेगा तब तक मैं ठहर नहीं सकता, इसलिये तू पीछे ऊँट पर बैठ जा और पत्र लिख दे, फिर मैं पहुँचा दूँगा। बनियाँ बैठकर पत्र लिखने लगा। पत्र समाप्त हुआ तब तक तो ऊँट उसी गाँव में पहुँच गया जहाँ वह बनिया पत्र भेजना चाहता था।

अब ढोला पुष्कर पहुँचा। वहाँ ऊँट को पानी पिलाया। सूखे मारवाड़ देश को देखकर ऊँट उसकी शिकायत करता है। ढोला उसे समझाता है कि यह मेरी ससुराल है, वहाँ तो करील और आक ही खाने को मिल सकते हैं। नरवर की नागरवेल और दाख-विजोरे वहाँ कहाँ ? अब ढोला आडावळा की घाटी पार करता है। इसके बाद उसे एक चारण मिलता है जो राजा

१. कुछ प्रतियों (जैसे—क, भ, न) में इसके पूर्व एक गडेरिण के मिलने की कथा भी है जो मूलपाठ में ली गई है।

पिंगळ मे नाराज था । वह कहता है कि मारवणी बूढ़ी हो गई, अब नाकर क्या करेगा ? ढोला दुःखी होना है । इतने में एक दूसरा चारण आता है जिसे मारवणी ने सामने भेजा था । वह कहता है कि यह चारण तो ऊमर का है जो मारवणी को अपनी न्नी बनाने के लिये प्रयत्न करता है ।

ढोला आगे चलता है । वहाँ पिंगळ का एक ब्राह्मण उसे मिलता है जो ढोला के सामने मारवणी के रूप की प्रशंसा करता है । चारण के प्रत्येक दूहे पर एक एक मोहर ढोला पुष्कारस्वरूप देकर आगे बढ़ता है । ऊँट थक जाता है । इस पर ढोला उसे तेज चलने को कहता है ।

उधर मारवणी रात को स्वप्न में ढोला से मिलती है । और माता से सब हाल कहती है । सध्या समय वह महलियों के साथ कुएँ पर जाती है । ढोला भी ऊँट को पानी पिलाने के लिये वहाँ पहुँचता है । वहाँ दोनों का मिलन होता है । मारवणी लौट जाती है और ढोला को लेने के लिये आदमी आते हैं । सत्कार के पश्चात् रात्रि में ढोला मारु का मिलन होता है ।

अंतर

(१) रूपांतर नवर २ में बनिये की कथा है जो रूपांतर नवर १ में नहीं है ।

(२) रूपांतर नवर १ में आडाबळा की घाटी पार करके ढोला ऊँट को पानी पिलाता और तेज चलने को कहता है फिर ऊमर का चारण और वीसू चारण मिलते हैं । रूपांतर नवर २ में ऊँट को पानी पिलाकर उसके बाद ढोला आडाबळा की घाटी को पार करता है । फिर ऊमर का चारण, मारवणी का चारण और पूगळ का ब्राह्मण क्रमशः मिलते हैं । फिर ढोला ऊँट को तेज चलने के लिये कहता है ।

(३) रूपांतर न० १ में मारवणी स्वप्न का हाल सखियों से कहती है । नवर २ में वह हाल माता से कहा गया है ।

(४) रूपांतर न० २ में कुएँ पर ढोला और मारवणी के मिलने का घृत्तात है जो रूपांतर न० १ में त्रिलकुल नहीं है ।

(५) रूपांतर न० १ में दपतिविनोद में पहेलियाँ दी गई हैं । नवर २ में ये नहीं हैं ।

(६) रूपांतर नवर २ की (ज) प्रति में एक अष्टयाम भी है । जो कुछ हेरफेर के साथ सौराष्ट्र की लोककथाओं में अब भी प्रसिद्ध है । लोक

में प्रसिद्ध होने के कारण वह वाद मे ढोला मारू मे भी जोड़ दिया गया होगा ।

(४)

रूपांतर नंबर १—ढोला पंद्रह दिन तक समुद्राल मे रहता है । फिर मारवणी को बिदा कराकर नरवर चलता है । दूसरे दिन रात्रि को एक खुले स्थान मे सब ठहरते हैं । रात को एक पीवणा साँप मारवणी को पी जाता है । ढोला मारवणी के साथ जल मरने को तैयार होता है पर एक योगी की मंत्रशक्ति से मारवणी जी उठती है । उधर ऊमरसूमरा मौका देख ही रहा था । जब उसने देखा कि ढोला मारवणी अकेले जा रहे है तो पीछा किया । मार्ग में उनको जा पकड़ा और बोला—ठाकुर, हम भी नरवर जा रहे हैं, साथ ही चलेंगे; जरा ठहरकर अमल पाणी (जलपान) कर लो । ढोला को विश्वासघात की कोई आशका नहीं थी । वह भी उतर पड़ा । ऊँट को पैर बाँधकर बिठा दिया गया और मारवणी उसके पास मुहरी (नकेल) पकडकर बैठ गई । ढोला और ऊमर आदि मिलकर शराब पीने लगे । मारवणी के पीहर की एक झूमणी ऊमर के साथ थी । उसे सब षड्यंत्र मालूम था । उसने गाने के बहाने मारवणी को सब बात कह दी और ऊँट को छड़ी से मारने के लिये कहा । ऊँट छड़ी से मारे जाते ही भागा । ढोला पकड़ने को दौड़ा तो मारवणी भी साथ पहुँच गई और उसने ढोला को ऊमर के षड्यंत्र का हाल कह सुनाया । दोनों तुरत ऊँट पर सवार हुए और भाग निकले । ऊँट का पैर खोल देने का ध्यान न रहा । उनको भागते देखकर ऊमर ने भी पीछे घोड़े दौड़ाए पर वह ऊँट को न पा सका । ढोला को मार्ग मे एक चारण मिला जिसने ऊँट के पैर के बंधन की ओर ध्यान दिलाया । ढोला ने चारण के द्वारा छुरी से बंधन कटवाया और आगे चला । दूसरे दिन प्रातःकाल ऊमर को वही चारण मिला और उससे सब हाल जानने पर ऊमर निराश होकर अपने देश को लौट गया । ढोला सकुशल घर लौट आया ।

कई प्रतियों की कथा यहीं समाप्त हो जाती है । पर कुछ में माळवणी की मारवाड़ की निंदा, तथा मारवणी की माळवा की निंदा और मारवाड़ की प्रशंसा के दूहे भी मिलते हैं ।

रूपांतर न० २ में भी कथा इसी प्रकार है ।

(१) उसमे ढोला के नरवर पहुँचने के पश्चात् पिंगळ के दहेज भेजने का भी वर्णन है ।

(२) कुछ प्रतियों में योगी योगिनी की जगह शिव पार्वती का उल्लेख है ।

(३) मानवाद की निंदा और प्रशंसा के दूहे इस रूपांतर में हैं ।

धुर संबंध या प्रस्तावना

रूपांतर नंबर २ में सौदागर के श्राने के ऊपर तरु की चो कथा है वह रूपांतर नंबर १ में नहीं पाई जाती । पर रूपांतर नंबर १ की दो प्रतियों में उसके कुछ दूहे—केवल दूहे, चौपाइयाँ नहीं—पाए जाते हैं । इनमें से पहली (क) प्रति है और दूसरी (भ) प्रति ।

(क) प्रति में मारवर्णी की उत्पत्ति और पूगळ में अमल पढ़ने तरु की कथा के ३३ दूहे हैं । इसके बाद गाहा में अमली कथा आरंभ होती है । ये दूहे उस प्रति में सर्वथा अस्थानस्थित (out-of place) हैं । फिर रूपांतर नंबर २ की भाँति उनके बीच बीच में चौपाइयाँ न होने से उनका कथासूत्र बराबर नहीं मिलता ।

(भ) प्रति में भी असली कथा की गाहा के पहले ये प्रस्तावना के दूहे हैं । परंतु इन प्रति के दूहे अधूरे नहीं, पूरे हैं जिससे कथासूत्र बराबर मिलता जाता है । रूपांतर नंबर २ में बीच बीच में चौपाइयाँ से कथासूत्र मिलाया गया है पर इसमें चौपाइयाँ की आवश्यकता नहीं होती । इन दूहों के अंत में लिखा है—इति धुर-संबंध । और इसके बाद अमली कथा गाहा में आरंभ की गई है । इसमें भी यह प्रस्तावना या धुर-संबंध अस्थानस्थित जान पड़ता है । मूल कथा के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती ।

इस धुरसंबंध में कथा के पिगळ आदि पात्रों का पूर्वपरिचय दिया गया है । अवश्य ही यह प्रस्तावना भाग आरंभिक मूल कथा का अंग न था । यह बाद में जोड़ा गया है और जोड़नेवाले का उद्देश्य नायक और नायिका के माता-पिता का परिचय देने के साथ साथ उनकी उत्पत्ति का हाल दे देने का था । यह प्रस्तावना कुशललाम के समय में अवश्य पुरानी है । कुशललाम को इसके कुछ ही, बहुत थोड़े दूहे मिले । (क) प्रति में भी वही दूहे हैं जो कुशललाम में हैं । (भ) ही एक ऐसी प्रति है जिसमें यह पूरी प्रस्तावना दूहों में है । परंतु एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से प्रस्तावना के बीच के कुछ दूहे अप्राप्य हो गए हैं ।

(न) प्रति में भी पूरी प्रस्तावना दूहों में है पर यह प्रति बहुत भ्रष्ट है और विश्वसनीय नहीं है । इसकी विचित्रता यह है कि कथा इसकी रूपांतर नंबर

२ के अनुसार है पर है यह रूपांतर नंबर १ की भॉति केवल दूहों में । रूपांतर नंबर १ की भॉति यह गाहा से आरभ नहीं होती । आरभ मे न केवल दूहों मे प्रस्तावना है और उसके आगे की कथा रूपांतर नंबर २ की भॉति चलती है । इसकी प्रस्तावना आशय मे (भू) की प्रस्तावना से मिलती है पर इसमें दूहों का रूप बहुत कुछ विकृत हो गया है । नए दूहे भी बहुत से हैं ।

इस प्रस्तावना के पात्र जाळोरपति देवडा चाचिगदेव और देवडा सामतसी, गुजरात नरेश उदयचंद या उदयादित्य, उसका पुत्र रणधवल, पूगळ का राजा पिंगळ, उसकी स्त्री और सामंतसी की कन्या उमा आदि है । इनमे पिंगळ और उमा मूल कथा मे भी आते हैं । देवडा सामतसी जाळोर का राजा था और उसके शिलालेख सवत् १३३६ से १३५४ तक के मिलते हैं । चाचिगदेव उसका पिता था । उसने सवत् १३१६ से लेकर १३३४ तक तो निश्चित रूप से जाळोर में राज्य किया । गुजरात के राजा चावड़ा उदयचंद और रणधवल का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता । गुजरात में चावड़ों का राज्य सवत् ८२१ से १०१७ तक रहा था । इस पिछले सवत् के आसपास सोलकियों ने उनका उच्छेद कर डाला । उधर कछवाहा ढोला का समय सवत् १००० के पूर्व आता है । पूगळ मे पॅवारों का राज्य १३०० के पहले ही नष्ट हो चुका था अतः पूगळ का परमार राजा पिंगळ सामतसिंह का समकालीन नहीं हो सकता । इस प्रकार इस प्रस्तावना की इतिहाससंबंधी बातें इतिहास से मेल नहीं खातीं । इस प्रस्तावना का निर्माण सोलहवीं शताब्दी मे कहीं हुआ है ऐसी संभावना जान पड़ती है ।

(३) ऐतिहासिक विवेचन

काव्य की कथा का मूल आधार ऐतिहासिक है । राजस्थान के प्राचीन इतिहास की पूरी पूरी खोज अभी तक नहीं हुई अतः यह कहना असंभव सा है कि कथा में ऐतिहासिकता कितनी है । नळ और ढोला ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और कछवाहा राजपूतों की ख्यातों में उनके उल्लेख मिलते हैं । ढोला का विवाह मारवणी के साथ हुआ था इसका उल्लेख भी ऐतिहासिक ग्रंथों एवं लोककथाओं मे यत्र तत्र मिलता है ।

इस काव्य मे ढोला को नरवर के राजा नळ का पुत्र बताया गया है । उसका दूसरा नाम साल्हकुमार कहा गया है । वह किस वंश का था इस
ढो० मा० दू० ३ (११००-६२)

विषय में कहीं कुछ नहीं कहा गया है। कुछ उत्तरकालीन प्रतियों के अंत में एक दूहा मिलता है—

‘धण भटीयाणी मारवी, प्रिय ढोलउ चहुग्राण ।

जदकी जनमी मारवी तदकउ पदवु कुराण’ ।

इसका निम्नलिखित पाठांतर भी मिलता है—

‘मारू ढोलो जनमिया, त्याका ए सहनाण ।

धन भटियाणी मारुई, प्रिय ढोलो चहुग्राण’ ॥

इससे ढोला का चौहान और मारवणी का भाटी होना सिद्ध होना है पर समस्त प्राचीन प्रतियों के अनुसार मारवणी परमार वंश की थी। इस प्रकार ढोला का चौहान होना भी सभ्य नहीं क्योंकि नरवर में चौहानों का राज्य कभी नहीं हुआ और न चौहान वंश में नळ और ढोला नाम के राजाओं के होने का ही कहीं उल्लेख मिलता है। उक्त दोहों का एक दूसरा पाठांतर भी एकाध प्रति में मिलता है जो इस प्रकार है—

‘अये ज चोक पुराविया परणी पटे पुराण ।

धण भटियाणी मारवणि, ढोलो कूरम राण’ ॥

इसके अनुसार ढोला कूर्म या कछवाहा सिद्ध होता है जो ठीक है। पर इसमें मारवणी भटियाणी अर्थात् भाटी वंश की ही कही गई है जो ठीक नहीं। बात यह है कि यह दोहा बहुत पीछे का बना हुआ है। उस समय लोगों को ढोला और मारवणी के वंशों का ठीक ठीक ज्ञान न था। उस समय पूरा में भाटियों का राज्य हो गया था अतः सवने मारवणी को भी भाटी वंश की मान लिया।

कछवाहा वंश की ख्यातों में नळ और ढोला का स्पष्ट वृत्तांत मिलता है^१ और इस ढोला को मारवणी का पति कहा गया है अतः इसमें तो कोई संदेह नहीं रह जाता कि वह कछवाहा राजपूत था। मारवणी के विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे।

ढोला कब हुआ इसका निश्चित पता इतिहास से नहीं चलता। कछवाहों का राज्य पहले नरवर में था जो राजा नळ का बसाया हुआ माना जाता है। पीछे स० १०३४ से कुछ पूर्व उन्होंने ग्वालियर को अपने अधिकार में करके उसे अपनी राजधानी बनाया^२। स० ११६० तक उनका राज्य

१ टाड राजस्थान, ओम्नाजी द्वारा संपादित, ओम्नाजी का टिप्पण नं० ५६, पृष्ठ ३७१।

२ वही, पृष्ठ ३७१।

ग्वालियर में रहा। नरवर में भी उनकी शाखा राज्य करती रही जिसने स० ११७७ तक वहाँ निश्चित रूप से राज्य किया^१। हुमायूँ के शासनकाल में नरवर फिर कछवाहों को मिल गया था^२।

कछवाहों के जो शिलालेख मिले हैं उनमें नळ और ढोला के नाम नहीं मिलते। कछवाहों की ख्यातों में लिखा है कि कछवाहा वंश के राजा नळ ने नरवर का किला बनवाया, जिसका पुत्र ढोला और ढोला का पुत्र लक्ष्मण हुआ तथा लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामा ने ग्वालियर का किला बनवाया। परंतु यह पिछला कथन विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि ग्वालियर का किला वज्रदामा से पूर्व ही बना हुआ था और पड़िहारों के अधिकार में था। वज्रदामा ने इस किले को पड़िहारों से जीत लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया^३।

मुँहणोत नैणसी की ख्यात राजस्थान के इतिहास का एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। उसमें ढोला को नळवर के संस्थापक नळ का बेटा और मारवणी का पति बताया है। साथ ही यह भी लिखा है कि ग्वालियर को ढोला ने बसाया था। उसमें भी लक्ष्मण को ढोला का बेटा और वज्रदामा को ढोला का पौत्र बताया गया है^४।

शिलालेखों में कछवाहों की जो वशावलियों मिलती हैं वे लक्ष्मण से आरंभ होती हैं। वज्रदामा का समय सवत् १०३४ के लगभग है क्योंकि इस सवत् का उसका एक लेख मिला है। अतः नळ और ढोला को उसका परदादा और दादा मानकर उनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित कर सकते हैं। इस समय के लगभग पूगळ और माळवा में भी परमारों के राज्य स्थापित हो चुके थे।

कई लोग जयपुर राज्य के संस्थापक दूलहराय को ढोला मानते हैं। टाड ने अपने सुप्रसिद्ध राजस्थान के इतिहास में ऐसा ही लिखा है^५। उसने तो दूलहराय का नाम ही ढोलाराय लिखा है। उसके अनुसार सवत् ३५१ के

१ टाड राजस्थान, ओम्हाजी द्वारा संपादित, पृष्ठ ३७५।

२ वही, पृष्ठ ३७६।

३ वही, पृष्ठ ३७१।

४ डा० टेसीटरी का डिस्क्रिप्टिव केटेलग ऑफ बार्डिक एंड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स, सेक्शन १, पार्ट १, पृष्ठ २३।

५ टाड-कृत एनाल्स एंड एंटिकिटीज् ऑव् राजस्थान, विलियम क्रुक द्वारा संपादित, भाग ३, पृष्ठ १३२८-१३३१।

लगभग कछवाहा वंश में नळ नाम का राजा हुआ जिसने नैपव या नखर का राज्य कायम किया। उसकी तृतीमर्था पीढी में मोटदेव हुआ जिसका पुत्र होलागव था। सोढदेव की मृत्यु के समय होलागव बालक था अतः उसका राज्य उसके चाचा ने छीन लिया। होला की माता बालक को लेकर पश्चिम की ओर चली गई और वहाँ उसने वर्तमान जयपुर से कुछ दूर गंगोवाँ के भीरों के वहाँ आश्रय लिया। बड़े होने पर होला ने अपने आश्रयदाता को सहायकों सहित धोखे से मार डाला और स्वयं राजा बन गया। इस प्रकार सवत् १०२३ में उसने वर्तमान जयपुर राज्य की नींव डाली। कुछ समय बाद होला ने अजमेर की राजकुमारी मारवणी से विवाह किया। एक समय जब होला देवी के दर्शन करके लौट रहा था तब भीरों ने उस पर हमला किया और सहायकों समेत मार डाला। मारवणी गर्भवती थी। वह किसी प्रकार बच निकली। उसके काभिल नामक पुत्र हुआ जिसने अपना राज्य फिर से जीत लिया।

इस वृत्तांत में ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम हैं। जयपुर राज्य का स्थापक दूलहराय सवत् १०२३ के बहुत बाद हुआ है। वज्रदामा के पुत्र मगळराज का छोटा बेटा सुमित्र था। उसकी चौथी पीढी में ईशासिंह या ईश्वरसिंह हुआ जो पहलेपहल राजपूताने की ओर आया था। उसका पुत्र सोढसिंह का पुत्र दूलहराय था। कछवाहों की राजधानी राजपूताने में पहले चौसा में हुई, फिर अजमेर में। महाराज सवाई जयसिंह (१७४५-१८००) के समय में जयपुर उनकी राजधानी हुई। वज्रदामा का समय सवत् १०३४ के आसपास और उसके बड़े पौत्र कीर्तिवर्मा का समय सवत् १०७८ के आसपास शिलालेखों और मुसलमानी तबारीखों से सिद्ध होता है। अतः कीर्तिवर्मा के अनुज सुमित्र का समय भी सवत् १०७८ के लगभग होना चाहिए। दूलहराय उसका छटा वंशधर था अतः उसका समय सवत् १२०० के लगभग माना जा सकता है (न कि १०२३ जैसा कि टाड ने लिखा है)। मारवणी को अजमेर की राजकुमारी बताना भी ठीक नहीं क्योंकि अन्यान्य ख्यातों तथा लोककथाओं से इसकी पुष्टि नहीं होती।

हमारी संमति में जयपुर के दूलहराय के साथ इस कथा के नायक का कोई संबंध नहीं है क्योंकि यह दूलहराय न तो नखर का था और न उसके पिता का नाम नळ था। अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथा

का नायक ढोला, वज्रदामा के पिता लक्ष्मण का पिता था और उसका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भाग था ।

नळ—यह कछुवाहा वंश का राजा था और नरवर या नळवर, जो नळपुर का अपभ्रंश रूप है, इसी का बसाया माना जाता है । जैसा कि ऊपर कह आए हैं, शिलालेखों में इसका नाम नहीं मिलता पर कछुवाहो की ख्यातों में इसे लक्ष्मण के पिता ढोला का पिता और नरवर का सस्थापक कहा गया है । इसका समय सवत् ६५० और १००० के बीच में हो सकता है ।

टॉड ने लिखा है कि इसके पहले कछुवाहो का राज्य पूर्व में था और रोहतासगढ़ उनकी राजधानी थी । नळ रोहतासगढ़ को छोड़कर पश्चिम में चला आया और नरवर को बसाकर वहाँ उसने नया राज्य कायम किया । नरवर की सस्थापना का समय टॉड ने सवत् ३५१ दिया है जो सर्वथा अशुद्ध है । इस सवत् के लगभग तो नरवर के आसपास के भूखंड में गुर्तों का राज्य था ।

कई लोग इस नळ का सबंध सुप्रसिद्ध पौराणिक राजा और दमयती के पति नल से मिलाते हैं और नरवर को उसी का बसाया हुआ मानते हैं । किसी किसी लोककथा में तो ढोला को भी इसी नळ और दमयती का पुत्र माना गया है । नरवर या नळपुर इस राजा का बसाया हुआ हो सकता है पर हमारी कथा के नळ का और इस नल का कोई सबंध नहीं ।

मारवणी—इस काव्य में यह पूगळ के राजा पिंगल की कन्या कही गई है पर उसके वंश का उल्लेख नहीं हुआ । कुशललाभ ने इसे परमार वंश की बताया है । (ग) प्रति में एक दूहा आया है जो इस प्रकार है—

मा ऊमादे देवणी, नानो सामंतसीह ।

पिंगळरा पमाररी, कुमरी मारवणीह ॥

धुरसबंध का अधिकांश भाग कुशललाभ से पुराना है । उसमें भी पिंगळ को परमार ही बताया है । लोककथाओं में से वह परमार वंश का हो सिद्ध होता है । ढोला का समय हमने ऊपर सवत् १००० के लगभग सिद्ध किया है । उस समय पूगळ में परमारों का ही राज्य था । परंतु ऊपर ढोला के विषय में लिखते हुए हमने जा दोहे उद्धृत किए हैं उनमें मारवणी को भटियाणी या भाटी वंश की बताया गया है । भाटियों का राज्य पूगळ में बहुत बाद में हुआ है । अतः मारवणी को किसी भी हालत में भाटी नहीं माना जा सकता ।

पञ्चात्र में भी मारवणी का एक गीत प्रचलित है जिसमें उमें सिंहलद्वीप में स्थित पिगळमठ के राजा की कन्या बताया गया है। सिंहलद्वीप लोक-कथाओं का एक अत्यंत प्रिय स्थान है। प्रत्येक प्रेमकथा का संबंध सिंहल द्वीप के साथ जोड़ दिया जाता है। (मिलाइए—जायमी का पञ्चात्रत जहाँ पञ्चावती सिंहलद्वीप की राजकुमारी मानी गई है)।

पिगळ—यह मारवणी का पिता और पृगळ का राजा था। कथा में इसके वंश का निर्देश नहीं है पर मारवणी के प्रसंग में उल्लिखित कारणों से यह परमार ही सिद्ध होता है। पहले समन्त पश्चिमी राजस्थान में परमारों का एक विस्तृत साम्राज्य था जिसका मुख्य स्थान आबू के पास चंद्रावती नामक प्राचीन नगर था। आगे चलकर इस राज्य की अनेक शाखाएँ हो गईं जिनमें पृगळ भी एक था। पृगळ के इतिहास की खोज अभी विलुप्त नहीं हुई है। अतः निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वहाँ पिगळ नाम का कोई राजा हुआ या नहीं, और यदि हुआ तो कब हुआ। नैणमी ने परमार वंशों की जो वंशावलियाँ दी हैं उसमें पृगळ की वंशावली नहीं है और न पिगळ का नाम कहीं आया है।

ऊमा देवड़ी—काव्य के ७६ और ८० नवर के दूहों में मारवणी की माता का नाम ऊमा देवड़ी बताया गया है पर ये दोनों दूहे हमें बहुत पुराने नहीं जान पड़ते। रूपांतर नवर १ (जो पुराना है) की किसी भी प्रति में ये दूहे उपलब्ध नहीं होते। रूपांतर नवर २ उतना पुराना नहीं है। इस रूपांतर के साथ एक धुर संबंध पाया जाता है जो आरंभ में मूल कथा का भाग नहीं था। इस धुरसंबंध में ऊमादे और पिगळ के विवाह की कथा वर्णित की गई है। उसमें ऊमादे को आबू के देवड़ा शाखा के चौहानवंशीय राजा सामतसिंह की कन्या बताया गया है। (ग) प्रति के एक दूहे में भी, जो ऊपर उद्धृत किया गया है, यही बात कही गई है। सामतसिंह का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का मध्यभाग है। ऊपर के ७६ और ८० नवर के दूहों में ऊमा नाम इसी धुरसंबंध से लिया गया जान पड़ता है।

धुरसंबंध की कथा अत्यंत ही वाद में जोड़ी हुई है अतः हमारी संमति में मारवणी की माता का नाम ऊमादे नहीं हो सकता। यदि हो तो वह देवड़ा सामंतसी की कन्या नहीं हो सकती। सामतसिंह के समय में पृगळ में परमारों का राज्य होना भी संभव नहीं जान पड़ता (और धुर-

संबंध में पिंगळ को परमार बताया है जिससे उसकी अनैतिहासिकता स्वयं सिद्ध होती है) ।

माळवणी—इस नाम का अर्थ माळवा की राजकुमारी है । माळवणी माळवा के राजा की कन्या बताई गई है । (देखिए दूहा न० ६४) । पर उसका नाम नहीं दिया गया है । कुशललाम ने उस राजा का नाम भीम लिखा है । उसके वंश का उल्लेख उसने भी नहीं किया है । माळवा में उस समय परमारों का राज्य था पर भीम नाम का कोई राजा वहाँ नहीं हुआ । वाक्पतिराज, वैरिसिंह द्वितीय और श्रीहर्ष ने उस समय के आसपास राज्य किया था । यह भी संभव है कि माळवणी राजा की ही कन्या न होकर राजा के किसी सवधी या सामत की कन्या हो ।

ऊमरसूमरा—सूमरो को अरबी तवारीखों में अरबी जाति के मुसलमान लिखा है पर हिंदू कहते हैं कि वे पहले भाटी थे और जब सिंध में मुसलमानों का राज्य हुआ तो अन्य जातियों के साथ वे भी मुसलमान बन गए । सवत् २११० के लगभग उन्होंने ठट्टे से मुसलमान हाकिम को निकाल कर वहाँ अपना राज्य कायम किया । ऊमर नाम के दो राजा इस वंश में हुए । एक का समय सं० १२०० के लगभग और दूसरे का स० १३०० के लगभग आता है । दोनों का ही समय ढोला के समय से मेल नहीं खाता । इसलिये या तो ऊमरवाला प्रसंग बाद में जोड़ा गया है या यह ऊमर कोई साधारण सरदार था, राजा नहीं ।

परमारों में भी ऊमरसूमरा नाम की दो शाखाएँ पाई जाती हैं । कुछ विद्वानों का कथन है कि परमारों की ऊमर शाखा से ये शाखाएँ निकली हैं । ऊमर का परमार होना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि राजपूतों के अनुसार परमार का विवाह परमार के साथ नहीं हो सकता । अतः ऊमर की मारवणी को अपनी स्त्री बनाने की चेष्टा उस हालत में संभव नहीं हो सकती ।

ओभाजी अपने पत्र में लिखते हैं कि सूमरा सिंध में थे परंतु किस वंश के थे यह ठीक ठीक निश्चित नहीं हो सका ।

धुरसंबंध या उपोद्घात के ऐतिहासिक व्यक्ति

सामंतसी देवड़ा—देवड़ा चौहानों की एक शाखा है । ये देवड़ा क्यों और कब कहलाए इस विषय में कुछ निश्चित पता नहीं चलता । ख्यातों में लिखा है कि जाळोर के एक सोनगरे राजा के यहाँ देवी स्त्री होकर रही थी

जिससे उसकी सतान देवड़ा कहलाई । कोई यह कहते हैं कि वंश के किसी राजा का नाम, या दूसरा नाम, देवराज था जिससे यह नाम पड़ा ।

सामतसी जाळोर का राजा था । जाळोर पहले परमारों के हाथ में था । सवत् १२१८ के कुछ पूर्व नाटोल के चौहान राजा आलदण के तीसरे बेटे कीनू ने उसे परमारों से छीन लिया । जाळोर का दूसरा नाम सुवर्णगिरि था जिसमें वहाँ के शासक चौहान मोनगर चौहान कहलाने लगे । कीनू के वंश में चाचिगदेव हुआ जिसका समय स० १३१६ में १३०४ के लगभग है । चाचिगदेव का पुत्र सामतसी हुआ जिसके शिलालेख १३३६ में १३५४ तक के मिले हैं । उसके पुत्र कान्दड़देव ने अलाउद्दीन खिलजी ने जाळोर छीन लिया ।

आवू पर भी पहिले परमारों का अधिकार था । सवत् १३६० के लगभग कीतू के पुत्र समरसिंह के दूसरे पुत्र के वंशज गजड़ के बेटे गव तुत्रा ने उसे परमारों से छीन लिया । सामतसी का आवू पर अधिकार होने की जो बात घुरसत्रय में कही गई है वह ठीक नहीं जान पड़ती ।

उद्वैचंद (या उदयादित्य) और रणधवल—घुरसत्रय में इन्हें चावडा-वशीय बताया गया है और उद्वैचंद को गुजरात का अधीश्वर कहा गया है । चावडों का राज्य गुजरात में ८१० से १०१७ तक रहा । उनमें उदयादित्य या उद्वैचंद और रणधवल नाम के कोई राजा नहीं हुए । अन्यत्र भी उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता । लोकरूपाओं में माळवा के परमारों में उद्वैचंद या उदवादीत का और उसके कुमार रणधवल का नाम आता है । उदयादीत का समय इतिहास के अनुसार स० ६१४० के आसपास है । वह समय न तो सामतसी के समय से मेल खाता है और न टोला के समय से ।

इस घुरसत्रय की सभी बातें इतिहास के विरुद्ध मालूम पड़ती हैं, जिससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह आरंभ में मूलकथा का भाग न था पर बहुत बाद में जोड़ा गया था जब कि लोग मूलकथा की इतिहाससंबंधी बातें सर्वथा भूल गए थे ।

(४) कवि या लेखक

किसी ग्रंथ को हाथ में लेते समय सबसे पहले यह प्रश्न पाठक के मन में उपस्थित होता है कि इसका निर्माता कौन है । लेखक की जीवनी तथा उसकी परिस्थिति के संबंध में जानकारी प्राप्त करना और उसके व्यक्तित्व को

उसकी कृति में प्रतिफलित देखकर आनन्दलाम करने की हममें स्वाभाविक रुचि होती है। काव्य जीवन की आलोचना है और इस काव्यमयी आलोचना के व्यापक क्षेत्र में कवि न केवल वाह्य जीवन को ही सीमाबद्ध करता है वरन् कवि का आंतरिक जीवन भी इसी आलोचना के अंतर्गत आ जाता है। परंतु लोकगीत और इतर साहित्यिक रचनाओं में बड़ा अंतर होता है। इतर रचनाओं के लिये साहित्यनिर्माता के लिये साहित्यकला में कुशल होना आवश्यक होता है परंतु लोकगीत एक ऐसा प्राचीन काव्य है कि जिसका निर्माता यदि कोई हो सकता है तो देशविशेष की प्राचीनकालीन परिस्थिति और साधारण जनता का सामूहिक रागात्मक अभिरुचि ही हो सकती है। यद्यपि रीति और साहित्यशास्त्र के बहाव में सदियों तक वह चुकने के बाद आज हमारी कल्पना काव्योत्पत्ति के इस प्रकार को सभाव्य और युक्तिसंगत समझने में असमर्थ है, परंतु यदि हम प्राचीन समय के मौखिक परंपरागत साहित्य के प्रवाह और परिस्थिति को ध्यानपूर्वक देखें तो यह बात सहज ही समझ में आ सकेगी। इन सिद्धांतों के अनुसार ढोलामारु की प्रेमगाथा को किसी व्यक्तिविशेष कवि की कृति न मानकर भी हमको यह कल्पना करने में कठिनाई नहीं होती कि यह काव्य मौखिक परंपरा के प्राचीन काव्ययुग की एक विशेष कृति है और उभय है कि तत्कालीन जनता की साधारण अभिरुचि को ध्यान में रखकर उससे प्रेरित होकर किसी प्रतिभा-संपन्न कवि ने जनता के प्रीत्यर्थ उसी के मनोभावों को वर्तमान काव्यरूप में बद्धकर उसके समन्वय उपस्थित कर दिया हो और जनता ने बड़ी प्रसन्नता से इसे अपनी ही सामूहिक कृति मानकर कठस्थ किया हो। ऐसी दशा में व्यक्तिविशेष कवि होने पर भी उसके व्यक्तित्व का सामूहिक अभिरुचि के प्रबल प्रवाह में लुप्तप्राय हो जाना संभव है। अतएव हमारा अनुमान है कि व्यक्तिविशेष का इसके बनाने में कुशल हाथ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हुए भी सामूहिक भावनाओं की एकता और सहानुभूति एकत्रित होने के कारण कवि का व्यक्तित्व समूह में लुप्त हो गया है और अतः में मौखिक परंपरा से चला आता हुआ यह काव्य हमको किसी व्यक्ति-विशेष कवि की कृति के रूप में नहीं मिला वलिक जनता के काव्य के रूप में उपलब्ध हुआ है।

रूपांतर नंबर २ में जो धुरसंबंध या प्रस्तावना मिलती है उसके चतुर्थ छंद में लिखा है—

गाथा गूढा गीत गुण कवित कथा कल्लोळ^१ ।

चतुर तथा चित रचवण कवियद्द कवि कल्लोळ^२ ॥

इस दूहे के आधार पर कल्पना की जा सकती है, जैसा एकाध महानुभाव ने किया भी है, कि इस काव्य का निर्माता कोई कल्लोल नाम का कवि होगा। ऐसा होना श्रमभव नहीं है पर फिर भी हम वर्तमान स्थिति में कल्लोल को इसका निर्माता नहीं मान सकते। पहले तो, बुरसबंधवाला भाग आरंभ में मूलकथा का भाग नहीं था और बाद में जोड़ा हुआ है। दूहोवाले रूपांतरों की प्रतियों में वह प्रायः मिलता भी नहीं। अतः उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती। दूसरे, अब तक की हुई खोज से कल्लोल नाम के किसी कवि का पता नहीं चलता। यह नाम किसी व्यक्ति का होना अधिक संभव भी नहीं जान पड़ता। अतः जब तक इस विषय में और अधिक बातें न मालूम हो जायें तब तक 'ढाला मारुरा दूहा' इस लोकगीत के रचयिता के नाम को हम अधकार में रहने देना ही उचित समझते हैं। उक्त दूहे में कल्लोल का सीधा सादा अर्थ आमोद-प्रमोदपूर्ण, अर्थात् उमग के साथ कही हुई, मनोरंजक रचना लेना ही ठीक जान पड़ता है।

(५) काव्य की सचिस कथा

किसी समय पूगळ में पिंगल और नरवर में नळ नामक राजा राज्य करते थे। पिंगळ के मारवणी नाम की एक कन्या थी और नळ के ढोला या साल्ह-कुमार नाम का एक पुत्र था। एकवार पूगळ देश में अकाल पड़ा तो पिंगल सपरिवार नळ के देश में चला गया, जहाँ नळ ने उसे बड़े आदर के साथ ठहराया। ढोला को देखकर पिंगळ की रानी रीझ गई और उसने राजा पर जोर डालकर अपनी कन्या मारवणी का विवाह ढोला के साथ करवा दिया। उस समय ढोला की अवस्था तीन वर्ष की और मारवणी की डेढ़ वर्ष की थी। छोटी अवस्था होने के कारण पिंगळ ने मारवणी को ससुराल में नहीं रखा और पूगळ लौटते समय अपने ही साथ पूगळ ले आया। कई वर्ष बीत गए। उधर राजा नळ ने पूगळ को दूर जानकर और रास्ता भयपूर्ण समझकर ढोला का दूसरा विवाह माळवा की राजकुमारी माळवणी के साथ

१. पाठांतर—उकति कथा, कउतिग कथा, कलोळ, किल्लोळ, उल्लोळ ।

२. किल्लोळ ।

कर दिया और उसके पूर्व विवाह की बात उससे छिपा रखी । ढोला और माळवणी प्रेमपूर्वक बड़े आनंद से रहने लगे ।

इधर मारवणी बड़ी हुई तो उसके पिता पिंगळ ने ढोला को बुलाने के लिये कई दूत भेजे, परंतु माळवणी ने सौतियाडाहवश पूगळ से आनेवाले रास्ते पर ऐसा प्रबंध कर रखा था कि जिससे दूत ढोला के पास सदेश लेकर पहुँचने से पहले ही मार डाले जाते थे । मारवणी अब युवती हो गई । एक दिन सोती हुई उसने स्वप्न में ढोला को देखा । उसकी विरहपीड़ा जागरित हो उठी । उसी समय नरवर की ओर से घोड़ों का एक सौदागर पूगळ में आया । उसने ढोला के दूसरे विवाह की बात पिंगळ से कही । राजा पिंगळ ने ढोला को बुलवाने के लिये अपने पुरोहित को भेजना चाहा पर रानी के कहने से ढाढ़ियों को इस कार्य के लिये चुना । मारवणी ने भी अपना सदेश ढाढ़ियों को कह दिया ।

ढाढ़ियों ने अपने गान द्वारा माळवणी के आदमियों (पहरेदारों) को प्रसन्न कर लिया और उन्होंने उन्हें निष्पाप याचक समझकर जाने दिया । ढोला के महल के नीचे डेरा डालकर ढाढ़ियों ने रातभर मॉड राग के कर्ण स्वर में मारवणी का प्रेमसदेश गाया जिसको ढोला ने सुना । गान को सुनकर ढोला व्याकुल हो उठा और प्रातःकाल होते ही उसने उन्हें बुला भेजा और सब हाल मालूम करके यथायोग्य उत्तर और इनाम देकर विदा किया । ढोला के चित्त में उत्कंठा और व्यग्रता बढ़ गई । माळवणी ने चतुरतापूर्वक पति के दिल की बात जान ली । ढोला ने मारवणी को लिजा लाने की इच्छा प्रकट की, परंतु माळवणी ने अनुनय-विनय करके ग्रीष्म और वर्षाभर ढोला को रोक रखा । अतः शरद् ऋतु की एक आधी रात्रि को माळवणी को सोती हुई छोड़कर ढोला चुपके से एक तेज चालवाले ऊँट पर सवार होकर पूगळ की ओर चल पड़ा । प्रस्थान करते समय ऊँट की बलबलाहट को सुनकर माळवणी जागी और ढोला को न पाकर दुखी हुई । पीछे से उसने अपने तोते को समझाकर पति को लौटाने के लिये भेजा । तोते ने चदेरी और बूंदी के बीच में एक तालाब पर ढोला को दँतुवन करते हुए पाया और कहा कि उसके विरह में माळवणी मर गई है । ढोला समझ गया और उसने उत्तर में तोते से कहा कि तू जाकर यथाविधि उसकी अत्येष्टि कर दे । तोता लौटा । माळवणी निराश हो गई । ढोला आगे चला । तीसरे पहर उसने आडावळा पहाड़ को पारकर लिया । मार्ग में ढोला को ऊमरसूमरा का एक चारण मिला, जो ऊमर की

और से मारवणी के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव लेकर पिंगळ के पास गया था, परंतु हताश होकर लौटा आ रहा था। उसने दर्प्यावश ढोला से कहा कि मारवणी तो अब बुढ़िया हो गई है, तू जाकर क्या करेगा ? यह सुनकर ढोला को चिंता और विरक्ति होने लगी। परंतु थोड़ी दूर आगे जाने पर वीमू नाम का दूसरा चारण मिला जिसने मारवणी का सच्चा सच्चा हाल बनाकर ढोला की चिंता मिटाई।

अब ढोला पूंगळ पहुँच गया। ससुराल में बड़ा स्वागत हुआ। बधाइयाँ हुईं। पिंगळ ने खूब आनंदोत्सव मनाए। मारवणी के दर्प का पार न रहा। जिस प्रकार मूखी हुईं बल्लरी समय पर वर्षाजल पा जाने से पुनः लहलहा उठती है, उसी तरह मारवणी भी पुनर्जीवित हो उठी। पंद्रह दिन आनंद भोगकर—बहुत सा दहेज, धन, दास दासी लेकर—मारवणी, सहित ढोला नरवर को विदा हुआ। मार्ग में एक विश्रामस्थल पर सोती हुईं मारवणी को पीवण्णे सॉप (राजस्थान के एक जहरीले सॉप) ने पी लिया। सवेरे जागने पर ढोला ने मारवणी को मरी पाया। वह विलाप करने लगा और चिंता बनाकर साथ चलने को उद्यत हुआ। जिस समय चिंताप्रवेश की तैयारी हो रही थी, उस समय एक योगी और योगिन इस मार्ग पर आ निकले। योगिनी के अनुरोध से योगी ने मारवणी को अभिमंत्रित जल द्वारा जीवित कर दिया। ढोला प्रसन्न हुआ और आगे चला।

इस समय तक ढोला की यात्रा की ग्वर दुष्ट ऊमरसूमरा को हो गई थी। मारवणी को छीन लेने की इच्छा में वह फौजसहित बीच में आ डटा। ढोला से मिलने पर उसने कपटपूर्वक उसका खूब सत्कार किया। ढोला उसकी धोखे की बातों में आकर उसके साथ ठहर गया। ऊमर की सेना के साथ मारवणी के पीहर की एक दूमणी (गायिका) थी। उसने गाते हुए, इशारे से मारवणी को इस धोखे और पड्यत्र की बात समझा दी। समझकर मारवणी ने अपने ऊँट को जोर से छड़ी से मारा। ऊँट भाग खड़ा हुआ। ढोला जब ऊँट को सम्हालने के लिये आया तब मारवणी ने उसको चुपके से पड्यत्र की बात कह सुनाई। ऊँटपट दोनों ऊँट पर सवार हो गए। ऊँट पूरे वेग से दौड़ पड़ा और देखते देखते कोसों दूर निकल गया। ऊमर ने सेनासहित पीछा किया परंतु उसे हताश होकर वापिस लौटना पड़ा।

ढोला मारवणीसहित सकुशल नरवर पहुँच गया। उसके पिता ने धूमधाम से दोनों का स्वागत करके महलों में प्रवेश कराया। अब ढोला,

मारवणी और माळवणी तीनों आनदपूर्वक सुख से रहने लगे। एक दिन माळवणी ने मारवाड देश की निंदा की। उत्तर में मारवणी ने मालवा की बुराई और मारवाड की प्रशंसा की। ढोला ने दोनों को समझाकर भगड़ा मिटा दिया।

(६) लोकगीत (Ballad)

ऊपर कहा जा चुका है कि 'ढोला मारूरा दूहा' एक जनप्रिय लोकगीत है। उसके विषय के कुछ कहने के पूर्व इस बात पर विचार कर लेना उचित होगा कि लोकगीत या गीतकाव्य (Ballad) किसे कहते हैं और उसकी क्या क्या विशेषताएँ हैं। हिंदी के लिये यह एक रोचक और नया विषय है। इसकी विवेचना करने के लिये हमें पाश्चात्य विद्वानों की खोज से लाभ उठाना पड़ेगा और उनके सिद्धांतों का अनुशीलन करने से हमें इस विषय में कई नई बातें मालूम होंगी।

डाक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर के कुछ आधुनिक गीतों की समीक्षा करते हुए एक स्थान पर भारतीय इतिहास के विद्वान् सर जदुनाथ सरकार ने लोकगीत (Ballad) की व्याख्या यों की है—

“Rapidity of movement, simplicity of diction, primary emotions of universal appeal, action rather than subtle analysis, broad striking characterisation, ‘thumb nail sketches’ of background and the sparest use (or rather complete avoidance) of literary artifices—these are the essential requisites of the true ballad.”

(अर्थात्—प्रवृत्ति की द्रुतगति, शब्दविन्यास की सादगी, विश्वव्यापक मर्मस्पर्शी प्राकृतिक और आदिम मनोरोग, सूक्ष्म भावविश्लेषण के वजाय व्यापार की प्रधानता, स्थूल किंतु प्रभावोत्पादक चरित्रचित्रण, क्रीड़ास्थली अथवा देशकाल का स्थूल अंकन, साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनातिन्यून प्रयोग या सर्वथा बहिष्कार—सच्चे लोकगीत की ये नितान्त आवश्यक विशेषताएँ हैं।)

ये तो साधारण बातें हैं जो प्रत्येक लोकगीत (Ballad) में पाई जाती हैं। यदि सूक्ष्म रीति से विश्लेषण करके देखा जाय तो कई विशेषताएँ

लोकगीत में दृष्टिगोचर होती हैं, जो इधर साहित्य विभागों में नहीं पाई जाती । उनमें से कुछ का संकलन नीचे किया जाता है—

(१) सबसे पहली जानने योग्य बात यह है कि लोकगीत को कलात्मक साहित्य (Literature) का अंग न कहकर अनुश्रुति (Lore) की परंपरा में समझना चाहिए । हम पहले कह आए हैं कि कलात्मक कविता (साहित्य) और लोकगीत की प्राकृतिक कविता में रात दिन का अंतर है । अंगरेजी गीतकाव्यों के अनुसंधान करनेवाले एक विद्वान्, प्रोफेसर फिट्जरिज, लिखते हैं—

“In studying ballads then, we are studying the poetry of the folk and the poetry of the folk is different from the poetry of art.”

(अर्थात्—इस प्रकार, लोकगीतों के अध्ययन करने का अर्थ जनता के काव्य का अध्ययन करना है और जनता का काव्य कलापूर्ण काव्य से भिन्न है ।)

इसी विषय के दूसरे विद्वान् मिस्टर सिजविक लिखते हैं—

“It is older than literature, older than alphabet
It is lore and belongs to the illiterate ”

(अर्थात्—लोकगीत की सृष्टि साहित्य की सृष्टि से, यहाँ तक कि वर्ण-माला की सृष्टि से भी पहले की है, वह अनुश्रुति का अंग है और निरन्तर जनता की संपत्ति है ।)

इन उद्धरणों का आशय यह है कि साहित्य की उत्पत्ति से बहुत पहले, जब मनुष्यों ने पढ़नालिखना नहीं सीखा था तभी से, मौखिक आवृत्ति के रूप में लोकगीत हमारी पैतृक संपत्ति के रूप में अद्य तक चले आ रहे हैं । अतएव धारणा यह होती है कि लिखित साहित्य से पूर्वकालीन होने के कारण हम लोकगीतों को साहित्य सज्ञा में नहीं गिन सकते । परंतु पाश्चात्यों का यह विचार सर्वथा युक्तिसंगत नहीं जँचता । उनकी साहित्य की परिभाषा जितनी सकुचित है उतना ही उनका यह विचार भी सकुचित है । भारतीयों ने साहित्य और काव्य की सीमा को मानवजीवन की सीमा से मिलाकर उतना ही व्यापक और विस्तृत रखा है । कोई भी रसपरिपुष्ट मानवविचार, चाहे वह जीवन के किसी अंग सत्रय क्यों न रखता हो, साहित्य और काव्य का विषय बन सकता है, फिर चाहे वह लिखित रूप में हो अथवा मौखिक रूप में ।

(२) गीतकाव्यों के संबन्ध में दूसरी स्मरण रखने योग्य बात है उनकी मौखिक परंपरा (Oral Tradition)। प्रत्येक गीतकाव्य अपना वर्तमान लिखित स्थूलरूप धारण करने से पहले मौखिक परंपरा के तरल रूप में अवश्य रहा है और समयान्तर में भूतकाल से वर्तमान में आने का उसका मार्ग मौखिक आवतन अवश्य रहा है। आज भी हम देहातों में जाकर देखें तो हजारों गीत, आख्यायिकाएँ एव दत्तकथाएँ गाँव के अपठित लोगों के मुख से, अथवा चारण, भाट, बदीजनों के मुख से सुनने को मिलेंगी। इनमें से कुछ, अधिक हृदयस्पर्शी होने के कारण, विशेष प्रचलित हो जाते हैं और अंत में किसी अक्षरज्ञाता उत्साही पुरुष के हाथ में पड़कर पुस्तक के लिखित रूप को धारण कर लेते हैं। देश, काल और वक्ता के भेद के अनुसार इन मौखिक परंपरागत गीतों के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कई लेखबद्ध हो जाते हैं। इस विषय में प्रो० किट्रिज लिखते हैं—

“To this oral literature education is no friend, culture destroys it with amazing rapidity, When a nation learns to read, it begins to disregard its traditional tales, it feels a little ashamed of them and finally it loses both the will and the power to remember and transmit them. What was once the folk as a whole becomes the heritage of the illiterate only and soon, unless it is gathered up by the antipuary, vanishes altogether.”

(अर्थात्—शिक्षा इस मौखिक साहित्य की मित्र नहीं होती। सभ्यता की वृद्धि उसे आश्चर्यजनक शीघ्रता के साथ नष्ट कर देती है। जब कोई जाति लिखनापढ़ना सीख जाती है तो अपनी परंपरागत कथाओं की अवहेलना करने लग जाती है—उनसे वह थोड़ी बहुत लज्जा भी अनुभव करने लगती है—और अंत में वह उनको याद रखने तथा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करने की इच्छा एव शक्ति से हाथ धो बैठती है। जो चीज कभी समस्त जनता की थी वह केवल निरक्षरों की संपत्ति रह जाती है और यदि पुरातत्व-प्रेमियों द्वारा सङ्गृहीत न कर ली जाय, तो सदा के लिये विलुप्त हो जाती है।)

सन्तुष्ट में, लोकगीतों के वर्तमानकालीन हास का यही मुख्य कारण है।

(३) तीसरी विशेषता यह है कि लोकगीतों में कवि अथवा काव्य-निर्माता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उत्तरकालीन कलात्मक कविता में कवि का व्यक्तित्व उसकी कृति में प्रतिफलित होता रहता है। गीतकाव्यों में अव्यक्तित्व की विशेषता रहती है। लोकगीतों के सबसे बड़े पाश्चात्य पंडित और अन्वेषकर्ता प्रोफेसर चाइल्ड (prof. F. J. Child) ने दोनों प्रकार के काव्यों का भेद स्पष्ट करते हुए यों लिखा है—

‘The historical and natural place of the ballad is anterior to the appearance of poetry of art to which it has formed a step and by which it has been regularly displaced and in some places all but extinguished.’

और भी—“The condition of society in which a truly national and popular poetry appears explains the character of such poetry. This is a condition in which the people are not divided by political organisation and book culture into marked distinct classes, in which, consequently, there is such community of ideas and feelings that whole people from one individual. Such poetry, accordingly, while it is in its essence an expression of our common human nature and so of universal and indestructible interest, will, in each case, be differentiated by circumstances and idiosyncrasy. On the other hand, it will always be an expression of the mind and heart of the people as an individual and never of the personality of individual men. The fundamental characteristic of popular ballads is, therefore, the absence of subjectivity and of self consciousness... .. The author counts for nothing and it is not by mere accident but with the best reasons that they have come down to us anonymous.”

प्रोफेसर चाइल्ड को संमति को हमने सविस्तर उद्धृत किया है क्योंकि उपर्युक्त सारी बातें **ढोला मारुरा दुहा** के संबंध में लागू होती हैं और आगे चलकर हम इनके सिद्धांतों के आधार पर प्रथमवर्धो बहुत सी उलझनों को सुलझाने की चेष्टा करेंगे।

(४) चौथी विशेषता लोकगीतों की यह है कि उनका यदि कोई रचयिता हो सकता है तो वह जन समुदाय ही हो सकता है न कि व्यक्तिविशेष। इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं।

प्रसिद्ध कहानी लेखक जेम्स ग्रिम का मत है कि लोकगीत का रचयिता व्यक्ति नहीं, बल्कि जनसमुदाय (*Das Volksdichter*) है, क्योंकि लोकगीतों में जनसमुदाय की आत्मा संपूर्ण रूप में प्रकाशित होती है। इन्हीं से कुछ मिलतीजुलती प्रो० किट्रिज की राय है। मानव-जाति-विज्ञान (*Anthropology*) का आधार लेकर और मानव समुदाय के आदिम स्वरूप सवधी अन्वेषणों को दृष्टांत में रखकर वे अनुमान करते हैं कि जनसमुदाय का काव्यनिर्माता होना असंभव बात नहीं है। समाज की आदिम अवस्था में जब कोई स्मरणीय घटना होती—यथा, कोई व्यक्ति वीरता का कोई काम करते या समाज में कोई आनंदोत्सव का अवसर उपस्थित होता—तो समुदाय एकत्रित होकर उसमें भाग लेता होगा। उस समय उस समुदाय की मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ करीब करीब एक ही लक्ष्य की ओर उद्दिष्ट रहती होंगी। ऐसी दशा में सवेदना, सहानुभूति और एकता के भावों से प्रेरित होकर यदि उस समुदाय के सारे व्यक्तियों के भाव एक ही प्रकार से प्रकाशित हों, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतएव ऐसी परिस्थिति में निर्मित काव्य का निर्माता व्यक्ति न होकर समुदाय ही कहा जायगा—*The folk is the author.*

इस कल्पनात्मक अनुमान में तथ्यांश बहुत थोड़ा प्रतीत होता है। कल्पना में सब कुछ संभव हो सकता है, परंतु वास्तव में क्या होता रहा होगा, यह कौन कह सकता है। समय में चाहे कितना ही भारी अंतर क्यों न हो गया हो, मानवसमाज की व्यापक और स्वरूपरूढ़ साधारण प्रवृत्तियाँ हर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख, भय, क्षोभ—जो हजारों वर्ष पहले रही होंगी, वे ही करीब करीब आज भी हैं। फिर यह कैसे मान लिया जाय कि जो बात आज होनी असंभव सी प्रतीत होती है वह हजार वर्ष पहले संभव होती थी। यह मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती कि विशेष प्रकार की रागात्मक

ढो० मा० दू० ४ (११००-६२)

मनोभावनाओं के तीव्ररूप में उद्भासित होने के अवसरों पर लोकगीत बनते हैं और उनको बनाने की प्रेरणा करनेवाला जनसमुदाय ही होता है, परन्तु जनसमुदाय की उद्योजित मनोवेदनाओं को ऐक्य मूत्र में बदलकर गीतरूप में सञ्चित करनेवाला जरूर कोई न कोई उमी समाज का प्रतिभासंपन्न व्यक्ति रहता होगा। यही युक्ति मगन भी जँचता है।

इसी विषय के एक और पाश्चात्य विद्वान् प्रो० गम्मीयर (Prof Gummere) है, जिन्होंने लोकगीत की उत्पत्ति मानवसभ्यता के प्रारम्भ काल में मानी है। संगीत और नाट्य तत्वों को आधारस्तम्भ मानकर उन्होंने लोकगीत की व्याख्या यों की है—

“The popular ballad is a narrative lyric made and sung at the dance and handed down in popular tradition The making of the original ballad is a choral dramatic process and treats a situation, the traditional course of the ballad is really an epic process which tends more to treat a series of events as a story.”

पाश्चात्य देशों में लोकगीतों के सवध में साधारणतः यही मत प्रचलित है। लोकगीत (Ballad) शब्द का सर्वसमत पारिभाषिक अर्थ लिया जाय, तो यही आशय होता है। अँग्रेजी का (Ballad) शब्द पुराने फ्रेंच शब्द Ballare से निकला हुआ है, जिसका अर्थ होता है नाचना। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में जातीय धार्मिक उत्सवों, अथवा किसी विशेष घटना, को मनाने के लिये जनसमुदाय एकत्र होकर गान और नाच द्वारा घटना संबंधी संस्मृतियों को तत्त्वगुण काव्यबद्ध करता था और बड़ी रुचि के साथ उसे स्मृति में रक्षितकर, यदा कदा, यत्र तत्र, गाया करता था। समयांतर में इस ढंग पर गीत बनाने का एक ढर्रा पड़ गया और सारे गीत एक छंद विशेष में बनने लगे, जिसका नाम भी Ballade छंद पड़ गया।

सर्गोत्तर और कविता का आदिम काल से ही इतना घनिष्ठ सवध रहा है कि लोकगीत की उत्पत्ति के सवध में ये कल्पनाएँ युक्तिसंगत और स्वाभाविक प्रतीत होती हैं सस्कृत शब्द लोकगीत या गीतकाव्य से भी सर्गीत की प्रधानता द्योतित होती है। इसमें किसी प्रकार का सदेह नहीं है

कि मानवहृदय की आदिम मनोवृत्तियों को प्रकाशित करने में संगीत ने बड़ा भारी सहयोग किया है। भारतीय सभ्यता और धर्म के आधारस्तम्भ वेदों की अनन्त ज्ञानराशि संगीतमय ऋचाओं के अनर्गल प्रवाह में प्रवाहित हुई और चारों वेदों में से एक प्रमुख वेद—सामवेद—गान के विशिष्ट रूप में प्रकट हुआ। किसी समय में सामगान भारतीयों को बड़ा प्रिय था।

दूसरी प्रधानता जो लोकगीतों में पाई जाती है वह है उनका नाट्य और अभिनेय गुणों से युक्त होना। नाट्य में हाव-भाव, हेला, प्रदर्शन तथा नृत्य सभी प्रदर्शनीय अभिनयगुण रहते हैं। अभिनय और नृत्य द्वारा मानवअभिरुचि का आकर्षण सहज ही में किया जा सकता है। यदि भारतीय नाटकों की उत्पत्ति की ओर दृष्टिपात किया जाय तो यह बात तथ्ययुक्त प्रमाणित होगी कि धार्मिक प्रेरणाओं से उत्साहित होकर जनता प्राचीन काल में देवमंदिर अथवा किसी अन्य पवित्र स्थान में एकत्र होकर किसी समकालीन अथवा पूर्वघटित घटना की स्मृति में कीर्तन, गुणगान, नृत्य आदि किया करती थी और ऐसे ही अवसरों पर हाव-भाव, अभिनय द्वारा किसी वीर अथवा धार्मिक पुरुष के कार्यों का रूपक रचकर प्रदर्शन किया करती थी। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण के पुत्र-पौत्रों ने नागरिकों को एकत्रकर समारोह सहित द्वारका में इस प्रकार के रूपक का अभिनय किया था। 'नाटक' शब्द की प्रकृति नट-घातु यही प्रमाणित करती है। भारतीय नाटकाचार्यों—भरत और धनजय—का भी यही मत है कि मानवहृदय की भावनाओं को प्रकाशित करने में नृत्य ने आदिकाल से सहयोग किया है। अतएव पाश्चात्यों का यह कहना कि संगीत और नृत्य के रूप में लोकगीतों का साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम विकास हुआ, भारतीय आचार्यों के सिद्धांतों से बहुत कुछ मेल खाता है और यह ग्राह्य भी होना चाहिए।

प्रो० गम्मीयर ने लोकगीतों की उत्पत्ति के विषय में इस बात पर विशेष जोर दिया है कि लोकगीत के निर्माण का कार्य अचिंतितपूर्व (Improvised) कृत्य है अर्थात् किसी घटना को मानने के लिये उपस्थित जनसमूह का उत्तेजित हृदय नाचते गाते हुए तत्क्षण ही सामूहिक प्रयास के रूप में गीत काव्य की रचना कर देता है। इस मत (Improvisation theory) को बहुत कम विद्वान् मानते हैं। प्रो० चाइल्ड यद्यपि अभिनय और संगीत के गुणों को प्रधानता देते हैं परंतु उन्होंने नृत्य और संगीत ही से लोकगीत की निश्चित रूप से उत्पत्ति नहीं बताया है। उनके मतके भुकाव से ऐसा

प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चारणों अथवा भाटों की जातिविशेष में वशपरपरा से यह काम रहा होगा कि वह जनश्रमिकों के अनुरूप समय समय पर गीत काव्य बनाकर समुदाय में उनका प्रचार करे। लोकगीत साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद उनकी धारणा है कि—There is the genuine ring of the best days of minstrelsy.

लोकगीत की उत्पत्ति और परिभाषा के विषय पर मत-मतांतर के इस झगड़े को यहीं छोड़कर लोकगीतों के विकास के रोचक विषय पर कुछ कहना उचित होगा।

गीत काव्य जनता का, जनता के लिये निर्मित, और जनता द्वारा निर्मित, लोकप्रिय काव्य है। कलात्मक कविता के विपरीत इसकी विशेषता यह होती है कि इसमें मानवसमाज की आदिम मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ, उनके हर्ष उल्लास, शोक, विषाद, प्रेम, ईर्ष्या, भय, आशंका, घृणा, ग्लानि, आश्चर्यविस्मय, भक्ति, निवृत्ति आदि भाव अपने सरल से सरल और विशुद्ध रागात्मक रूप में प्रकाशित होते हैं। इसमें सभ्य जीवन का कृत्रिम आडंबर, अलंकार की अस्वाभाविक चमत्कृति और प्रपञ्चमय जीवन की कष्टपूर्ण प्रवचना का बहुत कम आभास मिलता है। वास्तव में सच्चा काव्य वही है जिसमें मानवजीवन का निष्कण्ट अभिव्यजन होता है। सच तो यह है कि जब से मनुष्य ने अपना आपा सँभाला है, जब से यह बुद्धिमत्ता का ढोंग रचने लगा है, बुद्धिमत्ता की वहक में जबसे उसने मस्तिष्क के सामने हृदय की सत्ता का तिरस्कार करना श्रेयस्कर समझ लिया है तभी से सच्ची, हृदयस्पर्शी, नैसर्गिक कविता का हास होने लगा है और उसका स्थान कृत्रिम तथा भावशून्य, आडंबरपूर्ण कविता ने ग्रहण कर लिया है। विशाल गगन में स्वच्छद पंखों को फटफटाती हुई और गाती हुई, यथेच्छ कडुवे, कसैले अथवा मधुर फलों के स्वाद को चखती हुई और वन्य सरिताओं का निर्मल जल पान करती हुई वन वन में विचरण करनेवाली मनमौजी चिड़िया के सगीत में और सोने के पिंजड़े में जकड़ी हुई अपनी इच्छा के विरुद्ध उत्तमोत्तम पदार्थों का भोग करती हुई, अपने मानव स्वामी के रटाए हुए कुछ शब्दों को रटती हुई चिड़िया में जो अंतर है, वही अंतर इस स्वच्छद प्राकृतिक कविता और अर्वाचीन काल की प्रथाबद्ध कविता में है।

संसार की जातियाँ और देश भिन्न भिन्न हैं परन्तु मानवसमाज की

व्यापक एकता लगभग सभी देशों और जातियों में एक सी है। यही कारण है कि लोकगीतों के अन्वेषकों ने ससार के भिन्न भिन्न भूभागों की भिन्न भिन्न जातियों के लोकगीतों में विषय और वयनशैली तथा अन्यान्य विशेषताओं की आश्चर्यजनक समानता पाई है। कहीं कहीं तो कथाएँ तक मिलती जुलती हैं। क्या यूरोप, क्या मिस्र, क्या भारत और क्या अन्यान्य देश, प्रायः सभी देशों के प्राचीन गीतकाव्यों का मिलान करके हम देखें तो वही प्राकृतिक सरलता, वही आडंबरशून्यता, वही अधविश्वासों की बहुलता, वही प्रेम, ईर्ष्या, वीरता आदि भावों की द्योतक रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ तक कि विचारशील मस्तिष्क में यह भाव जागरित हुए बिना नहीं रह सकता कि उत्तर काल के मतमतांतरों, सभ्यता और धर्मसंबन्धी भेदों से विशृंखलित ससार की जनता यदि भाई भाई की तरह प्रेमपूर्वक किसी स्थान पर मिल सकती है तो इन्हीं गीतकाव्यों और परंपरागत गाथाओं के विशिष्ट रंगमंच पर।

विद्वानों ने अन्वेषण करके मालूम किया है कि ससार के सभी देशों के गीतकाव्यों में विषय और शैली की समानता है। उनमें से कुछ समानताओं का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) अपने सच्चे प्रेमी को पाने के लिये प्रेमी अथवा प्रेमिका का प्राणपण से प्रयत्न करना और अनेक बाधाओं को हटाकर उसे प्राप्त कर लेना तथा आसुरी रीति से व्याह कर लेना।

(२) सौतियाडाह अथवा सौतेली माता की ईर्ष्या के कारण प्रेममार्ग पर भयकर दुर्घटनाओं का घटित होना।

(३) प्रेम में विश्वासघात के फलस्वरूप अनेक विषम दुर्घटनाएँ होना।

(४) आदर्श वीरता के आख्यान।

(५) पहेलियों द्वारा मानवभाग्य का निपटारा किया जाना। विशेषतः पहेलियों के शुद्ध उत्तर के परिणाम में प्रेमी दंपति का मिलन होना। इसकी सभी देशों के लोकगीतों में चर्चा मिलती है।

(६) पुनर्जीवन के सिद्धांत में ससारव्यापी विश्वास।

(७) अलौकिक सत्ता में आस्था और विश्वास (Supernatural belief), और साथ ही भूत, प्रेत, डाइन और परियों में विश्वास।

(८) कहानी का उपदेशदायक (Didactic) न होकर सीधे और रोचक ढंग से कहा जाना ।

(९) धार्मिक सिद्धांतों की दृढ़ता की प्रशस्तिस्वरूप बातें ।

(१०) पशु पक्षियों द्वारा मानव हित-संपादन ।

ये बातें साधारणतः ससार के सभी देशों के लोकगीतों (Ballads) में पाई जाती हैं। ढोला मारूरा दूहा में इनमें से प्रायः सभी का प्रयोग हुआ है। न केवल विषय और प्रतिपादन शैली की एकता, वरन् उस काल की भी एकता पाई जाती है, जब ससारभर में इन लोकगीतों की एक बाढ़ सी आ गई थी। ईसा की तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी (स० १२००-१६०० तक) के बीच के युग को पाश्चात्य ग्रन्थेपकों के आधार पर लोकगीत का ससारव्यापी युग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी ।

लोकगीतों की वनावट और बाह्यरूप के सवध में भी कुछ स्मरण रखने योग्य साधारण बातें हैं, जिनमें उनकी उत्पत्ति और विशेषता के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) प्रायः देखा जाता है कि प्राचीन ढंग के लोकगीत में ध्रुवक (Refrain) का बहुधा प्रयोग मिलता है ।

ध्रुवक-प्रयोग के आधार पर लोकगीत साहित्य के शास्त्रीय ग्रन्थेपकों ने यह अनुमान किया है कि यह प्रयोग उस प्राचीन प्रथा और सरल मानवप्रवृत्ति का परिचायक है जब एक जनसमुदाय एकत्र होकर किसी घटना के सवध में गान और नृत्य करता रहा होगा और सारा समुदाय नियत समय पर ध्रुवक को उठाकर गाने में पूर्ण सहयोग देता रहा होगा। अधिकांश गीतकाव्यों में ध्रुवक मिलता है, परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनमें इसका प्रयोग नहीं मिलता। ये रचनाएँ या तो पीछे की हैं जब ध्रुवक का प्रयोग न रहा होगा, अथवा ये किसी एक व्यक्ति (चारण अथवा भाट) की बनाई हुई हैं। पीछे से ध्रुवक-प्रयोग स्थगित कर दिया गया, ऐसा प्रतीत होता है।

(२) आवृत्ति (Repetition) भी साधारणतः प्राचीन गीतकाव्यों का एक प्रमुख लक्षण है। ध्रुवक भी एक प्रकार की आवृत्ति ही है, परन्तु वह आवृत्ति छंद के किसी विशेष स्थल पर नियमतः होती है—खासकर अंत में। ढोला मारूरा दूहा में आवृत्ति का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है।

कहीं तो पक्ति की पक्ति का आवर्तन मिलता है और कहीं पक्ति के एक या दो शब्दों में परिवर्तन करके बार बार दुहराया गया है, यथा—

बीजुलियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि ।

कद रे मिलउली सजना कस कचूकी छोडि ॥४६॥

बीजुलियाँ चहलावहलि आभइ आभई च्यारि ।

कद रे मिलउली सजना लॉवी बॉह पसारि ॥४५॥

इसी प्रकार दूहा न० ५४, ५५, ५६, ५८, ५९ के “कूँभडियाँ” वाले दूहों में आवृत्ति मिलती है ।

इसी प्रकार ‘ऊनमियउ उत्तर दिसै’ वाले दूहों में (देखो नं० १८, ४२, ४३ में) आवृत्ति है । यही प्रयोग ग्रथ के और स्थलों में भी मिलता है । किसी एक बात अथवा भाव को बार बार दुहराकर थोड़े से हेरफेर के साथ उसी भाषा में कहना प्राचीन ढंग की कविता में बहुत पाया जाता है । सामुदायिक रचना के सिवा इसका कारण यह भी हो सकता है कि विषय की ओर विशेष ध्यान आकर्षित करने के लिये दुहराना आवश्यक होता था ।

(३) तीसरी बात जो साधारणतः इन प्राचीन काव्यों में पाई जाती है वह सख्या के अक सात (७) और तीन (३) का प्रचुर प्रयोग । इसका कोई निश्चित कारण तो मालूम नहीं होता कि प्राचीन जनसमाज को ये सख्याएँ क्यों विशेष प्रिय थीं, परंतु यह निःसदिग्ध तथ्य है कि ससार के प्राचीन साहित्य में ये सख्याएँ विशेष प्रतिष्ठित हुई हैं । हिंदूसंस्कृति के अनुसार नौ की सख्या के साथ साथ ये दोनों सख्याएँ पवित्र और शुभ मानी गई हैं । त्रिदेव, त्रिलोक, त्रिगुण तथा सप्तद्वीप, सप्तर्षि, सप्तसमुद्र और नवनिधि, नवरत्न आदि गणनाओं के ससर्ग से ये सख्याएँ हिंदूसमाज में सस्कारारूढ परंपरा से प्रतिष्ठित हुई हैं ।

लोकगीत की उपर्युक्त विशेषताएँ काव्य के प्राचीन रूप की परिचायक हैं और इनसे उस समय के भोलेभाले, सरल, निष्कपट और अधविश्वासी समाज का पता लगता है ।

पाश्चात्य विद्वानों की खोज के परिणाम में लोकगीतों के कई विभाग किए जा सकते हैं । उनमें से मुख्य विभागों का वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) परंपरागत लोकगीत (Traditional Ballad)—प्राचीनतम सच्चे गीतकाव्य यही गिने जाते हैं । वशपरंपरा के क्रम से मौखिक

आवर्तन के रूप में वे हमें उपलब्ध हुए हैं। इनमें से कुछ तो लिपिबद्ध हो गए हैं और कुछ ग्रन्थ भी मौखिक गान के रूप में प्रचलित हैं। इनका निर्माता कोई व्यक्ति-कवि नहीं होता। तत्कालिक समाज को ही इनका रचयिता समझना चाहिए, क्योंकि कवि के व्यक्तित्व की छाप का इनकी बनावट में सर्वथा अभाव रहता है। वर्तमान काल में हम विशुद्ध कोटि का गीतकाव्य मिलना कठिन है।

(२) चाण्णी लोकरगीत (Minstrel Ballad)—इनकी रचना चारण, भाट, दाढी आदि ऐसी जातियों के व्यक्तियों द्वारा होती है जिनका काम जनता को गान सुनाना होता है। इनमें और प्रथम कोटि के गीतों में स्पष्ट भेद है कि वे एक कवि की व्यक्तिगत कृति होने के कारण गीतकाव्यों के और गुण रखते हुए साथ ही व्यक्तित्व की पूरी छाप भी रखते हैं और वे उतने सरल, प्राकृतिक और आडंबरशून्य नहीं होते। वे अपेक्षाकृत पीछे के काल की कृतियाँ हैं।

(३) विकृत लोकरगीत (Broadside Ballad)—ये गीत आरंभ में तो परंपरा गीत ही होते हैं पर समय के बड़े अंतर से और निम्न कोटि की जनता के मुख में पड़कर वे असली गीत न केवल अपने मौलिक रूप को ही विकृत कर बैठते हैं बरन् कहीं कहीं तो मौलिक कहानी की घटनाएँ तक इतनी विकृत हो जाती हैं कि उसके असली रूप और वर्तमानरूप में आकाश-पाताल का अंतर पड़ जाता है। उत्तर भारत और मध्यप्रदेश में प्रचलित आल्हा का गीत इसी कोटि का है। ढोला मारू गीत के भी कई विकृत रूप प्रचलित हैं जो देहात के दाढ़ियों के मुख से गान के रूप में सुने जाते हैं और जिसमें स्थान स्थान पर कथा का अग्रभग करके उसे विकृत बनाया गया है।

(४) साहित्यिक लोकरगीत (Literary Ballad)—पहले तीन प्रकार के लोकरगीत साहित्यिक विद्वानों से भिन्न व्यक्तियों की रचनाएँ होती हैं। उनमें साहित्यिक विधानों का अभाव रहता है। वे कलापूर्ण काव्य से सर्वथा भिन्न लोककाव्य (Folk Poetry) कहे जा सकते हैं। पर साहित्यिक लोकरगीतों की रचना प्राचीन लोकरगीतों के ढंग पर साहित्यिक कवियों द्वारा होती है। उनमें साहित्यिक विधानों का अभाव नहीं रहता यद्यपि बाहुल्य भी नहीं होता। ये गीत अपेक्षाकृत बहुत बाद की रचनाएँ हैं। सुमद्राकुमारी चौहान का झोंसी की रानी गीत इसी कोटि का है।

प्रस्तुत ढोला मारू गीत को उपर्युक्त विभागो मे से किसी भी एक के अतर्गत नहीं किया जा सकता । प्रथम दोनों विभागों की विशेषताएँ इसमें पाई जाती हैं और किसी अश तक तीसरे की भी । बहुत सभव है कि आरभ मे यह गीत किसी एक व्यक्ति की रचना हो क्योंकि हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि किसी जनसमाज ने किसी एक स्थान पर एकत्र होकर इसके मूलरूप को निर्मित किया हो । पर आगे चलकर यह जनता की वस्तु थन गया और जनता द्वारा परिवर्तन एव परिवर्धन उसमें बराबर होते रहे । इसके अतिरिक्त चारणी लोकगीतो में कवि के व्यक्तित्व की पूरी छाप पाई जाती है पर ढोला मारू मे वह अविद्यमान है । अतः इस गीत की निर्मात्री वास्तव मे जनता को ही समझना चाहिए । ढोला मारू के आगे चलकर अनेक विकृत रूप भी बन गए जिनमे मूल गीत की कथा सर्वथा विकृत हो गई परंतु हमने जो प्राचीन रूप लिया है उससे इन विकारों का कोई संबंध नहीं ।

ऊपर लोकगीत की जो विशेषताएँ बताई गई हैं उनमे से प्रायः सभी ढोला मारू में पाई जाती हैं । कहानी अथ से इति पर्यंत बड़ी द्रुतगति के साथ दौड़ती है । कथा की गति में विघ्न डालनेवाला अश कथाभर मे नहीं मिलता । बीच बीच मे सदेश, ऋतुवर्णन-माळवणी-विरहवर्णन, मारवणी रूपवर्णन आदि के जो लंबे व्यापारहीन वर्णन आए हैं, वे आरंभ में मूलकथा के भाग न थे परंतु समय समय पर बढ़ते रहे हैं । उनमे भी लोकगीत की एक महत्वपूर्ण विशेषता आवृत्ति का प्राधान्य है । इसी प्रकार न तो कहीं क्रीडास्थली अथवा देशकाल का वर्णन और न कहीं मानसिक भावों का विश्लेषण ही कथा के व्यापार को शिथिल करता है । कहानी की क्रीडास्थली का अकन अस्पष्ट रेखाओं के रूप में ही यत्रतत्र हुआ है । चरित्रचित्रण भी बहुत स्थूल है ।

कहानी में भावसकुलता भी नहीं मिलती । प्रेम और प्रेमजन्य विकलता, ईर्ष्या, उत्साह, हर्ष आदि मोटे मोटे भावों का ही वर्णन किया गया है । रचनाशैली अत्यंत सरल और सीधी है । कृत्रिम साहित्यिक विधानों का सर्वत्र अभाव सा है । एकाध मोटे मोटे अलंकार कई एक स्थानों पर आए हैं पर वे अपने आप आए हुए और सर्वथा स्वाभाविक जान पड़ते हैं । कला के लिये जानबूझकर किए हुए प्रयास का कहीं आभास नहीं मिलता ।

लोकगीतों में मुख्यतया शृंगार या वीर या दोनों की प्रधानता होती है। अन्य रसों की व्यञ्जना बीच बीच में आवश्यकतानुसार होती है। ढोला मारू में शृंगार रस का प्राधान्य है; अन्य रसों की व्यञ्जना बहुत ही कम नाममात्र को, कहीं कहीं हुई है। बहुतों की व्यञ्जना तो विलकुल ही नहीं हुई। वस्तुवर्णन के लिये भी कहीं विराम नहीं किया गया है।

लोकगीत की कतिपय अन्यान्य विशेषताएँ ढोला मारू में कहाँ कहाँ पाई जाती हैं, इसका उल्लेख ऊपर उन विशेषताओं के वर्णन के प्रसंग में हो चुका है।

(७) प्रबंध कल्पना और वर्णन

किसी भी सन्नद्ध कविता में, चाहे वह प्रबंध के रूप में हो अथवा गति के रूप में, घटनाओं का सक्रमण साधारणतः दो रीतियों से किया जाता है। कवि या तो घटनाक्रम को आदर्श परिणाम पर पहुँचाकर कोई लोकोपकारी आदर्श उपस्थित करता है, अथवा केवल कथानक की स्वाभाविक गति को ध्यान में रखते हुए मनुष्यजीवन का सच्चा निष्कपट चित्र उपस्थित करता है, जिसमें घटनाओं का क्रम आदर्शों-मुख न रखकर केवल उनके लोकसमन्वित व्यवहारशील स्वाभाविक रूप के सौंदर्य को प्रदर्शित करता है। पहले में उपदेश और नीतिपूर्ण परिणाम की प्रधानता होने के कारण वह कृत्रिम सा प्रतीत होता है, दूसरा लोकसमन्वित और स्वाभाविक होने से हमारे मन का अधिक अनुरजन कर सकता है। पिछले प्रकार में यद्यपि कवि को यह स्वतंत्रता नहीं रहती कि वह जानबूझकर नीति और सत्य के आदर्श मार्ग की अवहेलना करे परंतु उसका लक्ष्य रहता है प्रबंधकल्पना द्वारा केवल उस नीति, धर्म और सत्यता को सामने लाना जो लोकव्यवहृत और जनानुरजनकारी हो। ढोला मारू का प्रबंध पिछली कोटि का है। यदि उसमें घटनाओं द्वारा किसी आदर्श परिणाम को दिखाने का लक्ष्य होता तो ऊपर सूमरा और उसके दुष्ट चारण का परिणाम अवश्य दिखाया जाता परंतु ऐसा नहीं किया गया। साथ ही नीति धर्म और सत्य की अवहेलना भी नहीं की गई है, प्रेमियों को अपनी प्रेमसाधना के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित होते हुए भी अभीष्ट का लाभ होता है।

प्रबंध की उत्तमता उसके दो अंगों के सम्यक् निर्वाह से की जाती है। वे दो अंग हैं—इतिवृत्त के घटनाक्रम का स्वाभाविक विकास और

रसात्मक स्थलों का मर्मस्पर्शी ढंग से वर्णन । इतिवृत्त घटना के उल्लेख मात्र को कहते हैं, जैसे राम का बनवास के लिये प्रस्थान करना शुद्ध इतिवृत्त है परतु बनवास को प्रस्थान करते हुए राम के हृदय की दशा का वर्णनकर कवि ग्रामवासी पुरुष और स्त्रियों की रागात्मक सहानुभूतियों को आकर्षित कर लेता है, तब वही रूखासूखा इतिवृत्त रसपरिपुष्ट होकर काव्य का सर्वोत्कृष्ट हृदयग्राही रूप धारण कर लेता है । इस प्रकार उपयुक्त इतिवृत्तात्मक स्थलो को रसात्मक स्थलो मे परिवर्तित करके श्रेष्ठ काव्य हमारी रागात्मक प्रवृत्तियों को जागरित करता रहता है जिससे काव्यशरीर में रसात्मकता की विस्मृति नहीं होने पाती । तुलसीदासजी का काव्य सर्वोत्तम कोटि का सरस प्रबध काव्य है । दूसरी ओर कथासरित्सागर की, घटनावैचित्र्य और कुतूहल से पूर्ण, कहानियाँ केवल इतिवृत्त का कथन करके हमारी जिज्ञासावृत्ति को सतुष्ट करती हैं । रसात्मक स्थलों द्वारा हृदय की रागात्मक वृत्तियों—रति, शोक, करुणा आदि—का सतोष होता है । मुक्तक और प्रबध काव्य मे बड़ा भारी भेद यही है कि जहाँ मुक्तक मे केवल रसपद्धति का उत्तम निर्वाह ही पर्याप्त है, वहाँ प्रबध काव्य मे इतिवृत्त और रस दोनों का सोने और सुगंध का सा सयोग अभिप्रेत होता है । कोई भी कथा तब तक सुंदर काव्य का रूप धारण नहीं कर सकती जब तक इन दोनों अंगों का उचित और अन्योन्योपकारी रूप में सपोषण नहीं होता । यद्यपि यह कहना अनुचित न होगा कि प्रबध को प्रबध काव्यगुणों से विभूषित करने का अधिक श्रेय रसात्मक स्थलो के सम्यक् निर्वाह पर ही निर्भर रहता है परतु यदि कोई रस अथवा भाव परिस्थिति और घटना के विरुद्ध पड़ता हो तो वहाँ रस की स्थिति भौंडी सी अखरती है और प्रबध के विकास मे बाधक होती है ।

अब यह देखना है कि ढोला मारू के प्रेमप्रबध मे मानवजीवन के मर्मस्पर्शी घटनास्थलों को रसात्मकरूप मे प्रकट करने मे कहाँ तक सफलता हुई है ।

ढोला मारवणी की प्रेमगाथा एक लोकगीत है । अन्य प्रकार के प्रबध से इस काव्य मे यह विशेषता है कि इसका लक्ष्य गीत द्वारा मानव की रागात्मक वृत्तियों को आकर्षित करना होने के कारण इसमे इतिवृत्त की अपेक्षा रसात्मक स्थलो को प्रधानता दी गई है । सारे प्रबध मे रसात्मक स्थल हार के बहुमूल्य मुक्ताफलों की तरह पिरोए हुए हैं और इतिवृत्त का पतला

सा सूत्र मुवर्ण सूत्र की तरह इन मोतियों को एक लड़ी के रूप में पिरो देने के लिये व्यवहृत हुआ है। अतएव इसका काव्य में घटनाओं की सकुलता, मनोरंजकता और विभिन्नता के सौंदर्य को दिखाने का इतना अवसर नहीं मिला जितना तुलसी को अपने रामचरित मानस में अथवा जायसी को पद्मावत में, और यह अभिप्रेत ही था।

कथाविकास के क्रम से देखा जाय तो ढोला मारु की कहानी में निम्नांकित रसात्मक स्थल बड़ी स्वाभाविकता और हृदयस्पर्शा मार्मिकता के साथ चित्रित हुए हैं—

(१) मारवणी ने प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में उसका स्वप्न में पति-दर्शन, विरहवर्णन तथा उसकी चातक, सारस और कौच (कुरभ) संबंधी उक्तियाँ।

(२) ढोला के प्रति मारवणी का सदेश।

(३) मारवणी का सदेश सुनकर ढोला को प्रेमजन्य व्वाकुलता।

(४) प्रस्थान करते हुए ढोला को रोकने के लिये माळवणी का प्रयत्न और दपति का प्रेमपूर्ण सवाद।

(५) माळवणी का विरह।

(६) ढोला और मारवणी का मिलन।

(७) माळवणी और मारवणी का सवाद।

इन रसात्मक स्थलों का कवि ने बड़े सुंदर और हृदयहारी रूप में वर्णन किया है, जिसका विस्तृत विवेचन सयोग और विप्रलभ शृंगार के प्रसंग में आगे चलकर किया गया है।

रसप्रधान होते हुए भी हम इस प्रेमकहानी की घटनाओं के उचित आयोजन को मुला नहीं सकते। देखना यह है कि घटना का एक प्रसंग दूसरे प्रसंग से ठीक ठीक शृंखलाबद्ध हुआ है या नहीं। यदि नहीं, तो हमें इस त्रुटि को अक्षम्य काव्यदूषण समझना पड़ेगा।

भारतीय आचार्यों ने कथावस्तु (Plot) के दो अंग माने हैं—आधिकारिक या मुख्य और प्रासंगिक या गौण अथवा सहायक। ढोला मारु की कहानी में इन दोनों का उचित निर्वाह हुआ है या नहीं, यह देखना है। प्रासंगिक वस्तु में साधारणतः कथा के नायक और नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र संबंधी वृत्तान्तों का विवरण होता है और वह हमेशा आधिकारिक या मुख्य वस्तु का सहायक बनकर उसकी गति को आगे बढ़ाता है अथवा

परिणाम की ओर मोड़ता है। इस कहानी में ढोला और मारवणी का, प्रेम-वृत्तात आधिकारिक वस्तु है। यह काव्य पात्रप्रधान है, घटनाप्रधान नहीं। ढोला इसका नायक और मारवणी इसकी नायिका है। कथा का कार्यरूप परिणाम है ढोला का मारवणी का विरहदुःख से उद्धारकर उसको अपने घर लाना। इस परिणाम अथवा लक्ष्य की ओर सभी प्रासंगिक वृत्तान्तों का सहायक के रूप में प्रवाह होना चाहिए। ठीक ऐसा ही हुआ भी है। इस प्रेम कहानी की प्रासंगिक कथाएँ मुख्यतः ये हैं—

- (१) घोड़ों के सौदागर का पूगळ में आकर समाचार देना।
- (२) माळवणी की प्रार्थना पर ऊँट का लँगडा होना।
- (३) माळवणी द्वारा प्रेरित सुए का ढोला को लौटा लाने के लिये जाना।
- (४) ऊमर के दुष्ट चारण का षड्यंत्र और मारवणी सवधी झूठी सूचना देकर ढोला को प्रयत्न से विमुख करने की चेष्टा करना।
- (५) ऊमरसूमरा का ढोला को धोखा देकर मारवणी का हरण करने का दुष्ट प्रयत्न।

अब यदि देखा जाय तो ये सभी प्रासंगिक घटनाएँ किसी न किसी रूप में सहयोग देकर अथवा संघर्ष उत्पन्न कर कार्य को अंतिम लक्ष्य की ओर प्रेरित करने में सहायक होती हैं। पाश्चात्य काव्याचार्य अरिस्टॉटल ने प्रबंध के सुगठन की कसौटी कार्यसमन्वय (Unity of Action) को बताया है। उस सिद्धांत का निर्वाह इन प्रासंगिक वृत्तान्तों द्वारा बड़ी अच्छी तरह से हुआ है।

अरिस्टॉटल ने सिद्धांततः काव्य की कथावस्तु को तीन प्राकृतिक विभागों में विभाजित किया है—(१) आदि, (२) मध्य और (३) अंत। यह भी लिखा है कि इन तीनों का सबंध अन्यान्याश्रित, एक दूसरे से सश्लिष्ट और स्वाभाविक रीति से जुड़ा हुआ होना चाहिए और साथ ही कथावस्तु का कार्य महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर ढोला मारु की कथा का कार्य महत्त्वपूर्ण अवश्य है। अपनी विवाहिता स्त्री के अनेक कष्टों और अवरोधों को दूर कर उसे ले आना—इससे बढ़कर पवित्र, महत्त्वशील और लोक-शास्त्र-मर्यादा-विहित दूसरा कौन सा कार्य होगा। कार्य के अनुरूप नायक और नायिका का प्रेमप्रयास भी उतना ही महत्त्वशील है।

ढोला की कहानी के तीन प्राकृतिक विभाग किए जा सकते हैं—

(१) आदि भाग—मारवणी के स्वप्रदर्शन जन्य पूर्वराग से लेकर मारवणी के ढोला को सदेश भेजने तक ।

(२) मध्य भाग—ढोला की मारवणी विषयक आतुरता से लेकर उसके पूगळ के पास पहुँचने तक ।

(३) अन्तिम भाग—ढोला के पूगळ पहुँचने से लेकर अन्त तक ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि तीनों विभागों का सबधसूत्र सूत्र घनिष्ठता के साथ सश्लिष्ट, अन्योन्याश्रित और जुड़ा हुआ है । क्या का परिणाम सुखात है । यद्यपि ढोला की कहानी में रसात्मक स्थलों की ही प्रधानता है, परन्तु ऐसा होते हुए भी क्या में किसी स्थल पर भी इतना अनावश्यक विराम नहीं होने पाया है कि घटना का सूत्र विस्मृत अथवा विलुप्त हो जाय ।

काव्य में वर्णनात्मक स्थलों का निरूपण दो प्रकार से किया जाता है—

(१) वस्तुवर्णन के रूप में ।

(२) भावव्यजना के रूप में ।

ढोला की कहानी में प्रथम कोटि के वस्तुवर्णन पहले तो हैं ही बहुत कम और जो कुछ है वे भी भावसश्लिष्ट रूप में हुए हैं । मानव स्वभाव और भावों का वर्णन करना ही इस काव्य का प्रधान विषय है ।

ढोला की कथा में निम्नलिखित वस्तुवर्णन बहुत सन्क्षेप में हुए हैं—

(१) राजस्थान देशवर्णन ।

(२) राजस्थान का रमणीरूप-सौन्दर्य-वर्णन ।

(३) ऋतु वर्णन ।

(४) करहा वर्णन ।

(५) ढोला की यात्रा का वर्णन ।

इन सबके सबध में एक बार फिर कह देना होगा कि ये वर्णन कथावस्तु के साथ इतनी घनिष्ठता से सश्लिष्ट हैं कि जहाँ जहाँ ये आए हैं, वहाँ वहाँ काव्यकर्ता ने विराम ठेकर स्वतंत्र रूप में वर्णन के वास्ते वर्णन नहीं किए, वरन् कथाप्रवाह के बीच में प्रसंग आ पड़ने पर सन्क्षेप में कुछ वर्णन करके वह आगे चल पड़ा है । अतएव जिस अर्थ में हम जायसी के सिंहलद्वीप वर्णन, समुद्र वर्णन, विवाह वर्णन, युद्ध वर्णन इत्यादि लेंगे, उस अर्थ में लेने पर तो ढोला में कोई ऐसा विस्तृत वर्णन न मिल सकेगा जो ठीक वर्णन कहा जा सके ।

राजस्थान देश वर्णन

पहले राजस्थान देश का प्राकृतिक वर्णन ही लीजिए । यह वर्णन किसी एक स्थान पर परंपराबद्ध वर्णन के रूप में नहीं है परंतु काव्य के भिन्न भिन्न स्थलों पर प्रसंगानुसार बिखरा हुआ मिलता है । उसी को यहाँ संकलित कर दिया गया है ।

मारवणी और ढोला के सवाद में पहले पहल ग्रीष्मकाल के राजस्थान का बड़ा स्वाभाविक वर्णन हुआ है—

थळ तत्ता, लू सॉमुही, दाभोला पहियाह ।

म्हॉकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह ॥२४१॥

जलती हुईं बालू, रेत की भाड़ और तीव्र लू की लपटे—बस, राजस्थानी ग्रीष्म का चित्र इन दो संकेतों से ही खिंच जाता है ।

वर्षाऋतु राजस्थान का प्राण है । वह इस प्रदेश की श्रेष्ठ ऋतु है और इस ऋतु में इस देश की शोभा भी निराली रहती है । माळवणी और ढोला के सवाद में वर्षाकालीन राजस्थान का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

प्रीतम, कामणगारियाँ थळ थळ वादळियाँह ।

घण वरसतइ सूकियाँ, लूसूँ पाँगुरियाँह ॥२४८॥

बाजरियाँ हरियाळियाँ, विचि विचि वेलाँ फूल ।

जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥२५०॥

घर नीली, घण पुडरी, घरि गहगहइ गमार ।

मारू देस सुहामणउ सॉवणि सॉभी वार ॥२५१॥

डूँगरिया हरिया हुआ, बडे भिंगोखा मोर ॥२५३॥

नदिनाँ, नाळा, नीभरण पावस चढ़िया पूर ॥२५६॥

अति घण ऊनिमि आवियउ, भाभी रिठि भइ वाइ ।

वग ही भला त वप्पडा घरणि न मुकइ पाइ ॥२५७॥

च्यारइ पासइ घण घणउ, बीजळि खिवइ अगास ।

हरियाळी रुति तउ मली, घर सपति, पिउ पास ॥२६०॥

काळी कठळि वादळी वरसि ज मेल्हइ वाउ ।

प्री विण लागइ बूँदड़ी जॉणि कटारी-घाउ ॥२६७॥

राजस्थान का यह वर्णन कितना हृदयग्राही और स्वाभाविक है, इसे वही जान सकता है जिसने वर्षाऋतु में रहकर राजस्थान के सौंदर्य का अनुभव

किया है। किम प्रकार सावन और भादों की बदलियाँ, जिन्हें देशी भाषा में 'लोर' कहते हैं, बरसकर सूख जाती है और पुनः लू की गरमी से जलसंपन्न हो जाती हैं, कोमो तक विस्तृत हरेभरे बाजरे के खेत और उनमें फेली हुई ककड़ी और मतीरे की बेलें कैसा सुहावना दृश्य उपस्थित करती हैं, ग्रामीण जन वर्षाऋतु में कितने मस्त रहते हैं, हरे चोले को पहने हुए पर्वतों पर मोर कैसा मनोहर बोलकर नाचना रहता है, सावन के महीने में राजस्थान की सव्या कैसा स्वर्गीय सौंदर्य धारण कर लेती है और बरसाती नाले (वाहळे) और नदियाँ बेंसी ललित गति में कलकल करती हुई प्रवाहित होती हैं—इन दृश्यों को आँखों से देखकर जिन्होंने अनुभव नहीं किया वे राजस्थान देश को क्या जानें।

वीसू चारण मारवणी का रूप वर्णन करते हुए सगर्व राजस्थान देश और राजस्थान के लोगों का वर्णन करता है—

देस सुहावड, जळ सजळ, मीठाबोला लोड।

मारू कॉमण मुई दखिण, जइ हरि दिवइ त होइ॥४८५॥

यह केवल अतिशयोक्ति नहीं है। तथ्य का अनुसंधान करनेवालों के लिये वास्तविक सत्य है। इसमें सदेह नहीं कि मरुस्थल में जल का अन्य देशों की अपेक्षा अभाव है, परंतु वहाँ जल गहरे कुँओं से निकलने के कारण अधिक आरोग्यकारी (सजळ) होता है। मरुस्थल की बोली के संबन्ध में भी लोगों को भ्रम है कि वह कर्णकटु होती है, परंतु मरुस्थल की बोली के मिठास का जिन्हें अनुभव करना हो वे खास मारवाड़ी (जोधपुरी) भाषा का अनुशीलन कर देखें। इन्हीं कारणों से यदि स्वदेशगौरव से उत्साहित होकर कवि कह बैठे कि राजस्थान की रमणी बड़े भाग्य से अथवा ईश्वर की कृपा से ही दक्षिण देश में मिल सकती है तो इसमें अनुचित ही क्या है।

वीसू चारण फिर कहता है—

यळ भूरा, वन भंखरा, नहीं सु चपड जाड।

गुणे सुगंधी मारवी, महकी सह वणराइ ॥४६८॥

मारवाड़ रेतीली भूमि अनुपजाऊ होने के कारण वर्ष के अधिक मात्रा में भूरे रंग की दिखाई देती है, वहाँ के वन विशीर्ण और भूखाड़ होते हैं, चपा पैदा नहीं होता, लेकिन चपा से भी बढ़कर अपने गुणों से सुगंधित करनेवाली आदर्श रमणियाँ वहाँ उत्पन्न होती हैं।

राजस्थान के गहरे कुँओं को देखकर ढोला अपने अनुभवों को प्रकट करता है—

ऊँडा पाणी कोहरइ, थळे चढीजइ निट्ठ ।
मारवणी कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ठ ॥५२३॥
ऊँडा पाणी कोहरे दीसइ तारा जेम ।

ऊसारता थाकिस्यइ, कहउ, काढिस्यइ केम ॥५२४॥

राजस्थानी कूपों का कैसा हूबहू चित्र है। कुँओं में पानी बहुत गहराई पर मिलता है और ऊपर से देखने पर नीचे पृथ्वी के गर्भ में पानी चमकते हुए तारे की तरह दिखाई देता है। उसे निकालना तो बड़ा कठिन होता है। प्रेम से प्रेरित ढोला को ऐसा देश भी देखना पडा जहाँ पानी इतनी कठिनाई से प्राप्त होता है।

ढोला दुष्ट ऊमरसूमरे के कुचक्र में पड़कर उसके कपटपूर्ण आतिथ्य को स्वीकार करता है। उस स्थान पर राजस्थान की यात्रा के बीच पड़ाव (Camp) की महफिल का बड़ा मनोज्ञ चित्र अंकित हुआ है—

तत तणकइ, पिउ पियइ, करहउ ऊगाळेह ॥६३१॥

एक और तंत्री (सारंगी) झुंकार कर रही है, दूसरी और ढोला ऊमरसूमरे का आतिथ्य स्वीकार कर उसके साथ मदिरापान कर रहा है (जैसा कि राजपूतों का पारस्परिक शिष्टाचार होता है), दूर पर बैठा हुआ ढोला का ऊँट लबी यात्रा के बीच में विश्राम पाकर जुगाली कर रहा है। कैसा सुंदर और स्पष्ट चित्र है। यही नहीं, ऊँट को बैठाने के ढग तक का सूक्ष्म निदर्शन किया गया है—

ऊँमर साल्ह उतारियउ, मन खोटइ मनुहारि ।

पगसूँ ही पग कुँटियउ, मुहरी भाली नारि ॥६२६॥

जगल के विश्रामस्थलों पर पास में कोई वृद्ध अथवा कोई बॉधने का खंभा न होने के कारण (क्योंकि राजस्थान में और विशेषतः पूगळ के पास की ऊजड़ वनभूमि में दरख्त कहाँ मिलते), ऊँट के पैर को उसी के मुड़े हुए स्थान पर दोहराकर रस्सी से बॉध दिया जाता है—राजस्थान में यह दृश्य रोज देखने को मिलता है। चित्र की पूर्णता प्रसंग में स्वभावोक्ति का रसचिचन करती है।

अत में मारु देश का विस्तृत और सपूर्ण वर्णन उस स्थल पर होता है जहाँ सौतिथाडाह से प्रेरित होकर माळवणी मारु देश की निंदा करने पर उतरती है। उस निंदावर्णन में इतना स्वाभाविक तथ्य है कि व्याजस्तुति की

तरह पढने पर वही राजस्थान की आत्मा का चित्र उपस्थित करता है। माळवणी व्यंग्य के साथ कहती है—

वाळउँ, वावा, देसड़उ, पाँगी जिहॉ कुवाँह ।
 आधीरात कुहकड़ा, ज्यउँ माणसाँ मुवाँह ॥६५.१॥
 वाळउँ, वावा, देसड़उ, पाँगी-सदी ताति ।
 पागी केरइ कारणइ प्री छडइ अधराति ॥६५.५॥
 वावा, म देइस मारुवाँ, सूधा एवाळोँह ।
 कधि कुहाड़उ, सिरि घड़उ, वासउ मक्ति थळोँह ॥६५.८॥
 वावा, म देइस मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि ।
 हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सीचती य मरेसि ॥६५.९॥
 मारु, थॉकइ देसड़इ एक न भाजइ रिडु ।
 ऊचाळउ क अवरसणउ, कह फाकउ, कह तिडु ॥६६.०॥
 जिय मुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाला रूँख ।
 आके-फोगे छॉहड़ी, हूँछॉ भॉजइ भूँख ॥६६.१॥
 पहिरण ओढण कचळा, साठे पुरिसे नीर ।
 आपण लोक उमाँखरा, गाडर छाळी खीर ॥६६.२॥

इस वर्णन में अस्त्य का अंश बहुत थोड़ा है। यद्यपि जिस मानसिक परिस्थिति में माळवणी के हृदय के उद्गार प्रकट हुए हैं वह निंदामूलक हैं, परंतु इसमें किंचिन्मात्र भी सदेह नहीं है कि वस्तुवर्णन की दृष्टि से यही वर्णन राजस्थान का सच्चा परिचायक है, यही उसकी विशेषताएँ हैं। मानव अभिव्यक्तियाँ भिन्न होती हैं—भिन्नवर्चिर्हि लोकः—किन्हीं के लिये यह अरुचिकर होगा, परंतु बहुतां के लिये यही भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' है।

कुँओँ की गहराई, आधी रात ही में मालियों का सगीतमय मधुर लय के साथ जल खींचना प्रारंभ करना, भोर में ही पनिहारियों का मिल जुलकर राग अलापते हुए कुँओँ से पानी भरने जाना, ऐसे सूक्ष्म निदर्शन हैं कि राजस्थान देश की आत्मा का चित्र स्मृति में जागरित हो जाता है—यही है सगीतमय राजस्थान की विशेषता। रंग, सुगंध और गीत की विचित्रताओं से साधारण से साधारण कोटि का राजस्थानी जीवन अनुप्राणित रहता है। राजस्थान में गड़रिये भेड़, बकरी, गाय, भैंस चराने को सवेरे से ही जंगल की ओर निकल जाते हैं और किसान लोग प्रातःकाल होते ही अपने खेतों की ओर निकल पड़ते हैं। उनकी क्लियाँ उनके लिये भोजन

सामग्री, पानी का घड़ा, कुल्हाड़ा इत्यादि खेती के औजार लेकर पीछे से जाती हैं। अवर्षा के कारण कभी कभी अकाल पड़ जाता है। उस समय निम्नकोटि के लोग पास ही के उपजाऊ देशों में निर्वास (ऊचाळु) कर जाते हैं। कई बार टिड्डीदल खेती को नष्ट कर देता है। जंगल में विपैले सॉप बहुतायत से मिलते हैं। वृक्ष बहुधा काटेदार ही होते हैं और उनमें भी अधिकांश छोटे कद के होने के कारण पथिक को दिन की धूप में पर्याप्त छाया का भी सुख नहीं मिलता। काटेदार घास के गोखरू (भुरट) में से जो धान निकलता है, उसे भी लोग रुचि से खाते हैं और भेड़-बकरी इत्यादि का दूध मजे में पीते हैं। ऊन बहुतायत से पैदा होने के कारण लोग कबल ओढ़ते हैं और उन्हीं के वस्त्र भी बनाकर पहनते हैं^१। ऐसे कष्टमय देश में कठोरता से जीवननिर्वाह करनेवाली जाति स्वभाव से ही साहसी, सहिष्णु, वीर और दृढ़ होती है। इसी कठोरता और सहिष्णुता के बल राजस्थान की वीर जातियों ने सदियों तक भारतवर्ष की स्वातन्त्र्य-ध्वजा को गर्व से उठाए रखा।

वर्णन की दृष्टि से उपर्युक्त विवरण अद्भुत सत्य है। अब यदि महलों के ऐशआराम में पली हुई किसी स्त्री (माळवणी) को यह देश रूखासूखा और अरुचिकर प्रतीत हो तो उससे देश की निंदा नहीं होती। यों तो दोषों से कोई स्थल खाली नहीं है। मारवणी उलटकर जब माळव देश की निंदा करती है तो उसमें उस देश के प्रति भी अरुचि हुए बिना नहीं रहती। सच तो यह है कि निंदा और स्तुति आपेक्षिक गुण हैं और वैयक्तिक रुचि पर निर्भर रहते हैं। पहाड़ी मुल्क, रेतीले उपजाऊ मैदान, नदी तट के सुरम्य कूल, समुद्र के बीच के टापू इन सब भिन्न भिन्न प्रदेशों में प्रकृति का भिन्न भिन्न प्रकार का सौंदर्य निहित रहता है। साहित्य रसिक को तो केवल वास्तविकता की निष्पन्न दृष्टि से सच्चा परिचय प्राप्त करना अभीष्ट होता है, न कि मले और बुरे का निर्णय करना।

रमणी-रूप-वर्णन

राजस्थान की रमणी का रूप-सौंदर्य-वर्णन हमें उस स्थल पर उपलब्ध होता है जहाँ वीसू चारण ढोला से मारवणी का रूपवर्णन करता है। इस

१ यह चित्र राजस्थान के ठेठ देहाती जीवन का है। नागरिक जीवन, विशेषतः आधुनिक नागरिक जीवन, पर ये बातें घटित नहीं होतीं।

वर्णन में दो विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि रूपवर्णन माधारणतः राज-
स्थानी स्त्रीसौंदर्य का चित्ररूप में पञ्चिवायक है, दूसरा यह कि अर्वाचीन काल
की अलंकारशान्त्र और नव्यभिन्न नववी रूढियों से बहुत कुछ मुक्त होने के
कारण स्वच्छ और अन्वाभाविक है।

मारवणी के सौंदर्य और शील के वर्णन में उपमानों की पवित्रता और
उनका ऐश्वर्य सौंदर्य के आदर्श को परंपराभुक्त विषयवासना की कोटि से
उठाकर अकल्पित और पवित्र सात्त्विक सौंदर्य के पट पर स्थापित कर देते
हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

गति गंगा, मति सरस्वती सीता सीढ सुमाह ।
महिलाँ सरदर मारुई अवर न दूजी काड ॥४५१॥
नमणी, खमणी, बहुगुणी, सुकोमली तु सुकच्छ ।
गोरी गगा नीर ज्यूँ, मन गरवी, तन अच्छ ॥४५२॥
रूप अनूपम मारुवी, सुगुणी नयण सुचग ।
साभण इण परि राखिजइ, जिम सिव मसतक गग ॥४५३॥

जिसकी पतितपावनी गगा के समान गति है, सरस्वती के समान निर्मल
मति और सीता के समान शील स्वभाव है; जो विनयशीला, क्षमाशीला,
स्वभावकोमला और आत्मगौरवशालिनी है—ऐसी श्रेष्ठ रमणी को पुरुष
यदि, गंगा को शिव की तर्ह, आदर्शहित मल्लक पर स्थान दे तो उसे
अपना सौभाग्य ही समझना चाहिए। मारवणी के इस शीलसंपन्न सौंदर्य
के विवरण के साथ उस कल्पित और वासनापरिपुष्ट सौंदर्य की तुलना
करना चाहिए, जिसने गीतमाल के कवियों के हाथ में पड़कर स्त्रीसौंदर्य
को पुरुष के विलास और वासनातृप्ति का साधनमात्र बना दिया था।

शील को छोड़कर अब अवयवसौंदर्य के वर्णन पर आइए। यद्यपि
यह नहीं कहा जा सकता कि इस काव्य का रूप-सौंदर्य-वर्णन सर्वथा
अलंकारपरंपरा से निर्मुक्त है, परंतु यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है
कि अधिकांश नवीन और स्वतंत्र है।

नीचे उद्धृत दूहों में परंपरागत उपमानों की शृंखला हिंदी के पिछले
खेत्र के शृंगारी कवियों से किसी प्रकार कम नहीं है—

गति गयंद, जेव केळिग्रभ, केहरि जिम कटि लक ।
हीर बसण, विद्रम अवर, माल भुक्कि मयक ॥४५४॥

मारू घूँघटि दिष्ट मई, एता सहितं पुण्डि ।
कीर, भमर, कोकिल, कमळ, चद, मयद, गयद ॥४५५॥
मृगनयणी, मृगपति-मुखी, मृगमद-तिलक निलाट ।
मृगरिपु-कटि सुदर वणी, मारू अइहइ घाट ॥ ४६६ ॥

परतु प्रथावद्ध उपमानों का थोड़ा समावेश होते हुए भी परपराभुक्त उपमानों से निर्मुक्त अवयवसौंदर्य का वर्णन मारू रूप-वर्णन में बहुतायत से मिलता है। इस प्रकार के वर्णन की स्वच्छता में स्वभावोक्ति और राजस्थान रमणी-सौंदर्य की विशेषता की गहरी छाप लगी होने से हम इसी को राजस्थान के स्त्रीसौंदर्य का सच्चा रूप समझते हैं—

मारू-देस उपन्नियाँ, ताँह का दत सुसेत ।
कूँभ ब्रचॉ गोरगियाँ, खजर जेहा नेत ॥४५७॥
तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तड़ा विवीह ।
ढोला, थाँकी मारुई जॉणि विलूघउ सीह ॥४५९॥
डींभू लक, मराळि गय, पिक सर एही वॉणि ।
ढोला, एही मारुई, जेहा हभ निवॉणि ॥४६०॥
चपावरनी, नाक सळ, उर सुचग, विचि हीण ।
मदिर बोली मारुवी, जाणि भणक्की वीण ॥४६२॥
मारू देस उपन्नियाँ, नड़ जिम नीसरियाँह ।
साइ धण, ढोला, एहवी, सरि जिम पध्रियाँह ॥४६३॥
जंघ सुपचळ, करि कुँअळ, भीणी लत्र प्रलत्र ।
ढोला, एही मारुई जॉणि क कणयर-कंब ॥४७३॥
मारू-देस उपन्नियाँ, सर ज्यउँ पध्रियाँह ।
कड़ुवा बोल न जाणही, मीठा बोलणियाँह ॥४८४॥
असि अभोखण अन्छियउ, तन सोवन सगळाइ ।
मारू अत्रा-मउर जिम, कर लगगइ कुभळाइ ॥४७१॥

मारवाड़ देश की स्त्रियों की दत्तपत्ति शुभ्र और स्वच्छ होती है (इसे जलवायु की स्वास्थ्यप्रद विशेषता समझी जाय चाहे ताबूल के न्यूनतम प्रचार का फल, परतु है यह विलकुल सत्य । आजकल दाँतों की यह स्वच्छता विलीन होती जा रही है) । कुरभ पत्नी के समान लंबी सुदार उनकी गर्दन होती है, नेत्र तीव्र होने हैं । लंबी सुकुमार गर्दन को कुज पत्नी की

गर्दन की, पयोधरों को पपीहे की, कटि को डीभू (वर) की, अग्यष्टि को सीधे तीर की और जघा को कमल के कोमल गर्भ की उपमा दी गई है। इन सबमें उपमानों की नवीनता देखने योग्य है। कड़ुवा बोलना तो वे जानती ही नहीं, जब बोलती हैं तब बीणा की भंकार का भ्रम होता है।

आलंकारिक सूक्त की नवीनता उस स्थान पर विशेषता से देखी जाती है जहाँ मारवणी के मुख को आलंकारिक प्रथा के अनुसार चद्रमा से समता न देकर सूर्य से उपमा दी गई है—

मारु सी देखी नहीं, अण मुख टोय नयणौह ।

थोड़ो सो भोळ पढ़इ, टणयर उगहँताँह ॥४७८॥

सूर्य से समानता स्थापित करने का कारण यह हो सकता है कि कवि का अभीष्ट मारवणी के सौंदर्य में वह विशुद्ध शालीनता और पवित्रता प्रकट करने का है जो सूर्य की ओजस्विनी प्रभा द्वारा लक्षित होना है।

ऋतुवर्णन

यद्यपि राजस्थान देश के विवरण में ऋतुओं का बहुत कुछ वर्णन आ गया है परंतु उस प्रसंग में केवल वर्षा और ग्रीष्म के ही उदाहरण दिए गए हैं क्योंकि वे ही दो ऋतुएँ राजस्थान में अधिक विशेषता रखती हैं। एक अपनी सुखदता, सौंदर्य और उपकारिता के लिये राजस्थान का जीवनप्राण है, दूसरी अपनी विशेष उग्रता और भयकर आतक से राजस्थान के विशेष भयकर रूप को सामने लाती है। इनके अतिरिक्त राजस्थानी वर्षाऋतु की कुछ और विशेषताओं का अन्य स्थलों पर वर्णन हुआ है, जो सन्क्षेप में नीचे उद्धृत की जाती हैं। परंतु, जैसा कि आगे कहा जा चुका है, इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि ऋतुओं का प्रसंग नायक-नायिका के विरहविलापों में नीर-क्षीर न्याय से मिला हुआ है। स्वतंत्र रूप में ऋतु के लिये ऋतु का वर्णन कहीं भी नहीं हुआ है।

वर्षावर्णन—मारवणी सखियों से अपनी विरहदशा व्यक्त करती हुई कहती है—

गजा परजा, गुणिय जण, कवि जण, पडित, पात ।

सगळा मन जळुव हुअड वूठैतौ वरसात ॥४०॥

बीजुळियों चहलावहलि आभय आभय कोडि ।

कड रे मिलडेली सज्जना कस कचूकी छोडि ॥४६॥

ऊनमियउ उत्तर दिसई काळी कठलि मेह ।

हूँ भीजूँ घर अगणइ पिउ भीजइ परदेह ॥ ४३ ॥

जळ थळ, थळ जळ हुइ रखउ, बोलइ मोर किंगार ।

सावण दूमर हे सखी, किहाँ मुभु प्राण अधार ॥ ४६ ॥

उत्तर दिशा से काली-काली घटाएँ उमड आई हैं और मूसलाधार वरसने लगी हैं । चारों ओर जल ही जल हो रहा है, आकाश के चारों कोनों में करोड़ों बिजलियाँ चमक रही हैं । ऐसे सुसमय में क्या राजा, क्या प्रजा, क्या गुणिजन, पंडित और क्या वनस्पति सभी को आतरिक आनंद प्राप्त होता है ।

मालवणी ढोला के सवाट मे वर्षा का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—

पगि पगि पॉणी पथसिर, ऊपरि अबर छाँह ।

पावस प्रगट्यउ पदमिणी, कहउ त पूगळ जाँह ॥२४४॥

लागे साद सुहाँमणउ, नस भर कुभुडियाँह ।

जळ पोइणिए छाइयउ, कहउ त पूगळ जाँह ॥ २४ ॥

मेहाँ बूठाँ अन वहळ, थळ ताढा जळ रेस ।

करसण पाका, कण खिरा, तद कउ बळण करेस ॥२६४॥

ऊँचउ मदिर अति घणउ आवि सुहावा कत ।

बीजाळ लियइ भवूकडा, सिहराँ गळि लागत ॥२६८॥

रास्तो मे जगह जगह पर स्वच्छ वर्षाजल की तलैया भरी लहराती हैं जिनके चारों ओर रातभर कुरफे कलरव करती हुई बड़ी सुहावनी प्रतीत होती हैं, रह रहकर पपीहा बोल उठता है । ढोला कहता है, इससे सुंदर समय प्रस्थान के लिये दूसरा कौन सा हो सकता है । परंतु मालवणी की राय मे ऐसे समय मे घर ही पर रहना अधिक उचित है जब खेती पक रही हो और भूमि वर्षा से तृप्त होकर जल जैसी शीतल हो रही हो । जब बिजलियाँ चमक चमककर पर्वत शिखरों से लिपट रही हों तब ऊँचे महलों मे सुखपूर्वक प्रेम में मग्न रहना ही चाहिए ।

हरे भरे लहराते हुए वाजरे के विस्तृत खेतों के बीच बीच में नाना प्रकार की बेलें फैल रही हैं, श्रावण के महीने में मारु देश की साध्यकालीन छटा बड़ी ही अनुपम हो रही है, हरेभरे पर्वत प्रदेशों में स्थान स्थान पर मयूर नाच गा रहे हैं, कहीं पर चिकनी भूमि पर ऊँट के फिसलने का भी डर रहता

है, रह रहकर वायु के शान्त झोंके हृदय में उल्लास पैदा करते हैं। सचमुच, राजस्थानी लोग इस ऋतु में स्वर्गोपम आनन्द का उपभोग करते हैं। वादलों से समय समय पर चौछार होती रहती है जो वनस्पति और मानवजीवन के लिये श्रमृत सर्वावनी का कार्य करती है। बरसाती जुद्ध नदियों और नालों में जल कलकल करना हुआ प्रगहित होता है। आकाश में विधर दृष्टि उठाकर देखो विजलियों की चहल पहल बढ़ी ही सुझावनी लगती है। वर्षा में प्रक्षालित होकर पर्वतशिखर हरित परिधान और रंग-बिरंगे पुष्पों के आभूषण धारण कर लेते हैं मरोवर भर जाते हैं और नदी-नाले तरंगों में आदीनित होते रहते हैं; मेढक अपनी सुमधुर गूँठ अलग ही लगाए रहते हैं और विजलियों चमक चमककर पर्वत शिखरों का आलिंगन करती हैं। क्या जड़ और क्या चेतन, प्रकृति की समस्त सृष्टि में सयोग और विश्वर्मर्मा का दृश्य चारों ओर दृष्टिगोचर होता है। ऐसी है राजस्थान की वर्षा ऋतु।

शीतवर्णन—शीत ऋतु के वर्णन में राजस्थान की अधिक विशेषता नहीं भूचकती। यह वर्णन सार्वदेशिक और साधारण सा है। कुछ उदाहरण उद्धृत किए जाते हैं—

निशि गिति मोती नीपलइ सीप समदौँ मॉँहि ॥२८१॥

निशि दीहे तिल्ली त्रिइइ, हिरंगी भालइ गाम ॥२८२॥

निशि गिन नाग न नीसरइ, दाभइ वनखँड दाह ॥२८४॥

दिन छोट, मोटी रयण, यादा नीर पवन्न ॥२८५॥

उत्तर आज न जाइयइ, जिहौँ न सीत अगाव ।

ता भइ सूरिन उरपतउ, ताकि चलइ दखिणाध ॥३०१॥

राजस्थान का शीतकाल यद्यपि अल्पस्थायी होता है परंतु कष्टसह्य होता है। जत्र पाला पड़ने लगता है तो घोड़ों की रजा के लिये उनकी पीठ पर पाखर डाल दी जाती है। शीतकाल सयोगी प्रेमियों को सुखदायी और विरहियों को दुःखदायी होता है। समुद्रों में सीप के गर्भ में मोती पैदा होते हैं, तिल के पदों में बीज पड़कर फलियाँ चटखने लगती हैं और हरिणियों को गर्भाधान इसी ऋतु में होता है। सर्प इस ऋतु में विलों से बाहर नहीं निकलते, वन कठोर शीत के कारण झुचसकर झुआइ हो जाते हैं। रातें बढ़ी और दिन छोट हो जाते हैं और पवन और जल का शीतलत्व

काटने लगता है। उत्तर दिशा की शीतल पवन के भोंके मरुस्थली पर उगी हुई वनस्पति को जला देते हैं, साल भर हराभरा रहनेवाला आक (मदार) भी जल जाता है। पाला इतने जोर का पड़ता है कि लोग अग्नि, प्रेयसी और मन्त्र का सेवनकर शीत से बचाव करते हैं। और तो और, इस कठोर सर्दी के भय से विचारे सूर्य को भी दक्षिण दिशा के उष्ण कक्ष में छिपकर शरण लेनी पड़ती है।

करहा-वर्णन

ऊँट राजस्थान का मुख्य पशु है और वहाँ का सर्वोपयोगी वाहन भी। राजस्थान का वर्णन ऊँट के वर्णन के बिना अधूरा रह जाता, परन्तु 'ढोला-मारूरा दूहा' में करहा वर्णन स्वभावोक्ति की दृष्टि से अपना विशेष चमत्कार रखता है। उसी वर्णन का कुछ अंश नीचे देते हैं—

पलाणियउ पवने मिलइ, घड़िए जोइण जाय ।
 रइन्नारी, ढोलउ कहइ, सो मो आवइ दाय ॥३०८॥
 दूजा दोवड़ चोवड़ा, ऊँटकटाळउ खाड़ ।
 जिण मुखि नागर बेलियाँ सो करहउ केकाँण ॥३०९॥
 किणि गळि घालूँ घूघरा, किणिसुखि वाहूँ लज्ज ।
 कवण भलेरउ करहलउ मूँध मिलावइ अज्ज ॥३१२॥
 ढोलउ करहउ सज कियउ कसत्री घाति पलाँण ।
 सोवन-वानी घूघरा चालण-रइ परियाँण ॥३४३॥
 करहा, पाणी खच पिउ, त्रासा घणा सहेसि ।
 छीलरियउ दूकिसि नहीं, भरिया केथि लहेसि ॥४२६॥
 करहा, नीरूँ जउ चरइ, कटाळउ नइ फोग ।
 नागरवेलि किहाँ लहइ, थारा थोत्रड़ जोग ॥४२८॥
 करि कइरौँ ही पारणउ, अइ दिन यूँ ही ठेलि ॥४३०॥
 करहा लन्न-कराड़िआ, वेवे अगुल कन्न ॥४३३॥
 सड़ सड़ बाहि म कन्नड़ी, रौँगाँ देह म चूरि ।
 बिहुँ दीपा बिचि मारुई, मोथी केती दूरि ॥४६२॥
 करहा, वामन रूप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि ॥४६७॥
 करहा काळी काळिया, चाली गइ किरणाँइ ॥४६९॥

सक्ती बाँधे बीटुळी, ढीली मेल्ले लज ।
 सगही पेट न लेटियउ, मूँध न मेल्ले अज ॥५००॥
 पगसू ही पग कूँटियउ, मुहरी भाली नारि ॥६२६॥
 तत तगूकइ, पिठ पियइ, कग्हउ ऊगाळेइ ॥६३१॥

ढोला को अपनी लवी यात्रा के लिये ऐमे ऊँट की जरूरत है जो थोड़ा सा त्वरित करने पर घड़ी भर में एक योजन चला जाय । वैसे ढोहरे-चौहरे शरीरधारी, कौँटेदार घास को चरनेवाले ऊँट साधारणतः बहुत मिलते हैं, परंतु जो नागरवेलि के पत्तों को चरनेवाला उत्तम जाति का ऊँट होता है, वही ऊँटों में शिरोमणि गिना जाता है और वही इस यात्रा में सफल हो सकता है । यदि ऐसा ऊँट मिल जाय तो ढोला उसे आभूषणों से खूब सजावेगा, गले में सुवर्णनिर्मित घुँशुरू की माला और मुख में कीमती नकेल टालेगा । अंत में ऐसा ऊँट मिल गया । ढोला ने उस पर जड़ाऊ और चित्रित पल्लोण सजाया और चलने को तैयार हुआ ।

ढोला ने ऊँट पर पल्लोण कस लिया, नकेल टाल दी और चढ़ने के लिये राजद्वार के आगं आधीरात के समय उसे बठा लिया । उठती वार जब ऊँट स्वभावतः बलबलाया तो माळवणी की नींद खुल गई । अब क्या थी, वर्षा की हवा के झोंकों में जैसे मेघखंड उड़ते जाते हैं वैसे ही ऊँट ढोड़ पड़ा, नहीं, हवा हो गया । बहुत सा रास्ता पार कर लेने पर एक स्थान पर ऊँट को स्वच्छ जलाशय का जल पिलाने के लिये ठहराया । समझदार ऊँट से ढोला ने कहा—‘यह अच्छा मौका है, तूत होकर जल पी ले, आगे निर्जल मरुस्थल पड़ता है, कौंसों तक पानी नहीं मिलेगा, फिर तू तो उत्तम जाति का ऊँट है, गंदले पोखरों का जल तो पिएगा नहीं, और भरे हुए स्वच्छ जलाशय मिलेंगे कहाँ ?’ इसके बाद ऊँटकटारा (घास विशेष) और फोग (पौधा विशेष) ऊँट के सामने चरने को लाकर रखा, नागरवेलि वहाँ कहाँ मिलती ? फिर कगील की झाड़ी काटकर उसके सामने चरने के लिये डाली, जाल (वृक्ष विशेष) के पत्ते भी डाले । ढोला का ऊँट लवी गरदनवाला था, जिसके दो दो अंगुल के छोटे छोटे कान थे । इतने में सच्चा होने लगी, प्रगळ अब भी दूर था । ढोला ने हताश होकर ऊँट को साँटी से सड़ा-सड़ पीटना शुरू किया । स्वामिमक्त पशु ने वीरज देते हुए कहा—‘साँटी की सड़ासड़ बौँछार मेरे शरीर पर न करो । रानों के द्वाव से और ठोकड़ों से मेरी पसलियों को चकनाचूर न करो । मुझे तो वौँही अपने कर्तव्य और

स्वामिकाज का पूरा ध्यान है। त्रैलोक्य के उस पार भी यदि जाना पड़े तो मैं नियत समय पर तुम्हें अपनी प्रेयसी से मिला दूँगा।' ढोला ने ऊँट से कहा— 'अरे कच्छ देश के काले ऊँट (जो ऊँटों की सर्वोत्तम जाति है) ! तू किस होश में है ?' सूर्य की किरणें अस्त हो रही हैं। अब तो तुम्हें (त्रिविक्रम) का रूप धारण कर दीर्घकाय होना पड़ेगा, चारों कदम उठाकर, लयी चौकड़ी भरकर पवन में उड़ जाना पड़ेगा, तभी तो रात्रि से पहले पहले पूगळ पहुँच सकता है।

ऊँट को यह शासन असह्य हुआ। उसने स्वामी को चेतावनी देते हुए कहा— 'पगड़ी को कसकर बाँध लो, नकेल को ढीली छोड़ दो। यदि पवनवेग से चलकर तुम्हें अपनी प्रेयसी से संध्या होते होते न मिला दूँ तो उत्तम सरढ़ी (ऊँटनी) के पेट से जनमा हुआ न समझना !'

आगे चलकर एक स्थल पर ऊँट का और वर्णन हुआ है। ऊमर के कपटपूर्ण स्वागत को स्वीकार करने को ढोला तैयार हुआ। उधर आसपास में कोई खूँटा अथवा ऊँट बाँधने का स्थान न होने पर उसने ऊँट के पैर को घुटनों के पास दोहराकर रस्ती से बाँध दिया जिससे वह भाग न जाय और नकेल मारवणी को पकडा दी। ऊँट के पैर को ऊँटने की यह प्रथा अब तक राजस्थान में देखी जाती है। यहाँ पर ऊँट के विश्रब्ध होकर जुगाली करने का अच्छा स्वभाव चित्र उपस्थित हुआ है। अतः मे ऊमर के षडयत्र से वच भागने की जल्दी में ढोला मारवणी पैर बाँधे हुए ऊँट पर ही चढकर भाग निकले।

उपर्युक्त करहा वर्णन में ऊँट के स्वभाव, उसकी वेशभूषा, आकृति, सहनशीलता आदि अनेक बातों का बड़ा ही मनोरम और स्वाभाविक निदर्शन हुआ है जो राजस्थान से थोड़ा बहुत भी परिचय रखनेवाले पाठकों को रुचिकर हुए बिना न रहेगा।

(८) ढोला मारू : एक प्रेमकहानी

ढोला मारू की प्रेमकहानी हिंदी के प्रारम्भिक भक्तिकाल के प्रेममार्गी कवियों की प्रेमकहानियों की परंपरा से बहुत कुछ मिलतीजुलती है। कबीर के समय के कुछ ही बाद कुछ भक्त एवं दार्शनिक कवियों की काव्यरुचि का मुकाव प्रेमकहानियों द्वारा जनता को ईश्वरीय प्रेम का दिग्दर्शन कराने की

और हुआ और अनेक भावुक कवि इस क्षेत्र में उतर पड़े। उनकी प्रेम की पीर की कहानियों ने बहुत शीघ्र जनता के हृदय में घर कर लिया। यद्यपि इन कहानियों के लेखक अधिकतर सूफी सिद्धांत के मुसलमान थे परन्तु ये कहानियाँ हिंदुओं के गार्हस्थ्य जीवन की छाया को लेकर लिखी गई थीं। इनकी मधुरता, कोमलता और मार्मिकता ने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया कि 'एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंगों के भेदों की ओर से व्यान हटाकर एकत्व का अनुभव करने लगता है।' इन जनता के कवियों ने अपनी प्रेमकहानियों द्वारा प्रेम का शुद्ध मार्ग प्रकट करते हुए उन सामान्य जीवनदशाओं को सामने रखा जिनका प्रभाव मनुष्य मात्र पर एक सा दिखाई पड़ता है। कर्त्तार ने तो इस जीवन से भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता (Mysticism) का अपनी अटपटी बाना में उपदेश किया था। प्रत्यक्ष जीवन के सौंदर्य और प्रेम, दुःख, सुख, भय, आशंका, ईर्ष्या और महानुभूति को हृदयस्पर्शी स्वाभाविकता के साथ प्रकट करनेवाले ये प्रेममार्गी लेखक ही थे। विक्रम को १६वीं शताब्दि के मध्य में मुसलमान कवि कुतुबन ने 'मृगावती' नामक प्रेमकहानी दोहे चौपाइयों में लिखी। कहानी में प्रेममार्ग के अपूर्व आत्मत्याग, कष्टसहिष्णुता और प्रेमसाधना का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। इसी समय के लगभग मझन कवि ने 'मधुमालती' नाम की प्रेमकहानी लिखी जिसमें प्रेमनिर्वाह की कथा बड़ी सहृदयता के साथ विशद कल्पनाओं से परिपूर्ण हृदयग्राही वर्णनों द्वारा दोहा चौपाइयों में कही गई है।

तीसरी साहित्य में प्रसिद्ध पद्मावत की प्रेम कहानी है जिसे प्रख्यात कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने स० १५६७ के लगभग लिखा। जायसी ने अपने महाकाव्य में अपने से पूर्व रचित प्रेमकहानियों की तालिका दी है, जिससे यह प्रतीत होता है कि इस साहित्यिक परंपरा में कई उत्कृष्ट प्रेमकहानियाँ लिखी गई थीं।

विक्रम धँसा प्रेम के वारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा ॥
 मधू पाछु मुगधावति लागी। गगन पूर होइगा वैरागी ॥
 राजकुँवर कचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ ॥
 साध कुँवर खडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू ॥
 प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। उपा लागि अनिरुध वर बाँधा ॥

इससे विदित होता है कि मृगावती, मधुमालती, पद्मावती और पुराण-विश्रुत उषा-अनिरुद्ध की कहानियों के अतिरिक्त सपनावती, मुग्धावती और प्रेमावती की कहानियाँ भी जायसी के समय में प्रसिद्ध रही होंगी। इनमें से अधिकांश कहानियाँ पूर्वी हिंदी और अवधी में मुसलमान कवियों द्वारा दोहा-चौपाइयों के रूप में लिखी गई थीं और उनमें प्रेमकथा के मिस से सूफीमत के रहस्यमय आध्यात्मिक विचारों का खासा आभास मिलता था।

जायसी के पीछे कई शताब्दियों तक इन प्रेमकहानियों की परंपरा जारी रही। जहाँगीर के शासनकाल में उसमान कवि ने जायसी का अनुकरण कर 'चित्रावली' नामक कहानी लिखी है। इस परंपरा की अंतिम सूचना दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय तक मिलती है जब नूरमुहम्मद कवि ने सं० १७६६ में 'इंद्रावती' नामक सुंदर कहानी लिखी।

ढोला मारवणी की प्रेमकहानी भी उपर्युक्त प्रेममार्गी कवियों की कहानी से बहुत कुछ मिलती जुलती है। अब हम हिंदी प्रेमकहानियों में सर्वोत्तम जायसी की पद्मावती की कहानी से ढोला मारू की प्रेमगाथा की तुलना करके उसके काव्यगुणों का सविस्तर विश्लेषण करेंगे, जिससे इस गीतकाव्य के प्रमुख गुणों का पाठक के हृदय में यथोचित सस्थान हो सकेगा।

साधारणतः देखा जाय तो ऊपर उल्लेख की हुई सभी प्रेमकहानियों में कथित विषय का बहुत कुछ सादृश्य है। प्रायः सभी कहानियों में नायक अथवा नायिका को अपने सच्चे प्रेमी को पाने के लिये अनेक प्रकार के भौतिक कष्ट उठाने पड़े हैं और अंत में उसकी साधना सफल हुई है। भारतीय कहानियाँ प्रायः सुखांत ही होती हैं और उनके द्वारा इस आध्यात्मिक तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि मायालिप्त सासारिक जीवनयात्रा में भटकते हुए जीवात्मा को प्रेम की साधना द्वारा अंत में परमात्मा की उपलब्धि और जीवन के लक्ष्यरूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसके विरुद्ध इसी प्रकार की पार्श्वत्य कहानियों और गीतों (Ballads) का प्रवाह दुःखांत की ओर होता है और उनका आध्यात्मिक तथ्य इतना सुस्पष्ट और प्रकाश्य नहीं होता है।

पद्मावत की कहानी और ढोला मारू की कहानी में बहुत कुछ सादृश्य है—

(१) पद्मावत में हीगमन सूत्रा और ढोला की कहानी में माळवणी का सूत्रा मानवप्रेम के मार्गप्रदर्शक अथवा सहायक माधन की तरह प्रयुक्त हुए हैं। भेद इतना ही है कि पहली कथा में सूत्रा नायिका द्वारा प्रेरित होकर नायक को प्रेमपथ पर सफलतापूर्वक मार्ग प्रदर्शन करता है। दूसरी में, विप्रयुक्त प्रेमी (नायक) के प्रेम को नायिका के लिये प्राप्त करने के लिये सूत्रा चेष्टा करता है परन्तु असफल रहता है।

(२) जिस प्रकार पद्मावत में चित्तौड़ का पटित पद्मावती के सूए को खरीदकर गजा रत्नसेन को देता है जिसे वह प्रिया के प्रेम का संवाद पहले-पहल सुनता है, उसी प्रकार 'ढोला' में नरवर का सौदागर पहलेपहल ढोला की खबर मारवणी और उसके पिता को देता है।

(३) गजा रत्नसेन ने योगी बनकर अनेक कष्ट सहन करते हुए अपनी प्रियतमा पद्मावती को पाया। इसी प्रकार ढोला ने अपनी प्रियसी मारवणी को बड़ी कष्टपूर्ण साधना के बाद प्राप्त किया।

(४) दोनों कहानियों में अलौकिक तत्व (Supernatural element) का सहायक के रूप में हस्तक्षेप है। सिंहलद्वीप में महादेव के मंदिर में पूजार्थ आई हुई पद्मावती का प्रथम दशन कर रत्नसेन मूर्च्छित हो गया और जब पद्मावती लौट गई तब पछुताकर चिता में मस्म होने को उद्यत हुआ। तब योगी और योगिन के रूप में महादेव पार्वती ने इस सच्चे प्रेमी को मरने से रोका। इसी प्रकार ढोला के साथ नरवर को लौटती हुई मारवणी को जब जंगल में पीया साँप काट गया और वह मर गई तब ढोला ने उसके वियोग में चिता लगाकर जल मरने की ठानी, परन्तु योगी और योगिन ने आकर उसकी जान बचाई।

(५) नागमती ने अपने विरहविलाप में उपवन के पक्षियों को अपने दुखड़े का संदेश रत्नसेन तक पहुँचाने की प्रार्थना की थी। इस संदेश को पक्षियों ने समुद्र तट पर शिकार खेलते हुए रत्नसेन को पहुँचाया और नागमती और चित्तौड़ की शोचनीय दशा का हाल सुनकर रत्नसेन लौट पडा। परन्तु उस समय तक रत्नसेन अपने प्रेममार्ग पर सिद्धि प्राप्त कर चुका था। मारवणी ने भी कुंज पक्षियों से इसी प्रकार प्रार्थना की थी और माळवणी ने तो शुक द्वारा संदेश भेज भी दिया था, परन्तु तब तक अपना कार्य सिद्ध न होने से ढोला लौटा नहीं।

(६) पद्मावती को सिंहल से लेकर लौटते समय समुद्र के बीच में विभीषण नामक राजस ने रत्नसेन को बहकाकर विकट समुद्र में डाल दिया जहाँ से उसके जीवित बच निकलने की कोई आशा न रही थी । इस समुद्र के राजपत्नी ने उस प्रेमी की जान बचाई । ढोला का भी दुष्ट ऊमरसूमरा के धोखे में आकर जीवन सकट में पड़ गया था परंतु उस समय 'पीहर सदी डूमणी' गायिका की चेतावनी से उसके प्राण बचे ।

(७) दुष्ट ब्राह्मण राघव चेतन ने प्रतिशोध लेने की इच्छा से रत्नसेन को धोखा देकर बादशाह अलाउद्दीन को उसके विरुद्ध भड़काया और पद्मावती को पाने की इच्छा से बादशाह को लालायित किया । राघव की तरह ऊमर के दुष्ट चारण ने भी ढोला को धोखा देकर उसको अपने प्रेममार्ग से विचलित करने की चेष्टा की ।

(८) प्रेमकहानी को काव्योपयुक्त स्वरूप देने के लिये ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना के रंग में रँगने की आवश्यकता कवि को बहुधा पड़ती है । इससे रूखासूखा ऐतिहासिक तथ्य भी सरस, मधुर और हृदयग्राही हो जाता है । इस प्रकार के अधिकार का दोनों काव्यों में उपयोग मिलता है । इतिहास और कल्पना का मनोश समिश्रण दोनों में हुआ है ।

इन समताओं के होते हुए भी दोनों कथाओं के परिणाम में भेद है । अलाउद्दीन और देवपाल के प्रयत्न अंत में सफल होते हैं और परिणामतः रत्नसेन देवपाल के साथ युद्ध में मारा जाता है । अलाउद्दीन चित्तौड़ ले लेता है और नागमती और पद्मावती चितारोहण कर भस्म हो जाती है । परंतु ढोला के विरुद्ध ऊमरसूमरा का षड्यंत्र निष्फल सिद्ध होता है और उस प्रेमकहानी का सुख में अंत होता है । दोनों कहानियों का सुखात और दुःखात परिणामभेद भारतीय और वैदेशिक प्रणालियों का सस्कृतिजन्य भेद है ।

(९) ढोला मारू का प्रेमवर्णन

साहित्य में भारतीय पद्धति के अनुसार दापत्य प्रेम का विकास चार प्रकार से माना गया है^१—

(१) पहले भेद के अतर्गत प्रथाबद्ध विवाह संबंध द्वारा मर्यादाबद्ध प्रेम का क्रमशः विकसित और घनीभूत होना और जीवन की जटिल समस्याओं

को कर्तव्यवृद्धि और धार्मिक आस्था के बल से मुलम्कार जीवन को सफल बनाना है। यह प्रेम अत्यंत स्वाभाविक, निर्मल, तथा शील और शक्ति संपन्न होता है और इसमें विलासिता और कामुकता का पूर्णतः अभाव रहता है। उदाहरणतः गम और सीता का आदर्श प्रेम।

(२) दूसरे प्रकार का प्रेम प्रथमदर्शन द्वारा प्रेरित होकर विवाह के पूर्व ही अंकुरित हो जाता है। समार क्षेत्र में घुमतेफिग्ने नायक और नायिका अकस्मात् किसी उपवन, तड़ाग, बाटिका के पास मिलते हैं और उनका जीवन-सूत्र प्रेम की दृढ़ गाँठ में बँध जाता है। अंत में विवाह भी हो जाता है। इस प्रेम में स्वच्छता की मात्रा पहले प्रकार से अधिक रहती है। साहित्य में शकुन्ला-दुष्यंत, विक्रम-उर्वशी का प्रेम इन्हीं कोटि का समझना चाहिए।

(३) तीसरे प्रकार का प्रेम विलासिता और कामवासना का फलस्वरूप होता है। पुगने समय के विलासी गजा अपने अंतःपुर में बंटे बैठे ही अपने विलास की सामग्री स्वरूप किसी सुंदर दासी अथवा परिचारिका को अपने प्रेम का आधार बना लेते थे। परिणाम में अंतःपुर में सपत्नी-डाढ़, कलह, ईर्ष्या इत्यादि दुर्भावनाओं का अभिनव होता था। इस प्रकार के कलुषित, आदर्शभ्रष्ट और विलासी प्रेम का विकास उत्तर काल के संस्कृत काव्यों और नाटकों में, यथा, श्रीहर्ष के नाटकों में हुआ है।

(४) चौथे प्रकार का प्रेम स्वच्छंद रीति का प्रेम है जो नायक-नायिका के बीच एक दूसरे के गुणश्रवण, स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन द्वारा अंकुरित होकर एक दूसरे को पाने के प्रयत्नरूप में विकास को प्राप्त होता है। ऊषा ने अनिदद को स्वप्न में देखा और वाणासुर के अनेक रूपावटें डालने पर भी उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया और अंत में पा लिया। नल दमयंती का प्रेम भी इसी कोटि का था। इस पद्धति में विवाह प्रयत्न के परिणाम में होता देखा गया है। टोला मारवणी का प्रेमी इसी कोटि का है। भेद इतना ही है कि टोला और मारवणी का विवाहसंस्कार नाम मात्र के लिये बचपन में ही हो जाता है, जो न होने के बराबर है, कारण उसकी स्मृति दोनों प्रेमियों में से किसी को भी नहीं रहती—

दलद वरसगी मारवी, त्रिहुँ वरसॉरु कंत ।

वालपणइ परण्यो पछइ, अतर पदवठ अनंत ॥ ६१ ॥

वास्तव में मारवणी का प्रेम उसकी युवावस्था के प्रथम स्वप्नदर्शन द्वारा, उषा के प्रेम की तरह, अकुरित होता है और अत तक इसी पद्धति में ढलकर प्रवाहित होता है—

इसइ आरखइ मारुवी सूती सेज विछाइ ।

साल्हकुँवर सुपनइ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ॥ १४ ॥

इस प्रकार के प्रेमवर्णन में एक विशेषता यह होती है कि नायक-नायिका के विरहविलाप द्वारा प्रेमी हृदय की कोमल भावनाओं का सूक्ष्म निदर्शन करने का कवि को अच्छा मौका मिल जाता है। ऐसे काव्यों में विप्रलंभ शृंगार और मानसिक भावनाओं का पक्ष प्रधान रहता है, सयोग शृंगार और शारीरिक पक्ष को गौण स्थान मिलता है। यह बात ढोला और पद्मावत दोनों की कहानियों में समान रूप से सिद्ध हैं।

परतु ढोला और पद्मावत की प्रेमकहानी के प्राथमिक विकास में भेद है। यद्यपि दोनों कहानियों में प्रेम का प्रथम आभास नायिकाओं के हृदय में ही होता है परतु पद्मावत में प्रेमी को पाने का प्रयत्न नायक रत्नसेन की ओर से प्रारंभ होता है। 'ढोला' में यह प्रयत्न नायिका मारवणी की ओर से प्रारंभ होता है। इस भेद का भी वही कारण है जो दोनों कहानियों के परिणामभेद के सबंध में हम ऊपर कह आए हैं। जायसी ने अरबी-फारसी की वैदेशिक कहानियों के आदर्श को दृष्टि में रखकर लैलामजनूँ, शीरीफरहाद की तरह नायक को प्रेममार्ग पर पहले प्रयत्नशील करके कठिन साधना द्वारा उसके प्रेम की परीक्षा की है। फारस के प्रेम में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र दिखाई पड़ता है और भारतीय प्रेम में नायिका के प्रेम का। परतु आगे चलकर दोनों कहानियों में नायक-नायिका का प्रेम सम तीव्र हो जाता है। नायक भी उतने ही उत्सुक और प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं जितनी कि नायिकाएँ।

फारस की कहानियों में एक विशेषता यह भी पाई जाती है कि उनमें प्रदर्शित प्रेम ऐकात्मिक, आदर्शस्थित (Idealistic) और लोकवाह्य होता है। वास्तविक जीवन की परिस्थितियों के बीच होकर उसका प्रवाह नहीं बहता बल्कि जीवन से परे ऐकात्मिक आदर्शोन्मुख होता है। इसके विपरीत भारतीय प्रेमपद्धति लोकसमन्वित और व्यवहारात्मक होती है। उसका विकास त्र वास्तविक जीवन के व्यवहार में बद्धमूल होता है। इस

प्रकार का प्रेम व्यवहार कर्तव्यमार्ग का विरोधी नहीं, बल्कि उसका सपोषक बनकर जीवन के बीच से होकर बढ़ता है। आदिकाल में उसका यही स्वरूप रहा, यथा, वाल्मीकि रामायण में। परंतु पीछे से काटवरी, नलदमयती, मालतीमाधव, माधवानल-कामकदला आदि आख्यानो में उसका दूसरा ऐकांतिक और लोकनाह्य रूप भी प्रकट हुआ। यद्यपि पद्मावत की प्रेमपद्धति को सर्वथा लोकपन्थ-शून्य नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें प्रेम की भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का सम्मिश्रण है, परंतु इसमें कोई सदेह नहीं है कि ढोला का मारवणी के प्रेम को प्राप्त करने का प्रयत्न कर्तव्यबुद्धि द्वारा प्रेरित और संपोषित है, अतएव सर्वथा लोकसमन्वित और व्यवहारसिद्ध है। वह जीवन का और जीवन से है। रामायण की तरह ढोला के आख्यान में जीवन के बहुत से इतर व्यापारों का विशेष उल्लेख नहीं मिलता और रति के सिवा जो थोड़े से इतर व्यापारों और भावों का उल्लेख मिलता है वह भी प्रेमभाव के उपकारी भावों की तरह। इसका कारण यह है कि इस कहानी का केंद्र सीमित होने से सारे व्यापार प्रेममत्त्व में केंद्रीभूत हैं।

अब यह देखना है कि मारवणी का स्वप्नदर्शन से उत्पन्न राग वास्तव में प्रेम कहलाने के योग्य है अथवा नहीं और इसी प्रकार ढाडियों से मारवणी की दशा को सुनकर ढोला का उसके लिये व्याकुल होना प्रेम की युक्तिसंगत अभिव्यजना है अथवा नहीं।

पूर्वराग रति का अग अग्रश्य है परंतु पूर्ण रति नहीं। साहित्यदर्पण में विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद किए गए हैं और पूर्वराग की परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

(१) स च पूर्वरागः मानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्द्धा स्यात् ॥

सा० द० ३।२१३

(२) श्रवणादर्शनाद्वापि मिथः सरूढरागयोः ।

दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ॥ सा० द० ३।२१४ ॥

तोते के मुँह से पहलेपहल पद्मावती का रूपवर्णन सुनकर 'रत्नसेन का असह्य वियोगव्यथा से व्यथित होकर मूर्च्छित हो जाना आस्वाभाविक सा जान पड़ता है। ऐसी दशा में पद्मावती के लिये उसका अभिलाषा मात्र करना स्वाभाविक हो सकता है। पद्मावती के पूर्वराग का विवेचन करते हुए पं० रामचंद्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका में लिखा है—

‘दूसरे के द्वारा—चाहे वह चिडिया हो या आदमी—किसी स्त्री या पुरुष के रूपगुण आदि को सुनकर चट उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करनेवाला भाव लोभमात्र कहला सकता है, परिपुष्ट प्रेम नहीं। लोभ और प्रेम के लक्ष्य में सामान्य और विशेष का ही अंतर समझा जाता है। पूर्वराग रूपगुणप्रधान होने के कारण सामान्योमुख होता है, परंतु प्रेम व्यक्तिप्रधान होने के कारण विशेषोमुख होता है।’

इस दृष्टि से पद्मावती और रत्नसेन का प्रेम पहलेपहल प्रिय पुरुष को पाने की अभिलाषा के रूप में लोभ का भाव सिद्ध होता है। यह बात मारवणी के प्रेम के सवध में सर्वथा सिद्ध नहीं होती। दोनों में अंतर—बड़ा अंतर है। रत्नसेन के आकस्मिक प्रेम की तीव्र अभिव्यक्ति वास्तविकता की सीमा का उल्लंघन कर गई। इसी प्रकार पद्मावती भी शुक के सामने अपनी कामव्यथा को व्यक्त करती हुई स्त्रियोचित शील और मर्यादा से बाहर निकल जाती है और उसके खुलेपन को देखकर पाठक के मन में संकोच उत्पन्न होता है। यह सब अस्वाभाविक सा जँचता है। मारवणी का प्रेम मर्यादा और शील की सीमा में सर्वथा सुरक्षित रहकर प्रकट होता है और उसका क्रमागत विकास भी मनोवैज्ञानिक और लोकव्यवहार की दृष्टि से युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

यौवन के आरंभ में मारवणी को स्वप्न में पतिदेव के दर्शन होते हैं और उसके हृदय में एक वेदना उद्भूत होती है—‘साल्ह कुँवर सुपनै मिल्यौ जागि निसासौ खाइ।’ वियोग का दुःख उसके लिये अज्ञात वेदना है। उसे वेदना अवश्य होती है, परंतु वह स्त्रीसुलभ शील और मर्यादा को रखती हुई उसे गभीरतापूर्वक सहन करने की क्षमता भी रखती है, न तो मूर्च्छित होती है, न हायतोत्रा मचाकर आकाश-पाताल को एक करती है। इस दशा का सूक्ष्म परिचय कवि बड़े उत्तम ढंग से यों कराता है—

थाह निहाळइ, दिन गिणइ, मारू आसालुध ।

परदेसे घॉधल घणा, विखउ न जाणइ मुध ॥१७॥

‘थाह निहाळइ’ में प्रतीक्षाजन्य धैर्य, ‘आसालुध’ में आशा और अभिलाषा, ‘विखउ न जाणइ मुध’ में अकस्मात् आए हुए प्रथम वियोग दुःख से अपरिचय—इन भावों को स्पष्टतया दिखलाकर कवि ने मारवणी के प्रेम को मर्यादा, शील, शक्ति और लोकव्यवहार की दृढ़ सीमा से निकलने नहीं दिया

है। शीलशक्तिसंपन्न मर्यादित भारतीय प्रेमपद्धति का कैसा सुंदर और आदर्श चित्र है।

दूसरी ओर इसके विपरीत ऐसे ही मौके पर पद्मावती की पूर्वरागावस्था में वियोगप्रलाप की अस्वभाविक तीव्रता को आक्षेप में बचाने के लिये जावसी ने यह कारण दिया है—‘पदमावती तेहि जोग सँजोगा। परी प्रेम-वस गहे विजोगा ॥’ परन्तु इस परोक्षवाद अथवा योग के चमत्कार से वर्णन का अनौचित्य कम नहीं हो जाता।

लौकिक दृष्टि से देखनेवाली सखियों को मारवणी के आकस्मिक प्रेमोद्रेक पर आश्चर्य हुआ; इसलिये नहीं कि वह कोई असभाव्य बात थी, वरन् इसलिये कि उसे अकस्मात् और अलक्षित कारणों द्वारा व्यक्त होने से सखियों को मर्यादा भंग होने की आशका हुई और उन्होंने यह टेढ़ा प्रश्न पृच्छा,— यदि वे न पृच्छतीं तो कहानी पढ़कर मनोवैज्ञानिक आलोचक तो अवश्य पृच्छते—

अहाँ मन अचगिन भवउ, सखियों आखइ एम।

तई अणविद्या सजणों, किउँ करि लग्गा पेम ॥२०॥

और इसके उत्तर में मारवणी क्या ही लाजवाब उत्तर देकर प्रेम के सर्वोत्कृष्ट आदर्श को व्यक्त करती है—

जे जीवण जिन्हों तणों तन ही मॉहि वसंत।

घारइ दूध पयोहरे बालक किम काटत ॥२१॥

प्रेम के इस पवित्र आदर्श को जानकर—जिसका निर्वाह कहानी में सर्वत्र हुआ है—अब कुछ कहना नहीं रह जाता। सखियों भी निरुत्तर होकर कहे उठती हैं—

मारुनूँ आखइ सखी, एह हमारी बुम्भक।

साल्हकुँवर सुहिणइ मिल्यउ, सुदरी सउ वर तुम्भक ॥२४॥

जब तक सखियों ने निश्चयरूप से मारवणी की इस भावना का—कि स्वप्न में देखा हुआ प्रिय पुरुष तुम्हारा धर्मानुसार वरण किया हुआ पति है—समर्थन नहीं कर दिया तब तक मारवणी का प्रेम एक कुलीन आर्य ललना के मर्यादोचित प्रेम के रूप में मनसा, वाचा, कर्मणा अकल्पित होकर प्रवाहित होता है। सखियों द्वारा प्रमाणित हो जाने पर उसे कामजनित व्याकुलता होने लगती है और यह अनुचित भी नहीं है—

सखी वयण सुंदरि सुण्या, उठी मदन की भाळ ।

सुंदरिचूँ सजण विरह ऊपन्नउ ततकाळ ॥ २५ ॥

तदनतर उत्तरोत्तर बढ़ती हुई यह व्याकुलता विरहविलाप के रूप में प्रकट होती है। मारवणी पहले चातक पक्षियों से अपना दुखड़ा सुनाती है, फिर सारस और कौचो के सामने विनय के रूप में अपना हृदय खोलकर अपनी वेदना सुनाती है और प्रार्थना करती है कि उसका सदेश कोई प्रिय को ले जाकर सुनावे। मारवणी के विरह की उक्तियाँ अत्यंत सरस, मर्मस्पर्शी, स्वाभाविक और प्रेम की कोमल भावनाओं से भरी हुई हैं।

प्रेम विशेषोन्मुख होता है और पूर्णता प्राप्त करने के लिये उस प्रिय के साक्षात्कार की आवश्यकता होती है। मारवणी का ढोला के प्रति राग चाहे कितना ही तीव्र और वैवाहिक सस्कार द्वारा परिष्कृत क्यों न हो, जब तक उसका ढोला से मिलाप नहीं होता तब तक हम उसे पूर्वरोग ही कहेंगे। विवाह-संबंध पूर्वघटित हो जाने से उसके विरहविलाप इतने आक्षेप योग्य और अस्वाभाविक नहीं कहे जा सकते जिनके कि पद्मावती की पूर्वरोगावस्था के तीव्र प्रलाप। ढोला से मिलने पर मारवणी का पूर्वरोग पूर्णप्रेम की दृढ़ता प्राप्त कर लेता है जिसका परिचय मारवणी की उस क्षिप्र बुद्धिजन्य समयोचित चेतवनी में मिलता है, जो उसने ऊमरसूमरा के षड्यंत्र में पड़े हुए अपने पति को देकर उसके प्राण बचाए थे।

अब यह देखना चाहिए कि ढोला का प्रेम पहलेपहल किस रूप में प्रकट हुआ ? दाढ़ियों के आशयगर्भित सवाद को गान के रूप में रातभर ढोला ने सुना। सुनकर मन में वेचैनी तो रही, परंतु उसका कारण, सवेरे उनको बुलाकर सारा हाल पूछने से मालूम हुआ—

दाढी गाया निसह भरि, सुणियउ साल्ह सुजॉण ।

ओळ्इ पाँणी मच्छ ज्यउँ वेळत थयउ विहाँण ॥१२२॥

मारवणी का वृत्तांत सुनकर ढोला को रत्नसेन की तरह मूर्च्छा नहीं आ गई और न उसने पागल की तरह प्रलाप ही किया। एक प्रकार का क्षोभ अवश्य हुआ, यह जानकर कि इतने दिन तक अपनी परिणीता प्रयत्नी की सुध न लेकर जीवन के दिन व्यर्थ ही गँवाए—

ढोलइ मनि आरति हुई, साँभळि ए विरतत ।

जे दिन मारु विण गया, दई न ग्याँन गिणत ॥२०८॥

दादियों द्वारा संदेश सुनकर ढोला के मन में आनंदोत्साह हुआ, जैसे किसी को अपनी खोई अथवा भुलाई हुई बहुमूल्य निधि को पाकर आनंद होता है।

परंतु अब ज्यों ज्यों वह मारवणी की शोचनीय दशा का स्मरण करता है त्यों त्यों प्रेयसी से मिलने की उत्कठा, और उसको अपनी दुखी दशा से विमुक्त करने की चिंता और चेष्टा का उत्साह उसके भावों को त्वरित करने लगा। कवि ने सक्षेप में ढोला के मन की दशा को यों व्यक्त किया है—

आडा हूँगर वन घणा, तौह मिळीजइ केम ।
 ऊलाळीजई मूँट भरि मग मीँचाणउ जेम ॥२१२॥
 इहाँ सु पजर मन उहाँ जट जाणइला लोइ ।
 नयणा आढा वीँभ वन, मनह न आडउ कोइ ॥२१३॥
 लिउँ मन पसरइ चिहँ दिजइ, जिम जउ कर पसरति ।
 दूरि यकौँ ही सज्जणौँ, कठा ग्रहण करति ॥२१४॥

मालवणी अपने सुपुष्ट व्यवस्थित प्रेम के प्रभाव से येन केन प्रकारेण एक वर्ष तक ढोला की यात्रा स्थगित कर सकती है। मालवणी को, ढोला को उसकी यात्रा में विरत करने का अधिकार था और वह अधिकार उसके प्रेम की दृढता का द्योतक है। सपत्नीद्वेष स्त्रीद्वन्द्व की एक स्वाभाविक कमजोरी है। कमजोरी ही नहीं, वह प्रेम में एकनिष्ठता और अनन्यता की पोषकशक्ति भी है। मालवणी स्त्री थी, अतएव सपत्नी डाह के लिये हम उसे बुरा नहीं कह सकते। इसके अतिरिक्त मालवणी के प्रेमपूर्ण उद्गारों में एक प्रकार की शक्ति, पवित्रता, गभीरता, कठना और अनुभवशीलता भरी है। वह मर्यादा से कहीं भी च्युत नहीं हुई है।

परंतु ढोला के प्रसंग में देखना यह है कि मारवणी का संदेश दादियों द्वारा सुनकर जो ढोला तत्काल ही अत्यंत प्रेमातुर और उत्कटित प्रतीत होता है, उसका एक वर्ष तक यात्रा को स्थगित रखना या तो मारवणी के प्रति प्रेम की शिथिलता को प्रकट करता है अथवा कर्तव्य को कार्यरूप में परिणत करने का अनुत्साह अथवा असामर्थ्य। परंतु विचार कर देखने पर ढोला पर प्रेमशैथिल्य अथवा अनुत्साह दोनों में से एक भी आक्षेप का आरोप नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि उस समय ढोला के लिये प्रेममार्ग में बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो गई थी। उसके प्रेम की समान रूप से

अधिकारिणियाँ माळवणी और मारवणी दोनों थीं। वह किस संयोगिता को छोड़कर वियोगदुःख से दुःखी करे और किस वियुक्ता को ग्रहणकर संयोग-सुख से सुखी करे। दोनों और से प्रेम और कर्तव्यबुद्धि की खींचातान उपस्थित हो गई। माळवणी के प्रेम का तिरस्कार भी वह आसानी से नहीं कर सकता था। माळवणी को जिस किसी तरह प्रसन्न करके उसकी आज्ञा लेकर ही वह चलता है। ढोला के मारवणी के प्रति पूर्वराग को हम रत्नसेन की तरह केवल रूपलोभ नहीं कह सकते। उसमें कर्तव्यबुद्धि द्वारा प्रेरित प्रिय-मिलनोत्साह समिलित है। अतएव हम उसे ढोला के मन की वह उदात्त भावना कहेंगे जिसमें मर्यादापालन, धर्मरक्षा और समाज के विशिष्ट सस्कार-जन्य वैवाहिक प्रतिज्ञा का पालन मिश्रित है। यद्यपि मारवणी की विरहदशा अधिक शोचनीय होने के कारण हमारी सहानुभूति का खिंचाव उसकी ओर ही अधिक होता है और हम ढोला की ढील को मारवणी के प्रति क्रूरता और अन्याय कहेंगे, परंतु यदि ढोला की परिस्थिति में अपने को रखकर विचार करें तो उसका व्यवहार युक्तिसंगत ही प्रतीत होगा। ढोला के राग को हम पूर्ण प्रेम की अवस्था भी नहीं कह सकते क्योंकि प्रेम में प्रेमी व्यक्तियों के साक्षात्कार की आवश्यकता होती है और अभी ढोला और मारवणी का साक्षात्कार नहीं हुआ है। पूर्वराग की यह अपूर्णता न होती तो जब रास्ते में ऊमर के चरण से मिलने पर उसे मारवणी की गलित यौवनावस्था का हाल मालूम होता है, तब ढोला के मन में सशयजन्य विरक्ति का भावोदय न होता। पूर्ण प्रेम की कोटि को पहुँचे हुए प्रेमियों में प्रेमी की पतितावस्था को जानकर उसके प्रति प्रेम और घनीभूत हो जाता है और समवेदना और सहायता के रूप में प्रगतिशील होता है, न कि विरक्त हो जाता है। मारवणी से मिलने पर यहाँ पूर्वराग दृढ़ और एकनिष्ठ होकर सात्विक प्रेम की कोटि पर स्थापित हो जाता है। अब सशय, स्वार्थ और लोभजनित किसी प्रकार की क्षुद्र कमजोरी उसे प्रेम के कर्तव्यमार्ग से विचलित अथवा विरक्त नहीं कर सकती। मारवणी के साँप से डसे जाने पर ढोला मरने को तैयार हो जाता है और पूगळवासियों के इस प्रस्ताव पर कि—

मारू त्रिहुँ बरसे वड़ी, चंपारइ उणिहार।

सा कुँमरी परणाविस्र्यो, चालउ, राजकुँमार ॥६१३॥

वह ध्यान तक नहीं देता। इसी प्रकार महादेव के मडप में पद्मावती का

सान्नात्कार प्राप्तकर रत्नसेन का रूपलोभ-जनित पूर्वराग सात्विक प्रेम की दृढ़ता को प्राप्त कर लेता है।

ऊमरसूमरा भी मारवणी के रूपवर्णन को सुनकर उसके प्रेम को पाने के लिये प्रयत्नशील हुआ था। देखना यह चाहिए कि एक ही प्रेयसी की प्रेमप्राप्ति के लिये प्रगतिशील हुए ऊमरसूमरा और ढोला के पूर्वराग में ऐसा कौनसा अंतर है कि एक को तो हम लपट समझकर घृणा की दृष्टि से देखते हैं और दूसरे को सच्चा प्रेमी समझकर उसके साथ सहानुभूति रखते हैं। ऊमरसूमरा के विपत्ति में पहली बात तो यह है कि उसने दूसरे की विवाहिता स्त्री को कलुषित दृष्टि से देखा और दूसरे उसका धोखे से भरा प्रयत्न दुष्ट प्रयत्न था। यही कारण है कि वह अपने प्रयास में असफल रहा। इसी प्रकार विवाह हो जाने पर दो अवसरों पर पद्मावती के प्रेम की दृढ़ता की परीक्षा होती है और दोनों में वह उत्तीर्ण निकलती है। राजा रत्नसेन के वदी हो जाने पर वह बड़ी दुखी और विह्वल हो जाती है, परन्तु बड़ी भारी विपत्ति का दृढ़ता से सामना करती हुई गौरा-नादल के साहाय्य में पति को जीवनसकट से बचाकर मारवणी की तरह अपनी क्षिप्र बुद्धि और साहस का परिचय देती है। राजा रत्नसेन के मारे जाने के बाद रोने और विलाप करने में वृथा समय नष्ट न करके वह नागमती सहित आनदपूर्वक पति से परलोक में जा मिलती है। उसकी सतीत्व की दृढ़ता का प्रमाण इससे बढ़कर क्या हो सकता है कि कुमलगढ के दुष्ट सरदार देवपाल के कलुषित प्रस्ताव को वह उस आपत्तिकाल में भी घृणापूर्वक टुकरा देती है।

इसी प्रसंग में माळवणी और मारवणी के प्रेम की तुलना कर लेना भी अनुचित न होगा। पद्मावती की नागमती और पद्मावती के प्रतिरूप ढोला की कथा में माळवणी और मारवणी है।

पद्मावती के नवप्रस्फुटित प्रेम को हम क्रमशः विकसित होते हुए देखते हैं। वह विपत्ति की कसौटी पर कई बार कसा गया और उन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उसका सोना और भी ज्यादा चमक उठा। नागमती का प्रेम गार्हस्थ्यपरिपुष्ट गभीर प्रेम है। उसमें एक प्रकार का गर्व और अधिकार है जो दापत्यसुख के परिणामस्वरूप होता है। इसी प्रकार मारवणी के प्रेम के आद्योपान विकाससूत्र पर जब हम मनन करते हैं तो वह हमें बड़ा स्वाभाविक, मनोहर और प्रिय मालूम होता है। पद्मावती के प्रेम की

अपेक्षा वह अधिक संयत और मर्यादाबद्ध, अतएव अधिक परिष्कृत और परिपुष्ट कोटि का प्रेम प्रतीत होता है। माळवणी का प्रेम गार्हस्थ्यपरिपुष्ट होने के कारण गभीर और अधिकारसपन्न है। उसी अधिकार और गर्व की बदौलत वह मारवणी के प्रेम में आतुर प्रेमी को एक वर्ष तक रख लेती है। नागमती की तरह माळवणी भी रूपगर्विता सी प्रतीत होती है। जिस प्रकार पद्मावत में पद्मावती और नागमती के विलापों से हम उनके प्रेम-प्रवाह की तीव्रता का अंदाजा लगा सकते हैं, उसी प्रकार माळवणी और मारवणी के विरहविलापों से हम उन दोनों के प्रेम के घनत्व का अनुमान कर सकते हैं।

मारवणी की पूर्वरागावस्था में प्रकट की हुई प्रेमभावनाएँ यद्यपि कोमल, हृदयस्पर्शी और दर्दभरी हैं परंतु माळवणी के विलाप की तीव्रता के सामने उनकी तीव्रता कम है। इसका कारण यही हो सकता है कि माळवणी के गार्हस्थ्यप्रेम को एक प्रकार का स्थायित्व और अधिकार प्राप्त था और उसके स्थायी प्रेम ने नायक के जीवन के अनेक अंगों और विषयों को समवेदना के सूत्र में बाँध रखा था। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि माळवणी का प्रेम ढोला के जीवन के अंगों को अधिक व्यापक रूप में प्रभावित कर सका है। मारवणी का प्रेम नवस्फुटित और अपेक्षाकृत एकांत स्थायी होने के कारण उसका क्षेत्र अधिक संकुचित और मर्यादा संयत रहा है। जिस प्रकार पद्मावत में नागमती का विरहवर्णन काव्य का सर्वोत्कृष्ट भावुक स्थल है उसी प्रकार प्रकृत काव्य में माळवणी का वियोग-वर्णन भी काव्य का उत्कृष्ट मर्मस्पर्शी स्थल है। पहला हिंदी साहित्य में विप्रलभ शृंगार का उत्कृष्ट नमूना है तो दूसरा राजस्थानी विप्रलभ शृंगार का।

बहुविवाह की प्रथा सामाजिक दृष्टि से कलहमूलक होने के कारण जितनी अनिष्टकारी रही है, उतनी ही काव्य में प्रेममार्ग की व्यावहारिक जटिलताओं के परिणामस्वरूप सपत्नीडाह और प्रेमसघर्ष की सूक्ष्म भावनाओं को सामने लाने के कारण वह कवियों के लेखनी का ग्राह्य और अनुरजनकारी विषय रही है। माळवणी और मारवणी में पारस्परिक ईर्ष्याजनित विवाद होता है, दोनों एक दूसरे के देश और समाज को बुरा बताती हैं। यह प्रेमपूर्ण मीठी कलह ज्यादा नहीं बढ़ने पाती, चतुर और व्यवहारदत्त प्रेमी नायक दोनों

को प्रेमपूर्वक समझाकर शांत कर देता है। प्रेम मार्ग का इससे मिलताजुलता व्यावहारिक अभिनय पद्मावत में भी आया है और वहाँ भी चतुर नायक अपनी प्रेमपूर्ण व्यवहारदक्षता से भगड़े को शांत करता है। ये घटनाएँ दोनों काव्यों को लोकरसमन्वित और व्यावहारसबद्ध वास्तविकता का सौंदर्य देने में बहुत सफल हुई है।

साहित्य में शृंगार के दो भेद माने गए हैं—विप्रलम्भ शृंगार और समोग शृंगार। 'ढोला' और जायसी की 'पद्मावत में' विप्रलम्भ शृंगार प्रधान है। यह देखा गया है कि विप्रलम्भप्रधान कहानियों में नायक और नायिका का प्रेमप्रवाह विपमता से समता की ओर बढ़ता है, समोगप्रधान कृत्तों में समता से विपमता की ओर। जायसी की 'पद्मावत' में प्रेमप्रवाह पहली कोटि का है और इसी प्रकार 'ढोला' में भी। इस प्रकार के काव्यों में एक विशेषता यह भी रहती है कि प्रेमियों का कथा के प्रारम्भ में ही साक्षात् मिलन नहीं हो पाता, जिससे कवि को उनके प्रेमजन्य श्रौत्सुक्य, प्रेमी को प्राप्त करने की व्याकुलता, चिन्ता इत्यादि भावों के सविस्तर वर्णन करने का अच्छा मौका मिल जाता है और इससे काव्य में भावुकता की स्फूर्ति आ जाती है। जहाँ प्रेम समता से विपमता की ओर ढलकर बढ़ता है उन काव्यों में विप्रलम्भ का अर्थ बीच में आता है अथवा अंत में, परंतु वहाँ प्रेमी का प्रेमी को प्राप्त करने के लिये प्रेम-प्रयास, आकांक्षा, उत्कंठा, भावुकता इत्यादि भावों की वह सहज तीव्रता नहीं रहती।

भक्तों का ईश्वरोन्मुख प्रेम भी विपमता से समता की ओर प्रवाहित होता है। अतएव यह स्वाभाविक है कि इस पद्धति की विप्रलम्भप्रधान कहानी से ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यञ्जना भी की जाय। जायसी ने पद्मावत की सारी प्रेम कहानी को एक अन्वोक्ति का रूपक बनाकर ग्रंथ के उत्तर भाग में चर्चा की है—

‘तन चितउर मन राजा कीना । हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा ॥’

यद्यपि ढोलामारू की प्रेमपद्धति भी उसी कोटि की है, परंतु इस कहानी में न तो कवि ने अन्वोक्ति द्वारा ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यञ्जना करने का अपना अभिप्राय और सक्ल्प कहीं व्यक्त किया है और न उसका ऐसा प्रयास ही कहीं दृष्टिगोचर होता है। यह तो एक सीधीसाठी प्रेमकथा है और इसी में रस का सौंदर्य मँजा है। परंतु जिन लोगों को इस प्रकार की परोक्ष व्यञ्जना के बिना पूरा स्वाद नहीं मिलता, वे चाहे तो इसमें ईश्वरभक्ति का

गंभीर आभास भी आसानी से देख सकते हैं और कहानी को जीवात्मा के ईश्वरोन्मुख प्रेम में घटा सकते हैं। ढोला अथवा मारवणी को, मारवणी अथवा ढोला के प्रेम तक, पहुँचानेवाला प्रेमपथ जीवात्मा को परमात्मा से मिलानेवाला भक्तिमार्ग है। इस मार्ग में अग्रसर होने से रोकनेवाली माळवणी ससार की मोहमाया का जाल है। ऊमरसूमरा और उसका दुष्ट चारण शैतान है अथवा प्रेम के सच्चे पथ से विचलित करनेवाले काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या आदि सासारिक दुर्युण हैं। इन सब अवरोधों को प्रेमसाधना के योगबल से पार कर सच्चा प्रेमी अपने प्रेमपात्र को पा लेता है। जिस प्रकार जीवात्मा को परमात्मा में लीन होने पर मोक्ष प्राप्ति-जन्य ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रियतम को प्राप्त कर लेने पर मारवणी के हर्षोल्लास और ब्रह्मानन्द सहोदर सयोगसुख को कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

आजे रली वधोमणौ, आजे नवला नेह ।
 सखी अम्हीणी गोठमई दूधे वूठा मेह ॥५५६॥
 साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियाह ।
 पूनिम केरे चद ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह ॥५२८॥

(१०) ढोलामारू का वियोगशृंगार

काव्य की भावुकता को दरसाने के लिये मारवणी और माळवणी के विरह-विलापों से लेकर कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

वर्षाऋतु में विरहव्यथित स्त्रियों को प्रिय की याद दिलानेवाला पपीहे का निरंतर 'पी कहाँ, पी कहाँ' पुकारना असह्य वेदनाजनक होता है—

बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवौ एक सहाव ।
 जन्न ही बरसइ घण घणउ, तन्नही कहइ प्रियाव ॥ २७ ॥

'पद्मावत' की नागमती को भी प्रियविरह में पपीहे का पुकारना इसी तरह सालता था—

'पिउ त्रियोग अस बाउर जीऊ । पपिहा नित बोलै पिउ पीऊ' ॥

बिजलियों को अपने प्रेमी घन से ललक ललककर आर्लिगन करते देखकर मारवणी का अपने प्रेमी की स्मृति करना कितना स्वाभाविक है।

वीजुलियों चहलावहलि आभय आभय कोडि ।
 कद रे मिलउँली सज्जना कस कचूकी छोडि ॥ ४६ ॥
 वीजुलियों चहलावहलि आभइ आभइ च्यारि ।
 कद रे मिलउँली सज्जना लॉवी वॉह पसारि ॥ ४५ ॥

परन्तु सयोगानद में लीन विजलियों इस वियोगिनी दुखिया के दुखड़े को क्यों सुनने बैठी थीं । इनसे निराश होकर, झुंझलाकर मारवणी बादल की शरण जाती है—

विजुलियों नीळज्जियाँ, जळहर, तूँ ही लज्जि ।
 सूनों सेज, विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥ ५० ॥

समान भावना और परिस्थितियाँ जीवों में सहानुभूति उत्पन्न होना स्वाभाविक होता है । मारवणी निशाय की शांति में तालाव के समीप सारसों के क्रंदन को सुनकर कहती है—

राति सखी, इगि ताळ मई काइ ज कुरळी पखि ।
 उवै सरि, हूँ घरि आपणइ, त्रिहूँ न मेळी अखि ॥ ५१ ॥

इतने में, ताल में विहार करती हुई, कौचों की पक्तियाँ दिखाई पड़ीं । कौचों ने कलरव करना शुरु कर दिया । तब तक मारवणी की विरहवेदना का प्रवाह द्रवित होकर अनर्गल रीति से वह निकला—

कूँभडियों करळव कियउ घरि पाछिले वणेहि ।
 सूती साजण सभला, द्रह भरिया नयणेहि ॥ ५४ ॥
 कूँभडियों कळिग्रळ कियउ, सरवर पइलइ तीर ।
 निसिभरि सज्जण सल्लियाँ नयणे वूहा नीर ॥ ५६ ॥

मारवणी के करण विलाप से द्रवीभूत होकर कुरभें (कौच) उसके सदेश को सुनती है और समवेदना प्रकट करती है । नागमती पर भी एक पक्षी को इतनी दया आ जाती है कि वह उसके प्रेमसदेश को ले जाने को तैयार हो जाता है । कुरभों के प्रति मारवणी की कैसी जोरदार करण प्रार्थना है—

कुर्भों, घउ नइ पखडी, थॉकउ विनउ वहेसि ।
 सायर लघी प्री मिलउँ प्री मिलि पाछी देसि ॥ ६२ ॥
 उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण सॉमहियाँह ।
 कुरभों, एक सँदेसइउ ढोला नइ कहियाँह ॥ ६४ ॥

उत्तर में कुरभे अपना असामार्थ्य प्रकट करती हैं। फिर भी जहाँ तक बन-सकता है वे मारवणी की सहायता करने को तैयार हैं—

म्हे कुरभॉ सरवर तणी, पॉखॉ किणहिँ न देस ।

भरिया सर देखी रहाँ, उड आवेरि वहेस ॥ ६३ ॥

माणस हवॉ त मुख चवॉ, म्हे छॉ कूँभडियाँह ।

प्रिउ सदेसउ पाठविसु, लिखि दे पखडियाँह ॥ ६५ ॥

विरहीहृदय की अभिलाषाएँ भी बड़ी विचित्र होती हैं। मारवणी जब अत्यंत उत्कण्ठित हो जाती है तो सामने के पहाड़ों को देखकर अभिलाषा करती है—

ज्यूँ ए डूँगर संमुहा, त्यूँ जइ सज्जण हुति ।

चंपावाड़ी भमर ज्यउँ, नयण लगाइ रहति ॥ ७३ ॥

प्रेमीहृदय की उच्च कोटि की आत्मसमर्पण और आत्मनिर्गम की भावनाएँ मारवणी की इन अभिलाषाओं में प्रकट होती है—

जिणी देसे सज्जण वसइ तिणि दिसि वज्जउ वाउ ।

उअँ लगे मो लगसी, ऊ ही लाख पसाउ ॥ ७४ ॥

शृंगार रस की परिपुष्टि के लिये कवि लोग उद्दीपन विभाव के अतर्गत षड्भूत वर्णन अथवा बारहमासे का वर्णन करते हैं। नागमती के विरह-वर्णन के अतर्गत जायसी ने बारहमासे का वर्णन किया है जो हिंदी साहित्य में अपनी कोमल मर्मस्पर्शी भावनाओं के लिये अद्वितीय समझा जाता है। प्रेम में सुख और दुःख दोनों की अनुभूतियाँ विस्तृत और घनीभूत हो जाती हैं। सयोगसुख में वही ऋतुएँ आनंद सर्वस्व प्रदान करती हैं और वियोग में वही नित नूतन दुःख के साधन उपस्थित करती हैं। इस प्रकार के ऋतुवर्णनों द्वारा कवियों के प्रायः दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं—

(१) प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन ।

(२) सुख और दुःख के नाना रूपों और कारणों की उद्घावना और उद्दीपन ।

जायसी का बारहमासा नागमती के विरहदुःख से सश्लिष्ट होकर उद्दीपन विभाव की तरह विप्रलभ शृंगार को परिपुष्टि करता है। अतएव उसका काव्य में प्रयोग दूसरे प्रकार का है। 'ढोला' का ऋतुवर्णन भिन्न

प्रकार का है। उसका उपयोग पहले दृग के अनुमार वस्तु और व्यापार-निदर्शन के लिये हुआ है। मारवणी के समीप जाने की तैयारी करने से ढोला को रोकने के लिये प्रत्येक ऋतु की वस्तु और व्यापार को आक्षेप रूप में आलवन बनाकर वर्णन किया गया है। परंतु यह कहना भी सर्वथा युक्तिसंगत न होगा कि यह केवल वस्तुवर्णन ही है। माळवणी की कोमल प्रेम-भावनाएँ भी परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप में इसमें जहाँ तहाँ मिलती हुई हैं। ग्रीष्म, वर्षा और शीत इन्हीं तीनों की व्यापक परिधि में छहों ऋतुओं का वर्णन कर दिया गया है। इन तीनों में भी वर्षा सबसे अधिक हृदयग्राही बना है। इसका कारण यह हो सकता है कि मरुस्थल में वर्षा ही सबसे अधिक आहादकारिणी ऋतु होती है। वस्तुवर्णन की पूर्णता की दृष्टि से इस ऋतुवर्णन का विवेचन दूसरे प्रसंग में किया जा चुका है।

मारवणी का संदेश

मारवणी का प्रेमसंदेश राजस्थान के शृंगारसाहित्य में सर्वोत्तम वस्तु है। यद्यपि हम उसको मारवणी के विरहविलाप का एक अंग ही मानते हैं तथापि संदेश होने के कारण उसमें एक विशेष तीव्रता, कोमलता और मधुरता आ गई है। इस तीव्रता और कोमलता का कारण यह है कि जहाँ और और विरहविलाप प्रेमी के विछुड़कर चले जाने पर विरहीहृदय की नैराश्यमयी और निरुद्देश्य भावनाओं के रूप में चिह्नित प्रलाप प्रतीत होते हैं और करुणा और शोक, हतोत्साह और निराशा के भार से दबे रहते हैं, वहाँ मारवणी के संदेश आशागर्भित, सोद्देश्य और स्फूर्तिमय हैं। इनमें एक प्रेमी का अपने प्रेमपात्र के साथ सान्निध्य का भाव भरा हुआ है। इन संदेशों में आत्मसमर्पण का भाव कूट कूटकर भरा है—

दाढी, जे साहिव मिलइ, यूँ दाखविया जाइ ।

आँखियाँ सीप विकसियाँ, स्वाति ज वरसउ आइ ॥११६॥

दाढी, एक संदेशइउ कहि ढोला समझाइ ।

जोत्रण आँवउ फळि रखइ, साख न खाअउ आइ ॥११७॥

दाढी, जइ साहिव मिलइ, यूँ दाखविया जाइ ।

जोत्रण कमळ विकसियउ, ममर न बइसइ आइ ॥११८॥

इसी प्रकार—

जोवन चॉपउ मउरियउ, कळी न छुइइ आइ ॥१२०॥

कण पाकउ, करषण हुअउ, भोगलियउ धरि आइ ॥१२१॥

जोवन खीर समुंद्र हुइ, रतन ज काढइ आइ ॥१२१॥

आत्मसमर्पण में त्याग की मात्रा तब और भी ज्यादा बढ़ जाती है जब उसमें 'यद् यद् श्रीमदूर्जित सत्त्व तत्तदेव...' का भाव रहता है। प्रियतम के चरणों में अपने जीवन की सर्वोत्तम विभूति—यौवन—को भेंट करने की यह उत्सुकता, वह सर्वोत्तम सात्विक मानवभावना है जो मनुष्य को ईश्वरत्व की कोटि में पहुँचाती है। श्री रवींद्रनाथ ठाकुर की गीताजलि के भाव इसी आत्मोत्सर्ग की महान् भावना से ओतप्रोत है।

पत्नी के लिये पति के बिना यौवन व्याधिस्वरूप हो जाता है। उच्छृंखल स्वभाववाले यौवन पर शासन करनेवाला प्रेमी जब नहीं होता तो वह उत्पाती अचला को विवशकर उसके सर्वस्व का हरण कर लेता है। यह सूक्ष्म भावना कैसे सुंदर ढंग से व्यक्त की गई है—

ढाढी जे राज्येद मिलइ, यू दाखविया जाइ ।

जोबण हस्ती मद चढ्यउ, अकुस लइ धरि आइ ॥१२५॥

ढाढी, जइ प्रीतम मिलइ, यू दाखविया जाइ ।

जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न बइसउ काइ ॥१२८॥

पंथी, एक सँदेसइउ, लग ढोलउ पैहचाइ ।

विरह महादव जागियउ, अगिन बुभावउ आइ ॥१२३॥

पही, भमंतोँ जइ मिलइ, तउ प्री आखे भाय ।

जोबण बधन तोड़सइ, बधण घातउ आय ॥१२४॥

मारवणी के सदेशों में उसकी जागरित मानसिक दशाश्रों की उथल-पुथल और भावविकारों का मनोवैज्ञानिक चढावउतार बड़ी मार्मिक सूक्ष्मता के साथ दिखलाया गया है। अपनी हृद्गत पीड़ा को मारवणी अनुनय, विनय, क्षोभ, पाश्चात्ताप, आशंका, भय, प्रार्थना इत्यादि के रूप में नाना प्रकार से व्यक्त करती है। मारवणी के विलाप और सदेशों में शृंगार के निर्वेद आदि तैंतीस व्यभिचारी भावों में से बहुतों का समावेश हुआ है।

अनुनयविनय करते करते मारवणी व्यथा उत्तेजित हो जाती है। इस दशा में क्षोभ और लाचारी का भाव कैसी मनोज्ञता के साथ व्यक्त हुआ है—

दाढ़ी, एक सँटेसड़ल प्रीतम कहिया जाइ ।
 सा धरण बलि कुइला भई, भसम दढोळिसि आइ ॥११२॥
 दाढ़ी, एक सँटेसड़ल ढोलइ लागि लइ जाइ ।
 जोत्रण फट्टि तळावड़ी, पाळि न वधउ काँइ ॥१२१॥

इसी प्रकार—

तन मन उत्तर वाळियउ, दखियण वाजइ आइ ॥१२६॥
 धँण कँगलॉणी कमदणी, सिसहर ऊगइ आइ ॥१२६॥
 धँण कँगलॉणी कँगलणी, सुरिज ऊगइ आइ ॥१३०॥

लुब्धहृदय के आतरिक विज्ञोभ को शाब्दिक यथार्थता में व्यक्त करना इससे अधिक स्पष्ट नहीं हो सकता। विरहविकारों से हिलोरें लेता हुआ तरंगित और लुब्ध यौवनसागर विरहिणी के शरीर के सीमावर्धनों को तोड़कर निकल पड़ा, इससे बढ़कर विरह की बाढ का व्यजन क्या हो सकता है। इस समय यदि रक्षा हो सकती है तो पाल बाँधने से और यह कार्य प्रियतम (ढोला) के बिना हो नहीं सकता।

इसी प्रकार की एक उत्तम व्यंग्यप्रधान भावना जायसी ने भी नागमती के विरहाकुल हृदय के उद्गार के रूप में व्यक्त की है—

‘सरवर हिया घटत नित जाई । टुक टुक होइ कै विहराई ।

विहरत हिया करहु पिय टेका । दीटि दँवँगरा मेरवहु एका ॥’

दोनों विरहिणियों की दर्दभरी भावनाएँ लगभग एक सी तीव्र हैं।

मारवणी दाढ़ी को सदेश कहती जा रही है, हृदय व्याकुल है, कठ अवरुद्ध हुआ जा रहा है। नतमुख हुई भावावेश में वह पैर की उँगलियों से धरती को कुरेदती जा रही है। साथ ही आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। इस स्वभावचित्र की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। ऐसी ऐसी स्वभावोक्तियों और व्यंग्य भावनाओं पर उत्तम का प्रासाद खड़ा होता है।

पर्याय हाथ सँटेसड़इ, धण विललती देह ।

पनसँ काढइ लीहटी, उर आँसुआँ मरेह ॥१३७॥

मारवणी की इस करुणदशा और दर्दभरे हृदयोद्गारों को जब हम पढ़ते हैं तो यह विचार आए बिना नहीं रहता कि ढोला का हृदय बड़ा कठोर है कि उसने ऐसी एकनिष्ठ पतिप्राणा प्रेयसी की अब तक सुधि नहीं ली। मारवणी व्यथित अवश्य है परंतु विरह ने उसे किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं कर दिया

है। ढोला ने उसकी अब तक सुधि न ली तो न सही, वह स्वयं तो एक पतिप्राणा आर्य रमणी की तरह अपना कर्तव्य पहचानती है। यह झूठी धमकी नहीं है। जो मारवणी अपने पति के पास सदेश पहुँचाने की कठिन समस्या को अपनी बुद्धि से हल कर सकी वह ऐसा भी कर सकती है—

जइ तूँ ढोला, नावियउ, कइ फागुण कइ चेत्रि ।
 तउ म्हे घोडा बाँधिस्यौँ, काती कुड़ियोँ खेत्रि ॥१४६॥
 जउ तूँ साहिब, नावियउ सावण पहिली तीज ।
 बीजळ तणइ भवूकडइ मूँध मरेसी खीज ॥१४६॥
 फागुण मासि बसत रुत आयउ जइ न सुणेसि ।
 चाचरिकइ मिस खेलती, होळी भुपावेसि ॥१४५॥
 पावस मास, विदेस प्रिय, धरि तरुणी कुळसुध ।
 सारग सिखर, निसह करि, मरइ स कोमळ मुध ॥१७४॥

पतिव्रता अबला का पतिवियोग में अंतिम बलपूर्ण अन्न यही है। जौहर और सती की पवित्र प्रथा ने न जाने कितनी हिंदू सतियों के सतीत्व और शील की रक्षा कर ससार में स्त्री हृदय की पवित्रता और दृढता का आदर्श स्थापित किया है।

परंतु मारवणी के दिल की सच्ची लगन प्रियमिलन की आशा है। वह प्रिय से मिले बिना मरने को उद्यत नहीं है। प्रेम में आशा का निरंतर प्रकाश रहता है। प्रेमी का प्रेमपात्र के प्रति अखंड विश्वास होता है, यद्यपि विरह की तीव्र वेदना अधकार के रूप में इस आशाजन्य प्रकाश को छाया की तरह धूमिल करती रहती है। इस आशा और नैराश्य के छायाप्रकाश की क्रिया-प्रतिक्रिया का बड़ा अच्छा निदर्शन मारवणी के संदेशों में उपलब्ध होता है। यह काव्य-स्थल कलात्मक दृष्टि से एक अनूठा प्राकृतिक चित्र है।

एक बार अपने अनंत विश्वास को पुनः प्रकट कर मारवणी आशागर्भित भावों में सदेश का अंत करती है—

हियइ भीतर पइसि करि जगउ सज्जण रूँख ।

नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख ॥१५८॥

रोम रोम में व्याप्त प्रेम की क्षण में निराशा से मुरझाती और दूसरे क्षण में आशा की दीप्ति से प्रदीप्त होती दशा का इससे बढ़कर क्या स्वभाव-चित्र होगा ?

मारवणी के एरुनिष्ठ सात्विक प्रेम के आदर्श की व्यजना इन दूहों में बड़े मार्मिक ढंग से हुई है—

जिम सालूँ सरवराँ, जिम धरणी अर मेह ।
चपावरणी वालहा, इम पालीजइ नेह ॥१६८॥
तुँही ज सज्जण, मित्त तूँ प्रीतम तूँ परिवॉण ।
हियइइ भीतरि तूँ वसइ, भावइँ जाँण म जाँण ॥१७५॥
हूँ बलिहारी सज्जणँ, सज्जण मो बलिहार ।
हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गलहार ॥१७६॥

सदेश देकर दादियों को विदा करती हुई मारवणी की दशा को कवि ने कुशल मनोवैज्ञानिक चित्रकार की तरह बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रितकर भावुकता में कमाल कर दिया है—

सँभारियाँ सँताप, वीसारिया न वीसरइ ।
कालेजा वीचि काप, परहर तूँ फाटइ नहीं ॥१८०॥
भरइ पलटइ, भी भरइ, भी भरि, भी पलटैहि ।
दाढी हाथ सदेसड़ा धण विललती देहि ॥१८२॥

मारवणी के सदेशों में दो एक स्थान पर कविकल्पना का अपव्यय भी हुआ है। दूर की सूक्त में कल्पना की ऊहावृत्ति यद्यपि चमत्कार अत्रवश्य उत्पन्न करती है परंतु अंतस्तल के सच्चे उद्गारों के बीच ये चमत्कार नकली मोती की तरह प्रतीत होते हैं। इन ऊहात्मक और अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों के गर्भ में हमको मारवणी की वेदना का भाव स्पष्टतः दिखाई देता है। इस बात से सतोष होता है कि मारवणी के निष्कण्ठ भावनारूपी सुवर्ण सूत्र ने इन वनावटी मोतियों को भी सवेदना के सूत्र में ग्रथितकर उनको काव्योपयुक्त रूप दे दिया है। वे स्थल ये हैं—

प्रीतम, तोरइ कारणइ ताता भात न खाहि ।
हियड़ा भीतर प्रिय वसइ, दाभणती डरपाहि ॥१६०॥
राति ज रूँनी निसह भरि, सुणी महाजनि लोइ ।
हाथाली छाला पडथा, चीर निचोइ निचोइ ॥१५६॥

यह कल्पना चमत्कार रीतिकाल के शृंगारी कवियों की, बाल की खाल निकालनेवाली, दूर की सूक्त से कम नहीं है।

माळवणी का विरह

इसी विप्रलभ शृंगार के विषय में माळवणी के विरह का दिग्दर्शन सत्प्रेम में करा देना उचित होगा, जिससे पाठक मारवणी और माळवणी के प्रेम का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें। सिद्धांत रूप में दोनों के भेद का उल्लेख तो हम ऊपर कर चुके हैं। यहाँ केवल उदाहरण दे देते हैं।

माळवणी को छोड़कर मारवणी के लिये प्रस्थान करना ढोला के लिये एक विकट समस्या है। दोनों में ढोला का सच्चा प्रेम है। एक को सयोग-सुख देने में दूसरी को वियोगदुःख देना पड़ता है, एक के प्रेम का आदर करने से दूसरी के प्रेम का निरादर होता है। प्रेम की इस सकटावस्था में ढोला मध्यम मार्ग निकालकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहता है। इस समय ढोला का प्रेम कसौटी पर कसा जाता है। ढोला चतुरतापूर्वक नीति की एक चाल चलता है। माळवणी को बहाने से ललचाकर यात्रा करने की अनुमति प्राप्त किया चाहता है। इससे ढोला का माळवणी के प्रति सुदृढ़ प्रेम प्रकट होता है—

ईडर की धर अउळगँ, जइ तूँ कहइ तु जाँह ।

अउथि घड़ाऊँ आभरन, माळवणी, मेलाँह ॥२२४॥

परंतु यह तुच्छ प्रलोभन माळवणी पर असर नहीं करता। उसे प्रियतम आभरणों से कहीं ज्यादा प्यारा है। उचर में तुरंत कहती है—

ईडर की धर अउळगण, हूँ तउ जाण ण देसि ।

धरि बइठाही आभरण, मोल मुहगा लेसि ॥२२५॥

ढोला उत्तम जाति के तेज कच्छ देश के नामी ऊँट खरीदने का मिस लेता है परंतु यह दलील भी काम नहीं देती। माळवणी उत्तर देती है—

साहिब, कच्छ न जाइयइ, तिहाँ परेरउ द्रग ।

भीमळ नयण सुवंक धण, भूलउ जाइसि सग ॥२२६॥

चार बार यात्रा के लिये प्रस्ताव करने पर और ढोला की आंतरिक चिंता को पहचानकर चतुर माळवणी रोग का स्पष्ट निदान करती हुई पूछती है—

वळि माळवणी वीनवइ हूँ प्री, दासी तुभ्भ ।

का चिंता चित अतरे सा प्री, दाखउ मुभ्भ ॥२२६॥

साहिब, रहउ न राखिया कोड़ि प्रकार कियाह ।

का यँ काँभिए मन वसी, का म्हाँ दूहवियाह ॥२२७॥

अब तो ढोला की पोल खुल गई। कहाँ तक छिपाता। जब नीति से काम न चला तो सारा हाल सच सच कह दिया और प्रियतमा से दिनय करने लगा—

सुरिण सुदरि सच्चड चवॉ, भाँजइ मनची भ्रति ।

मो मारु मिळिवातणी, खरी विलग्गी खति ॥२३८॥

बस, अब क्या था। माळवणी को अब तक केवल आशका थी। अब सच्ची बात प्रकट होने पर विरह की भावी चिंता और दुःख के कारण मन को भारी वक़्का लगा। उस हार्दिक चोट की प्रतिध्वनि इस दोहे में गूँजती है—

माळवणीकड तन तप्यड, विरह पसरिवड अगि ।

ऊमी थी खड्खड पड्डी, जाखे डसी भुयंगि ॥२३९॥

माळवणी के सामने अब एक ही प्रश्न था—जिस किसी तरह प्रियतम को अपनी धारणा से विरक्त करके यात्रा को स्थगित करवाना। यद्यपि यह विरह की पूर्वावस्था थी, पूर्ण विरह नहीं परंतु भावी विच्छोह की दारुण चिंता ने उसे साहसी बना दिया था। उस समय ग्रीष्म ऋतु का आधार लेकर उसने विदेशयात्रा संबंधी आक्षेपोक्तियों प्रारंभ कीं और जाने की अनुमति न दी—

थळ सत्ता लू सॉमुही, दाभोला पहियाह ।

रहॉकड कहियड जड करड घरि वड्ढटा रहियाह ॥२४१॥

प्रिया को खुश करके उसकी प्रसन्नता से अनुमति लेकर ही प्रस्थान करना ढोला ने उचित समझा। वह रुक गया। ग्रीष्म के तीन मास समाप्त हुए। वर्षागम हुआ। ढोला ने फिर अनुमति माँगी। माळवणी ने इस ऋतु को भी यात्रानुकूल न बताया—

जिण रति वग पावस लिवइ धरणि न मेल्हइ पाइ ।

तिण रति साहिव वल्लहा, कोइ दिसावर जाइ ॥२४६॥

प्रीतम कामणगारिवॉ थळ थळ वाढळियॉह ।

घण वरसंतइ सृकियॉ, लूसँ पाँगुरियॉह ॥२४८॥

कण्पइ, जीण, कमाण गुण भीजइ सब हयियार ।

इण रति साहिव ना चलइ, चालइ तिके गिमार ॥२४९॥

- अब तो ढोला ने भी देखा कि चुपचाप आक्षेपों को सुनते रहने से काम न चलेगा । उसने भी प्रत्याक्षेप करने शुरू किए—

बाजरियाँ हरियाळियाँ, त्रिचि त्रिचि बेलों फूल ।
जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारु देस अमूल ॥२५०॥
घर नीली, धण पुडरी, घरि गहगहइ गमार ।
मारु देस सुहामणउ सॉवणि सॉभी वार ॥२५१॥

माळवणी फिर विरहिनियों के लिये वर्षा ऋतु का दुस्सह चित्र उपस्थित करती है—

फौज घटा, खग दॉमणी बूँद लगइ सर जेम ।
पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम ॥२५५॥
काळी कठळि वादळी वरसि ज मेल्हइ वाउ ।
प्री विण लागइ बूँदडी जॉणि कटारी घाउ ॥२६७॥

इसी प्रकार जायसी ने भी विरह में वर्षा के दुस्सह दुःख को नागमती के संबन्ध में चित्रित किया है—

खडग वीज चमकै चहुँ ओरा । बुंद वान वरसहिं घनघोरा ॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी । कत उन्नारु मदन हौ घेरी ॥
वर्षा काल है । रास्तों में कीचड भरा होगा । ऊँट का पैर फिसल जायगा । यात्रा के लिये वर्षा ऋतु से बढ़कर तो दूसरी बुरी ऋतु नहीं होती । कैसी चतुर उक्ति है—

नदियाँ, नाळों, नीभरण पावस चढिया पूर ।
करहउ कादिम तिलकस्यइ, पथी, पूगळ दूर ॥२५६॥

विरह की कल्पना में वर्षाकाल के सारे सुखद दृश्य माळवणी के लिये दुःखद हो जाते हैं—

जिण रुति बहु वादळ भरइ, नदियाँ नीर प्रवाह ।
तिण रुति साहिव वल्लहा, मो किम रयण विहाय ॥२५६॥
महि मोरों मडव करइ, मनमथ अंगि न माइ ।
हूँ एकलड़ी किम रहउँ, मेह पघारउ माइ ॥२६३॥

आकाश में बिजलियों को बादलों के साथ और पृथ्वी पर बेलों को वृद्धों के साथ और सयोगिनी नायिकाओं को नायकों के साथ अलिंगन करते देखकर विरहिणी माळवणी का धैर्य नहीं रहता—

ऊँचउ मदिर अति घणउ आवि सुहावा कत ।
 वीजळि लियइ भवूकड़ा सिहगँ गळि लागत ॥२६८॥
 सावण थायउ साहिना, पगइ विलवी गार ।
 वच्छ विलवी वेलड्यो, नरो विलवी नार ॥२६९॥

माळवणी के सुदृढ प्रेम में बँधे हुए ढोला ने वर्षाऋतु के अत तक यात्रा को स्थागित रखा । दशहरा भी बीत गया । शरद् ऋतु का प्रवेश हुआ । लगभग एक वर्ष बीतने को आया । अत्र तो ढोला उकता गया । माळवणी ने शरद् ऋतु को भी यात्रा के अनुपयुक्त सिद्ध किया, यही नहीं वर्ष की सभी ऋतुओं को यात्रा के लिये अनुपयुक्त प्रमाणित कर दिया । माळवणी की आक्षेपोक्तियों में उत्तम कोटि का व्यंग्य भरा है । उन पर मनन करने से सच्चे काव्यानंद की प्राप्ति होती है । शरद् ऋतु की आक्षेपोक्ति लीजिए—

जिण रितनाग ननीसरइ, दाभइ, वनखँड दाह ।
 जिण रित माळवणी कहइ, कुँण परदेसो जाह ॥२८४॥
 सीयाळइ तउ सी पइइ, ऊन्टळिइ लू वाइ ।
 वरसाळइ भुइँ चीकणी, चालण रत्ति न काइ ॥२७७॥

अत्र तो ढोला को साहस करना ही पड़ा । माळवणी की प्रेमपरीक्षा में वह उत्तीर्ण हुआ परंतु अत्र यदि मारवणी की सुवि न ले तो उसके प्रेम में शैथिल्य प्रमाणित होता है । अतएव स्पष्ट शब्दों में कह ही तो दिया—

माळवणी, भे चालिस्यो म करि हमारी तात ।
 का हसि करि म्होँ सीख दे, खडिस्यो माँभिम रात ॥२७८॥

कैसा मीठा, कैसा सूक्ष्म, परंतु दृढ उत्तर है । ढोला के प्रेममय चरित्र की यही कसौटी है । मेरे अनिष्टों की चिंता न करो, प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करने की आज्ञा दो (अत्र भी माळवणी को प्रसन्न रखना चाहता है !) अन्यथा अर्द्धरात्रि को सोती छोड़कर चल देना पड़ेगा । माळवणी के प्रति अपने प्रेम में ढोला पूरा उतरता है । जागती को छोड़कर जाने से माळवणी को मर्मांतक वेदना होगी । प्रेमिका की उस असह्य वेदना को बचाकर रात्रि में चलने का प्रस्ताव किया । दूमरा कोई उपाय न था । ऐसी ही अवस्था में राजकुमार सिद्धार्थ अपने परमार्थप्रेम से उत्साहित होकर यशोधरा को रात में सोती छोड़कर निकले थे ।

ढोला की इस दृढ़ता को देखकर माळवणी को कोई सहारा न रहा । एक बार फिर अतिम प्रयत्न किया । सोचा, ढोला के प्रेमशैथिल्य की कुछ चुभती हुई व्यंग्योक्तियाँ कहूँ । शायद उनसे लुब्ध होकर ही रुक जाय—

डूँगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह ।

बहता वहइ उतामळा, भटक दिखावइ छेह ॥३३८॥

पिय खोटारा, एहवा, जेहा काती मेह ।

आडंबर अति दाखवइ आस न पूरइ तेह ॥३३९॥

कैसी पैनी, काटती हुई उक्ति है । ढोला का हृदय इससे चुभकर व्यथित अवश्य हुआ होगा, परतु करता क्या ? इस सवाद को ज्यादा बढ़ाने से फायदा होता नहीं दिखाई दिया । ढोला व्यंग्योक्ति को चुपचाप मन ही मन पी गया । आखिर ढोला को दृढ़ देखकर माळवणी को अनिच्छा होते हुए भी झुल्लाकर अनुमति देनी पड़ी—

हल्लउँ हल्लउँ मत करउ, हियइइ साल म देह ।

जे साचे ई हल्लस्यउ, सूताँ पल्लारोह ॥३०५॥

अंत में बिदाई का दृश्य बड़ी मार्मिक स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया गया है । शब्दसौष्टव की स्वाभाविक योजना, भाव की वारीकी और दृश्य की सरलता और स्पष्टता के लिये काव्यकला और भावुकता की दृष्टि से यह दोहा सर्वोत्तम काव्य का लक्षण है । भावना और शब्दचमत्कार सोना और सुगंध की तरह मिल गए हैं—

ढोलउ हल्लाणउ करइ धण हल्लिवा न देह ।

भत्रभत्र भूँवइ पागइइ, डवडव नयण भरेह ॥३०४॥

यह कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि माळवणी की प्रेमपूर्ण आक्षेपोक्तियों और युक्तियों में स्वाभाविकता का बड़ा अच्छा निर्वाह हुआ है । माळवणी की, ढोला की यात्रा स्थगित करने की युक्तियों के पीछे उसके प्रेम की गभीर प्रेरणा है । प्रेम की दृढ़ता के कारण उसको इन प्रयत्नों में कुछ सफलता भी मिली । एक वर्ष तक ढोला को उसने रोक रखा ।

माळवणी ने ढोला को रोकने का एक अतिम प्रयत्न और भी किया था । जिस ऊँट पर चढ़कर ढोला यात्रा करने को था उससे लँगडा होने का बहाना करवाने की उसकी आयोजना यद्यपि सफल न हुई परतु उस प्रयत्न में उसके मन की आतुरावस्था स्पष्टतः व्यक्त होती है । उस प्रयत्न में 'मरते को तिनके का सहारा' वाली लोकोक्ति सिद्ध होती है ।

ऊँट के पास जाकर माळवणी विनय करती है। यह करुणोक्ति वैसी ही है जैसी प्रेमातुर अवस्था में राम का सीता की खोज में वन के मृग और वृक्षों से सीता का पता पूछना अथवा विरहविधुरा गोपिकाओं का व्रज की लताओं से कृष्ण के विषय में पूछना।

माळवणी ने प्रियतम को यात्रा से रोकने के हजार प्रयत्न किए। अत्र भी हृदय से यही चाहती है कि ढोला रुक जाय तो अच्छा। परतु व्रज प्रेमी प्रस्थान करने को है, तो पतिपरायणा साव्धी की तरह उसकी मंगलकामना करती है। यहि सच्चा प्रेम न होता तो यह सोचती कि यात्रा असफल हो—अनिष्टकर हो। परतु नहीं, वह प्रस्थान के समय हितकामना करती हुई कहती है—

ये सिध्धावउ, सिध करउ, बहु गुणवता नाह।

सा जीहा सतखड हुइ जेण कहीजइ जाह ॥३४०॥

दूसरी पक्ति में सर्वोत्तम कोटि का वेदनापूर्ण आक्षेप व्यंग्य है।

ढोला चला गया। अत्र प्रवत्स्यत्पतिका विरहिणी माळवणी का विप्रलभ प्रारंभ होता है। अत्र तक तो उसे भावी विरह की चिंता और क्षोभ था। माळवणी की वास्तविक विरहदशा का कवि इस प्रकार वर्णन करता है। माळवणी सखियों से कहती है—

ढोलठ चाल्यउ हे सखी, वाघ्या विरह निसाँण।

हाये चूड़ी खिस पडी, ढीला हुया सँघाण ॥३४६॥

विरहजन्य दशापरिवर्तन का क्या ही मर्मस्पर्शी दिग्दर्शन है। माळवणी के अग प्रत्यग शिथिल हो गए—जड़ हो गए, हाथ की चूड़ी खसककर नीचे आ गई। यद्यपि शिथिलता की अत्युक्ति है परतु सवेदनापूर्ण होने से वह माळवणी की तीव्र वेदना की परिचायक है। माळवणी सखियों के प्रति अपना विरहदुःख यों कहती है—

सजण चाल्या हे सखी, वाघ्या विरह निसाँण।

पालखी विसहर भई, मदिर भयउ मसाँण ॥३५२॥

सजणियाँ वउलाइ कह मदिर वइठी आइ।

मदिर काळउ नाग जिउँ हेलउ दे दे खाइ ॥३७१॥

चपा केरी पखड़ी, गूँथूँ नवसर हार।

जउ गळ पहलूँ पीव विन, तउ लागे अगार ॥३६६॥

प्रिय के विरह में सब सुख के साधन दुःख के उत्तेजक कारण बन जाते हैं। सुखशय्या सॉप की तरह विषाक्त प्रतीत होती है, सौख्यपूर्ण महल श्मशान-भूमि की तरह शून्य और भयावह प्रतीत होते हैं और उनकी डरावनी निर्जनता काटने को दौड़ती है।

सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पूगळ ढोडेह ।
सायधण लाल कर्वाण ज्यउं ऊभी कड मोडेह ॥३५५॥

विरहिणी की बेचैनी और आलस्य का कैसा भावुक शब्द चित्र है। माळवणी को प्रिय के बिना जीवन भार स्वरूप हो गया है। कोई चीज अच्छी नहीं लगती। पानी पीती है परंतु गले से नीचे नहीं उतरता, साँस हृदय में समाती नहीं।

सज्जण चाल्या हे सखी, सूना करे अवास ।
गळेय न पाणी उत्तरइ, हिये न मावइ सास ॥३५८॥

विरहावस्था के ऐसे स्वाभाविक वर्णन बहुत कम काव्यों में मिलेंगे। जायसी ने इसी से मिलताजुलता भाव नागमती के विरहवर्णन में प्रकट किया है—

‘खन एक आव पेट मँह साँसा । खनहि जाइ जिउ होइ निरासा ॥’
प्रियविरहजन्य शून्यता और निराशा का सुंदर व्यंग्य चित्र देखिए—

ढोलइ चढि पड़ताळिया ढूँगर दीन्हा पूठि ।
खोजे बाबू हथ्यड़ा धूड़ि भरेसी मूठि ॥३६१॥
सयणाँ, पाँखाँ प्रेम की तहँ अब पहिरी तात ।
नयण कुरगउ ज्यूँ वहइ लगइ दीह नई रात ॥३६४॥
साल्ह चलतइ परठिया आँगण वीखडियाँह ।
सो मई हियइ लगाडियाँ भरि भरि मूठडियाँह ॥३६६॥

प्रेम की एकनिष्ठता, तल्लीनता, तादात्म्य का इससे बढ़कर क्या परिचय हो सकता है कि वातावरण में सब ओर प्रेमी ही प्रेमी की प्रतिमा दिखाई दे, जिससे विरहविधुरा प्रेमिका वायु को भी प्रेमी की प्रतिमा के भ्रम से आलिंगन करने लगे, रातदिन नेत्र प्रेमी की खोज में दशों दिशाओं में घूमते रहे और प्रेमी के पीछे छोड़े हुए पदचिह्न की धूलि को मुट्टियाँ भर-भरकर छाती से लगाकर प्रेयसी अपने उद्वेग को शांत करने की चेष्टा करे। विरह के ये व्यापार उन्माद और विद्विषता के द्योतक हैं। चैतन्य महाप्रभु और मीरा का कृष्ण के प्रेम में नाचना, मजबूँ का लैला के लिये हवा से बातें

करना, यक्ष का वादलों द्वारा सदेश भेजना, उन्माद नहीं तो क्या था ? परतु यही उन्माद सच प्रेम का अंगार होता है ।

प्रियतम के विरह में पत्नी को अपनी तुच्छता और हीनता का ज्ञान होना स्वभाविक ही है—जिसकी पहले लाखों की कीमत होती अब उसे कौड़ी को भी कोई नहीं पूछता । सच है जब माली ने वल्लरी को सीचना ही छोड़ दिया तो वह सूखगी ही—

प्रियतम हूती वाहिनी कवडी ही न लहाँइ ।
जब देखूँ घर आँगणइ लाखे मोल लहाँइ ॥३७०॥
सजग वल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार ।
मूरुण लागी बेलड़ी, गया ज मीचणहार ॥३७४॥

जायसी के नागमती विरहवर्णन में भी इसी प्रकार का वर्णन है—

कँवल जो बिगसा मानस, विन जल गण्ड सुखाइ ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जो पिड सींचे आइ ॥

प्रियतम के विरह में उसके स्मारकचिह्न ही प्रेयसी के लिये जीवनाधार हो जाते हैं । उनको देख देखकर प्रियतम की याद करके वह दुःख के रूप में अपने प्रियतम की स्मृतियों को हरी रखती है—

खँटइ जीण न मोजडी, कड्योँ नहीं केकॉण ।
साजनियोँ सालइ नहीं, सालइ आही टॉण ॥३७५॥

भारतेंदु की चद्रावली नाटिका में कृष्ण के विरह में चद्रावली कहती है—‘प्यारे देखो, जो जो तुम्हारे मिलने में मुहावने जान पडते थे वही अब भयावने हो गए हैं । हा, जो वन आँखों से देखने में कैसा मला दिखाता था, वही अब कैसा भयकर दिखाई पडता है । देखो, सब कुछ है, एक तुम्हीं नहीं हो प्यारे ।’ (दूसरा अंक)

प्रियप्रवास में विरहविधुरा गोपिकाओं की इसी प्रकार की उक्ति है—

कुजें वही, यल वही, यमुना वही है ।
बेलें वही, वन वही, विटपी वही है ॥
हैं पुष्प पल्लव वही, ब्रज भी वही है ।
ए किंतु श्याम विन है न वही जनाते ॥१४-१४२॥

विरहिणी की कामदशा को शास्त्र में दस प्रकार से वर्णन किया जाता है—

अभिलाषश्चिन्तास्मृति गुणकथनोद्वेग सम्प्रलापाश्च ।

उन्मादोऽथ व्याधिर्जङ्गतामृतिरिति दशात्र कामदशा ॥

—सा० द० ३-२१४ ॥

इन दशाओं में प्रायः सभी का विकास माळवणी के विप्रलभ में मिलता है । उन्माद, स्मृति, व्याधि और प्रलाप के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं । विरह-जन्य जङ्गता को कैसी मार्मिक व्यंजना की गई है—

बीछड़ताँ ही सज्जणा, क्याँ ही कहण न लब्ध ।

तिण वेला, कँठ रोकियउ, जाणक सिंधा खध ॥३८१॥

अंतर्दग्ध करनेवाली चिंता का चित्र इस दोहे में चित्रित किया गया है—

सज्जण ज्यूँ ज्यूँ सभरइ, देख्याँ आही ठाँण ।

भुरि भुरि नइ पजर हुई, समर समर सहिनाँण ॥३८२॥

विरहिणी की कामजन्य अभिलाषाएँ भी विचित्र होती हैं । विरहदुःख जब हृदय में नहीं समाता तो माळवणी अभिलाषा करती है कि पर्वत शिखर पर जाकर धाड़ मार मारकर रो ले जिससे हृदय हलका हो जाय—

वावा, वाळूँ, देसइउ, जिहाँ हूँगर नहिँ कोइ ।

तिणि चढि मूकउँ धाहड़ी, हीयउ उरळउ होइ ॥३६१॥

माळवणी को अपने प्रलाप में चेतन और अचेतन का ज्ञान नहीं रहता । वह वन में खड़े हुए एक हरेभरे 'जाळ' के दरख्त को देखकर कहती है—

थळ मथथइ जळ वाहिरी तूँ काँइ नीळी जाळि ।

कँइ तूँ सींची सज्जणे, कँइ बूठउ अग्गाळि ॥३६१॥

इस पर अपनी कल्पना के बल से कवि माळवणी को जाल की ओर से यह सतोषदायक उत्तर दिला देता है—

ना हूँ सींची सज्जणे, ना बूठउ अग्गाळि ।

मो तळि ढोलउ वहि गयउ, करहउ बाँध्यउ डाळि ॥३६२॥

ढोला के जाळ के नीचे से निकल जाने पर और ऊँट को बाँधकर जाळ के नीचे क्षणिक विश्राम लेने पर जाळ की यह दशा हुई कि वह बिना वर्षा अथवा जलदान के हरीभरी हो गई । जब ढोला के क्षणिक संयोगसुख से जड़ जीवों की दशा समुन्नत हो जाती है, तब तो ऐसे प्रियतम के लिये माळवणी का विलाप करना यथार्थ है । ससार के सभी साहित्यों के गीतकाव्यों

में बड़ और चेतन का इस प्रकार प्रश्नोत्तर द्वारा समवेदना के एक सूत्र में बंधा होना सिद्ध होता है ।

माळवणी का विरह बड़ी तीव्र और कर्ण वेदना से भरा है, परंतु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इस उन्माद और उद्वेग की विरहदशा में वह अपने कर्तव्य को भूल नहीं जाती । अपने प्रेमी को प्रवास से विरत करने में वह सदा सयत्न रही और जब उसे रोक न सकी तब भी उसने यत्न को न छोड़ा । माळवणी का यह सयत्नोत्साह उसके प्रेम की दृढता का परिचायक है । ढोला के चले जाने पर माळवणी ने उसे लौटाने का एक प्रबल प्रयत्न किया । इसी आशय से उसने अपने शुक को भेजा था ।

यद्यपि इस काव्य में विप्रलम्भ शृंगार ही प्रधान है, परंतु सभोग का भी वर्णन हुआ है । जैसे तो कहानी के इतिवृत्त की रचना ही इस ढंग से हुई है कि माळवणी और मारवणी के सन्ध के सभोग शृंगार का निदर्शन बहुत कम होने पाया है । नायक ढोला और नायिका मारवणी की प्रेमवार्त्ता को प्रधानता देने के लिये उन्हीं के प्रेमसूत्र के विकास का आद्योपात्त और क्रमागत वर्णन किया गया है । माळवणी का पहलेपहल वर्णन दूहा २१५ में उस अयस्था में हुआ है जब ढाढियों द्वारा मारवणी का सदेश ढोला को मिल जाने पर वह पति को चिंताकुल देखती है । परंतु माळवणी के उत्तरकालीन प्रौढ प्रेम-प्रवाह की गति से हम उसके पूर्वकालीन दापत्य प्रेम के सौख्य और घनत्व का अनुमान कर सकते हैं । जो माळवणी पति के प्रेम पर इतना अधिकार रखती है कि प्रेमातुर पति को एक वर्ष तक अपनी यात्रा से विरत कर सकती है उसके प्रेम का सभोग पक्ष भी खूब सौख्यपूर्ण और परिपुष्ट रहा होगा ।

(११) ढोलामारू का संयोग शृंगार

सयोग शृंगार का स्पष्ट निदर्शन हमको मारवणी-ढोला-मिलन के दृश्य में मिलता है । यद्यपि वह अत्यंत सक्षिप्त है, परंतु उसी का हम यहाँ उल्लेख करेंगे । यह वर्णन पद्मावती-रत्नसेन-विषयक संयोग शृंगार से बहुत कुछ मिलता-जुलता है अतएव इनकी तुलना भी की जा सकती है ।

ढोला के पूगल पहुँच जाने पर मारवणी के हर्ष का पारावार न रहा । मारवणी अपने आतंरिक सुख और हर्षोल्लास को सखियों पर प्रकट करती है—

साहिब आया, हे सखी, कजा सहु सरियोह ।
 पूनिम केरे चद ज्यू दिसि च्यारे फळियोह ॥५२८॥
 सखिए, साहिब अःविया, जाँहकी हूँती चाइ ।
 हियडउ हेमाँगिर भयउ, तन पजरे न माइ ॥५२९॥
 आजूणउ धन दीहडउ साहिब कउ मुख दिह ।
 माथा भार उलाथियउ, आँख्योँ अमी पयह ॥५३१॥
 सखी, सु सजण आविया, हुँता मुभ्भु हियाह ।
 सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह ॥५३३॥

मारवणी के पवित्र और मर्यादाविहित प्रेम का विकास उसके हृदय की सीमा को व्याप्तकर चारो ओर पूर्णिमा की चद्रिका के समान छिटक गया है । उसका विरहव्याकुल हृदय अब हिमालय की तरह शीतल हो गया है । मानसिक प्रफुल्लता इतनी बढ़ गई है कि शरीर पजर में नहीं समाती । आज मानों उसके सिर पर से विरहरूपी भारी बोझ उतर गया और उत्सुक नेत्रों में प्रियदर्शन के कारण अमृत छलकने लगा । सूखी हुई बल्लरी आज पुनः पल्लवित और पुष्पित हो गई, संयोगजनित मद आँखों की मस्ती में झलक रहा है । मारवणी का संयोगसुख अपनी स्वाभाविक सूक्ष्मताओं के साथ उसके अंगप्रत्यंग की प्रफुल्लित और आहादपूर्ण दशा से प्रकाशित हो रहा है ।

इसी प्रकार पद्मावती का संयोगसुख भी उसने अंगप्रत्यंग में विकसित हुआ है—

अग अग सब हुलसै, कोइ कतहूँ न समाइ ।
 ठाँवहिँ ठाँव विमोही, गइ मुरछा तनु आइ ॥

परंतु दोनों में भेद इतना है कि जहाँ मारवणी का संयोगजन्य हर्षोल्लास अधिक सयत और शील की सीमा में बद्ध है, वहाँ हर्षोल्लास की बाढ़ में पद्मावती के पैर उखड़ जाते हैं वह मूर्च्छित हो जाती है । साहित्यिक दृष्टि से यद्यपि ऐसे अवसर पर मूर्च्छित हो जाना ठीक समझा गया है और वह भावातिशय को प्रकाशित करता है, परंतु उसमें सयम और मर्यादा का अभाव अवश्य द्योतित होता है ।

मारवणी के प्रथम समागम का वर्णन जहाँ हुआ है, वहाँ भी इसी प्रकार की सयमशीलता और शीलसपन्नता प्रकट होती है । यथा—

कठ विलगी मारवी करि कचूवा दूर।

चक्रवी मनि आर्णद हुवट, किरण पसारया गूर ॥५५१॥

इसी प्रकार दूहा ५५२, ५५३, ५५४, ५६१, ५६२ में देखना चाहिए। दूहा ५६३ में मजिष्टा गग की टपमा प्रेम की विशुद्ध पूर्णता की सूचक है—

धरती जेहा भरखमा, नमणा जेही केळि।

मर्जाटों जिम रचणों, दईं, सु सजण मेलि ॥५६३॥

वर्णन की गभीरता, नयनता और शीलसंपन्नता ने शृंगार को अश्लीलता की व्यञ्जना से बचा लिया है। जहाँ तक हो सका है, मारवणी के सभोग शृंगार की पगकाया शुद्धता, शील और संस्कृति की सीमा से बाहर नहीं होने पाई है।

ऐसे ही स्थल पर पद्मावती के प्रिय-मिलन-जन्य प्रेम को जायसी ने काम-जन्य दशाश्रों में प्रकट किया है जिससे उसमें शक्ति पवित्रता का वह भाव प्रकट नहीं होता जो मारवणी के प्रेम में दूया है—

दूटा चोद सूर जस साजा। अरथौ भाव मदन जनु गाजा ॥

हुलसे नैन दगस मढमाते। हुलसे अधर रंग रस राते ॥

हुलसा नदन ओप गवि पाई। हुलसि हिया कंचुकि न समाई ॥

हुलसे कुच कसनी बँध टूटे। हुलसी मुजा बलय कर फूटे ॥

हुलसी लक फि रावन गज। राम लखन दर साजहि आजू ॥

आजु कटक जोरा है कामू। आज विरह सो होइ सग्रामू ॥

मएठ नरु जस रावन गमा। नेज विवॉसि विरह सग्रामा ॥

इस विवरण में 'अरथौ भाव मदन जनु गाजा', 'राम लखन दर साजहि आजू', 'कटक जोग है कामू', 'होइ सग्रामू' इत्यादि भावों की उग्र व्यञ्जना प्रेम की सात्विक शीलता, स्वाभाविक सरलता और कोमलता में एक प्रकार का नूतन पैदा कर देती है जो फारसी दग की कविता में भले ही मान्य हो, भारतीय साहित्य और संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध प्रतीत होती है। जायसी के प्रेमवर्णन की उग्रता अक्सर और पात्र के अनुपयुक्त जँचती है।

प्रियमिलन के अक्सर पर मारवणी ने शृंगार किया। वह शृंगारवर्णन भी बहुत कुछ सयत, विशुद्ध और मर्यादावद्ध है—

सखिए जगट मॉजिणउ खिजमति करइ अनंत।

मारु तन मडप रच्यउ, मिलण मुहावा कत ॥५३५॥

बम्मवमतइ वाधरइ, उळथ्यउ चॉण गवंद।

मारु चाली मंदिरे, भीरो वादल चद ॥५३७॥

बोली वीणा, हस गत, 'पग बाजंती पाळ ।
 रायजादी घर अगणह छुटे पटे छळाळ ॥५४०॥
 सोई सज्जण आविया, जाहकी जोती बाट ।
 थोभा नाचइ, घर हँसइ, खेलण लागी खाट ॥५४१॥

इसके विपरीत पद्मावती के शृंगार का विशद वर्णन करते हुए कवि ने बारह आभरणों का वर्णनकर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है—

(१) बारह अभरन करै सो साजू ।

(२) जो न सुना तो अब सुनइ बारह अभरन नाँव ।

जायसी का यह वस्तुवर्णन शृंगार रस के विकास और परिपाक में बाह्य वस्तु सा प्रतीत होता है। इससे रस की परिपुष्टि और सम्यक् आस्वादन नहीं होता। भावुकता और सवेदना का स्पर्श इनमें नहीं के बराबर है, अतएव प्रस्तुत विषय के साथ इनका बहुत थोड़ा और निर्जीव सपर्क रह जाता है।

इसी प्रकार 'सोलह शृंगार', पारा, गधक, हरताल, सिद्धगुटिका और रासायनिक क्रियाओं और पदार्थों का अनवसर पर वर्णन करके कवि ने बहुज्ञता और वस्तुज्ञान का पूरा परिचय तो दिया है, परंतु इनसे काव्य का बहुत थोड़ा उपकार सिद्ध होता है।

शृंगार के उद्दीपक साधनों में जिस प्रकार प्रथाबद्ध षड्भृत वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार प्रेमियों का पारस्परिक विनोद, हास्य, कुतूहल, क्रीड़ा आदि साहित्य में बताए गए हैं। मारवणी के समीप शृंगार के अंतर्गत ऋतु-वर्णन के स्थान पर 'अष्टयाम' का वर्णन हुआ है। इससे पहले प्रथम समागम के उपयुक्त प्रेमियों में कुछ विनोद और क्रीड़ा भी होती है। 'मान' का भी सन्धेप में दिग्दर्शन होता है।

ढोला हँसी ही हँसी में एक मीठी चुटकी लेता हुआ मारवणी से कहता है—

काया भवकइ कनक जिम, सुदर, केहे सुख्व ।

तेह सुरगा किम हुवइँ, जिण वेहा बहु दुख्व ॥५४६॥

इस विनोदभरी परंतु तीखी व्यंग्योक्ति को सुनकर मारवणी को संकोच होता है कि 'खुणसउ राखइ कंत'—पति के मन में खुनस बैठ गई है। वह उसी क्षण कैसा सच्चा और लाजवाब उत्तर देती है—

पहुर हुवउ ज पधारियाँ मो चाहती चित्त ।

डेहरिया खिण मइ हुवइ वॅण वृठइ सरजित्त ॥५४८॥

ढोला का सदेह 'खुणसउ' बनावटी था । उसे मजाक करना था । क्या उत्तर देता ? यदि देता तो इस उत्तर के सामने वह टहर न सकता । जब निम्न सृष्टि के जीवों—मेढकों—तक में प्रेम की सजीवनी शक्ति इस विलक्षणता के साथ प्रकट होती है तो मानव का तो कहना ही क्या है ।

पद्मावती भी प्रियसमागम के अचसर पर व्यगविनोद और परिहास करती है, परंतु उनमें वह विनम्रता और शील व्यजित नहीं होते जो ढोलामारु के वचनों में होते हैं । पद्मावती झिडककर रत्नसेन से कहती है—

'ओहट होसि जोगि तोरि चेरी । आवें वास कुरकुटा केरी ॥

देखि भभूति छूति मोहि लागे । कों पै चाँद सूर सों भागै ॥

जोगि तोरि तपसी केँ काया । लागि चहै मोरे अग छाया ॥

वार भिखारि न माँगसि भीखा । मागै आह सरग पर सीखा ॥

यद्यपि ये प्रेम की झिड़कियाँ हैं और कहने को इनमें 'तोरि चेरी' शाब्दिक विनम्रता भी है, परंतु भाव का उतना सयत गठन नहीं है कि शीलसाधन की सीमा में रह सके ।

सयोग शृंगार की प्रेमपद्धति में वाक्चातुर्य, वचनविलास और परिहास का मनोहर आयोजन रहता है । 'ढोला' के प्रेम में ऐसा आयोजन है और जायसी में भी । पाश्चात्य गीत काव्यों (Ballads) में भी पहेलियों और अनेक ढंग की वचनचातुरी का विशद साहित्य उपलब्ध होता है । कभी कभी एक पहेली के ठीक ठीक उत्तर दे देने पर ही प्रेमी नायक अथवा नायिका को अपने प्रेमी के प्रेम का पूर्ण लाभ होता है । प्रेम में साधारणतः वाग्बिलास और परिहास की वृत्ति का स्फुट होना स्वाभाविक ही होता है ।

अंगरेजी के प्रमुख लोक गीतों में (1) The Elfin Knight, (2) Captain Wedderburn's Courtship, (3) King John and the Bishop ऐसे गीत हैं जिनमें विनोद और परिहास द्वारा प्रेमी अपने भावों को परस्पर व्यक्त करते हैं । प्रथम और द्वितीय में प्रेमी कठिन पहेली का उत्तर देने के परिणाम में अपने प्रेमपात्र का प्रणयलाभ करते हैं । तीसरे में पहेलियों द्वारा दो दलों का भाग्यनिर्णय किया गया है । किवंदंती के अनुसार महाकवि कालिदास को भी अपनी प्रियतमा का प्रेम इसी प्रकार वाक्चातुर्य द्वारा प्राप्त हुआ था ।

प्राचीन प्रेम कहानियों में पहेलियों के विश्वव्यापी प्रचार और महत्व के विषय में गीतकाव्यों के सर्वश्रेष्ठ आचार्य प्रो० चाइल्ड लिखते हैं—

“Riddles play an important part in popular story and that from remote times. No one needs to be reminded of Samson, Oedipus, Appolonius of Tyre. Riddle tales, which if not so old as the oldest of these, may be carried in all likelihood some centuries beyond our era, still live in Asiatic and European tradition and have their representatives in popular Ballads.”

प्राचीन भारतीय कहानियों में और विशेषतः प्रेम कहानियों में वाक्चातुर्य और विनोद वृत्ति का बहुत सा साहित्य भरा पड़ा है। प्राकृत और अपभ्रंश काल के गाथा और दूहा साहित्य में इस प्रकार के विनोदपूर्ण साहित्य का कुछ अंग अब भी सुरक्षित मिलता है। ‘ढोला’ का यह विनोदपूर्ण साहित्यांश अपभ्रंश साहित्य पर बहुत कुछ आश्रित है। नंबर ५७५ और ५७७ की दोनों गाथाएँ प्रसिद्ध प्राचीन प्रहेलिकाएँ हैं जो सीधी अपभ्रंश साहित्य से लेकर कथा में ऊपर से मिला दी गई हैं। माधवानल कामकदला की प्रेमगाथा में भी ये मिलती हैं।

मारवणी प्रेम की उन्नावना में पति से साहित्यिक मनोविनोद करने का प्रस्ताव करती है क्योंकि ऐसा करना समयोपयुक्त ही होगा—

मारवणी इम वीनवइ, धनि आजूणी राति ।

गाहा-गूढा-गीत गुण ळहि का नवली वाति ॥५६७॥

क्योंकि—गाहा-गीत-विनोद रस सगुणाँ दीह लियति ।

कइ निद्रा, कह कळह करि, मूरखि दीह गमति ॥५६८॥

हितोपदेश के निम्नलिखित श्लोक का भाव इस अंतिम दूहे में बड़ी सुंदरता के साथ प्रकट किया गया है—

काव्ययशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।

व्यसनेन च मूर्खाणा निद्रया क्लहेन वा ॥

इस प्रसंग में साहित्यिक विनोद की यही उपयोगिता है कि इससे रति-भाव का उद्दीपन होता है। अधिकांश पहेलियाँ साहित्यविश्रुत हैं। इनमें

नायिका की मौलिक कल्पना को हूँदना व्यर्थ है क्योंकि ऐसे अवसरों पर साहित्यप्रसिद्ध पूर्वगत पहेलियों का प्रयोग ही पर्याप्त ममम्भा जाता है। आञ्जल के हिंदू विवाहों में भी मनोविनोद की यह प्रथावद्ध पद्धति कहीं कहीं देखी जाती है।

वाग्बिनोद के सिवा प्रेमियों की पारस्परिक क्रीड़ा और विलास आदि भी शृंगार के उद्दीपक की तरह कवियों द्वारा प्रयुक्त होते हैं। 'ढोला' में इस प्रेमक्रीड़ा का बहुत सक्षेप में वर्णन हुआ है—

मैंने ढोलो भूँविया लूँगे लकड़ियेह ।
 म्हाँने प्रिउजी मारिया चंपारै कळियेह ॥५६१॥
 म्हाँने ढोलो भूँविया म्हाँनू आर्वी रीस ।
 चोवा केरै कूपळै ढोळी साहिव सीस ॥५६२॥

जायसी ने प्रथम समागम के पूर्व पद्मावती और रत्नसेन में वाक्चातुर्य और परिहास की जो नोकझोंक दिखाई है, उसका ऊपर वर्णन कर आए हैं। दोनों में जो अंतर है उसका भी उल्लेख कर दिया गया है। रतिभाव की पुष्टि के लिये यह आवश्यक होता है कि प्रेम में आत्मीयता के भाव की रक्षा करने के लिये दोनों प्रेमियों को भाव की समतल भूमि पर रहकर पारस्परिक विनोद में लीन होना चाहिए, क्योंकि यह मार्ग प्रेमोत्कर्ष के लिये अधिक लाभदायी होता है। ढोला मारवणी के विनोद परिहास में भाव की यह समता मिलती है। परंतु पद्मावती रत्नसेन के विनोद व्यवहार में एक प्रकार की विषमता आ गई है। नीचे कुछ उदाहरण देते हैं—

पद्मावती और उसकी सखियाँ रत्नसेन का परिहास करती हुई नाना प्रकार से उसका मजाक उडाती है परंतु इन सबके उत्तर में रत्नसेन को अपनी गभीर प्रेमनिष्ठा की दुहाई देते हुए देखकर हमको उसकी निस्सहायता पर दया आती है।

जिस प्रकार माळवणी के भावी विरह के संबंध में कविने आक्षेपोक्तियों में ऋतुओं का वर्णन विप्रलंभ शृंगार के उद्दीपन की तरह किया है, उसी प्रकार संभोग शृंगार में मारवणी के संबंध में अष्टयाम वर्णन की कल्पना की है। जायसी में इनके स्थान पर क्रमशः वारहमासा और षट्ऋतुओं का वर्णन उद्दीपन की तरह किया गया है।

'अष्टयाम' में साहित्यिक प्रथानुसार एक रूढिविशेष का अनुसरण किया गया है। दिन के आठ पहरों में प्रेमियों की प्रेमपूर्णा दिनचर्या को विमक्त

करके संभोग शृंगार की पुष्टि की गई है। यह अश प्राचीन कथा का भाग नहीं क्योंकि प्राचीन प्रतियों में यह नहीं मिलता ! यह प्रकरण पढ़ने पर कुछ फीका सा भी जान पड़ता है। वह सरसता, वह स्वभाविकता, वह सरलता और स्वच्छता नहीं प्रतीत होती जो इस काव्य में प्रायः सब स्थलों में मिलती है। यह वर्णन इतना साधारण रीति से हुआ है कि किसी भी पद्यमय प्रेमकहानी में ऊपर से बैठाया जा सकता है। इसमें नायक नायिका का न तो कहीं प्रत्यक्ष नाम निदर्शन ही किया गया है और न परोक्ष रीति से ही इसका किसी प्रकार का घनिष्ठ संबंध उनके व्यक्तित्व के साथ दिखाया गया है। यही नहीं, ढोला मारवणी के प्रेम में जिस पवित्रता, शीलसपन्नता और सात्विकता के आदर्श का सर्वत्र निर्वाह हुआ है, वह आदर्श उच्चता से भ्रष्ट होकर अष्टयाम के निःसत्त्व विवरण में कुछ अश्लीलता, नीरसता, गँवारूपन और साधारण तुच्छता धारण कर लेता है। किसी सर्वसुंदर आभरण के मद्दे मोरचे की तरह यह प्रसंग कथा में खटकता है, काव्य के आदर्श से मिलान नहीं खाता। कहाँ तो मारवाणी को शील, शांति, सात्विक प्रेम की प्रतिमा बनाकर खड़ा किया, यथा—

‘गति गगा, मति सरस्वती, सीपा सीळ सुभाइ’ ॥४५१॥

और कहाँ—

दूजै पोहरे रयणकै मिळियत गुफा गुध ।

धण पाळी, पिउ पाखरथौ, विहूँ मलाँ भड़ जुध ॥५८३॥

वही जायसी के ‘काम सग्रामू’ वाली बात कही है। एक ही काव्य के दो स्थलों में आदर्श का इतना भारी अंतर शोभा नहीं देता। ५८७-५८८ राजस्थान की इतर कथाकहानियों में बहुतायत से उद्धृत किए हुए मिलते हैं अतएव साधारण कहावत की तरह प्रचलित हैं। इनमें किसी प्रकार की काव्यगत विशेषता भी नहीं है।

इस काव्य के वस्तुवर्णनों का सक्षेप में निदर्शन कर अब निष्कर्ष रूप में यही कहना बाकी रह जाता है कि इन वर्णनों में राजस्थान देश की आत्मा का स्वाभाविक स्थूल चित्र चित्रित हुआ है। इस धारणा के आधार पर यह कहने में सकोच नहीं होता कि ‘ढोलामारूरा दूहा’ में राजस्थान की जातीय कविता (National Poetry) केंद्रीभूत है। क्या देशवर्णन, क्या रमणीसौंदर्य वर्णन, क्या ऋतुवर्णन, क्या करहा वर्णन—सभी में राजस्थान की जातीयता की गहरी छाप लगी हुई है।

(१२) यात्रावर्णन और भौगोलिक स्थिति

ढोला मारवणी की प्रेमकहानी का नायक ढोला नरवर देश के राजा नळ का पुत्र था और मारवणी प्रगळ के पिंगळराव की पुत्री थी। नरवर का प्राचीन राज्य राजस्थान प्रांत के पूर्व कोण में पुष्कर से लगाकर वर्तमान खालियर राज्य की पूर्वोत्तरी सीमा तक विस्तृत था। इसे 'नळगाडा' भी कहते थे। इधर राजस्थान के पश्चिम में प्रगळ परमार क्षत्रियों की प्राचीन राजधानी थी। वर्तमान प्रगळ नगर बीकानेर के अतर्गत राजधानी बीकानेर के पश्चिमोत्तर में लगभग २५ कोस की दूरी पर स्थित है। प्रगळ और नरवर के बीच में लगभग २०० कोस का अंतर है।

ढोला के बचपन में अकाल पड़ने पर पिंगळराव नरवर राज्य में, समवतः पुष्कर तीर्थ पर, जाकर रहा था जहाँ नळ राजा भी सपरिवार आया था। वहीं दोनों राजाओं का प्रथम मिलन हुआ—

पिंगळ ऊचाळड कियड, नळ नरवरचह देखि ॥ २ ॥

मारवणी के प्रेम से आकर्षित होकर ढोला ने नरवर से प्रगळ की यात्रा की थी। इस यात्रा का स्पष्ट निर्देश दूहों में मिलता है। यात्रा किस मार्ग से की गई थी, इस विषय के कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

(१) चदेरी बूँदी विची, सरवर केरह तीर।

ढोलइ दौतण फाडनों, आइ पुहत्तड कीर ॥४००॥

(२) अति आरौंद ऊमाहियड, वहइ ज प्रगळ वट्ट।

त्रीजइ पुहरि उलौवियड, आडवळारड घट्ट ॥४२४॥

(३) करहड पौणि तिसाइयड, आयड पुहकर तीर।

ढोलइ ऊतर पाइयड, निरमळ सरवर नीर ॥४२५॥

(४) सामी वेळा सामहलि कठळि थई अगासि।

ढोलइ करह केँनाइयड, आयड प्रगळ पासि ॥५२२॥

इन अवतरणों से अनुमान होता है कि ढोला मारवणी को आधी रात के लगभग सोती (सूतौ पल्लाणेह—३०५, छोड़कर ऊँट पर नरवर से विदा हुआ था। नरवर से वह चदेरी के मार्ग होकर बूँदी की ओर मुड़ा था, दोहा न० ४०० से यह स्पष्ट विदित होता है। ढोला नरवर से पुष्कर के सीधे पश्चिमी मार्ग को छोड़कर चदेरी की ओर दक्षिण को क्यों गया और वहाँ से बूँदी की ओर की पश्चिमोत्तर राह को पकड़कर पुष्कर पहुँचने में उसका क्या आशय था,

यह बात दूहों से प्रकट नहीं होती। परंतु अनुमान किया जा सकता है कि विरह विधुरा माळवणी के प्रपच से बच निकलने के लिये उसने ऐसा किया होगा, अथवा सीधे पश्चिम के मार्ग में घना जंगल अथवा दुर्गम पहाड पड़ते होंगे जिनके बीच में से कोई सुगम और सुरक्षित राह उन दिनों न रही होगी। इस उलटे मार्ग से यात्रा करने से उसे लगभग २५-३० कोस का चक्कर पड़ गया। यदि वह नरवर से पश्चिम के मार्ग होता हुआ सीधा पुष्कर को जाता तो केवल १०० कोस के लगभग मार्ग तय करना पड़ता। इसके विपरीत नरवर से चदेरी अनुमानतः ३० कोस दक्षिण में, चदेरी से बूंदी अनुमानतः ८० कोस पश्चिमोत्तर में, और बूंदी से पुष्कर लगभग ४५ कोस उत्तर पश्चिम में—इस प्रकार लगभग १५० कोस का फासला हो गया।

यहाँ पर एक बात का ध्यान रखना चाहिए। दोहा ४०० में निर्दिष्ट 'चदेरी' और 'बूंदी' से केवल इन नामोंवाले नगरों का ही आशय नहीं है वरन् चदेरी और बूंदी राज्यों का आशय हो सकता है, जो उस समय में पर्याप्त विस्तृत राज्य रहे होंगे। इस दृष्टि से विचार करने पर, ढोला नरवर से प्रस्थान कर चंदेरी और बूंदी राज्यों की भूमि में से होता हुआ गया था और जिस स्थान पर वह प्रातःकाल के समय माळवणी के शुक को ढँतुवन करते मिला था वह बूंदी और चदेरी राज्यों का मध्यवर्ती सीमाप्रदेश रहा होगा। इस विस्तृत दृष्टि से विचार करने पर १५० कोस का चक्करदार फासला घटकर १२५ कोस के ही लगभग रह जाता है।

पुष्कर से पश्चिमोत्तर मरुस्थल के रेतीले और शुष्क निर्जन मार्ग को पार करता हुआ वह पूगळ पहुँचा। पुष्कर और पूगळ के बीच में लगभग ८० कोस का अंतर है। इस प्रकार ढोला की समस्त यात्रा का फासला लगभग २२५ कोस हुआ। इसमें उसे अनुमानतः २५-३० कोस का चक्कर खाना पड़ा। यदि वह नरवर से पुष्कर होता हुआ सीधा पूगळ को जाता तो अनुमानतः २०० कोस की यात्रा करनी पड़ती।

अब यह देखना है कि समय और दूरी की आपेक्षिक दृष्टि से ढोला के लिये यह २२५ कोस की यात्रा, एक दिन और आधी रात अर्थात् २०-२१ घंटों के समय में संपूर्ण करना संभव था या असंभव ?

ढोला का वाहन उत्तम जाति का तेज ऊँट था, जिसकी चाल के विषय में 'घड़िए जोइए जाय' अर्थात् एक घड़ी में योजन भर चला जाता था, कहा,

गया है। एक घड़ी २४ मिनट के बराबर होती है और योजन वर्तमान-कालिक गणना के अनुसार कम से कम ४ कोस के बराबर। इस रफ्तार से ढोला का ऊँट घटे में १० कोस की चाल से चलता रहा होगा। एक उत्तम जाति के ऊँट के लिये यह चाल असंभव नहीं है, असाधारण अवश्य कही जा सकती है। राजस्थान में इस गणगुजरे जमाने में अब भी ऐसे ऊँट मिलते हैं जो घटे में ७-८ कोस चल सकते हैं। ऊँट की चाल के संबंध में साधारण किंवदंती प्रसिद्ध है कि दिनभर में (अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक) जो त्रिनाथकावट के १०० कोस की यात्रा कर मके उसे ही ऊँट समझना चाहिए।

ढोला की यात्रा आधी रात के समय से अथवा उसने कुछ पहले प्रारंभ होकर दूसरे दिन की संध्या के लगभग ६ बजे समाप्त हुई होगी जैसा कि दूहा ५२२ से ज्ञात होता है। सन्नेप में ढोला ने लगभग २२५ कोस की यात्रा २०-२१ घंटों में समाप्त की थी। यह असंभाव्य नहीं, कठिन अवश्य है।

यात्रा के वर्णन को बीच-बीच में से उठाकर क्रमशः जाँच करने पर भी यही प्रतीत होता है कि उसमें वास्तविक सत्यता बहुत कुछ है। आधी रात को खाना होकर ढोला प्रातःकाल के समय चंदेरी और वूँदी के सीमाप्रदेश पर सरोवर के तीर टँवुवन करने को ठहरा, जहाँ मारवणी का भेजा हुआ शुक उससे मिला था। यह फासला लगभग ६०-६५ कोस का था और सूर्योदय के समय तक ढोला लगभग ७ घंटों की यात्रा कर चुका था। इससे एक घटे में १० कोस की रफ्तार का अनुमान पुष्ट होता है। यात्रा के क्रमविकास में दूसरा प्रमाण 'त्रीनह पुहरि उल्लोचियउ आडवळारउ वट्ट' (४२४) में मिलता है। चंदेरी और वूँदी राज्यों के सीमाप्रदेश से अरावली पर्वतमाला की घाटी अर्थात् पुष्कर के आसपास के मार्ग तक ढोला ने प्रातःकाल से लगाकर दिन के तीसरे पहर अर्थात् ३-४ बजे तक यात्रा की थी। साराश, लगभग १०० कोस की यात्रा ढोला ने ६-१० घंटों में संपन्न की। इससे भी घटे में १० कोसवाले औसत की पुष्टि होती है।

पुष्कर से पूगळ का फासला लगभग ८० कोस का है। उसे ढोला ने दिन के तीसरे पहर से रात के पहले पहर के बीच में पार किया होगा। यद्यपि इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि ढोला पूगळ में ठीक किस समय पहुँचा, परंतु उसने वीसू चारण के द्वारा मारवणी को निम्नांकित संदेश पहले ही भेज दिया था—

वीसू, सुणि, टोलउ कहइ, हिव खडि पूगळ जात ।

देह बधाई दिन थकइ, म्हे आएस्स्यो रात ॥४६०॥

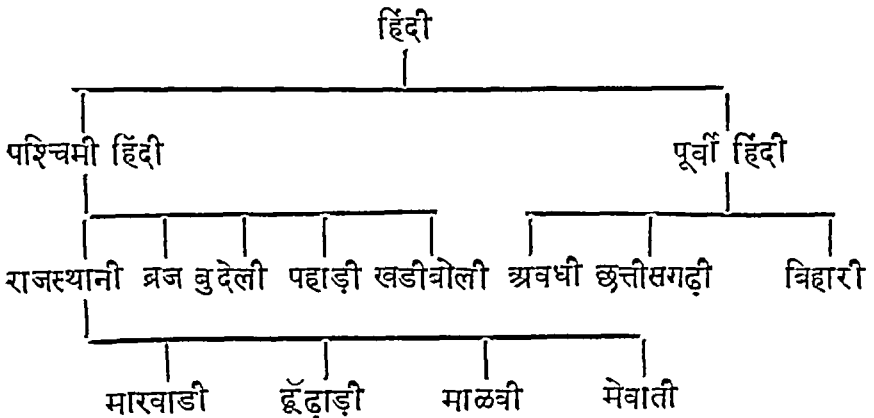
इससे तो ढोला का कुछ रात बीते पूगळ पहुँचना निश्चित होता है । साथ ही इसमें भी कोई सदेह नहीं है कि अपनी यात्रा के अंतिम भाग में—अर्थात् पुष्कर से पूगळ की राह में—उसने बहुत तेजी की थी, ऊँट को जगह जगह फटकारा भी था और सड़सड़ बेतों से मारा भी था । इससे उसके मन की यह व्यग्रता, कि सध्या होते होते पूगळ पहुँच जाय, अवश्य विदित होती है । परंतु ऐसा अनुमान होता है कि वह कुछ रात्रि बीतने पर पूगळ पहुँचा होगा, पहले नहीं ।

उत्तरार्ध—भाषा और व्याकरण का विवेचन

(१) प्राक्कथन

ढोला मारुरा दूहा काव्य की भाषा राजस्थानी हिंदी है। यहाँ पर राजस्थानी भाषा के विकास का सक्षित इतिहास दे देना अनुचित न होगा।

राजस्थानी राजस्थान प्रात की भाषा है। राजस्थान केवल आधुनिक राजपूताना प्रात तक ही परिमित नहीं है किंतु माळवा और हिसार का भी बहुत सा भाग राजस्थान के ही अंतर्गत समझ जाना चाहिए। राजस्थानी इस समस्त भूखंड की भाषा है। भाषाविज्ञान के विद्वानों ने राजस्थानी को हिंदी से स्वतंत्र एव सर्वथा भिन्न भाषा गिना है पर जब व्रज और अवधी एवं खड़ी बोली तथा बिहारी जैसी विभाषाएँ हिंदी के अंतर्गत गिनी जा सकती हैं तो राजस्थानी को भी हिंदी की विभाषा माना जा सकता है। हम आधुनिक हिंदी भाषा के दो मोटे विभाग करके उसकी विभिन्न विभाषाओं को इस प्रकार विभक्त करेंगे—



राजस्थानी का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अपभ्रंश से विकसित प्राचीन राजस्थानी से ही आधुनिक राजस्थानी, ब्रजभाषा और गुजराती का जन्म हुआ है। अपभ्रंश काल के पश्चात् एक जमाने तक उस समस्त भूखंड में जो आजकल पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी और गुजराती का अधिकारक्षेत्र है, बोलचाल एवं साहित्य की भाषा राजस्थानी रही है।

राजस्थानी हिंदी की समस्त शाखाओं में प्राचीनतम है। वह अपभ्रंश की जेठी बेटा है। जिस समय भारतीय जनता की साधारण भाषा प्राकृत थी उस समय कतिपय ग्रामीर आदि निम्नकोटि की जातियाँ उसे विलकुल उस रूप में न बोलती थीं जिसमें कि अन्य लोग उसे बोलते थे। जो रूप उनमें प्रचलित था वह अशुद्ध या अपभ्रष्ट था। प्रारंभ में उन्हीं की बोलचाल की भाषा अपभ्रंश कहलाती रही होगी। भाषा सदा बदलती रहती है, इस नियम के अनुसार प्राकृत भाषा विकृत होने लगी। प्राकृत का यह विकृत रूप आगे चलकर अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हुआ। अनुमानतः विक्रम की पाँचवीं छठी शताब्दी के लगभग प्राकृत, संस्कृत की भाँति, केवल साहित्यिक भाषा रह गई और उस समय अपभ्रंश जनसाधारण की बोलचाल की भाषा बन चुकी थी। जब अपभ्रंश जनता की भाषा हुई तो साहित्यसेवी भी उस ओर झुके और अपभ्रंश ने साहित्य में भी पैर रखा। साहित्य में आकर अपभ्रंश का रूप स्थिर हो गया जनसाधारण की भाषा कभी स्थिर रूप में नहीं रह सकती। उसमें परिवर्तन होना शुरू हुआ। विकृत होकर वह नवीन रूप धारण करने लगी। धीरे धीरे बाद की अपभ्रंश पहले की अपभ्रंश से दूर जा पड़ी और अतः वर्तमान काल की देशभाषाओं में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार आधुनिक हिंदी, गुजराती, राजस्थानी, बँगला, मराठी आदि देशभाषाओं का अपभ्रंश से विकास हुआ।

अपभ्रंश का युग कब समाप्त होता है और देशभाषाएँ कब से आरंभ होती हैं यह बतलाना बहुत कठिन है। अपभ्रंश धीरे धीरे विकृत होती हुई इन भाषाओं में परिवर्तित हुई है और इस कार्य में कई शताब्दियाँ लगी हैं। इस बीच के विकास के समय को हम परिवर्तन काल (Transition Period) कहेंगे। इस काल की भाषा शुद्ध अपभ्रंश न होते हुए भी अपभ्रंश से विशेष विभिन्न नहीं है। यह परिवर्तन युग विक्रम की दसवीं शताब्दी से बारहवीं

शताब्दी के अन्त तक माना जा सकता है^१। तेरहवीं शताब्दी में राजस्थानी आदि देशभाषाएँ अपभ्रंश से स्पष्टतया भिन्न हो चुकी थी।

इस परिवर्तनकाल की भाषा को सुप्रसिद्ध विद्वान् चन्द्रधर शर्मा गुलेरी पुरानी हिंदी का नाम देते हैं। गुजराती भाषा के विद्वान् मोहनलाल दलीचंद देसाई ने उसे जूनीहिंदी-जूनीगुजराती कहा है। अन्य विद्वान् इसे प्राचीन राजस्थानी कहते हैं। हमारी समझ में ये नाम उपयुक्त नहीं है। उक्त भाषा कुछ थोड़े बहुत फेरफार के साथ समस्त उत्तरी भारत में प्रचलित थी और उसी से वर्तमान देशभाषाओं का विकास हुआ है। वह केवल हिंदी और गुजराती की ही जन्मदात्री नहीं है किंतु उससे अन्य भाषाओं का भी जन्म हुआ है। वास्तव में उसे उत्तरकालीन अपभ्रंश कहना चाहिए। अतः हम इन प्रातीयता-सूचक नामों को ग्रहण न करके इस भाषा को लोकभाषा कहेंगे।

(२) अपभ्रंश का विकास

अपभ्रंश शब्द आरंभ में किसी भाषा के लिये प्रयुक्त नहीं होता था। निरन्तर या साधारण जनता शिष्ट भाषा के शब्दों का उच्चारण कुछ विकृत रूप में करती थी। शब्दों के इन्हीं विकृत रूपों को आरंभ में अपभ्रंश कहा जाता था। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। जैसे—

एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद् यथा—गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिकेवेवमादयोऽपभ्रंशाः। शिष्ट और सान्द्र लोग भाषा की शुद्धता का ध्यान रखते हुए गौ शब्द का प्रयोग

१ यह बात साहित्य की भाषा के लिये ही कही जा सकती है। बोलचाल की भाषा का परिवर्तन काल तो विक्रम की आठवीं नवीं शताब्दी से ही आरंभ हो जाता है।

साहित्यिक लोग बोलचाल की भाषा के पर्याप्त प्रचार हो जाने के बाद ही उसका प्रयोग साहित्यरचना में करते हैं। कोई भी भाषा साहित्यिक भाषा होने के पूर्व बहुत काल तक बोलचाल की भाषा रहती है। परंतु कभी कभी महात्मा बुद्ध, रामानंद, कबीर जैसे सत महात्मा जन्म लेते हैं जो साहित्यिक भाषा की पर्वाह न करके लोकभाषा को ही अपनाते हैं और उसी में अपने अमूल्य उपदेशों को ग्रथित करते हैं। ऐसे कई सिद्ध महापुरुष नवीं एव उसके बाद की शताब्दियों में हुए और उन्होंने देशभाषा में ही रचना की जो कुछ अंशों में प्राप्त हुई है। श्रीयुक्त हरप्रसाद शास्त्री ने ऐसी कतिपय रचनाओं की संगृहीत करके 'बौद्धगान और दोहा' नाम से प्रकाशित करवाया है। (इनके उदाहरण आगे चलकर दिए जायेंगे)

करते थे पर निरन्दर और साधारण लोग गावी, गोणी आदि शब्दों का प्रयोग करते रहे होंगे जिस प्रकार आजकल भी पढेलिखे लोग सूर्य या सूरज शब्द का प्रयोग करते हैं और निरन्दर लोग सुरुज, सूरुज, सुरिज, सूरिज आदि अपभ्रष्ट रूपों को काम में लाते हैं ।

अपभ्रश भाषा का सबसे पहले पता भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में चलता है जिसका समय विक्रम की दूसरी एव तीसरी शताब्दी के अनंतर नहीं हो सकता । उसमें अपभ्रश नाम तो नहीं आया है पर संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त देशभाषा का उल्लेख किया गया है—

एवमेतत्तु विज्ञेय संस्कृतं प्राकृतं तथा ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देशभाषा प्रकल्पनम् ॥

आगे चलकर सात भाषाओं और सात विभाषाओं का उल्लेख किया गया है । इनमें सातों भाषाएँ तो सात प्राकृत भाषाएँ हैं । विभाषाओं में शवर, आभीर चाडाल, चेर (आधुनिक केरळ), द्रविड, ओड्र इन छः जातियों की तथा जगली जातियों की बोलियों को गिनाया गया है ।

नाट्यशास्त्र के जमाने के आसपास प्राकृतों शिष्टसमुदाय की ही भाषाएँ रह गई होंगी और निरन्दर लोग उसी का अपभ्रष्ट रूप काम में लाते होंगे जिस पर धीरे धीरे उक्त आभीर आदि जातियों की बोलियों का प्रभाव अवश्य, पड़ा होगा ।

नाट्यशास्त्र में यह भी कहा गया है कि सिंधु (आधुनिक सिंध), सौवीर (आधुनिक पश्चिम दक्षिणी पंजाब) और उनके आसपास के पहाड़ी प्रदेश में उकारबहुल भाषा प्रयुक्त होती है जो अपभ्रश का एक मुख्य लक्षण है । आगे चलकर वत्तीसवें अध्याय में जो उदाहरण दिए गए हैं वे अपभ्रंश से मिलते-जुलते या त्रिलकुल अपभ्रश ही हैं । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि नाट्यशास्त्र के जमाने में प्राकृत के अतिरिक्त देशभाषा का प्रचार था पर उसका कोई अलग नाम अभी तक नहीं पड़ा था । यह देशभाषा केवल निम्नकोटि की जनता की बोलीमात्र थी एव साहित्यरचना इसमें नहीं होती थी ।

इसके बाद सातवीं शताब्दी में अपभ्रश के उल्लेख मिलते हैं और इस समय वह केवल बोलचाल की भाषा ही नहीं थी किंतु उसमें साहित्यरचना भी होने लगी थी । बलभी के राजा दूसरे धरसेन का एक शिलालेख मिला है जिसमें उसने अपने पिता गुहसेन के लिये लिखा है—

संस्कृत प्राकृताऽपभ्रंश भाषात्रय प्रतिबद्ध-

०

प्रबन्धरचना निपुणतरातः करणः ।

(संस्कृत, प्राकृत और, अपभ्रंश इन तीन भाषाओं में काव्यरचना करने में अति चतुर अतःकरणवाला ।)

इस राजा गुहसेन के शिलालेख स० ६१६ से ६२६ तक के मिलते हैं जिससे उसका समय सातवीं शताब्दी के आरंभ में सिद्ध होता है ।

इसी समय के आसपास प्रसिद्ध विद्वान् भामह हुआ जो काव्य के तीन विभाग करता है—

संस्कृत, प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा ।

महानकवि दंडी का समय भी इससे बहुत दूर नहीं है । उसने अपने काव्यादर्श में भारतीय साहित्य को चार भागों में बाँटा है—

ततेतद् वाङ्मय भूयः संस्कृत प्राकृत तथा ।

अपभ्रंश च मिश्र चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ॥

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि विक्रम की छठी सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश साहित्य में पैर रख चुकी थी और उसका इतना आदर हो गया था कि एक राजा उसमें काव्यरचना कर सकने को अपने लिये गौरव की बात समझे । भामह और दंडी के जमाने तक उसका साहित्य इस योग्य हो गया था कि काव्य का विभाजन करते समय उसका नाम लिया जाय ।

इस समय वह साधारण निम्न जातियों की ही बोलचाल की भाषा नहीं थी किंतु समस्त जनता की बोलचाल की एवं जीवित साहित्य की भाषा हो चुकी थी और प्राकृत केवल मृत भाषा ही रह गई होगी या अधिक से अधिक उसका प्रयोग बहुत थोड़े विद्वानों में ही होता रहा होगा ।

राजशेखर के जमाने तक अपभ्रंश खूब साहित्यसंपन्न भाषा हो गई थी । साहित्य में अपभ्रंश का एकच्छन्न राज्य कोई ग्यारहवीं शताब्दी तक रहा । ग्यारहवीं शताब्दी से देशभाषा प्रधानता प्राप्त करने लगी और बारहवीं शताब्दी के बाद तो अपभ्रंश का साहित्यिक महत्त्व भी बहुत कुछ जाता रहा ।

इस प्रकार अपभ्रंश का काल विक्रम की दूसरी शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक माना जा सकता है ।

अपभ्रंश का मुख्य स्थान राजस्थान, मालवा, गुजरात, सिंध और पश्चिमी पंजाब था । आरंभ में इसका विकास संभवतया यहीं हुआ धीरे धीरे

समस्त भारत में उसका प्रसार हो गया। प्रातीय भेद उसमें अवश्य रहे होंगे पर परस्पर का अंतर इतना नहीं रहा होगा कि एक प्रात के निवासियों को दूसरे प्रातवालों की बोली को समझने में कठिनता हो।

ऊपर हम भरत नाट्यशास्त्र के इस कथन का उल्लेख कर चुके हैं कि उकारवहुला भाषा सिंध और पश्चिमी पंजाब में बोली जाती थी। ठंडी अपभ्रंश को आभीर आदि जातियों की भाषा कहता है। आभीर जाति का प्रारम्भिक निवास सिंध, पंजाब और बाद में राजस्थान, गुजरात आदि का भूभाग ही था। आभीर आदि निम्न जातियाँ शिष्ट भाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकती थीं जिससे उनकी भाषा को अपभ्रंश नाम दिया गया होगा और बाद में जब प्राकृत अपभ्रंश होने लगी तो यह नाम व्यापक होकर समस्त-जनता की बोलचाल की भाषा के लिये प्रयुक्त हो गया। राजशेखर ने काव्य मीमांसा में लिखा है कि अपभ्रंश का प्रयोग समस्त मरु (आधुनिक मारवाड़ या पश्चिमी राजस्थान), टक (आधुनिक पूर्वी पंजाब का कुछ भाग) और भादानक प्रदेशों में होता है। एक अन्य स्थान पर वह लिखता है कि सौराष्ट्र (आधुनिक काठियावाड़) और त्रवण आदि देशों के लोग उस्कृत को सौष्ठव के साथ पढ़ते हैं पर अपभ्रंश के मिश्रण के साथ। मोजराज अपने सरस्वती कंडामरण में लिखते हैं—

अपभ्रंशेन तुष्यति स्वेन नान्येन गुर्वराः।

इन सब कथनों से स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश मुख्यतया राजस्थान, माळवा, गुजरात और सिंध तथा पंजाब की भाषा थी और वहीं ने धीरे धीरे उसका सर्वत्र प्रचार हुआ। कम से कम साहित्यरचना तो विशेषतया इन्हीं प्रदेशों में हुई है। अपभ्रंश के मुख्य भेद नागर, उपनागर और त्राचड इन्हीं प्रांतों में प्रचलित थे एवं आधुनिक देशभाषाओं में राजस्थानी, माळवी एवं गुजराती ही अपभ्रंश के सबसे अधिक सन्निकट भाषाएँ हैं।

इन प्रांतों की अपभ्रंश ने साहित्य में इतनी श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी कि अन्यान्य प्रातीय भेद उसके सामने दब गए। उनमें या तो साहित्य रचना हुई ही नहीं या बहुत कम हुई और उसका भी अधिकांश भाग नष्ट हो गया।

इसके अतिरिक्त यह संभावना भी हो सकती है कि जिस प्रकार आधुनिक हिंदी की बोलियों में खड़ी बोली को ही साहित्यिक भाषा होने का गौरव

प्राप्त है एव अन्यान्य बोलियाँ केवल बोलचाल के ही काम में आती हैं, उसी प्रकार उस जमाने में भी पश्चिमी अपभ्रंश ही साहित्यरचना के लिये प्रयुक्त होती थी और अन्य प्रातों की अपभ्रंशों केवल बोलचाल की भाषाएँ रही होंगी। इसके अलावा उस जमाने में पढ़े लिखे हिंदू विद्वान् अपनी संस्कृत में ही मस्त थे और साहित्यरचना उसी में करते थे। जैन विद्वान् ही प्राकृत और अपभ्रंश की ओर ध्यान देते एव उसमें साहित्यरचना करते थे। ये जैन विद्वान् विशेष करके पश्चिम भारत के ही रहनेवाले थे अतः अपभ्रंश साहित्य की रचना उधर की ही अपभ्रंश में हुई होगी एवं बाकी अपभ्रंशों बोलचाल में ही काम आती होंगी^१।

(३) उत्तरकालीन अपभ्रंश अथवा लोकभाषा (पुराना हिंदी या जूनी गुजराती) का विकास

आधुनिक देशभाषाओं का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अपभ्रंश भाषा प्रायः समस्त उत्तरी भारत की भाषा थी। उसमें प्रातीय भेद अवश्य थे, जिसके कारण लोगों ने कई अपभ्रंशों मानी हैं, पर प्राकृतों की भाँति उन भेदों में बहुत ही कम अंतर था। पर अपभ्रंश के बाद जिस भाषा का विकास हुआ वह भिन्न भिन्न प्रातों में भिन्न भिन्न प्रकार की हो गई। अवश्य ही आरंभ में इतना भेद नहीं था पर यह भेद धीरे धीरे बढ़ता गया जिससे देश में एक भाषा के स्थान पर कई भाषाओं का जन्म हो गया। सम्राट् हर्षवर्धन (स० ६६३-७०४) के जमाने तक उत्तरी भारत एक ही शासन के नीचे रहा पर उनके बाद देश की राजनीतिक एकता छिन्नभिन्न हो गई। विभिन्न प्रातों का पारस्परिक आवागमन और मिलनाजुलना धीरे धीरे कम होता गया। इस प्रकार पारस्परिक व्यवहार नष्ट हो जाने से भाषा की एकता भी धीरे धीरे नष्ट हो गई।

अपभ्रंश से वर्तमान देशभाषाओं का जन्म हुआ। पर यह विकास आकस्मिक नहीं किंतु शताब्दियों का काम था। ये भाषाएँ आरंभ में अपभ्रंश से बहुत कुछ प्रभावित रहीं और अंत में देशभेद से भिन्न भिन्न रूपों में विकसित हुईं। इनके स्पष्ट विकास के पूर्व का जो परिवर्तन काल है उसकी

१. दक्षिण निवासी पुष्पदंत कवि के जो मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तीसरे के समय में हुआ है, अपभ्रंश में लिखे हुए कई ग्रंथ मिले हैं। उनकी भाषा इस मुख्य अपभ्रंश से प्रायः सर्वांश में मिलती जुलती है और हमारे कथन को सिद्ध करती है।

भाषा को हमने लोकभाषा का नाम दिया है। आधुनिक देशभाषाओं के पूर्व यह लोकभाषा थोड़े-बहुत अंतर के साथ समस्त उत्तरी भारत की भाषा थी। बाद में पारस्परिक व्यवहार टूट जाने के कारण यह अंतर विभिन्न भागों में बढ़ता गया और इस प्रकार बंगाली, हिंदी, राजस्थानी, गुजराती आदि देश-भाषाओं का जन्म हुआ।

इस लोकभाषा का बीजारोपण विक्रम की आठवीं शताब्दी के लगभग हुआ होगा। उस समय शिष्ट जनों एवं साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी पर साधारण जनता समभवतया अपभ्रंश के विकृत रूप का ही प्रयोग करती होगी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण कविता की रचना भी इस लोकभाषा में होने लगी होगी। पूर्व भारत में नालदा और विक्रमशिला से सबद्ध बज्रयानी बौद्ध सिद्धों की कतिपय रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जो इसी लोकभाषा में हैं। उनका समय लगभग नवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर तेरहवीं शताब्दी के पूर्व भाग तक है।

जब अपभ्रंश के साहित्य का ही पता अभी बहुत कम लगा है तो फिर लोकभाषा के साहित्य का बात तो जाने ही दीजिए। इस काल में भी साहित्यिक लोग अपनी रचनाएँ अपभ्रंश में ही लिखते होंगे क्योंकि वह शिष्ट भाषा समझी जाती थी। फिर वैदिक मतानुयायी विद्वानों ने तो जनता की भाषा की कमी-परवाह नहीं की उन्होंने जो कुछ लिखा प्रायः सब का सब संस्कृत में लिखा। प्राकृत और अपभ्रंश भी जब उनकी कृपादृष्टि के बाहर रही तो बेचारी लोकभाषा की क्या कथा? दूसरे लेखक प्रधानतया जैन आचार्य आदि थे। वे भी बहुत दिनों तक प्राकृत और बाद में अपभ्रंश के—तत्कालीन शिष्ट भाषाओं के—फेर में पड़े रहे। एकाध रचना हुई भी होगी तो कहीं किसी पुस्तक भंडार में अघोरार के गर्त में छिपी पड़ी होगी।

अब वहीं असाहित्यिकों की रचनाएँ। बौद्ध सिद्धों की कृतियों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। साधारण जनता में जो गीत, दोहे आदि निर्मित होकर प्रचलित हुए वे लेखबद्ध न होने के कारण बहुत कुछ तो नष्ट हो गए होंगे और जो थोड़े बहुत बचे वे परिवर्तित होते हुए आगे की पीढ़ियों तक पहुँच गए^१।

१. सरह पा आदि बज्रयानी बौद्ध सिद्धों की रचनाओं को डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री और उनके सुपुत्र डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य प्राचीन बंगला बतलाते हैं। डाक्टर विनयतोष एक स्थान पर लिखते हैं—

हेमचंद्र, सोमप्रभ सूरि और मेरुतुगाचार्य ने अपनी कृतियों में इन प्रचलित गीतांशों और दोहों को उद्धृत किया है। इन उदाहरणों में शृंगार, वीरता, नीति सभी प्रकार के नमूने मिलते हैं। हेमचंद्र ने जो उदाहरण दिए हैं उनसे ज्ञात होता है कि उसके समय में लोकभाषा में रामकथा, कृष्णकथा, महाभारत आदि ग्रंथ बन चुके थे। मुज और ब्रह्म इन दो कवियों के नाम भी उसमें पाए जाते हैं। मुज के संबंध के और भी कई दोहे मेरुतुग ने उद्धृत किए हैं। संभव है ये सब मुज ही की रचनाएँ हों। मुज धारा का सुप्रसिद्ध विद्वान् राजा है जिसका एक विरुद वाक्पतिराज भी है। यह भोज के पिता सिंधुराज का बड़ा भाई था। इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। आगे इस लोकभाषा की रचनाओं के कतिपय उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) सिद्धों की रचनाएँ

१—सरहबा

जह मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाह पवेस ।
 तहि बट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेस ॥ १ ॥
 घोरधारे चद मणि जिमि उजोअ करेइ ।
 परम महासुह एकु खणे दुरिआ अशेष हरेइ ॥ २ ॥
 जइ नमा विअ होइ मुत्ति, ता सुनह सियालह ।
 लोमोप्पाटने अच्च सिद्धि, जा धुवइ नितबह ॥
 पिच्छीगहणे दिष्ट मोक्ख, ता करिह तुरगह ।
 उबँ भोअणे होइ जाण ता.....॥

Thus the time of the earliest Doha in Bengali goes back to the middle of the seventh century, when Saraha flourished, and Bengal may be justly proud of antipuity of her literature.

पता नहीं, डाक्टर साहब ने इन दूहों की भाषा को बँगला क्यों मान लिया। जिस भाषा में ये दूहे लिखे गए हैं वह उस समय प्रायः समस्त उत्तरी भारत में कुछ हेरफेर के साथ प्रचलित थी। फिर सरह न तो बंगाली था, न बंगाल के साथ उसका कोई संबंध था। चौरासी सिद्धों का संबंध नालंदा और विक्रमशिला के प्राचीन विश्वविद्यालयों से रहा है अतः वे बिहारी तो कहे जा सकते हैं। अब विद्वानों का यह मत होता जा रहा है इन दोहों की भाषा कोई पश्चिमी उत्तरकालीन अपभ्रंश है।

एक सरह भणइ खवनान मोक्ख महु काप न भावइ ।
तत्तरहि अकाया ए ताव पर केवल साइइ ॥ ३ ॥

पडिअ सग्रळ सत्य वक्खाणइ ।
देहहि बुद्ध वसत न जाणइ ॥
अमणागमण ए तेन विखडिअ ।
तो वि गिलज भणइ हउँ पडिअ ॥ ४ ॥

२—कण्डपा

आगम वेअ पुराणे पडित मान वहति ।
पक्क सिरीफल अलिअ जिम वाहेरि त भमवति ॥ १ ॥
वर गिरि सिहर उनुगमुणि सवरँ जहिँ किअ वास ।
नउ सो लँधिअ पचाननेहिँ, करिवर दूरिअ आस ॥ २ ॥
जिम लोण विलिजइ पाणि एहि तिम धरणी लइ चित्त ।
समरस जाई तस्खणँ जइ पुणु ते सम नित्त ॥ ३ ॥

३—महीपा

खर रवि किरण सँतापे रे गअणागण गइ पइठा ।
भणति महिता मइ एत्थु कुडते किंपि न टिठा ॥

४—नयानतपा

पेक्खु सुग्रणे अटस जइसा । अतराले मोह तइसा ॥
मोह विमुक्का जइ माणा । तत्रे टूटइ अवणागमणा ॥

(२) सवममजरी—इसका कर्ता महेश्वर सूरि नामक श्वेतावर जैन है ।
इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी का अंतिम अथवा बारहवीं शताब्दी का
पूर्व भाग माना जाता है । इस पुस्तक में ३५ दोहे हैं । उदाहरण—

सजमु सुरसत्तिहिँ पुवउ सजमु मोक्ख दुआर ।
वेहि न सजमु मणि धरिउ तह दुत्तर संसार ॥
संजम मार धुरधरह सद्दुच्छळिउ न जाइ ।
निअ जणणी जुव्वणहरणु जम्मु निरत्थउ ताह ॥
इक्किणि इदिय मुक्कळिणु, लब्भइ दुक्ख सहस्स ।
जमु पुण पचइ मुक्कळा, कह कुसळत्तणु तत्स ॥

वरिस सहस्त्रिहँ ज कियउ तवु सजमु उवयारु ।
कोहमहानळ सगमिण सो दहि किजइ च्छारु ॥

(३) उक्त सजम मजरी की टीका—इसका कर्ता कोई हेमहस सूरि का शिष्य है । समय याद नहीं पर १५०५ से पूर्व का है ।

दिदइँ जो नवि आळवइ, कुशळ न पुच्छइ वत्त ।
तासु तणइ नवि जाईय, रे हियडा नीसत्त ॥
रासहु कध चडावियइ, लब्धइ लत्त सहस्स ।
आपहणे करि कम्मडॉ, हिया, विसूरहि कस्स ? ॥

(४) सत्यपुरमडन महावीरोत्साह—यह १५ गाथा का एक स्तोत्र है । इसका कर्ता धनपाल है । मालवाधिपति मुज एव भोज के दरवार मे धनपाल नामक कवि था । यदि यह वही है तो इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी है ।

रखि सामि पसरतु मोहु नेहुडु य तोडहि ।
सुम्म दसणि नाणु चर भडु कोहु विहोडहि ॥
करि पसाउ सच्चउरि वीरु जइ तुहुँ मणि भावइ ।
तउ तुदइ धणपाळ जाउ जहि गयउ न आवइ ॥

(५) तिसडि महापुरुष गुणालकार महापुराण—इसका कर्ता पुष्पदत्त नामक जैन कवि है जो मान्यखेट राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तीसरे का समकालीन था (समय ग्यारवीं शताब्दी का प्रथमार्ध) । उदाहरण—

महु समयागमे जायहे ललियहे । बोह्लइ कोयल अब्रयकळियहँ ।
कारणो चचरीउ रुणुरुटइ । कीरु किएण हरिसेण विसठइ ॥
कमळगंधु धिप्पइँ सारगँ । णउ सालूरँ णीसारगँ ।
गमणलील जा कय सारगँ । सा किं णासिज्जइ सारगँ ॥

(६) जसहरचरिउ—

विणु धवळेण सयडु किं हल्लइ । विणु जीवेण देहु किं चल्लइ ॥१॥
विणु जीवेण मोक्खु को पावइ । तुम्हारिसु किं अप्पउ आवइ ॥२॥
माणुस सरीर दुहु पोडुळउ । धोयउ धोयउ अइ विट्टलउ ॥

वारिउ वारिउ वि पाउ करइ । तेरिउ पेरिउ विन घम्म चरइ ॥
 चम्मँ वद्धु वि कालि सडइ । रक्खिउ जम मुह पडइ ॥३॥
 (७)^१ नायकुमारचरिउ—

सो गण्डु जो पढइ पढावइ । मो गण्डु जो लिहइ लिहावइ ॥
 सो गण्डु जो विवटि विवाढइ । सो गण्डु जो भावै भाइ ॥

(८) हेमचन्द्र—यह प्रसिद्ध जैन विद्वान् विक्रम की बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी में विद्यमान था । गुजरात नरेश सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल इसके आश्रयदाता थे । इसने संस्कृत और प्राकृत का एक बड़ा व्याकरण सिद्ध-हैम शब्दानुशासन नाम से लिखा । उसके अंतिम अध्याय के ३२६ से ४४८ नवर के कुल (१२०) सूत्रों में अपभ्रंश का व्याकरण दिया है एवं उदाहरणार्थ उस समय से प्रचलित अनेक दोहों को उद्धृत किया है । दशनाममाला नामक देशभाषा के शब्दों का एक कोष भी उसने बनाया है ।

व्याकरण में उद्धृत दोहों के उदाहरण

जे महु दिग्गा दिअहड़ा दहएँ पवसतेण ।
 ताण गणतिए अगुळिउ जज्जरिआउ नहेण ॥१॥
 सायर उप्परि तण धरइ, तळि घल्लइ रयणाई ।
 सामि सुभिच्चु वि परिहरइ, सम्मारोइ खळाई ॥२॥
 अगिगएँ उरहउ होइ जगु वाएँ सीअळु तेवँ ।
 जो पुणि अगिग सीअळा तसु उरहइत्तणु केवँ ॥३॥
 भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु ।
 लज्जेज्जति वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु ॥४॥
 वायसु उट्टावतिअए पिउ दिट्टउ सहसत्ति ।
 अद्धा वळथा महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥५॥
 लहि कपिनइ सरणि सरु छिजइ खगिण खगु ।
 तहि तेहइ भड-बड-निवहि कतु पयासइ मग्गु ॥६॥
 जइ भग्गा पारकडा तो सहि मज्जु पिअ्रेण ।
 अह भग्गा अम्हइ तणा तो तँ मारिअडेण ॥७॥

१. अंतिम (५, ६, ७ संरयक) तीनों ग्रंथ अपभ्रंश में हैं परंतु इनमें भी कहीं-कहीं उत्तरकालीन लोकभाषा के उदाहरण मिल जाते हैं ।

वप्पीहा, पिउ पिउ भणिवि कित्तिउ रुअहि हयास ।
 तुह जळि, मुह पुणि बल्लहइ, विहुँ वि न पूरिअ आस ॥ ८ ॥
 वप्पीहा, कइ वोल्लिएण निग्घिण वारइ वार ।
 सायरि भरियइ विमळ जळि लहहि न एक्कइ धार ॥ ९ ॥
 हिअइ खुडुकइ गोरडी गयणि घुडुकइ मेहु ।
 चासा रत्ति पवासुअहँ विसमो सकडु एहु ॥ १० ॥
 पुत्ते जाएँ कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुएण ।
 जा वप्पीकी भूहडी चपिज्जइ अवरेण ॥ ११ ॥
 गयउ सो केसरि पियउ जळ निच्चितइ हरिणाइँ ।
 जसु केरएँ हुकारडएँ मुहँ पडति तिणाइँ ॥ १२ ॥
 ठोत्त्ता एह परिहासडी अइ भण कवणहि देसि ।
 हउँ भिज्जउँ तउ केहिँ पिअ, तुहुँ पुणु अन्नहि रेसि ॥ १३ ॥
 पाइ विलग्गी अत्रडी सिरु लहसिउँ खधत्सु ।
 तोवि कटारइ हत्थडउ वळि किज्जउँ कतस्सु ॥ १४ ॥

जेवडु अतरु रावण रामहँ ।

तेवडु अतरु पट्टण गामहँ ॥ १५ ॥

(९) कुमारपालप्रतिबोध से—इसे सवत् १२४१ में सोमप्रभसूरि ने बनाया था । इसमें उस समय के प्रचलित अनेक देशी भाषा के छंद अवतरण रूप में दिए गए हैं—

पिय, हउ थक्किय सयळु दिणु तुह विरहग्गि किळत ।
 थोडइ जळ जिम मञ्जळिय तल्लोविल्लि करत ॥ १ ॥
 अज्जु विहाणउ, अज्जु दिणु, अज्जु सुवाउ पवत्तु ।
 अज्जु गळत्थिय सयळु दुहु, ज तुहु, मह घरि पत्तु ॥ २ ॥
 एक्के दुन्नय जे कया तेहिँ नीहरिय घरस्स ।
 वीजा दुन्नय जइ करउँ तो न मिलउँ पियरस्स ॥ ३ ॥
 अम्हे थोडा, रिउ बहुय, इउ कायर चितति ।
 मुद्धि, निहाळइ गयण अळु, कइ उज्जोउ करति ॥ ४ ॥
 रिद्धि विहूणह माणुसह न कुणइ कुवि सम्माणु ।
 सउणि हि मुच्चहि फलरहिउ तरुवर, इत्थु पमाणु ॥ ५ ॥

(१०) उक्त सोमप्रभ सूरि की अपनी रचना—

कोसा भणइ महापुरिस तुहुँ कवल्लु सोएसि ।
 ज दुल्लहु सजम्म खणु हारिस तं न मुणोसि ॥ १ ॥

गयण-मग-सलग लोल कल्लोल परंपर ।
 निकर गुक्कड नक चंक- चंक्रमण-दुहकर ॥
 उच्छ्रलंत-गुरु-पुच्छ मच्छ रिछोळि निरंतर ।
 ठिलसमाण जालाजडाल वडवानळ दुत्तर ॥
 आवत्त ट्यायळु जळहि लहु गोपड जिव ते नित्यरहि ।
 नीसेस वसण-गल निष्ठवणु पासनाहु जे सभरहि^१ ॥२॥

(११) प्रबंधचिंतामणि में उद्धृत मुज की रचनाएँ—

मुंज भणइ, मुण्णालवड, लुव्वण गयड न मूरि ।
 जइ सक्कर सय खड यिय, तोइ स मीठी चूरि ॥१॥
 भाली तुट्टी किं न मुड, किं न हुवड छरुंज ।
 हिंडइ दोरी वधियड, जिम मक्कड, तिम मुज ॥२॥
 भोळी मुध, म गवु करि पिकिलवि पडुगुपेई ।
 चउदसद सहेँ छहुत्तरई मुजइ गयइ ह्याई ॥३॥
 जा मति पच्छइ सपजड, सा मति पहिली होइ ।
 मुंज भणइ, मुण्णालवड, विव्रन न वेदइ कोइ ॥४॥
 सावर ख्याई, लंक गढ, गढवइ दमसिरि राउ ।
 भगक्खय सो भज्जि गय, मुज, म करे विस,उ ॥५॥
 वाह विछोडवि वाहि तुहुँ, हउँ तेवई को दोसु ।
 हियवट्टिय जइ नीसरइ जाणउँ, मुज, सरोसु ॥६॥
 मुज, खडल्ला दोगडी पेक्खेसि न, गमारि ।
 आसाटिइ वण गर्जाई, चिक्खिलि होमे वारि ॥७॥

(१२) प्रबंधचिंतामणि में उद्धृत अन्य दूहे—

नव नळ भरीया मगडा, गयणि वडक्कइ मेह ।
 इत्थनरि जइ आरिसिइ, तउ वाणिस्सिइ नेह ॥
 राणा मव्वे वाणिआ, जेमळ वडुड सेठि ।
 काहुँ वणिजहु मॉडियड अर्माणा गढ हेठि ॥
 तई, गडुआ गिग्नार, काहुँ मणि मत्सद धरिउ ।
 मारीताँ खेगार एक्कड सिहक न दालिउँ ॥

१ इस रचना में उत्तरकालीन डिगल भाषा का पूर्वाभास मिलता है ।

जइ यहु रावण जाइयउ, दहमुह इक्कु सरीर ।
जणणि वियभी चितवइ, कवणु पियावउ खीर ॥

(१३) महाकवि विद्यापतिरचित कीर्तिलता (समय १४३७ के
आसपास)—

सकय वाणी बहुअ न भावइ । पाऊँअ रस को मम्म न पावइ ॥
देसिल वअना सब जन मिछा । तं तैसन जपओ अवहछा ॥१॥

ठाकुर ठक भए गेल, चोरँ चप्परि घर लिज्झिअ ।
दास गोसाजिन गहिअ, धम्म गए धंध निमज्जिय ॥
खले सजन वरिभविअ, कोइ नहिं होइ विचारक ।
जाति अजाति विवाह अधम उत्तमकाँ पारक ॥

अक्खर-रस बुझनिहार नहि, कइकुल भमि भिक्खारि भउँ ।
तिरहुत्ति तिरोहित सब्ब गुण रा गणेश जवे सग्ग गउँ ॥२॥
जो अपमाने दुक्ख न मानइ । दान खगको मम्म न जानइ ।
पर उअँआरे धम्म न जोवइ । सो धरणो निच्चित्ते सोवइ ॥३॥

पुव्वे सेना सज्जिअइ, पच्छिम हुअउँ पयान ।
आणा करइते आण भउँ, विहिचरित्त को जान ॥४॥
गिरि टरइ, महि पडइ, नाग मन कंपिया ।
तरणिरथ गगनपथ धूलि भरे भंपिया ॥
तवल सत वाज, कत भेरि भरे फुक्किआ ।
प्रलय^१ घण सह हुअ णर रव लुक्किआ ॥५॥

(४) राजस्थानी का विकास

राजस्थानी के विकास काल को चार भागों में बाँटा जा सकता है—(१)
प्राचीन राजस्थानी—संवत् १००० से १२०० तक, (२) माध्यमिक
राजस्थानी—संवत् १२०० से १६०० तक, (३) उत्तरकालीन राजस्थानी—
संवत् १६०० से १९५० तक, (४) आधुनिक राजस्थानी—संवत् १९५०
से आगे ।

१ कीर्तिलता की भाषा कहीं कहीं तो परिवर्तन काल की पुरानी हिंदी से
आगे बढ़कर बिलकुल माध्यमिक हिंदी हो गई है ।

क—प्राचीन राजस्थानी

प्राचीन राजस्थानी का नाम हमने ऊपर लोकभाषा लिखा है। उस समय लोकभाषा थोड़े-बहुत रूपांतर के साथ समस्त उत्तर भारत में प्रचलित थी। राजस्थान, गुजरात एवं व्रज प्रांतों में लोकभाषा का जो रूप प्रचलित था वही प्रचलित राजस्थानी है। इस काल में राजस्थानी अपभ्रंश से अलग हुई पर अपभ्रंश का प्रभाव उस पर पर्याप्त था। इस प्राचीन राजस्थानी के कुछ उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं।

ख—माध्यमिक राजस्थानी

माध्यमिक राजस्थानी का काल सवत् १२०० से १६०० तक माना जा सकता है। इसमें राजस्थानी अपभ्रंश से स्वतंत्र भाषा हो गई। इस काल में भी (अंतिम डेढ़ दो शताब्दियों छोड़कर) राजस्थानी का क्षेत्र समस्त राजस्थान गुजरात एवं व्रज तथा उसके आसपास का प्रांत था। संभव है, बोलचाल की भाषा में कुछ अंतर रहा हो पर साहित्यिक भाषा इन प्रांतों में एक ही थी। यह बात इन प्रांतों की तत्कालीन रचनाओं पर ध्यान देने से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

इस समय में लोकभाषा का पूर्वी रूप पश्चिमी रूप से बहुत कुछ भिन्न हो गया था, जैसा मैथिल कवि विद्यापति की रचनाओं से प्रकट होता है^१। पर फिर भी माध्यमिक राजस्थानी के रूप में पश्चिमी रूप साहित्य में प्रधानता प्राप्त किए रहा। अपभ्रंशकाल में भी साहित्य का प्रधान क्षेत्र पश्चिम ही था एवं इस उत्तरकाल में भी यही बात रही। पश्चिमी हिंदी के अधिकारक्षेत्र से बाहर रहनेवाला कवीर जैसा कवि इस भाषा में रचना करता है, इससे बढ़कर इसकी जनप्रियता का प्रमाण क्या हो सकता है। आगे चलकर इसी काल के अंत में जय व्रज राजस्थानी से पृथक् हुई तो उसने भी साहित्य में अपनी पैतृक प्रधानता को कायम रखा। उसकी रचनाओं का प्रचार ऐसे प्रदेशों में भी हुआ जहाँ सर्वथा भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं।

इस काल में लगभग कवीर के जमाने तक तो राजस्थानी प्रधानता प्राप्त किए रहीं पर उसके अंत में व्रज ने एकाएक उन्नत होकर उसको दबा दिया।

१ पर उनकी कीर्तिलता की भाषा राजस्थानी या पश्चिमी हिंदी से किसी प्रकार भिन्न नहीं है केवल उस पर अपभ्रंश का कुछ विशेष प्रभाव लक्षित होता है पर वह विद्यापति के काल में बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी।

आरंभ में दोनों भाषाएँ एक ही थीं पर सूरदास एवं अन्यान्य वैष्णव कवियों ने जब अपना सगीत छेडा तो उन्होंने साहित्यिक भाषा को आदर न देकर ब्रज प्रात की टेठ बोलचाल की भाषा को अपनाया। अब तक साहित्यिक राजस्थानी में जो कविता हुई उसके रचयिता या तो चारण भाट थे या जैन कवि या जनता में गाने-बजानेवाली ढोली, ढाढी आदि जातियाँ। संस्कृत से इन लोगों का संबंध नहीं के बराबर था पर वैष्णव कविजन संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। उन पर संस्कृत का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। अतः उनकी रचनाओं में संस्कृत शब्द प्रचुरता से पाए जाते हैं। प्रचलित तद्भव शब्द भी बहुत कुछ तत्सम हो गए हैं। इसी तत्समता के कारण ब्रज तत्कालीन राजस्थानी से, जो अब तक साहित्यिक भाषा थी, भिन्न हो गई।

यही नहीं, राज्यस्थानी केवल प्रातीय भाषा मात्र रह गई। वैष्णव कवियों की भक्तिधारा ने ब्रज को एकाएक बहुत ऊँचा उठा दिया और न केवल ब्रज प्रात में किंतु अन्यत्र भी उसका समान होने लगा। इन कवियों की रचनाओं ने जनता के जीवन को बहुत प्रभावित किया और धीरे धीरे साहित्य की प्रभुता राजस्थानी से छूटकर ब्रज को प्राप्त हुई। ब्रज हिंदी की समस्त शाखाओं में प्रधान हो बैठी और उसकी वह प्रधानता अब भी सर्वथा नष्ट नहीं हो पाई है।

इन वैष्णव कवियों की भक्तिधारा ने राजस्थानी जनता को भी आकृष्ट किया। उसका प्रचार राजस्थान में भी खूब हुआ। सूर और तुलसी के भजन घर घर गाए जाने लगे और आज भी गाए जाते हैं। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि बहुत से भजनों की भाषा गाते गाते राजस्थानी बन गई।

राजस्थानी में इस समय मुख्यतया तीन प्रकार की रचनाएँ होती थीं—

१—चारण भाटों की रसपूर्ण कविता—आरंभ में ये लोकप्रिय हुईं परंतु अत में जब वीरता के लिये अवकाश न रह गया तो ऐसी रचनाएँ धीरे धीरे कम लोकप्रिय होने लगी। फिर इनके लेखक इनको एक बँधी हुई भाषा में, जो आगे चलकर डिंगल कहलाई, लिखने लगे जिससे वे जनता के लिये धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गई। अतएव ऐसी रचनाओं का समादर राजदरबारों तक ही सीमित रह गया।

२—जैन लेखकों की रचनाएँ—ये विशेषकर जैन धर्म से संबंध रखती थीं अतएव साधारण जनता में इनका विशेष प्रचार नहीं हुआ।

३—लौकिक कविता—इसकी रचना करनेवाली या तो जनता स्वयं ही होती थी या ढोली, दाढी, दमामी आदि लोग होते थे जिनका काम गानाबजाना तथा लोकप्रिय कविताओं और गीतों को जनता में गाकर सुनाना था। ऐसी कविताएँ बहुत लोकप्रिय होती थीं तथा साक्षर एवं निरक्षर जनता में उनका खूब प्रचार होता था।

जब ब्रज की भक्तिधारा प्रवाहित हुई तो जनता उधर आकर्षित हुई और अन्यान्य रचनाएँ उसके सामने दब गईं। साहित्यिकों पर भी उसका प्रभाव पड़ा। राजस्थान एवं गुजरात के लेखक भी ब्रज की ओर झुके और शुद्ध ब्रज में या ब्रजमिश्रित राजस्थानी में रचना करने लगे। इस नवीन भाषा का नाम पिंगल पड़ा और आगे चलकर इसके साम्य पर चारणी कविता डिंगल कहलाने लगी। बोलचाल में राजस्थानी की लौकिक रचनाएँ तथा जैनों की रचनाएँ न तो डिंगल हैं और न पिंगल। जिस समय वे नाम पड़े उस समय राजस्थान के साहित्यिक विद्वानों के ध्यान में वे दो ही प्रकार की रचनाएँ थीं। जैन रचनाएँ तो जैनों तक ही परिमित रहीं, बाहर उनकी पहुँच नहीं हुई। रक्षी साधारण जनता की दृष्टि रचनाएँ, से साहित्यिक विद्वान् उसे साहित्य ही क्यों मानने लगें? आज भी ग्रामीण कविता साहित्यिकों द्वारा साहित्य में परिगणित नहीं की जाती। तेजगे गीत, डूंगली जवारजीगे गीत आदि लोकरू गीतों की ओर आज भी हम साहित्यिक की दृष्टि जाती हैं? वह तो गँवारों की कविता है! इस ढोला मारू काव्य को ही न लीजिए। कितनी सुंदर रचना है पर किसी साक्षर राजस्थानी के आगे उसका नाम तो लीजिए। फिर देखिए, वह किम बुरी तरह नाकमाँ सिकोड़ता है। आपको गँवार समझे यह तो निश्चित ही है।

हम प्रकार से दोनों प्रकार की रचनाएँ विद्वानों से दूर रहीं। बाकी रह गई ब्रजभाषा की रचनाएँ या चारणों की कृतियाँ। इनके पिंगल और डिंगल नाम रखकर साहित्य के दो विभाग कर दिए गए। जो पिंगल नहीं सो डिंगल, जो डिंगल नहीं सो पिंगल।

परंतु हम यहाँ बाकी दो प्रकार की राजस्थानी रचनाओं को भी नहीं भूलना चाहिए। हम समस्त राजस्थानी साहित्य को दो विभागों में बाँटेंगे—
(१) डिंगल, (२) साधारण राजस्थानी।

(१) डिंगल का विकास उस राजस्थानी में हुआ जिसका प्रयोग चारण, भाट अविफतया करते थे एवं जो विशेषतः वीररसात्मक होती थी।

शब्दों के साधारण रूपों की अपेक्षा द्वित्व वर्णवाले रूपों का विशेष प्रयोग होता था। प्राचीन राजस्थानी में डिंगल के बीज पाए जाते हैं।

आरम्भ में साधारण राजस्थानी और डिंगल में कोई अंतर न था पर बाद में जाकर डिंगल स्थिर या Stereotyped हो गई। कवि लोग जान-बूझकर द्वित्व वर्णवाले शब्दों का प्रयोग करते थे और साधारण शब्दों की भी इस प्रकार कपालक्रिया होने लगी, साथ ही उनके कई शब्द भी बँध गए जिनका वे बारबार प्रयोग करते थे। बोलचाल की राजस्थानी में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होता था या उठ गया था जिससे डिंगल जनता के लिये धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गई और अंत में उसका समझ लेना जरा टेढ़ी खीर हो गया। आरम्भ में डिंगल बोलचाल की राजस्थानी से नाम मात्र की ही भिन्नता रखती थी पर अब तो यह सर्वथा भिन्न भाषा सी हो गई है। फिर राजस्थान में राजस्थानी साहित्य के अध्ययन का प्रबन्ध न होने से लोग इस कविता से सर्वथा पराङ्मुख हो गए हैं, यहाँ तक कि इनका अर्थ निकालनेवाले अब बिरले ही मिलते हैं।

डिंगल नाम बहुत पुराना नहीं है। जब ब्रजभाषा साहित्यसम्पन्न होने लगी एतद्दूर सूरदास आदि ने उसको ऊँचा उठाकर हिंदी क्षेत्र में सर्वोच्च आसन पर बिठा दिया तो उसकी मोहिनी राजस्थान पर भी पड़ी। राजस्थान की कविता पर ब्रज का प्रभाव पड़ने लगा, यहाँ तक कि बहुत से लोग ब्रज में रचना करने लगे। इस प्रकार ब्रज या ब्रजमिश्रित भाषा में जो रचना हुई वह पिंगल कहलाई। आगे चलकर उसके नामसाम्य पर पिंगल से भिन्न (अर्थात् चारण भाटों की वीररसात्मक) रचना डिंगल कहलाने लगी।

(२) साधारण राजस्थानी में हम बोलचाल की राजस्थानी की रचनाओं, जैन लेखकों की रचनाओं तथा ब्रजमिश्रित पिंगल की रचनाओं को स्थान देंगे।

प्राचीन और माध्यमिक राजस्थानी की अधिकांश रचनाएँ जैन लेखकों की कृतियाँ हैं। राजस्थानी साहित्यनिर्माण का श्रेय अधिकांश में इन्हीं लेखकों को देना चाहिए। अवश्य ही इनकी भाषा पर प्राकृत और अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है, फिर भी तत्कालीन भाषा के अध्ययन के लिये इन्हीं की कृतियाँ सबसे अधिक उपकारक हो सकती हैं। पिंगल रचनाओं और लौकिक कविता की भाषा, उनके जनता में प्रचलित होने के कारण, धीरे धीरे

आधुनिक होती गई है, डिंगल कविता की भाषा आगे चलकर स्थिर हो गई परंतु जैन रचनाएँ इन ढोपों से बहुतकुछ मुक्त हैं। इनमें भाषा का तत्कालीन रूप बहुतकुछ सुरक्षित है। यह साहित्य बहुत विस्तृत है पर अप्रकाशित है।

माध्यमिक राजस्थानी की वर्तनी अपभ्रंश से मिलती हुई थी। उसमें ह्रस्व ए और ओ वर्तमान थे जो आधुनिक राजस्थानी में भी पाए जाते हैं। ऐ और औ अइ और अउ के रूप में लिखे जाते थे^१। जैसे—

भरइ पळट्टइ भी भरइ भी भरि भी पळट्टेहि ।
टाढी हाथ सँट्टेसड़उ धरण विललती देहि ॥

—ढोला मारूरा दूहा

तउ पाछइ सु बालकु जातमात्रु हूँतउ प्रसिद्धउ हुयउ ।

—तरुणप्रभ सूरि (सं० १४११)

पछइ रावा आपणपई रात्रिई नीलउ पटउळउ पहिरी...फिरतउ चोर जोतउ एकइ त्यानकि जइ सूतउ ॥

—सोमसुंदर सूरि (सं० १४५७-६६)

एकि घोड़े चडई, एकि ऊतावळा पडई ।

कायर रडई, सुमट भिडई, योष जुडई ॥

—पृथ्वीचंद्र चरित्र (सं० १४७८)

अलीक वचन म बोलिसि, वाली, तात अम्हारउ लाजइ ।

सुरापणइ सूर ते माँटी जे रणि साहसु गाजइ ॥

सीताहरण (सं० १५२६)

ढमढमइ ढमढमाकार ढूकर ढोल ढोली जंगिया ।

सुर करहि रणसरणाइ समुहरि सरस रसि समरगिया ॥

कलकलहि काहल कोडि कलरवि कुमळ कायर थरथरइ ।

सचरइ शकसुगताण साहण साहसी सवि सगरइ ॥

—रणमल्ल छंद (सं० १४५५ के लगभग)

सन्धी, दीह दुल अनीठउँ, दीठउँ गमइ न चीर ।

भोजन थाव उछीठउँ, मीठउँ सडइ न नीर ॥

—वसतविलास (सं० १५०८ के पूर्व)

१ अपभ्रंश के अइ और अउ उत्तरकालीन राजस्थानी में ऐ और औ चन गए ।

बहुरउ वयरी वल्लहउ हियइ खटक्कइ तिरिण ।

वीसारतौ न वीसरइ वसतौ ऊवसि रन्नि ॥

—प्रबोध चिंतामणि (सं० १४६२ के लगभग)

माधव दिन प्रति जोवत बाट, अपछर नावइ मन्न उचाट ।

एक दिवस आवीनइँ मिळी, बिहुँ जननी मन पूगी रळी ॥

—माधवानळ कामकुदला चौपई (सं० १६१५ के लगभग)

राठउइ वीक कुण करइ रीस, छेहड़ा छत्र माडइ छत्रीस ।

मइगळौ नीर पायउ मसट्टि, खेड़ेचउ आयउ जइत खट्टि ॥

—छद राउ जइतसीरउ (सं १५६० के लगभग)

माध्यमिक राजस्थानी में कर्त्ता, कर्म, करण, अधिकरण आदि कारकों को सूचित करने के लिये शब्दों में तथा पूर्वकालिक क्रिया में, अत में, इ या ए अक्षर रहता था। आधुनिक राजस्थानी में यह इ सर्वत्र लुप्त हो चुकी है (केवल घरे शब्द में प्राचीन ए वर्तमान है)। सब कारकों का एक सा रूप होने से भ्रम होता था जिसको बचाने के लिये नवीन शब्दों द्वारा कारक सूचित करने का प्रयत्न अपभ्रंशकाल में ही आरंभ हो चुका था। आधुनिक राजस्थानी में तो नए शब्द भी घिसकर केवल प्रत्यय मात्र रह गए हैं।

ग—उत्तरकालीन राजस्थानी—उत्तरकालीन राजस्थानी भी साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। डिंगळ, पिंगळ और बोलचाल की राजस्थानी में इस इस काल में खूब साहित्य रचना हुई और इन रचनाओं का खूब प्रचार हुआ।

इस काल की मुख्य विशेषता गद्यरचना है। माध्यमिक काल में भी बहुत कुछ गद्य लिखा गया होगा पर जैन रचनाओं को छोड़कर अन्य गद्य रचनाएँ बहुत ही कम बचने पाई हैं परंतु इस काल की रचनाएँ प्रचुरता से प्राप्त होती हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण ख्यातें हैं। प्रत्येक राजपूत राज्य अपने यहाँ की ख्यात बराबर लिखता था जिसमें उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का पूरा वर्णन किया जाता था। राजस्थान के इतिहासनिर्माण में इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। पर खेद है कि इनकी ओर विद्वानों एवं प्रकाशकों का ध्यान अभी तक नहीं।

ख्यातों के अतिरिक्त वात साहित्य भी महत्व पूर्ण है। वात राजस्थानी में कहानी को कहते हैं। यह साहित्य बहुत विस्तृत है और इन बातों का संग्रह किया जाय तो कई कथासरित्सागर और सहस्ररजनी चरित्र बन सकते हैं।

डिंगल रचनाओं में गीत महत्वपूर्ण हैं। इन गीतों में राजाओं एवं अन्य वीरों के वीर कार्यों तथा गुणों का उल्लेख होता था एवं उनकी प्रशंसा होती थी। इनसे साधारण छोटीमोटी और महत्वपूर्ण सभी प्रकार की ऐतिहासिक बातों एवं घटनाओं पर बड़ा प्रकाश पड़ सकता है। ये गीत हजारों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। आवश्यकता है इनको उचित रूप से संगृहीत, संपादित और प्रकाशित करने की। राजाओं के दरबारों में रहने-वाले चारण, भाटों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में या उनके नाम पर बहुत से ग्रंथों की इस काल में रचना की। राजा लोग भी कभी कभी काव्य-रचना करते रहे हैं। इस काल की डिंगल रचनाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण वीकानेर के सुप्रसिद्ध राठोड़ महाराज पृथ्वीराज की 'क्रिसन-रुक्मणीरी वेलि' और मिश्रण चारण सूर्यमल्ल रचित 'वशभास्कर' है। वेलि साहित्यिक डिंगल का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस काव्य की राजस्थानी में, कई टीकाएँ हुईं। यही नहीं, राजस्थानी में यही एक ऐसा ग्रंथ है जिसे संस्कृत में टीका होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वशभास्कर पृथ्वीराज-रासो का बड़ा भाई है। कृत्रिम डिंगल का वह चरम उदाहरण है। अन्य डिंगल रचनाओं का वचनिका राठोड़ रतन सिंहजीरी विशेष प्रसिद्ध है।

पिंगल साहित्य में भी अच्छी रचनाएँ हुईं एवं वे लोकप्रिय भी खूब रहीं। पिंगल साहित्य के लेखक मुख्यतया सत कवि हैं। इनमें बाबा हरिदास दयालजी, दादूदयाल, चद्रसखी, वखतावर आदि कवि महत्वपूर्ण हैं। चद्रसखी और वखतावर बड़े ही भावुक कवि थे एवं इनकी रचना का माधुर्य अपूर्व है। सूर और तुलसी के पद भी राजस्थानी रूप धारण करके जनता में खूब फैल गए।

शुद्ध व्रज के भी कई कवि इस काल में हुए। विहारीलाल ने जयपुरनरेश के आश्रय में विहारी सतसई लिखी। मतिराम और पद्माकर हिंदी के प्रथम श्रेणी कवि समझे जाते हैं।

बोलचाल की राजस्थानी में जो लोकप्रिय रचनाएँ इस काल में हुईं उनमें दो बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक का नाम रुक्मणीमगल है जिसे पद्म

भक्त नामक कवि ने सत्रहवीं शताब्दी में बनाया था। इसकी शैली बड़ी सुंदर, सरस, सरल और घरेलू है। वर्णन बड़े ही सजीव हैं। दूसरे का नाम मेहता नरसीजीरो मायेरो है। इसका रचयिता एक लकड़हारा था। इसमें गुजरात के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता की पुत्री नानीबाई की और नरसी मेहता के भात भरने की कथा का बड़ा रोचक वर्णन है। जनता में इनका बहुत प्रचार है और लोग रात्रि को एकत्र होकर इनकी सुंदर कथाओं को गायकों के मुँह से सुनते और आनंदलाभ कहते हैं। गाते गाते इनकी भाषा अवश्य ही बहुतकुछ आधुनिक हो गई है।

बोलचाल की भाषा में भी अनेक लोकगीत ballads बने जिनमें तेजेरो गीत और डूंगजी जवारजीरो गीत आज भी लोगों के कठहार हो रहे हैं। इन गीतों को गाकर सुनानेवाली एक अलग जाति ही हो गई है।

बोलचाल की राजस्थानी के साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग दूहा साहित्य है। कबीर आदि भक्त कवियों की साखियों का तो खूब प्रचार हुआ ही किंतु इस काल में राजिया, भैरिया, किसनिया, बीजरा, नाथिया, नोपला, जेठवा, नागजी^१ आदि के दूहे बने जिनका राजस्थानी जनता में खूब प्रचार है^२।

खेद है कि राजस्थानी का यह विस्तृत साहित्य अभी तक अधकार में पड़ा है और राजस्थानी विद्वानों का ध्यान इसके संपादन एवं प्रकाशन की ओर अभी तक नहीं गया।

घ—आधुनिक राजस्थानी—अब हम आधुनिक राजस्थानी काल की ओर आते हैं। इस समय राजस्थानी का गौरवसूर्य अस्त हो चुका है। अब राजस्थानी केवल बोलचाल की भाषा रह गई है। राजदरबारों में अब तक फारसी की तूती बोलती थी, अब उर्दू का राज्य है। एकाध राज्य में हिंदी को स्थान मिला है

१ इनमें से कुछ स्वयं कवि थे और कुछ के नाम के दूहे उनको संबोधन करके दूसरों द्वारा लिखे गए।

२ इन दूहों का एक सुंदर वृहत् संग्रह 'राजस्थानरा दूहा' नाम से इस ग्रंथ के अन्यतम संपादक नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए० द्वारा संपादित होकर पिलाणी-राजस्थान ग्रंथमाला में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तावना में राजस्थानी भाषा और साहित्य का परिचय भी दिया गया है।

पर नाममात्र को। स्कूलों में हिंदी-उर्दू पढाई जाती है। राजस्थानी और उसका साहित्य दिनोंदिन विस्मृति के गर्त में जा रहा है। सौ पौन सौ वर्ष पहले हिंदी जिस प्रकार गँवारू बोली समझी जाती थी वही हालत आज राजस्थानी की होने लगी है। 'हम तम' में जो शान समझी जाती है वह 'भे श्रे' में नहीं।

आधुनिक राजस्थानी के सबसे बड़े लेखक शिवचंद्र भरतिया हैं। आपने अनेक उपयोगी गद्य-पद्यात्मक पुस्तकें लिखीं। आपकी शैली बड़ी ही सरल एवं स्वाभाविक है। आपने राजस्थानी में नवीन ढंग के नाटक तथा उपन्यासों का सूत्रपात किया और साहित्य में वर्तमान जगत् के भावों को भरने का प्रयत्न किया। एक दूसरे लेखक श्रीयुक्त कचरदास कलत्री हैं जिन्होंने दक्षिण भारत से पचराज नामक एक बड़ा ही सुंदर मासिक पत्र राजस्थानी में निकाला था। राजस्थानी में ऐसा उपयोगी, महत्त्वपूर्ण और साहित्यिक पत्र दूसरा नहीं निकला^१।

खेद की बात है कि राजस्थानी लोग अपनी मातृभाषा और उसके साहित्य की ओर से सर्वथा विमुख हो गए हैं। अपने साहित्य का उन्हें ज्ञान ही नहीं, उसके महत्त्व को समझें तो क्यों कर समझें? मातृभाषा का अनादर ही हमारी निर्जीवता का कारण है। जाति की जीवनी शक्ति उसकी भाषा है। यदि राजस्थानी भाषा नष्ट हो गई तो राजस्थानी जाति और राजस्थानी गौरव नष्ट हो गया—इसमें तनिक भी सदेह नहीं। कब तक हम अपने साहित्यिकों और लेखकों की उपेक्षा करते रहेंगे?

(५) ढोलामारू की भाषा

'ढोला मारूरा दूहा' काव्य की भाषा माध्यमिक राजस्थानी है जो तेरहवीं शताब्दी से पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक पश्चिम भारत की प्रधान भाषा थी। यह अनुमान होता है कि उस काल में इस भाषा का समादर साहित्य-रचना में खूब था और यह पश्चिम भारत की सर्वप्रमुख साहित्यिक भाषा थी। कबीर जैसे कवि की, जो इस प्रदेश के बाहर पूर्वी हिंदी के क्षेत्र का निवासी

१ डिंगल भाषा और साहित्य तथा व्याकरण के विस्तृत परिचय के लिये इसी लेखक द्वारा लिखित राव जहत्तसीरउ छंद नामक ग्रंथ की प्रस्तावना देखिए।

था, भाषा का राजस्थानी होना यही सिद्ध करता है कि उस काल में उत्तर भारत की भाषाओं में इसका स्थान बहुत महत्वपूर्ण था और इसका प्रचार भी सबसे अधिक था जिसके कारण कबीर जैसे कवि की कविता, जो सर्व-साधारण के लिये लिखी गई थी, इसी में लिखी गई। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि उस समय राजस्थान एव व्रजभूमि की भाषा एक थी और इस भाषा को व्रजभाषा भी वैसे ही कहा जा सकता है जैसे कि राजस्थानी। अवश्य ही जो साहित्यिक व्रजभाषा बाद में विकसित हुई वह संस्कृत के प्रभाव के कारण इस राजस्थानी व्रज से काफी दूर थी। इसके कारण कबीर की भाषा आज जितनी राजस्थानी जान पड़ती है उतनी व्रजभाषा नहीं जान पड़ती। आधुनिक राजस्थानी कबीर की इस भाषा से इतनी मिलती है कि राजस्थानियों को कबीर की भाषा समझने में व्रजभाषा-भाषियों और पूर्वी हिंदी बोलनेवालों की अपेक्षा बहुत कम कठिनाई पड़ती है। जो कुछ कठिनाई पड़ती है वह इसी कारण कि कबीर की कविता आज से कोई चार साठे चार सौ वर्ष पूर्व लिखी गई थी।

इसके अतिरिक्त उस काल में इस माध्यमिक राजस्थानी के उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा होने का दूसरा प्रमाण यह है कि जायसी की रचनाओं में अनेक ऐसे शब्द और वाक्यांश पाए जाते हैं जो उस काल की राजस्थानी में मिलते हैं एव आज भी राजस्थान में समझे जाते हैं लेकिन जो बाद की व्रजभाषा के लिये, जो अवधी एवं राजस्थानी की मध्यवर्ती भाषा है, सर्वथा नवीन हैं।

विषयांतर होने पर भी हम यहाँ पर यह कहने का साहस करते हैं कि कबीर की भाषा राजस्थानी है एव कबीर को वैसे ही राजस्थानी का कवि कहा जा सकता है जैसा कि ढोलामारू काव्य के कर्ता को।

यह कहा जा सकता है कि कबीर की भाषा वास्तव में ऐसी नहीं थी जैसी कि बाद की हस्तलिखित प्रतियों में मिलती है तथा तुलसी एव सूर के पदों की भाँति वह भी बाद में राजस्थानी बना ली गई है। परंतु कबीर की हस्तलिखित प्रति, जो नागरीप्रचांगिणी सभा को मिली है एव जिसके आधार पर कबीरग्रंथावली का संपादन आचार्य श्यामसुंदरदास ने किया है, कबीर के समय के बहुत बाद की नहीं है। कबीर ग्रंथावली के संपादक तो उसे कबीर के जीवनकाल की ही मानते हैं।

अतः उसमें और कबीर की भाषा में विशेष अंतर होने की संभावना नहीं । फिर यह भी ध्यान में रहना चाहिए कि यह प्रति काशी में लिखी गई थी । यदि लेखक द्वारा परिवर्तन होता भी तो उलटा होता यानी राजस्थानी पूर्वी हिंदी में परिवर्तित होती, न कि पूर्वी हिंदी राजस्थानी में । पद गाने की चीज होते हैं । उनमें परिवर्तन संभव है, जैसा संभवतः हुआ भी है, परंतु साखियाँ तो (बहुत थोड़े अपवाद के साथ) पुस्तकों की चीज हैं जो पुस्तकों में ही लिखी रहती हैं । अतः उनमें इतना शीघ्र ऐसा परिवर्तन हो जाना कि भाषा ठेठ राजस्थानी हो जाय संभव नहीं ।

ढोला मारु काव्य की भाषा कबीर की भाषा से बहुत अधिक मिलती है । अनेक शब्द, वाक्यांश और वाक्य तो ज्यों के त्यों मिलते हैं । भावसाम्य तथा भाषासाम्य कहीं कहीं इतना अधिक है कि यह प्रतीत होने लगता है कि अवश्य ही एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ा है ।

अब नीचे हम कतिपय समानतावाले पद्यों को उद्धृत करके अपने कथन को स्पष्ट करेंगे—

(१) कबीर—अवर कुजॉ कुरलियाँ गरजि भरे सत्र ताल ।

जिनियै गोविंद वीछुटे तिनके कौण हवाल ॥ ३ ॥ १ ॥

ढोला—राति जु सारस कुरळिया गुजि रहे सत्र ताल ।

जिणकी जोड़ी वीछुड़ी तिणका कवण हवाल ॥ ५३ ॥

(२) कबीर—यहु तन जालौं मसि करौं ज्यूं धूँवा जाइ सरगि ।

मति वै राम दया करै बरसि बुझावै अगि ॥ ३ ॥ ११ ॥

कबीर—यहु तन जालौं मसि करौं लिखौ राम का नाउँ ॥ ३ ॥ १२ ॥

ढोला—यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरगि ।

मुझ प्रिय बहळ होइ करि बरसि बुझावइ अगि ॥ १८१ ॥

(३) कबीर—कबीर सुपनै रैनिकै पारस जीयमै छेक ।

जे सोऊँ तो दोइ जणा जे जागूँ तौ एक ॥ १२ । २३ ॥

ढोला—सुहिणा, तोहि मराविस्, हियइ दिराऊँ छेक ।

जद सोऊँ तद दोइ जण, जद जागूँ तद हेक ॥ ५१४ ॥

१. कबीर के उदाहरण आचार्य ज्यामसुंदरदास द्वारा संपादित और काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' के प्रथम संस्करण से लिए गए हैं ।

साखियों में पहला अंक अंग को और दूसरा साखी को सूचित करता है । पदों में अंक पदसंख्या का सूचक है । प०=परिशिष्ट ।

- (४) कवीर—ससै खाया सकल जुग ससा किनहूँ न खद्व ॥१२२॥
जे बेधे गुरु अषिरो तिनि संसा चुणि चुणि खद्व ॥१२२॥
ढोला—चिंता बधुड सयळ जग, चिंता किणहि न बधु ।
जे नर चिंता वस करइ, ते माणस नहिं सिद्ध ॥२२०॥
- (५) कवीर—काटी कूटी मळली छीकै धरी चहोड़ि ।
कोइ एक अषिर मन वस्या दहमै पड़ी बहोड़ि ॥१३२४॥
ढोला—तालि चरती कुभड़ी सर संधियउ गॅमारि ।
कोइक आखर मनि वस्यउ, ऊडी पख सॅमारि ॥ ६७ ॥
- (६) कवीर—जॉणौ जे हरि कौं भजौ मों मनि मोटी आस ॥१६५॥
ढोला—सुणि ढोला, करहउ कहइ मो मनि मोटी आस ॥४३१॥
- (७) कवीर—कवीर गुण की बादली तीतरवानीं छौं हि ।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मदिर मॉहि ॥१६२३॥
कवीर—मदिर पैसि चहूँ दिशि भीगे, बाहरि रहे ते सूका । (पद १७५)
ढोला—आज धरा दस जनम्यउ महलौ ऊपर मेह ।
बाहर थाजइ ऊगरइ, भीगा मॉभ घरेह ॥२७२॥
- (८) कवीर—कमोदनी जलहरि बसै, चदा बसै अकास ।
जो जाही का भावता, सो ताही के पास ॥४४१॥
ढोला—जळ मॅहि वसइ कमोदणी, चदउ वसइ अगासि ।
ज्यउ ज्यौंहीकइ मनि वसइ, सउ त्योंहीकइ पासि ॥२०१॥
- (९) कवीर—कवीर, सुपिनै हरि मिल्या, सूताँ लिया जगाइ ।
आँषि न मींचौ डरपता, मति सुपिनॉ है जाइ ॥५०६॥
ढोला—सुपनइ प्रीतम मुभ मिळथा, हूँ गळि लग्गी धाइ ।
डरपत पलक न छोडही, मति सुपिनउ हुइ जाइ ॥५०३॥
ढोला—सुपनइ प्रीतम मुभ मिळथा, हूँ लागी गळि रोइ ।
डरपत पलक न खोलही, मतिहि विछोइउ होइ ॥५०२॥
- (१०) कवीर—कवीर हरि का डर्पताँ ऊन्हों धान न खौँ ।
हिरदा भीतरि हरि बसै ताथै खरा डराउँ ॥ (ख ५०७)
कवीर—गोब्यँद के गुण बहुत हैं लिखे जु हिरदै मॉहिं ।
डरता पॉणी नाँ पीऊँ मति वै घोये जॉहिं ॥५०७॥

ढोला—प्रीतड, तोरइ कारखइ ताता डत न खइ ।

हियइ डीतर प्री वसइ दाडुणती डरपाहि ॥१६०॥

(११) कवीर—ऊँनडि आई वदली, वरुण लगे अगार ॥५११॥

ढोला—ऊँनडि आई वदली, ढोलड आयड चित्त ॥४१॥

(१२) कवीर—चुगै चितारै डी चुगै चुगि चुगि चितारै ।

जैसे वच रहि कुँज डन डया डडतारे ॥ (प) ५० ॥

ढोला—चुगइ, चितारइ, डी चुगइ, चुगि चुगि चितारेह ।

कुरडडी वच्चा डेलिहकइ, दूरि थकॉ पाळेह ॥२०२॥

(१३) कवीर—जे दिन गये डगति विन ते दिन सालै डोहि ।

ढोला—जे दिन डारू विण गया, दई न ग्यॉन गिणत ॥२०८॥

(१४) कवीर—अकथ कडाणी ड्रेड की कड्यॉ न को पत्याय ॥४१११॥

कवीर—अकथ कड्यॉणी ड्रेड की कडू कही ना जाई ।

गूँगा केरी सरकरा वेटे डुसकाई ॥१५६॥

ढोला—अकथ कडाणी ड्रेड की कियसू कही न जाइ ।

गूँगा का सुपना डया, सुडर सुडर पिछताइ ॥१५६॥

अव कतिपय रानस्थानी शडुडों को देखिए निनका डुरडोड कवीर और ढोला डारू काव्य डें हुड्रा है—

कवीर

ढोला डारू

१ जतन करत पतन है जैहे
डारुँ जाणु ड जाणी । ३६७

१ हियइ डीतरि तूँ वसइ,
डारुँ जॉणु ड जॉणु । १७५

२ काया डजन क्या करै
कडुडु डोइ ड डोइ । १२।५३

२ जणु जणु साथ ड डोलही
डारू वहुत गुणेह । ४८२

३ डारुँ सिधि ऐसी पाड्ये
किंवा होइ ड होइ । ५

३ डरड ड दाखिस कोइ । ४६७

४ एक ज्योति एका डिली
किंवा होइ ड होइ । ३१ डरि०

४ रागॉ देह ड चूरि । ४६२
ड करि डरार्ई वात । ६१६

५ गहु, रे सख, ड, डूरि ।
३।४४

५ चरि, चरि, ड चरि, ड डूरि ।
४३४

६ रहि रहि, हिया, ड खीजि ।
५५।७ टि०

६ हइ, हइ, दइव, ड डारि । ४८
रहि, रहि, सुंदरि, डरठ करि
३२१

- ७ उलट अपूठा आँणि । १३।१
 ८ यहु ससार धार मैं डूवै
 अधफर थाकि रहै है । ३१०
 भौ जल अधफर थाकि रहे
 हैं । ३१८
- ९ दीपक पावक आँणिया
 तेल भी आँण्या संग । ४।१
 गाडर आँणी ऊनकूँ । १७।३
- १० कूड़े आखै त्रैन । ४३।१०
 सब दुख आखौँ रोइ ५४।६
- ११ आइ पहुंता कीर । ४६।
 १६ टि०
- १२ यहु मन आमन धूमनौँ ।
 ३०२
- १३ यहु संसार इसौँ रे प्रॉणी ।
 ३१३
- १४ उहाँ ही तैँ गिरि पड़्या ।
 १३।२५
- १५ माटी खोदइ भीत उसारै । ६२
 ६२
- १६ ग्वाड़ा मॉ हे आनँद उपनौ ।
 १५२
- सचु पाया सुख ऊपना ५।२६
- १७ कहत कबीर मोहि भगति
 उमाहा । २७१
- १८ विरहिनि ऊभी पंथसिरि ।
 ३।५
- १९ पंथी ऊभा पंथ सिरि ।
 ४६।२२
- २० ऊँडा बहै असोस । ५७।३
- ७ राज, अपूठा बाहुडउ । ४०४
 ८ आडावळ आधोफरै
 मारग माहि असन्न । ४३६
- ९ मोती आँण्या जेण । ५७३
 कर ग्रह आँणी अंक मई ।
 ५४४
- १० मारुनूँ आखइ सखी ।
- ११ आइ पुहत्तउ कीर ।
 ४००
- १२ अतरि आमण दूमणा ।
 २१८
- १३ इसइ आरखइ मारुवी ।
 १४
- १४ हियडउ उवाँहो सूँ गयउ ।
 ३६२
- १५ दीहे दीह उसारिस्योँ । ५२५
- १६ मारु देस उपन्नियाँ । ४८३-
 ८४
- १७ आज उमाहउ मो घणउ ।
 ५१८
- १८ ढोलउ पूगळ पंथ सिरि ।
 ४२३
- १९ ऊभउ साहइ लाज । ४४६
- २० ऊँडा पाणी कोहरइ । ५२३

- २१ तिणकैँ ओलहैँ रॉम है । २१ उर ओलह प्री राखियह ।
५३।७ २८७
- २२ ओखड़ियोँ मॉई पड़ी । २२ ओखड़ियोँ डवर हुई ।
३।२२ १६५
- २३ लेखणि कल्ल करंक की । ३।१२ २३ मारु तणह करंकड़ह । १५७
- २४ जिहि सरि मारी काल्हि । २४ जेहा सजण काल्ह या ।
३।१७ २१६
- २५ करॅम मए कुहाड़ि । १२ । २५ कधि कुहाड़ि सरि घड़उ ।
४४ ६५८
- २६ तनसुँ किसानेह । २६।५ २६ लाम किसानकउ लेसि । १७७
- २७ द्वै थर चढि गयो राडको २७ करहा, कहि कासुँ करॉ ।
करहा । ७६ ४४५
- ओख कैँ वीरे चरहल कर- २७ काळी जाया करहला ।
हल । १७७ ४६१
- २८ निर्मळ नाँव चवैँ, जस २८ सुणि सुदरि सच्चउ चवॉ ।
बोलै । ३४४ २३८
- २९ जम रॉणोँ गढ भेलिसी । २९ आय जमराणोँ साद करि ।
१२।७ ६१० थ
- ३० जागत ढँढोळया वादि । ५।३३ ३० ढोलइ धण ढँढोळियउ ।
सायर मॉहि ढँढोळता । ६०२
- ५।३४ भसम ढँढोलिसि काह ।
११२
- ३१ दिवस थकॉँ साई मिलैँ । ३१ दूरि थकॉँ ही सजणा ।
७३।१३ २१४
- ३२ कवीर तुरी पलाँणिया । ३२ ढोलइ करइ पलाणियोँ ।
१३।१३ ३६२
- ३३ दोवड़ कोट अरु तेवड़ ३३ दूजा दोवड़ चोवड़ा ।
खाई । ३५६ ३०६
- ३४ रात्यूँ सुँनी विगहिनी । ३४ रात्यूँ सुँनी निसह मरि ।
३।१ १५६

३५ रळि गया आटै लूण १।१४

३६ फाडि पुटोला धज करूँ ।
३।४१

३७ देवलि देवलि धाहड़ी ।
३।४४

३८ दाधी देह न पालवै । ४।६

३९ मुखि कसतूरी महमही ।
५।१४

४० चद विहूणौ चॉनिणा । ५।१५

४१ हूँगरि चूठा मेह ज्यूँ । १३।२२
सूका काठ न जाणही कवहूँ
वूठा मेह । ५५।१

४२ ज्यूँ जळ टूटै मंछळी यूँ
बेलत विहाइ । २६।५

४३ जग सगळा ही जाँण ।
२६।१५

४४ सुख दुख मेलहे दूर । ३१।८

४५ जिहि वैसंदर जग जळ्या ।
३६।४

४६ ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण सौंभळूँ ।
४०।६७

४७ साईं हंदा सैण । ४३

४८ विसारथा नहिं बीसरै ।
४४।२

४९ सिर साटै हरि सेविए ।
४५।३१

५० काल सिंचाणा भरन चिड़ा ।
४६।२

३५ थे विहूँ सजण रळि मिलउ ।
३१।८

३६ पट्टोळा पहिरेसि । २३३

३७ तिणि चडि मूकूँ धाहड़ी ।
३८।६

३८ सूका था सू पालहव्या ।
५३।३।५६०

३९ मारवणी मुखि ससि तरणइ
कसतूरी महकाइ । ६००

४० जलइ विहूणी वेल । १६३

३१ दूधे वूठा मेह । ५५।९
नयणे वूठउ नीर । १६

४२ वेळत थयउ विहाँण १६२

४३ सगळों मन ऊळव हुवउ ।
४०

४४ तिण रिति मेलहे माळविण । २६६

४५ का वासंदर सेवियइ । २६४

५६ रहीं संभाळ संभाळ ।
३८२

४७ सयणौ हंदा हत्त । ५०९

४८ बीसारियो न बीसरइ ।
६१२

४९ एकण साटइ माखी ।
४५।८

५० मन सीचाणउ जइ हुवइ ।
२११

५१ नीर निवारण ठाहरै । ५५।४	५१ देस निवारण उजळ जळ । ६६८
५२ नख सिख पाखर जाँह । ५५।५	५२ प्यारा पाखर प्रेम की ४१२
५३ सदा सदाफल दाख विजौरा । २१४	५३ द्राख विजउरा नीरती । ४२६
५४ सुति मुकलाई अपनी माऊ । ६६ प०	५४ मारखणी मुकळाइ । ५६५
५५ बहुगणियाळे कंत । ११।७	५५ बहु गुणवंता नाह ३४०
५६ परिखणहारे वाहिरा । ४८।२	५६ प्रीतम हूती वाहिरो । ३७०
५७ परब्रह्म वृढा मोतियाँ चड जाँधी सिपरॉह । ५५।३ इत्यादि	५७ आन धरादस जनम्यउ काळी चड सखरॉह । २७१ इत्यादि

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित राजस्थानी शब्द भी कश्मीर की कविता में आए हैं जिनका प्रयोग हिंदी में प्रायः नहीं होता—

आधापरधा, अर्थवै, आपण, उडाणी, उपायौ, ऊखण्या, कुंज (क्राँच), कद, कटे, जद, तद, क्रम (कर्म), काण, कालर, काटे, कहसी, काँइ, कराडै, कुँभिनारणी, करसी, खड़हड़ताँ, खोडि, खूँणै, खौँगौ, खिँवै, न्यूँटी ताणि (मुद्दावरा), खेड, खिरि, गहेलडी, गुल्फ, घणा, घाल्या, घुरडि, घाघरै, चाँनिणो, चंच, चढोइ, चोल, चौडे, चात्रिग, चवै, छइ, छौँगि, छाने, छोति, जोइया, जाँगीजै, जासी ज (पादपूर्क अव्यय), भळ, भ्ताळि, भ्नीण, भ्नुँरनी, भ्खि, भ्कोळनहार, ठाहरै, डागळा, डूगरि, तर (= तो), त (= तो), तनसार, तेणि, त्याँह तिरसी, थवाहँ, थै (= से), थकाँ, थई, थॉहि, थूणी, थारै, दीवा, दाक्षणा, दाधी, दाघा, दीठा, दह, दिसावराँ, दुहेला, दोहरा, द्रिद, दह दिधि, द्रंम, धीजियै, नीपजै, नीभर, नचीत नेडा, निवाण नफर, नाठी, पालवै, पाँणी, प्रखला, पट्टन, पखड़ॉ, पगड़ा, पाछेवडा, परि (= भाँति) पन (= पर्ण), पसाव, पयपै, पाखँ (= विना) पलानि, पणि, पूगी, पाळि, पूळा, मोळ, भी (= फिर), भेळा, भेळिसी, भुसै, भाजिसी, (= मागेगा, चुमेगा, टूटेगा), भावै, मिनकी, मेल्हा, मादी, महमही, मंगळ, मैमंत, मारिसी, मेल्है इ०, महरॉण, मफ, मुकलाऊँ, माहिलौ, मोकला, रुडाँ, सति, रलिया, रुवहि, लार, लेसी,

स्नाधा, लहुरी, लाहौ, बाहणो (= चलाना), बाह्या, वागै, वैसणो, बहोड़ि, वेसास, बिडाणा, वाव, वधावणा, बावै (चोता है), वदेस, बीद, बागड़, बीभ्र, विरोलै, वनराइ, वावलिया, वळसी, वानी, ससौ, सँ, साव, हाथाळी, सालै, सीठ, सहनाँण, सख्या, सोहरा, सँण, साटै, सँजळ, स्यावज, सुवटा, सेती, सलिता, सँगाती, हुता, हूँणा, होसी, हदा, हूँ, हेला इत्यादि, इत्यादि ।

इनके अतिरिक्त कारकों तथा क्रियाओं के राजस्थानी रूप तो जगह जगह पर भरे पड़े हैं ।

अब हम अपने प्रकृत विषय पर आते हैं । ढोलामारु काव्य की भाषा के स्वध में यह ध्यान रखना चाहिए कि वह एक काल की अथवा एक कवि की कृति नहीं है । इसलिये इस काव्य की भाषा भी सर्वत्र एक सी नहीं है । कहीं प्राचीनता है तो कहीं नवीनता । कहीं पुरानी वर्तनी है तो कहीं नवीन । इसी प्रकार गुजराती, सिंधी, पंजाबी आदि के प्रयोग भी यत्रतत्र पाए जाते हैं । राजस्थानी में भी कहीं मारवाड़ी रूप हैं तो कहीं ढूँँटाड़ी, कहीं जैसळमेरी हैं तो कहीं माळवी । खड़ीबोली और ब्रज के रूप भी एक आध जगह पाए जाते हैं ।

इस समस्त भाषाभेद का कारण उसकी सर्वप्रियता और निरंतर सुनने-सुनानेवालों की जवान पर रहना ही है । इन लोगों के हाथों में पड़कर बहुत से प्राचीन रूप नवीनता के सँचे में ढल गए । बहुत से प्राचीन दूहे लुप्त हो गए तथा नए दूहे जुड़ गए । पुरानी प्रतियों में इतने दूहे नहीं मिलते जितनी बाद की प्रतियों में, यहाँ तक कि कुछ प्रतियों में तो काव्य एव उसकी कथा का रूप ही सर्वथा पलट गया है । सैकड़ों नए दूहे दृष्टिगोचर होते हैं और पुराने दूहे बहुत कम । कई दूहों का रूपांतर इतना अधिक हो गया है कि उनको पहचानना कठिन हो जाता है ।

कवीर के कुछ दूहे ढोलामारु काव्य में प्रायः ज्यों-के-त्यों मिलते हैं । शका हो सकती है कि क्या वे दूहे ढोलामारु में कवीर की रचना से लेकर संमिलित कर लिए गए हैं । ऐसा होना असंभव नहीं । हमारी जो सबसे प्राचीन प्रति है वह १६५१ की है जो कवीर के समय के सौ सवा सौ वर्ष बाद की है । उतने समय में कवीर की कविता का इतना प्रसिद्ध हो जाना कि वह जनसाधारण की जिह्वा पर रहने लगे, असंभव नहीं (आज तो कवीर के सैकड़ों दूहे लोगों की जवान पर हैं) । उधर हमारे कतिपय मित्रों का कहना है कि ये दूहे ढोलामारु के ही हैं और जनसाधारण में प्रचलित थे ।

या तो कवीर उनके द्वारा इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने प्रायः वैसी ही साखियाँ कह डालीं या उनके शिष्यों ने इन दूहों को कवीर की साखियों में मिला दिया । हम दोनों मत ठीक नहीं जान पड़ते । ये दूहे जिन विषयों पर लिखे गए हैं उन पर केवल कवीर ने ही नहीं किंतु अन्य संत कवियों ने भी रचना की है । उनके भाव और शब्द प्रायः परस्पर मिलते हुए हैं । जिस भाव ने ढोलामारु के इन दूहों के निर्माता को प्रभावित किया उसी भाव ने इन सत महात्माओं को भी । यही साम्य का कारण है ।

आगे हम ढोलामारु की मापा का व्याकरण देते हैं ।

(६) ढोला मारु दूहा काव्य का व्याकरण

(१) राजस्थानी की वर्णमाला

(क) स्वर

ह्रस्व—अ इ उ ऋ ॠ ओ

दीर्घ—आ ई ऊ ओ औ औँ ॠँ ॡँ ॢँ

(ख) अतिरिक्त स्वर (जो प्रायः कविता में आते हैं) ह्रस्व—ओँ
औँ

(ग) व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	व॰
श	ष	स	ह	ळ	रु	रु॰	इ॰	ः	;

(१) ओँ=ह्रस्व ओ (या ए) । ओ=ह्रस्व ओ ।

(२) औँ=हिंदी ऐ (जैसे 'औँमा' में) । ॠँ=संस्कृत ऐ (जैसे 'देव' में) ।
ॡँ=ह्रस्व ॠ ।

(३) औ=हिंदी औ (जैसे 'और' में) । औ=संस्कृत औ (जैसे 'कौशा' में) । ॢँ=ह्रस्व औ ।

(४) ॠ=ह्रस्व ॠ ।

(५) व=संस्कृत व और राजस्थानी वृ=राजस्थानी व ।

(६) ळ=मूर्धन्य ल । ढ=ग्रवी ङाड । रु॰=मूर्धन्य रु ।

नोट—ढोला मारु के इस सस्करण में ह्रस्व औ, औ, औ, औ, औ और व को क्रमशः आ, अ, ओ, औ, औ और व (या, व) से ही लिखा गया है ।

(२) उच्चारण

१—छंद की सुविधा के लिये दीर्घ अक्षरों का भी ह्रस्व उच्चारण कई स्थानों पर हुआ है । उदाहरण—

उवै वोल्या सर ऊपरइ थौ कीधी अणुराव ॥५२॥
आसालुधी हूँ न मुइय सजन जंजाळेह ॥२०६॥
सायधण लाल कवाण ज्यउँ ऊभी कड मोड़ेह ॥३५५॥

२—इसी प्रकार एकाध स्थान पर ह्रस्व का दीर्घ उच्चारण भी हुआ है । उदाहरण—

जे जीवन जिन्हौ तणौ तन ही मॉहि वसत ॥२१॥
ऊपर थे बिन्हे चढ्यौ करह कूट किए काज ॥६४४॥

(३) वर्तनी

१—पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में ख सदैव 'ष' से लिखा जाता था । आजकल भी पुराने साक्षर जन ख को बहुधा ष से ही लिखते हैं । उच्चारण को ध्यान में रखकर हमने मूल में सर्वत्र ख कर दिया है ।

२—पुरानी प्रतियों में ड और ङ एक ही प्रकार से लिखे मिलते हैं । हमने जहाँ जो अक्षर होना चाहिए वह कर दिया है ।

३—पुरानी प्रतियों में चद्रविंदु का प्रयोग कभी कभी ही मिलता है । हमने उचित स्थान पर चद्रविंदु कर दिया है ।

४—ढोलामारु की जो प्रतियाँ हमें मिली हैं उनमें काफी समयांतर है, अतः एक ही शब्द कई प्रकार से लिखा मिलता है । हमने अधिकांश में जिस प्रति का पाठ लिया है उसी की वर्तनी को ग्रहण किया है । कई स्थानों पर परिवर्तन भी किया है । वह इस प्रकार है—

(१) समानता रखने के लिये ऐ औ की मात्राओं को अइ अउ में परिवर्तित कर दिया है ।

(२) कहीं कहीं छंद के सुविधानुसार ह्रस्व को दीर्घ या दीर्घ को ह्रस्व कर दिया है ।

(४) लिंग

१—ढोलामारु की भाषा में दो लिंग पाए जाते हैं। नपुंसक लिंग के रूप में एकाध स्थान पर मिलते हैं पर वह पुराना प्रभाव है। वास्तव में नपुंसक लिंग और पुंलिंग में कोई अंतर नहीं है। नपुंसक लिंग के रूपों के कुछ उदाहरण—

पूगळ देश टुकाळ थियुं । २ । (थियुं = थियउ)

ऊ ही लाख पसाउ । ७४ । (ऊ = ओ)

पावच मास प्रगट्टिउं । २५८ । (प्रगट्टिउं = प्रगट्टियउ)

निकस्यू जात न तोहि । ३७३ । (निकस्यू = निकस्यो)

प्रहरै प्रहर ज ऊतरथुं । ५६० । (ऊतरथुं = ऊतरियउ)

२—स्त्रीलिंग बनाने का मुख्य प्रत्यय ई है—

पुत्र—पुत्री

सुंदर—सुंदरी

तण्ड—तणी

हेकलउ—हेकली

३—कहीं कहीं स्त्रीलिंग शब्दों का अंत्य स्वर लुम, और दीर्घ हो तो ह्रस्व, हो गया है—

सुंदरी—सुंदर, सुंदरि

मु धा—मु ध ।

चातृगी—चातृंगि

(५) बहुवचन प्रत्यय

१—आ—ओकारात शब्दों के लिये—

रावळ

रावळउ

परणियउ

}
}

रावळा ३

परणिया १०

२—आँ (अकारात स्त्री० शब्दों के लिये) कोइल—कोइलॉ ट

३—इयाँ (ईकारात स्त्री० शब्दों के लिये) सखी—सखियाँ, २०

सखिए (सवोधन) २६

(६) विभक्ति और कारक

राजस्थानी में लुः विभक्तियाँ और आठ कारक होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—विभक्तियाँ—

स०	विभक्ति	चिह्न	किस कारक मे आती है	हिंदी चिह्न
१	पहली	×	अप्रत्यय कर्ता और अप्रत्यय कर्म	×
२	दूसरी	*	सप्रत्यय कर्ता और संबोधन	ने
३	तीसरी	खूँ आदि†	करण और अपादान	से
४	चौथी	ने आदि	सप्रत्यय कर्म और संप्रदान	को
५	पाँचवीं	मे, पर आदि	अधिकरण	मे, पर
६	छठी	रो (री, रा, रे) आदि‡	संबंध	का (की, के)

२—कारक—

सं०	नाम	विभक्ति
१	कर्ता	पहली, दूसरी, तीसरी
२	कर्म	पहली, चौथी
३	करण	तीसरी
४	संप्रदान	चौथी
५	अपादान	तीसरी
६	अधिकरण	पाँचवीं
७	संबंध	छठी
८	संबोधन	दूसरी§

※ इसके प्रत्यय आगे विकारी रूप शीर्षक के नीचे देखिए ।

† तीसरी से छठी विभक्तियों के चिह्न विकारी रूप के आगे जोड़े जाते हैं । पर कविता में (कभी कभी गद्य में भी) ऐसा नहीं भी होता है और शब्द के सामान्य रूप के आगे ही ये चिह्न जोड़ दिए जाते हैं ।

‡ छठी विभक्ति के चिह्नों में, हिंदी की भाँति, विशेष्य या भेद्य के अनुसार परिवर्तन होता है । पुँल्लिंग एकवचन—रो । पु० बहु०—रा । पु० विकारी रूप—रे । स्त्रीलिंग—री ।

§ ओकारांत शब्द के संबोधन के एकवचन में ओ का आ हो जाता है ।

नोट—उल्लिखित विभक्तियों के अतिरिक्त अन्य विभक्तियाँ भी कभी-कभी आ जाती हैं ।

३—विकारी रूप—

शब्द	लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
ओकारांत	पुं	एक०	अइ, औ, ओ	ढोलइ, खोटइ
,,	,,	बहु०	आँ	खोटॉ
अन्य शब्द	पुं	एक०	×	
अकारांत	पुं	बहु०	आँ	भड़ॉ, समदॉ
आकारांत	पुं, स्त्री०	बहु०	आँ, आवाँ	
ईकारांत	पुं, स्त्री०	बहु०	इयाँ, याँ	राजवियाँ
ऊकारांत	पुं, स्त्री०	बहु०	उवाँ	मारुवाँ

नोट (१) ढोलामारु में स्त्रीलिंग के विकारी रूप और साधारण रूप में कोई भेद नहीं किया गया है ।

(२) राजा वर्ग के शब्दों को छोड़कर बाकी सब आकारांत हिंदी शब्द राजस्थानी में ओकारांत हो जाते हैं ।

४—ढोलामारु के विभक्ति चिह्न—

विभक्ति	चिह्न	उदाहरण
पहली	×	
दूसरी	(देखो विकारी रूप ए, इए इ	सज्जणे, सखिए भुयगि
तीसरी	सँ, सु, सुँ, स्यँ ती, थी हुंती, हूँती आँ	मारवणीसँ, ताहसँ, ढॉभस्यँ नख-ती, हम-थी वयणाँ, हूँछाँ

विभक्ति	चिह्न	उदाहरण
चौथी	इ, अइ, ए, एह ह ने, नै, नइ, नई, नूँ ए अइ रेस	मनइ, प्रेमइ, पागड़इ काँवे, सवरो, नयरोह तनह म्हेनैँ, ढोलइनुँ, राजानूँ, घरे नरवरइ जळ रेस
पाँचवीं	मँ, मै, मँ, मई मइ, महिँ, मँही, माँहि, माँही, मभ्र, मंभ्रि, मँभ्रारि	
छठी	सिर, सिरि इ, अइ अई ह रो रउ, री, रा, रै, रइ को-कउ, की, का, के-कइ-कै दा जी चो-चउ, ची, चा, चइ-चै तणउ, तणी, तणा, तणइ सदउ, सदी, सदा, संदइ हंदउ, हुदउ,	पथ सिर भवि, घरि, देसि, हीयइ, साथइ, करहइ, सासरइ सुपनई, सेजई मनह दई कइ मारूदा म्हाँजा नरवर चउ

नोट—कविता में (और कभी कभी गद्य में भी) शब्द के साधारण या विकारी रूपों से ही विभक्तियों और कारकों का काम निकाल लिया जाता है और विभक्तिचिह्न लुप्त कर दिए जाते हैं ।

(७) सर्वनाम

(१) हूँ = मैं

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	हूँ = मैं, मुझे	हूँ, हम, हैं = हम
दूसरी	मैं = मैं, मैंने, मुझसे	मैं = हमने
तीसरी	मोथी = मुझसे	...
चौथी	मोहि, मैंने, मैंने, मैंने, मुझसे=मुझे	...
छठी	महारु (मारी)=मेरा री मेरो (मेरी)=मेरा री मो, मैं=मम, मेरा री मुझसे=मेरी-री-रे	महारु (मारी)=हमारी री महोरु (मारी)=हमारी री हमारु (हमारी)=हमारी री महोनी=हमारी अमहीरु=हमारे (विकारी) अमहीणी=हमारी अमहो=हमारा-री रे

(२) तू = तू

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	तू=तू, तुझे	थे, तुम = तुम थे, राज, राजि = आप
दूसरी	तई=तूने, तुझसे, तेरा	थॉ=आपने, तुमने
तीसरी	तुमझ=तुझसे	...
चौथी	तोनइ, } =तुझे तोनूँ, तोइ } तोहि=तुझे, तुझमे तुमझ=तुझे	...
छठी	थारउ (थारी, थारा) =तेरा (तेरी, तेरे) थाहरइ } =तेरे तोरइ } तुझ, तुमझ=तेरा, री, रे	थॉरउ (थॉरी, थॉरा)= आपका इ० तुम्हारउ (री, रा) तुम्हारा इ० थॉकउ (की-का) = आपका इ० थॉके=आपके (विकारी)
विकारी रूप	तो = तुझे, तुझसे, तेरा इ०, तुझमें	थॉ = आपने, आपको, आपसे, आपमे, आपका इ०

(३) वो सो = वह

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	सो, सउ, स, सोइ, उ, ऊ = वह (पुँ०) सो, से, ते वा, उवा = वह (स्त्री)	सो, से, सू, सोइ, ते, तेह, तिके, वै उवै = वे

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
दूसरी	उण, उणि, उत्राँ तिण, तिणि, तिण्ण तेण, तेणि त्याँ, तियाँ, तीयाँ ता, तइ	उसने उसको = उससे उसमें, उसका
तीसरी	ताहसुँ = उससे	
चौथी		
पाँचवीं	तिणपइ = उसपै	
छठी	उणरउ = उसका तास } तासु } = उसका तसु }	तिणका ताँहका, तिहाँका } = उनका त्याँहीकइ = उन्हींके (विकारी)

(४) ओ = यह

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	अउ, ओ यो, ई, ए, आ } = यह (पुं०) आ, ए, एह = यह (स्त्री०)	अइ, ए, एह = ये
दूसरी	इ ण, इणि एण, अण एह	इसने, इसको, = इससे, इसमें इसका इ०
चौथी	यहु = इसको	...

(एकवचन की भाँति)

(५) जो, जको = जो, जौन

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	जो, जउ, ज्यउ जे, जिको } = जो (पुं०) जो, जउ, जे, जिका = जो (स्त्री०)	जे, जिका, ये = जो
दूसरी	जिण, जिणि, जेण, जाँ, ज्याँ, ज्याँह, } जिसने जाँह, जे } = जिसको, जिससे, जिसमे, जिसका,	(एकवचन की भाँति)
चौथी		जिणनूँ = जिनको
छठी	जास = जिसका जिणरो इ० } = जिसका जिणको इ० } ज्याँरो इ० ज्याँहीकइ = जिसके (वि० रूप) जिए = जिसके	जिन्हॉ-तराँ = जिनके जिणको इ० } = जिनका इ० जाँहको इ० } ज्याँको इ०

(६) कृण = कौन

विभक्ति	उदाहरण	
पहली	कुँण, कूण, कवण, कौण, को, का (स्त्री०)	} = कौन
दूसरी	किण, किणि, केण, कवण, किस	} किसने, किससे, किसको = किसमें, किसका इ०

(७) कोई

विभक्ति	उदाहरण
पहली	कोई, कोई, को, कउ, कोईक, काइक (स्त्री०), काइ (स्त्री०)
दूसरी	काद, किहीं, कहीं = किसी ने, किसी से इ०

(८) आप = आप (स्वयं)

आपण = अपन, हम लोग

आपणउ = अपना

मोहि = स्वय (मे)

(९) सार्वनामिक विशेषण

एतउ, केतउ, जेतउ, नेतउ = इतना, कितना, जितना, तितना । इवइउ-एवइउ = ऐसा, इतना । अइसउ, ऐसउ = ऐसा । एइउ, एइवउ = ऐसा । अइइउ = ऐसा । इसउ = ऐसा । अपणउ = अपना । सो = समान । सगळउ, सह, सवि, सउ, नौ, सव्व, सव = सब । का, कहा = क्या । कछु = कुछ । किउ = कुछ । कोई = क्या, कुल । के = कई ।

(८) क्रिया रूप

(१) इस काव्य की भाषा में निम्नलिखित आठ काल पाए जाते हैं—

(१) सामान्य वर्तमान, (२) तात्कालिक वर्तमान, (३) संभाव्य भविष्यत्, (४) सामान्य भविष्यत्, (५) प्रत्यक्ष विधि, (६) परोक्ष विधि, (७) सामान्यभूत, (८) हेतु हेतुमद्भूत ।

(२) सामान्य वर्तमान के रूप प्रायः संभाव्य भविष्यत् जैसे ही हैं; केवल वहाँ वर्तमान कृदंत से बने सामान्य वर्तमान रूप आए हैं वहाँ फर्क पड़ता है ।

(३) तात्कालिक वर्तमान केवल दो तीन जगह आया है—

(१) भूळ रहियाह = भूळ रहे हैं ।

(२) फळि रहउ = फल रहा है ।

पुरुष	वचन	प्रत्यय	हुवर्णो	हुवर्णा	अक्रमक	सकर्मक	आवर्णो	जावर्णो	देवर्णो
मध्यम	एक०	(अन्यपुरुष की भाँति)	हुई	.	गाजइ	बुइइ
	बहु०	अउ	हुवउ	हुवउ	जागउ	जाणउ	आवउ	जावउ	
उत्तम	एक०	ऊँ	हुँ (?)	हुँ (?)	जायूँ	जायूँ	आऊँ	जाऊँ	दिऊँ, दिऊँ
	बहु०	आँ	हूँ	हूँ	जागूँ	जाणूँ	आवूँ	जावूँ	देवाँ, द्याँ

(५) सामान्य वर्तमान के वर्तमान कृदन्त से बने रूप—

प्रत्यय	उदाहरण
अत	वसत, करत, बाढत
अंत	काढत, आवत, लहंत, चढंत
अति	लियति, गमति, मरहपंति
ती (स्त्री०)	मूकती

(६) सामान्य भविष्य

पुरुष	वचन	प्रत्यय	दुवर्णो	अकर्मक	सकर्मक	आवर्णो	
अन्य		सी		जागसी	जॉणसी	आवसी	आसी
		से		जागसे	जॉणसे	आवसे	आसे
		इसी		जागिसी	जॉणिसी	आविसी	आइसी
	एक०	एस		जागस	जॉणस	आवस	आएस
		एसि		जागसि	जॉणसि	आवसि	आएसि
	और	एसी		जागेसी	जॉणेसी	आवेसी	आएसी
		सइ		जागसइ	जॉणसइ	आवसइ	आइसइ
		स्यइ		जागस्यइ	जॉणस्यइ	आवस्यइ	आइस्यइ
	बहु०	इस्यइ		जागिस्यइ	जॉणिस्यइ	आविस्यइ	आइस्यइ
		इसइ		जागिसइ	जॉणिसइ	आवेइ	आएइ
	एइ		जागेइ	जॉणेइ	आवेस्यइ	आएस्यइ	
	एस्यइ		जागेस्यइ	जॉणेस्यइ	आवेस्यइ	आएस्यइ	
							जइसइ

	एक०	द्वस हसु, (बाकी प्रत्यय अन्य पुरुष की भाँति)	द्वस	पाठविसु	देइस
मध्यम	बहु०	स्यउ		जागस्यउ	जाँणस्यउ	आवस्यउ	आइस्यउ	
		इस्यउ		जागिस्यउ	जाणिस्यउ	आविस्यउ	आइस्यउ	
उत्तम		इसूँ		जागिसूँ	जाँणिसूँ	आविसूँ	आइसूँ	
		इस्यँउँ		जागिस्यँउँ	जाँणिस्यँउँ	आविस्यँउँ	आइस्यँउँ	
		इसिसि		जागिसिसि	जाँणिसिसि	आविसिसि	आइसिसि	
		एस		जागेस	जाँणोस	आवेस	आएस	
		एसिसि		जागेसिसि	जाँणोसिसि	आवेसिसि	आएसिसि	
		ऐस्यँउँ		जागेस्यँउँ	जाँणोस्यँउँ	...	आएस्यँउँ	
	स्यँ		जागस्यँ	जाँणस्यँ	आवस्यँ	आइस्यँ		
	इस्यँ		जागिस्यँ	जाँणिस्यँ	आविस्यँ	आइस्यँ		
	एस्यँ		जागेस्यँ	जाँणोस्यँ	आवेस्यँ	आएस्यँ		
	एस		जागेस	जाँणोस	आवेस	आएस		

(७) सामान्य भविष्य का एक दूसरा रूप लो प्रत्ययवाला भी प्रयुक्त हुआ है। संभाव्य भविष्यत् के आगे नीचे लिखे प्रत्यय लगाने से यह बनता है। इसमें लिंग भेद होता है।

लिंग	वचन	उदाहरण
पुंलिंग	एक० लो	जाणइलो = वह जानेगा
	बहु० ला	जाणइला (जाणयला) = वे जानेंगे
स्त्रीलिंग	एक० ली	मिल्लूली, मिलउँली = मिल्लूगी दिउँली = दूँगी
	बहु० ल्यो	मिललौल्यो = हम मिलेंगी

(८) प्रत्यक्ष विधि—

मध्यम पुरुष	प्रत्यय	उदाहरण
एक०	अ	ल्याव, जाण, दे, आव
	इ	छौँडि, लज्जि, गज्जि, आवि, आ (आय)
	ई	
	ए	कहे (कहइ), आखे
	एह	करेह
बहु०	अउ	विचारउ, जावउ, करउ, दउ (= दो), हुअउ
	इयउ	लियउ

(६) परोक्ष विधि

प्रत्यय	उदाहरण
ए	कहे, आखे, आए
इया	कहिया
इयाह	कहियाह, रहियाह
इयाँह	दाखनियाँह
इय्यउ	कहिय्यउ

(१०) 'चाहिण' बोधक विधि

प्रत्यय	उदाहरण
इयइ	मेल्लियइ, छडियइ, जाइयइ
इजइ	राखिनइ
ईयइ	...
ईजइ	होहीनइ, कीनइ, पाळीनइ,
इजइ	...

(१२) सामान्य भूत के अनियमित रूप

(१) सीधे संस्कृत या प्राकृत के भूत कृदत से बने हुए—

उपजणो—उपज्जउ (उत्पन्न) । पहुँचणो—पहुत्त, पहुँतउ (प्रभूत) ।
 देवणो—दीध, दीधउ, दीन्ह, दीन्हउ (दिरण) । लेवणो—लिद्ध, लोध,
 लध्ध, लीधउ, लीन्ह, लीन्हउ । पीवणो—पीध, पीधउ । खावणो—खध्ध,
 खाधउ । करणो—किध्ध, कीध, किध्धउ, कीधउ, कीन्ह, कीन्हउ, किय,
 कियउ, कीयउ । देखणो—दिट्ठ, दीठ, दिट्ठउ, दीठउ । वँधणो—वध्ध ।
 सिद्ध हुवणो—सीधा । मरणो—मुयउ, मुई । दाधणो—दध्ध । सूवणो—
 सूती । रोवणो—रूनी ।

(२) आणी प्रत्यय लगाकर—

सँक्रणो—सँकाणी : विकणो—विकाणी । भरणो—भराणी ।
 लाजणो—लजाणी । उडणो—उडाणी । सम (व) णो—
 समाणी । कुँमलॉ (व) णो—कुँमलॉणी ।

(३) अन्य—

वृही (वहणो) । गाज (गाजणो) । फट्टि (फट्टणो) । विण्णट्टा
 (स० विण्णट्ट) । पयट्ट (स० प्रविट्ट) ।

(१३) हेतुहेतुमद्भूत

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
पुं०	एक०	तउ	रहतउ
	बहु०	ता	हुँता

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
स्त्री०	एक०	ती	जोती, देखती
	बहु०	अती	
पुं०	एक०	अत	करत, रहंत
	बहु०	अति	रहति, हुति, जति, पसरति

(१४) कर्मवाच्य, भाववाच्य

प्रत्यय

उदाहरण

(१) ईज

चढीजइ = चढा जाता है ।

लीजइ = ली जाती है ।

(२) इज

कहिजइ = कहा जाता है ।

अन्य प्रत्यय—इज्ज, ईय, इय (छुडियइ, मेलिहयइ) ।

नोट—कर्मवाच्य और चाहिए अर्थ की विधि के रूप एक से होते हैं ।
पालीजइ = पाला जाता है, पाला जाय और पालना चाहिए (हिं० पालिए) ।

(१५) सकर्मक और प्रेरणार्थक बनाना

(क) अकर्मक से सकर्मक

(१) आव प्रत्यय से—जागणो—जगावणो

मिळनो—मिळावणी

(१) आड़ प्रत्यय से—जीवणो—जीवाड़नो

- (३) धातु के उपात्य स्वर में परिवर्तन—बळनो—बाळनो,
 ऊतरणो—ऊतारणो
 उतरणो—उतारणो
 चढणो—चाढणो
 मिळनो—मेळनो
- (४) धातु बदलकर—
 दूटणो—तोड़नो
- (५) विना परिवर्तन के—
 भरणो—भरणो
- (६) अन्य रूप—
 जागणो—जागवणो
 दहणो—दाहवणो

(ख) प्रेरणार्थक

- (१) आब प्रत्यय से—काटणो—कटावणो ।
 मारणो—मरावणो
 आरणो—अ-आणावणो
- (२) आड़ प्रत्यय से—बाँधणो—बाँधाड़नो
 काटणो—कटाड़नो
- (३) धातु के स्वर में परिवर्तन—पीवणो—पावणो ।
- (४) अन्य रूप—देवणो—दिरावणो ।

(६) प्रत्यय

- (१) वर्तमान कृदन्त
- ^१
-

पुं० एक	अतउ	पड़तउ
	अतउ, अदउ	लवंतउ, चलतउ, उडदउ
	अत	वेळत
	अत	
	ऐत	वूठैतौ
पुं० बहु०	अता	मनगमता, जावता
	अताँ	नीगमताँह
	अंता	ऊसारता, भमंता
	अत	
	अत	

१ वर्तमान कृदन्त और हेतुहेतुमद्भूत के प्रत्यय एक से होते हैं ।

स्त्री०	अती	विललती
	अदी	चाहदी
	अती	वळती, देखती
	अत	
	अत	

(२) भूत कृदन्त^१—

पुं० एक०	अउ	लागउ, वूठउ, विलखउ
	यउ	आयउ,
	इयउ	कूटियउ, ऊमाहियउ
पुं० बहु०	आ	विलक्खा, अदिठा, सूका
	या	पिया
	इया	भरिया
स्त्री० एक०	ई	वियापी, मॉगीतॉगी
बहु०	इयॉ	सामुहियॉ, उपराठियॉ

(३) कृदन्त क्रियाविशेषण—

प्रत्यय—या, इया—	कह्यॉ = कहने पर, परण्यॉ, कियॉ, कुड़ियॉ
ए	कहे = कहने से
अतइ	वरसतइ=वरसते हुए, आवंतइ, उगतइ ।

(४) तुमर्थ प्रत्यय—

अण—बोलण (=बोलने को), मिलण	
इवा } —कहिवा (= कहने को ।	
इवा }	

(५) पूर्वकालिक क्रिया—

इ—जागि, चढि, आवि, आइ, देइ, लइ, हइ, होय, हुइ
ई—लधी, उक्कबी, पूछी करी

१ भूत कृदन्त और सामान्य भूत के प्रत्यय एक के होते हैं । अनियमित रूपों के लिये ऊपर सामान्य भूत के रूप देखो ।

ए—लगे

अ—कर

इन प्रत्ययों के आगे कै, कइ, करि, नइ, नई (= कर, करके) प्रत्यय भी प्रायः जोड़ दिए जाते हैं ।

(६) वाला अर्थ के प्रत्यय—

अण—भरण, पखालण, रंजण, उल्हवण

अणउ—रञ्जणा (ऋ०)

इस प्रत्यय के आगे कहीं कहीं 'हार' प्रत्यय जोड़ दिया गया है; जैसे—
भूक्रीळणहार ।

(७) कुछ अन्य कृत प्रत्यय—

१—अण = ना

हल्ल—हल्लण (चलना),

वल्ल—वल्लण (चलना, जाना)

२—आमणउ = आवना

सोह—सुशामणउ

वध—वधामणउ

३—आवउ = आवा

सोह—सुहावउ

४—आळू = आळू

वधो—वधाळू

५—हार = हार, वाला

भूँ वणो—भूँ वणहार

वळनो—वळणहार

(८) कुछ तद्धित प्रत्यय

१—इउ (डी)—स्वार्थ में और अनादर तथा ऊनतासूचक

सदेसउ—सदेइउ

गोरी—गोरडी

गाम—गामइउ

कंउ—कंउडी

२—लउ—इउ की मॉति

दीवउ—दीवलउ

करहउ—करहलउ

३—टी—डी की भौँति

लीह—लीहटी

४—एरउ—स्वार्थ में

वेगउ—वेगेरउ

आघउ—आघेरउ

भलउ—भलेरउ

५—एरउ—वाला, का ।

पर—परेरउ (पर का)

६—पण = पन

वाळा—वाळापण

७—आपउ = आपा

तरण—तरणापउ (तरणपन)

८—आइत=वाला

रळी—रळियाइत

९—वत = वाला

जोवन—जोवनवत

१०—लउ = वाला, का

आगे—आगलउ

पीछे—पाछलउ

(१०) अन्यय

(१) क्रियाविशेषण

किह, किहाँ = कहाँ । केथि = कहाँ । काँही = कहीं । इहाँ, एथि = यहाँ ।
अउथि, तिहाँ = वहाँ । उवाँही = वहीँ । जेहँ, जिह, जिहाँ = जहाँ । ऊपरि =
ऊपर । परइ = परे । दूर, दूरि = दूर ।

कद, कदि, कदी, कदे = कन । अब, हिव, हिवइ, अवरॉह = अब । जव,
जाँण = जव ।

आज, अज = आज । अनइ, अजे = अभी । काल्ह = कल । राति = रात ।

दो० मा० दू० १२ (११००—६२)

राति दिवसि = रात दिन । नित, नितु, नित्त = नित्य । पाछइ, पाछे = पीछे, वाद में । वळि, वळे, भी, फिरि = फिर । पुणोवि = पुनरपि, फिर भी ।

इम, इमि, एम, यूँ = ऐसे, यों । जिम, जिमि, जेम = जैसे । जिउँ, व्यउँ द्यु, व्यूँ, जूँ = ज्यों । किम, किमि, केम = कैसे । किउँ, क्यउँ, क्यूँ = क्यों । किउँकरि = क्यौंकर, कैसे । ज = ताकि । जेण, जेणि = जिससे, जिस कारण से । केण, केणि = किसलिये । तेण, तेणि, तिणि = इसलिये । तिम = त्यों, त्योंही । किमही = किसी तरह ।

जे, जै, जइ, जो, जउ, जऊ, जय = यदि, जो । तो, तउ, तु, तुँ, त = तो । तोइ = तो भी । पिण = भी । ही, हीँ, हि, हूँ, ह, इ, ई, य = ही । न, नहि, नहिँ, नही, नहीँ, नाही, नधि, नव, ना, नि, ण, म = न, नहीं । म, मा, मत, मति, जिन = मत । मातही, मतिहि, मति = कहीं न ।

अधिक, बहु = बहुत । जॉण, जॉणि, जॉणे, जॉणक = मानो । नहिँ = मानो । किर = किल, निश्चय ही, मानो । नीठ = कठिनता से । भटक = तुरंत । भावकि = सहसा । साचेई = सचमुच । अपूठा = वापिस । काठी = मजबूती से । ओळग = अलग, दूर, प्रवास में । रूडा = भले ही, चाहे । अउभरइ = अचानक । खोडी खोडी = धीरे धीरे (?) ।

ज, स, क, इ = जोर देने के लिये, या पादपूर्त्यर्थ, प्रयुक्त होनेवाले अर्थहीन अव्यय ।

(२) संबंधबोधक

मँहि, मँइ, मँहि, मँही, महीँ, मभ्क मभ्कि, मँभार, मँभारि = भीतर, में । भणी = पास, प्रति, लिये, को, से, में, का । सनमुख = सामने । सथ्य, साथि, साथइ = साथ । विन, विना विण = विना । असन्न = पास । ऊपर, ऊपरइ = ऊपर । आगळि = आगे । अतरे = भीतर, में । ओले = आड़ में । कज, काजि = लिये । कन्दे, कन्दइ, कन्हाँ = पास, प्रति, से । कारणइ = कारण, लिये । दूकड़ा = पास । दिस = ओर । नेड़ि = पास । परइ = परे । पछइ = पीछे । पासइ = पास । परि = मँति । भति = मँति । भत्त = मँति । भर, भरि = भर । लग, लगि, लगइ = तक । विच, विचि = बीच । वॉसइ = पीछे । साम्हा = सामने । साटइ = बदले । सिरि = पर । लियइ = लिये, कारण से ।

(३) समुच्चयबोधक

अर = और । ने, नइ, नई, अतइ = और । च = और । भावई = चाहे ।
रूड़ा = चाहे । नवि = नहीं तो । किनॉ = या । का = या तो, या । कइ = या
तो, या । क = कि, या । कि = कि, या ।

(४) विस्मयादिवोधक

रे = रे, अरे । हे = हे । हइ हइ = हे हे, अरे अरे, हाय हाय । हउ हउ =
हो, हो, अरे अरे, हाय हाय । हय हय = हे हे, हाय हाय । रह रह = चुप चुप ।
परिहॉ = पर हॉ, एक अर्थहीन अव्यय जो चाद्रायणा छद के चौथे चरण के
पूर्व जोड़ दिया जाता है ।

वर्तमान संस्करण

इस काव्य का वर्तमान संस्करण निम्नलिखित १७ प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया है।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इस काव्य के चार रूपांतर मिलते हैं जिनमें नवर १ और नवर २ महत्वपूर्ण हैं। रूपांतर नवर १ केवल दूहों में है और उसकी प्रतियाँ हमें वीकानेर राज्य में मिलीं। नवर २ में कुशललाम की चौपाइयाँ भी हैं। इसकी प्रतियाँ हमें विशेषतः जोधपुर से प्राप्त हुईं।

एकाध स्थान को छोड़कर हमने कथानक का क्रम वीकानेरीय क्रम के अनुसार रखा है। वही हमें युक्तियुक्त तथा प्राचीन ज्ञात हुआ।

प्रतियों का विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) रूपांतर नवर १

१—(क) प्रति—यह प्रति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि रूपांतर नवर १ की यह सबसे प्राचीन प्रति है। हमारे संस्करण का मुख्य आधार यही प्रति है। इसका लिपिकाल ठीक निश्चित नहीं पर जिस हस्तलिखित ग्रंथ में यह पाई गई है उसमें इसके पहले और बाद में लिखे हुए ग्रंथों का समय सवत् १७२० के आसपास का है। अतः इसका समय भी सवत् १७२० से १७३० के बीच का है। प्रति विशेष प्राचीन न होने पर भी इसमें पुराना, केवल दूहों का रूप पूरा सुरक्षित है, यही इसका महत्व है। इसकी वर्तनी पुराने ढंग की नहीं किंतु उत्तरकालीन राजस्थानी की है। इसका पाठ बहुत शुद्ध है। इसमें कुल दूहों की संख्या ३६५ है।

इसके विषय में यह ध्यान देने योग्य है कि इसमें धुरसबंध या प्रस्तावना के वे दूहे जो रूपांतर न० २ में मिलते हैं आरम्भ में दिए हुए हैं। बीच में चौपाइयाँ न होने से उनका कथासूत्र बराबर नहीं मिलता।

असली कथा रूपांतर न० १ की भाँति गाहा से ही आरम्भ होती है। इसलिये ये धुरसबंधवाले दूहे असंगत और अस्थानस्थित out of place जान पड़ते हैं।

धुरसंबंध के बाकी दूहे (भ) प्रति में पाए जाते हैं पर वे सब लोगों को याद नहीं थे । कुशललाम को भी केवल वे ही दूहे मिले जो इस (क) प्रति में हैं ।

२—(ख) प्रति—यह प्रति (क) प्रति से बहुत कुछ मिलती है पर कहीं कहीं अंतर है—कुछ दूहे न्यूनाधिक हैं । इसका लिपिकाल सं० १७५० के लगभग है । अक्षर बहुत सुंदर और पाठ शुद्ध है ।

३—(ग) प्रति—इसका लिपिकाल सं० १७५२ है । इसका पाठ साधारणतया शुद्ध है । कथानक में यह अधिकांश में जोधपुरीय कथानक का अनुसरण करती है । पाठ भी जोधपुर की प्रतियों से मिलता है । पर जोधपुरीय प्रतियों की भाँति यह दूहा-चौपाइयों में नहीं, किंतु केवल दूहों में है ।

४—(घ) प्रति—इसका लिपिकाल सं० १८१८ है । इसका पाठ बहुत भ्रष्ट है । यह साधारणतः (ख) प्रति का अनुसरण करती है ।

५—(त) प्रति—इसकी वर्तनी आधुनिक है । इसका लिपिकाल डाक्टर टैसीटरी ने संवत् १७१० से १७२० के बीच में निश्चित किया है ।

उक्त सब प्रतियाँ बीकानेर राज्य के राजकीय पुस्तकालय में वर्तमान हैं ।

६—(भ) प्रति—यह विशेषतः (क) से मिलती है, यद्यपि दूहे न्यूनाधिक हैं । इसका लिपिकाल लिखा नहीं है । पाठ शुद्ध है । इसकी विशेषता यह है कि इसके आरंभ में रूपांतर नं० २ की भाँति धुरसंबंध या प्रस्तावना भी है जो असली कथाभाग से बिलकुल अलग जान पड़ती है । यह धुरसंबंध रूपांतर नं० २ की प्रतियों की भाँति दूहा चौपाइयों में नहीं किंतु केवल दूहों में है । जान पड़ता है कि कुशललाम को ये दूहे पूरे नहीं मिल सके तभी उसने कथासूत्र मिलाने के लिये चौपाइयाँ जोड़ीं । इस धुरसंबंध में कुल १०८ दूहे हैं परंतु बीच का एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से न० ५२ से न० ७६ तक के दूहे नष्ट हो गए हैं । पूरे दूहों का यह धुरसंबंध और किसी प्रति में नहीं मिलता ।

यह प्रति हमें बीकानेर निवासी बाबू जयपालसिंह से प्राप्त हुई ।

७—(न) प्रति—यह केवल दूहों में है परंतु इसका कथानक मुख्यतया रूपांतर नंबर २ से मिलता है । इसका प्रारंभ भी गाहा से नहीं होता । आरंभ में धुरसंबंध है जो केवल दूहों में है परंतु जो (भ) के धुरसंबंध से बहुत कम समानता रखता है । इसमें नए और वाद के जोड़े हुए दूहे बहुत से हैं । इसका लिपिकाल संवत् १७७१ है ।

यह प्रति नागौर (मारवाड़) के एक श्वेतावर जैन उपाधय की निजी ग्रथशाला मे वर्तमान है ।

(२) रूपांतर नंबर २

८—(च) प्रति प्राप्त प्रतियों मे यह सबसे प्राचीन है । इसका लिपिकाल संवत् १६६६ है । इसका पाठ बहुत शुद्ध और वर्तनी प्राचीन तथा उच्चर-कालीन दोनों प्रकार की है, फिर भी प्राचीन वर्तनी की ओर अधिक झुकाव है । इसमें दूहे सब नहीं हैं । बीच बीच में कथासूत्र अनवच्छिन्न रखने के लिये कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं । जो दूहे हमने अन्य प्रतियों से लिए उनकी वर्तनी हमने इसी के अनुरूप कर दी है । इसके बीच के २५ से ३० तक के ६ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं ।

यह प्रति जोधपुर की सुमेर-पब्लिक-लाइब्रेरी मे वर्तमान है ।

९—(च) प्रति—यह (च) से मिलती हुई है पर नए दूहे भी बहुत से हैं । इसका पाठ शुद्ध है । इसका लिपिकाल स० १७८१ है ।

यह प्रति जोधपुर के पुस्तकप्रकाश नामक राजकीय पुस्तकालय मे वर्तमान है ।

१०—(य) प्रति—यह (च) से मिलती जुलती है । इसका पाठ शुद्ध है । लिपिकाल नहीं दिया गया है पर वर्तनी आदि को देखते हुए स० १७०० के आसपास की होगी ।

यह प्रति श्रीकानेर के रॉगड़ी नामक मुहल्ले के बड़े जैन उपाधय के महिमा-भक्ति-भंडार मे वर्तमान है ।

इस रूपांतर की अन्य प्रतियाँ निम्नलिखित हैं—

११—(छ) प्रति—यह (च) से नकल की गई जान पड़ती है पर इसका पाठ महाभ्रष्ट है । सपादन के लिये यह किसी काम की नहीं ।

१२—(ठ) प्रति—यह बहुत आधुनिक है ।

१३—(द) प्रति } —ये दोनों भी बहुत आधुनिक हैं । इनमे
१४—(घ) प्रति } सैकड़ों दूहे नए हैं ।

(३) रूपांतर नंबर ३

१५—(ङ) प्रति—यह प्रति अधूरी है । इसका आरंभ का बहुत सा भाग नष्ट हो गया है ।

१६—(ट) प्रति—यह भी विशेष प्राचीन नहीं ।

(४) रूपांतर नंबर ४

१७—(म) प्रति—यह प्रति गुजराती में आनंद काव्य महोदधि, भाग ७, नामक पुस्तक में छप चुकी है। इसका लिपिकाल स० १८०१ है। पाठ बहुत अशुद्ध है।

विशेष—इस संस्करण में केवल (क, ख, ग, च, ज, झ) प्रतियों के ही पूरे पाठांतर लिए गए हैं। अन्य प्रतियों के विशेष महत्त्वपूर्ण न होने से उनके केवल महत्त्वपूर्ण पाठांतर ही लिए गए हैं। (थ) प्रति के—महत्त्वपूर्ण होने पर भी, देर से मिलने के कारण—सब पाठ नहीं लिए जा सके।

इस संस्करण की वर्तनी हमने (च) प्रति के अनुसार सर्वत्र प्राचीन रखी है। जो दूहे प्राचीन वर्तनी में नहीं मिले उनकी वर्तनी भी प्राचीन कर दी गई है। छद् की मात्राएँ पूरी रखने के लिये आवश्यकतानुसार दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया गया है (उस समय भी वह बोला ह्रस्व ही जाता था पर लेखक लोग प्रमाद एवं प्राचीनता प्रेम के कारण दीर्घ ही लिखते रहे)। ष अक्षर को उच्चारण के अनुसार सर्वत्र ख कर दिया गया है। पाठांतरों में ये परिवर्तन नहीं किए गए हैं।

नोट—यह संस्करण सब छप जाने पर और प्रस्तावना लिख जाने के बाद रूपांतर नं० २ की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रति प्राप्त हुई। अब तक प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है। इसका लिपिकाल सं० १६५१ है। खेद है कि हम इस प्रति का उपयोग नहीं कर सके। आगामी संस्करण में इससे लाभ उठाया जायगा और परिशिष्ट में इसे उद्धृत कर दिया जायगा। [यह प्रति (च) और (थ) प्रतियों से बहुत अधिक समानता रखती है और पाठ में बहुत ही कम स्थानों पर यत्किंचित् भेद पाया जाता है।]

सहायक पुस्तकों की सूची

कोष

- (१) हिंदी शब्दसागर (नागरीप्रचारिणी सभा, काशी) ।
 (२) हरगोविंददास सेठ—पाइअ-सद्-महएणओ, प्राकृत का वृहत्
 कोष ।
 (३) आपटे—संस्कृत अंगरेजी कोष ।
 (४) कविराज मुरारिदान—डिंगळकोष (रगनाथ प्रेस, वृंदी) ।
 (५) पाइअलच्छी नाममाला नामक प्राकृत कोष ।

अन्य पुस्तकें

- (१) रामचंद्र शुक्ल—जायसी ग्रथावली ।
 (२) श्यामसुंदरदास—कवीर ग्रथावली ।
 (३) बाबूराम मिश्र—विद्यापति की कीर्तिलता ।
 (४) मुनि सपतविजय—आनंद काव्य महोदधि, मौक्तिक ७ (गुजराती) ।
 (५) मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ, भाग १
 (६) डाक्टर पी० गुणे—भविस्सयत्त कहा ।
 (७) हरप्रसाद शास्त्री—बौद्ध गान ओ दोहा ।
 (८) मुनि जिनविजय—प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ ।
 (९) केशव हर्षद ध्रुव—पंदरमा शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य ।
 (१०) पी० एल० वैद्य—जसहर चरिउ (कारंजा जैन सीरीज) ।
 (११) „ „ —हेमचंद्र का प्राकृत व्याकरण ।
 (१२) प्रो० हीरालाल जैन—नायकुमारचरिउ ।
 (१३) „ „ —सावय धम्म दोहा ।
 (१४) मुनि जिनविजय—कुमारपाल प्रतिबोध ।
 (१५) „ „ —प्रबंध चिंतामणि ।
 (१६) गौरीशंकर ओभा—राजपूताने का इतिहास ।
 (१७) „ „ —टाड राजस्थान ।

(१८) रामनारायण दूगड और ओम्भा—मुँहणोत नेणसी की ख्यात,
भाग १—२ ।

(१९) महाराज जगमालसिंहजी, ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण
पारीक—बैलि क्रिसन रुकमणीरी राठोड़राज प्रिथीराजरी कही (हिंदुस्तानी
एकेडेमी, प्रवाग) ।

(२०) नारोत्तमदास त्वामी—राजस्थान रा दूहा (पिलाणी राजस्थानी
सीरीज) ।

21. F. J. Child—English & Scottish Ballads.
22. Sargent & Kittredge—F. J. Child's
English & Scottish Ballads, Students'
Cambridge Edition (Harrap).
23. T. F. Hendersom—The Ballad in Litera-
ture (Cambridge Manual Series).
24. L. Abercrombie—Essay on Epic (Art &
Craft Series).
25. F. Sidgwick—Essay on Ballad (Art &
Craft Series).
26. Article on Epic in Encyclopaedia Brita-
nnica.
27. Article on Ballad in Encyclopaedia
Britannica.
28. Dr. L. P. Tessitori—Progress Reports on
the Work done in connection with the
Bardic & Historical Survey of Rajputana
for the years 1914 to 1918 (Published
by the Asiatic Society of Bengal.)

पत्रिकाएँ

- (१) सुधा ।
- (२) वीणा, भाग १, अंक ४ (पौष १९८४) ।
- (३) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, में श्री चंद्रधर गुलेरी का पुरानी
हिंदी नामक निबंध ।

- (४) जैन-साहित्य-संशोधक, भाग २ ।
(५) वाक् सौंदर्य (गुजराती)—संवत् १९७३ ।
(६) साहित्य (गुजराती)—सन् १९१४-१९१५ ।
(७) लीडर (अँगरेजी)—५ एप्रिल सन् १९३१ का अंक ।
(८) मॉडर्न रिव्यू (अँगरेजी)—एप्रिल सन् १९३१ का अंक ।
(९) हिंदुस्तानी, भाग ४ अंक (अक्टूबर १९३४), में नरोत्तमदास स्वामी द्वारा लिखित डिंगल और काव्यदोष नामक निबंध ।

पुस्तिकाएँ, विवरण इत्यादि

- (१) विश्वेश्वरनाथ रेड—ढोला मारवण की कथा का और उसके आधार पर बने चित्रों का खुलासा (जोधपुर) ।
(२) रामकर्ण आसोपा—एकादश हिंदी साहित्य संमेलन का कार्य विवरण, भाग २, में डिंगल कविता नामक निबंध ।
(३) मुंसिफ देवीप्रसाद—गोविंद गिल्लाभाई के साथ ढोला मारवणी की कथा के संबंध में पत्रव्यवहार (हस्तलिखित) ।
-

मूल पाठ

(हिंदी अनुवाद और पाठांतर सहित)

ढालामारुग दूहा

(कथारंभ)

गाहा

पूगळि पिंगळ राऊ, नळ राजा नरवरे नयरे ।
अदिठा दूरिठा ये, सगाई दईय संजोगे ॥१॥

दूहा

पूगल देस दुकाळथियुं, किणहीं काळ विसेसि ।
पिंगळ ऊचाळउ कियउ नल नरवरचइ देसि ॥२॥
नळराजा आदर दियउ, जउ राजवियौ जोग ।
देस वास सवि रावळा, अइ घोड़ा अइ लोग ॥३॥

१—पूगल नगर में पिंगल और नरवर नगर मे नल राजा (राज्य करते) थे । (यद्यपि) एक ने दूसरे को नहीं देखा था और दूर दूर रहते थे (फिर भी) दैवयोग से (उनमे) संबंध हुआ ।

२—पूगल देश में किसी समय विशेष मे अकाल पड़ा । (इसलिये बाध्य होकर) राजा पिंगल ने नरवर के राजा नल के देश को प्रयाण किया ।

३—राजा नल ने (उनका) ऐसा आदर किया जो राजाओं के योग्य हो और उनके देश में निवास (के लिये) महल, घोड़े और नौकर चाकर आदि) सब दिए ।

१—पूगळ (क. ख. ग) । नर (ख) । नयवरे (ख) नलवरे (ठ) । दिठदूरे (ग) दुरिठा (घ. ठ) दूरठाय (ऋ) । सगाई । दइय । देव (ग) देह (ठ) । संयोगे (घ) ।

२—पुंगळ (ठ) । थयौ । किणहीं (ग) । विसेसि (ख) । ऊचाळा (क. ठ) । कीया (क. ठ.) । नर (ग) । चें (ठ) । देस ।

३—जियुं राजा=जउ राजवियौ (ठ) । सहि (क. घ. ठ) । सहु (ख) । अरे । अरे (घ) । वै=अइ (घ) । लोक (ग. घ) ।

(ढोलाढारुढा-विवाह)

नरवर नळराजा तरण्ट, ढोलढ कुँवर अनुप ।
 राँणी राउ पिंगळ तरणी, रीढी देखे रूप ॥४॥
 पिंगळ पुत्री पढमिणी, ढारवणी तिणि नाँढ ।
 जोढी जोइ विचारियढ, धन विघाता काँढ ॥५॥
 सारीखी जोढी जुढी, आ नारी अउ नाह ।
 राँणी राजासुँ कहइ, ढीजइ अउ वीढाँह ॥६॥
 राजा राँणीनुँ कहइ, वात विचारउ जोइ ।
 आज विखइ चाँ दीकरी, हाँसउ हसिसी लोइ ॥७॥

४—नरवर के राजा नल के ढोला नामक अनुपढ कुढार था । राजा पिंगल की रानी उसके रूप को देखकर रीढ गई ।

५—पिंगल के एक पाँझनी कन्या थी । ढारवणी उसका नाम था । (उसकी और ढोला की अनुरुप) जोढी देखकर (रानी ने) विचारा कि विघाता की यह रचना वन्य है ।

६—रानी राजा से कहती है—यह अनुरुप जोढी वनी है—यह वधु और वह वर । वह विवाह कीजिए ।

७—(उत्तर में) राजा रानी से कहता है—देखढालकर यह वात विचारो । आज विपत्ति के समय में (यदि) कन्या को दें तो लोग हँसी करेंगे ।

४—नळवर (ग. व) । तरणै (क) । ढोलौ (ग) ढोलो (व) । कुवर (क. ग) कुढार (क) । राँणी (क. ख. ग. व) । राव (ख. ग.) राय (उ) राणी पिंगल रावरी (ट) । देखे रीढी (क) सुदेखे रीढी (व) रीढे देखी (क) देखै रीढी ।

५—पुत्री (क. व) । पढमिणी (ग) ढारवणि (ठ) । इण (ग. व) । तिण (क) तिणै (ठ) । तय ढारवणी (ट) । देख=जोइ (ट) । विचारिज्यौ (क) निढारियो (व) विसार कर (ट) । धन्य (ख) धन (ग. व) ।

६—ऊ=अउ (क. ख. क. ठ) पइ (ग) । वीवाह (क. व) वैढाँहि (ग) ।

७—राणी राजा (ग) । सु (क. ख. ग. घ. ट) सुँ (ग) । विचारी (क. व. ठ) विचारे (ख) । जोय (ट) । हसौ (व) । हससी (ग) । लोक (व) ।

श्रंभ तजइ नहि कोइलौ, सरवर सालूराह ।
 राज हिवइ मा पॉतरउ, आ धण घउ अवरॉह ॥८॥
 ज्युँ थे जाणउ त्युँ करउ, राजा आइस दीध ।
 रॉणी राजानूँ कहइ, ओ म्हाँ नातरउ कीध ॥९॥
 ढोलउ मारू परणिया, वरदळ हुवउ उछाह ।
 आ पूगळचा पदमिणी, अउ नरवरचउ नाह ॥१०॥
 पिंगळ पूगळ आवियउ, देसे थयउ सुगाळ ।
 तेणि न राखी सासरइ अजे स मारू बाळ ॥११॥

८—(रानी कहती है—) कोयलें आम्र वृक्ष को नहीं छोड़ती और मेंढक सरोवर को नहीं छोड़ते । हे राजन्, अब पागलपन मत करो, यह कन्या दूसरों को दो ।

९—राजा ने आज्ञा दे दी कि जैसा तुम (उचित) समझो वैसा करो । (इस पर) रानी राजा से कहती है कि हमने यह सव्रध किया ।

१०—ढोला और मारू का परिणय हुआ । विवाह उत्सव धूमधाम से हुआ (या, दो श्रेष्ठ कुलों में संबंध हुआ)—यह पूगल की पत्निनी है तो वह नरवर का अविपति ।

११—राजा पिंगल पूगल को लौट आया । देश में सुकाल हुआ । अभी तक मारवणी बालिका ही है (यह समझकर) उसे ससुराल में नहीं रखा ।

८—कोइली (क. ठ) काइली (घ) । सालूराह (ख) । मत राजा थे पातरौ (ख) मत राजा ये पंतरौ (ग) मत राजा ये पतरै (घ) थे राजा मत पांतरौ (ऋ) धन (ग) दै (घ) दै (ठ) ।

९—ज्ये (घ) । आदेश (क) आहिस (ग) आदैस (घ) । दिध (ग) । सूँ=नूँ (क. ख. ग. घ) । राजासूँ राणी (घ) नातौ (ख) । किध (ग) ।

१०—हूवौ (ख) हुआ (ग) । पिंगळ (क) । पदमणी (ग. घ) । यो=अउ (घ) ।

११—पुंगळ=पूगळ (ठ) । आवियो (क. घ) । आवियै (ख. ग) । हुआ (क) हुआ (ग) हूवौ (घ) । सुकळ (क. ख. घ) । तेण (क) तेणै (ग) तिण (घ) । देखे (क. ख) दिखै (घ)=अजे स ।

ढो० मा० दू० १३ (११००-६२)

(मारु का स्वप्न में पतिदर्शन और विरहाकुलता)

जिम जिम मन अमले किअइ, तार चढती जाइ ।
 तिम तिम मारवणी तणइ, तन तरणापर थाइ ॥१२॥
 हस चलण, कदळीह जय, कटि केहर जिम खीण ।
 मुख सिसहर खंजर नयण, कुच श्रीफल, कँठ वीण ॥१३॥
 असइ आरखइ मारुवी सूती सेज विछाइ ।
 साल्हकुंवर सुपनइँ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ॥१४॥
 उलवे सिर हथ्यडा, चाहंदी रसलुध ।
 विरह महाघण उमटथउ, थाह निहाळइ मुध ॥१५॥

१२—ज्यों ज्यों मन अधिकार जमाता हुआ ऊँचा चढ़ता जाता है
 त्यों त्यों मारवणी के तन में यौवन प्रकट होता जाता है ।

१३—मारवणी की चाल हंस की जैसी, जघाएँ कदली (के खंभ)
 जैसी, कटि सिँह की जैसी जौण, मुख चंद्रमा जैसा, नयन खजन जैसे, कुच
 श्रीफलों के सदृश और कठ वीणा के समान (मनोहर) हो गए ।

१४—ऐसी (यौवनागम की) अवस्था में मारवणी सेज विछाकर सोई
 हुई थी । स्वप्न में साल्हकुमार (ढोला) मिला (और वह) जागकर (प्रिय-
 वियोग के कारण) निःश्वास भरने लगी ।

१५—सिर को हथेली पर रखे हुए, प्रेमरस में निमग्न हुई मुख्या मार-
 वणी, जो विरहरुपी प्रलयकालीन मेघ उमड़ आया है उसकी, थाह
 खोजती है ।

१२—अमलौं (ग) अमलै (घ) कीर्यौं (ग, घ) कीऐ (ठ) ए
 (व) । नार=नार (घ) । जाय (घ) । तरणापौ (ख) ।

१३—कदळीय (ख, ग) । केहर अति कटि (ख) केहर जिम कटि
 (ग) ज्युँ (क) । ससि (ख, ग) । खंजन (क) । नयन (ख, ग) ।

१४—ऐसै आरिप (क, घ, ठ) । मारुवी (ख, ग) मारुवी (ठ) ।
 विछाय (क, घ) । साल (ग) । कुवर (क, ग, घ) । सुपनै (ग, घ) ।
 जाग (क, ग, घ) । खाय (घ) ।

१५—ऊवंची (क) ऊवंची (ख, घ) ओवंची (ग) उवंची (क)
 जंबवी (ठ) ऊवंची (व) । हथडा (ख, ग, घ) । चहंदी (ग) चाहदी
 (ठ) । लुध (ख, ग, ठ) । उमठयो (ख) । मूध (क) मूध (ख) ।

उक्कंबी सिर हथ्यड़ा, चाहंती रसलुध्व ।
 ऊँची चढि चातुंगि जिउँ मागि निहाळइ मुध्व ॥१६॥
 थाह निहालइ, दिन गिणइ, मारु आसालुध्व ।
 परदेसे घाँवल घणा, विखउ न जाणइ मुध्व ॥१७॥
 ऊनमियऊ उत्तर दिसइँ, राज्यउ गुहिर गंभीर ।
 मारवणी प्रिठ संभरथउ, नयणे वूठउ नीर ॥१८॥
 मारुनूँ आखइ सखी, आज स काँइ उदास ।
 काँम चित्राँम जु दिट्ट मइँ, रूप न भूलइ तास ॥१९॥

१६—ग्रीवा को हाथों पर उठाए हुए प्रेम में लुब्ध हुई मुग्धा मारवणी चिंतन करती हुई ऊँची चढकर चातक की भाँति मार्ग को देखती है ।

१७—(प्रिय मिलन की) आशा से लुब्ध मारवणी (विरह की) थाह खोजती है और दिन गिनती है । परदेश में बखेड़े बहुत हैं पर यह मुग्धा (विदेशयात्रा के) कष्ट को नहीं जानती ।

१८—उत्तर दिशा में मेघ उमड़ आए और वे गहन गंभीर स्वर से गरजे । (ऐसे समय) मारवणी ने प्रियतम को स्मरण किया (और उसके) नयनों से जल बरसने लगा ।

१९—मारवणी से सखी कहती है—आज कैसी उदास हो ? (मारवणी उत्तर देती है—) काम (के समान सुंदर) चित्र मेरी दृष्टि में है, मुझे उसका रूप नहीं भूलता ।

१६—ऊक्कंबी (ज) । ऊँची वेसर हथ्यड़ी (ध) । सह=सिर (थ) । ऊँची चढवा नाक ज्युं (ग) उची चढिवा ता कहइ (च) ऊँची चढ बातों कहै (छ) उची चढि चातक ज्युं (ज) । माग (ग) । निहाळ (क. ख. ग) । मुँढ (च) ।

१७—चाह (घ) । नहाळ (घ) गणै (ग) । लूध (क) लुध (ख. घ) । परदेसाँ (ख. ग) । घावल (घ) । परदेसाँ गढ लंघणी (ध) । मूध (क) मुंघ (ख) मुध (घ) ।

१८—ऊनमीयौ (क. घ) । उनमियो (ग) ऊनवीयौ (ख) । दिसा (ख. ग. च. ज. थ) । उत्तर दिसा ऊनमियो (ज) । गाज्यौ (क. ख) गाढ्यौ (ग) गाजौ (घ) गाजै (ज) गाजे (थ) । गभीर (च) । प्रिय (क. घ) प्री (ख. च) प्रीय (ज) प्रिय (थ) । संभरथौ (क. ख. ग. घ) सांभरथौ (थ) । नयणाँ (ग) । वूठे (घ) । मूक्यउ (च. ज) मूक्यो (थ)=वूठड ।

१९—मैँ (ग) । ज=जु (ख) । हिव मै=दिट्ट मइँ (ग) । भुली (ग) ।

अम्हों मन अचरिज भयड, सखियों आखड एम ।
 तई अणदिट्टा सज्जणों, किउँ करि लगा पेम ॥२०॥
 जे जीवण तिन्हों-तणों तन ही मॉहि वसंत ।
 धारइ दूध पयोहरे वाळक किम काढंत ॥२१॥
 ससनेही समदों परइ, वसत हिया मंम्मार ।
 कुसनेही घर अँगणई, जौण समंदों पार ॥२२॥
 सखिए सज्जण वल्लहा, जइ अणदिट्टा तोइ ।
 खिए खिए अंतर संभरइ, नहीं विसारइ सोइ ॥२३॥
 मारुन् आखड सखी, एइ हमारी बुभक ।
 साल्हकुंवर सुहिएइ मिल्यड, सुंदरि, सड वर तुभक ॥२४॥

२०—सखियाँ इस प्रकार कहती हैं—हमारे मन में आश्चर्य हुआ कि तूने प्रियतम को नहीं देखा (फिर) तेरा प्रेम उनसे क्योंकर हुआ ।

२१—मारवणी उत्तर देती है—जो जिनका जीवन है वह उनके तन में ही बसता है । पयोधरों में से दूध की धागाओं को (जो उसका जीवन है) बालक किस प्रकार निकाल लेता है ?

२२—सच्चा प्रेमी समुद्र पार होने पर भी हृदय में बसता है और कपट स्नेही घर के अँगन में होते हुए भी मानो समुद्र के पार है ।

२३—हे सखियों, प्यारा साजन यद्यपि नहीं देखा हुआ है तो भी उसे मेरा हृदय क्षण क्षण में स्मरण करता है और उसे नहीं भूलता है ।

२४—मारवणी से सखियाँ कहती हैं कि हमारी समझ में तो यह आता है कि साल्हकुमार तुम्हें स्वप्न में मिला है । हे सुंदरी, वह तुम्हारा पति है ।

२०—अमाँ (ख. ग) अम्माँ (ग) । अचिरज (घ) । हुवौ (ख) । तें (क. घ) तें (ग) । सज्जणों (ग) मज्जणा (घ) । क्युँ (ख. ग. घ) । कर (घ) । लगा (ग) लगौ (घ) । प्रेम (ग) ।

२१—जीवन (क. ख. ग) । जेन्हों (घ) । ते तन=तन ही (ख. ग) । माह (घ) । वसति (ख) । पयोधरे (ख) पयोहरों (ग) । वेम (क. ख) । काढति (ख) ।

२३—सखी (ख) सखी हे (ग)=सखिए । सज्जण (ख. ग. घ) । वल्लहा (ख. घ) जो (घ) । अदिटा (ख) अणदीटी (घ) । जोइ=तोइ (ख) । खणखणि (घ) । संभरँ (ग) । नह (घ) । विसारँ (क. ग. घ) विसारे (ख) तोइ (क. ख. घ) ।

२४—ए (घ) । अम्हीरी (घ) । बुभक (ख. घ) । साल (घ) । कुम्बर (ख) । सुपनँ (ख. घ) । सुंदर (ख. थ) । तुभक (क. ख. घ.) ।

सखीवयण सुंदरि सुण्या, उठी मदन की फाळ ।
 सुंदरिन् सज्जण विरह उपन्नड ततफाळ ॥२५॥
 हे सखिए, परदेस प्री, तनह न जावइ ताप ।
 बाबहियउ आसाढ जिम विरहणि करइ विलाप ॥२६॥
 बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव ।
 जब ही वरसइ घण घणउ, तबही कहइ प्रियाव ॥२७॥
 बाबहिया, चढि गउखसिरि, चढि ऊँचइरी भीत ।
 मत ही साहिब बाहुडइ, कउ गुण आवइ चीत ॥२८॥
 बाबहिया, चढि डूगरे, चढि ऊँचइरी पाज ।
 मत ही साहिब बाहुडइ, सुणि मेहॉरी गाज ॥२९॥

२५—सुदरी (मारवणी) ने सखियों के वचन सुने तो (हृदय में) काम की ज्वाला उठ खड़ी हुई और उस सुदरी को तत्काल प्रियतम का विरह उत्पन्न हुआ ।

२६—हे सखियो, प्यारा परदेश में है, शरीर का ताप नहीं जाता । जैसे पपीहा आषाढ में विलाप करता है वैसे ही विरहिणी विलाप करती है ।

२७—पपीहा और विरहिणी दोनों ही का एक स्वभाव है । जब जब मेघ बरसता है तभी ये दोनों 'पी आव', 'पी आव' पुकारते हैं ।

२८—हे पपीहे, गोखे पर चढ या ऊँची भीत पर चढ (और टेर लगा) प्रियतम को स्यात् कोई गुण (बात) याद आवे और आते हुए वे कहीं लौट न जायँ ।

२९—हे पपीहे, पहाड़ी पर चढ या सरोवर की ऊँची पाज पर चढ (और बोल), जिससे मेघों की गर्जना सुनकर प्रियतम कहीं लौट न जायँ ।

२५—संदर (घ) । कू (क. घ)=नूँ ।

२६—हे सखी (क) सखी हे (ख)=हे सखिए । प्रीय (क) बाबीहो (ख) । ज्यूँ (घ) ।

२७—बाबहिये (क) बाबीहे (ख) बाबीहो (ज) । नें (ज) विरहिणी (क. ग) । दोनूँ (क) इयाँ दुइ (ग) दोन्युँ (ज) सभाव (क. ज) सुभाव (ग) । वन (क. ग) । तब=तबही (क. ख) । पुकारै (क. ठ) । प्रीय (क. ठ) प्री आव (ख) प्रीव आव (ज) ।

२८—बाबीहा (क. ख) । चढ (ग) । डूगराँ (ग)=गउख सिरि । गौख (ख) । सिर (क. ख-ग) । चढ (ग) । रखैज=मत ही (ज) । मति ही (ख. ग) ।

२९—बाबीहा (क. ख) । डूगराँ चढि (क) । डूगराँ (ख) चढ (ग) । ऊचेरी (ग) । सुण (ग) । की (क. ख) कोइ (ज)=री ।

सोरठा

बाबहिया, तूँ चोर, थारी चॉच कटाविस्सुँ ।
राति ज दीन्ही लोर, मडँ जाण्यउ प्री आवियउ ॥३०॥

दूहा

बाबहिया निलपंखिया, मगरि ज काळो रेह ।
मति पावस सुणि विरहणी तळफितळफि जिउ देह ॥३१॥
बाबहिया तरपंखिया, तडँ किउँ दीन्ही लोर ।
मडँ जाण्यउ प्रिउ आवियउ ससहर चंद चकोर ॥३२॥
बाबहिया निलपंखिया, चाढत दइ दइ लूण ।
प्रिउ मेरा मडँ प्रीउकी, तूँ प्रिउ कहइ स कूण ॥३३॥

३०—हे पपीहे, तू ठग है, मै तेरी चोच कटवाऊंगी । रात को तूने टेर लगाई तो मैंने जाना कि प्रियतम आ गए ।

३१—हे नीले पखोंवाले पपीहे, तेरी पीठ पर काली रेखाएँ हैं । (तू मत बोल), वर्षा ऋतु में तेरा शब्द मुनकर विरहिणी कहीं तड़प तड़पकर प्राण न दे दे ।

३२—हे गहरे रंग के पखोंवाले पपीहे, तूने क्यों टेर लगाई ? (तेरी टेर सुनकर) मैंने समझा कि (मुझ जैसे) चकोरों का शशाकधर चंद्र (अर्थात् मेरा प्रियतम) आ गया ।

३३—हे नीले पंखवाले पपीहे, तू नमक लगा लगाकर मुझे काट रहा है । 'पिउ' मेरा है और मैं 'पिउ' की हूँ, भला तू 'पिउ पिउ' कहनेवाला कौन है ?

३०—बाबहीा (ख) । तोरि=थारी (क) । चूँच (ख, ग) चंच (घ) चुंच (ज) । कटाइस्सुँ (ख) कटाइसुँ (ग) । रात (ग) । जु (ख) । लोइ (ग) हलोर (घ) रोल (ज)=लोर । प्रीय (ग) । (ज) में यह सोगठा नहीं किंतु दोहा है ।

३१—बाबहीा (ख) मगर (क, ग) । जु (ख) । मत (क, ग) । पदमणी (ज) तरफि तरफि (क) तरफ तरफ (ग) । जीव (ख) जीव (ज) १-

३२—केवल (ग) में ।

३३—चांच कटायुँ पपिहरा ऊपर लाऊँ लूण (घ) ।

बाबहिया रतपंखिया, बोलइ मधुरी बाँणि ।
 काइ लवंतउ माठि करि, परदेसी प्रिउ आँणि ॥३४॥
 बाबहिया प्रिउ प्रिउ न कहि, प्रिउ को नाम न लेह ।
 काइक जागइ विरहणी, प्रीउ कछाँ जिउ देह ॥३५॥
 बाबहिया डूंगर-दहण छॉडि हमारउ गाँम ।
 सारी रात पुकारियउ लइ लइ प्रिउकउ नाँम ॥३६॥
 [चहुँ दिस दामिनि सघन घन, पीउतजो तिण वार ।
 मारु मर चातग भए, पिउ पिउ करत पुकार ॥ ३७ ॥
 पावस आयउ साहिबा, बोलर लाग़ा मोर ।
 कंता, तूँ घरि आव नवि, जोवन कीधउ जोर ॥३८॥

३४—हे लाल पखोंवाले पपीहे, तू मीठी वाणी बोलता है। तू या तो बोलना बढ़ कर दे या मेरे परदेशी प्रियतम को यहाँ ला दे।

३५—हे पपीहे, तू पिउ 'पिउ' न कह, पिउ का नाम मत ले। कोई विरहिणी जाग रही होगी। वह तेरे 'पिउ' कहने से प्राण देगी।

३६—पर्वत (जैसे कठोरहृदय) में भी जलन उत्पन्न करनेवाले पपीहे, हमारा गाँव छोड़ दे। तू रातभर प्रियतम का नाम ले लेकर पुकारता रहा है (क्या तो भी नहीं अघाया ?)।

३७—चारों दिशाओं में बादलो मे घनी विजली (चमक रही) है। ऐसे समय में प्रियतम ने (मारवणी को) छोड़ दिया। वही मारवणी मानो मरकर चातक हो गई और अब 'पिउ पिउ' की पुकार कर रही है।

३८—हे प्रियतम, वर्षा ऋतु आ गई, मोर बोलने लगे। हे कत, तू अब घर आ, यौवन ने जोर किया है।

३४—बाबीहा (ख) बाबीहुड (च) बाबीहा (थ)। निल=रत (क ख)। बग चंचड़ी (च) बग चचडी (ज) चंगी चंचडी (थ)=रत पखिया। बाण (ग) बाणि (च)। का (ख. ग.) काइ (च) कै (ज)। बोलंतौ (क ख) लवडूँ तूँ (थ)। मिठि (च) महठि (ज) मुठि (थ)। कइ (ग च) घरि राज्जँद (क) राजिद घर (ख) घरि राजिद (ग)। प्री परदेसाँ (च)=परदेसी प्रिउ। परदेस प्रियाण (थ) आँण (ख. ग)।

३५—केवल (ग) मे है।

३६—बाबीहा (ख)। डूंगर (ज) पंजर (ढ)। हमारा (ज)। प्रीय (क) प्रीयु (घ)।

३८—केवल (म) में।

गिरिवर मोर गहकिया, तरवर मूक्या पात ।
 धणियाँ धण सालण लगा, वृठैता वरसात ॥३६॥
 राजा, परजा, गुणियजण, कविजण, पंडित, पात ।
 सगळो मन उळव हुअउ, वृठैता वरसात ॥४०॥
 उनमि आई वढळी, ढोलउ आयउ चित्त ।
 यो वरसइ रितु आपणी, नइण हमारे नित्त ॥४१॥
 उनमियउ उत्तर दिसइ मेढी ऊपर मेह ।
 ते विरहिणि किम जीवसे, ज्योरा दूर सनेह ॥४२॥
 उनमियउ उत्तर दिसइ काळी कंठळि मेह ।
 हूँ भीजू वर अंगणइ, पिउ भीजइ परदेह ॥४३॥
 वीजुळियाँ चहलावहलि आभइ आभइ एक ।
 कदी मिलूँ उण साहिवा कर काजळ की रेख ॥४४॥]

३६—पावस के वरसते ही पर्वतों पर मोर उल्लास में भर उठे । (वर्षाऋतु ने) तरुवर्गों को पत्ते दिए । (और) विरहिणी स्त्रियों को पतियों की याद सालने लगी ।

४०—वर्षा के वरसते ही राजा, प्रजा, गुणी, कविजन, पंडित और वृद्धों के पत्ते—इन सबके मन में उल्लास हुआ ।

४१—बादल उमड़ आया (और) ढोला हमारे चित्त में (उमड़) आया । बादल तो अपनी ऋतु में ही वरसता है (परंतु) हमारे नेत्र नित्य वरसते रहते हैं ।

४२—उत्तर दिशा की ओर अटारी पर मेह उमड़ आया । अब वह विरहिणी जिसका प्रेमी दूर है किस प्रकार जिएगी ?

४३—काली कंटुली (जैसी कोर) वाला मेघ उत्तर दिशा की ओर उमड़ आया है । मेघ के आगमन में भीग रही हूँ (और मेरा) प्रियतम परदेश में भीग रहा है ।

४४—बादल बादल में एक एक करके विजलियों की चहलपहल हो रही है । मैं भी नेत्रों में काजल की रेखा लगा करके प्रियतम से कब मिलूँगी ?

३६—केवल (म) में ।

४०—केवल (म) में ।

बीजुळियाँ चहलावहलि आभइ आभइ च्यारि ।
 कद रे मिलउँली सज्जना लॉबी वॉह पसारि ॥४५॥
 बीजुळियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि ।
 कद रे मिलउँली सज्जना कस कंचूकी छोडि ॥४६॥
 गिरह पखालण, सर भरण, नदी हिंडोलणहारि ।
 सूती सेजइँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥४७॥
 दादुर मोर टबक्क घण, बीजलड़ी तरवारि ।
 सूती सेजइँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥४८॥
 जळ थळ, थळ जळ, हुइ रह्यउ, बोलइ मोर किंगार ।
 स्रावण दूभर हे सखी, किहाँ मुम्ह प्राण-अधार ॥४९॥

४५—आदल आदल मे चारों ओर विजलियों की चहलपहल हो रही है । अरे मैं भी (इनकी तरह) लंबी भुजा पसारकर अपने प्रियतम से कब मिलूँगी ?

४६—आदल आदल की कोर पर विजलियों की चहलपहल हो रही है । अरे, मैं भी कचुकी के वधन खोलकर अपने प्रियतम से कब मिलूँगी ?

४७—पर्वतो को प्रक्षालन करनेवाली सरोवरों को भर देनेवाली और नदियों को भ्रूणभरनेवाली इस ऋतु मे मैं अकेली सोई हुई हूँ । अरे दैव ! अरे दैव ! मैं हा हा खाती हूँ, मुझे मत मार ।

४८—दादुर और मोर का घना शब्द हो रहा है । विजली तरवार है । मैं अकेली सेज पर सोई हुई हूँ । अरे दैव, अरे दैव, मैं हा हा खाती हूँ, मुझे मत मार ।

४९—(इतना जल बरस रहा है कि) जलाशय स्थल (जैसे) और स्थल जल (जैसे) हो रहे हैं (अर्थात् दोनों एकाकार हो गए हैं) और (तालाब के) करारों पर मोर बोल रहे हैं । हे सखी, यह श्रावण का मास (मेरे लिये) दुस्सख हो रहा है, मेरा प्राणाधार कहाँ है ?

४५—सज्जनो (च) । भ्रूणकियाँ (न) । जाइ मिलीजे (न) ।

४६—सज्जनों (च) ।

४७—भीलोलण (द)=हिंडोलण ।

४८—सेजइँ सूती प्री परदेसडइँ तर्फ तर्फ दइव म मारि (च) ।

विञ्जुळियाँ नीळजियाँ, जळहर तू ही लज्जि ।
 सूनी सेज, विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥५०॥
 राति सखी इण ताल मई काइ ज कुरळी पंखि ।
 उवै सरि, हूँ वरि आपणइ, बिहूँ न मेळी अंखि ॥५१॥
 ए सारस कहिजइ पसू पंखी केरा राव ।
 उवै वाल्या सर ऊपरइ, थॉ कीधी अणुराव ॥५२॥
 राति जु सारस कुरळिया, गुजि रहे सब ताल ।
 जिणकी जोड़ी वीछड़ी, तिणका कवण हवाल ॥५३॥

५०—विजलियाँ तो निर्लज हें। हे जलधर, तू ही लज्जित हो। मेरी शय्या सूनी है, मेरा प्याग विदश में है (इसलिये) मधुर मधुर शब्द से गरज।

५१—हे सखी, रात को इस सरोवर में किमी पक्षी ने कलरव किया। वह सरोवर में और मैं अपने घर में—हम दोनों ही की आँख नहीं लगी।

५२—सखी कहती है—वे पक्षियों के राजा सारस आखिर पशु ही कहलाते हैं। वे सरोवर पर बोले और तुमने उनके शब्द का अनुकरण किया।

५३—रात को जो सारस कुरलाए (करुण त्वर में बोले) तो सब सरोवर गूँज उठे। भला जिनकी जोड़ी विछुड गई है उनकी क्या दशा होती होगी ?

५०—मेहा खरो निळज=जळहर इ० (घ)। सुंनर=सूनी (घ)।

५१—इण (र) काँइ जु (र)। कुरळियाँ कुरळाइयाँ पचह वरनी पंखि (च) कुंळियाँ (थ, घ) पचह (थ, घ) वरणी (थ, घ)। अवा (ख) उ (च, थ) आ (ठ)। पर (क) सिर (च)। आ हूँ (क)। वर (क)। वेहुँ (ठ) मिळिया (ख) निमिली (च) मिलिये (थ)। अख (क)। वेह न वीधी पंख (घ)।

५२—उवै (क) अं (ग)। कहींये (ग)। खरि (घ)। के=केरा (घ)। उवे (क) उये (ग)। मिर (ग) सिरि (घ)। ऊपरें (क)। कीवी अणुराव (ख) थाही की उणुराव (क)।

५३—ज (क)। कुरळियाँ (क)। गूँजि (क) गूँज (ग) गाजि (ग) रही (ग) रहाउ (थ) सिर=मव (ख)। कुंळियाँ कुरळियाँया (ग) कुंळियाँ कुरळाइयाँ (थ) कुरळियाँ कळियलं कियो (न)=राति जु सारस कुरळियाँ। ऊँची वेमे तल्ल=गुंजि रहे सब ताल (न)। जिनकी (ख) जाकी (घ)। वीछहै (ग) विछुडइ (थ)। ताकी (क)। कुंवण (ख)। हवल (न)।

कूँभडियाँ करळव कियउ घरि पाछिले वणेहि ।
 सूती साजण संभरथा, द्रह भरिया नयणेहि ॥५४॥
 कूँभडियाँ कळरव कियउ घरि पाछिले दरंगि ।
 सूती साजण संभरथा, करवत वूहि अंगि ॥५५॥
 कूँभडियाँ कुरळाइयाँ ओलइ वइसि करीर ।
 सारहली जिउँ सल्लियाँ सज्जण मंभ सरीर ॥५६॥
 मंभि समंदों वीट धर, जळसूँ जामोपत्त ।
 किणही अवगुण कूँभडी, कुरली मॉंभिम रत्त ॥५७॥

५४—कुररी पक्षियों ने घर के पीछेवाले वन में करण रव किया । सोती हुई मारवाणी को प्रियतम का स्मरण हुआ और उसके नयनों में आँसुओं का सरोवर भर आया ।

५५—घर के पीछेवाले टँले पर कुररी पक्षियों ने करण रव किया (जिससे) सोती हुई मारवाणी को प्रियतम का स्मरण हो आया और उसके अर्गों पर मानों आरी चल गई ।

५६—करील की ओट में बैठकर कुररी पक्षी कुरलाए (जिसको सुनकर) प्रियतम (की स्मृति) शरीर में सार की तरह सालने लगी ।

५७—समुद्र के बीच में वीटों का तेरा घर है, जल से तेरी सतान की उत्पत्ति होती है । हे कुरभ, कौन से बड़े अवगुण के कारण तू आधी रात को कूक उठी ।

५४—कुरभडियाँ (च) कळियर (क) कळरव (ख ग) कुरळाइयाँ (च. थ) । घर (ख. ग थ) । पाछले (ख) । पछले (ग) । वणेहः (क. ख) । बनेहि (च) । सूतां (च) सजन (ग) सज्जण (च) । समरीयाँ (थ) । नयणेह (क. ख) ।

५५—कुरभडियाँ (च) । कळियर (क) कळियळ (घ) कुरळाइयाँ (च. थ) । थळां (न) । थळी पहलइ (च) थळी ज पैले (थ)=घरि पाछिले । पछवाडे=पाछिले (क) । द्रंग (क. ख ग. च. न) । सांभरथा (च) समरीया (थ) । वूहा (क. ख. ग. थ) । अंग (क. ख ग) ।

५६—कुरभडियाँ (च) कूरुभरिया (त) । कळियळ कियौ (क) । कळिकह (ख) । ऊची (क) उची (च) उचइ (थ) । विसि (क) वइस (ख) । करीरि (च) । सारहली (च) । जिम (ख) ज्यउं (थ) । सलीया (क) सलीयाँ (च) । साकण (ख) । म्हाह (ख) समभ (क) मॉंह (थ) ।

५७—मंभ (क) मंभ (ग) । समुहां (क) । वैठि (ख) वीट (ग) । पति (क. ख) । किसौ (ख) किण (ग) किहों (घ) । अणरौ । (ख)=अवगुण । रति (ख) ।

कुंफडि़र्यो कळिअळ कियड, सुणी उ पंखइ वाइ ।
ज्योकी जोडी वीछडी, त्यो निसि नीद न आइ ॥५८॥

कुंफडि़र्यो कळिअळ कियड, सरवर पइलइ तीर ।
निसिभरि सज्जण सल्लियाँ, नयणे वूहा नीर ॥५९॥

सोरटा

मारवणी मनि रंगि, वाटइ तिणि आवी वहइ ।
कुंफी एकणि संगि, तालि चरंती दिडि़र्यो ॥६०॥

दूहा

आडा डूंगर, दूरि घर, वणइ न जाणइ भत्त ।
सज्जण सन्दइ कारणइ हियड हिलूसइ नित्त ॥६१॥

५८—कुररी पक्षियों ने करुण रव किया और मैंने उनके पखों की वायु (पंख फटफटाने की ध्वनि) सुनी। जिसकी जोड़ी त्रिच्छुड गई उसको रात्रि में नींद नहीं आती।

५९—सरोवर के उस पार, तीर पर, कुररी पक्षियों ने करुण रव किया। रात भर (विरहिणी के हृदय में) सजन सालते रहे और उसके नेत्रों से जल बहता रहा।

६०—प्रेम से रंगे हुए मनवाली मारवणी चलती चलती उस मार्ग पर आ निकली और वहाँ उसने बहुत सी कुरम्हों को (सरोवर के किनारे की) समतल भूमि पर एक साथ विचरण करते हुए देखा।

६१—नीच में पर्वत है और घर दूर है। जाना किसी भाँति नहीं बनता। प्रियतम के लिये हृदय नित्य ही लालायित रहता है।

५८—केवल (ज. छ) में।

५९—केवल (ज. छ) में।

६०—ग्रावी (थ)=आवी। कुंफा (थ)। ए तिणि रंगि (थ)=एकणि संगि।

६१—राम रती धर पुंवरी (क) राम रती धर पूवण न (घ)=आडा डूंगर दूरि घर। ए (ख. च)=न। जाना (ख ग)। भाँति (ख)। सजन (ख)। हीया (क)। उलसै (क)। रत्त (क) नित्त (ख)=नित्त।

कुंभों, द्यउ नइ पंखड़ी, थाकउ विनउ वहेसि ।
 सायर लंघी प्री मिलउँ, प्री मिलि पाछी देसि ॥६२॥
 म्हे कुरभों सरवर तणा पॉखों किणहिँ न देस ।
 भरिया सर देखी रहों, उड़ आघेरि वहेस ॥६३॥
 उत्तर दिसि उपराठियों, दक्षिण सॉमहियाँह ।
 कुरभों, एक सँदेसड़उ ढोलानइ कहियाँह ॥६४॥
 माणस हवों त मुख चवों, म्हे छों कूँभडियाँह ।
 प्रिउ सँदेसउ पाठविसु, लिखि दे पंखडियाँह ॥६५॥

६२—मारवणी कुररी पत्नियों को सत्रोधन करके कहती है—हे कुंभो, मुझे अपनी पाँखें दो, मैं तुम्हारा बाना बनाऊँगी और सागर को लॉघ करके प्रियतम से मिलूँगी और मिलकर तुम्हारी पाँखें लौटा दूँगी ।

६३—कुंभों का उत्तर— हम सरोवर की कुंभें हैं । हम अपनी पाँखें किसी को नहीं देंगी । भरे हुए सरोवर देखकर हम ठहर जाती हैं, नहीं तो उड़कर दूर चली जाती हैं ।

६४— मारवणी कहती है— हे कुंभो, उत्तर दिशा की ओर पीठ किए हुए, दक्षिण दिशा के समुख चलकर, ढोला को एक सँदेशा कहना ।

६५—कुंभों का उत्तर—मनुष्य हों तो मुख से कहें, हम तो बिचारी कुंभें है । यदि प्रियतम को सँदेशा भेजना हो, तो हमारी पाँखों पर लिख दो ।

६२—कूँभडियाँ (क) कूम्भी (ग) कुरम्भा (च) । दिइ न (च) दयो (थ) । पाँखड़ी (थ) । पांखां दियउ (क) वहेत (क ख. ग) । कुरम्भडीयाँ म्हारी बोनडीयाँ पंख उधारी देह (थ) लंघूं (क. ख) ग्रीय (क. च) प्रिय (ग. थ) । मिलुं (क. ख) मिलू (ग) मिलौ (थ) । देस (क) ।

६३—केवल (ज) में ।

६४—दक्षिण दिशि (थ) । सांसुहियाँह (थ) । कुंभी (थ) ।

६५—हुवां (क) ह्वाँ (ग) । तौ (ख. ग) । मुह (क) । चवौ (ग) । मारू म्हे माणस नहीं (क) । तौ (ग) तउ (त. थ)=छों । कुरम्भडियाँह (च) । प्रिय (ग. थ) प्रीउ (च) । पाठविसि (क) पाठवीस तउ (ग) परठवो (न) । ढोलै तणा सदेसडा (क. ख. ग)=प्रिउ सदेसउ पाठविसु । सुलिख (क) । पांखडियाँह (थ) ।

पॉखे पॉणी थाहरइ, जळि काजळ गहिलाइ ।
 सयणॉ तणॉ सँदेसड़ा, मुख बचने कहवाइ ॥६६॥
 तालि चरंती कुंफडी, सर संधियउ गँमार ।
 कोइक आखर मनि वस्यउ, उडो पंख सँभार ॥६७॥
 जिम जिम सज्जण संभरइ, तिम तिम लगगइ तीर ।
 पंख हुवइ तो जाइ मिलि, मनॉ वँधाड़ॉ धीर ॥६८॥
 आडा डूँगर, बन घणा, खरा पियारा मिच ।
 देह बिधाता, पंखडी, मिलि मिलि आवउँ निच ॥६९॥
 आडा डूँगर, मुइ घणी, सज्जण रहइ विदेस ।
 माँगी तॉगी पखुडी केती वार लहेस ॥७०॥

६६—मारवणी फिर कहती है—तुम्हारी पॉखों पर पानी पड़ेगा, (जिससे) स्याही जल में बह जायगी । प्रियतम का सँदेशा तो मुख द्वारा ही कहलाया जा सकता है ।

६७—सरोवर में विचरती हुई कुम्हों पर किसी गँवार ने वाण सधाना । (उनके) मन में कोई आतरिक प्रेरणा उत्पन्न हुई और वे पख सँवारकर उड़ गई ।

६८—ज्यों ज्यों प्रियतम का स्मरण होता है त्यों त्यों मानो (हृदय में) तीर लगता है । यदि मेरे पख हों तो उनसे जा मिलूँ और मन को धीरज वँधाऊँ ।

६९—त्रीच में बहुत से पहाड़ और जगल हैं, मेरा मित्र अत्यंत प्यारा है । हे विधाता, मुझे पख दे जिससे मैं नित्यप्रति मिल आया करूँ ।

७०—त्रीच में बहुत से पहाड़ हैं, फासला बहुत है और प्रियतम विदेश रहते हैं । उनसे मिलने के लिये माँगी हुई पॉख भला कितनी वार पाऊँगी ।

६७—ताल (क. ख. ग. च) । कूँजडी (ग) कुंजडी (थ) । संधीयो (ग) संधीयउ (च) । गवार (ग) गमारि (थ) । अंतर (ङ) । मन (ग) । वस्यौ (ग) । सवार (ग) ।

६९—हुगर (च) । आवउ (च) ।

७०—लहेसि (च) । सायर ऊँडो जळ घणो परभौ वणो सहेस (थ) ।

पाँखड़ियाँ ईं किउँ नहीं, दैव अवाडू ज्योह ।
 चकवीकइ हइ पंखडी, रयणि न मेळउ त्योंह ॥७१॥
 आडा डूंगर, भुईं घणी, तियाँ मिळीजइ एम ।
 मनिहूँ खिणहि न मेल्हियइ, चकवी दिणियर जेम ॥७२॥
 ज्युँ ए डूंगर संमुहा, त्यूँ जइ सज्जण हुंति ।
 चंपावाडी भमर ज्यउँ, नयण लगाइ रहंति ॥७३॥
 जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ ।
 उअ्योँ लगे मो लगसी, ऊ ही लाख पसाउ ॥७४॥
 कउआ, दिऊँ बधाइयाँ, प्रीतम मेळइ मुब्भ ।
 काठि कळेजउ आपणउ भोजन दिउँली तुब्भ ॥७५॥

७१—जिनका भाग्य उलटा है उनके पख (होने से) भी कुछ नहीं चकवी के पख हैं, परतु उसका भी रात्रि मे (प्रिय से) मिलन नहीं होता ।

७२—(उनके) बीच मे पहाड़ और बहुत सी भूमि (दूरी) है, उनसे इसी प्रकार मिलन हो सकता है कि उनको एक क्षण के लिये भी मन से नहीं हटाना चाहिए जिस प्रकार चकवी सूर्य को (नहीं हटाती) ।

७३—जैसे ये पर्वत सामने हैं वैसे ही यदि प्रियतम भी होते तो जिस प्रकार भ्रमर चपा के बाग की ओर दृष्टि लगाए रहते हैं उसी प्रकार मैं भी उन पर नयन लगाए रहती ।

७४—हे वायु, जिस दिशा मे प्रियतम वसते हैं उसी दिशा की ओर से चलो । उनका स्पर्श करके मुझे छुओ । वही मेरे लिये लाख पसाव होगा ।

७५—हे कौवे, यदि तू मुझे प्रियतम से मिला दे तो मैं तुझे बधाइयाँ दूँ और अपना कलेजा निकालकर तुझे भोजन को दूँगी ।

७१—क्युं (च) । पंखडी (च) ।

७२—डूंगर (च) ।

७३—डूंगर (च) ।

७५—जु प्री=प्रीतम (च) । तीजन (छ)=भोजन ।

जव सोऊँ तव जागवइ, जव जागूँ तव जाइ ।
मारू ढोलउ संभरइ, इणि परि रयण विहाइ ॥७६॥

(राणी का मारवणी की दशा जानना)

सखियाँ रॉणीसूँ कहइ, मारू मनभाँणी ।
साल्हकुँमर पासइ विना, पदमिणि कुँमलोणी ॥७७॥
सखियाँ रॉणीसूँ कहइ, तनह न जावइ ताप ।
साल्ह विरह तिल तिल मइँ, मारू करइ विलाप ॥७८॥
इणि परि ऊमा देवड़ी जाणी मारू वत्त ।
सु प्रभाति कहिवाभणी, पिंगळ पासि पहुत्त ॥७९॥
आखय ऊमा देवड़ी, संभळि पिंगळ राइ ।
विरह वियापी मारूई, नहिँ राखणकउ दाइ ॥८०॥

७६—जव सोती हूँ तव (स्वप्न मे आकर) जगा देता है । जव जाग उठती हूँ तव चला जाता है । (यों कहती हुई) मारवणी ढोला की याद करती है और इस प्रकार रात्रि बिताती है ।

७७—(मारवणी की यह दशा देखकर) मारवणी की मनभावती सखियाँ राणी से कहती हैं—साल्हकुमार (रूपी सूर्य) के पास न होने से यह पन्निनी कुम्हला गई है ।

७८—सखियाँ राणी से कहती हैं—तन का ताप नहीं जाता । रोम रोम मे साल्हकुमार का विरह छा गया है और मारवणी विलाप करती है ।

७९—इस प्रकार ऊमा देवड़ी ने मारवणी की बात जान ली और प्रातःकाल ही सत्र हाल कहने के लिये राजा पिंगळ के पास पहुँची ।

८०—ऊमा देवड़ी कहती है—हे पिंगळ राजा, सुनो । मारवणी विरह से व्यास हो गई है । उसे बचाने का कोई उपाय नहीं (सूझ पड़ता) है ।

७७—राणी राजा सूँ (क) । राजा कहे राणी (न) । साल्हविरह हेमंत ज्युं=साल्ह...विना (न) । मारू (न) पदमण (ग) ।

७८—साल्हकुँवर तन मन मे (क) ।

७९—पहुत्त (च) पहुत्त (छ) ।

८०—आखइ (थ) । उमा (च) । मा ऊमादे वीनवै (ग) । राउ (ग) । मारवी (ग) । दाउ (ग) ।

नितु नितु नवला सॉदिया, नितु नितु नवला साजि ।
 पिंगळ राजा पाठवइ, ढोला तेडन काजि ॥८१॥
 न को आवइ पूगळइ, सहु को नरवर जाइ ।
 मारू तणा सँदेसडा बगड़ विचाहू खाइ ॥८२॥
 (सौदागर द्वारा ढोला के समाचार मिलना) ।
 एक दिवस पूगळ सहर, सउदागर आवंत ।
 तिणपइ घोडा अति घणा, वेच्या लाख लवत ॥८३॥
 पिंगळ राजानू मिल्यउ, सउदागर तिणि वार ।
 राज दुवारइ तेडियउ, आदर करे अपार ॥८४॥
 सउदागर पिंगळ मिल्यउ, बहुत दियउ सनमॉन ।
 रात दिवस प्रेमइ मिल्यउ, इम पिंगळ राजॉन ॥८५॥

८१—प्रतिदिन नए नए सॉदनी सावरों को, नए नए साज सामान के साथ, पिंगळ राजा ढोला को बुलाने के लिये भेजता है ।

८२—सब कोई नरवर को जाते हैं परतु पूगळ को लौटकर कोई नहीं आता । मारवणी के सदेशों को कोई दुष्ट बीच ही में हड़प जाता है ।

८३—एकदिन पूगळनगर मे एक सौदागर आता है, उसके पास बहुत से घोड़े हैं जिनको बेचने से एक एक के लाख लाख रुपए मिलते हैं ।

८४—उस समय सौदागर पिंगळ राजा से मिला । राजा ने बहुत आदर करके उसको राजदरवार मे बुलाया ।

८५—पिंगळ सौदागर से मिला और उसका बहुत समान किया । इस प्रकार वह सौदागर पिंगळ राजा से दिन रात प्रेमसहित मिलता रहा ।

८१—संडिया (ग) संढीथा (थ) । साज (थ) ।

८२—राजा वाक्य (क. झ) राणी वाक्य (ख. ग) ।

नरवरां (क) पूगळां (ग) । न को=सहु को (ख. ग) इहांसु (क)=
 नरवर । ढोलै=मारू (क. थ) ढोला (ग) । को बगड़ (ख) बगण (ग)
 कोई (न) । विचाहूँ (ख) विचाऊ (क ग) विचाळइ (थ) विचाई
 (न) । उहाँरा को आवइ नहीं इहाँ सहू को जाइ, मारू तणा सदेसडा
 को पिसुण विचाउ खाय (ज) ।

८३—इक (ख) । सहिर (ग) ।

८४—केवल (क. ख. घ) में ।

८५—केवल (ग) में ।

सउदागर राजा तिहाँ वड्ठा मंदिर मंफ ।
 मान् दीठो अउमकड, जॉणि खिची घण संफ ॥८६॥
 सुंदरि, सोवन वर्ण तसु, अहर अलत्ता रंगि ।
 केसरि लंकी, खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि ॥८७॥
 सउदागर खवासनू पूछइ, लइ तिण मन्न ।
 दोमइ रायंगणमहौ कुँवरी कंचन ब्रन्न ॥८८॥
 ते देखी, तिणि पूछियड, कुण ए राजकुमारि ।
 किह पीहर, किह सासरउ, विगतइ कहइ विचारि ॥८९॥
 कुँवरी पिगळ रायनी, मानवणी तसु नाँम ।
 नरवरगढ़ डोलइ भणी परणी पुहकर ठाँम ॥९०॥

८६—एकदिन सौदागर और राजा वहाँ महल में बैठे हुए थे । तब (सौदागर ने) मारवणी को अचानक भरोखे में देखा, मानो सध्या समय बादल में विजली चमरी हो ।

८७—वह सुदरी थी, उसका रंग सुवर्ण जैसा था, अवर अलत्तक के से रंग के थे, उसकी कमर सिंह की कमर के समान क्षीण थी और वह हरिण के समान कोमल नेत्रोंवाली थी ।

८८—सौदागर खवास से, उसका मन लेकर, पूछता है—राजमहल में कंचन वर्णवाणी कुमारी देख पड़ती है ।

८९—उस (मारवणी) को देखकर उसने पूछा—यह राजकुमारी कौन है? कहाँ इसका पीहर है और कहाँ ससुराल है? विचारकर (सब हाल) व्यौरेवार कहे ।

९०—(उत्तर—) वह पिगल राजा की कुमारी है, मारवणी उसका

८६—विन्हें बैठे=वड्ठा मंदिर (क) । मंफि (क) । बैठी=दीठी (घ) । जॉणि (ख) । सजि=संफ (क) ।

८७—सोहग सुदरि=सोवन वर्ण तसु (ज) । सोवन्न वन्न (थ) । अहिरि (ज) । रंग (ज) । नेत्र (ज. थ) । कुरंग (ज. थ) । खंजर नयणी खिण कट्टी (ज) ।

८८—मन (ख) । राय अंगण (क. ख) । कंचण (ख) । वर्ण (क) । व्रन्न (ख) ।

८९—ति (च) । पूछियो (थ) । य=पु (च) । किहाँ (ज. थ) । पीहरि (थ) । सासुरी (थ) । विगति (थ) । लियो (ज) कहे सु (थ) ।

९०—कुमरौ (ग) । रायरी (च) । पिगल राजा कुँवरी (क) । मारवणी (ख. ग. च) । तिण (क) । तिणि (ख) । इण (ग) । इण (ज) । इणि (थ) । नाम (च) । नामि

दउढ वरंसरी मारुवी, त्रिहुँ बरसौरउ कंत ।
 बाळपणइ परण्यो पछइ, अंतर पडथर अनंत ॥६१॥
 सउदागर राजा कन्हे अरज करइ एकंति ।
 साल्हकुँवर सुँ वीनती कहि किण दाखूँ भंति ॥६२॥
 साल्हकुवर सुरपति जिसउ रूपे अधिक अनूप ।
 लाखौँ बगसइ माँगणा, लाख भडौँ सिर भूप ॥६३॥
 मालवगढ राजा सुधू, कुँवरी मालवणीह ।
 ढोलइ तिण बहु प्रीति छइ अति रंग नेह घणीह ॥६४॥

नाम है और पुष्कर नाम के स्थान पर नरवर गढ़ के राजकुमार ढोला के साथ इसका विवाह हुआ है ।

६१—उस समय मारवणी डेढ़ वर्ष की थी और उसका पति तीन वर्षों का था । बालपन में विवाह हो जाने के पश्चात् दोनों के बीच में बहुत भारी अंतर पड गया ।

६२—सौदागर राजा से एकात मे अर्ज करता है कि बताइए, मैं साल्ह-कुमार से किस भाँति विनती कह सुनाऊँ ।

६३—साल्हकुमार इद्र जैसा रूप मे अतीव अनुपम है । वह याचकों को लाखों का दान देता है और लाखों योद्धाओं का अधिपति है ।

६४—मालवगढ के राजा की सुदर कन्या राजकुमारी मालवणी (उसकी स्त्री) है । ढोला का उससे अति अनुराग और स्नेहपूर्ण घनिष्ठ प्रेम है ।

(थ) । नलवर (क. ग. थ) गढि (थ) । ढोला तणी (ग) ढोला भणी (च.थ) । परणया (ख) । पुक्कर (घ) पुक्करि (थ) । माँम (क. ख. ग) ठाँमि (च.थ) ।

६१—ढोढ (क) । मारवी (ख) । त्रिह (ख) । बत सुणी सौदागरै जाण्यौँ सहु वृत्तत (ग. थ) । वात सुण सउदागरइ जाण्यउ सहु वृत्तत (च) बाळपण्यौँ (क. ख. ग) । परणी (क. ग) परणया (च) । विन्हें (च), विन्हइ (थ)=पछै । पडथौँ (क. ख. ग) ।

६२—कहै (घ) । एक करंत=करै एकंति (क. घ) । साँ (ख) । किम (ख) । भति (क) ।

६३—रूप अनूपम रूप (ख) रूपै अमर सरूप (ग) । लाख (क. ख) । लीयणां (क. ग) । लाखौँ (ग) ।

६४—सधू (ग) । प्रीत (ख. ग) ।

मई घोड़ा बेच्या घणा, रहियउ सास चियारि ।
 राति दिवस ढोलइ कन्हइ, रहतउ, राज दुवारि ॥६५॥
 राजा, कउ जण पाठवइ, ढोलइ निरति न होइ ।
 मालवणी मारइ तियउ, पूगळ पंथ जि कोइ ॥६६॥
 सदागर राजासुँ कह, सुणउ हमारी कथ ।
 मारवणी छानी रही, से मालवणी तथ ॥६७॥
 सही समोणी साथि करि मंदिरकूँ मल्हपंत ।
 सदागर नेड़ी घहइ, सुणिवा प्रीतम वत्त ॥६८॥

६५—मैंने वहाँ बहुत घोड़े बेचे और चार मास तक रहा । तब मैं रात दिन ढोला के पास राजद्वार में ही रहता था ।

६६—हे राजन् आप कोई आदमी भेजते हैं पर ढोला को खबर नहीं होती । जो कोई पूगळ के मार्ग पर होता है उसको मालवणी मरवा देती है ।

६७—सौदागर राजा से कहता है—हमारी बात सुनिए । जो मारवणी ढोला से अब तक छिपी रही उसका रहस्य मालवणी है ।

६८—समवयस्का सखियों को साथ लेकर मंदिर को जाती हुई मारवणी प्रियतम की बातें सुनने के लिये सौदागर के पास से निकलती है ।

६५—चीयार (क) । दुवार (क) ।

६६—जन (ग) । पाठवै (क. ख. ग) । पिंगळ दिनप्रति (च थ) पिंगळ राजा (ज)=राजा कउ जण । ढोला (च. ज. थ) । निरत (ज) । होय (ज) । मारै (क. ख. ग) । तिहाँ (च. थ) । सदा मारही=मारइ तियउ (ज) पूगळि (थ) । ज (च. ज), न (थ)=जि ।

६७—कहै (क. ख. ग) । कथ (ख) । मालवणी (क. ख. ग) । थ्यो=से (क) । हत्य (क) ।

६८—संति सखी (क. ख) साति सखी (घ) सह सामहणी (च) । साथे करे (क. ख) साथ कर (ग) । साथ (च) । वर आवै मयमत्त (ग) वरि आवइ मयमत्त (च. थ)= मंदिर कूँ मल्हपंत । सौदागर (क. ख) सौदागर (ग) । नडी (ग) साथी (ग) । वहै (क. ख. ग) । कावले संभालावत (ग) का वळि संभळि वत्त (च. थ) = सुणिवा प्रीतम वत्त ।

सडदागर सँदेसडा, सॉभळिया स्रवणेहि ।
 मारुवणी ते मन दहइ, मूक्यड जळ नयणेहि ॥६६॥
 सडदागर राजा कन्हइ, कहियड एह विचार
 रॉणी राय विमासियड, तेडइ, साल्हकुमार ॥१००॥
 राजा प्रोहित तेडियड, तू जाइ ढोलड ल्याव ।
 सखियो मारुनुँ कहइ, हुवड अणंद उड्याव ॥१०१॥
 रॉणी राजानूँ कहइ, मेल्हंड मॉगणहार ।
 मॉगणगारा रीभ्रवइ, ल्यावइ साल्हकुमार ॥१०२॥
 राजा प्रोहित राखिजइ, जिण की उत्तिम जाति ।
 मोकलि धररा मंगता, विरह जगावइ राति ॥१०३॥

६६—सौदागर के सदेशों को मारवणी ने कानों से सुना । उनसे मारवणी का मन सतत हो उठा और नयनों में आँसू बह चले ।

१००—सौदागर ने राजा के आगे ये समाचार कहे । (इसके पीछे) राणी और राजा ने परामर्श किया कि साल्हकुमार को बुला भेजें ।

१०१—राजा ने पुरोहित को बुलाया और कहा कि जाकर ढोला को ले आओ । यह सुनकर सखियो मारवणी से कहती हैं कि अब आनदोत्सव हुए ।

१०२—राणी राजा से कहती है कि याचकों को भेजो, याचक लोग साल्हकुमार को रिभ्रा लेंगे और उसे ले आवेंगे ।

१०३—हे राजा, पुरोहित को रहने दो जिसकी जाति उत्तम है । घर के याचकों को भेजिए जो रात्रि में विरह को जागरित करेंगे ।

६६—सौदागर (क. ख) । संभळीया (च) । श्रवणेह (क. ख) । मारुवणी प्रिय संभळौ (ख) मारवणी मनमथ हुई (क) मारुवणी मनि अंदोह घणी (ज) मारुवणी मनि ऊमह्यो (थ) ।

१००—तेडयो (ख) तेडो (घ) ।

१०२—मेल्हे (क) । गार्इ=गारा (घ) । ल्यावौ (ख) सुख पावै (क)= ल्यावइ । कुवार (ख) ।

१०३—बावा विप्र म मोकळे (ग च) बावा विप्र म कोळे (थ) ब्रांह्मण बाप म मोकळे (ज) । जांह (क. ख. ग) । उत्तिम (ख) सूधी (ङ) सीतळ (न) । जात (ग) । मेल्हे (क) मूके (ग. थ.) । का=रा (ख. थ) । मागता (च) मंगिता (थ) । पुकारै (क. ख) । रात (ग) । ज्यउँ विरह=विरह (च) ।

पाछइ प्रोहित राखियउ, तेढ़था मॉगणहार ।
 जे भेदक गीतौ तणा, वात करइ सुविचार ॥१०४॥
 ढाढी गुणी बोलाविया राजा तिणही ताळ ।
 नरवरगढ़ ढोलइ कन्हइ जावउ वागरवाळ ॥१०५॥
 सीख करे पिगळ कन्हौं, वर आया तिणिए वार ।
 भेल्लिह सखी तेढ़ाविया मारू मॉगणहार ॥१०६॥
 मारू सनमुख तेढ़िया, दियण सँदेसा कज्ज ।
 कहउ कदे थे चालिस्यउ, कौइ विहाणइ अज्ज ॥१०७॥
 आज निसह म्हे चालिस्यौं, वहिस्यौं पंथी वेस ।
 जउ जीव्या तउ आविस्यौं, मुया त उण्हिज देस ॥१०८॥

१०४—पीछे राजा ने पुरोहित को रोक लिया और याचकों को बुलाया जो संगीत के भेद जाननेवाले और खूब विचारकर बातें करनेवाले थे ।

१०५—राजा ने तत्काल गुणी ढाढियों को बुलवाया और कहा कि हे याचको, नरवरगढ़ ढोला कुमार के पास जाओ ।

१०६—ढाढी पिगळ से त्रिदा लेकर उस समय घर लौट आए । मारवणी ने सखी को भेजकर याचकों को बुलाया ।

१०७—मारवणी ने (प्रियतम का) सदेश देने के लिये ढाढियों को सन्मुख बुलवाया और कहा—कहो, तुम लोग कब प्रस्थान करोगे ? सवेरे या आज ही ?

१०८—ढाढियों ने उत्तर दिया—आज रात्रि को हम चल देंगे और पर्यक के वेश में चलेंगे । यदि जीते रहे तो आवेंगे और मर गए तो उसी देश में (रह जायेंगे) ।

१०४—प्रोहित घर ना राखिया (थ) । भेद (थ) । गीता (च) । जणा (थ) ।

१०५—गुणौ ढाढी (क) । तिणही ज (ग) । नळवर (क. ख. ग) । कुँवर=कन्है (क) । मॉगणवाळ (ख) ।

१०७—सनमुखे (क. ख) । कहण=दियण (क. ग) । काज (ख) कज (ग) । कटि (ग) का (क. ग) । आज (ख) अज (ग) ।

१०८—हूँ (क ख) । पपी (क ख) । जौ (क. ख) । जीवीया (क. ख. ग) जीवीया (थ) । आइस्यौं (ख) आवस्यौं (ग) । मुअौं (ख) मुहइ

मारुवणी भगताविया मारू राग निपाइ ।

दूहा संदेसों तणों दीया तियाँ सिखाइ ॥१०६॥

(मारुवणी का संदेसा)

नरवर देश सुहाँमणठ, जइ जावउ पहियाह ।

मारू तणा संदेसड़ा ढोलडनू कहियाह ॥११०॥

संदेसा ही लख लहइ, जउ कहि जाणइ कोइ ।

ज्युँ धणि आखइ नयण भरि, व्यँउ जइआखइ सोइ ॥१११॥

ढाढो, एक संदेसड़उ प्रीतम कहिया जाइ ।

सा धण बलि कुइला भई, भसम ढँढोलिसि आइ ॥११२॥

१०६—मारुवणी ने मारू राग मे बनाकर संदेस के दोहे कहे और उनको सिखा दिए ।

११०—नरवर देश सुहावना है । हे पथिको, यदि तुम वहाँ जाओ तो मारुवणी के संदेसे ढोला को कहना ।

१११—संदेसों से ही मन की दशा जानी जा सकती है, यदि कोई कहना जाने—जिस प्रकार प्रेयसी आँसुओं से आँखे भरकर कहती है उसी प्रकार यदि वह कहे ।

११२—हे ढाढी, जाकर प्रियतम से एक संदेसा कहना—तुम्हारी वह प्रेयसी जलकर कोयला हो गई है, तुम आकर उसकी भस्म को छूटना ।

(ग) मूआ (च) मुआ (थ) । तउ (च) । उणही (च. ज. थ) । देसि (च. ज. थ) । र्हॉकउ सज्जन तिह वसइ, जिहा चंदउ चउथइ देसि (च) म्हाका जज्जन जिहाँ वसइ, जिहाँ सुचंगौ वैदेस (ज) थॉका सज्जन जिहाँ वसइ, जिहाँ सुचंद चउथइ देसि (थ) । (प्रथम पंक्ति)

१०६—मारुवणी (ग. च. ज) । नपाय (ग) नीपाइ (च) नीपाय (ज. थ) । मिसै=तणा (ग) तीया (ग) तिहाँ (ज) तसु (च) । सिखाय (ग. ज) सीखाइ (च) ।

११०—सखी वाक्यं (क ख) ।

सुहावणौ (क) सुहामणौ (ख) । जउ (क) । ढोलानै (क) ।

१११—संदासा (ख) संदेसउ (च) । लहै (ख) लिख्या (क) । जै (ख) । जाँणै (क. ख. ग) । हूँ=धणि (क ख. ग) । देखूँ=आखइ (क. ख. ग) ल्युँ (क) तिम (ख)=ज्यउ । जउ (क) जै (ख)=जइ । देखै (क) अखै (ख) दाखै (घ) ।

११२—लणि पुहचाइ (ग) । सायधण (ख. ग) । कोइला (क. ग. ऋ) । हुई (ख. ग) । ढँढालिस (क) ।

ढाढी जे प्रीतम मिलइ, थुँ कहि दाखवियाह ।
 पंजर नहिँ छइ प्राणियउ, थौँ दिस भळ रहियाह ॥११३॥
 पंथि, एक संदेसइउ, भल माणसनइ भखख ।
 आतम तुम्ह पासइ अछइ, ओळग रूडा रखख ॥११४॥
 ढाढी, जे राज्यँद मिलइ, थुँ दाखविया जाइ ।
 जोवण हस्ती मद चढ्यउ, अंकुस लई घरि आइ ॥११५॥
 ढाढी, जे साहिब मिलइ, थुँ दाखविया जाइ ।
 आँग्यँ सीप विकासियाँ, स्वाति ज बरसउ आइ ॥११६॥
 ढाढी, एक संदेसइउ कहि ढोला समभाइ ।
 जोवण आँवउ फलि रह्यउ, साख न खाअउ आइ ॥११७॥

११३—हे ढाढी, यदि प्रियतम मिले तो इस प्रकार कहना—उसके पजर मे प्राण नहीं है, केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर जल रही है ।

११४—हे पंथिक, एक संदेशा उस भलेमानुस को कहो—उसकी आत्मा तुम्हारे पास है उसके गरीर को चाहे तुम दूर भले ही रखो ।

११५—हे ढाढी, यदि राजन् मिलें तो जाकर यों कहना—यौवनरूपी हाथी मदोन्मत्त हो गया है, तुम अकुश लेकर घर आओ ।

११६—हे ढाढी, यदि स्वामी मिलें तो जाकर यों कहना—आँखरूपी सीपियाँ विकसित हुई हैं (तुम्हारी प्रतीक्षा में खुल रही हैं), हे स्वाति, तुम आकर बरसो ।

११७—हे ढाढी, एक संदेशा ढोला को समभाकर कहना—यौवनरूपी आम्र फल रहा है, आकर उसकी फसल क्यों नहीं खाते ?

११३—पंथी एक संदेशइउ ढोलानइ कहीयाँ (च. ज थ) । पिंडि नही छइ प्राणियउ ऊथि कथे लहियाह (च) पिंड सही छै प्राहुणो ओथे किय लहीयाह (आ) । छे (क घ) । प्राहुणो (न) । ओधे के लहियाह (क) ऊथे केया लहिया (घ) ऊथ किये लहियाह (न) ऊठतक लिळलियाह (ध) । छइ लहीयाह (थ) ऋळ रहियाह ।

११४—भासि (ज) लिख (थ) । मुभ (थ) । ऊळग (थ) । राखि (ज) ।

११५—प्रीतम=राज्यँद (स) । पंथी एक संदेशइउ (थ)=ढाढी० । इउँ कहि दापवीयाह (स) ढोला लागि ले जाइ (ज थ) । योवन (क) जोवन (ख) ज्युँ गुडे (ख) थुँ गुड्यौ (क) जु जुड्यौ (ज) गडवढ्यउ (थ)=मद चढ्यउ । तुँ अंकुस (च) । घी ये=ले घरि (ख) । आव (क) आउ (च) ।

११६—ढाढी एक संदेशडे ढोलै लागि पहुचाइ (ग) । इउँ कहि दाप-वीयाह

ढाढी, जइ प्रीतम मिलइ, यूँ दाखविया जाइ ।
 जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न बइसउ काइ ॥११८॥
 ढाढी, जइ साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ ।
 जोबण कमळ विकासियउ, भमर न बइसइ आइ ॥११९॥
 ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लागि लइ जाइ ।
 जोबन चाँपउ मउरियउ, कळी न चुट्टइ आइ ॥१२०॥
 ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लागि लइ जाइ ।
 कण पाकउ, करसण हुअउ, भोगलियउ घरि आइ ॥१२१॥

११८—हे ढाढी, यदि प्राणाधार मिलें तो जाकर इस प्रकार कहना—
 यौवन ने छत्र उठाया है, हे राजन् (उसकी छाया मे आकर) क्यों नहीं
 बैठते ?

११९—हे ढाढी, यदि स्वामी मिले तो जाकर यो कहना—यौवनरूपी
 कमल खिल गया है, हे भ्रमर, तुम आकर क्यों नहीं बैठते ?

१२०—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—यौवनरूपी चपा
 मौरयुक्त हो गया है । तुम आकर कलियाँ क्यों नहीं चुनते ?

१२१—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—खेती हो गई,
 अन्न पक गया, तुम घर आकर अपना भोग लो ।

(ख) । आँखि (ख) अख्यां (ग) । सीची (ग) । विकसीयो (ग) । वैकस्सीयाँ
 (ग) । स्वाति = स्वातिज (ख. ग) ।

११८—जउ (क) । ढाढी एक सँदेसउ (ग. च) । इउं कहि दाख-वीयाह
 (ख) प्रीतम लागि पहुँचाइ (ग) कहि ढोला समभाइ (च) । योवन (क)
 जोबन (ख) । छँहन (घ) छजै (च. ज)=राज न । वयसौ (क. ख. ग) ।
 आइ (क. ख. ग) ।

११९—ढाढी एक सँदेसड़उ प्रीतम कहियौ जाइ (ग) । इउँ कहि दाष-
 वीयाह (ख) । योवन (क) जोबन (ख) । विकस्सीयो (ग) । वयसउ (क)
 चयठउ (ख)=न बइसइ । कळीयाँ मउरीयाँ (च)=कमळ विकासियउ ।

१२०—केवल (च) में ।

१२१—केवल (च) में ।

ढाढी, एक सँदेसडउ ढोलइ ललल लइ ऑइ ।
 ऑवण फट्टल तलावडु, ढालल न वंधउ कौइ ॥१२२॥
 ढंधी, एक सँदेसडउ लग ढोलउ ढैहऑाइ ।
 वलरह महादव ऑलगलर, अगलन वुभावउ आइ ॥१२३॥
 ढही, भसंता ऑइ ढललइ, तउ ढ्री आखे भाड ।
 ऑवण वंधन तौडसइ, वंधण वातउ आड ॥१२ॡ॥
 ढंधी, एक सँदेसडउ लग ढोलइ ढैहऑाइ ।
 नलकसी वेणी साढणी, स्वात न वरसउ आइ ॥१२ॡ॥
 ढंधी, एक सँदेसडउ लग ढोलइ ढैहऑाइ ।
 तन मन उतर ढाललड, दखलण वाऑइ आइ ॥१२ॢ॥

१२२—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले ऑाओ—ऑौवनरूढी तलैया फूट ऑली है, क्या तुम आकर ढाल नहीं वौवुंगे ?

१२३—हे ढथलक, एक सँदेसा ढोला तक ढहुँऑाओ—वलरहरूढी ढरऑ ढावानल ढरऑललन हो गडा है, आकर अढल कौ वुभाओ ।

१२ॡ—हे ढथलक, भरण करते हुए डदल ढललो तो हे भाई, मेरे ढुरलतम से कहना—ऑौवन वंधन तौड देगा, तुम आकर वंधन डालो ।

१२ॡ—हे ढथलक, एक सँदेसा ढोले तक ढहुँऑाओ—वेणीरूढी नागलन नलकली है, तुम आकर स्वातल का ऑल वरसो न ।

१२ॢ—हे ढथलक, एक सँदेसा ढोला तक ढहुँऑाओ—तन आुर मन कौ उतरनात (शलशलरवात) ने ऑला दलडा है, हे ढाऑलणतुड ढवन तुम आकर ऑलो ।

१२२—ढंधी (क) । सँदेसडुँ (क) । लग ढोला ढैहऑाहल (क) । वलरह महाऑल ऑमऑुँ (क) ढाल ऑु वंधौ आड (क) ।

१२३—ये अगलन=अगलन (क) ।

१२ॡ—गऑ ऑवण=ऑवण (क) ।

१२ॡ—ढैहऑाहल (क) । नलवसी (क) । ये स्वात=स्वात (क) आड (क) ।

१२ॢ—ढैहऑाइ (क) । वाळीयै (क) । ये ढषलण=ढखलण (क) । आड (क) ।

डंथी, ँक संदेसडइ लड ढोलइ डैहचुडलइ ।
 वलरह डहलवलस तन वसइ, अओखद दलडइ न अलइ ॥१२७॥
 डंथी, ँक संदेसडइ लड ढोलइ डैहचुवलइ ।
 वलरह वलघ वनल तनल वसइ, सेहर डलऑइ अलइ ॥१२८॥
 डंथी ँक संदेसडइ लड ढोलइ डैहचलइ ।
 धँण कँडललँणी, कडदणी, सलसहर उडइ अलइ ॥१२९॥
 डंथी ँक संदेसडइ लड ढोलइ डैहचुडलइ ।
 धँण कँडललँणी कँडललणी, सुलरलऑ उडइ अलइ ॥१३०॥
 डंथी, ँक संदेसडउ लड ढोलइ डैहचुडलइ ।
 ऑवन खीर सडुंदुर हुइ, रतन ऑ कलढइ अलइ ॥१३१॥

१२७—हे डथलक, ँक संदेसल ढोलल तक डहुँचलअओ—वलरहरुडी डहल-
 वलष शरीर डे वुडलड रहल है, अलकर अओषधल कुडुँ नहुँल देते ?

१२८—हे डथलक, ँक संदेसल ढोलल तक डहुँचलअओ—वलरहरुडी वलघ
 तनरुडी वन डे वसतल है, तुड शलखर डर अलकर डरऑन करु ।

१२९—हे डथलक, ँक संदेसल ढोलल तक डहुँचलअओ—डुरेडसीरुडी कुडु-
 दलनी कुडुहलल डरई है, हे चदुर, तुड अलकर उदड हुओओ ।

१३०—हे डथलक, ँक संदेसल ढोलल तक डहुँचलअओ—डुरेडसीरुडी
 कडललनी कुडुहलल डरई है, हे सुूरुड तुड अलकर उदड हुओओ ।

१३१—हे डथलक, ँक संदेसल ढोलल तक डहुँचलअओ—डुवन ऑीरसलडर
 दुु रहल है, तुड अलकर रलत तु डलकललु ।

१२७—संदेसडुँ (क) । डहल (क) । उषद (क) । दीडुँ (क) । अलड (क) ।

१२८—संदेसडुँ (क) । वलरहल (क) । थँ सेहर=सेहर (क) । डलऑे अलड
 (क) ।

१२९—कडुुडीनी (क) । सीसहर थ उडुँ अलड (क) ।

१३०—संदेसडुँ (क) । धँणल (क) । सुलरऑ उडुँ (क) ।

१३१—संदेसडुँ (क) । सुंडुर (क) । हुडुँ (क) । थे रतन ऑ कलढे
 अलड (क) ।

पंथी एक संदेसड़ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
 जंघा केळिनि फळि गई, स्वात जु, वरसउ आइ ॥१३२॥
 पंथी, एक संदेसड़ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
 सावज सबळ तोड्म्यइ, वैसासणइ न जाइ ॥१३३॥
 पंथी, एक संदेसड़ लग ढोलइ पैहच्याय ।
 जावन जायइ प्राहुणउ वैमडरउ घर आय ॥१३४॥
 पही, भमतउ जउ मिलइ, कहे अम्हीणी वत्त ।
 वण कण्णयररी कंष व्यउ सुकी तोइ सुरत्त ॥१३५॥
 पंथी, एक संदेसड़ कहिव्यउ सात सलाम ।
 जवथी हमतुम वीछुडे, नयणे नीद हरोम ॥१३६॥

१३२—हे पथिक, एक संदेसा ढोला तक पहुँचाओ—जवारूपी कदली फल गई है; हे प्रियतम, तुम आकर स्वातिजल वरसो ।

१३३—हे पथिक, एक संदेसा ढोला तक पहुँचाओ—स्वाद पाथंय (भोजन) से हो मिटजा है, विवास से नहीं ।

१३४—हे पथिक, एक संदेसा ढोला तक पहुँचाओ—बौवनरूपी अतिथि (घर आकर निगश) लौटा ना रहा है । जल्दी घर आओ ।

१३५—हे पथिक यदि घूमते हुए तुम ढोला से मिलो तो हमारी यह बात कहना—प्रेयसी तुम्हारी सुरत (याद) में कनेर की छडी के समान सूख गई है ।

१३६—हे पंथी, मेरा एक संदेसा है । मेरे प्रियतम को सात सलाम

१३२—जव (क) । आय (क) ।

१३३—संळ (क) । तोटस (क) । जाय (क) ।

१३५—पुहो (ग) । भमतो (ग) । जो मिल (ग) । ढाढी जे राजिंद मिल (र) । ढाढी जे ढोलै मिल (क) । तं कण्ण अम्हीण वत्त (क) कहिया एह सुवत्त (ख) कहिया वत्त सुवत्त (त) । तो अखे (ग) अखे (च.ज)=कहिया । वत्त (ग) वत्त (ज) । कण्णयर (ख) कण्णयर (च) । की=री (च) । काँव (ख. ग) । शुं (च) । सुमी (र.) त । तोहि (क) तोही (ज) । सुरत (ग) । (च. में यह शोहा दो स्थान पर आया है—नं० ३६३ और ४०८ में 'कण्णयर' के स्थान पर 'कैसर' है) ।

१३६—ढाढी एक संदेसो (क) । दिस सजणां सलाम (क) दिस सजणां सलाम (ज) । पथी इक दिस सजणां कहियो सात सलाम (थ) । तुम्ह (च. ज) । थो त्रियुडया (ज)=वीछुडे । वीछुड्या (क) । जव हमि तुम्हि थो वीछुडे (थ) । तव थो नाँद हराम (क) ।

पंथी हाथ सँदेसड़इ, धण बिललंती देह ।
 पगसूँ काढइ लीहटी, उर आँसुआँ भरेह ॥१३७॥
 ढोला, ढीली हर किया, मूँक्या मनह विसारि ।
 सँदेसउ हन पाठवइ, जीवों किसइ अधारि ॥१३८॥
 ढोला, ढीली हर मुक्क, दीठउ घणो जणेह ।
 चोल बरन्ने कपपड़े, सावर धन अणेह ॥१३९॥
 कागळ नहीं, क मस नहीं, नहीं क लेखणहार ।
 सँदेसा ही नाविया, जीवुँ किसइ आधार ॥१४०॥
 कागळ नहीं, क मसि नहीं, लिखतों आळस थाइ ।
 कह उण देस सँदेसड़ा, मोलइ वड़इ विकाइ ॥१४१॥

कहना और कहना कि जब से हम तुम बिछुड़े हैं तभी से आँखों को नींद हराम है ।

१३७—मारवणी विलाप करती हुई पथिक के हाथ सँदेसा देती है, पैर से (पृथ्वी पर) रेखा खींचती है और अपना हृदय आँसुओं से भर लेती है ।

१३८—हे ढोला, तुमने प्रेम को शिथिल कर दिया और मुझे मन से बिसार दिया है । सँदेसा तक नहीं भेजते, बताओ किस आधार पर जिएँ ।

१३९—हे ढोला, मेरी प्रेमस्मृति को शिथिलकर, मजीठ रग के बख्तों में (अर्थात् दूल्हे की पोशाक में) उस अन्य पत्नी को ब्याहकर लाते हुए तुमको बहुत से लोगों ने देखा है ।

१४०—कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखनेवाला नहीं है ? तुम्हारे सँदेसे नहीं आएँ, मैं किस आधार पर जियूँ ।

१४१—कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखते हुए आलस्य होता है । या उस देश में सँदेशे बड़े मूल्य पर बिकते हैं ।

१३७—सँदेसडे (क) सँदेसडो (ज) । बिलवती (ज) । स्यौँ (ज) लीइढी (ज) । ए भरेय (क)=नयण भरेह ।

१३८—धर (च) मन (छ) घर (न)=हर । कीया (च) । बीसारि (च) । जन (द) । आधारि (च) ।

१३९—ढोलू (च) ढोलो (ट) । टीली (च) । ढाली (ट) । हरडे (ज) हारडे (छ)=हर मुक्क । ढीठा (ट) । जणेहि (च) । लाल सुरंगे कपडे (ट) । सावरते नयणेंहि (च) ।

१४०—ज (क. व)=क । मिस (क) । लिखणहार (क. ख. घ) । जीवों किस (ख. घ. क) । अधार (क) ।

१४१—कइ लिखतां=लिखताँ । मोल (च. छ) । विकवाइ (छ) ।

वायस वीजड नाँम, ते आगलि लल्लउ ठवइ ।
जइ तू हुई सुजाँइ, तउ तू वहिलउ मोकळे ॥१४२॥
सँदेसउ जिन पाठवइ, मरिस्यउँ हीया फूटि ।
पारेवाका मूल जिउँ पड़िनइँ आँगणि तूटि ॥१४३॥
सँदेसा मति मोकळउ, प्रीतम, तू आवेस ।
आँगुलडी ही गळि गयोँ, नयण न वाँचण देस ॥१४४॥
फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि ।
चाचरिकइ मिस खेलती, होळी भुपावेसि ॥१४५॥
जइ तू ढोला नावियउ, कइ फागुण कइ चेत्रि ।
तउ म्हे घोड़ा बाँधिस्योँ, काती कुडियोँ खेत्रि ॥१४६॥

१४२—गयस का जो दूसरा नाम (अर्थात् काग) है उसके आगे लकार रखकर—अर्थात् कागल (पत्र)—यदि तुम सुजान हो तो तुरंत भेज देना ।

१४३—(निठुर,) सँदेसा भी नहीं भेजते, मैं हृदय फटकर मर जाऊँगी, कबूतर का भूला जैसे आँगन में गिरकर दूट जाता है ।

१४४—हे प्रियतम, सँदेसा मत भेजो, तुम्हीं आ जाओ । मेरी अँगुलियाँ भी गल गई हैं और मेरी आँखें मुझे वाँचने नहीं देती ।

१४५—वसंत ऋतु के फाल्गुन मास में यदि मैं तुमको आया हुआ नहीं सुनूँगी तो चर्चरी नृत्य के मिस खेलती हुई होली की ज्वाला में फाँद पढ़ूँगी ।

१४६—हे ढोला, यदि तुम या तो फाल्गुन में या चैत्र में नहीं आए तो हम ही कार्तिक में, फसल कट जाने पर, घोड़ों पर जीन कसँगी ।

१४२—लल्लउ (च) । ठवि (च) । तुं हुई (च) ।

१४३—मूल=कूल (च) ।

१४४—सँदेसउ जन पाठवइ (च) । अत=मति (क) । प्रीतम (क) । आवेह (ख) । जन कागळ लिखि देई (च)=प्रीतम० । कागज ही (क. ख. ग) । आगळ का ही गळ गया (क) । ए = न (च) वाचण देइ (च) । देह (ख) । धार खँदेस= वाँचड देश (क) ।

१४५—मास (क. ख. ग. थ) । रितु (ख. ग. ज. थ) । जो प्रीतम नावेस (क) जउ तूँ ढोला नावेसि (च) । लउ ढोला नावेसि (थ) । जै (ग) । चाचर कै (क. ख) तौ चाँचर (ग) तउ चचिरि (च) । मिसि (थ) । माँफ भरेस (क) माँफ भरंसि (ख) माँफ मरेस (ग) ।

१४६—जे (ज) । तुं (च) । नावीये (क. ग) । का (ग. ज) । फागुण=

जउ साहिव तू नावियउ, मेहॉ पहलइ पूर ।
 विचइ वहेसी वाहळा, दूर स दूरे दूर ॥१४७॥
 सज्जणिया, सावण हुया, धड़ि उलटी भंडार ।
 विरह महारस ऊमटइ, के ताकहूँ सँभार ॥१४८॥
 जउ तूँ साहिव, नावियउ सावण पहिली तीज ।
 बीजळ तणइ भवुकइइ मूँध मरेसी खीज ॥१४९॥
 जइ तूँ ढोला, नावियउ काजळियारी तीज ।
 चमक मरेसी मारवी, देख खिवंतौ वीज ॥१५०॥

१४७—हे नाथ, जो तुम मेघों के प्रथम धारापात पर नहीं आए तो वीच में नाले बहने लगेंगे और जो दूर है वह दूर से भी दूर हो जायगा ।

१४८—हे साजन, यह सावन आया, पृथ्वी ने अपना गुप्त भंडार उलट दिया । विरह का महा जलप्रवाह उमड़ रहा है, उसको कौन सँभालेगा ?

१४९—हे नाथ, यदि तुम सावन की प्रथम तीज पर नहीं आए तो बिजली की चमक से मुग्धा मारवणी खिजलाकर मर जायगी ।

१५०—हे ढोला, जो तू कजरी की तीज पर नहीं आया तो बिजली को चमकती हुई देखकर मारवणी चौंककर मर जायगी ।

फागुण (क) । का (क ग. ज) । चैत (ग) । चैति (थ) । म्हेई (क. ज) तो अम्हेई (ग) कह तो म्हे (थ) = तउ म्हे । बांधिस्यां (क) बांधस्यां (ग. ज) कुडीयाह (क) कुडीये (ज) कुडस्यां (ग) ऊडइ (थ) । खेत्र (ग. ज) खेति (थ) । तो मै लेसूँ ल्हासिउ काती राम रखेत्र (ध) ।

१४७—जे (क. ख) जै (ग) । तुं (च. ज) तूं (थ) । ढोला (च. ज. थ) नावीयौ (क. ख. ग) । मेहा (च) सावण (क. ख) मे श्रावण (ग) । पहलै (क. ख) पहली (ग) पहले (थ) । पूरि (च. थ) विचै (क. ग) तौ आडा (ख) । बहिसी (ख) वइइला (च) वहेस्यइ (थ) दूरि (क. ख. ग. च. थ) ।

१४८—साजणियां (थ) सजनी (ज) । हुआ (ज) हुआ (थ) । सावण (च) । घट्ट (ज) घड़ि (थ) । उलट्टीयौ (ज) भंडारि (थ) । ऊमट्टउ (थ) । संभारि (थ) ।

१४९—जे (ख) । ढोला = साहिव (च) । ढोला जे तूँ नावीयइ (क) श्रावणि (च) सावणि (थ) । पहली (क) । तीज (क. च. थ) । जवुकइ (क. ख) । बीजलीयौ विललाईयौ (च. थ) । मेरस्यइ (थ) । खीजि (च थ) । उथ खिवेजी वीजळी रा धण मसै खीज (क) साइधण हियडो फूटसी देखि खिवंती वीज (न) ।

वीजुळियाँ जाळउमिल्याँ, ढोला, हूँ न सहेसि ।
 जउ आसाढि न आवियउ, सावण समकि मरेसि ॥१५१॥
 वीळ, न देख चहड्डियाँ प्री परदेस गयाँह ।
 आपण लीय भवुकडा, गळि लागी सहराँह ॥१५२॥
 वीजुळियाँ पारोकियाँ नीठ ज नीगमियाँह ।
 अजइ न सज्जन बाहुदे, बळि पाछी वळियाँह ॥१५३॥
 जउ तूँ ढोला, नावियउ मेहाँ नीगमतौँह ।
 किया करायइ सज्जणा दाधा माँहि घणाँह ॥१५४॥

१५१—विजलियों के जाल मिल रहे हैं । मैं यह नहीं सहूँगी, जो तुम
 आपाढ में नहीं आए तो मैं सावन में चौककर मर जाऊँगी ।

१५२—हे विजली, ऊँची चढी हुई तुम परदेश गए हुए दूसरों के प्रिय-
 जनों को नहीं देखती जो तुम स्वयं शिखरो के गले लगकर क्रीड़ा करती हुई
 चमक रही हो ।

१५३—परकीया नायिकाओं की भाँति विजलियाँ बड़ी ही कठिनता से
 गई थीं । हे साजन, तुम अभी तक नहीं लौटे और वे (विजलियाँ) फिर
 लौट आईं ।

१५४—हे ढोला, यदि तुम मेघों के जाते नहीं आए तो हे साजन,
 मेघों से परिपूर्ण ऋतु में भी मेरे किए कराए (सौभाग्य, अथवा पुण्य)
 जल जायेंगे ।

१५१—वीजुका (ज) । जाळुमला (ज) विललाइयाँ (थ) । सहेस (ज)
 आसाढ (ज. थ) । तो श्रावण (च) । समक (ज) चमकि (थ) । मरेस (ज) ।

१५२—केवल (ट) में ।

१५३—वोजलीया (ट) । परोकियाँ (ट. च) । परणीयां (ट) । नीठे जी
 गमियाह (ट) । ढोला आगळि इँडे कहे (च)=अजइ० । बल (ट) वीजळि=
 पाछी (च) ।

१५४—जै (ग) । साहिव (ग) ढोला । मेहा (च ज) । नीगम-ताह
 (ग) । तौ कीयाँ करायौ (ग) कि कीजइ तीयाँ (च) कीया कराय (थ) ।
 सजनां (ग. ज) । दीधो (ग) दीधा (ज) दीधी (थ. ध) माहि । (च) मही ।
 (ज) नहीं (थ) सक (ध) । घणाँह (ज) हीयाँह (ध) ।

वहिलउ ध्याए वल्लहा, नागर चतुर सुजॉण ।
 तुम्हविण धण विलखी फिरइ, गुणबिन लाल कमाण ॥१५५॥
 राति ज रूँनी निसह भरि, सुणी महाजनि लोइ ।
 हाथाळी छाला पड़या, चीर निचोइ निचोइ ॥१५६॥
 ढोला, मिलिसि म धीसरिसि, नवि आविसि ना लेसि ।
 मारू तरणइ करकडइ वाइस उढावेसि ॥१५७॥
 हियइइ भीतर पइसि करि उगउ सज्जण रूँख ।
 नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख ॥१५८॥
 अकथ कहाणी प्रेमकी किणसूँ कही न जाइ ।
 गूंगाका सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ ॥१५९॥

१५५—हे नागर चतुर सुजान प्यारे, शीघ्र आना । तुम्हारे बिना प्रेयसी उदास फिरती है, जिस प्रकार प्रत्यचा के बिना लाल कमान ।

१५६—कल जो मैं रात भर रोई तो गुरुजनों (तक) ने सुना । (और) साडी को निचोड़ते निचोड़ते मेरी हथेलियों में छाले पड गए ।

१५७—हे ढोला, न तो मिलते हो, न आते ही हो और न ले जाते हो । (फिर आकर) मारवणी के अस्थिपजर पर कौवो को उड़ावोगे ।

१५८—मेरे हृदय में प्रविष्ट होकर साजन रूपी वृद्ध उगा है । वह नित्य सूखता है और नित्य पल्लवित होता है जिससे नित्य नए नए दुःख देखने पड़ते हैं ।

१५९—प्रेम की अकथनीय कहानी किसी से नहीं कही जाती । वह गूंगे के स्वप्न की भाँति हो गई है जिसे वह याद करके पछुताता है (क्योंकि किसी से कह नहीं सकता) ।

१५५—वैगौ (क. ख. घ) वहिलौ (ग) । आवै (ग) आवे (च. ज) आवि (घ) । वालहा (च) । नागरि (ग) । तो=तुम्ह (क. ख. घ) । धन (ग) । फिरै (क. ख. ग. घ) । ज्युं गुण (क. ख. ग. घ) । ज्यउ गुण (च ज)=गुण ।

१५६—सर्हाजन (ज. थ) । हाथाळी (थ) । छालया (च) । निचोय निचोय (ज) ।

१५७—साहिव (क. ख. ग) साहिव (झ) । मिलिस (क. ख. थ) मिलस (झ) । न (क. ख) = म । वीसरसि (च. ज) वीसरिस (झ) । न (क. ख. थ) ना (थ) । आविसि (ख) आवस (क) आवसि (थ) आवेस (ज. झ) । न लेस (क. व. झ) तरणै (क. ख. झ) तरण्य (च. ज) वायस (च. ज) ।

१५८—हीया (ख. झ) हीयै (क. घ) । माही (ख. झ) । कै (ज)=करि ।

प्रीतम, तोरइ कारणइ ताता भात न खाहि ।
 हियड़ा भीतर प्रिय बसइ, दाभएती डरपाहि ॥१६०॥
 चंदणदेह कपूररस सीतळ गंगप्रवाह ।
 मनरंजण, तनउल्हवण, कदे मिलेसी नाह ॥१६१॥
 मत जाणो प्रिउ, नेह गयउ दूर विदेस गयोह ।
 विदणउ बाधइ सज्जणों ओछउ ओहि खळोंह ॥१६२॥
 हूँ कुँमलाणी कंत विण, जळह विहूणी वेल ।
 विणजारारी भाइ जिउँ गया धुकंती मेल्ह ॥१६३॥
 आडा डूँगर, वन घणा, आडा घणा पलास ।
 सो साजण किम वीसरइ, बहु गुणतणा निवास ॥१७४॥

१६०—हे प्रियतम, तुम्हारे कारण मैं गर्म भात नहीं खाती । हृदय में प्यारा निवास करता है उसको जला देने के भय से डरती हूँ ।

१६१—हे मन को रजन करनेवाले, शरीर को स्पर्श ने उल्लसित करने वाले और चंदन, कपूर रस तथा गंगा के प्रवाह के समान शीतल गातवाले नाथ, कब मिलोगे ?

१६२—हे प्यारे, यह मत जानना कि दूर विदेश में जाने से स्नेह भी चला गया । विद्युडने पर सज्जनों का प्रेम दुगुना बढ़ता है और दुष्टों का श्रोद्धा होता जाता है ।

१६३—मैं कत के बिना कुम्हला गई जिस प्रकार जलविहीन लता । मेरा प्यारा मुझे वजारे की भट्टी के समान सुलगती हुई छोड़कर चला गया ।

१६४—हमारे बीच में बहुत से पर्वत और वन हैं तथा बहुत से राक्षस (दुर्जन) बीच में है । तो भी वे साजन किस प्रकार भूले जा सकते हैं जो अनेक गुणों के घर हैं ।

उगा (ख. क) । नित (क. ख. य. ज) । पालवै (ज. क) पलवै (घ) । नित (ख. घ) नित (क) नितु (ज) = नित नितः । नवलै (ज) । दूख (क) ।

१६०—खाव (ख) । प्री (क. घ) । मैं = ती (क) । डरपाव (ख) ।

१६१—चंदन (ग) । काच=देह (ग) । उल्हवण (ख. ग) उल्लवण (घ) । मिलेस्यौ (ख. ग) ।

१६२—केवल (क) में ।

१६३—केवल (क) में ।

१६४—केवल (क) में ।

आँखड़ियाँ डंबर हुई, नयण गमाया रोय ।
 से साजण परदेसमई रह्या विडाणा होय ॥१६५॥
 मुख नोसॉसॉ मूँकती, नयणे नीर प्रवाह ।
 सूळी सिरखी सेम्ढो तो विण जाणे नाह ॥१६६॥
 वालँभ, एक हिलोर दे, आइ सकइ तउ आइ ।
 बॉहड़ियाँ वे थक्कियाँ काग उडाइ उडाइ ॥१६७॥
 जिम सालूराँ सरवराँ, जिम धरणी अर मेह ।
 चंपावरणी वालहा, इम पाळीजइ नेह ॥१६८॥
 वालिभ गरथ वसीकरण वीजा सहु अकयथथ ।
 जिए चड्या दळ उत्तरइ, तरुणि पसारइ हथथ ॥१६९॥
 वासर चित्त न वीसरइ, निसिभरि अवर न कोइ ।
 जइ निद्रा भरि भोगवूँ, तउ सुपनंतरि सोइ ॥१७०॥

१६५—मेरी आँखें (फूलकर) लाल हो गई, मैंने अपनी दृष्टि रो रोककर खी दी और वे साजन परदेश में पराए हो रहे ।

१६६—मुख से निःश्वास छोड़ती है, आँखोंसे जल वह रहा है । हे नाथ, तुम्हारे बिना सेज को शूली के सदृश समझनी है ।

१६७—हे वल्लभ, मेरे हृदय में आनंद की एक हिलोर उठाओ, आसको तो आओ । मेरी दोनो बॉहे काग उडाते उडाते थक गई हैं ।

१६८—जिस प्रकार मेढ़क और सरोवर, एव जिस प्रकार पृथ्वी और मेघ, स्नेह निभाते हैं उसी प्रकार हे प्यारे, चंपकवर्णी प्रेयसी के साथ स्नेह निभाइए ।

१६९—एक प्यारा ही वशीकरण धन है और सब अकारथ है, जिसके प्रेम का मद चढने से और सब मद उतर जाते हैं और युवती व्याकुल होकर हाथ फैलाने लगती है ।

१७०—प्रियतम दिन मे चित्त से नहीं भूलते, रात भर और कोई

१६५—केवल (क) में ।

१६६—केवल (क) मे ।

१६७—केवल (च) में ।

१६८—केवल (क) मे ।

१६९—केवल (च) मे ।

१७०—निद्रा (घ)=निसि । भर (ख. घ. क) भोलउँ (क) । सुपनंतर (घ) ।

सोरठा

जेती जट मनमोहि, पंजर जइ तेती पुळइ ।
मनि वहराग न थाइ, वाल्लभ वीछुडियाँ तणी ॥१७१॥

दूहा

फूलों फळाँ निघट्टियाँ, मेहाँ धर पडियाँह ।
परदेसोंका सज्जणा, पत्तीजूँ मिळियाँह ॥१७२॥
सालूरा पौणी विना रहइ विलक्खा जेम ।
ढाढी, साहिदसूँ कहइ, मो मन तो विण एम ॥१७३॥
पावस मास, विदेस प्रिय धरि तरुणी कुळमुग्ध ।
सारंग सिखर, निसद करि, मरइ स कोमळ मुग्ध ॥१७४॥

वात चित्त में नहीं आती । यदि मर नींद सोती हूँ तो स्वप्न में भी वही दिखाई देते हैं ।

१७१—जितनी (अभिलाषाएँ) मन में हैं उतना यदि शरीर टौढ़े तो प्राणवल्गम से विछुड़ने की मन में विगक्ति न हो ।

१७२—फूलों में फलों के लगने पर और मेहों के पृथ्वी पर पड़ने पर प्रीति होती है, उसी प्रकार हे परदेशी प्यारे; तुम्हारे मिलने पर ही मैं पतिप्राऊँगी ।

१७३—मेटक लिम प्रकार पानी के विना विफल रहते हैं, हे ढाढी तू स्वामी को कहना कि उसी प्रकार मेरा मन तुम्हारे विना व्याकुल है ।

१७४—वर्षा का महीना है, प्रियतम विदेश में है और शुद्ध कुलवाली प्रिया घर में है । शिखर पर मोर शब्द करता है, कहीं कोमलांगी मुग्धा मर जायगी ।

१७१—तेती (क) जोती (क) । जाइ = माहि (ख) । तौँ=जइ (क. घ) । वेदन न हूँवे (क. घ त)=मनि वहराग न । काय (क) काई (घ)=थाइ । वाल्लों (ख) ।

१७२—निघट्टियाँ (ख) शकटीया (ग) नवहीयाँ (ज) । निफूलियाँ (क) । मेह (घ) । धरि (ज) पडियाँ (ग) । रा=का (ज) । पत्तीज्युं (ग) पत्तीजुं (ज) ।

१७३—गालग (ग) विलपी (घ) ।

१७४—विदिस (घ) । प्री (घ) । घर (ख) । मरइ (ख) नसद (क) । सु=स (क) । मूध (घ) मुंघ (ख) ।

तुँही ज सज्जण, मित्त तूँ, प्रीतम तूँ परिवर्ण ।
 हियडह भीतरि तूँ वसइ भावइँ जाण म जाँण ॥१७५॥
 हूँ बलिहारी सज्जणों, सज्जण मो बलिहार ।
 हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गळहार ॥१७६॥
 लोभी ठाकुर, आवि घरि, काँई करइ विदेसि ।
 दिन दिन जोवण तन खिसइ, लाभ किसानकउ लेसि ॥१७७॥
 बहु धंधाळ आव घरि, काँसू करइ वदेस ।
 संपत सघळी सपजे, आ दिन कही लहेस ॥१७८॥
 अवसर जे नहि आविया, वेळा जे न पहुत्त ।
 सज्जण तिण सदेसइ करिज्यउ राज बहुत्त ॥१७९॥

१७५—तू ही सज्जन है, तू ही मित्र है, तू निश्चय ही प्रियतम है ।
 मेरे हृदयके अदर तू बसता है, इस बात को तू चाहे जान या न जान ।

१७६—मैं प्रियतम पर बलिहारी हूँ और प्रियतम मुझ पर बलिहार हैं
 मैं प्रियतम के पावों की जूती हूँ और वे मेरे गले का हार हैं ।

१७७—हे लोभी स्वामी, घर आओ । विदेश में क्या करते हो ? दिन
 दिन यौवन और शरीर गल रहा है । कौन से लाभ प्राप्त करोगे ?

१७८—बहुत धधोवाले (प्रियतम), घर आओ, किसके कारण विदेश
 वास करते हो ? यौवन की सब संपत्ति इसी समय संचित हो रही है । यह
 सुदिन फिर कब पाओगे ?

१७९—जो अवसर पर नहीं आए और समय पर जो नहीं पहुँचे
 तो—उन सज्जन से सदेश कहना कि तुम फिर बहुत दिनों तक राज्य
 करते रहना ।

१७५—तू ही (ख) । मित्र (क. ख. घ) । परमाण (क) परवाण (घ) ।
 हीयै (क) । भीतर (ख) ।

१७६—केवल (क) में ।

१७७—केवल (घ) में ।

१७८—केवल (ट) में ।

सोरठा

संभारियाँ सँताप, वीसारिया न वीसरइ ।
कालेजा विचि काप, परहर तूँ फाटइ नहीं ॥१८०॥

दूहा

यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरगिग ।
मुक्क प्रिय वदल होइ करि, वरसि वुम्मावइ अगिग ॥१८१॥
भरइ, पळटइ, भी भरइ, भी भरि, भी पळटेहि ।
ढाढी हाथ सँदेसडा, धण विललंती देहि ॥१८२॥
दूहा सँदेसा मिसइँ दीधा तिणौँ सिखाइ ।
प्रीतम आगळि वीनती करिया इणि विधि जाय ॥१८३॥

१८०—स्मरण करने से सताप होता है, भुलाने से नहीं भूलते । कलेजा भीतर से कट रहा है । तुमने छोड़ दिया है पर यह तो भी नहीं फटता ।

१८१—यह तन जलाकर मैं कोयला कर दूँ और उसका धुआँ स्वर्ग तक पहुँच जाय । मेरा प्रियतम वदल बनकर वरसे और वरसकर आग को वुम्मा दे ।

१८२—मारवणी सँदेसे को कहती है, वदलती है, फिर कहती है, कहकर फिर वदल देती है । इस प्रकार वह प्रियतमा विलाप करती हुई ढाढी के हाथ सँदेसे देती है ।

१८३—उसने सँदेसे के मिस उन ढाढियों के दोहे सिखा दिए और कहा कि प्रियतम के आगे इस प्रकार जाकर विनती करना ।

१८०—कैवल (क) में ।

१८१—कैवल (क) में ।

१८२—भरै (क. घ) तलै (ख) भरि (ग. क) । पलटै (क. ख. ग) पलटी (क) । भरै (क. ख. ग. घ. क) । भरि भरि (क) भी भर (ज) । पलटेह (क. ख) । पंथी = ढाढी (ज) हाथि (च) । सँदेसटौ (क) सँदेसडो (ज) । विलवंती (च. ज. ग. क) । देह (क. ख. ग. क) ।

१८३—दीन्हा (क. घ) दीया (ग) । तणीं (ख) तिया (ग) । (सिषाय (ग) । आगळ (ख) । वीनवी (घ) । कहिया (ग) । इण (ग) ।

(ढाढियों का नरवर जाना)

सवरण सँदेसा सँभळे ढाढी क्रिया प्रयाँण ।
 मागरवाळ जु आविया देसे साल्ह सुजाँण ॥१८४॥
 पूगळहूँतौ पुहकरइ ढाढी कीध प्रयाँण ।
 माळत्रणीका माणसौँ आए मिल्या अजौँण ॥१८५॥
 ढाढी रात्यूँ ओळग्या, गाया बहु बहु भंत ।
 माँगण-पंथी जाँणि कइ, तब छंडिया निचंत ॥१८६॥
 वागरवाळ विचारियउ, ए मति उत्तिम कीध ।
 साल्ह-महलहूँ हूकडा ढाढी डेरउ लीध ॥१८७॥
 ढाढी गाया निसह भरि राग मल्हार निवाज ।
 च्यार पहर भड मडियउ, घण गुहिरइ सुरगाज ॥१८८॥

१८४—कानो से सदेसो को सुनकर ढाढियो ने प्रयाण किया । इसके बाद वे याचक सुजान साल्ह कुमार के देश मे आए ।

१८५—ढाढियो ने पूगल से पुष्कर की ओर प्रयाण किया और मालवणी के मनुष्यों से छिपे हुए आ मिले ।

१८६—ढाढी रातोंरात चल करके (नरवर मे) पहुँचे और उन्होने बहुत भाँति से गीत गाए । तब रत्नकों ने उन्हे याचक पथिक जानकर निश्चित होकर छोड़ दिया ।

१८७—याचकों ने विचारा—यह विचार उत्तम किया । साल्हकुमार के महल के नजदीक ढाढियों ने डेरा लिया ।

१८८—ढाढियो ने रात्रिभर मल्हार राग रचकर गाया । चार पहर तक वर्षा की भड्डी लगी रही और बादल गंभीर स्वर से गरजते रहे ।

१८४—केवल (क) में ।

१८५=हंता (ख) हुता (ग) । पहकरै (ख) । ढोला दिसै=ढाढी कीध (ग) । प्रणाम (क) प्रमाण (घ) ।

१८६—ढोलै (क) ढोलै (क घ)=रात्यूँ । उळग्या (क घ) उळग्या (ग) । गावै (क घ) । वह वह (क घ) भाँति (ख) भाँति (ग) । पंथी (क) । जण कह्या (क, ग) । छोडीया (ख) छुदाया (घ) । निछत (ग) ।

१८७—विचारीयै (ग) । उत्तम (ख) । ढाढियाँ=हूकडा (ख) । नेढे=ढाढी (ख) डेरा (क) डेरा (ग) ।

१८८—गावै (क, घ) । सिवाज=निवाज (क ख) । पुहर (ग) । घणि (ग) । सुं=सुर (क) । सिर काज=सुर गाज (ग) ।

सिंधु परइ सउ जोयणों खिवियाँ वीजुळियाँह ।
 ढोलउ नरवर सेरियाँ, धण पूगळ गळियाँह ॥१८६॥
 सिंधु परइ सत जोअणो खिवियाँ वीजुळियाँह ।
 सुरहउ लोद्र महकियाँ, भीनी ठोवडियाँह ॥१६०॥
 सिंधु परइ सउ जोअणो नीची खिवइ निहल ।
 उर भेदती सवजणाँ, उचेडंती सल्ल ॥१६१॥
 ढाढी गाया निसह भरि, सुणियउ साल्ह सुजाँण ।
 ओद्धइ पाँणी मच्छ व्यडँ वेलत थयउ विहाँण ॥१६२॥
 दुख वीसारण, मनहरण, जउ ई नाद न हुंति ।
 हियडउ रतन-तळाव व्यउ फूटी दह दिसि जंति ॥१६३॥

१८६—समुद्र के पार सौ योजनों पर विजुलियाँ चमक रही है। ढोला नरवर की गलियों में और प्रेयसी पूगल की गलियों में है।

१६०—समुद्र के पार सौ योजनो पर विजुलियाँ चमक रही हैं, लोद्र देश (पूगल) सुगभि से महकने लगा और ठौर ठौर (वर्षा से) भीग गई।

१६१—समुद्र के पार सौ योजन पर विजली बहुत ही नीची चमक रही है। वह प्रेमियों के हृदयों को भेदन करती हुई विरह रूपी शल्य को उखेलती है।

१६२—ढाढ़ियों ने रात्रि भर गाया और सुजान साल्हकुमार ने सुना। छिल्ले पानी में तड़पती हुई मछली की तरह तड़पते हुए उसे प्रभात हुआ।

१६३—दुख को, विस्मरण करनेवाला और मन को हरनेवाला यह सगीत यदि न होता तो हृदय रत्न सरोवर की भौंति फूटकर दशों दिशाओं में वह जाता।

१८६—सधि (क)। विसउ=परइ (क)। गत (च)=सो (क)। खिवे न (ज)। विजुळियाँह (च) वीजुळियाँ (ज)। ढोलइ (क)। नळवर (च)।

१६१—दिसै (क)=परइ। सो (क)। जोयणाँ (क)। निहल (क)। भेदंता (क) वीधंती (?) विरहियाँ (?)=सवजणाँ। मारु छेडे सल (क)।

१६२—गावे (क घ)। सुणीया (ख)। उछे (क. ग) औछौ (घ)। मछ (ख)। जिम (ख) जू (ग)। विलपत (ग)।

१६३—केवल (क) में।

(ढोला से ढाढियों का मल्लना)

मंढिरहुँतौ ऊतरघउ रवि ऊगंतइ वार ।
 मॉगणहार वोलाविया पूछण तास विचार ॥१६४॥
 कवण देसतई आविया, किहौ तुम्हारउ वास ।
 कुँण ढोलउ, कुँण मारुबी, राति सल्हाया जास ॥१६५॥
 पूगळहुंता आविया, पूगळ म्हाँकउ वास ।
 पिंगळ राजा तास धू मेल्हा थॉकइ पास ॥१६६॥
 मारुवणी पिंगळ सुधू, अपछररइ उणहार ।
 बाळपणइ परणी पछइ, भूल न कीन्ही सार ॥१६७॥

१६४—सूर्योदय के समय वह महलो से नीचे उतरा और याचकों को उनका विचार जानने के लिये बुलाया ।

१६५—ढोला का प्रश्न—

तुम कौन से देश से आए हो ? तुम्हारा निवास कहाँ है ? कौन ढोला है और कौन मारुबी है जिनके विषय मे रात मे तुमने गाया था ।

१६६—ढाढियों का उत्तर—

हम पूगल से आए है । पूगल मे हमारा निवास है । वहाँ पिंगल नाम के राजा हैं । उनकी पुत्री ने हमे आपके पास भेजा है ।

१६७—मारवणी पिंगल राजा की सुपुत्री है । वह अप्सरा के समान सुंदरी है । बाल्यकाल में विवाह होने के पीछे भूल करके भी आपने उसकी सुधि न ली ।

१६४—मंढिर (घ) । हुआ (घ) । ऊगतै (ख) । सु वार (ख) मॉगळहार (घ) । तेढावियौ (ख) ।

१६५—ढाढी सनमुख तेडीया कहो बात सु प्रकास (ग)=कवण० । किण दिसा सुं आवया (घ) । तुम्हारा (घ) । तास=जास (क. ग. घ) ।

१६६—हंता (ख) । हुती (घ) । आवीयौ (ख) । तासु (क) । मेल्हा (घ) ।

१६७—कुमरी=मारवणी (ग) । रायनी=सुधू (ग) । री (ख) । अपणहार (ख) उणहार (ग) । बालापणै (ख) । मूळ=भूल (क) । म=न (क) ।

दुवजण वयण न संभरइ, मनो न वोसारेइ ।
 कुंको लाल बचोइ ज्यउं खिण खिण चीतारेइ ॥१६५॥
 सउजण, दुवजण के कहे भडिक न दीजइ गाळि ।
 हळिवइ हळिवइ छंडियइ जिम जळ छंडइ पाळि ॥१६६॥
 सदेसे ही घर भरथउ कइ श्रंगणि कइ वार ।
 अवासि ज लग्गा दीहडा, सेई गिणइ गॅवार ॥२००॥
 जळमॅहि वसइ कमोदणी, चंदउ वसइ अगासि ।
 ज्यउ ज्योहीकइ मनि वसइ, सउ त्योही कइ पासि ॥२०१॥

१६५—दुर्जनों के वचनों को न मुनो और मन से मारवणी को मत विसागे । कुंफ पत्नी जिस प्रकार (अपने) लाल लाल बच्चों को क्षण क्षण में याद करने रहते हैं उन्हीं प्रकार (मारवणी तुमको) याद करती है ।

१६६—हे सवजन, दुर्जनों के कहने से एकदम परित्याग नहीं कर देना चाहिए । यदि छोड़ना ही हो तो धीरे धीरे छोड़ना चाहिए जैसे पानी किनारे को छोड़ता है ।

२००—क्या आंगन और क्या दरवाजे—साग घर मारवणी ने सँढेसों से भग दिया है । दिन अवश्य लग गए हैं पर उनकी गणना गॅवार (को छोड़ कर आंग कौन) करता है ।

२०१—कुमुदिनी पानी में रहती है और चंद्रमा आकाश में रहता है परंतु फिर भी जो जिसके मन में बसना है वह उसके पास ही होता है ।

१६५—पिसुणां चीत्यौ जनि करहु=दुवजण० (थ) । मनह न (ग. घ) । वीमागॅहि (थ) । कुंको (ग) कुंकी (थ) । चीतागॅहि (थ) ।

१६६—केवल (क) मे ।

२००—सदेसा (घ) । आंगण (घ) । अवस (घ) लगे (ख) । से किम (घ) । गारें (र) ।

२०१—मं (ग) । कमोदिनी (र. ग) । कमळ कमोडिक जळ बसइ (च) । जेम कमोडणि जळ वमइ (ज) । चन्दा (ग) चन्द्रौ (क. ग) । वसे (क. ख. ग) । अगाह (ख) आकास (क. ग. घ) आकासि (ज) । जे (क. ख. ग. ज) जाहू (क. ख. ग) जीयो रें (ज) । मन (क. ग. घ. ज) बसे (क. ख. ग) । ते=सउ (ज) । तातू (क. ग. घ. ज) । तीयो रें (ज) । पास (क. ख. ग. घ. ज. क) ।

चुगइ, चितारइ भी चुगइ, चुगि चुगि चितारेह ।
 कुरुमी वच्चा मेलिहकइ, दूरि थकाँ पाळेह ॥२०२॥
 चीतारंती चुगतियाँ कुंभी रोवहियाँह ।
 दूराहुंता तउ पलइ, जऊ न मेलह हियाँह ॥२०३॥
 दिसि चाहंती सज्जणा, नेहाळंदी मुंघ ।
 सा धण कुम्भि वचाह व्यँ लंबी थई तुँ कंध ॥२०४॥
 चीतारंती सज्जणाँ, नीहाळंती मग ।
 धण कुंभाह वचाहि जिउँ लॉबा हूयापग ॥२०५॥
 आसालुधी हूँ न मुइय सज्जन जंजालेइ ।
 मारू सेकइ हथथडा भीरो अंगारेइ ॥२०६॥

२०२—कुंभ चुगती है, फिर अपने बच्चों की याद करती है और चुग चुगकर फिर याद करती है। इस प्रकार कुभ अपने बच्चों को छोड़कर भी, (चुगने के लिए दूर जाने पर भी) दूर रहती हुई, पालती है।

२०३—चुगती हुई कुभें अपने बच्चों की याद करके रो उठती हैं। दूर होते हुए भी (वे) तभी पल सकते हैं जब कि उन्हें हृदय से न भुला दिया हो।

२०४—वह मुग्धा प्रेयसी प्रियतम (के आने) की दिशा देखती हुई और प्रतीक्षा करती हुई कुभ के बच्चे की तरह लंबी गर्दनवाली हो गई है।

२०५—प्रियतम की याद करती हुई और उसका मार्ग देखती हुई प्रियतमा मारवणी के पैर कुभ के बच्चे की भाँति लबे हो गए है।

२०६—प्रियतम के स्वप्नों द्वारा मिलन की आशा से लुब्ध हुई मारवणी

२०२—तीतारे (क घ) । कूमाँ (ख) कुरुम (घ) । मेलहीया (क) मेलहया (घ) ।

२०३—चुगंतीयाँ (च) चुगति फल (थ) । कुंभी (ग) । रोवहीयाँह (ग, न) रोहवीयाँह (ज) रोहवियाँह (थ) । दूराँ (च) । हुत (ग) हुंती (ज) । जो=तउ (ग ज) जउ (थ) मिलै (ग) मिलइ (च) पुलै (ज) । तो (ग) तौ (ज) तउ (थ)=जऊ । मन मेलहइ याह (ग) । मेलिहयहियाँह (थ) । दूर थकाँहीं पलहवै जौ पन मेलही जाह (?) ।

२०४—दिस (ज) । सजनां (ज) । नेहालद्धी (छ) । नेह उलंन्या पंथ (थ) । साय धण (ज) । वच्चाह (ज) । कुभ न चंच ज्युं=कु भि० (थ) । लंबी (थ) । भई (ज) । कुकंध=तुँ कंध (थ) ।

२०५—केवल (च) मै ।

२०६—केवल (च) मै ।

चंदमुखी हंसा गमणि, कोमल दीरघ केस ।
 कंचन वरणी कामनी वेगड आवि मिलेस ॥२०७॥
 ढोलइ मनि आरति हुई, सांभळि ए विरतंत ।
 जे दिन मारु विण गया, दई न ग्याँन गिणंत ॥२०८॥
 मॉगणहारॉ सीख दी ढोलइ तिणहि ज ताळ ।
 सोवन-जडित सिंगार दे नॉख्यउ दळिद उलाळ ॥२०९॥
 मॉगणहारॉ सीख दो, आयउ मंदिर मॉहि ।
 ढोलइ मन आणंद भयउ, मारुतणइ उळाहि ॥२१०॥

नहीं मरी । इस प्रकार वह अपने हाथ मानों आवे बुझे हुए अंगारों में सेक रही है ।

२०७—चाँद जैसे मुखवाली, हस जैसी गतिवाली, कोमल और लंबे केशोंवाली और स्वर्ण जैसे रगवाली कामिनी से शीघ्र आकर मिलो ।

२०८—यह वृत्तात सुनकर ढोला के मन में लालसा उत्पन्न हुई और सोचने लगा कि मेरे जो दिन मारवणी के विना गए विधाता उनको मेरे जीवन में न गिने ।

२०९—ढोला ने उसी समय याचकों को विदा दी और सुवर्ण जडे हुए शृंगार देकर उनका दारिद्र्य नष्ट कर दिया ।

२१०—ढोला ने याचकों को विदा दी और महल में आया । ढोला के मन में मारु के मिलन के उत्साह से आनंद हुआ ।

२०७—चन्द्रामुपि (ख) । गमण (ख) । काटिहर=दीरघ (ग) । कंचण (ग) । वरणा (ख. ग) । बालहा (ख. ग) बलहा (घ) । आव (ग) आई (ख) । मिलेसि (ख. ग) ।

२०८—मन (ख. ग) । आतर (ग) आरित (घ) । सांभळ (ख) । विन (ग) । लहंत (ख) गिनंत (ग) ।

२०९—सोवण (ख) । जडत (क) । सणगार (ख) सिणगार (क) सिंगरि (घ) । नॉखौ (क) नॉख्या (घ) दळिद (क. घ) दरिद्र (ग) ।

२१०—हुवौ (ख) । तणे (ख) । उळाह (ख) ।

(ढोला की आतुरता)

मन सीँचाणउ जह हुवइ, पॉखॉ हुवइ त प्राँण ।
जाइ मिलीजइ साजणाँ, ढोहीजइ महिरॉण ॥२११॥
आडा डूँगर वन घणा, तॉइ मिलीजइ केम ।
उलाळोजइ मूँठ भरि मन सीँचाणउ जेम ॥२१२॥
इहाँ सु पंजर मन वहाँ, जय जाणइला लोइ ।
नयणा आडा वीँफ वन, मनह न आडउ कोइ ॥२१३॥
जिउँ मन पसरइ चिहँ दिसद, जिम जउ कर पसरंति ।
दूरि थकाँ ही सज्जणाँ, कंठा ग्रहण करंति ॥२१४॥

(ढोला माळवणी संवाद)

माळवणी सिणयार सभि, आई वालँभ पास ।
मन संकोची पदमिणी, प्रीतम देखि उदास ॥२१५॥

२११—यदि मन बाज पत्नी हो और प्राण पॉखें हो तो महारण्य को उलॉघा जाय और प्रियतमा से जा मिला जाय ।

२१२—त्रीच मे बहुत से पर्वत और वन हैं, उस (प्रियतमा) से कैसे मिला जाय । बाज की भाँति मन को मूँठ भरकर उड़ा दिया जाय ।

२१३—मेरा देहपंजर तो यहाँ है और मन वहाँ है । वास्तव मे यदि लोग समझें तो यद्यपि आँखों के अवरोधी घने जगल हैं परतु मन का अवरोधी कोई नहीं ।

२१४—जिस प्रकार मन चारो दिशाओं मे प्रसरित हो जाता है उसी प्रकार यदि हाथ भी प्रसरित होते तो दूर बसती हुई प्रियतमा को गले से भेंटता ।

२१५—शृंगार सजाकर मालवणी प्रियतम के पास आई, परतु प्रियतम को उदास देखकर वह पद्मिनी मन मे सकुचित हो गई ।

२११—जो (क घ.) । हुवै पराँण (ख) । सज्जनां (ख) । ढोढहीजै (क) ।

२१२—त्रीफ वन = वन घणा (क) । वीन वीन (घ) । तिही (ख) ।

२१३—केवल (च) मैं ।

२१४—जे (ख) जिम (फ) । चहुँ दिसां (ख) । लुं (क) ल्यौं (ख) तिम (फ) = जिम । जे = जउ (क, ख) । पसरंत (क, ख) । दूर (क) । बसता = थकाँ ही (क, ख) । साजणा (ख) । ग्रहा न (क) । करन्त (क) ।

२१५—मजि (ख) । प्रिय पास जे = सिणयार सजि (ग) । देखी गीय उदास (ख), देखी चित उदास (ग) ।

जेहा सल्लण काल्ह था, तेहा नॉहीं अल्ल ।
 माथि त्रिसुळड, नाक सळ, कीइ विलड्ठा कज्ज ॥२१६॥
 मनह सँकाणी माळवणि, प्रियु कॉई चलचित्त ।
 कइ मारुवणी सुधि सुणी, कइ का नवली वत्त ॥२१७॥
 साहिव हँसड न बोलिया, मुफसूँ रोस ज अज्ज ।
 अंतरि आसणदूमणा, किसड ज इवड्ठ काज ॥२१८॥
 चिंत्ता डाइणि व्यॉ नरॉ, त्यॉ दड अंग न थाइ ।
 जइ धीरा मन धीरवइ, तड तन भीतर खाइ ॥२१९॥

२१६—वह मन में सोचने लगी कि प्रियतम जैसे कल धे वैसे आज नहीं है । (आज उनके / मस्तक पर विशाल वन रहा है और नाक में सल पड़ रहा है, जान पड़ता है कि कोई काम त्रिगड गया है ।

२१७—मालवणी मन मे शंक्ति हुई कि प्रियतम का चित्त क्यों चलायमान है, क्या उन्होंने मारवणी की सुध सुनी है या कोई नई बात हुई है ?

२१८—मालवणी—

हे प्रियतम तुम न हँसते हो, न बोलते हो, आज मुझसे अवश्य रिसाए हुए हो । अतःकरण मे व्यथित एवं उदास हो । ऐसा कौन सा भारी काम आ पड़ा ?

२१९—जिन लोगों को चित्तारूपी डाइन लगी हुई है उनके अंग दड नहीं होते । जो धीर पुरुष हैं वे धैर्यपूर्वक सह लेते हैं, तो भी उनके तन को भीतर ही खाती है ।

२१६—अेवल (र) मे ।

२१७—मन (ज) मनि (थ) । मालवी (ज) । ग्रीव (ज) । कांय (ज) । चिल (थ) । का (थ) । मारवणी (ज) । बुद्धि (ज) । तणी=सुणी (थ) । कइ वळि (ज) कानि पढी वळि (थ) ।

२१८—बोलही (क. घ) । रीसौ (घ) । इतरो (क) इतरू (घ) । अंतरि । अवडो (घ) इतरौ (ख) । कज (घ) ।

२१९—डाइण (क. ग. घ) डाकिण (ख) । जिहाँ (ख. घ. च. थ) । जहा (ग) । तिहाँ (क) तां (ख) तीयां (घ) तिह (च) । घटि=दड (च) । अंगि न = (च) । माइ (च. थ) माय (ज) । धीयां (क) जो (च) । धीरै (ख) धीरो (ज) । धीरण पण रहइ (च) धीरण रहै (ज) धीरत पणै (थ)=मन धीरवइ । जे नर चिंत्ता वस करै (घ) । तीयां (क) तौ (ख) त्यां (म) तसु (ज. थ) भीतर पँसी खाई (च. थ) भीतर पयसी खाय (ज) ।

चिंता बंध्यउ सयळ जग, चिंता किणहि न वंध ।
जे नर चिंता वस करइ, ते माणस नहि सिध्द ॥२२०॥
माळवणी, तूँ मन-समी, जाणइ सहू विवेक ।
हिरणाखी, हसिनइ कहइ, करउँ दिसाउर एक ॥२२१॥
गढ नरवर अति दीपता, ऊँचा महल अवास ।
घरि कामिण हरणाखियाँ किसउ दिसावर तास ॥२२२॥
तंती नाद तँबोळ रस, सुरहि सुगंधउ जाँह ।
आसण तुरि घरि गोरडी, किसउ दिसाउर स्याँह ॥२२३॥

२२०—ढोला—

सारा जगत् चिंता से बंधा हुआ है पर चिंता को किसी ने नहीं बाँधा ।
जो मनुष्य चिंता को वश में कर लेते हैं वे मनुष्य नहीं किंतु सिद्ध हैं ।

२२१—हे मालवणी, तू मेरे मन में समा गई है, तू सब बातों को सम-
झती है । हे हरिणाक्षी, यदि तू हँसकर कहे तो मैं एक (वार) परदेशाटन
करूँ ।

२२२—मालवणी—

जिनके नरवर जैसा प्रसिद्ध गढ़ है, ऊँचे ऊँचे महल और घर है और
घर में हरिणाक्षी कामिनी है उनके लिये देशाटन कैसा ?

२२३—जिनको तंत्री का नाद, ताबूल का रस, सुरभित सुगंधि, घोड़े
की सवारी और घर में सुंदरी स्त्री (उपलब्ध है) उनके लिये देशाटन
कैसा ?

२२१—वली=समी (क. घ.) । मनि सूँ सही (च) मनि सांसुही (ज) मनि
सांसुही (थ)=तूँ मन समी । जाणै (क. ख. घ । विवेक (क. ख. च. ग. थ) ।
हरिणाखी (क. ख. ग. घ. ङ) हिरणाखी (च) । हसनें (ज) । करां (ग. ज थ)
दिसावर (क. ख. ग. घ. च. छ) ।

२२२—नळवर (ग) । दीपती (क) दीपतां (घ) । आवास (क. ग. घ) ।
घर (क. ख. ग.) । हरिनाखियां (ग) हरिणाखीयां (घ) ।

२२३—सुरह (ज) सुगंधी (थ) । ज्याह (ज) जाह (थ) आसणि (च.थ.) ।
तुरीय (च) । तुरी (थ) । पग मोजडी (च. ज. थ.) । करउँ (थ) दिसावर (ज)
दिसाउर (थ) । ताँह (थ) ।

ईडरकी धर अरळगऱँ, जइ तूँ कहइ तु जाँह ।
 अरुथि घड़ाँ आभरन मालहवणी, मेलाँह ॥२२४॥
 ईडरकी धर अरुलगरण, हूँ तर जाण ण देसि ।
 धरि बइठाही आभरण, मोल मुहंगा लेसि ॥२२५॥
 मुळताणी धर मन वसी, सुहंगा नइ सेलार ।
 हिरणाखी, हाँस नइ कहइ, आणऱँ हेडि तुखार ॥२२६॥

२२४—ढोला—

यदि तुम कहो तो मैं ईडर की यात्रा करने के लिये जाऊँ । हे मालवणी, वहाँ आभूषण बनवाऊँ और तुम्हें भेजूँ ।

२२५—मालवणी—

ईडर का प्रवास करने को मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी । घर बैठे ही महंगे मोल पर आभूषण खरीद लूँगी ।

२२६—ढोला—

मुलतान की भूमि मेरे मन में बसी है । हे हरिणाक्षी, यदि तू हँसकर कहे तो वहाँ से सहज ही मैं सस्ते घोड़े के झुंड लाऊँ ।

२२४—राजा (च ज, =की धर । उळगृ (क, ऋ) ओलगूँ (ख ओळमण (ज) । जे (क ख, ग) जौ (ज) । थे=तू (क, ख, ग, घ, ज, ञ, ऋ) । कहौ त (क, ख, ग, घ, ऋ) कहि तौ (ज) । जाउ (घ) । उहा (च, ज) उवाहुँ (क) उवाह (घ ऊथि (ग) ऊवाहूँ (ऋ) । घणइ (च) । घोडौ (क वाडा (घ) घोडा (ऋ) वडावै (ज) मालवणी (च, ज) । मलाह (ज मलहाउ घ) ।

२२५—ईडर राजा (च, ज) ऊळगूँ (च, थ) उळगरण (क, ख, ग, घ) ओळमण (ज) । हु (क, ख, ग, घ) । तुभ (क, ख, ग, घ, ज) । न (क, ख, ग, घ, ज) । देस (क, ख, ग, घ, ज) । इथे (क) एथ (ख) एथि (घ)=धरि । वैठा (क, ख, ग, घ) मूल (ग) मोलि (च, थ) । महंगा (ख) महंगा (ज) मुहगा (थ) ।

२२६—जाह केँ (ख)=मन बसी । अनै (क, व) । सेलाह (क) । मुलताणी सोवन समा सुहगा आणि भरतार (थ) हरणखी (क, ख, ग, घ) । हस (ख, ज,) । ने (क, ख, ग) नी (घ) नै (ज) कहै (क, ग, घ) कइौ (ख) आँण (क, ख, ग, घ, एथ (क) पथ (ग)=हेडि हेड (ख, ज) । विसाह (क, व) विसार (ग =तुखार ।

नोट—च, ज, थ, ध, से पक्तियों का क्रम उलटा है ।

हिरणाक्षी हँसि नइ कहइ तु आणऱँ हेडि तुखार । मुलताणी मो मन समा सुहगा तेँ असवार (च०) सुहगाने सौ वार (ज०) सुहिणा नी सुविचार (ध) ।

घरि बइठा ही आविस्यइ, लाखे लियो लडंग ।
 तिणिमइ लेस्यो टाळिमा, वॉकइ मुहाँ विडंग ॥२२७॥
 काछी करह बिथूँभिया, घड़ियउ जोइण जाइ ।
 हरणाखी, जउ हसि कहइ, आणिसि एथि बिसाइ ॥२२८॥
 साहिब, कछ्छ न जाइयइ, तिहा परेरउ द्रग ।
 भीमळ नयण सुवक धण, भूलउ जाइसि संग ॥२२९॥

२२७—मालवणी—

घर बैठे ही (व्यापारी) लाखो घोड़े लिए आ जायेंगे । उनमे से हम
 चुने हुए बाँके मुँहवाले घोड़े लेंगे ।

२२८—ढोला—

कच्छदेश के बड़ी थूहीवाले ऊँट घड़ी भर मे योजन जाते हैं । हे हरि-
 णाक्षी यदि तू हँसकर कहे तो उनको मोल लेकर यहाँ लाऊँ ।

२२९—मालवणी—

हे स्वामिन् कच्छ मत जाइए, वहाँ पराया दुर्ग (राज्य) है । वहाँ
 कजरारे नयनोंवाली सुदरी स्त्रियों हैं जिनके साथ भूले हुए तुम चले जाओगे ।

२२७—एथि (क) घर (ख. ग) एथ (घ) । बैठे ही (क. ख. ग. घ ज) ।
 आविसी (ख. घ) आविसी (ख) आवसी (ग. ज) । मुहै (क. ख. ग. घ)=लियो ।
 तिण मै (क. घ) ताहिमि (ख) ताहि मै (ग) त्यां माहि (ज तिणि सांहे च) ।
 लैसां (ख) लीसां (घ) टाळिवा (ख) टाळमा (घ) । चुणवा लीजसी (ज, चुणि
 लीजस्यइ (च) । बंक (च) वाक (घ) मुह (ग) ।

२२८—काछीया (ख) । कर (ग) करहा (घ) रह (च) । वे थूभिया (ग)
 बिथुंभीया (ज) । घडीया (च) घडियां (ज) । जाय (ज) । जाइण (ग) जोयण
 (ज) : हरिणांखी (ग) । जौ (ज) । हसिनै=जउ हासि (घ) । मालवणी जइ तू
 कहइ (च) हरणाखी० । आणां (क. ख. ग. ज) आपो (घ) आपो पंथ (घ) ।
 (ख. ग. घ) । एथ (ज) विसाय (ग. ज.) ।

२२९—ढोला (च. ज)=माहिव । कठि (ख) कछ (ग) । म जाइसि कछ
 दिसि (च) म जाइसि कच्छ देसि (थ) । वालभ म जाण कछ्छडे (न) । ताह
 (क. ख. ग. घ) त्याह ज (ज) । परे रै (क) परेरा (ख) परेहरा (म) प्रहरे (ज) ।
 द्रंगि (ख. च. ज. थ) । ओथल (ग) भंगळ (क) भिभळ (थ) । नैण (ज)
 नयणि (क) । सुचंग (क. ख. ग. घ. ज. क.) । त्री (ख) धी (क) त्रीय (ग)=
 धण । भूलो (क. ख. ग. घ. क) । जाइस (क. ख. ग. घ. ज. क) । सगि (च.
 थ) । जाइस भूलो सग (ग. घ) ।

ढो० मा० दू० १६ (११००-६२)

सउ सहसे एकोतरे, सिरि मोतीहरि सुध्व ।
 नदी निवासउ उत्तरइ, आणूँ एक अविध ॥२३०॥
 मरजीवउ पॉणि तणउ साल्ह, उघटनइ खाइ ।
 दुख सहणा, पुहरा दिचण कत, दिसाउरि जाइ ॥२३१॥
 गयगमणी, गुजर घरा आणूँ दखणी चीर ।
 मनह सँफोडी माळवी, सोहइ तुम्ह सरिीर ॥२३२॥
 सहसे लाखे साटविसु, परिघळ आणूँ वेसि ।
 घरि बइठा ही प्रीतमा, पट्टोळा पहिरेसि ॥२३३॥

२३०—ढोला—

समुद्र में उतरकर एक लाख एक सौ एक का एक अविद्ध सुमेर का शुद्ध मुक्ताफल लाऊँगा ।

२३१—मालवणी—

हे साल्ह कुमार, पानी के पनडुब्बे को कोई जीव उचटकर खा जायगा । हे कत, दुःख सहने और पहरा देने के लिये मला कोई परदेश जाता है ?

२३२—ढोला—

हे गजगामिनि, मैं गुजरात से तुम्हारे लिये दक्षिणी चीर लाऊँगा । हे मन में संकुचित होनेवाली मालवणी, वह तुम्हारे शरीर पर शोभा देगा ।

२३३—मालवणी—

हजारों लाखों के पहिने के बन्न मैं इकट्ठे ही मँगा लूँगी और हे प्रियतम, मैं घर बैठे ही पट्टकूल पहनूँगी ।

२३०—सौ सहस्त्रे (ज) । इकोतरें (ज) । सिर (ज) । सुधि (च) । निवासौ (ज) । उत्तरां (ज) । आण (ज) अविधि (च) ।

२३१—साम्हो घट (ज)=साल्ह उघट । खाय (ज) । सहिणा (ज) पोहर (ज) । कवण दिसावर जाय (ज) ।

२३२—गुजर (थ) । आणा (च) आणी (थ) । विचक्षण (च) । मालवणि (च. थ) । सोहे (ज) । तुम्ह (ज) ।

२३३—लाखे (थ) । साटविस (ज) । अणि सु वित्त (च) । पटोळी (ज) पट्टकूल (थ) ।

गाहा

दीसइ विवहचरीयं, जाणिज्जइ सयण दुज्जण सहावो ।
 अप्पाणं च कळिज्जइ, हळिज्जइ तेण पुहवीए ॥२५४॥
 साहिव, रहउन राखिया कोडि प्रकार कियाह ।
 का थौं काँमिण मन वसी, का म्हौं दूहबियाह ॥२३५॥
 वळि माळवणी वीनवइ हूँ प्री, दासी तुम्भ ।
 का चिंता चित अंतरे सा प्री, दाखउ मुम्भ ॥२३६॥

२३४—ढोला—

विदेशों में भ्रमण करने से अनेक प्रकार के चरित्र दिखाई पड़ते हैं, सजनों और दुर्जनों के स्वभाव मालूम होते हैं और मनुष्य अपने आपको पहचान जाता है—इसलिये पृथ्वी पर भ्रमण करना चाहिए ।

२३५—मालवणी—

स्वामिन्, तुम रोके नहीं रहते, मैंने करोड़ों उपाय कर लिए । या तो कोई अन्य सुदरी आपके मन में बसी है या हमसे नाराज हो गए हो ।

२३६—फिर मालवणी विनय करती है—हे प्रियतम मैं तुम्हारी दासी हूँ । हे प्रिय, तुम्हारे मन में क्या चिंता लगी है वह मुझसे कहो ।

२३४—विवहचरीयं (क) जाणीजै (ख) जाणिज (ग) । सै (ख) सजन (ग) सजना (घ) । दुजण (ख) दुजन (ग. घ) । विसेसो (क. ग. घ)=सहावो । अप्पाणं (ख) अप्पानं (ग) । आयाण (घ) । त (ख)=च । कळिजै (ख. घ) कालिजै (ग) । हिंडीजै (क) हडजै (ख) । पहवेण (ख. ग) ।

संस्कृत छाया—

दृश्यते विविधचरितं ज्ञायते सजनदुर्जनस्वभावः ।

आत्मान च कलय्यते हिण्ड्यते तेन पृथिव्याम् ॥

२३५—रढो न पालिया (ख) । कीया (क. थ) का कामिणका (क. घ) कामिण थारे (ग) । कै (ख) । मै (क. घ) कहाँ (ख) । दुहवीया (घ) ।

२३६—मालवणी इम (क. ख. ग. घ)=वळि मा० । प्रीय (ग. थ) प्रीयु (च) । तुम्भ (क. ख. ग. घ. ङ) । जीव ऊतरै (ख)=चित्त अ० । चिंता चित अंतरि वसइ (ज) चिंता चित भीतरि वसइ (च) चिंता चित अंतरी अछै (थ) । मो (घ)=साइ (च. थ) सोई (ज) । थै (क. ग. घ)=प्रकासउ (च. ज) =प्री दाखउ । तुम्भ (ख. ग. घ) ।

ढोला आरण दूमणउ, नख ती खूदइ भीति ।
 हमथी कुण छइ आगळी, वसी तुहारइ चीति ॥२३७॥
 सुणि सुंदरि, सषड चवॉ, भॉजइ मनची भ्रंति ।
 मो मारू मिळिवातणी, खरी विलगगी खति ॥२३८॥
 माळवणीकड तन तप्यउ, विरह पसरियउ अंगि ।
 ऊभी थी खडइड पडी, जाणे डसी भुयंगि ॥२३९॥
 छॉटी पॉणी कुमकुमई, वीभण वीभया वाइ ।
 हुई सचेती माळवी, प्री आगलि विललाइ ॥२४०॥

२३७—हे ढोला, तुम उदास हो रहे हो, नखों से भीत को खरोच रहे हो । हममे बढ़कर कौन है जो तुम्हारे चित्त में आ वसी है ?

२३८—ढोला—

हे सुंदरी, सुनो, सच्ची बात कहते हैं कि जिससे तुम्हारे मन की भ्रांति दूर हो—मुझे मारवणी में मिलने की बड़ी अभिलाषा लगी है ।

२३९—यह सुनते ही मालवणी का शरीर सतत हो उठा और उसके अंगों में विरह व्याप्त हो गया । वह नवडी थी, यह सुनकर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी मानो साँप ने काट खाया हो ।

२४०—तब ढोला ने उसे गुलाब जल के छींटे दिए और पखे से हवा की । मालवणी होश में आई और फिर प्रियतम के आगे कातर होकर रोने लगी ।

२३७—कैवल (च) में ।

२३८—सुंदरि (ग) । सुंदरि सुणि (ज) । सचौ (ख) टोलउ (च. थ) सार्चा (ज) । कहइ (च. थ) कहाँ (ज)=चवॉ । भाजे (क. ख) भाएँ (ग) भानाँ (ज) भाजौ (थ) । की (क. घ) रा (ग) नी (च) री (ज. थ)=ची । भॉन (क) प्राति (च) भॉति (घ. ज) जाति (ग) । मारवणी (थ)=मो मारू । मिलवा (क. ग. घ) । विलगी (क) विलांगी (ख) विलागी (ग) । खाँत (क) खाति (ख. ज) ।

२३९—मनि विलवती (च ज) मनि विलविलइ (थ)=कड तन तप्यौ । पसरियौ (क) पमरगौ (ग) पमरग्यौ (घ) पमगइ (च) पसरियों (ज) पसार्यउ (थ) । अंग (क ग. घ) । खरहड (ज) बडि हडि (च) खडह्य (ग) । डमॉय (च) भुयग (क. घ) भुवंग (ख) ।

२४०—साँतळ पानी छटि (च) साँतळ पाणी छॉटिया (ज. थ) ताढौ वीजण वाउ (क) वाजी ताटी वाइ (ख) टंढी वाजे वाय (ग) ताढौ वीजौ वाय (घ) वीकै वीभण वाय (ज) वीभड वीजइ वाइ (थ) । वाउ (च) सचेतन (थ) । माळवणि (च) । आगइ (च थ) आगे (ख. ग) । विललाय (ज) ।

(ग्रीष्म वर्णन)

थळ तत्ता लू साँमुही, दाभोला पहियाह ।
 म्हॉकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह ॥२४१॥
 कहिए माळवणी तणइ, रहियउ साल्ह विमास ।
 ऊन्हाळउ ऊतारियउ, प्रगत्यउ, पावस मास ॥२४२॥

(वर्षा वर्णन)

गउखे बइठा एकठा, माळवणी नइ ढोल ।
 अंबर दीठउ ऊनयउ, तिम संभान्यउ बोल ॥२४३॥

२४१—भूमि तपी हुई है, लू सामने है, हे पथिक, (यदि मारवणी के देश को गए तो) तुम जल जाओगे । जो हमारा कहना करो तो घर ही पर बैठे रहना ।

२४२—मालवणी के कहने से साल्हकुमार दो मास तक रुक गया । ग्रीष्म ऋतु बीत गई है और वर्षा का महीना आया ।

२४३—मालवणी और ढोला दोनो एक साथ भरोखे मे बैठे हुए थे । उस समय ढोला ने आकाश (मे बादलों) उमड़ा देखा त्यों ही मालवणी का वचन याद किया ।

२४१—सामुहा (ग) सामुही (च) । दाभे सु पहीया (च) पहुचो नहि पहियाउ (थ) । जै (ख) । तौ घरि (क) तौ घर (ख)=घरि (तउ) घण बुठइ घरि जाउ (च. थ) ।

२४२—कहीयै (क. ख. ग. घ) । रहियौ (क. ख. ग. घ) ढोलउ रह्यउ (च. ज)=रहियउ साल्ह । ऊनाळो (क. ख.) ऊन्हाळौ (ग) । ऊतारियौ (क. ख. ग) ऊतरि गयौ (झ) प्रगत्यौ (क. ख. ग) ।

२४३—गौखै (क. ख. ग. घ) गोखे (ज) गोषइ (झ) । वैठा (क. ग. घ) वेठां (ख) । एकठां (ख) । नै (क. ग. घ) । ने (ख) । अंबर (ख) । दीठी (क) देखे (ख) देख्यौ (ग) दिख्यौ (घ) दीठी (च) दीठी (ज) । ऊनम्यौ (क. ख. ग. घ. झ. थ) ऊनया (च) ऊँनम्यो (ज. थ) तव (क. ख. ग. घ. झ) मनि (थ)=तिम । चितार्यौ (क. ख) चीतार्यौ (ग. घ) ।

पगि पगि पॉणी पंथसिर, ऊपरि अंघर छॉह ।
 पावस प्रगट्यउ पदमिणी, कहउ त पूगळ जाँह ॥२४४॥
 लागे सदा सुहॉमणउ, नस भर कुंभडियाँह ।
 जळ पोइणिए छाइयउ, कहउ त पूगळ जाँह ॥२४५॥
 जिण रुति बग पावस लियइ धरणि न मेल्हइ पाइ ।
 तिण रुति साहिष वल्लहा, कोइ दिसावर जाइ ॥२४६॥
 जिण रुति बहु पावस फरइ, बावहियउ बोलंत ।
 तिण रुति साहिष वल्लहा, को मंदिर मेल्हंत ॥२४७॥

२४४—ढोला—

पग पग पर मार्ग मे पानी भर गया है, ऊपर आकाश मे बादलों की छाया हो गई है । हे पत्नी, वर्षा ऋतु प्रकट हुई, अब कहो तो पूगल जावें ।

२४५—रात भर कुम्भों का शब्द सुहावना लगता है । सरोवरों का जल कमलिनियों से छा गया है । यदि कहो तो अब पूगल जावें ।

२४६—मालवणी—

जिस ऋतु मे बगुले भी वर्षा के कारण धरती पर पैर नहीं रखते, हे प्यारे स्वामी, मला उस ऋतु मे कोई घर छोडता है ।

२४७—जिस ऋतु मे वर्षा खूब भडकी लगाए रहती है और पीपीहे बोलते हैं उस ऋतु मे हे प्रिय स्वामिन, बताओ मला कोई घर को छोडता है ?

२४४—पग पग (क. ख. ग. घ) । सामुहा (च. थ)=पंथ सिर । ठाढी वाडळ (क) वाडळ ठाढी (ख) वाडळि ठाँडी (ग) ताढी वाडळ (घ. ज. न)=ऊपरि अवर । आथौ (क ख ग घ थ) आथो (ज) । पदमिनी (ग) पदमंणी (घ) । कहौ (क. ख. ग. घ) पूगळि (ज) । जाँहि (घ) ।

२४५—टोहॉं सह सुहामणा सरवर कुरभडियाँह ।

जळ मे पोइण छाइथाँ (न)

२४६—रुत (घ) रित (ट) । पग (ग) धरण (ग. घ. ट) । मेलै (ख. ग) । पाव (क) । जिन (ग) । वाविहहा (ग) । को मंदिर मेल्है जाइ (ग) । तिण रित मेले मालवणि श्री परदेस न जाय (ट) तिण रुति बूढी ही भुरै तल्णी केम रहाई (घ) ।

२४७—भुरै (क) । बावीहा (ख) बोलति (ग) । वल्हहा (ग) । कोइ मंदिर ही (क. ख) (क) मंदिर ही (घ) ।

प्रीतम कामणगारियो थळ थळ बादळियोह ।
घण वरसंतइ सूकियो लूसूं पाँगुरियोह ॥२४८॥
कपड, जीण, कमाण गुण भीजइ सब हथियार ।
इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार ॥२४९॥
वाजरियो हरियाळियो, विचि विचि वेलाँ फूल ।
जउ भरि वूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥२५०॥
धर नीली, धण पुडरी, धरि गहगइह गमार ।
मारू देस सुहामणउ साँवणि साँफी वार ॥२५१॥

२४८—हे प्रियतम, स्थल स्थल पर जादूगरनी बदलियो छाई हुई है । वे मेह वरसने से सूख जाती हैं, परतु लू से पनप जाती हैं । (१)

२४९—इस ऋतु में कपड़े, जीन, धनुष की डोरी और सारे हथियार भीग जाते हैं । इस ऋतु में प्रियतम नहीं चलते । जो चलते है वे गँवार हैं ।

२५०—ढोला—

वाजरियो हरी हो गई हैं और उनके बीच बीच मे वेलों मे फूल लगे हैं । यदि भादों भर वरसता रहा तो मारू देश अमूल्य (अनुपम शोभावाला) होगा ।

२५१—पृथ्वी नीलवर्ण होगी परतु प्रियतमा श्वेतवर्ण हो गई होगी । ग्रामीण जनों के घर घर मे खूब गहमह—आनंदोत्सव की धूमधाम—होगी । मारू देश सावन मे सध्या के समय बड़ा सुहावना होगा ।

२४८—केवल (न) मे ।

२४९—कपड (ख. ग घ) । जीन (ग) । कमाण (ग) । तिण (घ) । रूत बन (ख) न (ग)=ना । गँवार (ख) गमार (ग) ।

२५०—वेलडियां (ज) । हरीया हुई (च) हरियां हुई (थ) नीलाणियाँ (न) । विचि टीडसीयां फूल (ज) विचि तिडि तिलया फूल (थ) । भर वे आयो भाद्रवउ (ज) । अमुल्ल (थ) ।

२५१—शीली (ख) । धर (क) । पूवरी (क. ख. घ) पूयरी (थ) । पूवरी (त) छूकिया लवार (क) छूकती लवार (ख) लच्छुकिय लवार (घ) छिछुकती लवार (ट) । छूकिया लवार (त) धरि गह रहे गमार (ध) बीजळी ऋणकार (द) । गिवार (ज) लंवार (थ) । सौहामणउ (च) सुहांवणौ (ख) सुहांवणो (ज) । श्रवण वरसै वार (घ) । संफी (ख. त) साँफ (ट) । सवार (ट) ।

वावहियउ पिउ पिउ करइ, कोयल सुरंगइ साद ।
 प्रिय, तिण रुति आळिग रखाँ ताह सुँ किसउ सवाद ॥२५२॥
 वूँगरिया हरिया हुया, वणे म्निगोरथा मोर ।
 इणि रिति तीनइ नीसरइ, जाचक, चाकर, चोर ॥२५३॥
 चोर मन आलस करि रहइ, जाचक रहइ, लुभाइ ।
 राज्यँद, जे नर कयउँ रहइ माल पराया खाइ ॥२५४॥
 फौज घटा, खग दाँमणी, वूँद लगइ सर जेम ।
 पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम ॥२५५॥

२५२—मालवणी—

पपीहा पिउ पिउ कर रहा है, कोयल सुरगा शब्द कर रही है । हे प्रिय, ऐसी ऋतु में प्रवास में रहने से क्या स्वाद मिलेगा ?

२५३—पहाडियों हरी हो गईं, वनों में मोर कूकने लगे । ऐसी वर्षा ऋतु में भिखारी, नौकर और चोर ये ही तीन घर में बाहर निकलते हैं ।

२५४—इनमें भी चोर कभी कभी मन में आलस्य करके रह जाते हैं और भिखारी लुभाकर रह जाते हैं परंतु जो लोग पराया अन्न खाते हैं वे (अर्थात् नौकर) हे राजन्, तुम्हीं वताओं कैसे घर रह सकते हैं ?

२५५—बादलों की घटाएँ फौज हैं, विजली तलवार है और वर्षा की वृद्धें वाणों की तरह लगती हैं । हे प्रियतम, ऐसी वर्षा ऋतु में प्यारे बिना कैसे जिया जाय ।

२५२—वावीहौ (ख) वावहियौ (घ) वावहोया (ज) वावीह (च) ।
 प्रिउ प्रीउ (ग. ज) प्रीप्री (घ) प्रीय प्री (च) मधुरै (ख ग. घ. ज)=सुरंगै ।
 प्री (घ) प्रीउ (च) । तिणि (च) इण (ज) । रिति (च) । अळिगन (ग)
 अलिगण (घ) अळगा (च. थ) अळगो (ज) । रहै (ख ग. घ) रहौ (ज) ।
 सेजइ (च) सेऊ (ज)=ताह सुँ । त्याह कु (घ) ।

२५३—हुया (क ख ग ज) । वने (क. च) वने (ग. घ) । म्निगोरै (ज)
 म्निगरै (थ) म्निगोरथा (न) । इण रुति (क. ख. ग. घ) चालै तिण जण (ख)
 चालै तीन जण (ग) तीने सासरै (घ) । नीकळइ (च) चाकर मंगित चोर
 (क. ख) याचक चातक चोर (च ज) । मगत (ग) मांगण (घ) जाचिग (थ) ।
 चात्रिग (थ)=चाकर ।

२५५—प्रीय (क) प्रिय (ग. घ) । वल्लहा (ग. घ) ।

नदियों, नाळा, नोभरण पावस चढिया पूर ।
 करहउ कादिम तिलकस्यइ, पंथी पूगळ दूर ॥२५६॥
 अति धण ऊनिमि आवियउ, भाभी रिठि ऋडवाइ ।
 बग ही भला त बपडा धरण न मुकइ पाइ ॥२५७॥
 पावस मास प्रगट्टिउं, जगि आणंद विहाय ।
 बग ही भला जु बापडा धरण न मेल्हइ पाय ॥२५८॥
 जिण रुति बहु वादळ भरइ, नदियों नीर प्रवाह ।
 तिण रुति साहिब वल्लहा, मो किम रयण विहाय ॥२५९॥

२५६—वर्षा ऋतु मे नदियों, नाले और भरने पानी से भरपूर चढ़े हुए हैं । ऊँट कीचड़ मे फिसलेगा । हे पथिक, पूगल बहुत दूर है ।

२५७—घने बादल उमड़ आए हैं । अत्यंत शीत भडी की वायु चल रही है । बेचारे बगुले ही भले, जो पृथ्वी पर पैर नहीं रखते ।

२५८—वर्षा ऋतु का महीना आ गया, जगत् आनंदपूर्वक कालयापन करता है । (तुमसे तो) बेचारे बगुले ही भले, जो इन दिनों पृथ्वी पर पैर नहीं रखते ।

२५९—जिस ऋतु मे बहुत से वादल भरते हैं, नदियों मे पानी वेग से बहता है, उस ऋतु मे हे प्रिय नाथ, तुम्हारे बिना मेरी रात कैसे बीतेगी ?

२५६—पाणी (च) पांणी (ज)=पावस । चढीयौ (क. ग. घ.) चडीया (च) । करहौ (क. ख. ग. घ) । कागड (ख) काडम (क. ग. घ) काट्टे (ज) क्युं चलै (क. ग) किम चलै (ख.घ) क्रिम क्रिमै (ज)=तिलकस्यइ । साहिब (क. ख. ग घ) पाळा (ज)=पंथी । पंथज (ज)=पूगळ । दूरि (च) ।

२५७—अत (ज) । उँनमि (ज) । भाभू (थ) । रिठि (ज) रिठु (थ) । ऋडाइ (?) वाउ (थ) । ति (थ) । मूकै (ज) । पाउ (थ) ।

२५८—प्रगटीयौ (क. ग. घ) । जग (घ) नग (ग) । आनंद (ग) । ज (क. घ) । भला=भलाजु (ग) ।

२५९—घण (क घ)=बहु । झुरै (क. ग. घ) । वल्लहा (ग घ) रैण विहाई (घ) ।

च्यारइ पासइ घण घणउ, वीजळि खिवइ अगास ।
 हरियाली रुति तट भली, घर संपति, पिउ पास ॥२६०॥
 जिण दीहे पावस भरइ, वावीहउ, कुरळाइ ।
 तिणि दिनकउ दुख वल्लहा, महँ क्यउँ सहणउ जाइ ॥२६१॥
 जिण दीहे पावस भरइ, समनेहाँ सुख होइ ।
 तिणि दिन वयरी वल्लहा. सेज न मुकइ कोइ ॥२६२॥
 महि मोरों मंडव करइ, मनमय अंगि न माइ ।
 हँ एकलड़ी किम रहँ, मेह पधारउ माइ ॥२६३॥

२६०—चारों ओर घने वादल हैं। आकाश में बिजली चमकती है। ऐसी हरियाली की ऋतु तभी भली है जब कि घर में संपत्ति हो और प्रियतम पास में हो।

२६१—जिन दिनों वर्षा की झड़ी लगी रहती है और पपीहा करण शब्द करता है, वे प्रियतम, उस दिन का दुःख मुझसे कैसे रहा जाय ?

२६२—जिन दिनों वर्षा की झड़ी लगी रहती है और समान प्रेमवाले प्रेमियों को सुख होता है, उन दिनों वे बेरी प्रियतम, सेज को कोई नहीं छोड़ता।

२६३—पृथ्वी पर मोर मंडप बनाकर (पिच्छु फैलाकर) नाच रहे हैं और काम अगों में नहीं समाता। मैं अकेली कैसे रहूँगी—अरी माँ ! आप मेह के इन दिनों में पधार रहे हैं।

२६०—वन (ख) । वीजळ (ग. घ) । आकास (क. घ) । अगास (ग) । प्रीय (क) प्रीउ (ग) ।

२६१—जिण रुति पावस बहु घणौ (क ख) जिण रुति बहु पावस भरै (ग) जिण रुति बहु पावस घणौ (घ) भरइ (ज) । वावीहिया (क. ग. ज) वावीहा (क. ग थ) । कुरळाय (ज) । दिन का (क. ख. ग) रुत का (घ)= दिन कउ । वालहा (च) वहला (ग) मे (क) मो (ख ग. घ) कौ (ज)=महँ । महरा (क. ख घ) सहिया (ग) । जाय (ज) ।

२६२—पाळो भरइ (ज) । भरइ (थ) । समेहा (ज) । होय (ज) रिति (थ) = दिन । मडिर (ज थ)=सेज । कोय (ज) ।

२६३—मोर महा (च) मेह मोर (थ) । ताडव (च) डंवर (द) । मनमय (च) । अग (ज) । एकली (च) अकेली (ज) एकली (थ) । करँ (ज)=रहँ ।

मेहाँ बूठों अन्न बहळ, थळ ताढा जळ रेस ।
 करसणपाका, कण खिरा, तद कड बलण करेस ॥२६४॥
 जिण दाहे वण हर धरह, नदी खळकह नीर ।
 तिण दिन ठाकुर किम चलह, धण किम बोंधइ धीर ॥२६५॥
 जिण दीहे पावस भरह, वाजह ताढो वाय ।
 तिण रिति मेल्ले माळवणि प्री, परदेस म जाय ॥२६६॥
 काळी कंठळि बादळी वरसि ज मेल्लह वाउ ।
 प्री विण लागइ बूँदही जॉणि कटारी घाउ ॥२६७॥
 ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कत ।
 वीजळि लियइ भवुकड़ा सिहरों गळि लागंत ॥२६८॥

२६४—मेह बरसने से अन्न बहुत हो गया हैं । पृथ्वी जल के कारण शीतल हो गई है । खेती पक गई । अन्नकण पककर गिरने लगे । बताओ ऐसे समय में कौन गमन करेगा ।

२६५—जिन दिनों वन हरियाली धारण करते हैं और नदियों में पानी कलकल करता हुआ बहता है उन दिनों स्वामी कैसे चलेंगे ? और प्यारी कैसे धैर्य धारण करेगी ?

२६६—जिन दिनों मे वर्षा की झड़ी लगी रहती है और ठढी हवा चलती है उस ऋतु मे मालवणी को छोड़कर हे प्रिय, परदेश मत जाओ ।

२६७—काली कटुलीवाली बदली बरसकर हवा को छोड़ रही है । प्रिय-तम के बिना चूदें ऐसी लगती है मानो कटारी के घाव हो ।

२६८—यह महल अत्यंत ऊँचा है, हे सुहावने कत, आओ (बैठे); (देखो) त्रिजली भन्नक भन्नककर शिखरों के गले लग रही है ।

२६४—केवल (ट) मे ।

२६५—केवल (ट) मे ।

२६६—केवल (ट) मे ।

२६७—कांठळ (घ. ज) । वरस (क. ग. घ) । र=ज (ज) । मल्ले (ज) वाव (ग. घ. ज) । आज घराऊ ऊनहौ वाज्यौ सीतळ वाय । पुणग ज लागौ पीय विण (घ) । बूद ज लागौ प्रीय विण=प्री 'बूँदही (ग) । बूँद ज लागौ प्रिय विना (घ) । जाणै (घ) । जाण (ज) । घाव (ग घ. ज) । केवल (क. ग. घ. ज) में ।

२६८—ऊँचा (क) । घणा (क) । आव (क. ग. घ) । वीजळि (क. घ) । खिवै=लियइ (क) । सेहरा (क. ज) । सिहरा (ग) । गळ (ग. घ. ज) ।

सावण आयउ साहिबा, पगइ विलंबी गार ।
 व्रच्छ विलंबी वेलड्यो, नरो विलंबी नार ॥२६६॥
 पावस मास प्रगट्टियउ, पगइ विलंबइ गारि ।
 धण की आही वीनती पावस पंथ निवारि ॥२७०॥
 आज धरा दस ऊनम्यउ, काळी वड सखरोह ।
 उवा धण देसी ओळवा कर कर लोवी बाँह ॥२७१॥
 आज धरा दस ऊनम्यउ महलो ऊपर मेह ।
 बाहर थाजइ ऊगरइ, भीगा माँफ घरेह ॥२७२॥
 ढोला, रहिसि निवारियउ, मिलिसि दई कइ लेखि ।
 पूगळ हुइस ज प्राहुणउ दसराहा लग देखि ॥२७३॥

२६६—हे स्वामिन्, सावन आ गया, पैरों में कीचड़ लग रही है, वृद्धों से लताएँ लिपट रही हैं और अपने प्रिय पुरुषों से नारियों लिपट रही हैं ।

२७०—वर्षा का महीना आया, पैरों में, कीचड़ लिपट रही है । प्यारी की प्रार्थना यही है कि वर्षाऋतु में यात्रा बंद रखो ।

२७१—ढोला कहता है—

आज पृथ्वी की ओर मेघ भुरुआए है और शिखरों पर घनघोर श्याम घटा की तहे जम रही है । वह प्रियतमा भुजा पसार पसार करके उलहने देगी ।

२७२—आज उत्तर दिशा की ओर महलों पर मेह ठमडा है । बाहर छुज्जे पर पानी पड़ता है और मैं घर के भीतर (मारवणी के स्नेह के कारण ?) भीगता हूँ ।

२७३—मालवणी कहती है—

हे ढोला, रोके नहीं रुकते, विधाता के लेख अवश्य पूरे होंगे, यदि पूगळ के पाहुने बनोगेही तो दशहरे तक और देखो ।

२७०—आयउ प्रीतमा = मास प्रगट्टियउ (च ज. थ) । विलंबी (च) । विलंबी (थ) गार (क ग घ. ज) नारि (च) । धन (ग) । री=की (ज) । आहीज = आही (ज) । धणी आर्ड ही=धण की आही (घ) । वीनती (घ) । म्हाँ कउ कहियउ जउ करउ=धण की आही वीनती (च थ) । तउ पावस=पावस (च) गमण पंथ (ज) । निवार (क. ग. घ) ।

२७१—घटा=वड (घ) म्हारउ साहिव घर नहीं काजळ कूँ पहराह (घ) केवल (घ. ढ) में ।

२७२—विरह वीयापति वीनवै सुदरि कहै रुति वेख (क. ख. ग. घ) में प्रथम पक्ति । वीयापत (क) विआपत (घ) । विख=वेख (घ) । प्रीतम महु

दसराहा लग भी रह्यउ मालवणीरी प्रीत ।
 वरिखा-रुति पाछी बळी, आबी सरद सुचीत ॥२७४॥
 वयणें माळवणी-तणइ रहियउ साल्हकुमार ।
 प्रेमइ वध्यउ प्री रहइ जउ प्री चालणहार ॥२७५॥
 माळवणी, ढोलउ कहइ, हिव म्हों सीख करेइ ।
 ऊन्हाळउ, वरखा विन्हे रहिया तुम्ह सनेह ॥२७६॥
 सीयाळइ तउ सी पडइ, ऊन्हाळइ लू चाइ ।
 वरसाळइ भुई चीकणी, चालण रुति न काइ ॥२७७॥

२७४—(ढोला) मालवणी की प्रीति के कारण दशहरे तक और भी रहा । वर्षा ऋतु लौट गई और सुदर शरद ऋतु आई ।

२७५—मालवणी के कहने से साल्हकुमार रुक गया । प्रियतम यदि जानेवाला होता है तो भी प्रेम से बंधा हुआ रुक जाता है ।

२७६—(जब दशहरा आ गया तब) ढोला कहता है—

हे मालवणी, अब हमें विदा दो । तुम्हारे प्रेम के कारण हम ग्रीष्म और वर्षा दोनों ऋतुओं में रुक गए ।

२७७—मालवणी कहती है—

शीतलकाल में तो शीत पड़ता है, ग्रीष्म में लू चलती है, वर्षा में भूमि (कीचड़ से) चिकनी रहती है—इसीलिये चलने के लिये कोई ऋतु (उपयुक्त) नहीं है ।

उक्तावळो=ढोला रहिसि निवारियउ (न) । दर्ईव रै (ज) । हुई सौ (ज) । हुइ सौ (ख) । प्राहुणै (क ग घ) । दुसराहा (क) । देख (क) । दिखि (घ) । म्हाकउ कहीयउ जउ करइ=पूगळ हुइस ज प्राहुणउ (च ज थ) ।

२७४—दुसराहा (क) । की=री (ख) । प्रीति (ख) । वरखा (क) । आई (ख. घ) । सचीत (क) सचेत (घ) । अबर दीठौ ऊनम्यौ मारू आई चीत (ग में द्वितीय पंक्ति) ।

२७५—वदौ (ज) । प्रीतमा=प्री रहइ (ज) । प्रीच (ज) । चलय (थ) । केवल (च ज) में ।

२७६—म्हाँ सूँ=म्हाँ (क घ) । करेस (घ) । करेस (घ) उन्हालू (ग) ऊन्हालयौ (घ) सनेस (घ) । केवल (क ख ग घ) में ।

२७७—ऊन्हालै (क ख. ग. घ) । वाय (क ग घ ज) । पावस पढै=मुई चीकणी (ज ट) । चलय (घ) । रुत (घ) रत । (ट) रिचु (थ) । काव (क. ग ट) । कोई (घ) । किणी रिति ढोलउ जाइ=चालण रुति न काइ (च) ढोला पंथि रिति न काय (ज) पथीया चालण (ट) ।

मालवणी, म्हे चालिस्याँ, म करि हमारा तात ।
 का हसि करि म्हाँ सीख दे, खडिस्याँ माँम्मिस रात ॥२७८॥
 जिणि दीहे पाळउ पडइ, टापर तुरी सहाइ ।
 तिरि रिति वूढी ही भुरइ, तरुणी केम रहाइ ॥२७९॥
 जिणि दीहे पाळउ पडइ, टापर पड तुरियाँइ ।
 तियाँ दिहाँरी गोरडी दिन दिन लाख नहाँइ ॥२८०॥
 जिणि रिति मोती नोपजइ सीप समंदाँ माहिँ ।
 तिरि रिति डोलउ उमह्यउ, ईस को माणस जाहि ॥२८१॥

२७८—दाला—

मालवणी, (अत्र) हम चलेंगे । हमारी चिंता मत करो । या तो हँसकर हम विदा दो या हम आश्री रात को चल पड़ेंगे ।

२७९—मालवणी—

जिन दिनों पाला पड़ता है और घोड़ों की रक्षा टापर ही से होती है, उस ऋतु में प्रौढ़ा भी (पति विना) विकल हो जाती है । भला, युवती कैसे रह सकती है ?

२८०—जिन दोनों पाला पड़ता है, घोड़ों पर टापर पड़ता है, उन दिनों की प्यारी प्रति दिन लाखों (का लाभ) पाती है ।

२८१—जिस ऋतु में समुद्रों के अदर सीपों में मोती निपजते हैं, उसी ऋतु में दोला (चलने की) उमंग युक्त हो रहा है । भला, ऐसे भी कोई मनुष्य जाना है ?

२७८—चालिस्याँ (ग) । न=म (क. घ) । हसि करि सीख दे=हमि करि म्हाँ सीख दे (क) । माँम्मिस (र) । राति (व) । केवल (क ख ग घ) में ।

२७९—पालि (च) । म्हे तुरियाँइ=तुरी सहाइ (ज) तुरी सुहाइ (च) । रित (ज) । रहाय (ल) । नत्रि रहइ (थ) किम रहवाय (थ) ।

२८०—जिण (क. ख ग घ) । रुति=दीहे (क. ख) रुतिणी=दीहे (ग घ) । पी पालौ पडे=पालउ पडइ (क ख) । पाला पडइ (क. ख) । पाला पडइ (च. थ) । तुरी सहाइ=पड तुरियाँइ (ख घ) । सहे तुरियाँह (थ) तुरी सहाय (क) । तुरी म्हाइ (ग) । ताँह (क ख ग. घ) । तियाँ (थ) दीहा री (च) । दिहाउ (क) दिहाडरि (ग) । लहाय (क) लहाइ (ख) ।

२८१—जिण (क ख घ ज) । जिन (ग) । रुति (क ख. घ) रत (ग) रित (ज) । नोपां (च) । समुंदां (क. ग. घ) । समुंदां (च) । तिण (ज) । रित (ज) । ओई=को (ज) । प्रीतम=माणम (ज) । जाय (ज) । तिण रुति माहीव वन्नहा कोइ मडिर मेल्लि जाइ (क. ख ग. घ में द्वितीय पंक्ति) । छंडे=मेल्लि (क) मेल्ले (ग) ।

जिण्णि दीहे तिल्ली त्रिडइ, हिरणी म्भालइ गाभ ।
 तौह दिहोरी गोरडी पडतउ म्भालइ आभ ॥२८२॥
 जिण्णि दीहे पाळठ पडइ, माथउ त्रिडइ तिल्लौह ।
 तिण्णि दिन जाए प्राहुणउ, कळियळ कुरभडियाँह ॥२८३॥
 जिण्ण रित नागन नीसरइ, दाभइ वनखंड दाह ।
 जिण्ण रित मालवणी कहइ, कुँण परदेसाँ जाह ॥२८४॥
 दिन छोटा, मोटी रयण, थाडा नीर पवन्न ।
 तिण्ण रित नेह न छौँडियइ, हे बालम वडमन्न ॥२८५॥

२८२—जिन दिनों तिल की फली फटने लगती है और हरिणियाँ गर्भ धारण करती हैं उन दिनों की (प्रिय वियोगिनी) नारियाँ मानो गिरते हुए आकाश को भेलती है ।

२८३—जिन दिनों कड़ाके का पाला पडता है और तिलों की फलियाँ फटने लगती हैं तथा कुम्भ पच्ची करण शब्द करते हैं, (क्या) उन दिनों पाहुने होकर (कहीं) चला जाता है ।

२८४—जिस ऋतु में साँप भी (बिल से) नहीं निकलते और दावानल वनखंड को जला देता है, मालवणी (अपने प्रिय से) कहती है कि उस ऋतु में कौन विदेश जाता है ।

२८५—मालवणी कहती है कि हे उदारचित्त बालम, जिस ऋतु में दिन छोटे और रातें बड़ी होती हैं तथा पानी और पवन ठंडे हो जाते हैं उस ऋतु में स्नेह नहीं छोड़ना चाहिए ।

२८२—तिल्ली (क. ख. घ) । तिडै (क) कौरइ कुडै=तिल्ली त्रिडइ (न) । हरिणी (क घ) । गवभ (न) । कामिनी=गोरडी (क) कामणी (घ) । पडे तो (घ) । अरभ (न) । केवल (क ख. घ. झ) में ।

२८३—माथा (ज) । तिडै (ज) । कळीअळ (च) कुँजडीयाँह (च) । केवल (च ज) में ।

२८४—रत (ट) । साप (ट) । दाख=दाह (ट) । तिण्ण=जिण्ण (ट) । सजण विदेस म जाय=कुँण परदेसाँ जाह (ट) । (ज. ट) में ।

२८५—थाडो (ज) । पवन (ज) । तण (ट) । छोडीए (ट) । सुण=हे (ट) । वालंब (ट) । मन (ज) । केवल (ज. ट) में ।

उत्तर आज स उत्तरउ सही पड़ेसी सीह ।
 वाल्लभ घरि किमि छुडियइ जॉ नित चंगा दीह ॥२८६॥
 उत्तर आज स उत्तरउ, पड़सी वाहळियॉह ।
 उर आले प्री राखियइ मूँधा काहळियॉह ॥२८७॥
 उत्तर आज स वळिजयउ, सीय पड़ेसी पूर ।
 दहिसी गात निरध्वणॉ, धरा चंगी घर दूर ॥२८८॥

२८६—आज उत्तर (दिशा का पवन) उतर आया है, अवश्य ही शीत पड़ेगा । हे बालम, (ऐसे समय में) घर कैसे छोड़ा जाय जहाँ नित्य अच्छे दिन (व्यतीत होने) है ।

२८७—आज उत्तर (दिशा का पवन) चलना शुरू हो गया है—उसकी नदियाँ बहेंगी । हे प्रिय, (इस समय तो) कातर मुग्धाओं को अपने हृदय की ओट में रखना चाहिए ।

२८८—आज उत्तर (दिशा का पवन) चलने लगा है, पूरा पूरा शीत पड़ेगा । आज प्रिया विरहित प्रेमियों का गात जल जायगा (क्योंकि) उनकी प्यारी स्त्रियों बहुत दूर घर पर है ।

२८६—वाजिचौ=उत्तरउ (घ) । सीय=सही (क) । सी ही=सही (घ) । पड़े=पड़ेसी (ग) । घर (ग) । किमि (ग) । वीछुडै=छुडिये (ग) छुडिये (घ) । जांह (घ) जहाँ (ग) । नत (घ) । केवल (ख ग घ क) में ।

२८७—उतर (ख) । वजीयौ=उत्तरउ (क) वजिचौ (घ) उत्तरौ (ख) । वहसी=पडसी (ग) वूहौ (न) । वहलीयॉ (घ) । उह्ले (क) । देई प्रिय टंकीयो=आले प्री राखियइ (न) । तीय (क) । राखीया (घ) । राखीयौ (क) मूँध (क ग घ) । मूँधी (न) । काहलीयॉ (घ) । केवल (क ख ग घ क) में ।

२८८—उत्तरौ=वजिय (क) । धन (घ) । चगा (घ) । दूरि (ख) । (ग) का यह १५४ वाँ दोहा है । उस प्रति में इसी दोहे की प्रथम पंक्ति ली गई है और दूसरी पंक्ति (ख) के १६४ वे दोहे की ली गई है, जो इस प्रकार है—
 दहिमी गात ज विरहिनी जाका प्रिय परदेस (ग) । परंतु तुक नहीं मिलती ।

उत्तर आज स उत्तरउ, पल्लांगियोँ दरक ।
 दहिशी गात कुँवारियोँ, थळ जाळी बळि अक ॥२८६॥
 उत्तर आज स उत्तरउ, सीथ पड़ेसी थट्ट ।
 सोहागिण घर आँगणइ, दोहागिणरइ घट्ट ॥२६०॥
 उत्तर आज स उत्तरउ पाळउ पडिसी रीठ ।
 दोहागिण घट सँमुहड, सोहागिणरी पीठ ॥२६१॥
 उत्तर आज स उत्तरउ पाळउ पडइ असेस ।
 दहिशी गात जु विरहिणी जाका प्री परदेस ॥२६२॥

२८६—आज उत्तर (पवन) शुरू हो गया है—प्रवास को जाते हुए (प्रेमियों का हृदय) फट जायगा । वह स्थल को जलाकर और आक को बालकर कुमारिकाश्री का गात जला देगा ।

२६०—आज उत्तर (का पवन) चलने लगा है—खूब शीत पड़ेगा—सुहागिनी (पतिसयुक्ता) के आँगन में और दुहागिनी (पतिविहीना) के शरीर में ।

२६१—आज उत्तर (का वायु) उतर आया है—खूब कड़ाके का पाला पड़ेगा—पतिविहीना के हृदय के सामने और पतिसयुक्ता के पीठ पीछे ।

२६२—आज उत्तर उतर आया है, घना पाला पड़ रहा है । आज जिसका पति परदेश है (ऐसी) विरहिणी का शरीर जल जायगा ।

२८६—उतरो (ख) । वजिवौ (घ) वज्जियौ (ग) । पलांगिया (क ख.घ) । दरक (क. ख. घ) वरक (फ) ऊपडिया सी दरक (न) । दहसै (क) दहिसै (घ) दहिस्यै (ग) । गात्र (क) । निरदनां=कुँवारियोँ (ग) । कुवरीयोँ (घ) । वहि वेळी थळ=थळ जाळी बळि (क) । विह=बळि (घ) । वहि=बळि (ख) । अक (क. ख. घ) । थळोँ जळोँसी अक (न) ।

२६०—वजिवौ (घ) । बट=थट्ट (घ) । थट (ख. घ) । सौहागण (घ) । रै=घर (क. घ) । दोहागण (घ) । घट (ख) ।

२६१—पडिसी (घ) । समहळ (ख) सँमुहां (घ) । सी=री (ख) । रीठ=पीठ (ख) ।

२६२—वजियौ (क) । वजिवौ (घ) । पडिसी (घ) । दहिस्यौ (क) दहिसै (घ) । गात=गात जु (घ) विरहिणी (ख) । कुवरियोँ=विरहिणी (घ) । जाको (क) । प्रीय (क) ।

उत्तर आज स उत्तरउ, पाळउ पड़इ तरंत ।
 मालवणी डम वीनवइ, हूँ किम जीवूँ कंत ॥२६३॥
 उत्तर आज स उत्तरउ, पाळउ पड़इ रवंद ।
 का वासंदर सेवियइ, कड तरुणी, कइ मद ॥२६४॥
 उत्तर आज स उत्तरउ, ऊकटिया सारेह ।
 वेलाँ वेलाँ परहरइ, एकल्लाँ मारेह ॥२६५॥
 उत्तर आज स उत्तरइ, ऊपड़िया सी कोट ।
 काय दहेसइ पोयणी, काय कुंवारा घाट ॥२६६॥
 उत्तर आज स वज्जियउ, ऊकठियइ केकाँण ।
 कौमिण काँम कमेड़ि ज्यउँ हइ लागउ सींचाण ॥२६७॥

२६३—आज उत्तरी दूवा चलने लगी है । जोरों का पाला पड रहा है । मालवणी इस प्रकार विनय करती है कि हे प्रियतम, (ऐसी ऋतु में तुम्हारे वियोग में) मैं कैसे जिँगी ?

२६४—आज उत्तर का पवन उतर आया है । जोरों का जाड़ा पड रहा है । (इस समय) या तो अग्नि का सेवन करना चाहिए या तरुणी स्त्री का या मद्य का ।

२६५—आज उत्तर का पवन उतर आया है । शिरीषों को सुखा दिया है । जो दो दो हैं उनको छोड़ देता है परंतु जो अकेले हैं उनका घात करता है ।

२६६—आज उत्तरी पवन चलता है । शीत के गढ के गढ उमड़ आए हैं (अर्थात् बड़े कड़ाके का शीत पड़ रहा है) । या तो कमलिनी को जला देगा या कुंवारे युवाओं को ।

२६७—आज उत्तरी पवन चला है—(नायकों के) घोड़े निकल पड़े हैं (?)—जो (उत्तरी पवन) काम की पिंडुकी (पत्नी) के समान कामिनी पर बाज होकर झपटेगा ।

२६३—मालवनी (ग) वीनवी (व) । जीवौ (ग) ।

२६४—रवइ (ऋ) । वैश्वानर (व) । कां = कै (ऋ) । केवल (व. ऋ) में ।

२६५—ऊकटा (क. ख) । सरोस (घ.) सारै (क) । वेला वेला (क) । परहरै (क. घ) । अकेलाँ (घ) । मारेस (घ) मारै (क) । केवल (क. ख. व) में ।

२६६—केवल (क) में है ।

२६७—उत्तरौ (ग) वज्जिउ (घ) । ऊकटीया (ग) अकटीया (व) ।

उत्तर आज स उत्तरइ, वाजइ लहर असाधि ।
 संजोगणी सोहामणइ, विजोगणी अंग दाधि ॥२६८॥
 उत्तरदी भुइँ जु उपड़इ, पाळउ, पवन घणॉह ।
 हरणाखी, हस नइ कहइ, सॉम्हो साले जाह ॥२६९॥
 माह महारस समय सब, अति ऊलहइ अनंग ।
 भो मन लागो मारवण, देखल पूगळ द्रंग ॥३००॥
 उत्तर आज न जाइयइ, जिहॉ स सीत अगाध ।
 ता भइ सूरिज डरपतउ, ताकि चलइ दखिणाध ॥३०१॥

२६८—आज उत्तरी पवन उतर आया है। (उसकी) असह्य लहरें चल रही हैं। (वे) सयोगिनी को सुहावनी लगती हैं, (परतु) विरहिणी के अंगों को जला देती हैं।

२६९—ढोला—

उत्तर दिशा की भूमि की ओर जो अत्यंत पाला और पवन उमड़ रहा है, हे मृगनयनी मालवणी ! तुम हँसकर कहो तो उस शल्य (की भाँति तीखे शीत और वायु) के सामने जावे।

३००—माघ मास में सबको मदन का महारस (अर्थात् नशा छाया हुआ) है और (हृदयों में) काम खूब उमड़ रहा है। मेरा मन मारवणी में तथा पूगल नगर को देखने में लगा (लालायित) है।

३०१—मालवणी—

आज उत्तर दिशा की ओर न जाइए जहाँ असाध्य शीत पड़ता है। सूर्य भी उसके डर से सन्नस्त हुआ दक्षिण की ओर रुख करके चलता है।

केकाण (क) । कीकाण (घ) । कमेड (क. ग) । जू (घ) । हुइ=हइ (ग) । ही=हइ (घ) । लगौ (ग) ।

२६८—केवल (क) में ।

२६९—केवल (क) में ।

३००—माहा (ज) । मास कांमण घणे=महारस मयण सब (ट) । अत (ट) । उलटि (ट) । पुगळ (ट) । धंग (ज) । केवल (ज ट) में ।

३०१—जाइयौ (क घ) । जिह (झ) । यह दिस (ख ग) जयॉ त (घ) = जिहाँस । ता तै (झ) । सूरज (घ) ।

फागण मास सुहामणउ, फाग रमइ नव वेस ।
 मो मन खरउ उमाहियउ देखण पूगळ देस ॥३०२॥
 आवी सब रत आँमली, त्रिया करइ सिणगार ।
 जिक्का हिया न फाटही, दूर गया भरतार ॥३०३॥
 ढोलउ हल्लाणउ करइ, धण हल्लिवा न देह ।
 भवभव भूँवइ पागइइ, डवडव नयण भरेह ॥३०४॥
 हल्लउँ हल्लउँ मत करउ, हियइइ साल म देह ।
 जे साचे ई हल्लस्यउ, सूतौ पल्लाँणेह ॥३०५॥

३०२—ढोला—

फागुन मास सुहावना है, सब लोग नए वेश से फाग खेलते हैं । मेरा मन पूगळ देशको देखने के लिये पूरा पूरा उमंगयुक्त हो रहा है ।

३०३—मालवगी—

वही विमल (शरद्) ऋतु आ गई, (जिसमें) स्त्रियाँ शृंगार सजाती हैं । (ऐसे समय में) जिनके पति दूर देश चले गए हैं (क्या) उनके हृदय नहीं फटेंगे ?

३०४—ढोला चलने की करता है और प्रेयसी चलने नहीं देती । वह थोड़े की रिकाव को पकड़कर भवभव भूमती है और डवडवाकर आँखें भर लेती है ।

३०५—मालवगी—

‘चलता हूँ, चलता हूँ’—यों मत करो । हृदय में साल मत मारो । जो सचमुच ही चलोगे तो, मेरे सोते समय (ऊँट पर) जीन कसना (प्रयाग करना) ।

३००—केवल (ट) में है ।

३०३—केवल (ट) में है ।

३०४—हल्लो हल्लौ (ज) हल्ल (थ) चालूँ चालूँ (क घ) ।
 चालेवा=हल्लाणउ (ख ग) । चालिवा=हल्लिवा (ख) चल्लिवा (थ)
 चालण (क. ग. घ) हल्लणा (ज) । नह (ज) । देह (च) देस (क घ) ।
 जय जय (च) । विलगइ (च) भवे (घ) भवे (थ) भूँवे (क. ख. ग. ग)=भूँवइ । पागइ (क. ख. ग. घ. ङ) पयाडा (थ) । भरेस (क) भरेइ (च) ।

३०५—चालूँ चालूँ (क. ख. ग. घ) हालुं हालुं (ज) । हीये (ख) । ना=म (ज) । जड (ज) । माचा ही (ख ग) माचाणी (क) सौँचौ ही (ज. घ) । हल्लणु (थ) चालस्यो (ज) चालिस्ये (क. ख. ग) । सूती (ख. ज) पल्लाँणेह (ख) ।

थॉ सूताँ म्हे चालिस्याँ, एह निचिंती होइ ।
रइवारी, ढोलउ कहइ, करहउ आछउ कोइ ॥३०६॥

(ढोले का प्रस्थान की तयारी करना)

ढोलइ चित्त विमासियउ, मारु देस अळग ।
आपण जाए जोइयउ करहा-हुंदउ वग ॥३०७॥
पलाणियउ पवने मिलइ, घडिए जोइण जाय ।
रइवारी, ढोलउ कहइ, सो मो आवइ दाय ॥३०८॥
दूजा दोवइ-चोवड़ा, ऊँटकटाळउ-खॉण ।
जिण मुखि नागरवेलियाँ सो करहउ केकॉण ॥३०९॥

३०६—ढोला—

तुम्हारे सोते समय हम चलेंगे, इस विषय में निश्चित हो जाओ। फिर ढोला (ऊँटशाला के रक्षक के पास गया और) कहने लगा—हे रेवारी, एक अच्छा ऊँट देखो।

३०७—ढोला ने चित्त में सोचा कि मारु देश बहुत दूर है (इसलिये रेवारी पर ही भरोसा न करके उसने) स्वयं ऊँटों की शाला में जाकर देखभाल की।

३०८—ढोला रेवारी से कहता है कि हे रेवारी, जो (ऊँट) जीन रखने के बाद हवा से मिल जाय और घड़ी भर में थोड़ा भर चला जाय, वह मुझे पसंद होगा।

३०९—रेवारी कहता है कि दूसरे तो दूने-चौगुने हैं और ऊँटकटारा (एक साधारण कँटीली घास) खानेवाले हैं परंतु जिसके मुँह में नागरवेल हैं (जो नागरवेल खाता है), वही ऊँट घोड़ा (जैसा अर्थात् सर्वोत्तम) है।

३०६—निचिंती (ग) । होय (घ) । रववारी (क) । जोय (घ) ।

३०७—आप ज (ज) आपां (थ) । सोध्यउ=जोइयउ (थ) । हदो (ज) । केवल (च. ज) में ।

३०८—पलाण्यौ (क. थ) पल्याणां (च) पलाण्यो (ज) । पवना (ग) पवनां (च) पवनें (ज) । घडीयो (ख) घड़ीया (क. ग. घ. ज) । जोइण घडीए= घडिए जोइण (च) । जोजन (ख) जोयण (घ) । जाइ (क च) जोइ (ख) । रेवारी (क ख. ग घ) रूवारी नइ (थ) । करहउ सोइ देखाइ (च. ज) करहौ आछो जांइ (ख) करह दिखाइ आइ (थ)=सो मो आवइ दाय ।

३०९—दूजौ (क. घ) दूचड (ग) देवड (घ) । ऊँट (ख) । खाइ

नागरवेली नित चरइ, पाँणी पीवइ गंग ।
 ढोला, रयवारी कहइ, करहउ एक सुचंग ॥३१०॥
 जिण मुखि नागरवेलडी करहउ, एह सुरंग ।
 माँगलोर वाड़ी चरइ, पाणी पीवइ गंग ॥३११॥
 क्किणि गळि घालूँ घूघरा, किण मुखि वाहूँ लज्ज ।
 कवण भलेरउ करहलउ मूँध मिलावइ अज्ज ॥३१२॥
 मो गळि घालउ घूघरा, मो मुखि वाहउ लज्ज ।
 हूँ ज भलेरउ करहलउ मूँध मिलाऊँ अज्ज ॥३१३॥

३१०—हे ढोला, जो सदा नागरवेल चरता है और गंगा का पानी पीता है (ऐसा) सुदर ऊँट एक ही है ।

३११—हे ढोला, यह ऊँट सुदर है जिसके मुँह में नागरवेल है, (यह) मागलोर की वाड़ीमें चरता है और गंगा का पानी पीता है ।

३१२—ढोला कहता है—

किस (ऊँट) के गले में घुँघरू बाँधूँ, जिसके मुख में (नाक में) नकेल (लगाम) बाँधूँ, कौन भले (ऊँट) का जाया ऊँट मुझे आज मुग्धा (मारवणी) से मिलावेगा ।

३१३—वही ऊँट कहता है ।

मेरे गले में घुँघरू डालो, मेरे मुँह के लगाम बाँधो । भले का जाया मैं ही ऊँट आज मुग्धा (मारवणी) ने (तुमको) मिलाऊँगा ।

(क ग. घ) । जिस (क घ) । मुख (क. ग. घ) । वेलडी (ग घ) । करहौ (ख)=सो करहउ । सो मो आवैं डाई (क)=सो करहउ के काँण ।

३१०—नागरवेली (घ) । पाणी (ग) । पवैं (घ) । ढोलौ रवारी ने कहै (क) । एहइ=एक (क क) । ए (ग)=एक ।

३११—मोई=एह (ज) । सुचंग (ज. थ) । माँगलार (च) वासौ वसे (थ) । चारौ,=वाटी (ज) । पीवैं ति (ज) ।

३१२—किस (क ख. ग. घ) । लणि (ख) गळ (क) । घालूँ (ख) । गुघरा (ज) किस (क. ख. ग. घ) । गळि=मुखि (च. ज. क) । वाघउ=वाहूँ (च) । घालूँ=वाहूँ (ज) । लाज (क ख ग. घ च. क) । कुण (ग. घ) । कौण (क) । भलेरौ (क. ख ग) । करहलौ (क. ख. ग. घ) । जो मुँध=मुँध (ख) । मिलावैं (ख) मिलावु (थ) मिलावैं (ग) मिलावइ (च) । अज (घ) । आज (क. ख ग. च) ।

३१३—इम=मो (घ) । गळे (घ) वाहे=वालउ (घ) । वालै (ज) । घुघरा (ज) । इम=मो (घ) । गळि=मुखि (च) । वाधे (च) । वालै (ज) । वालै (घ) । एह = हूँज (घ) । भलौ रो (घ) । मिलावैं (घ) । मिलावुं (च) ।

सुणि करहा, ढोलउ कहइ, साची आखे जोइ ।
 अगगर जेहा मूँपड़ा तउ आसंगे मोइ ॥३१४॥
 सुणि ढोला, करहउ कहइ, सौँमि-तणउ मो काज ।
 सरढी-पेट न लेटियइ मूँध न मेळूँ आज ॥३१५॥

(मालवणी-करहा-संवाद)

माळवणी मनि दूमणी आवी वरग विमासि ।
 रइबारी पूछी करी आई करहा पासि ॥३१६॥
 माळवणी करहइ कन्हइ ए वीनती करेह ।
 साहिब मारू ऊमह्या, खोड़उ होइ रहेह ॥३१७॥

३१४—ढोला कहता है—

हे ऊँट सुन, सोच विचार कर सच कहना, यदि (तू) भौँपड़ों को भी महलों जैसा जानता है (कष्टों को भी सुख मानने के लिये प्रस्तुत है) तो मुझे अगीकार करना (मेरे साथ चलना) ।

३१५—ऊँट कहता है—

हे ढोला सुनो, यह मेरे मालिक का काम है, जो आज तुम्हे मुग्धा से न मिला दूँ तो मैं ऊँटनी के पेट में नहीं लेता ।

३१६—मन में उदास हुई मालवणी विचारकर ऊँटशाला में आई और रेबारी से पूछकर ऊँट के निकट आई ।

३१७—मालवणी ऊँट के आगे यह विनती करने लगी कि (हे ऊँट) मेरे स्वामी मारवणी के लिये उमगयुक्त हो रहे हैं, तू लँगडा होकर रह जा ।

३१४—सुण (घ) । ढोलै (घ) । मोह = जोइ (घ) ।

३१५—सुण (घ) । साम (घ) । लेटियै (ख. ग. घ. ङ) मेलौ (ख) मेलुं (घ) ।

३१६—आई (ज) । मभारि=विमासि (थ) ।

३१७—करहा प्रेम समीगळा (च) करहा तो कौडै मरां (ज)=माळवणी करहइ कन्हइ । ए माळवणी=माळवणी (ग) । करहो (घ) । एह (क) । करंत (क) करेस (ङ) । म्हाँ को क्ह्यौ करेह (ज) कहीयउ इक् करेज (च) अरज एक करंत (घ)=ए वीनती करेह । ढोला=साहिब (ज) ढोलउ (ज) माहरौ=मारू (ग) । ऊमह्यौ (ग) ऊमह्य्यो (ज) ऊमाहियौ (क) ऊमह्यउ (च) उमाहीयो (घ) । खोड (च) । होय (ज) । रहइज (ज) रहेइ (ग) रहेंत (क.घ) रहेस (ङ) ।

खोडड हूँ तड डॉभिज्यडँ, वॉध्यड भूख मरेसि ।
 थे विहुँ सब्जण रळि मिल्यड, हूँ विच दुख्ख सहेसि ॥३१८॥
 खोडड हडँ तड डॉभिज्यडँ वॉधियड भूख मरूँह ।
 जाडँ ढोला-रइ सासरइ सफ्फळा मूँग चरूँह ॥३१९॥
 वॉधडँ वडरी छॉहडडी, नीरूँ नागरवेल ।
 डॉभ सँभाळूँ करहला, चोपडिसूँ चपेल ॥३२०॥

३१८—ऊँट जवाव देता है—

लँगडा वन जाऊँ तो दागा जाऊँगा । (फिर एक स्थान पर) वँधा
 हुआ भूखों मरूँगा । तुम दोनों प्रेमी तो हिलमिल नाथोगे । वीचमे पडनेवाला
 मै दुःख सरूँगा ।

३१९—यदि लँगड़ा वन जाऊँ तो दागा जाऊँगा । (फिर एक जगह)
 वँधा वँधा भूखों मरूँगा । यदि ढोला की ससुराल जाऊँगा (तो वहाँ)
 फलियों सहित मूँग चरूँगा ।

३२०—मालवणी कहती है—

(यदि तू दागा जायगा तो) तुझे वड़ की छाया मे वॉधूँगी, नागरवेल
 खाने को दूँगी, हे ऊँट, तुम्हारे दाग (के घाव) को (अपने हाथ से)
 सम्हालती रहूँगी और उसपर चमेली का तेल लगाऊँगी ।

३१८—खोडडा (क ख.ग घ) । खोडो (ज) । हुवाँ=हुँ (क. ख. ग. घ) ।
 तौ (क. ख. ग घ) तो (ज) । डाभिजा (ख) डांभिज्यु (ज) डांभिज्यां ।
 (क. ग) डभिजू (घ) । वाधौ (क. ख. घ) वाधौ (ग) वाधा (ज) । दुख
 (घ) । मराह (क ख. ग घ ज) मरांड (थ) । वेहुँ (ख) वेऊ (ग) वे (ज) ।
 साहिव वेहुँ (क)=विहुँ सज्जण । साहिव वेड (घ) । सजन (ज) हसि मिलौ
 (क. ख ग.) हस मिल्यौ (घ) । विचिका (क. ख. ग. घ)=विचि । म्हे विच
 (ज) । दूख (घ) । सहा (ग) सहांह (क ख घ. ज) विहुँ विचि भूख
 सयड (थ) ।

३१९—जास्यां मारू देस मैं हरिया मुंग चराह (द) ।

३२०—वावू (क ख ग घ ऋ) । की=री (ज) । वेलि (च) ।
 सभालौ (ग) । हाथ सूँ=करहला । चोपडिस्या (ख) चोपडि चोपडि (थ) ।
 चंपेलि (ज) । चोपड चोपड तेल (ऋ) ।

रह रह, सुंदरि, माठ करि, हळफळ लग्गी काइ ।
 डॉभ दिरावइ करहलउ, सेकंतां मरि जाइ ॥३२१॥
 करहा, तूँ मनि रूअडउ, वेध्याँ करइ विछोह ।
 अजइ कुआरउ वप्पडा नहीं ज काँमिण - मोह ॥३२२॥
 अबही मेली हेकली करही करइ कलाप ।
 कहियउ लोपाँ साँमिकउ सुंदरि, लहाँ सराप ॥३२३॥

३२१—ऊँट उत्तर देता है—

अरी सुदरी, बस बस, चुप कर । क्या (ऐसी) व्यग्रता लगी है ? जो
 ऊँट (अपने को) दगावे तो (तेरे) सेकते सेकते भी मर जायगा ।

३२२—मालवणी कहती है—

हे ऊँट, तू मन का बड़ा अच्छा है । सयोगी जनों मे विछोह करवाता
 है, (तू क्या जाने) तू बेचारा अभी कुँवारा है । अभी नारी का मोह तुझे
 नहीं है ।

३२३—ऊँट जवाब देता है—

अपनी ऊँटनी को मैंने अभी अकेली छोडी है, वह विलाप कर रही
 है (परतु क्या करें) यदि मालिक का कहा न माने तो हे सुदरी, शाप के
 भागी हों ।

३२१—रहि रहि (क. ग. घ) । सुदर (क ख. घ) । मठ (ख) ।
 कावच (क) कैवली (ख) । झळफळ=कावच (थ) । लगि (ख)
 लगी (ग) । कोई (घ) काय (ग) गाइ (ख) । हिव वळ लग्गी न
 काय (न) । दिलावै (ख) दिवारिसी (थ) । करहिलौ (ख) माहरै=
 करहलउ (न) । डॉभीतौ=सेकतां (न) । डांभां थी (थ) ।

३२२—कूडलै=रूअडउ (ज) । सुणि करहा सुंदरि कहै=करहा तूँ मनि रूअडउ
 (ख. ग) । करहा सुणि सुदरि कहै (क) । वीध्याँ (ख) वेधां (ग घ) ।
 अजेस=अजइ (ग ज) अजीया (च) । अजुँ (क) अजाहि (झ) ।
 कुमारौ (ख) कुमारौ (झ.) । कुवारौ (घ) । तु फिरइ (च ज) रहे=
 वप्पडा (झ) । जु (ख) । कामणि (ख) कांमण (घ च) । कांमणि
 रो=ज कामिण (झ) काँमण रो (ज) । मोहि (ख) । तोहि=मोह (ग) ।

३२३—नेहही (ग. घ) छोडी (च ज झ. थ) । एकजी (ख ग.
 च ज. झ.) । विलाप (च ज घ) । पिण कडीयउ=कहियउ (च) न
 करां (क ख. ग घ झ) लोपइ (च)=लोपा । सामरो (घ. ज) सामिकौ
 (क. ख ग) । लहे (ख ग. झ) । करहा तो नहिँ पाप (च)=सुंदरि
 लहाँ सराप । डोजउ मारु मोहियउ तूँ खोजो होए आप (य में द्वितीय पक्ति) ।

सुंदरि, मो सारउ नहीं, कुँअर वहेसी मगग ।
 साहिव चित्त उपाड़ियउ जिम केकाँणो वगग ॥३२४॥
 करहा सुणि, सुदरि कहइ, मिहर करउ मो अज ।
 साहिव म्हारउ ऊमह्यउ, हिव सगळो तो लाज ॥३२५॥
 भाई कहि वतळावसूँ, नागरवेल निरेस ।
 हउ हउ करहा, कुँवर-नड मत ले जाय विदेस ॥३२६॥
 कग्हा, मालवणी कहइ, खोड़उ होइ रहेस ।
 जे ढोलउ राखण करइ डौभण तुम्ह न देस ॥३२७॥
 सुंदर, थोके ही कहइ खोड़उ होय रहेस ।
 लउ ढोलउ डौभण करइ डौभण मुम्ह न देस ॥३२८॥

३२४—हे सुदरी, अब मेरे वश की बात नहीं, कुमार मार्ग में चलेगा ही । स्वामी ने चित्त को (यहाँ से) उचाट कर लिया है जिस प्रकार घोड़े वाग को उठा लेते हैं ।

३२५—सुदरी कहती है कि हे ऊँट, सुनो, आज मुझ पर दया करो, मेरे स्वामी (चलने को) उमगयुक्त हुए है, अब तुम्हें ही मेरी सब लाज है ।

३२६—मैं तुम्हें भाई कहकर पुकारूँगी, नागरवेल चरने को दूँगी । अरे अरे ऊँट, कुमार को विदेश मत ले जा ।

३२७—मालवणी कहती है कि हे ऊँट, लँगडा बन जा । यदि तू ढोला को रखने की (चेष्टा) करेगा तो तुम्हें दागने नहीं दूँगी ।

३२८—ऊँट कहता है—

हे सुदरी, तुम्हारे ही कहने से (मैं) लँगडा बन रहूँगा (परतु) यदि ढोला दाग लगाने की करे तो (तुम) मुझे दागने मत देना ।

३२४—वहेसि (ख) । मगि (ग्व) मग (ग घ) । चित्र=चित्त (ख) । चित्त (व) । ल्यु (क. ग. घ) । वग (र. ग. घ) ।

३२५—करहाँ (व) । सुण (घ) । सुदर (ग घ) । मिहर (ग घ) । अज (घ) । म्हारो (घ) । लज (घ) । केवल (र) (ग) (घ) में ।

३२६—केवल (ज) में ।

३२७—केवल (ट) में ।

३२८—केवल (ज) में ।

करहानूँ समभाइ कइ, घर आई बहु जाँण ।
 करहउ साल्ह मँगवियउ, आण्यउ मॉडि पलॉण ॥३२६॥
 करहउ मन कूडइ थयउ राखे यूँ ही पग ।
 ढोलइ मन चिंता हुई, दीजइ केइक दग ॥३३०॥
 रइवारी तेड़ावियउ, दाग दियउ दुइ च्यारि ।
 करहइ तउ पग राखियउ, दूती मेल्हइ नारि ॥३३१॥
 राखउ करहउ डाँभस्यँ, रे मूरखॉ अजाँण ।
 नरवर-कउ जाँणइ नहीं करहा-तणउ संधाण ॥३३२॥

३२६—(मालवणी) ऊँट को (इस प्रकार) समझाकर और यही बहुत मानकर लौट आई । तब सल्हकुमार ने ऊँट को मँगवाया और जीन कसकर ऊँट लाया गया ।

३३०—ऊँट ने झूठे मन से पैर यों ही (लँगडाते हुए पृथ्वी पर) रखा । यह देखकर ढोला के मन में चिंता हुई (और उसने सोचा) कि कुछ दाग देने चाहिए (जिससे ठीक हो जाय) ।

३३१—फिर रेवारी को बुलाया और कहा कि ऊँट के दो चार दाग दे दो । जब ऊँट ने पैर खींच लिया (लँगडाने लगा) तो नारी (मालवणी) ने अपनी दासी को भेजा ।

३३२—उसने दागनेवालों से मालवणी का सदेसा सुनाया—अरे अनजान मूरखों, (ठहरो) ऊँट को दाग से बचाओ, नरवर में कोई ऊँट का उपचार नहीं जानता (ऐसा जान पड़ता है) ।

३२६—नै=नूँ (घ) । घरि (ग. घ) । आंणौ (ग) । अपणो (क) कसवी=आण्यउ (घ) । केवल (ख) (ग) (घ) (क) में ।

३३०—कूडौ (ख) । थकै (ग. घ) । राख्यौ (ग) यूँ ही राखे=राखे यूँ ही (घ) । पाग (ख) । कोई क (ग) कोई (घ) कोई (क) । दाग (ख) ।

३३१—तेड़ावोया (ग. घ) । दीया (ख क) । द्यौयौ (घ) । दोइ (क) । च्यार (ग. घ) । भेजे = सेल्हइ (ग घ) । केवल (ख. ग. घ. क) में ।

३३२—रखे (ग) । मूरिख (ग) मूरख (घ) । नळवर (ग) . सधान (ग) सधाण (घ) केवल (ख. ग. घ) में ।

साहिव, म्होंका वापरुड छड करहोंकड वगग ।
 लड करहड खोंडड हुवड गदह दीजड दगग ॥३३३॥
 तव बोली चंपावती साल्हकुंवररी मात ।
 रे वाजारण, छोंहरी, कोंड खेलाडड घाति ॥३३४॥
 गदह दाध्यड दगग करि, सामू कहड वचन ।
 करहड प कूडड मनड खोडड करड यतन ॥३३५॥
 करहड कूडड मनि थकड पग राखीयड जाँण ।
 उकरडी डोका चुगड अपस डँभायड अँण ॥३३६॥

३३३—फिर ढोला मे कहती है—

हे स्वामिन, हमारे पिता के यहाँ ऊँटों की ढोलियाँ हैं । (वहाँ) यदि ऊँट लंगड़ा हो जाता है तो गधे के दाग दिया जाता है ।

३३४—(गधे को दाग हुआ देखकर) साल्हकुमार की माता चंपावती बोली—अरी नीच छोकरी, क्या घात खेल रही है ?

३३५—सामू (चंपावती) वचन कहती है—

गधे को दाग से जला दिया । यह ऊँट तो झूठे मन से लंगड़ाने की चेष्टा करता है ।

३३६—फिर ढोला मे कहा—

ऊँट ने तो झूठे मन से जान बूझकर पैर को खींच रखा है । घूरे पर डटल चरते हुए विचारे पशु (गधे) को (व्यर्थ ही) लाकर दाग दिलाया ।

३३३—ढोला=साहिव (च. ज. य) । म्होंकं (ग. घ) । वप्प कें (ज) । है=छड (ग) । का=रुड (ग) । वाग (ग) वग (ग. घ) जो (ज) । डीजें गदहे=गादह दीजड (ग) डीजें गादह (ज) । गदह (च) । दाग (ख) । दग (ग. घ) ।

३३४—चंपावती (ग) । घात=मात (ग) । वाजारण (ग. घ) । छोकरी (ग) । छोंहरीया (घ) । आ किम खेली घात (क) किम खेली घात (घ) ।

३३५—डंभ्यो (ज) दुस=दगग (ज) । करै (ज) । करहों (ज) रास तन—करड यतन (ज. य) ।

३३६—रे डोंडा करि छोहडी करड करहारी काणि (य से प्रथम पंक्ति) । रंठ डिली करि छोहरी करड करहीकाणि (च से प्रथम पंक्ति) । रे छोंडो करि छोहरी करड करहारी काणि (ज से प्रथम पंक्ति) । तो कूडे=कूडड (ग. घ) । मन (ग. घ) । मन कूडे (क) । थको (ग. घ) जाँण (ग) उकरडे (थ. च) उकरडी (ज) । चरड (च) चुगो (य) । काड करड ल्यु=अपस डँभायड (च) स्युं पसु डँभायो (ज) । सो आप दगयड (य) । डँभायो (ग) । मो पसु=अपस (द) डँभावे जाण (घ. च) । आप दगायो (क. ख) । आणि (ख. ग. क) ।

सलङ्घण हल्लण सँभलङ्ग ऊभी अँगण छेह ।
 कलजल जल भेळल करी नॉखी नॉख भरेह ॥३३७॥
 डूंगर केरल वलहळल, ओछॉकेरल नेह ।
 वहतल वहइ उतलमळल, भूटक दलखलवइ छेह ॥३३८॥
 पलड खोटरल पववल, जेहल कलती मेह ।
 अडवर अतल दलखवइ अस न पूरइ तेह ॥३३९॥
 थे सलधवलवड, सलध करड, बहु-गुणवंतल नलह ।
 सल जीहल सतखंड हुइ जेण कहीजइ जलह ॥३४०॥
 हलव मलळवणी वीनवइ, हूँ प्रलड, दलसी तोहल ।
 हलव थे चडलस जु चलललल सुती मेल्हे मोहल ॥३४१॥

३३७—वह प्रेयसी, अरगन के कलनारे पर खडी हुई, चलने की वलत सुनती है और कलजल को अँसुअँों मे मललकर, गलरल गलरलकर फलर (अँखँ अँसुअँों से) भर लेती है ।

३३८—मललवणी—

पहलडी नलले और ओछे पुरुषों कल प्रेम वहते समय तो वडी तेजी से वहते हैं परतु तुरंत ही छेह (अत) दलखल देते हैं ।

३३९—भलगुहीनों के प्रलडतम ऐसे होते हैं जैसे कलरुतलक के मेघ जो अडवर तो वहुत दलखलते है पर अलशल पूरी (कभी) नहीं करते ।

३४०—हे वहुत गुणोंवलले नलथ, अरप सलधलवँ, सलदुधल करँ । वह ललहल सौ सौ टुकडे हो जलय जो यह कहे कल “अरप जलवँ”

३४१—अव मललवणी ढोलल से वलनड करती है कल हे प्रलडतम, मैं तुम्हरी दलसी हूँ । (डदुडल जलनल ही है तो) अव अरप सुके सोती हुई छोडकर (डलतुरल को) चढनल ।

३३७—केवल (ट) में ।

३३८—केवल (ट) से ।

३४०—केवल (क) से ।

३४१—हलव (घ) । प्रीड (ग) । हलवडै=हलव थे (ख) । चले=चडलस (ख) । चडलस (घ) । चडल नै (क) = चडलस जु । देखे=मेल्हे (ग, घ) ।

(ढोले का प्रस्थान)

पनरह दिनहूँ जागती प्रीसूँ प्रेम करंत ।
 एक दिवस निद्रा सबळ सूती जॉणि निचंत ॥३४२॥
 ढोलउ करहउ सज कियउ कसवी घाति पलाँण ।
 सोवन-वानी घूघरा चालण-रइ परियॉण ॥३४३॥
 सगुणी-तणा सँदेसड़ा कही जु दीन्हा आँणि ।
 मसिवदनी कई कारणइ हुइ पलाँणि पलाँणि ॥३४४॥
 घाली टापर वाग मुखि, मेक्यउ राजदुआरि ।
 करहइ किया टहूकड़ा, निद्रा जागी नारि ॥३४५॥

३४२—मालवणी पढ़ह दिनों तक लगातार जागती हुई प्रियतम से प्रेम करती रही । (उसके बाद) एक दिन गहरी नींद में निश्चित सोती जानकर—

३४३—ढोला ने कसवी और जीन ढालकर ऊँट को सजाया और चलने के वास्ते मुनहरे बुँबुर डाले ।

३४४—गुणवती (मारवणी) के सदेशे किसी ने लाकर ढोला को कहे थे (इसलिये अब) शाशमुखी मारवणी के लिये—(ऊँट पर) जीन कसो, जीन कसो—यह शब्द होने लगा ।

३४५—ढोला ने ऊँट पर टापर ढालकर और मुँह से लगाम बाँधकर राजद्वार पर (उसे लाकर) बिठाया । उस समय ऊँट ने शब्द किया और नारी (मालवणी) नींद से जाग पड़ी ।

३४२—दिन (ख. घ)=दिवस । निद्रावंत=निद्रा (ख) । निद्र (घ) ।

३४३—करहौँ साल्ह सिंगारीयौ (क. ख. ग. घ)=ढोलउ करहउ सज कियउ । सिणगारियाँ (क) । साँगारियो (घ) । सज (ज) । उपरि सावट्ट पळॉण (च. ज)=कसवी घाति पलाँण । करि सावट्ट (थ) । घाते=वानी (क. ख. ग. घ) । सोना केरा (थ) । सूवणा=घूघरा (थ) । का=रइ (क. ख. ग. घ) । परमाण (ग) परिवाण (ख) ।

३४४—सगुणां (ज) सुगणी (ग. घ) । किय ही=कही जु (ज) । दीधा (ज) । आँण (ज) । सिस = वडणी (ग) शसवदनी (घ) । हरप वदन हियडै वनी=ससिवदनी कई कारणइ (ज) । तव हुई=हुई (ज) । पलाँण पलाँण (ख) ।

३४५—गाली=घाली (ज) सारी=वाली (द. ध) । लाज=वाग (ज) । वैठो=मेक्यउ (ज) । करहौ कीयो कुहकडो । (ज) प्रभाते वोल्थौ कुकडो (द. ध) । नींद गइँ तिए वार=निद्रा जागी नारि (घ) । (ज) के मारजिन पर इसी दोहे का दूसरा पाठतर दोहा यह दिया है—तन भरै चढीया सही मतल राज कुमार ।

करहौ पोल कुहकीयो निद्रा जागी नार (ज) ।

सजि कसणा, करि लाज ग्रहि चढियउ साल्ह कुमार ।
 करह करंकउ श्रवण सुणि निद्रा जागी नार ॥३४६॥
 ढोलइ करह चलावियउ करि सिणगार अपार ।
 आस्यो तउ मिळस्यो वळे, नरवर कोट, जुहार ॥३४७॥
 (मालवणी का विलाप)

धावउ धावउ हे सखी, दो दावणि, को लाज ।
 साहिब म्हॉकउ चालियउ, जइ कउ राखइ आज ॥३४८॥
 ढोलउ चाल्यउ हे सखी, वाज्या विरह निसॉण ।
 हाथे चूडी खिस पड़ी, ढोला हुया संधाण ॥३४९॥

३४६—कसने कसकर और हाथ मे लगाम लेकर साल्हकुमार सवार हुआ । उस समय ऊँट का शब्द कानों से सुनकर नारी नींद से जगी ।

३४७—ढोला ने बहुत श्रृंगार करके ऊँट को चलाया (और नरवर की ओर देखकर बोला) यदि (जीते) लौट आए तो फिर मिलेंगे, ए नरवर के दुर्ग, प्रणाम ।

३४८—इधर ढोले को जाता हुआ जानकर मालवणी कहने लगी—
 हे सखी, दौड़ो, दौड़ो, कोई दामन पकड़ो और कोई लगाम पकड़ो,
 हमारा प्रियतम चल पड़ा—यदि कोई आज उसको रख सके ।

३४९—हे सखी, प्रियतम चल दिए, विरह के नगारे वज उठे । (इस सहसा अघात के कारण) हाथों से चूड़ी खिसककर गिर पड़ी और शरीर की सधियाँ शिथिल हो गईं ।

३४६—कर (ग) गृह (घ) करूकौ (ख) ।

३४७—ढोलौ (ग) । करहौ (घ) । ढोलो पुगळ हालीयो=ढोलइ करइ चलावियौ (ज) । कर (घ) । श्रृंगार (घ) । आराम=सिणगार (ज) । आइस्यां (ख) । मेलस्यां (घ) । म्हे वेगाही आवस्या (ज) = आस्यां तउ मिळस्यां वळे । नळवर (ज) । कोटि (ज) ।

केवल (ख. ग. ज. घ.) में ।

३४८—धावौ (ग घ) । के (ख. ग) किव (घ) । दामणि (च) दांमणि (ज) दमणी (घ) । के (ख. ग) किव (घ) । म्हॉकौ (ग) म्हारौ (घ) । चलीयौ (ख) उमह्यौ (घ) । मारवणी ऊमाहोयउ (च. ज. थ) =साहिब म्हॉकउ चालियउ । सो का (घ) =जइ कउ । ढोलूँ (च. थ) को ढोलो (ज) =जे को । राखै (ख. ग. घ. च. ज) राखौ (थ) ।

३४९—वाया (थ) । तिरह (च) । नीसाण (च) । हाथा (ग) । चूटी (थ) । खिर (ज) । किसि (च) । हुवा (ज) । पराण (ज) = संधाण ।

सखि हे, राजिंद चालियड पल्लोंणियाँ दमाज ।
 किहिँ पुनवती सोंमुहड, म्हों उपराठड आज ॥३५०॥
 सज्जण चाल्या हे सखी, पडहड वाज्यड टुंग ।
 काँही रळी वधोंमणों, काँही अँवळड अंग ॥३५१॥
 सज्जण चाल्या हे सखी, वाज्या विरह-निसोंण ।
 पालंखी विसहर भई, मंदिर भयड मसोंण ॥३५२॥
 ढोलड चान्यड हे सखी, वज्या दमोंमा ढोल ।
 माळवणी तीने तज्या, काजळ, तिलक, तँवोळ ॥३५३॥
 [सज्जण चाल्या हे सखी, पाळे पीळो पज्ज ।
 नव पाड़ा नगर वसड, मो मन सँनड अज्ज ॥३५४॥]

३५०—हे सखी, यात्रा के वाजे वजाते हुए किसी पुण्यवती के सामने श्रीर मुझसे मुख मोड़कर राजन् आज चल दिए ।

३५१—हे सखी, प्रियतम चल दिए, दुर्ग पर दुदुभी वन उठीं, कहीं तो आनदोत्सव हो रहे हैं और कहीं अंग व्यथापूर्ण हो रहे हैं ।

३५२—हे सखी, प्रियतम चल दिए, विरह के नगारे वज उटे, आज पालकी मेरे लिए सोंप रूप हो गई और महल श्मशान जैसे हो गए ।

३५३—हे सखी, ढोला चल दिया, दमामे और ढोल बजने लगे । मालवणी ने काजल, तिलक और तावूल तीनों को त्याग दिया ।

३५४—हे सखी, सावन चले, (उनके) पीछे (धूल उड़ने से) पीली पालि बन गई है । नगरी के नौ मुहल्ले (चौक) बसते हैं तो भी मेरा मन आज सुता है ।

३५०—राजिंद (व) । पल्लोंणिया (ग) पल्लायीया (व) । कहीं (व) । पुन्यवती (ख) पुण्यवती (ग) । रामुहा (ख. ग) ।

३५१—सज्जण (व) । पडहें (व) वाजे (घ) । वधामणों (घ) । कहीं (व) । काँई (क) । अँवळों (क) ।

केवल (क) (घ) (क) में ।

३५२—सज्जण (व) । विसर (क) । केवल (क. घ) में ।

३५३—केवल (घ) में ।

३५४—केवल (ट) में ।

सङ्गण ऒलडल हे सखी, दिस डूगळ दूडेह ।
 सलडधण ललल कडलँण डुडँ ऊडी कङ डूडेह ॥३५५॥
 [सङ्गण ऒलडल हे सखी, वलङ्गइ वलङ्गलरंग ।
 गलण वलदइ सङ्गण गडल, सल वलदडी सुरंग ॥३५५॥]
 सङ्गण ऒलडल हे सखी, नडणु कूडू सलंग ।
 सलर सलडी, गळल कंऑुवड, हुवड नलऑुवण गूग ॥३५७॥
 [सङ्गण ऒलडल हे सखी, सूनल करु अवलस ।
 गळुड न डलणी ऊतरइ, हलडु न डलवइ सलस ॥३५८॥
 वलल, सखी, तलण डंदलरइँ, सङ्गण रहलड गँण ।
 कूडक डूठड डूलडइ ललगू हुसइ तूण ॥३५९॥
 ठूल वळलवुड हे सखी, डूणी डूडइ खेह ।
 हलडडुड डलदळ ऑलइड, नडण टडूकइ डेह ॥३६०॥]

३५५—हे सखी, सलङन डूगल कू ओर दूड ऑले, डह डूडसू ललल कडलन कू तरह खडी हुई कडल कू डूड रही हे ।

३५६—हे सखी, सङ्गण ऑले । सुरगु वलङे वङने लगु । डूडतड गलस डलरुग से गण हँ वह डलरुग सुदर हे ।

३५७—हे सखी, सलङन ऑले, नेऑू ने शूक कलडल । सलर कू सलडी ओर गले कू कऑुकू (अँसुअँ से इतनी डूग गई हँ कल) नलऑुडने के डूगु हु गई हँ ।

३५८—हे सखी, धर कू सूनल करके डूडतड ऑल दलण । (अड) गले से डलनी नूऑे नहँ उतरतल ओर हृदड डँ शूवस नहँ सडलतल ।

३५९—हे सखी, उस डहल डँ ऑलू, गहँ डूडतड ने नलवलस कलडल थल, कूई ँक डूठल डूल (अडू डू) उसडँ लगल हुअल हुगल ।

३६०—हे सखी, ठूलल ऑल दलडल । डूनी डूनी खेह उड रही हे । हृदड (—रूड अकलश) डलदलू से ऑल गडल हे ओर नेऑू से डेह टडक रहा हे ।

३५५—सङ्गण (ग) । ऑलडल (ग) । सलइ (ग) । गलड । (ग) । कर (ट)=कङ । केवल (ग) (ट) डँ ।

३५७—सङ्गण (ग) । ऑलडल । (ग) कूडल (ख) । गळ (क. ग) । कंऑुवू (ग) कंऑुवू (क. घ) । हुवू (क. घ) । नलऑुवन (ग) । केवल (क. ख ग. घ) डँ ।

दोलइ चढि पडताळिया, डूंगर दीन्हा पूठि ।
 खोजे चावू हथ्यडा धूडि भरेसी मूठि ॥३६१॥
 साल्ह चलंतउ हे सखी, गउखे चढि मडू दीठ ।
 हियडउ उवाँहीसूँ गयउ, नयण बहोड्या नीठ ॥३६२॥
 दोलइ करह पलाणिया सुंदरि सलूणी वज्ज ।
 श्री मारुवणी सामुहउ, म्हाँ उपराठउ अज्ज ॥३६३॥
 सयणाँ, पाँखाँ प्रेम की तइँ अच पहिरी तात ।
 नयण कुरंगउ व्यूँ बहइ, लगइ दीह नइँ रात ॥३६४॥

३६१—दोले ने चढकर (ऊँट को) चलाया (और) पर्वत पीछे दे दिया । मालवणी धूल से मुट्टी भरकर (उससे) हवा का रख देखती है ।

३६२—हे सखी, चलते हुए साल्हकुमार को मैंने भगोले में चढकर देखा । हृदय वहीं से (उनके साथ) चला गया और नेत्रों को मैं बड़ी कठिनता से लौटा पाई ।

३६३—दोला ने सलोनी सुंदरी के लिये ऊँट को चला दिया—प्रियतम आज मारुवणी के समुख और मुझसे विमुख है ।

३६४—हे साजन, तुमने अब प्रेम की बेगवती पाँखें धारण कर ली हैं । मेरे नेत्र हरिण की तरह (तुम्हारे पीछे) दौड़ रहे हैं (तो भी तुम्हें नहीं पहच पाते ?) और वे न दिन में लगते हैं न रात में ।

३६१—दीया (ऋ) । बाजै=खोने (ख. ग. ऋ) । भरेसा (व) । मूठ (व) । केवल (ख. ग. व. ऋ) में ।

३६२—चलतँ (व) । चढे (ख) चढ (व) । मय (व)=मडूँ । दोलइ करहउ पलाणीयउ दीया डूंगर पूठि (च. ज. थ में प्रथम पक्ति) । करह (ज) । दीया (ज) । पूठ (ज) । रही ही सूँ=सूँ (घ) । सौ (ग) मन वारयउ ही नवि रहइ (च) मन वारियौ नव रहँ (ज) मन वारयउ ना रहइ (थ)=हियडउ उवाँहीसूँ गयउ । नयण (ग) । निवारय (च. ज. थ.)=बहोड्या । निठ (ग निठि (व) निट्ट (ज) ।

३६३—पलाणीयो (ज) पलाणियउ (थ) । काजि (ज. थ) । मारु पनोती (ज)=श्री मारुवणी । मारु त्रीयाँ (थ) । साँसूहो (ज) । मो (च) अम्हां (ज) । आजि (ज) आज (थ) । केवल (च) (ज) (थ) में ।

३६४—केवल (ज) में ।

प्रिव माळवणी परहरे हाल्यउ पुंगळ देस ।
 ढोला म्हॉ बिच मोकळा वासा घणा वसेस ॥३६५॥
 साल्ह चलंतइ परठिया आँगण वोखडियाँह ।
 सो मई हियइ लगाडियाँ भरि भरि मूठडियाँह ॥३६६॥
 साल्ह चलंतइ परठिया आँगण वोखडियाँह ।
 कूवाकेरी कुहडि ज्युँ हियडइ हुइ रहियाँह ॥३६७॥
 ढोला, जाइ वळि आविज्यउ, आसा सहि फळियाँह ।
 सावणकेरी बीज ज्यउँ भावूकइ मिळियाँह ॥३६८॥
 बीछुडताँ ई सज्जणाँ, राता किया रतन्न ।
 वाराँ विहुँ चिहुँ नाँखिया आँसू मोती व्रन्न ॥३६९॥

३६५—प्रियतम मालवणी को छोड़कर पूगल देश को चल दिए । अब ढोला और हमारे बीच में बहुत से वास (गाँव) बसते हैं ।

३६६—साल्हकुमार के चलते समय आँगन में पदचिह्न बन गए । उन (की धूल) को मैंने मुट्टियाँ भर भर के हृदय से लगाया ।

३६७—साल्हकुमार ने चलते हुए आँगन में पदचिह्न बना दिए, जो कुएँ के कुहरे की तरह मेरे हृदय में हो रहे हैं ।

३६८—हे ढोला, जा करके फिर लौट आना । सब आशाएँ फलीभूत हों । (फिर सहसा) सावन मास की त्रिजली की तरह भूमक कर मिलना ।

३६९—हे सज्जन, तुम्हारे विल्लुडते ही मैंने अपने रत्नरूप नेत्रों को रो-रोकर लाल कर लिया । मैंने दिन रात लगातार मोतियों जैसे आँसू गिराए ।

३६५—केवल (ज) में ।

३६६—परठवी (घ. त) । आँगन (ग) आँगणि (घ) । वोखडियाँ (घ) । सा (ग. घ) । मइ (झ) । ज (घ) रजी=हियइ (त) । मूठडियाँ (घ) ।

केवल (ख) (ग) (घ) (झ) में ।

३६७—परछीयाँ (ग) परठवी (घ. त) परिखियाँ (न) । आँगन (ग) आँगणि (घ) । वोखडियाँ (घ) । सा (ग. घ) । मइ (झ) । कुवै (घ. त) । कुहडि (घ. त) कुहड (न) कुहेड (झ) । हीजरियाँह (ख) । होय (घ) । होइ रहाँ (त) ।

(ग) में पक्तियों का क्रम विपरीत है ।

३६८—थे जाठे (च)=जाइ । आविज्यो=वळि आविज्यउ (ज) । आवियौ (थ) । आसां (ज) । भावूकै (ज) भावकै (थ) ।

केवल (च. ज. थ) में ।

३६९—नावीयउ=नाँखिया (च) । वरन्न (च) वन्न (थ) ।

प्रीतमहूती बाहिरि कवडी ही न लहाँह ।
 जब देखूँ वरआँगणइ लाखे मोल लहाँह ॥३७०॥
 सज्जगियाँ वरळाइ कइ मंदिर वडठी आइ ।
 मंदिर काळउ नाग जिउँ हेलउ दे दे खाइ ॥३७१॥
 सज्जगिया वचळाइ कइ गरखे चढी लहक ।
 भरिया नयण कटोर ज्यउँ, मुंधा हुई डहक ॥३७२॥
 हइ रे जीव, निळज तूँ ; निकम्यु जात न तोहि ।
 प्रिय विट्टुइत निकम्यउ नहीं, रहउ लजावण मोहि ॥३७३॥
 सज्जण चल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार ।
 सूकण लागी वेलडी, गया ज सीचणहार ॥३७४॥

३७०—प्रियतम के बिना मे अपना कौडी मोल भी नहीं पाती । अब (उनको) वर के आँगन में देखनी हूँ तो मे अपना मोल लाखों का पाती हूँ ।

३७१—साजन को भवकर मैं अपने महल में आकर बैठी—महल काले नाग की तरह पुकार पुकारकर ग्याता है ।

३७२—साजन को भवकर मैं ललकर भरोगे में चढी । आँखें कटोरों की भर आई आँग में मुंधा विलखने लगी ।

३७३—अरे प्राण, तू बड़ा निर्लज है, तुझसे निकला भी नहीं जाता । प्रियतम के विट्टुइते समय तू नहीं निकला, मुझे लजाने के लिये रह गया ।

३७४—सज्जन चले गए । (उनके) गुण रह गए । गुण भी अब चलनेवाले हैं । (यह) वेलि अब सूखन लगी (इसके) सीचनेवाले चल दिए ।

३७०—हुंता (ग) ढोला हुतो गोरडी (थ) कवडी मोल लहाँह (ग) । कवडी मोल कहेत (घ) । कौडी मोलि विक्राउ (थ) कटठी मोल कराँह (च) । वरि (व) । नय आगणय (च) आपण (थ)=आँगणइ । तव हूँ लाग्न लहाँ (च. थ) । लहंत (घ) । लहाँह (घ) ।

३७१—सज्जगीथा (ग) । वचलाइ के (ग) बोलायके (घ) । वंठी मिंदिर (व) । मिंदर (घ) । काळा (घ) । ज्यु (घ) । हेलो (ग) लहरी (घ) हेल (क)=हेलउ ।

३७२—केवल (ग) मे (माजिन पर) ।

३७३—निलज (ग. घ) । निकम (ग. घ) । नहीं (ग) नाँह (घ) । पी (घ) । रहो (ग. घ) । लजावन (ग) । केवल (स) (ग) (घ) में ।

३७४—केवल (क) में ।

खूँटइ जीण न मोजड़ी, कड़्योँ नहीं केकोँण ।
 साजनिया सालइ नहीं, सालइ आही ठाँण ॥३७५॥
 सज्जण, गुणे समुद तूँ, तर तर थक्की तेण ।
 अवगुण एक न साँभरइ, रहूँ विलंची जेण ॥३७६॥
 साई दे दे सज्जना, रातइ ईँणि परि रूँन ।
 उरि ऊपरि आँर ढळइ, जाँणि प्रवाळा चूँन ॥३७७॥

सोरठा

सूती पड़ी रणेहि, जोयइ दिसि जातौँतणी ।
 जागी हाथ मळेहि, विलखी हूई, वल्लहा ॥३७८॥
 रूनी रड़ी चडेहि, जोई दिसि जातौँतणी ।
 ऊभी हाथ मळेहि, विलखी हूई, वल्लहा ॥३७९॥

३७५—खूँटे पर जीन नहीं है और न जूते हैं । कड़ी पर ऊँट नहीं है ।
 प्रियतम (हृदय मे) नहीं सालते हैं, यह थान सालता है ।

३७६—हे प्रियतम ! तू गुणों का समुद्र है जिसमे तैरते तैरते मैं थक गई हूँ । अवगुण एक भी याद नहीं पड़ता जिसका आश्रय लिये रहूँ ।

३७७—हे प्रियतम ! मैं रात को इस भाँति घाड़ मार मारकर रोई कि हृदय पर आँसू गिरने लगे मानों मूँगों का चूर्ण हो ।

३७८—हे प्यारे, (यह प्रियतमा) तुम्हारे जाने की दिशा को देख देखकर सोई हुई पड़ी सिसकती है और अपने पर विलख विलखकर हाथ मलती है ।

३७९—हे प्यारे, जाते हुए तुम्हारी दिशा की ओर देख देखकर (यह प्रियतमा) खूब सिसक सिसककर रोई, और व्याकुल होकर खड़ी हुई हाथ मलने लगी ।

३७५—खूँटै (क्) । जाण (क्)=जीण । कुड (च) कुडि (ज) । ठाँणि (थ) = कड़्योँ । नेही (च) नाहीं (ज) । सज्जनीया (च) । सालै (ज. क्) ।

३७७—साँभळि साँभळि (थ) =साई दे दे । सज्जणां (च) । रूज (थ) । ढळया (ज. थ) । चुण्ण (थ) ।

३७८—राती (थ) =सूती । रडी चडेहि (थ) =पड़ी रणेहि । जोई (थ) । साजण (थ) । साजण (थ) =जातौँ । वालहा (थ) ।

केवल च थ. में ।

३७९—रडै चडेह (ज) । मसळेहि (च) घसेह (न) । वालहा (ज) ।

गया गळती राति, परजळती पाया नहीं ।
से सवजण परभाति खडहडिया खुरसाँण ज्युँ ॥३८०॥

दूहा

बीछइतों ही सवजणा, क्याँही कहण न लध्व ।
तिण वेळों कँठ रोकियड, जॉणक सिंधी खध्व ॥३८१॥
सवजण ज्युँ ज्युँ संभरइ, देख्योँ आही ठाँण ।
फुरि फुरि नइ पंजर हुई, समर समर सहिनोँण ॥३८२॥
ए वाडीं, ए वावडी, ए सर केरी पाळ ।
वै साजण, वै दीहडा, रही सँभाळ सँभाळ ॥३८३॥
छोटी बीख न आपडों, लांबी लाज भरेहि ।
सयण वटाऊ वालरे, लंबड साद करेहि ॥३८४॥

३८०—प्रियतम गत व्यतीत होते हुए गए थे । उजाला होने पर (मैंने) उन्हें नहीं पाया । वे प्रियतम प्रभात काल में तलवार की तरह (मेरे हृदय में) खटकने लगे ।

३८१—प्रियतम के विछुडने समय में कुछ भी नहीं कहने पाई । उस समय मेरा कंठ रुँध गया मानों सिंगिया (नामक छिप) खा लिया हो ।

३८२—यह स्थान देखने से प्रियतम ज्यों ज्यों याद आते हैं त्यों त्यों उनके चिह्नों को याद कर करके में झूर झूरकर (अस्थियों का) पजर हो गई हूँ ।

३८३—यह वाटिका, यह वावडी, यह तालाव की पाल, वे सजन और वे दिन—इनका बार बार स्मरण करती हूँ ।

३८४—ओछे बटमों ने पहुँचा नहीं जाता और लंबे डग भरते हुए लाज मरती है—प्रियतम पथिक चले गए (और मालवणी) लवा शब्द करती है (पुत्राग पुत्राकर गेती है) ।

३८०—सजन (ग. ज) । परभात (ग) । ज्युँ (क. ज) जिम (ख) ।

३८१—काइ (थ) । ऊर्माथी खडहड पडी (थ)=तिण वेळों कँठ रोकियड । स्वर (न)=कठ । जॉण (थ) । विखहर (द) सीनी (थ) महुगं (न) नागण (व)=सिंधी ।

३८२—केवल (ज) में ।

३८४—छोटं (ज) । उइयणं वटा वडलीया (च)=सयण वटाऊ वालरे; समय (द)=सयण । करेइं (च) ।

सलद करे कलम सुदुर है, डुळल डुळल थकके डॉव ।
 सडणे घलढल वडळलडल, वडरल जु हूषल वलव ॥३८५॥
 वलवल, वलळूँ देसडड, जलहॉ डूंगर नहलँ कोड ।
 तलणल चडलँ मूकडँ धलहडूँ, हलडड उरळड होड ॥३८६॥
 उर मेहॉ डवनॉह डडडँ करह उडडड जलड ।
 डूगल जलड डुरगडड करड, करह डलरवणल दलड ॥३८७॥
 डूलल सलरस सडडड, जलणड करहड थलड ।
 धलई धलई थळ चढल, डुरगे दलधी डलड ॥३८८॥

३८५—शडद करने से डी कडल, (डुरलडतड) वहुत दूर है, चलते चलते डॉव थक गण । डुरलडतड घलडलडल डलर कर गण डूर वलडु डी वैरी हो गडल ।

३८६—हे वलडल, ऐसे देश को जलल दूँ (डुरलड लगे ऐसे देश को) जहॉ कोई डहलड तक नहलँ कल जलस डर चढकर धलड डलरूँ जलडसे हृदड (तो) हलकल हो ।

३८७—वह, डवन से डुरेरलत डेधु की तरह, ऊँट उडडतल हुडुरल जल रहल है । वह डूगल डहुँचकर डुरडलत करेगल डूर इस डुरकलर डलरवणल की डुरसन्नतल कल करलड करेगल ।

३८८—सलरस के शडद से धुुखे डें डड गडँ—सडडडी कल ऊँट है । दूडूँ डूडूँ डै (ऊँचे) थल डर चढल—डुररी डलँ, डेरे डैर जल गण ।

३८५—सलडु (च) । करल (च)=कलड । दूर=सुदुर (छ) । डुळलतलं (छ) । घढल (च) । वैळलडल (छ) ।

३८६—वलळूँ वलवल=वलवल वलळूँ (ज, क थ) । डूंगर नहलँ ज (क)=जलहॉ डूंगर नहलँ । डूंगर नलही (थ) कोड (ज) । चडलँ=तलणल (च) मूँकल (थ) डेलुं (ज) । धलह डलरी (थ) । डतल हलडड (क) हलडडु (ज)=हलडड । होड (ज) ।

३८७—डैहलं (च ज) । डनलंह (च) । करहल (ज) । लुडडड (च) । जलड (ज) । डुरगळलडु (थ)=डूगल जलड । डुरगडड=डुरगडड करड (च) । डतल डलरवणल रल दलड थ) डलरवणल रै चलहल (ज)=करड डलरवणल दलड ।

३८८—करह करकडड डलड (च) जलणुड करह कलणलड (थ)=जलणड करहड थलड । थळल (थ) । डुरगड (ज)=डुरगे । दधी (ज) । डलई (च) डुरगडल दलधल थ) ।

सारसड़ी सोती चुणइ, कुणइ त कुरळइ काँइ ।
 सगुण पियारा जड मिलइ, मिलइ त विच्छुइइ काँइ ॥३८३॥
 थळ मथ्यइ जळ वाहिरी, काँइ लवृकी वृरि ।
 सीठा चोला घण सहा, सज्जण मूक्या दूरि ॥३६०॥
 थळ मथ्यइ जळ वाहिरी, नू काँइ नीली जाल ।
 काँइ तू सीची सज्जणे, काँइ वृठउ अगाळि ॥३६१॥
 ना हूँ सीची सज्जणे, ना वृठउ अगाळि ।
 तो तळि ढालउ वहि गयउ, करहउ वाँव्यउ ढालि ॥३६२॥

३८६—मारसी मांतियों को चुगती है—यदि चुगती है तो (चुगते समय) क्या कुरलनी है? गुणवान् प्रियतम यदि मिलता है तो मिलकर (फिर) क्या विच्छुइता है?

३६०—हूँ वृर (घाम), मूय और गेतीले थल पर जल बिना (ही) क्यों उठडई हो रही है? मिष्टभाषी और सहनशील प्रियतम को (तो तूने) दूर भेज दिया है ।

३६१—यली पर स्थित हे जाल (वृठ), नू जल बिना कैसे हरी हो रही है? क्या तुम्हे प्रियतम ने सींचा है या अकाल वर्षा हुई है?

३६२—जाल उतर देती है—

न तो मुझे (तुम्हारे) प्रियतम ने सींचा है और न अकाल वर्षा हुई है । ढोला घेर नीचे ढोकर गया है और उसने अपना ऊँट मेरी डाली से बाँधा था ।

३८६—मारडा (च) माग्यडा (क थ) । चुगँ (क) चुगँ (ज) । तु (च) ते (क) । कुरळ (ज. क) । काय (ज) । सुगुण (क) । पियारड (थ) । सजनां (क)=जड मिलइ । मिले तु (च) । वीछुइँ (क) नाहि (क) कांय (ज)=काइ ।

३६०—मथ्य (क) । लवृकी (ज. थ)=लवृकी । नीली खजूर (क) सळही खजूर (घ)=लवृकी वृरि । बोल (च) बोलण (क) । हसण=सहा (क) । साजन (ज) साजण (क) । मंज्या (ज. थ) बसीया (क) = भूस्या ।

३६१—मथ्य (ज. क) । जाल (क) । काँ (ज. क) । सजनें (ज) सजणें (क) मज्जणों (च) । काँ (ज. क) । वृटँज, (ज. क) । अगाळ (क) अकाळि (च) ।

३६२—सजनें (ज) सजणें (क) । ना (ज) । वृटँ (ज. क) । अकाळि (च) अगाळ (क) । मति (च)=मो तळि । पोदियउ=वहि गयउ (थ) । ढाल (क) ।

ढोला, हूँ तुम्ह बाहिरी, भीलगा गइय तळाइ ।
 ऊ जळ काळा नाग जिउँ, लहिरी ले ले खाइ ॥३६३॥
 [सुंदर सोळ सिंगार सजि, गई सरोवर पाळ ।
 चद मुळकथळ, जळ हँस्यळ, जळहर कंपी पाळ ॥३६४॥
 चदा तो किण खाडियळ, मो खंडी किरतार ।
 पूनिम पूरळ उगसी, आवंतइ अचतार ॥३६५॥
 चपा केरी पाँखडी, गूँथूँ नवसर हार ।
 जड गळ पहरूँ पाव बिन, तड लागे अंगार ॥३६६॥]

('शुक सदेश)

सुणि सूडा, सुंदरि कहय, पखी, पडगन पाळि ।
 प्रीतम पूगळ-पंथ-सरि, किम ही पाळ्ळुच वाळि ॥३६७॥

३६३—हे ढोला, मैं तुम्हारे बिना (अकेली) तालाब मे नहाने गई ।
 (उसका) वह पानी काले सॉप की तरह लहरें ले लेकर खाता है ।

३६४—सुदरी सोलह शृंगार सजा करके सरोवर के तीर पर गई ।
 (उसको देखकर) चद्र मुसकराया, जल हँसा और जलाशय की पालि कॉप गई ।

३६५—हे चद्र, मुझे विधाता ने खंडित किया—तुम्हे किसने खंडित
 किया है ? तू तो पूर्णिमा को पूर्ण (होकर) उगेगा परतु मैं आगामी जन्म मे
 ही (पूर्ण होऊँगी) ।

३६६—चपे की पँखुरियों का नौ लड़ियोंवाला गूँथती हूँ । यदि (उसे)
 गले मे पहनती हूँ तो प्रियतम के बिना अंगार सा लगता है ?

३६७—अब मालवणी अपने सुगे से कहती है—

सुदरी कहती है कि हे सुगे, सुनो । भाईचारा निब्राहो । प्रियतम पूगळ
 के मार्ग पर हैं, तू किसी तरह उनको लौटा ला ।

३६३—तो (ज)=तुम्ह । तळाव (च ज) । सो सरवर (ज) ऊ सरवर
 (थ)=ऊजळ । कागला (च)=काला । हेले (च) हेला=लहिरी । दे दे
 (च क थ)=ले ले । खाय (च ज) ।

३६७—सूवा सुणि (क ख ग घ ङ) = सुणि सूडा । सूआ (ज) सुडा
 (थ) । सुइर (क) सुँइर (घ) सुदरी (ख) । कहै (क ख ग घ ङ) । तूँ
 (च ज थ) पंथी (क घ)=पखी । पडिवन्नड (च थ) पडगनो (घ) । पाळ
 (ङ) । ढोलड (च थ) ढोलौ (ज)=प्रीतम । पुंगळ (ज) । सरि (च) सरि
 (क ग) । किवही (ख) किमहीक (ङ) । पूठो (ङ) । वाळ (घ) ।

सूवा, एक सँदेसड़ु, वार सरेशी तुभक ।
 प्रीतम वॉसइ जाइ नई, मुई सुणावे मुभक ॥३६८॥
 ढोलइ चलतॉ परिठव्यउ, अगणि मोजॉ सल्ल ।
 ढोलउ गयउ न बाहुडइ, सुया, मनावण चल्ल ॥३६९॥
 चंदेरी वँदी बिची, सरवर केरइ तीर ।
 ढोलइ दाँतण फाड़तॉ, आइ पुहत्तउ कीर ॥४००॥
 कहि सूवा, किम आवियउ, किहींक कारण कथ ।
 तू माळवणी मेलिहयउ, किनाँ अम्हीणइ सथ ॥४०१॥

३६८—हे सुए, मेरा एक सँदेसा है, यह काम तुम्हो से पार पड़ेगा ।
 प्रियतम के पास जाकर मुझे मरी हुई सुना दे ।

३६९—ढोले के चलते समय अँगन में जूते और भाले के चिह्न बन
 गये । ढोला गया हुआ लौट नहीं रहा है । हे सुए, उसको मनाने के लिये
 चला ।

४००—चटेगी और वूँदी नगर के बीच में, सरोवर के किनारे, जत्र ढोला
 दँतवन चीर रहा था उस समय, वह सुग्गा आ पहुँचा ।

४०१—ढोला सुग्गे को देखकर पूछना है—

हे सुए, कह, कैसे आया ? कोई कारण हो तो कह । क्या तुम्हें मालवणी
 ने भेजा है अथवा (तू) हमारे साथ (चला आया) है ?

३६८—वारु मरसे सूक=वार सरेशी तुभक (ज) । कै=नई (क ख. ग.
 घ) । केवल (क ख ग घ ज) में ।

३६९—ढालो (ज) । चलति (ज) । परिठियाँ (ज) पूरिया (थ) । अँगण
 (ज) । मोजा (च) । भल्ल (थ) । ढोलो (ज) । कह्यो=गयउ (ज) । नह (ज) ।
 वाहउँ (ज) । सूवा (ज) । मनाकु वल्लि=मनावण चल्ल (ज) ।

४००—मदिर=वूँदी (ख ग घ ङ) । नगरी=वूँदी (क ङ) । वचे (ट) ।
 त्रिचें (क. ग) । केँर (क ग) केरी (ख ङ) । दाँतन (ग) । पहुतौ (ख) ।
 अठे पधारे वीर=आइ पुहत्तउ कीर (ट) ।

केवल (क ख. ग घ ङ ट) में ।

४०१—आवीया (क) । कहेक (ख) कहीक (घ) केहै (ज) कहीज (ग)
 कहि किस (ङ) । के=तू (ग ज) । तो नूँ (घ) । माळवनी (ग) । किन्हा (ग) ।
 अमीरौँ (ख, अम्हीनै (ग) । सथि (ख) सथ (घ) ।

साल्ह कुँअर, सूडउ कहइ, माळवणी मुख जोह ।
 प्राँण तजेसी पदमणी, लंछण देस्यइ लोह ॥४०२॥
 प्रीतम वीछुडियाँ पछइ, मुई न कहिजइ काइ ।
 चोली-केरे पाँन ज्यूँ, दिनदिन पीली थाइ ॥४०३॥
 बोलि न सकऊँ वीहतउ, हेक ज बात हुई ।
 राजि अणुठा बाहुडउ, माळवणी मूई ॥४०४॥
 सूडा, सगुण ज पंखिया, म्हाँकउ कछउ करे ज ।
 नव मण चंदण, मण अणर, माळवणी दागे ज ॥४०५॥

४०२—सुगा कहता है कि हे साल्ह कुमार, मालवणी की ओर देखो । वह पद्मिनी प्राण छोड़ देगी और लोग तुम्हे लाछन लगावेंगे ।

४०३—प्रीतम के बिछुड़ने पर क्यों न मरी हुई कही जायगी, जब वह मजीठ के पत्तों की भाँति दिन प्रति दिन पीली पड़ती जा रही है ।

४०४—मैं डरता हुआ बोल नहीं सकता, एक बात हो गई है, आप वापिस लौटे—मालवणी मर गई है ।

४०५—ढोला कहता है—

हे सुए, तू गुणवान् पत्नी है, हमारा एक कहना करना—नौ मन चदन और एक मन अणरू लेकर मालवणी का दाह-कर्म कर देना ।

४०२—साल (ग) । कुमर (क. ज) कुंवर (ख) । सूची (ख, ग) सूवउ (क) सूओ (घ) कहौ (घ) । माळहवणी (ख) । मुखि (ज) । जोय (ज) । तिजंती (ज. थ) । पदमिनी (च) पदमिणी (क. ख. ग) पदिमणी (घ) । लंछन (ग) । दे सिर = देस्यइ (ख) देसी (ग. घ) दीसी (घ) । तोहि (ख) तोइ (क. घ.) सोइ (ज. थ.) = लोइ ।

४०३—वीछुडियाँ (क. ज) सुनजे = कहिजै (ग) सुणिये (क. त) । कोइ (क. घ) । केरा (ग. ज) । होइ = थाइ (क) ।

केवल (क. ख. ग. घ) में ।

४०४—बोल न (क. ग. घ) । सकु (ज) । एक (क. ग. घ) । अणुठा (घ) । बाहुडे (ख) बाहुड्या (ज) माळवण (घ) । मुई (क. घ) ।

४०५—दस = नव (क. ख. ग. घ. ज) । मणि (ज) । तेल सुगधौ लेय = माळवणी दागेज (ख. ग. ज) लेस (क) ।

इस दूहे की दूसरी पंक्ति (क. ख. ग. घ. ज.) में पहली पंक्ति है । पहली पंक्ति (च) से ली गई है । (क. ख. ग. घ. ज.) में दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—'गुण थाईको साँणसा मालवणी दागेय'—इसके पाठांतर इस प्रकार है—थाँकौ ही (क. ग) थाकौ (घ) = थाइकौ । मानस्या (क) मानस्या (ग. ज) मानस्यो (घ) । माळवण (घ) । दागेस (क. घ) । दागेह (ग) ।

सूडा, सुगुण ज पंखिया, म्हाँकउ कह्यउ करेह ।
 सार्ह देव्यां सवजणाँ म्हाँ साम्हाँ जोएह ॥४०६॥
 थ्रे सिध्यावउ, सिध करउ, पूजउ थॉकी आस ।
 वीछुइतॉ ही माणसॉ, मेळउ दिवउ उल्हास ॥४०७॥
 थ्रे सिध्यावउ, सिध करउ, पूजउ थॉकी आस ।
 मत वीसागउ मन-थकी, उवा छइ थॉकी दास ॥४०८॥
 ढोलइ मूवउ सीख दइ, जा पंछी, ग्रह वास ।
 उडियर पाछउ आवियउ माळवणी-कइ पास ॥४०९॥

४०६—हे मुए, न गुणवान् पत्नी है, हमाग कदा करना—हमारी ओर देखकर (हमारी ओंग से) प्रियतमा के पीछे वाँग देना ।

४०७—(जब मुए ने देखा कि मृत्यु-समाचार से भी ढोला का मन नहीं फिरा तो लाचार होकर कहने लगा—)

आप पवारिए, सिद्धि कीजिए, आपकी आशा पूरी हो और विछुड़े हुए जनों को फिर मिलकर उल्लास देना ।

४०८—आप पवारिए, सिद्धि कीजिए, आपकी आशा पूरी हो । उस (मालवणी) को मन से मत भुलाना, वह आपकी दासी है ।

४०९—ढोला मूवे को विदा देता है कि हे पत्नी, अपने वास-स्थान को जाओ । तब वह उड मालवणी के पास वापिस आया ।

४०६—सगुणा (थ) । करेस (थ) । म्हाँ सौ माने हेज=म्हाँकउ...करेह (थ) । लड लाऊड ढीहर ढकलि म्हाँ हु इतिया देह=सार्ह...जोएह (ज) ।

केवल (च. ज. थ) में ।

४०७—गिवात्रो (ज) । मिद्धि (च) । मिधि (थ) । वीछुटीयां (ज) । प्राव=ही (ज) वांगे किर्सां वेमास=मेळउ ...उल्हास (ज) ।

केवल (च. ज) में ।

४०८—गिवात्रो (ग्व) । सिधि करी (ग्र) हूं छूं=उवा छें (ग्र) । थॉकी=थांकी (ग्र) ।

केवल (क. ग. ग. घ) में ।

४०९—सूवानुं=मूवउ (ज) । वी (ज) । गृह (ख. ज) । उडियर (ख) उडनें (क) उडिनें (ज) । पामि (ज) ।

केवल (क. ग. ग. घ. ज. क. थ) में ।

लॉबी कॉब चटक्कड़ा, गय लंबावह जाळ ।
 ढोलउ अजे न बाहुंङ्गह प्रीतम मो मन साल ॥४१०॥
 रहि नीमाँणी, माठ करि, सयणों वयण न कथ्थ ।
 ब्यौ पग दीधा पागङ्गह वाग उवाँही हथ्थ ॥४११॥
 प्यारा, पाखर पेम की, कॉइ ज पहिरी अंगि ।
 वयण खटक्कह वाण ब्युँ, कोइ न लागइ अंगि ॥४१२॥
 साहिब, तुभम् सनेहङ्गह, प्रीति-तणी पति जाइ ।
 जळ खिण ही जाणइ नहीं, मच्छ मरइ खिणमाँइ ॥४१३॥

४१०—उधर पीछे मालवणी विलाप करती है—

लबी छड़ी की मार से वह गति को द्रुत करता है । मेरे मन का प्यारा साल्हकुमार (ढोला) अभी तक नहीं लौट रहा है ।

४११—इतने में सूवा आ जाता है और कहता है—

बोलती न रह, चुप कर, प्रियतम से वचन न कह । जिन्होंने रिकाव पर पैर दिए लगाम भी उन्हींके हाथ में है (लौटना उन्हीं के हाथ में है) ।

४१२—पुनः मारवणी विलाप—

हे प्यारे, तुमने प्रेम का कैसा कवच धारण कर लिया है । (मेरे) वचन वाण की तरह आघात करते हैं परतु तुम्हारे अंग में कोई नहीं लगता ।

४१३—हे नाथ, तुम्हारी प्रेमरीति से प्रीति की प्रतीति चली जाती है । मछली क्षण भर में मर जाती है परतु जल को क्षण भर के लिये भी उसका ज्ञान (ध्यान) नहीं होता ।

४१०—कब (क. घ) । चटक्कड़ा (ख. ग. घ) । गउ (ख) । अजूं (क. ग. घ) । साल्ह (क. ख) सल्ह (घ) ।

केवल (क, ख ग. घ) में ।

४११—निमाँणी (ज) । मठि (ज) । कथि (ज) । दीनां (ज) । वागां (ज) । त्यांही (ज) ।

केवल (ख. ज) में ।

४१२—प्यारी (झ) । सयणा (न) । प्रेमची (न) । काइक (क. घ) । पहिरी (घ) पैहरी (ज) । अग (क. ख. ग. घ झ) । तन्न=अंगि (न) । खरडकै (ख. झ.) खटकै (क. ग. ज.) खटकी (घ) । खतंगा वाहिया=खटक्कह वाँण ज्युँ (न) । तास=कोइ (क. घ) । भागै=लागै (घ) । मन्न = अंगि (न) । अंग (क. ख. ग. घ. झ) ।

केवल (क ख. ग. घ झ. न) में ।

४१३—सनेहडै (ज) सनेहडी (क. घ) । प्रीत (ग. घ) । पत (घ) । जाय (ज) । माछ (ख. ग) । माँहि (क. ग. ज) । माह (घ) ।

बाँवळि काँइ न सिरजियाँ, मारु मंज थळाँह ।
 प्रीतम वाढत काँवडी, फळ सेवंत कराँह ॥४१४॥
 साँवळि काँइ न सिरजियाँ, अंवर लागि रहंत ।
 वाट चलताँ साल्ह प्रिय, ऊपर छॉह करंत ॥४१५॥
 साँगण काइ न सिरजियाँ, प्रीतम हाथ करंत ।
 काठी साहंत मूठि-भाँ, कोडी कासी संत ॥४१६॥

४१४—हे विधाता, तूने मुझे मरु देश के रेतीले स्थल के बीच मे बबूल क्यों नहीं बनाया, (जिससे कि पूगल जाते हुए) प्रियतम छड़ी काटते और मैं उनके हाथों के स्पर्श का फल पाती ?

४१५—(हे विधाता), मुझे श्यामल बटली क्यों नहीं बनाया, जिससे मैं आकाश मे लगी रहती और मार्ग चलते हुए प्रिय साल्हकुमार पर छाया करती ।

४१६—(हे विधाता), मुझे नरसिंहा क्यों नहीं बनाया, जिससे प्रियतम हाथ में लेते, मुट्टी मे कसकर पकड़ते, (और मैं) खूब प्रसन्न रहती ।

केवल (क. ख. ग. घ. ज) मे ।

४१४—बाँवळ (ख. ग. घ. त) बाँवण (ख) । सरजियां (ग) । काँइन सरजी बाँवळी (ज) । काँइन सरजी अबली (ट)=बाँवळि . सिरजियाँ । माम्मा =मारु (ट) सरळी=मारु (ट) । मंज (ख) । ढोलो=प्रीतम (ज. ट) । तोडत (ज) मोडत (ट) वाढत (क. ग.) । खल=फळ (घ) । चटकावत=फळ सेवंत (ज. ट) । करहां (ट) । पाछै परहरियाँ=फळ...कराँह (ख) । फल (त) ।

४१५—सवळी (क. ग. घ. त) । सिरजीया । (ख) सिरजई (त) । कांयन सरजी वाढळी = साँवळि...सिरजियाँ (ज) । लागी आभ=अंवर लागि (क. घ. त) । लागी साथ दहत=अंवर . रहत (ख. ग) । रहति (त) । करहै प्रीतम कावडी = वाट...प्रिय (क. ख. ग. घ. त) । तिहिवाँ (ख. त) तिहिवां (ग) तिहूया (क) तिहुआं (घ)=ऊपर ।

४१६—साँगण (ग. घ) । सरजियां (ग. घ) । साहठ (ख) । हाथमै (क. घ. त) । मूठमै (ग) । काडे (त) ।

हित विण प्यारा सज्जणों, छळ करि छेतरियाह ।
 पहिली लाड लडाइ कह, पाछइ परहरियाह ॥४१७॥
 [आबि विदेसी वल्लहा, छळ करि छेतरियाह ।
 मतवाळा रो वतक ज्यउँ, पिय नई परहरियाह ॥४१८॥]
 आडा वनखँड दे गया, परवत दीन्हा पूठ ।
 हियडा ऊपर राखती, कदे न कहती ऊठ ॥४१९॥
 सज्जण अळगा तौ लगइ, जाँ लग नयणे दिट्ट ।
 जब नयणोंहूँ बीछुडे, तब उर संक पड्ड ॥४२०॥
 [सज्जण देसंतर हुवा, जे दीसता नित्त ।
 नयणे तो वीसारिया, तूँ मत विसरे चित्त ॥४२१॥]

४१७—हे प्रेमविहीन प्यारे सजन, तुमने छल करके (मुझको) ठग लिया । पहले लाडप्यार करके (फिर) पीछे छोड़ दिया ।

४१८—हे परदेशी प्रियतम, आओ, छल करके तुमने मुझे ठग लिया । मतवाले की सुराही की तरह तुमने पान करके मुझे छोड़ दिया ।

४१९—(प्रियतम) जगल के जगल बीच में दे गए, पर्वतों को पीछे छोड़ गए । मैं उन्हें सदा हृदय पर रखती और कभी नहीं कहती कि 'उठो' ।

४२०—सजन तभी तक अलग (रहते) है जब तक आँखों से दिखाई देते हैं । जब वे आँखों से बिछुड़ जाते हैं तो हृदय में प्रवेश कर जाते हैं ।

४२१—जो प्रियतम सदा दिखाई देते थे वे देशांतर को चले गए । नयनों ने तो उन्हें विसार दिया, पर हे चित्त, तू उन्हें मत विसारना ।

४१७—तेहज (क) हेत ज (घ) हित ज (ज)=हित विण । सज्जणां (ख) सजनां (ज) । कर (घ) छेतरिया (ख ग घ. ज) । लाल=लाड (घ) । नै=कै (ज) । चहोडिया=लडाइ कै (क ग घ) पीछें (ज) पीछे (घ) । परहरिया (ख. ग) परिहरिया (ज) ।

४१८—यह दूहा केवल (ज) में है ।

४१९—सजन चाल्या हे सखी हंगर दिया ज पूठ ।

हीयै पर हुलरावती, (न) ।
 केवल (ज न) में ।

४२०—सजन (क ग. घ) । जां=तां (क. ग. घ) नयने (ग) । नयणां (क. घ) । दीठ (क.घ) । नयनां (ग) । मांहि (ख) । उमर ज=उर मझ (घ) । केवल (क. ख. ग. घ) में ।

कुसळ विहावड सज्जणां, पर मंडले थयाँह ।
 जउ विह हिया न हारिस्यइ, वळे मिळेवउ त्याँह ॥४२२॥
 माळवणी इणि विधि घणउ विरह विकळ विलपति ।
 ढालउ पूगळ पंथ सिरि आणँद अधिक खडंति ॥४२३॥
 अति आणँद उमाहियउ, वहइ ज पूगळ वट्ट ।
 त्रीजइ पुहरि ललोघियउ, आडवळारउ घट्ट ॥४२४॥
 [करहउ पाणि तिसाइयउ, आयउ पुहकर तीर ।
 ढालउ उतर पाइयउ, निरमळ सरवर नीर ॥४२५॥]

४२२—हे सजन, (अथ तुम) दूसरे के मडल में हो रहे, कुशलपूर्वक दिन बताओ । जो (हम) दोनों के हृदय हार न गए तो फिर मिलन होगा ।

४२३—उस प्रकार मालवणी विरह से अत्यंत व्याकुल होकर विलाप करती है । (उधर) ढाला पूगल के मार्ग में अधिक आनंद में (भरा हुआ) ऊँट को हॉक रहा है ।

४२४—(ढोला) अत्यंत आनंद में उमगा हुआ पूगळ के मार्ग में चल रहा है । (उस दिन) तीसरे पहर उसने आडावळा पहाड़ की घाटी को पार किया ।

४२५—पानी के लिये तृपित हुआ ऊँट पुष्कर के तीर पर आया । ढोला ने उतरकर उसे सगेवर का निर्मल पानी पिलाया ।

४२२—मुखि (व) मुखइ (च)=कुसळ । विहावौ (क. ख ग. घ ऋ) । सज्जणा (ग) सजना (क घ) । परि (च) । मडिरे (थ) । थियाँह (ग) थयाँहि (घ) । जे मरि हाडन हारही=जउ हारस्यइ (क ख. ग घ ऋ) । वलि=विह (थ) । हाट=हिया (थ) । हारवइ (थ) । वळी (ऋ) । मिळिजे (क ख ग ऋ) । मिळिजे (घ) । ताह (क ख. ग ऋ. थ) । ताहि । (घ) ।

४२३—माळवनी (ग) । इण (ज) इण (क ग घ) । विधि (ग. घ ज) । विहुल (ख. ग घ ज) । विध विलपत (ख) विललत (ग) विलपति (घ) । विह ढाला=ढाला (क घ) । सिरि (ख) । आनद (ग) । खडंत (क. ख ग. घ) ।

४२४—आनद (ग) । करहा पाणी धउ करे (च) करहा पाणी धव करे (थ) करहा धों करे (ज)=अति उमाहियउ । पडिसै (थ) खडिसै (ग) वहिमो (क) वहिमा (घ) वळेंज (ऋ) कहेज (ज) । वाट (क ग. ज ऋ) । तीज (ख. ग ऋ) । त्रीजे (क) त्रीजी (घ) । पुहरि (च) पुहरे (थ) प्रहरे (ज) पहरि (ख ऋ) पहिरे (घ) पहर (क) । लवीयो (घ थ) लवीयउ (च. ज) । आडवळारो (ख ऋ) आडवळारो (क) आडवळारो (घ) आडवळारो (ग) । घाट (क. ग ज) । घट (ख) ।

करहल, डललुी खलंओ डलड, तुरलसल घणुल सहलसल ।
 छीलरलरलड दूकलसल नहल, डरलरल कुथल लहलसल ॥ॡ२ॢ॥
 देस वलरंगड ढोलणल, दुखुी हुडल इहलँ आइ ।
 सनगडतल डलडुडल नहल, ऊँडकडललल खलइ ॥ॡ२ॣ॥
 करहल, नुीहूँ ओड ओरइ, कंडललड नइ डुग ।
 नलगरवलल कलहलँ लहइ, थलरल थुडड ओग ॥ॡ२ॢ॥

ॡ२ॢ—ढुलल ऊँड से कहतल हल—

हे ऊँड, (अड) छककर डलनी डीले । (आगे) डुडलड डहुत सहनी डड़ेगी । छीलर गढैरुँ डर (तु) तु दूकेगल नहलँ और डरे हुए (तलललड डहलँ) कहलँ डलवेगल ?

ॡ२ॣ—ऊँड कहतल हल—

हे ढुलल, डह देश वलरगल हल । डहलँ आकर के दुखुी हुए । डन कु रुओनेवलल (घलस) नहलँ डललतल, ऊँड कडलरल खलते हल ।

ॡ२ॢ—ढुलल उओओ देतल हल—

हे ऊँड, डदल ओरे तु ऊँडकडलरल और डुग ओरने कु दूँ । तेरे इस थुडडडे (डुँह) के ललडे डहलँ नलगरवलल कलहलँ डलऊँगल ?

ॡ२ॢ—खलंओ (ख) खलओ (ग) । डीव (ग ओ) डी (ख) डलड (क घ) । तलस (ख) तलसल (क ग घ) । घणुी (ख) । सहलस (क ग घ) । छीलरलरुँ (क ख घ) । छीलरलरुण (ग) छीलरुडे (घ) छीलरलरुडे (ओ) । दूकलसल (क. ग. घ. ओ) दूकलसल (ख) । डरवल (ख) सरवर (क ग घ) डरलरल । कुथ (ख) । दूह डरुीडल न (ओ) । सर डरलरल (थ)=डरलरल कुथल लहलस (क. ग घ) ।

ॡ२ॣ—देसे (ओ) । वलडलणुड (थ) । थलडल (ओ) । तलणल=इहलँ (थ) । डलडलं (थ) । कंडललु (ओ थ) । खलड (ओ) ।

केवल (ओ थ) डे ।

ॡ२ॢ—कठीलु (घ) । अरु = नै (ग ओ) अर (ओ) कल (ख) = नै । लहुँ (ओ) लहु (क) । कल करहलल (क ख घ) कल करह (ग)=कलल लहइ । नलरवरनल लुक (क ख) नलगर वरनल लुक (घ)=थलरल थुडड ओग । थलरुँ (क) थुडल=थुडड (ओ) । ओगल (ओ ओ) । नलगर वली कल करहलल नलगर नररल लुक=दुवलतु डकतल (ह) ।

ढु० डल० दू० १ॢ (११००—ॢ२)

करहा, नीरूँ सोइ चर, वाट चलंतउ पूर ।
 दाख विजउरा नीरती, सो धण रही स दूर ॥४२६॥
 करहा, इण कुळिगॉमइइ, किहॉ स नागरवेलि ।
 करि कइरॉ ही पारणउ, अइ दिन यूँही ठेलि ॥४३०॥
 सुणि ढोला, करहउ कहइ, सो मनि मोटी आस ।
 कइरॉ कूँपळ नवि चरूँ, लघण पइइ पचास ॥४३१॥
 करहा, देस सुहामणउ, जे मूँ सासरवाडि ।
 आँव सरीखउ आक गिणि, जाळि करीरॉ भाडि ॥४३२॥

४२६—हे ऊँट, जो चरने को हूँ वही मार्ग में पूरे वेग से चलता हुआ चरता जा । जो दाख और विजोरे चरने को देती थी वह धन्या अब बहुत दूर रह गई ।

४३०—हे ऊँट, इस छोटे से गाँवड़े में नागरवेल कहाँ ? यहाँ करील का ही कलेवा कर । ये दिन इसी तरह से बिता दे ।

४३१—ऊँट कहता है कि ढोला, मुनो, मेरे मन की आशा मोटी है—चाहे पचास लघन पड़ जायँ, पर करील की कौपलें नहीं चरूँगा ।

४३२—हे ऊँट, यह देश बड़ा सुहावना है क्योंकि यह मेरी ससुराल है ! यहाँ आक को आम गिनो और करीलों के भाडों को कदव ।

४२६—जो चरे वाटडियांरो वूर=सोई...पूर (ट) । मेलही=रही स (द) । केवल (ट. ट) में ।

४३०—पु = इण (ज) । कुलगामडो (ज) । नहीज = किहांस (ज) । कर (ज) । दस=अइ (ज) यूँहीज (ज) ।

केवल (च. ज) में ।

४३१—केवल (च) ।

४३२—सुहावणी (ज) । जो (ज) । मौ (ज) । जउ तू = जे मू (थ) । चाड (ज) । सरीम्ना (ज) । करहा सीस म भाडी (ज) नागर वेली जालि (ध) रह करि सीस म भाडि (थ) = जालि...भाडि ।

करहा लंब-कराडिआ, वे-वे अंगुल कन्न ।
 राति ज चीन्हो वेलड़ी, तिण लाखीणा पन्न ॥४३३॥
 करहा, चरि चरि म चरि चरि चरि चरि म चरि मफूर ।
 जे वन कालिह विरोळियउ, ते वन मेल्ले दूर ॥४३४॥
 [ढोलइ करह विमासियउ, देखे वीस वसाळ ।
 ऊंचे थळइ ज एकलो, वच्चाळइ एवाळ ॥४३५॥]
 उज्जळ-दंता घोटडा, करहइ चढियउ जाहि ।
 तई घर मुंघ कि नेहवी, जे कारणि सी खाहि ॥४३६॥

४३३—हे लंबी गर्दनवाले ऊँट, तुम्हारे कान दो दो अंगुल के हैं । रात जो लता पहचानी (देखी) थी उसके पत्ते बहुमूल्य (स्वादिष्ट) थे ।

४३४—हे ऊँट, चर-चर, मत चर, चर, अरे चर-चर, मत चर, मत दुखी हो । जिन वनों को कल पार किया था वे वन अब दूर छूट गए ।

४३४—ढोले ने ऊँट को (इस प्रकार) समझाया । (फिर) ऊँचे स्थल पर कोई बीस-एक भेड़ों के झुंड के बीच में अकेले (बैठे हुए) एक गड़रिए को देखा ।

४३६—वह गड़रिया ढोले को देखकर कहता है—

हे उज्ज्वल दाँतोंवाले युवक, ऊँट पर चढ़ा हुआ तू जा रहा है, क्या तेरे घर पर प्रेममयी मुग्धा है जिसके लिये शीत खा रहा है ?

४३३—लंबा (च) । किराडीया (ज) । काछी कालिया (क. ख. घ) काछी करहला (ग) = लंब कराडिआ । दुइ दुइ (क ख. ग घ. ज) । अंगुल (क. ग. च. ज) आंगल (घ) । कांन (क. ख. ग. घ) । कालिहउ = राति ज (च) । तिणि (च) तिथै (क. घ) तीथै (ग) । पांन (क. ख. ग. घ) ।

४३४—केवल (च) में ।

४३५—केवल (ट) में ।

४३६—घोटडा (क) ऊँटिया (न) = घोटडा । खतै खढियो = करहइ चढियउ (न) । ज केहवी = कि नेहवी (न) ।

केवल (क. न) में ।

जइ रूखाँ मारु हुई, छवडउ पड़ियउ तास ।
 तइ हुती चन्दउ क्रियइ, लइ रचियउ आकास ॥४३७॥
 ढोला, खील्यौरी कहइ, सुँणे कुंगा वैण ।
 मारु म्हाँजी गोठणी, सँ मारुँदा सैण ॥४३८॥
 आडवळे आधोफरड, एवइ मॉहि असन्न ।
 तिण अजाँण ढोलइ तणइ मरुख भागइ मन्न ॥४३९॥
 क्रम-क्रम, ढोला, पथ कर, ढाण म चूके ढाळ ।
 आ मारु वीजी महल, आखइ मूठ एवाळ ॥४४०॥

४३७—ढोला कहता है—

जिस वृक्ष से मारु (उत्पन्न) हुई उसकी छाल का टुकड़ा गिर गया था । (विधाता ने) उससे चद्रमा बनाया और लेकर आकाश में रख दिया ।

४३८—गडगिया कहता है कि हे ढोला, मेरे कुढगे वचन सुनो । मारु हमारी साथिन् है और हम मारु के मित्र हैं ।

४३९—आडावले पहाड़ की ढालू जमीन पर, भेड़ों के झुंड के बीच में बैठे हुए उम मूर्ख (गडरिए) ने अनजान ढोले का मन खिन्न कर दिया ।

४४०—(तव ऊँट कहता है कि) हे ढोला, चलो, चलो, रास्ता पकड़ो, इस ढालू भूमि पर द्राण (चाल) को मत चूको । यह मारु दूसरी स्त्री है । यह गडरिया झूठ कह रहा है ।

४३७—जे सुख अति=जइ रूखाँ (क) । जिण=जे (न) । पडी=हुई (न) । छोडौ (क) छवडे (क) । तिणहुता (न) । रचिये (क, क) ।

केवल (क क न) में । (घ) में इस दूहे का पाठ इस प्रकार है—

चदन की मारु घडी, छोडौ पडियो पास ।

ताकां ले चडो घड्यो, लेड सुक्यो आकास ॥

४३८—खिलहरी (क) मारु रा म्हे=सँ मारुँ दा (क) ।

केवल (क क) में ।

४३९—ऊँचे थलवर मकलो=आडवळे आधोफरइ (ट) असंभ=असन्न (क) अमन (ट) । उमगया=तिण अजाँण (ट) । ढोला (ट) । तणौ (ट) । मूरिख (ट) । भागौ (ट) ।

केवल (क क ट) में ।

४४०—केवल (ट) में ।

चारण एक ऊँमर तणउ, मिलियउ एह असन्न ।
 ढोलउ जातउ देखि कह, मूरख भागउ मन्न ॥४४१॥
 जिण धण कारण ऊमह्यउ, तिण धण संदावेस ।
 तिण मारूरा तन खिस्या, पंडर हुवा ज केस ॥४४२॥
 ढोला, मोड़ो आवियउ, गइ बाळापण वेस ।
 अब धण होई खोरड़ी, जाए कहा करेस ॥४४३॥

४४१—ऊमर सूमरे का एक चारण इसके पास ही मिला । ढोले को जाता हुआ देख करके वह मूर्ख मन में जल उठा ।

४४२—वह चारण ढोला से कहने लगा—

जिस प्रेयसी के लिये तू उमग से भरा हुआ (जा रहा) है उसी प्रेयसी का सदेशा कहता हूँ । उस मारू के अग ढीले हो गए हैं और बाल श्वेत हो गए हैं ।

४४३—हे ढोला, तू देरी से आया । उसकी बाल्यावस्था चली गई । अब वह प्रेयसी वृद्धा हो गई है । (तू) जाकर क्या करेगा ?

४४१—उमर (ख) । एक=एह (घ) । जांणि=एह (ग) । जावतो (घ) जावंतो (ग) । देख (घ) । कर (ग) ।

केवल (ख. ग घ) में ।

४४२—जिन (ग) । कारण (क) । उमह्यौ (घ) । ढोला तू ऊमाहीयउ=जिण...ऊमह्यउ (च ज. थ) । धणि (ख) धन (ग) । जिणि धणि हदी रेस (ज) जिणि धण स्युं तू रेसि (च थ)=तिण ..वेस । सुंदरवेस=सदावेस (घ) । तिणि (च) । रो (ग ज) । का=रा (च) तिन (ख) । मारूरो तो=तिण मारूरा (ख) । मारू तो तन ही=तिण ..तन (घ) । खिस्या (क ख) । पुंडर (च) पंडुर (क घ) । हुवा (ख) हुवात (ज) थयात (च) थयाज (झ) भयौत (घ) ।

उस दूहे का पाठ (ट) में इस प्रकार है—

जरा आवे जोवण गयो, गई बाळापण वेस ।

नेणारी बंकम गई, पंडर हुआ ज केस ॥

४४३—केवल (ट) में ।

ढोलइ मन चिंता हुई, चारण - वचन सुणेह ।
 हिव आठ्यउ पाछउ वळइ, करहा, केम करेह ॥४४४॥
 करहा, कहि कासूँ करों, जो ए हुई जकाह ।
 नरवर - केरा साणसाँ, कासूँ कहिस्यौँ जाह ॥४४५॥
 दुरजण - केरा वोलाडा, मत पॉतरजउ कोउ ।
 अणहुंती हुंती कहइ, सकळी साच न होय ॥४४६॥

४४४—चारण के वचन सुनकर ढोले के मन मे चिंता हुई (और वह ऊँट से बोला) अब आए हुए वापिस चलें ? हे ऊँट, बता क्या करें ?

४४५—हे ऊँट, बता अब कैसे करें, जो यह हुई सो देख । नरवर के लोगों को अब जाकर क्या कहेंगे ?

४४६—दुर्जन के वचनों से कोई धोखा मत खाना । (वे) अनहोनी को होनी बताते हैं—(उनका) सब (कथन) सत्य नहीं होता ।

४४४—ढोला (ग) ढोलो (ध) । भनि चिंता ढोला तणे (च ज) मन चिंता ढोला वसी (ध)=ढोळइ मन चिंता हुई । पूरख=चारण (क) । भणी (थ) । सुनेह (ग) । साभळ तास वचन्न (च. ज. थ) सांभळ ए कुवचन्न (ध)=चारण...सुणेह । हव (व) । आया (ज थ) अथिहू (ख) आयौ (क ग. घ) । वळू (ग) वळूँ (घ) वळी (च) वळा (ज) । करहो (घ) । तिणि मन भागउ मन्न (च) इण उथापियो मन्न (ज) इण वचने हुइ लव्ज (थ) करहा केम करेह ।

(घ) मे इस दूहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—‘हिव आयो पाछो वळूँ इणौँ उथाप्यो मन्न ।’

४४५—करहां (च ज) । हिव (क) जौ (ग. घ)=कहि । गल्हां मंटीयां (क) गालि भट्टीयां (च) गली भुट्टीया (ज)=कहि...करां । जोण (ख) जोई (ग घ) जोय (क)=जोए । जकाज (ख) जिकाय (क) जिकाई (ग. घ) जिकाई (च क) । नरहर (च) । केरा (ख) सदां (ग घ)=केरा । उं नरवररां=नरवर केरां (क) । किस् (क) कास्युं (च ज) । कहिसा (क घ) । जाय (क घ) जाई (ख च ग)

४४६—केवल (ट) में ।

ढोलउ म चलपत थयउ, ऊभउ साहइ लाज ।
 साम्हउ वीसू आवियउ, आइ कियउ सुभराज ॥४४७॥
 वीसू सुणि, ढोलउ कहइ, एकइ कहियउ एम ।
 मारवणी बूढो हुई, कहि साँची तूँ केम ॥४४८॥
 जे तइँ दीठी मारवी, कहि सहिनाँण प्रगट्ट ।
 साँच कहे तूँ दाखवइ, वहाँ ज पूगळ - वट्ट ॥४४९॥

४४७—ढोले का मन पीपल (के पत्ते की तरह चलायमान) हो गया । वह वहीं खड़ा खड़ा लगाम को सम्हालने लगा । (इतने में) सामने से वीसू (नाम का एक चारण) आया और उसने आकर शुभराज किया (श्रीमान् का कल्याण हो यह आशीष दी) ।

४४८—ढोला कहने लगा कि हे वीसू, सुनो, एक ने ऐसा कहा है कि मारवणी बूढ़ी हो गई । तू सच बता कि क्या बात है ।

४४९—यदि तुमने मारवणी को देखा हो तो सब चिह्न प्रकट करके बतलाओ । जो तुम सच बताओ तो पूगल के मार्ग पर (आगे) बढ़ें ।

वीसू कहता है—

४४७—ढोलै (घ) । सन (घ)=मन । थकै (ग) । साही ऊभौ (क)=ऊभौ साहै । लाल (घ)=लाज । समां (घ) । आअीयौ (क) । आय (घ) ।

केवल (क. ख. ग. घ) में ।

४४८—तूँ साची (ख)=साची तूँ ।

केवल (क ख. ग. घ) में ।

४४९—जो (च ज) । तइ (च) । दौढ वरसरी (ख)=जे तइँ दीठी । मारवी (ख ज) मारुइ (च) । को (च ज)=कहि । सहिणाँण (ग) सहनाण (च) सैनाँण (फ) । प्रकट (ख ग घ) । मोती सिरि गळि कंचूउ (च) मोती सिरि गळि कंटलो (ज)=साँच 'दाखवै' । जु (ख)=ज । वट (ख ग) वाट (घ) । कडि कस्तूरी वट्ट (च ज)=वहाँ ज पूगल वट्ट ।

दुडु वरसरी मारुवी, त्रिहुँ वरसोरिउ कंत ।
जगरउ जोवन वहि गयउ, तूँ किउँ जोवनवंत ॥४५०॥
(मारवणी-रूप-वर्णन)

गति गंगा, मति सरमती, सीता सीळ सुभाइ ।
महिलाँ मरहर - मारुई अवर न दूजी काइ ॥४५१॥
नमणी, खमणी, बहुगुणी, सुकोमळी जु सुकच्छ ।
गोरी गगा नीर व्यूँ, मन गरवी, तन अच्छ ॥४५२॥

४५०—(जब विवाह हुआ था तब) मारवणी डेढ वर्ष की थी और (उसका) पति तीन वर्ष का था । उसका यौवन चला गया ? तब तू यौवनपूर्ण कैसे रह गया ?

४५१—मारवणी गति में गंगा, बुद्धि में सरस्वती, और शील स्वभाव में सीता है । महिलाओं में मारवणी की बराबरी करनेवाली दूसरी कोई नहीं है ।

४५२—बड़ विनयवाला, क्षमाशीला, अनेक गुणोंवाली सुकोमल, सुंदर कलवाली, गगा के पानी के समान गौरवर्ण, गरुण मनवाली और सुंदर शरीरवाली है ।

४५०—ढाँढ (ग. ग ज) ढाँढ (क व) दिउडु (थ) । मारुवी (ख. ग) मारुह (च. ज) । तिहुँ (च ज ग) त्रिहु (ख) । वरस (च ग. घ) । किम (ख)=वहि । किम आ जोवन हुइ गई (च) किम उवा जोवण हुँ गई (थ) किम वा जोवण वहि गई (ज)=उगरउ जोवन वहि गयउ । क्याँ (ख) किम (ग) क्युं (घ) किम तू (च) क्युं तूँ (ज)=तूँ किउँ ।

(ट) में इस दूहे का पाठांतर इस प्रकार है —

(ये) ढोला तीन वरसरा, वन वारं छः मास ।

मारु किम बुढी भई, जो थे लील बलास ॥

४५१—गत (ट) सरस्वती (ग) सुहाइ (झ) सुभाय (ग) । मेहला (ट) । उत्तिम (ग) ढाँठी (क व) लेही (झ)=मरहर । मारुवी (क) मारुवी (ख ग.) । कळमें उत्तिम (ग व) कळिमें उत्तिम (क)=महिलाँ मरहर । कलिमाँ उत्तिम (ख)=अवर न दूजी । और (ट)=अवर । महियल जेही मारुवी कळमें वीजी न काइ (न) ।

४५२—नामनि (ख) । रमनी (ग) । सुखमणी (घ) । सुकच (झ) सुकच (ग) सुकिछ (घ) सुलज (ट) । मारु (क ग)=गोरी । ली (ख) जू (व) । गुण (ट)=मन । गरई (ट) । वनि (ट) । तछ (ग) अछि (घ) =अछ ।

रूप अनूपम मारुवी, सुगुणी नयण सुचंग ।
 सा धण इण परि राखिजइ, जिम सिव-मसतक गंग ॥४५३॥
 गति गयंद, जँघ केळिग्रभ, केहरि जिम कटि लंक ।
 हीर डसण, विद्रम अधर, मारू - भृकुटि मयंक ॥४५४॥
 मारू - घूँघटि दिट्ट मई, एता सहित पुणिंद ।
 कीर, भमर, कोकिल, कमळ, चंद, मयंद, गयंद ॥४५५॥
 नमणी, खमणी, बहुगुणी, सगुणी अनइ सियाइ ।
 जे धण एही संपजइ, तउ जिम ठल्लउ जाइ ॥४५६॥

४५३—मारवणी रूप मे अनुपम और सद्गुणोंवाली है । उसके नयन अत्यंत सुंदर हैं । वह प्रेयसी इस प्रकार रखी जानी चाहिए जिस प्रकार शिवजी गंगा को मस्तक पर (रखते हैं) ।

४५४—(उसकी) चाल हाथी जैसी, जंघाएँ कदलीगर्भ जैसी, कमर सिंह की सी लचकीली, दाँत हीरों के समान, अधर मूँगे के सदृश और भृकुटी चंद्र जैसी (टेढ़ी) है ।

४५५—मारवणी के घूँघट मे मैंने कीर, भ्रमर, कोकिल, कमल, चंद्र, सिंह और हाथी—इतनों के साथ फणींद्र को देखा ।

(कीर=नासिका । भ्रमर=भ्रू । कोकिल = वाणी । कमल = नेत्र । चंद्र = मुख । सिंह = कटि । हाथी = चाल, जंघा । फणींद्र = वेणी ।)

४५६—(वह) विनयवती, क्षमाशीला, अनेक गुणोंवाली, सद्गुणागार और सुहावनी है । यदि ऐसी प्रेयसी मिल जाय तो खाली मत जाना ।

४५३—अनूपम (घ) अनौपम (क) । मारुवी (क ग घ) सुगुणी (घ) । नैं (ग) अनै (क. घ)=नयण । साइ (क. ग घ)=सा । औसे (क घ =इण परि । राखीयौ (क) रखीयै (घ) मसकत (ख) मत्थै (क घ) = मसतक ।

४५४—गळि लीळं=गति गयंद (ग) । लीलंघ=गयद (घ) । विषय केळि=केळिग्रभ (ग) । कैळ (घ) । गरभ (क) । केहर (ग घ) । विद्रम (क. ख. ग) । अधर (ख ग) । भृकुट (ग) ।

४५५—घूँघट (क ग) । एता (क) । कुणिंद (क ग घ) । किर (ख. ग) । भ्रमर (ख घ) । चमर (झ)=भमर । कुरन (झ)=कमल ।

४५६—बहुगुणी (घ) सकोमली (घ)=सगुणी अनइ । जनम=जिम (झ) । ढलौ (क ख) जाय (घ) ।

मारू - देस उपन्नियों, ताँहका दंत सुसेत ।
 कूम्फ - बच्चों गोरंगियों, खंजर जेहा नेत ॥४५७॥
 खंजर नेत विसाल, गय चाही लागइ चरुख ।
 एकण साटइ मारुवी, देह एराकी लख्ख ॥४५८॥
 तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तडा विबीह ।
 ढोला, थोकी मारुई जाँणि विलूधउ सीह ॥४५९॥
 डींभू लंक, मराळि गय, पिक-सर एही वॉणि ।
 ढोला, एही मारुई, जेहा हक निवॉणि ॥४६०॥

४५७—जिन्होंने मारू देश मे जन्म लिया है उनके दाँत अत्यंत उज्ज्वल होते हैं । वे कुम्भों के बच्चों के समान गौरागिनी होती हैं और (उनके) नेत्र खजन जैसे होते हैं ।

४५८—मारवणी के विशाल नेत्र खजन जैसे हैं और उसकी गति ऐसी है कि देखने से नजर लगती है । एक मारवणी के बदले लाख एराकी घोड़े दिए जा सकते हैं ।

४५९—(उसके) लोचन तीखे हैं, कटि मुष्टिग्राह्य है, दोनों उरोज (पपीहे के समान) लाल हैं । हे ढोला, तुम्हारी मारवणी (ऐसी है) मानो (पालतू) विलुब्ध सिंह हो ।

४६०—उसके बर्र की सी कमर, हसिनी की सी चाल और कोयल के स्वर जैसी वाणी है । हे ढोला, मारवणी ऐसी है जैसा सरोवर में स्थित हस ।

४५७—ऊपन्नियों (ख) उपनीया (ग. घ) उरयु गयंवर पंक घण (च) उरज गयंवर पग घण (ज)=मारू देस उपन्नियों । तिहां (क) सपेत (क. ग) सपत (घ) दामिणी दत रुखेत (च)=ताँहका दंत सुसेत । कांमया दंत=ताहका दंत (ज) । कूम्फी । (क ग घ) कुरम्भा (च) । बची (क ज) बोली (च)=बच्चा । गरीया (घ च) । ताँहका (क ख)=जेहा । नेत्र (च) । खंजेह नेह=खजर जेहा नेत (घ) ।

४५८—नैण (ख) । लाये (ग) । एकणि (क ग घ) । सठै (घ) । पंच (क ख. ग ल)=दह ।

४५९—तीखा (थ) । लोइन (ग) लोइया (घ) कटि (ग) कर (क. घ)=कटि । कणल (ग) कमल (क. घ)=करल । रतरा=(ग) रत्तडा । एही=थाकी (क. घ) विरतौ (ख) विवतौ (घ) विरूतै (क) विरदुउ (थ) = विलुब्धउ ।

४६०—डींभू (ख) दुवू (झ) । लकि (ज) । मराल (क. ख घ. च झ) मराल (ग, =मराळि । गइ (च) । पिकु (च) जेही (क. ग. घ. च ज)

मारू - लँक दुइ अंगुळों, वर नितंब उस भंस ।
 मल्हपइ मॉफ सहेलियों, मॉनसरोवर हंस ॥४६१॥
 चंपावरनी, नाक सळ, उर सुचंग, विचि हीण ।
 मंदिर बोली मारुवी, जॉणि भणकी वीण ॥४६२॥
 आदीताहूँ ऊजळो, मारवणी - मुख - व्रन्न ।
 भीणा कप्पण पहिरणइ, जॉणि भँखइ सोवन्न ॥४६३॥

४६१—मारवणी की कमर दो अगुल है, और सुदर नितंब और उरःस्थल मासल हैं । (जब) वह सहेलियों के बीच में मदगति से चलती है (तो मालूम होता है) मानो मानसरोवर में हंस (चल रहा है) ।

४६२—वह चपे के से रगवाली है, उसकी नाक शलाका सी है, उरःस्थल अत्यंत सुदर हैं और कमर पतली है । (ऐसी) मारवणी महल मे बोलती है (तो जान पड़ता है) मानो वीणा भनकार कर उठी हो ।

४६३—मारवणी के मुख की काति सूर्य से भी समुज्ज्वल है । भीने वस्त्र पहनने से (उसके देह की काति ऐसी झलकती है) मानों सोना झलक रहा है ।

एहवी (फ) = एही भक्ख (च न) । भख्य (ज) = वांणि । हंज (ख. घ) हंस (ग) । नियांण (क. ग) । चाही लागइ चक्ख (च ज न) = जेही हंस निवांणि । लख्य = निवांणि (ज) ।

इस दोहे का (च. ज) में एक और पृथक् रूपांतर मिलता है—

चपावरणी, सिसिमुखी, पिक सर जेही वाणि ।

ढोला एही मारुई, जाणे बिभू निवाण ॥ (च)

जिसके पाठांतर (ज) में इस प्रकार हैं—सिस (ज) । जेही (ज) = जाणें । कुंभ (ज) = बिंभ । निवाणि (ज) ।

४६१—आंगुली (घ) । धड (क. ख घ) = वर । गय । (घ ख घ) = घर । मांस (ग) । माहि (ग) । मान (ख. ग घ) ।

४६२—नाक (क ख) । ससि मुखी = नाक सळ (फ) । सुरंग (ग घ) हार (ग) = हीण । बोलै (क ग) । मारवी (ख ग घ) । जॉण (ग) ।

४६३—आदिताउ (ग) । ऊजलौ (फ) । व्रन्न (ग) व्रन (क) कपड़ा (घ) । जे पहिरै सिणगार कजि (ग) = भीणा कप्पड पहिरणइ । जाणिउ (ग)

सोरठा

मारुवणी सुँह - वंन, आदित्ताहूँ रज्जळी ।
सोइ ऋँखड सोवंन, जो गळि पहिरड रूपकड ॥४६४॥

दूहा

भुमुहाँ ऊपरि सोहलो परिठिउ जॉणि क चंग ।
ढोला, एही मारुवी नव नेही, नव रंग ॥४६५॥
मृगनचणी, मृगपति - मुखी, मृगमद तिलक निलाट ।
मृगरिपु - कटि सुदर वणी, मारु अडहइ घाट ॥४६६॥

४६४—मारवणी के मुख की कति सूर्य से भी समुज्जल है । यदि (वह) गले में चादी का गहना पहने तो भी सोने का सा झलकना है ।

४६५—(उसकी) माँहों पर सोहली (आभूषण विशेष) पहनी हुई है, (वह ऐसी मालूम होती है) मानो (आकाश में) पतंग (उड़ रही) हो । हे ढोला, नित्य नया नेह करनेवाली और नये रंगवाली मारवणी ऐसी है ।

४६६—(वह) मृग के से नयनोंवाली और मृगपति (चंद्र) जैसे मुख वाली है । (उसके) भाल पर मृगमद (कस्तूरी) का तिलक लगाया हुआ है और (उसकी) कमर मृगरिपु (सिंह) की-सी सुदर है । (हे ढोला,) मारु ऐसी बनावट की है ।

ऋँखँ (ग) ऋँखँ (ऋ) सोवन्न (ख) सोवन (क. घ) । ग्रहणे पहिरयो सोहक ज सो ऋँखँ सोवन्न (न) ।

४६४—आदीतां (ज) सुं (ज) = हूँ । ऊजळौ (न) । सोय (च) । ऋँखँ (ज) वाच्यो (ज) = पहिरड । रूपकजि (ज) । यह (ज) में दूहे के रूप में है ।

४६५—भूहां (ग) भुमुहा (घ) सोळही (च ज ग घ) । परठो (ज) परळी (घ) परठी (क ख ग. घ. ऋ) = परिठिउ । जानि (ग) जाणिख (च ज) जाणि (ऋ) = जाणिक । पतंग = (क) चंग (ऋ थ) चंच = चंग (घ) तंग = चंग (च ज) । ऐही (ग) । मारुवी (ख ग. घ) मारुई (च ज) । नौ (ग) ।

४६६—नयनी (ग) । लिलाट (ग) । मगरिप (ग) । सुरपति (घ) सुर (क) = सुंदर ।

डर-डन-रंजन कारणइ डरड ड दाखिस कोइ ।
 जेही दीठी डारूवी, तेहा आखे डोइ ॥४६७॥
 थळ भूरा, वन भंखरा, नहीं सु चंपड जाइ ।
 गुणे सुगंधी डारूवी, डहकी सहु वणराइ ॥४६८॥
 लखण बतीसे डारूवी निधि, चद्रडा निलाट ।
 काया कूँकूँ जेहवी, काट केहरि सै घाट ॥४६९॥
 अहर, डयोहर, दुइ नयण, डीठा जेहा डखख ।
 ढोला, एही डारूई जाणे डीठी दखख ॥४७०॥

४६७—ढोला कहता है—

दूसरे के डन को डसन्न करने के लिये 'कोई भ्रडडूरण' वात डत कहना; डारवणी को जैसी देखी हो ठीक वैसा ही वर्णन डेरे आगे करना ।

४६८—वीसू कहता है—

(डारवाड की) भूमि (बालू से) भूरि है, वन भंखाड है, (वहाँ) चपा उत्पन्न नहीं होता । डारवणी के गुणे की सुगंधि से ही सारा वनखड डहक उठा है ।

४६९—डारवणी वत्तीसों-सुलक्षणों की खानि है । (उसका) डाल चद्रडा जैसा है, देह कुकुड जैसी है और कडर सिंह की सी है ।

४७०—(उसके) अघर, कुच और दोनों नयन डधु की तरह डीठे है । हे ढोला, डारवणी ऐसी है डानों डधुर द्राक्षा हो ।

४६७—रछन (ग) डडर (घ)=डरड । न (ग)=ड । दाखिसि (घ) राखै । (ग)=दाखिस । जिसडी (ग)=जेही । डारवी (ख. ग घ) । तिसडी (ग)=तेही ।

४६८—हट्टन डट्टन वाणीयड (च ज थ)=थळ भूरा, वन भंखरा । ज (ग)=सु । उथिन (च ज. थ) नहीं सु । चपो (ज) चांपौ (क. ख. ग) । चंपौ (ग. घ) चाइ (घ) जाय (ज)=जाइ । डारू सदा सुवास छइ (च. ज थ)=गुणे • डारवी । डहिकी (घ) । सहि (घ) सब (ख) । वनराइ (ग) । अगह तणइ सुभाइ (च थ)=डहकी सहु वणराइ ।

४६९—लखन (ग) । वतीसे (घ) बतीसे (क) । डरवी (ख ग घ) । निधि । (क ग घ) । जेहै (क ख. घ)=सै । काटि (घ)=घाट । केवल (क ख. ग घ) डे ।

४७०—अहर (ज) । डोय (ज) । नयणि (ज) जेह (ज)=जेहा । डीभू जेहै लंक (ज)=जाणे डीठी दखख । केवल (च. ज थ) डे ।

अंगि अभोखण अच्चियड, तन सोवन सगळाइ ।
 मारु अंवा-मडर जिम, कर लग्गइ कुंमळाइ ॥४७१॥
 अहर अभोखण ढकियड, सो नयटे रंग लाय ।
 मारु पका अन्न ज्युँ, मरइ ज लग्गे वाय ॥४७२॥
 जंघ [सुपत्तळ, करि कुँअळ, भीणी लंघ-प्रलंघ ।
 ढोला, एही मारुई जॉणि क कणायर-कंघ ॥४७३॥
 उरि गयवर, नइ पग भमर, हात्तंती गय हंम् ।
 मारु पारेवाह ज्युँ, अंखी रत्ता मंम् ॥४७४॥

४७१—(उसके) अगों पर स्वच्छ, आभूषण है और सारे अंग सुहावने हैं । मारवणी आम के मौर के समान हाथ छूते ही कुम्हला जाती है ।

४७२—(उसका) अघर आभूषण में ढक रहा है, जो नेत्रों को रंजित कर रहा है । मारवणी (ऐसी सुकुमार है कि) वायु के लगते ही पके हुए आम के ममान टपक पड़ती है ।

४७३—(मारवणी की) पिंडली पतली है और कमल के समान है । वह अत्यंत सुकुमार और लची है । हे ढोला, मारवणी ऐसी है मानो कर्णिकार की छड़ी हो ।

४७४—(उसका) उग्रस्थल हाथी के (कुम्हस्थल) जैसा है, और पैर (पहने हुए स्वर्ण-विनिर्मित नुपूरों के कारण) भ्रमर (की भाँति मुखर) है । (वह) हस की चाल से चलती है । मारवणी कबूतर की तरह आँखों में लालिमा (लाल डोरे) वाली है ।

४७१—अंग (ज) । अभोखण (ज. थ) । अछीयो (ज) । तनु (ज) । ज्युँ (ज) । लग्ग (ज) । मोरड्यइ (थ)=मडर जिम । सोवन गळाइ (थ)=सोवन सगळाइ । केवल (च. ज. थ) में ।

४७२—नयण सुगंधा भाइ (न)=सो...लाय । जोवन में न समाय (न)=मरइ ज लग्गे वाइ । केवल (ट. न) में ।

४७३—मघ (ज) । कमल (ज) । कणियरि (ज) कुसुम (थ)=कुँअळ । कंघु (च) । केवल (च. ज. थ) में ।

४७४—वदन तसु सगिहर मुँह भमर (ट)=उरि...भर । उरं गमर गेहज (ट)=हलंती गय हंम् । कडि (ज)=नइ । भमर (ज)=पग भमर । गयंठ (च)=गय हंम् । मड (थ)=हंम् । पारेअहर (ट)=पारेवाह । जम (ट) । आंखी (ट) । रावा (ट) रत्ता (ज) मडि (च) । आँखी रत्ता मड (थ) । केवल (च. ज. ट. थ) में ।

मारु मारइ पहियड़ा, जउ पहिरइ सोवन्न ।
 दंती, चूड़इ, मोतियाँ, त्रयोँ हेक वरन्न ॥४७५॥
 [कस्तूरी कड़ि केवड़ा मसकत जाय महक ।
 मारु दाड़िम - फूल जिम दिन - दिन नवी डहक ॥४७६॥
 ढोला, सायधरण माँणने, भीणी पाँसळियाँह ।
 कइ लाभे हर पूजियाँ, हेमाळे गळियाँह ॥४७७॥
 मारु सी देखी नहीं, अण मुख दोय नयगाँह ।
 थोड़ा सो भोळे पड़इ, दणयर उगहताहँ ॥४७८॥

४७५—मारवणी यदि सुवर्ण धारण कर लेती है, तो पथिकों को मोहित कर लेती है । (उसके) दाँत चूड़ा और मोती तीनों एक रग के (दिखाई देते) हैं ।

४७६—(मारवणी ऐसी है मानो) कस्तूरी और केवड़े की कली की महक उड़ती हुई जा रही हो । वह दाड़िम की फूल के भाँति दिन दिन नया विकास पाती है ।

४७७—हे ढोला, उसकी पँसुलियाँ बड़ी सुकुमार हैं । रग (प्रेम) करने के लिये वैसी प्रेयसी या तो शिव की आराधना करने से भिल सकती है या हिमालय में (तपस्या करते हुए) गलने से ।

४७८—मारवणी जैसी स्त्री इस (मेरे) मुख ने (अपनी) दो आँखों से नहीं देखी । (हाँ, सूर्य का उदय होते समय उसका थोड़ा सा भ्रम होता है (थोड़ी सी भलक दिखाई देती है) ।

४७५—मीरे (च) । पंथियां (ध)=पहियड़ा । पंथी मारसी (ट)=मारइ पहियड़ा जो (ट) । पेहरे (ट) । परिहरो (ध) = पहिरै । सोवणा (ट) चुडां टांतां (ट) = दंती तूडै दंतां (ध) । हाथि ज्युं (ध)=मोतियां तीने (ट) त्रिहुवां (थ) । एक (च. ज) । वरणा (ट) ।

(ट) में इस दोहे की पक्तियों का क्रम विपरीत है ।

४७६—केवल (ट) में ।

४७७—केवल (ट) में ।

४७८—केवल (ट) में ।

चंदवदन, मृगलोयणी, भीसुर ससदळ भाल ।
 नासिका दीप - सिखा जिशी, केळ - गरभसुकमाळ ॥४७६॥
 दत जिसा दाडम कुळी, सीस फूल सिणगार ।
 काने कुडळ भळहळइ, कंठ टंकावळ हार ॥४८०॥
 वॉहे सुंदरि बहरखा, चासु चुड स वचार ।
 मनुहरि कटि थळ मेखळा, पग भांभर भणकार ॥४८१॥
 वॉहडियाँ रूँआळियाँ, घण वंके नयणेह ।
 जण - जण साथ म बोलही, मारू बहुत गुणेह ॥४८२॥
 मारू - देस उपन्नियाँ, नड जिम नीसरियाँह ।
 साइ घण, ढोला, एहवी, सरि जिम पधरियाँह ॥४८३॥

४७६—(वह) चद्रमुखी और मृगलोचनी है । (उसका) ललाट चद्रमा के समान दीप्तिमान है । (उसकी) नासिका दीप की लौ जैसी है (और वह) केले के पेड़ के भीतरी भाग जैसी सुकोमल है ।

४७०—(उसके) दाँत दाड़िम के दानों जैसे हैं, (उसके) शीश पर फूलों का शृंगार है, कानों में कुडल भिन्नमिला रहे हैं और गले में बहुमूल्य हार है ।

४८१—सुंदरी की वॉहों में बोरखा नामक आभूषण है और चुस्त चूड़ा पहना हुआ है, मनोहर कटि प्रदेश में करधनी पड़ी है और पैरों में भांभर की भणार हो रही है ।

४८२—उसकी वाँहे रूपमयी हैं । वह प्यारी वॉके नेत्रोंवाली है । वह प्रत्येक के साथ नहीं बोलती । मारवणी बहुत गुणों वाली है ।

४८३—मारू दृश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ ऐसी हैं मानो भरने निकल पड़े हैं । हे ढोला, वह प्रेयसी ऐसी है जैसे कोई सीधा वाण हो ।

४७६—केवल (क) में ।

४८०—केवल (क) में ।

४८१—केवल (क) में ।

४८२—वाहुडीयाँ (घ) । रूवालीयाँ (ग) रूयाडिया (थ) रूपालीया (च) । धन (ग) । चगी (क र ग घ)=वके । नयणाँह (ज. थ) नवणेहि (च) । सथ (घ) । म (ख)=न । गुणेहि (च) गुणाह (ज) । बहु गुणियाँह (थ) ।

४८३—ज्यू (घ)=जिम । धन (ख) । ज्यूँ (घ) । केवल (ख, ग, घ) में ।

मारू - देस उपत्रियाँ, सर ज्यऊँ पधरियाँह ।
 कडुआ बोल न जाणही, मीठा बोलणियाँह ॥४८४॥
 देस सुहावड, जळ सजळ, मीठा-बोला लोइ ।
 मारू काँमण भुईँ दखिण, जइ हरि दियइ त होइ ॥४८५॥
 गह छडइ गहिलड हुअर, पूछइ वळि पूछत ।
 मारू तराइ सदेसडइ, ढोलर नहु धापंत ॥४८६॥
 तेता मारू माँहि गुण, जेता तारा अरुभ ।
 उच्चलचित्ता साजणाँ, कहि क्यउँ दाखउँ सभभ ॥४८७॥

४८४—मारू देश में जन्मी हुई (कामिनियाँ) बाण की तरह सीधी (लत्री) होती हैं । कडु वचन वे जानती ही नहीं, वे मीठी बोलने वाली होती है ।

४८५—देश सुहावना है, जल स्वास्थ्यप्रद है, लोग मधुरभाषी हैं । (ऐसे) मारू देश की कामिनी दक्षिण देश में यदि भगवान् ही दें तो मिल सकती है ।

४८६—घर छोड़ कर पागल सा बना हुआ, बार बार पूछ कर फिर पूछता है, मारवणी के समाचारों से ढोला तृप्त नहीं होता ।

४८७—बीसू कहता है—

मारवणी में उतने गुण हैं जितने आकाश में तारे हैं, हे चलचित्तवाले प्रेमी कहो, सबका वर्णन कैसे करूँ ?

४८४—सरि ज्यौ (ज) । पधरियाँ (ज) । कडिवा (ज) । बोलही (ज.थ)= जाणही । बोल त्रियाँह (थ)=बोलणियाँह । केवल (च ज. थ) में ।

४८५—निवाणु (च. थ) निवाँणी (ज)=सुहावड । भुईँ (क. ख ग घ)= जळ । सयळ (क) । भुय सयळ (त)=जळ सजळ । मीठा-बोली (क ख. ग. थ) लोय (ज) । काँमिन (ग) कामिण (क. घ) काँमण (च) । ने भुइ (ग)= भुईँ । भुय (त) । दिक्खण (ज) सजळ (ग) = दखिण । दक्षिणवर (ध)=दक्षिण घर (च)=भुईँ दखिण । दई (ख)=जइ हरि । हर (घ) । जो हरि दियौ तो होय । (ज) ।

४८६—गहि (घ) । गहलो (ज) हुवा (ज) हुयौ (घ) । पूछी (ज) । वळ (ग. ज) पूछति (घ) । चारण (ज) = मारू । तरा (ज) । सदेसडा (ज) । ढौले (घ) । नहि (ख) नहु (ग. घ) धापति (घ) । केवल (क ख. ग. घ ज) में ।

४८७—जेता (क ख. ग. घ) एता (न) = तेता । मज्झि (न) । गुन (ग) तेता (क. ख ग घ)=जेता । उच्चल (घ) । चित्तौ (क ख. घ) । साहिवाँ

एकरुणु जीभ कुरसुा कहुँ, मारू - रुड अडार ।
 जे हरु डरुड त डुडुडुडु उडुडुडु डगु संसुार ॥ॡडुन॥
 डुस कहरुडुा दूहुडुा, मारू - रुड डुररुार ।
 उतरु डुहर डसुाउ करु, डुनुहुी सारूहुकुडार ॥ॡडुडु॥
 डुसु, सुणु, डुलतु कहुहु, हुरुडु खडु डुगलु जात ।
 डुहु डुधरुई डुरन थकहु डुहु अरुडसुतु ररुत ॥ॡडुडु॥

(डुलुा की डुररुा अरुी डुररुतु)

डुहु गडुडु डरु डुंडरु, नुलु नुडुकरणुहु ।
 करुलु-जाडुा करहुलुा, डुलुडुडु कुरसुे गुणुहु ॥ॡडुडु॥

ॡडुडु—डुारडुणी कुे अडुार रुड कुराणुन एकु जीभ से कुैसे करूँ ।
 इसु डुसुार डुे, डुागुडुडुडु डुुने डुर, डुरुडु डुगडुानु ही डुे तुु (ऐसुी डुी) डुलु
 सुकरुी डुे ।

ॡडुडु—डुारू कुे रुड कुु डुररुारकर डुीडु ने डुे डुुहुे कहुे । उतरु डुे सारूहु-
 कुडुार ने डुरडुतु हुकर (उडुे) डुुहरुुी कुर डुररुकुार डुररुा ।

ॡडुडु—डुुलुा डुुलुा—डुे डुीडु, सुनुु, अडु (उँडु कुु) डुलुकर डुुगलु
 जाडुुु । तुडु डुकर डुरन रहुते डुधरुई डुु । हुडु ररुत कुु अरुुुेगुे ।

ॡडुडु—(डुीडु कुे डुले जानुे डुर डुीडुरे डुहर डुुलुा डुलुा । डुलुते डुलुते
 संडुुा हुु गहुँ अरुी डुुगलु अडुी तक नहुी अरुा । डुुलुा उँडु से नररुाडु हुुकर
 कहुतुा डुे)—

(क. ख. डु क) । उठुडुा (न) सऑनरुं (ज) = सऑऑणुँ । कुु (ज) = कहु । कुरडु
 (ग) । कुणु (न) कुरा (ख. क) । कुरु (क. डु) = कुरुँ । डुखरुं (ज) डुडुँ
 (क. ख. ग. क) । तुक (क. ख. ज) । शुडु (क) सडु (ग. डु) ।

ॡडुडु—डुकरणु (ग) । तुु (क ख) = त । डुडुडु (न) । उडुडु (डु) ।
 कुवल (क. ख. ग डु) डुे ।

ॡडुडु—अडुार (डु) = डुररुार । डुहुगं (ख. ग) डुुहरुं (क) डुुऑ कुरीडुं =
 डुसुाडु करु (क) लरुग डुसुाडु (डु) = डुसुाडु । कुरीडु (डु) = करु डुुनुहु (ग) डुुनुहु
 (डु) । कुँडुार (ग) कुँडुार (डु) ।

कुवल (क. ख. ग डु) डुे ।

ॡडुडु—सुणु (डु) सुणु (ग) । गडु (डु) । जाह (डु) डुे (ग) = डुहुे ।
 अरुडुडुडुं (ग) अरुडुडुं (डु) । ररुतु (ग डु) ।

कुवल (क. ख. ग. डु) डुे ।

ॡडुडु—नरुी (क.ख.ग.डु.ज) । डुंडरु (डु) डुंडरु (डु) डुंडरु (डु) = डुंडरु ।

सड़-सड़ वाहि म कबड़ी, राँगाँ देह म चूरि ।
 विहुँ दीपाँ विचि मारुई, मो-थी केती दूरि ॥४६२॥
 करहा, तो बेसासड़उ, मो विण-सान्था काज ।
 अंतरि जउ वासउ हुवउ, मारु न मिळह आज ॥४६३॥
 ढोला, वाहि म कंबड़ी, दसिए एकणि पूरि ।
 जे साजण वीहंगडे, वीहंगड़उ न दूरि ॥४६४॥

दिन बीत गया । (आकाश मे) अन्नर डन्नर छा गए । भरने नीलाय-
 मान हो गए । अरे काली जँटनी से उत्पन्न हुए जँट, तू किस बूते पर बोला
 था (कि मैं पहुँचा दूँगा) ?

४६२—जँट बोला—

सड़ सड़ छड़ी मत मारो । रानों से (मेरी) देह को चूर चूर मत करो ।
 दोनों द्वीपों के बीच मे मारवणी मुझसे कितनी दूर (हो सकती) है ?

४६३—ढोला कहता है—

हे जँट, तुम्हारा भरोसा है । मेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ । जो बीच
 में ठहरना पड़ा तो मारवणी आज नहीं मिल सकेगी ।

४६४—जँट कहता है—

हे ढोला, दस दस छड़ियाँ एक ही साथ मत मारो । यदि (तुम्हारी)
 प्रेयसी पत्नी हो तो वह पत्नी भी (मेरे लिये) दूर नहीं है ।

नोट—इस दूहे का अर्थ अस्पष्ट है ।

काळे (थ) नीचे (च) काळी (क. ज. घ)=नीले । नीरुणणेह (क ख. ग. घ) ।
 काळे (ग) । काधा (च)=जाया । करह हा (घ) । वाल्यौ (ख) । गुणेह (ख) ।
 ४६२—पासे राग (च. ज)—राँगाँ देह । पास (ग)=देह । चूर (क. ग
 घ) । विहुँ (ख) । दियाँ (ख) दीभां (च) दांतां (ज) दीहां (थ)=दीपाँ ।
 विच (ख) में (क ग) माँहि (घ)=विचि । मारुवी (क) मारवी (ख. ग. घ)
 मेता (ख) मीथी (घ) । दूर (क) ।

४६३—बेसासड़ै (ज. थ) । वेणसड्या (थ) । विणठां सवि (ज)=
 विणसारथा । अंतरि (ज) । यो (ज)=जौ । हुवो (ज) ।

केवल (च ज) में ।

४६४—न (क. ऋ) । दस दस (क. ऋ) दिसदस (ज)=दसिए । एकरण
 घूर (क. ऋ) दसणे दिसि किणि सूरि (थ) । साजण (ज) । वहा गडो (ज)
 वेहंगडे (थ) = वीहंगडे वेहागडो (ज) वेहंगडो (थ) ।

केवल (च. ज थ) में । (क. ऋ) में एक दूहा है जो इस दूहे की प्रथम
 पंक्ति तथा आगे दूहा संख्या ४६७ की दूसरी पंक्ति लेकर बनाया गया है ।

विहॉगडे ज उदाधयॉ, सर ज्यउँ, पंडुरियाँह ।
 कालर काम्ना कमळ ज्यउँ, ढळि ढळि ढेर थियाह ॥४६५॥
 करहा काळी काळिया, भुई भारी, घर दूर ।
 हथड़ा काँइ न खंचिया राह गिलंतइ सूर ॥४६६॥
 करहा, वामन रूप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि ।
 तू थाकउ, हूँ उसनउ, भुई भारी, घर दूरि ॥४६७॥

४६५—सढुद्रों पर जिस प्रकार पत्नी (उड़ते ही जाते हैं, जत्र तक वे हार नहीं जाते), सरोवरों में जिस प्रकार पडुख (तैरते ही जाते हैं, जत्र तक वे हार नहीं जाते), और कीचड में फँसे हुए कमल जिस प्रकार मुरभा मुरभाकर ढेर हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं भी चलता ही जाऊँगा, जत्र तक कि हार न जाऊँ या ढेर न हो जाऊँ ।

नोट—इस दूहे का अर्थ भी अस्पष्ट है ।

४६६—हे कच्छ देश के काले ऊँट, फासला बहुत है और घर दूर है । राहु ने सूर्य को ग्रास करते समय हाथ क्यों नहीं खींच लिया (ताकि सूर्य अस्त नहीं होता) ।

४६७—हे ऊँट, अत्र वामन का सा रूप धारण करके अपने चारों पैरों से पथ को नाप ले । तू थक गया है और मैं भी खिन्न हो गया हूँ । फासला बहुत है और घर दूर है ।

४६५—विहागडे (ज) । वेहगडे जु ढधियाँ (थ) । जे (ज)=ज । ढधीयाँ (ज) । परिज्यो (ज)=सर ज्यउँ । पडुरियाँह (च) । कायर (च) । खांधा (ज) —काम्ना । कळवर काम्नी कमळड्यो (थ)=कालर ..ज्यउँ । ढरि ढरि (ज) ।

विहगडे जो ढखीयो परजुं पंडरियाँह,

काकर कमळ ज काळजो ढइ ढइ ढार थियाँह (घ) ।

केवल (च. ज. थ. ढ घ) में ।

४६६—भुद्र (व)=भुइ । घरि (व) दूरि (ख) । कोई (ग)=काँइ । गहँते (ख ग) । गिलते (व)=गिलतइ ।

केवल (क. ख. ग. घ) में ।

४६७—पंथ (ज)=पग । पथ दूरि (थ)=पग पूरि । ऊंसाहियो (ज) = उसनउ । हुं थाकै तुं उमाहीये (क) हुँ थौँकौ तुम् महीयो (क) । धण चगी पथ दूर (क) धण चंगी घर दूर (क) । पंथ (क ज) = घर ।

नोट—(क क) में पहली पंक्ति ढूहा ४६४ की भाँति है ।

ढोलामारुरा दूहा

करहा, लंबी वीख भरि, पवनॉ ज्यूँ वहि जाह ।
 भंभ वळंतइ दीवळइ, घण जागंती जाँह ॥४६८॥
 करहा काळी काळिया, चाली गइ किरणाँह ।
 संभ वळतइ दीवळइ, घण जागंती जाँह ॥४६९॥
 सकती बाँधे वीटुळी, ढीली मेल्हे लज्ज ।
 सरढी पेट न टियउ, मूँध न मेळउँ अज्ज ॥५००॥

४६८—हे ऊँट, लंबी लंबी डगें भर । तू पवन की तरह उड़ जा, जिससे (सध्या को) दीपक जलते जलते, और प्रिया के जागते हुए ही, पहुँच जायें ।

४६९—हे कच्छ के काले ऊँट, (पृथ्वी से सूर्य की) किरणों चली गईं । (किसी प्रकार) सध्या के दीपक जलते जलते, प्रिया के जागते हुए ही, पहुँच जायें (ऐसा उपाय कर) ।

५००—ऊँट कहता है—

पगड़ी कसकर बाँध लो, लगाम को ढीली छोड़ दो । मैं ऊँटनी के पेट में नहीं लेटा यदि आज उस मुग्धा को तुम्हें न मिला दूँ !

४६८—काळी काळीयाँ (ज)=लंबी वीख खरि । जउ (च)=ज्यूँ । जाय (ज) । थंभ (ज)=भभ । आवतै । (ज. थ)=वळतइ ।

केवल (च. ज थ) में ।

४६९—कछा (ख) कछी (ग) । काळीयां (क) । लव कराडियां (थ)=काळी काळिया । सांभ (क. ग. घ) थांभ (थ) । हवतै (न)=वळंतइ । दीवडै (ख) । जागती लहांइ (थ) ।

५००—सगती (च) काठी (ख. ग) सकसी (क. घ)=सकती । बांधे (क) बांधें (ख. ग) बांधी (च) बांधे (ज) । पावढी (ख. ग) वीटुळी (क. घ)=वीटुळी । मूके (च) मुकै (ज)=मेल्हे । लाज (क. ख. घ. च) राग (ग)=लज्ज । सरली (च)=सरढी । पेटि (च) । लोटीयो (घ. ज) पेटियइ (च)=लेटियउ । मूध (क) जे मुंघ (ख) आज (क. ख. ग. घ. च) ।

(मारवणी का स्वप्न)

जिण दिन ढोलड आवियड, तिण अगलूणी रात ।
 मारु सुहिणऊ लहि कइड, सखियों सँ परभात ॥५०१॥
 सुपनइ प्रीतम मुक्क मिळया, हँ लागी गळि रोइ ।
 डरपत पलक न खोलही, मतिहि विछोहड होइ ॥५०२॥
 सुपनइ प्रीतम मुक्क मिळया, हँ गळि लागी धाइ ।
 डरपत पलक न छोडही, मति सुपनड हुइ जाइ ॥५०३॥
 आज ज सूती निसह भरि, प्रीय जगाई थ्याइ ।
 विरह - भुयंगम की डसी, लघथबती गळ लाइ ॥५०४॥

५०१—जिस दिन ढोला (पूगल) आया उसकी पहली रात को मारवणी ने स्वप्न देखकर प्रातःकाल सखियों से कहा ।

५०२—हे सखियों, स्वप्न मे प्रियतम मुक्कमे मिले । मे रोती हुई (उनके) गले लगी । डरती हुई मैंने पलकें नहीं खोलीं कि कहीं (उनसे) विछोह न हो जावे ।

५०३—स्वप्न मे मुक्के प्रियतम मिले । मैं दौड़कर गले लग गई । मैंने (इस डर से) डरते हुए पलकें नहीं खोलीं कि कहीं यह (सचमुच ही) स्वप्न न हो जाय ।

५०४—आज जो रात भर सोई हुई थी (तो ऐसा जान पड़ा) मानो प्रियतम ने आकर जगाया । (प्रियतम को देखते ही) विरह रूप सोंप से डसी हुई मैंने उगमगाकर (उन्हें) गले लगा लिया ।

५०१—जिन (ग) । आविसी (घ) आवित्ययै (क) । ताह (घ)=तिण । राति (ग, घ) । सुवणौ (ग) सुपनौ (घ) ।

केवल (क, ख ग, घ) मे ।

५०२—सुपनौ (घ) । मुक्कि (घ) । गळ गली (ग)=लागी गळि । डरती (ग) । सुपन (ग)=हि विछोहड ।

केवल (क, ख ग, घ) मे ।

५०३—सुपनौ (घ) । मुक्कि (घ) । मिलौ (घ) । गळ लागी (ख) । खोलही (ग, घ)=छोडही । मत (ग) । जाय (घ) ।

केवल (क, ख, ग घ) मे ।

५०४—हु (ग) म (घ)=ज । निग (ग, घ) । भर (ग) । जाणि (घ) । जगाई

सोरठा

ढोती-जडी ज हाथि, सुरह - सुगंधी वाटली ।
सूती मॉक्किम राति, जाणूँ ढोलूँ जागवी ॥५०५॥

दूहा

धर नीगुल दीवळ सजळ, छाजइ पुणग न माइ ॥
मारू सूती नींद्र भरि, साल्ह जगाई आइ ॥५०६॥

सोरठा

सुरह सुगधी वास, मोती काने भुळकते ।
सूती मंदिर खास, जाणूँ ढोलइ जागवी ॥५०७॥

५०५—(ढोला का स्वागत करने के लिये) मोतियों से जड़ा हुआ और सुरभित द्रव्य से भरा हुआ पात्र हाथ में लिए हुए मैं मध्य रात्रि के समय सोई थी उस समय मुझे जान पड़ा मानो ढोला ने मुझे (आकर) जगाया ।

५०६—महल में बिना गुल का सुंदर दीपक (जल रहा) था । (उसकी लौ) सर्प के फण के आकारवाले छुज्जे में नहीं समाती थी । (ऐसे समय) मारू भग नींद्र सोई हुई थी, (उस समय मानो) साल्हकुमार ने आकर जगाया ।

५०७—मेरे वस्त्र सौरभ से सुगंधित थे, कानों में मोती झलमला रहे

(घ) । भुयंग (घ) । गळि (घ) । थाइ (क)=लाइ । लुधधवती विळळाइ (क)=लबधवती गळ लाइ ।

केवल (क ख ग घ ङ) में ।

५०५—जडीया (ग) जडीण (च. ज)=जडी ज । हत्थवे (च ज) हाथ (ख. घ) । सुनहै (क ख) सुरै (ग. घ) सोहै (क)=सुरह टाटळी (ग) वटळी (घ) वाटि (च) वात (ज) । जिण जाणूँ (ख) = जाणूँ । साल्ह जगाईया (क. ख. ग घ ङ) ढौले (ज) ।

यह सोरठा (ग ज) में दूहा के रूप में है ।

५०६—धरि (ज) । नीगळ (क. ख. ग घ) । दीपक (क. ख. घ) । दीवौ (ग) दीवळो (ज) । वळइ (च ज. थ)=सजळ । आछी (च.ज.थ)=छाजइ । पुणग (घ) ति (क घ) त्रि (च)=न । माय (ग) । विमाय (ज) । सूती सज्जण सभरया (क. ख. ग. घ)=मारू भरि । जाणूँ ढोलइ । (च ज)=साल्ह । लीधी जगाइ (थ)=जगाई आइ । आय (ग ज) ।

५०७—सुरह सुगंधी वाट जाणे फिर मोती जडया (थ) ।

दूहा

राति ज वादळ सवण घण, वीज - चसंकड होइ ।
 इण समईयइ, हे सखी, साल्ह जगाई मोइ ॥५०८॥
 [हुंता सज्जण - हीयडे सयणों - हंदा हत्त ।
 जड सोहणो साचइ होअइ, सोहणो वडी वसत्त] ॥५०९॥
 सोहण याई फर गया, मई सर भरिया रोइ ।
 आव सोहागण नीदडी वळि प्रिय देखू सोइ ॥५१०॥
 जव जागू तद एकली, जव खोऊँ तव वेल ।
 सोहणा, थे मने छेमरी, वीजी भीजी हेल ॥५११॥
 सुहिणा, हूँ तइ दाहवी, तोनइ दहियउ अग्नि ।
 सब जोयण साजण वसइ, सूती थी गलि लगि ॥५१२॥

थे । खास महल में सोती हुई (ऐसी मुझको) मानो साल्हकुमार ने आकर जगाया ।

५०८—रात को बहुत से घने बादल छाए हुए थे । बिजली चमक रही थी । ऐसे समय में, हे सखी, साल्हकुमार ने मुझे जगाया ।

५०९—(इस प्रिया) के हृदय पर प्रियतम के हाथ थे । यदि (यह) सपना सच्चा हो तो सपना बड़ी वस्तु है ।

५१०—सपना आकर चला गया, मैंने रो रोकर सरोवर भर दिए । हे सौभाग्यवती नींद, आ, (जिससे) फिर उसी प्रियतम को देखूँ ।

५११—जब जागती हूँ तो अकेली रह जाती हूँ और जब सोती हूँ तो दो हो जाते हैं । हे सपने, नए नए खेल करके तूने मुझे ठग लिया ।

५१२—हे स्वप्न, तूने मुझे जलाया, तूझे अग्नि जलावे । (तूने मुझे ऐसा धोखा दिया कि जो) प्रियतम (यहाँ से) सौ योजनो पर बसते हैं, मैं उन्हीं प्रियतम के गले लगाकर सोई हुई थी ।

५०८—सवन घन (ग) घण घणा (घ) । समयै (क) । मोहि (क ख. घ) । केवल (क ख. ग. घ) में ।

५१२—तो (ज)=तइ । दूहवी (थ) । दहियो (ज) । अग्नि (च) । सौ (ज) गळ (च) लगि (च) ।

जिम सुपनंतर पामियउ, तिम परतख पामेसि ।
 सज्जन मोतीहार ज्यूँ, कंठा-प्रहण करेसि ॥५१३॥
 सुहिणा, तोहि मराविसूँ, हियइ दिराऊँ छेरु ।
 जद सोऊँ तद होइ जण, जद जागूँ तद हेक ॥५१४॥
 सहिए फिरि समभाविउ, सुहिणइ दोस न कोइ ।
 सब जोयण साहिष वसइ, आँण मिळावइ तोइ ॥५१५॥
 आज फरुकइ अंखियाँ, नाभि, भुजा, अहरौह ।
 सही ज घोड़ा सज्जणाँ साम्हौँ किया घराँह ॥५१६॥

५१३—जैसे स्वप्न में पाया वैसे यदि प्रत्यक्ष पाऊँ तो प्रियतम को मोतियों के हार की भाँति कठ में धारण करूँ ।

५१४—अरे सुपने, तुझे मैं मगाऊँगी, तेरे हृदय में छेद करवाऊँगी । जब सोई होती हूँ तब तो (हम) दो होते हैं (और जब) जागती हूँ तब एक ही रह जाती हूँ ।

५१५—फिर सखियों ने समझाया कि स्वप्न को कोई दोष नहीं । जो प्रियतम सौ यौवन दूर रहते हैं (वह) उन्हें भी लाकर तुमसे मिला देता है ।

५१६—मारवणी फिर कहती है—

आज आँखें, नाभि, भुजाएँ और अघर फड़क रहे हैं । हे मन्वी, अवश्य ही प्रियतम ने (मेरे) घर की ओर घोड़े किए हैं ।

५१३—जौ (ज) = जिम । सुपनंतर (च) । जदि (ज) = तिम । परतगिहूँ (थ) प्रतन् (च) । मिलेस (ज) = पामेसि । प्रीव (ज) = मज्जन । करेस (ज) ।

५१४—सुपना (क. ख. ग) । मराविस्सुं (ग) दिरावु (ग. घ) । जव (ग) जदि (व) । तदि (ग. घ) जव (ग) । जणा (व) । जदि (व) = तदि । एक (क. ख. ग)

केवल (क. ख. ग. घ) में ।

५१५—सखियाँ (ग) । समभाइयो (ग) । जोइण (ग) । तोहि (ग) । सो किम आवै अज (क) = आँण...तोइ ।

केवल (क. ख. ग. घ) में ।

५१६—फुरकें (क. ख. घ) । नाभ (घ) । अहिगह (ग) । माजणां (ख. घ) सजनां (ग) । साम्हौ (क) मामा (ग) ।

केवल (क. ख. ग. घ) में ।

अहर फुरक्कइ, तन फुरइ, तन फुर नयण फुरंत ।
 नाभी - मंडळ सहु फुरइ, सॉम्हइ नाह मिळंत ॥५१७॥
 आज उमाहउ मो घणर, ना जाणू किव केण ।
 पुरुख परायउ वीर वड, अहर फुरक्कइ केण ॥५१८॥
 सहिए; साहिव आविस्यइ, मो मन हुई सुजॉण ।
 आगम-वाधाऊ हुया अग-तणा अहिनाँण ॥५१९॥
 आँखि निमॉणी क्या करइ, कउवा लवइ निलवज ।
 सउ जोइन साहिव वसइ, सो किम आवइ अज्ज ॥५२०॥

५१७—अहर फडकते हैं, शरीर फड़कता है, और शरीर फड़ककर नयन फडकते हैं, नाभिमंडल (इत्यादि) सभी (अग) फडकते हैं । (निश्चय ही, आज) सॉम्ह को नाथ मिलेंगे ।

५१८—आज मुझे बड़ा उल्लास है, नहीं जानती कि क्यों और किस कारण ? पर पुरुष तो (मेरे लिये) बड़े भाई के समान है, फिर अधर किस कारण फड़कता है ?

५१९—हे सखि, प्रियतम आवेगे, (ऐसी) मेरे मन में प्रेरणा हुई है । मेरे अर्गों के चिह्न (उनके आगमन की) पहले से बधाई देनेवाले हो रहे हैं ।

५२०—फडकती हुई आँख क्या करेगी और निर्लज्ज कौवा बोलता है (उसमें भी क्या ?) । प्रियतम तो सौ योजन (की दूरी पर) बसते हैं, वे आज कैसे आ सकते हैं ?

५१७—अहिर (ग) । नयन (ग) । फिरें (क. ख. घ) । संभया (ग) । केवल (क. ख. ग. घ) में ।

५१८—व्यु (क. ख) किम (ग) = किव । वीरवर (ख. घ) । आखि (ग) = अहर ।

५१९—सखीण (ग) । आविसै (घ) आवसी (ग) । हुआ (ख. ग) । केवल (क. ख. ग. घ) में ।

५२०—आंग (घ) । फिरें (घ) = करें । कोवा (घ) । लिवै (घ) । जोयण (घ) । आज (घ) ।

केवल (ग. घ) में ।

(ढोला का पूगल पहुँचना)

काली-कंठळि वीजुळी नीची खिवइ निहल्ल ।
 उर भेदंती सज्जणां, ऊचेडंती सल्ल ॥५२१॥
 सांभी वेळा सामहलि कंठळि थई अगासि ।
 ढोलह करह कँघाइयउ, आयउ पूगळ पासि ॥५२२॥
 ऊँडा पाणी कोहरइ, थळे चढीजइ निट्ट ।
 मारवणी-कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ट ॥५२३॥
 ऊँडा पाणा कोहरै दीसइ तारा जेम ।
 ऊसारंता थाकिस्यइ, कहउ, काढिष्यइ केम ॥५२४॥

५२१—काली कंठुली (-वाले मेघों) में बिजली बहुत ही नीचे चमक रही है । प्रेमियों के हृदयों का भेदन करती हुई वह (विरहरूपी) शल्य को उखेलती है ।

५२२—संध्या समय आकाश में सामने बादलों की कटुली (वाली घटा) उमड आई । ढोला ने ऊँट को छुड़ी से मारा और (उसे तेजी से हॉककर) पूगल के पास आ पहुँचा ।

५२३—ढोला कहता है—

पानी बहुत गहरा कुत्रों में मिलता है और थलों (अर्थात् कँकरीले ऊँचे स्थानों) पर बड़ी कठिनाई से चढा जाता है । मारवणी के कारण (ऐसे) अदृष्टपूर्व देश देखे ।

५२४—वहाँ किसी पानी निकालनेवाले को देखकर ढोला कहता है—

कुत्रों में पानी (इतना) गहरा है कि (ऊपर से) तारे की तरह (नीचे चमकता हुआ) दिखाई देता है । उसको खींचते हुए (तुम) थक जाओगे, कहो, कैसे निकालोगे ?

५२१—कंठळि (ज. घ) । सज्जनां (ज) । उचायदी=ऊचेडंती (ज) ।

केवल (ज. ज थ) में ।

५२२—सांभळी (ज) सामुही (थ)=सामहळि । अगासि (ज) । खिवइ जु अधिक अगासि (क) । ढोलो (ज) । कघावियो (ज) ।

५२३—कोहरां (ड) । नीठ (ड) । तुक्क (ड)=कइ । कारणौ (ड) । दीठ (ड) ।

केवल (ज. ड) में ।

५२४—कोहरा (ड) । तारा जिम मिळकंत (ड)=दीसइ तारा जेम । ऊसारतां (ड) । थाकीस नही (ड)=थाकिस्यै । काढेसी (ड) । कथ (ड)=केम ।

केवल (ज. ड) में ।

तुम्ह जावड घर ध्यापणइ, न्होरी केही तात ।
 दीहे-दीह उसारित्योँ, भरिस्योँ माँजिस रात ॥५२५॥
 एण समईयइ ध्यावियड वीसू तिणहोँ वार ।
 पिगळ-राजानूँ कहइ, आयड साल्हकुमार ॥५२६॥
 राजा रॉणी हरखिया, हरख्यड नगर अपार ।
 साल्हकुँवर पध्धारियड, हरखी मारू नार ॥५२७॥

(मारवणी का हर्ष)

साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहू सरियोँह ।
 पूनिम केरे चंद्र ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह ॥५२८॥

५२५—पानी निकालनेवाला उत्तर देता है—

तुम अपने घर जाओ, (तुम्हें) हमारी क्या चिंता पडी है ? दिन भर हम पानी खींचेंगे और मध्यरात्रि में (कोठे) भरेंगे ।

५२६—इसी समय, उस काल में वीसू (प्रगल) आ पहुँचा । उसने पिगल राजा से कहा कि साल्हकुमार आ गया है ।

५२७—राजा और रानी प्रसन्न हुए । सब नगर बहुत आनंदित हुआ । साल्हकुमार आया (यह जानकर) नारी मारवणी हर्षित हुई ।

५२८—मारवणी ने सखी से कहा—

हे सखी, स्वामी आए, सब कार्य सफल हुए । पूर्णिमा के चंद्र की तरह (ढोलारूपी चंद्र के उदय होने से) चारों दिशाएँ प्रफुल्लित हो गई हैं ।

५२५—थे ? (ड)=तुम्ह । किसी पराई (इ)=म्हारी केही । दीहाडो अवसर चोलसां (ड)=दीहे दीह उसारित्योँ । माँजिम (ढ) ।

५२६—इलो (क) । काळ (स)=वार । कयौँ (घ) ।

केवल (क. ख. ग. घ. ङ) में ।

५२७—सहू परिवार (ङ)=नगर अपार ।

केवल (क. ख. ग. घ. ङ) में ।

५२८—माजण (थ) सजण (ग न) सजन (ज)=साहिब । मिळिया धृति हुई (ध. ज. न)=आया हे सखी । कज्जा (ख. घ) । सहि (ज. ग. घ) । पूनिम चंद्र मयंक (क. ख. ग. घ. थ) पूनिम रात मयंक (न)=पूनिम चंद्र । ज्यूँ (ख) जिम (ग) ज्यु (क. ज) । दिस (ग. ज) । वसीयाँह (थ)=फळियाँह ।

सखिए; सलहलब आवलडल, ऑहकी हूँती ऑलड ।
 हलडडऑ हेलडऑलर डडऑ, तन-डऑरे न डलड ॥५२६॥
 सडडुतल सऑऑण डललुडल, हूँतल डुडु हलडलह ।
 आऑणुडुँ डलन ऊडरड डलऑ डलऑ कीडलह ॥५३०॥
 आऑणुड डन दीहडऑ, सलहलब कऑ डुख डलडु ।
 डलथल डलर ऑऑलडुथडऑ, आँखुँ आडु डडडु ॥५३१॥
 सखिए, सलहलब आवलडल, डन ऑलहँदी डुडु ।
 वलडी हुआ वडुडुडणल, सऑऑण डलऑलडल सुडु ॥५३२॥

५२६—हे सखी, (वे) सुवलडु आ गए ऑलनकी लऑन थुी । डेरल हृदड (डडुऑलुतल हुकर) हलडललड (ऑसल वलशल) हुु गडल है आँर तनरूडु डऑर डे नहँ सडलतल ।

५३०—ऑु डेरु हृदड डें थे वे डुरलतड आ डहुँऑे आँर डलले । (डैने) आऑ के (शुड) डलन डर दूसरे (सव डलन) वलललहलर कर डलए ।

५३१—आऑ कल डलन घनुड है कल सुवलडु कल डुख देखल । (डेरु) सर कल डलर उतर गडल आँर आँखुँ डें आडुत डैठ गडल ।

५३२—हे सखी, सुवलडु आ गए, डेरु डनऑलही हुडुँ । वही डुरलतड आ डलले आँर घर डे वडलवे हुए ।

५२६—सऑन डलललडल हे सखी (ड) सऑण आडल हे सखी (ग. घ)=सखिए...आवलडल । ऑुडलरुी (ड) । हुंडुी (क) हुतुी (ग) हुतुी (ड) । ऑलहल (ग. घ ड) ऑलह (ख) । हलडुी (ख. घ) । हेड डुलकलडुी (ड) हेडलऑर हुवुी (ग) । डन (ड)=तन । डलड (क) । वुडुी वऑतुी ललड (ड) वुडुी वलंतुी डलड (घ)=तन...डलड ।

केवल (क. ख. ग. घ. ड. ड) डे ।

५३०—सडडुतल हूँतल सऑऑणल (ड) । सलऑण (क) । आऑन (ग) ।

केवल (क. ख. ग. घ. ड. त) डे ।

५३१—डुँठ (ग) । हलव (घ)=डलर ।

५३२—सखीडे (ग) । ऑलहलतुी । (क. ग. त) । डुी (क. ख. त) ।

ऑुड (ग)=डुी । वलडुल (ग) वलडुी (त) । हुँडुँ (ग) हुडल (क) हुआ (त) ।

वडलडुडल (ग) । सऑण (क) । आडल (ग)=डलऑलडल ।

केवल (क. ख. ग. घ. ड. त) डें ।

सखी, सु सञ्जण आबिया, हुंता मुम्भ हियाह ।
 सूका था सू पालहव्या, पालहबिया फळियाह ॥५३३॥
 सञ्जण मिळिया सञ्जणों, तन मन नयण ठरंत ।
 अणपीयइ पाणग ज्युं नयणे छाक चचत ॥५३४॥

(सखियो द्वारा मारवणी का शृगार और ढोला)
 के पास ले जाया जाना)

साखिए ऊगट मोजिणउ खिजमति करइ धनत ।
 मारु तन मंडप रच्यउ, मिलण सुहावा कंत ॥५३५॥
 मारवणी सिणगार करि मदिर कू मल्हपंति ।
 सखी सुरंगी साथ करि गयगयणी गय गंति ॥५३६॥

५३३—हे सखि, वे प्रियतम आ गए जो मेरे हृदय मे थे । जो मनोरथ सूखे थे वे पल्लवित हो गए और पल्लवित होकर फल गए ।

५३४—प्रियतम प्रेयसी से आ मिले । (मेरे) तन-मन और नयन शीतल हो रहे हैं । (मद्य का) प्याला पिए बिना ही मेरे नयनों में नशा-सा छा रहा है ।

५३५—सखियों उवटन, स्नान आदि अनेक प्रकार से मारवणी की सेवा कर रही है । उन्होंने सुहावने कत से मिलने के लिये मारवणी के तनरूपी मंडप को सजाया ।

५३६—सुंदर गजगामिनी मारवणी शृगार करके रंगीली सखियों को साथ लेकर गज की चाल से महल को जाती है ।

५३३—हुता (ग. त) । पालहया (ख) पालहव्या (त) । सु फळीयाह (क. घ) फळियाह (ग) । से (त)=सू ।

५३४—सखी सू (ग)=सञ्जण । पीवै (ग) । पाणगसु (ग) । थं पीये पाणग ज्युं (त) । नेणे (त) । चढंति (त) चढंत (घ) ।

५३५—सखीये (ज) । माजणा (क. ख. ज) मंजणा (ग) मंजण (त) । खिजमत (ग. ज) खिजमित (त) खिजमिति (थ) । सुहावै (क. ग. त) । (ज. थ) में द्वितीय पक्ति इस प्रकार है—

मारवणी मदिर महलि, कामिणि मिळियो कंत (थ) ।

मारवणी मदिर महलि, कमणि मिळिया कंत (ज) ।

५३६—तु (ग) टिस (त)=कुं । मल्हपंत (क. ख) । साथि (क) । गत (क) । गत (ख) ।

केवल (क. ख. ग. घ. ऋ. त) में ।

घम्मघमन्तइ घाघरइ, उलट्यउ जॉण गयंद ।
 मारू चाली मंदिरे, कीणे वादळ चद ॥५३७॥
 मारू चाली मदिराँ, चन्दउ वादळ साँहि ।
 जॉणे गयंद उलट्टियउ कज्जळ-वन महँ जाहि ॥५३८॥
 घम्मघमंतइ घूघरइ, पग सोनेरी पाळ ।
 मारू चाली मंदिरे, जॉणि छुटो छंझाळ ॥५३९॥
 बोली वीणा, हंस गत, पग वाजंती पाळ ।
 रायजादी घर-अंगणइ छुटे पटे छंझाळ ॥५४०॥
 सोई सज्जण आविया, जॉहकी जोती बाट ।
 थॉभा नाचइ, घर हँसइ, खेलण लागी खाट ॥५४१॥

५३७—घूमते हुए घाघरे को पहिने हुए मारवणी महल की ओर चली, मानों गजेंद्र उमड चला हो अथवा भीने बादल मे चद्रमा चल रहा हो ।

५३८—मारवणी महलों में चली मानो चद्रमा बादल में चलता हो अथवा मदोन्मत्त हुआ गजेंद्र कजलीवन में जा रहा हो ।

५३९—छम छम बजते हुए घुँघरू और सोने की पायल, पैरों मे पहने हुए मारवणी महल को चली, मानो फव्वारा छूटा हो ।

५४०—(उसकी) बोली वीणा के समान है, चाल इस जैसी है, पैरों मे पायल बज रही है । इस प्रकार राजकुमारी घर के आँगन मे (चल रही) है । उसके खुले हुए केशपाश फव्वारे के समान हैं ।

५४१—वही प्रियतम आ गए जिनकी बाट जोह रही थी । (चारों ओर

५३७—वम-वम-वमके घूघरा (क) घम-घमते पाय घूघरा (ङ) घम-घमाट पायै घुघरा (ट) । ऊलटो (क) उलटो (ट) । मोहल पधारी मारवी (क) महिला पधारै मारवी (ङ) महिला पधारी मारुई (ट) । मदरां (ऋ) । भीने (क) भीने (ङ)=भीणे ।

५३८—केवल (ऋ) में ।

५३९—केवल (ऋ) में ।

५४०—चाल वळी हंस चालती (ट)=बोली.. गत । पायळ (ट) । राय अंगण (ट) = घर अंगणइ । छुटो जाण (ङ)=छुटे पट ।

केवल (ट, ङ) में ।

५४१—सेइ (ग) । ते साजन पधारिया (ज) सो सजन घरे आवीया (न)

(ढोलामारुवा-मिलन)

सखि वरुवावो फिरि गई, प्री मिलियउ एकंत ।
 मुळकत ढोलउ चमकियउ, वीजळ खिवी क दत ॥५४२॥
 [ढोलड जाँएयउ वीजळी, मारु जाँएयउ मेह ।
 च्यारि आँख एकठि हुई, सयणे वध्यो सनेह ॥५४३॥]
 ढोलउ मिलियउ मारुवी दे आलिगण चित्त ।
 कर ग्रह आँणी अक-मई, सेज सुणेसी वत्त ॥५४४॥

आनंद का इतना उल्लास है कि) खभे नाच रहे हैं, घर हँस रहा है और पलंग खेलने लगा है ।

५४२—सग्वियाँ (मारुवाणी को ढोला के पास) मेजकर लौट गईं और प्रियतम एकान्त में मिला । (मारुवाणी के) मुसक्याते ही ढोला चौंका कि यह त्रिजली चमकी या दाँत ।

५४३—ढोला ने समझा कि (मारुवाणी) त्रिजली है, मारुवाणी ने समझा (ढोला) मेघ है । जब चार आँखें एक हुईं तो (दोनों) प्रेमियों में प्रेम की वृद्धि हुई ।

५४४—ढोला हृदय से आलिगन करके मारुवाणी से मिला । (उसने उसको) हाथ पकड़कर अंक में ले लिया और कहा—सेज पर (बैठकर) बात सुनो ।

मजन मिलीया हे सग्वी (ज)=सोईं. आविया । ज्याह (ज. न) ज्यां (ड) ।
 री (न) = की । जोऊँ (क. ख. त) जोवती (ड. न) । कुई (ड) वोलै (क.
 ख)=नाचह । वरि (ज) । फाग (ख) ।

५४२—मरुवी (क. ख. ग. ज. त) । वौलाण (क. ख. ग) वौलाव (ज) ।
 फिर (ख. न) वरि (ज. थ) । गया (क. ख) गयां (त) । प्रीय (ख) प्रीव
 (ज) प्रिय (थ) । एकंति (ज. थ) । हसतौ (क) । वीजुळि (थ) खिव (थ) ।
 कि (क) ज्यु (थ)=क । दंति (ज) ।

५४४—मारुवी (ख) । चित्त मे (ग)=अक में ।

केवल (क. ख. ग. घ. त) में ।

मारू वइठी सेज-सिर, प्री मुख देखइ तास ।
 पूनिम-केरे चद्र व्यूँ मदिर हुवउ उजास ॥५४५॥
 काया भबकइ कनक जिम, सुंदर, केहे सुख ।
 तेह सुरगा जिम हुवइँ, जिण वेहा बहु दुख ॥५४६॥
 मनि संकाणी मारूवी, खुणसउ राखइ कंत ।
 हँसतौ पीसूँ वीनवइ, सौंभळि, प्री, विरतत ॥५४७॥
 पहर हुवउ ज पधारियोँ मो चाहंती चित्त ।
 डेडरिया खिण-मइ हुवइ घण वूठइ सरजित्त ॥५४८॥

५४५—मारवणी सेज पर बैठी । प्रियतम उसके मुख को देखता है ।
 पूर्णों के चद्र के समान (उसके मुखमडल की आभा से) महल मे उजेला
 हो गया ।

५४६—(ढोला ने विनोद में मारवणी से प्रश्न किया—) तुम्हारी काया
 कचन के समान भलक रही है । हे सुदरी, कौन से सुख से ? वे सुरगे कैसे रह
 सकते हैं जिनको बहुत से दुःखों ने वींध रखा है ।

५४७—मारवणी मन में संकुचित हुई कि प्रियतम मन मे खुनस रखता
 है । वह हँसती हुई प्रियतम से विनय करती है—हे प्यारे, वृत्तात सुनो ।

५४८—आपको पधारे हुए और (आपको) चित्त मे चाहते हुए मुझे
 एक प्रहर हो गया है । मंढक तो घन के बरसते ही क्षण भर मे सजीवित
 हो जाते हैं ।

५४५—पर (ग) = सिर । प्रीय (क. ख) । हूयो (त) ।

केवल (क. ख. ग. घ. त) मे ।

५४६—भलककै (न) । ढोलौ पूछै मारूवी दे आलिगन मुख (क. त) =
 काया...सुख । सुख (ख) । जिउ (थ) = जिम । ताह (क. ख) तिके
 (ग) । क्यों (ख) क्यउ (क) । हुवै (क. ख. ज) । जे (क. ख. ग)
 जां (थ) । देहाँ (थ) । दाधा साहे (क. ख) दाधा हुवे ज (ग) दाधा
 हूवै जु (क) = वेहा बहु । त्रीया सरीर न सौंभदी बहु दीहाँके दुख (न) ।

५४७—मन (क. ख. ग) संकोची (क. ख. ग) । मारूई (ज) मारवी
 (ख. ज. थ) । खुणसइ (थ) खुणस (त. ज) । रालसे (त) रवखे (थ)
 करैलो (ज) । वनिता (क. ख) अरपी (ग) पदमणि (क) हँसि करि
 (थ) = हँसतौ । प्रीउ (क) पीउ (ख) । प्रति (ज. थ) = सु । इस कहइ
 (ज. थ) = वीनवइ । प्रीय (ज) त्री (ख) ए (ग. घ) = प्री ।

५४८—पहर (क. त. थ) । हूवौ (ख) हुवौ (क) हुवो (ज) ।

ढो० मा० दू० २१ (११००-६२)

पहिली होय दयामणुड रवि आथमणुड जाइ ।
 रवि ऊगड चिहसइ कमळ, खिण इक विमणुड थाइ ॥५४६॥
 ढोलड मन आणंदियड चतुर तणे वचनेह ।
 मारु - मुख सोरंभियड, आवि भमर भणकेह ॥५५०॥
 कंठ विलग्गी मारवी करि कंचूवा दूर ।
 चकवी मनि आणंद हुवड, किरण पसारथा सूर ॥५५१॥
 आसालूँध उतारियड धण कुचुवड गळोह ।
 घूमइ पडिया हसडा भूला मॉनसरोह ॥५५२॥

५४६—सूर्य को अस्त होते (देखकर) पहले (जो) दयनीय दशा को प्राप्त हो जाता है (वही) कमल सूर्य के उदय होते ही क्षण भर उन्मना होकर (पुनः) विकसित हो जाता है ।

५५०—चतुर (मारवणी) के वचनों से ढोला मन में आनदित हुआ । मारवणी के सुरभित मुख पर (ढोला रूपी) भ्रमर आकर मँडराने लगा ।

५५१—कचुकी को दूर करके मारवणी (प्रियतम) के कंठ से लगी । मानो सूरज ने किरणों फैलाई और चकवी के मन में आनद हुआ ।

५५२—आशालुँव प्रेयसी ने गले से कचुकी को उतार दिया । (उसके कुचयुग इस प्रकार दिखाई दिए) मानो मानसरोवर में भूले हुए हस पड़े घूम रहे हैं (अथवा मानसरोवर को भूलकर हस यहाँ पड़े घूम रहे हैं) ।

पावधारीय (थ) । ज्यांसु मन की प्रीत (ज) जहसुं मनरी प्रीति (थ)=मो** चित्त । डेडर तौ (ज थ) । मो (घ) एक (ग) मॉहि (क. ख) =मह । हेक मै (क)=मै हुवै । वडियाँ थर्याँ (थ) वडीयाँ हुवै (ज)=खिण मै हुवै । वुट्ठै (थ) । सरि (ज) जीत (क. थ) ।

५४६—पहिलौ (क ग न) । होय (ज) हुवइ (क. ख ग) । अथमणे (घ) । ऊगतौ लोइ (ख) प्रगततै लोइ (क. ग)=आथमणुड जाइ । विवणो (थ न) । एह पटतर जोइ (क) एह पटंतर लोइ (ख) एह यततर लोइ (ग)=खिण • थाइ ।

५५०—आवत (ग)=आवि । भमेह (ग)=भणकेह । केवल (क. ख. ग घ. त) से ।

५५१—सेज रमंता (ग)=कंठ विलग्गी । मारवणी ढोलै मिली (थ) मारवणी ढोलो मिल्या (ज)=कंठ**मारवी । सब कपड (क. ख. त. थ. न) सब कपडा (ग)=कंचूवा । करि (ख. ग थ. ज) । मन (ख. ग) । भयौ (क. ख. ग) । पसारइ (थ) । जाणे किरण (ज)=किरण । जाणिक ऊगौ सूर (क. ख. ग. घ) ।

५५२—उतारिया (ज) । धन (ग) । कंचूअड (थ) । उजास (ग)=गळोह । घूम (ज) हँसला (ज) । भूलां (क. ख) । मान (क. थ) । सराह (थ. त) ।

मन मिळिया, तन गड्डिया, दोहग दूरि गयाह ।

। सज्जण पाणी खीर ज्यूँ खिल्लोखिल्ल थयाह ॥५५३॥

पंचाइण नई पाखरथर, मईगळ नइ मद कीध ।

। मोहण वेली मारुई, कंत पेम-रस पीध ॥५५४॥

ढोलर मारू एकठा करइ कतूहळ-केळि ।

जाँणे चंदन-रूखडइ विळगी नागर-वेळि ॥५५५॥

५५३—मन मिल गए, तन गड गए (परस्पर दृढ़ आलिंगित हो गए) और दुर्भाग्य दूर हो गए, प्रेमी दपति पानी और दूध की तरह मिलकर एक हो गए ।

५५४—मानो सिंह था और भदय पाकर छक गया, हाथी था और मद कर लिया । (इसी प्रकार) मारवणी मोहन वेलि तो थी ही फिर उसने प्रियतम के प्रेम का रस पी लिया (अब उसकी शोभा का क्या कहना !) ।

५५५—ढोला और मारवणी एकत्र कौतूहलक्रीड़ा करते है, मानों चंदन वृक्ष पर नागरवेलि लिपट गई हो ।

५५३—गडीया (ख. ग. ज. त) । थयांह (क. ग) थयाह (ख. त)=गयाह । साजड=(क. त) । बाण (त)=खीर । पाणोवाण (क. ग) पाणोवीण (ख) पाणो-खाण (झ) पाणोवाण (न)=पाणी खीर । महि (ख)=ज्युं । खिलीखीर (ख) खिले-खीर (ग) खालीखीर (घ) खील्लेखीर (झ)=पुलेखीर(न)=खिल्लोखिल्ल । थयांह (क) ।

५५४—एक सीह (त) केसर (न)=पंचाइण । अर (त घ.)=नइ । एक सीह अरु पाखर्यौ (क. ख) पाखरियो ने पंचमख (ड) इस केसर वळि पाखर्यौ (न)=पंचाइण नई पाखर्यउ । मंगळ (ज) । इक हस्ती (क. ख. ग)=मईगळ नइ । ने (ज) । पीध (ज) दीध (झ) अंध (थ) पीध (क ख)=कीध । वसि किद्ध (न)=मद कीध । आगै हुंती (ड)=मोहण वेली । मारवण (ड) मारवी (ग. थ न) । कतै (क ग. घ) । समरस (घ) सोहागिणि (थ) सुहागण (ज. ड)=पेमरस । किद्ध (ज. थ. न) कीध (ड) =पीध ।

५५५—कुतूहल (क) । केळ (क. ग घ त) । जाणै (क. ख) चांणै (ग) जाणै (घ) जांणै (ज) । रूखडउ (ग) रूखडे (त) रूखदौ (ग) । चढीसु (ख) चढीजु (ज) चढीज (त. ज) चढीजु (थ)=विलगी । वेळ (क. ग. घ. त) ।

लहरी सायर-संदियाँ, वृठ्ठ-संदुड वाव ।
 वीहृदियाँ साजण मिळड, वळि किडँ तादुड ताव ॥५५६॥
 हियमाँ करड ववामणाँ, मही त सीधा काज ।
 जे सुपनतर दीखता, नयणे मिळिया आज ॥५५७॥
 जिणतूँ सुपनें देखती, प्रगट भाग प्रिव आड ।
 डरती आँव न मूँदही, मत सुपनड हुय जाइ ॥५५८॥
 आजे रळी-ववामणाँ, आजे नवला नेह ।
 सर्वा, अम्हीणी गोठमई दूवे वृठा मेह ॥५५९॥

५५६—रुद्र की लहरियाँ हों, बरसे हुए की हवा हो और विहृडे हुए प्रियतम मिल जायें । फिर (हृदय को शीतल करनेवाले इन सुखों के सामने शरीर का) ताप कैसे ठहर सकता है ?

५५७—(मारवणी) हृदय में बधाइयाँ करनी है कि सर्वा कार्य सिद्ध हो गए । जो स्वप्न में दिखाई पड़ते थे वे आज आँखों के सामने (प्रत्यक्ष) आ मिले ।

५५८—जिनको स्वप्न में देखती थी वे प्रियतम आकर प्रकट हो गए । मैं डरती हुई आँव नहीं मूँदती कि कहीं स्वप्न (वह सब) न हो जाय ।

५५९—आज आनंद बधाइयाँ हो गयी है, आज नया नेह ला रहा है । हे खनि, हमारी गोटी में आज दूध का मेह बरसा है ।

५५६—वृठँ (ग) = वृठुड । मंदी (क. ग त) हंती (क) । वाह (त) । वीहृदियाँ (न व. व) । सज्ज (ग त) । किम (ग) क्युं (व) तदो (न) । ताह (ग) । वाँज जाटी वाव (क) = वळि... ताव । क्युं तदो = किड तादुड (त) ।

५५७—दीयडा (थ) दीयदो (न) । करे (थ ज) । ववामणाँ (थ. न) । ज (थ) = न । मरीयाँ मरळ्या काज (न) । सुपनतर (ज) । ते नयणे (ज) सो सज्ज (न) ते सज्ज (थ) = नयणे ।

५५८—केवल (ज) में ।

५५९—आज (क ग ग व त) । ववामणा (ख) वाधावणा (त) आज (क ग. ग व. त) । अर्माने (ग) । मे (त) = मई । अंगणै (क) = गोठमई ।

सजण मल्लया, मन उमग्यउ, अउगुण सहल गळलयाह ।
 सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळलयाह ॥५६०॥
 सेज रमंतौ मारुवी खलण मेल्हणी म जाह ।
 जौणल क वलकसी केतकी भमर वयडुउ आह ॥५६१॥
 जलम मधुकर नइ कमलणी, गगासागर वेळ ।
 लुवधा ढोलउ-मारुवी कॉम-कतूहल-केळ ॥५६२॥
 धरती जेहा भरखमा, नमणा जेही केळल ।
 मञ्जीठौ जलम रचणौ, दई, सु सज्जण मेळल ॥५६३॥

५६०—प्रलतम मलले, मन उमगयुक्त हुआ, सारे अरवगुण गल गए । जो (प्रेमरूपी वृद्ध) सूखा था, सो पल्लवलत हो गया और पल्लवलत होकर फल गया ।

५६१—सेज पर रमण करते हुए (प्रलतम द्वारा) मारवणी क्षण भर भी छोड़ी नहीं जाती । मानौं केतकी वलकसलत हुई और उस पर भमर आकर बैठ गया हो ।

५६२—मधुकर और कमललनी, तथा गगा नदी और सागरवेला की तरह प्रेमलुवध ढोला और मारवणी काम की कौतूहल क्रीडा कर रहे हैं ।

५६३—जो पृथ्वी की तरह सहनशील, कदली के समान नमनशील और मजलष की तरह गहरा रग लानेवाले हैं, वलधाता उन प्रेभलयौ को मलला ।

५६०—सजण (क) सज्जन (ख ग) । मलललया (क. ख. ग घ) । उमग्यो (क. ख. ग) । अगण (त) । सो (झ) से (त) पल्हया (ग) पल्हव्या (त) । पाल्हवल (त) सुफलयाह (ख) सुफळीयाह (क ग. त) ।

५६१—रमंतौ (क. घ) । मारुवी (त. ख) । मूकडी (घ) मेल्हवी (त) । जाणी (घ) जाण (त) । वयडौ (घ) बडुठ (त) आय (त. घ) ।

५६२—ने (त)=नइ । केतकी (ग)=कमलणी । वेळल (झ) । लवधा (घ त. क) लुवध (ग) । ढोला (क. ख) । मारुवी (घ. त) । तलण वलधल साल्ह कुमार रमइ (झ)=लुवधा...मारुवी । कुतूहळ (क) । केळल (ख) ।

५६३—भरखमी (त) । रमणी (झ त)=नमणी । जेहा (त) केळ (त. ग घ) । मञ्जीठा (ग) मंजीठा (त) । रचणा (ग. घ) रचणी (त) । साजण (क) सजण (त) सज्जन (ग. घ) मेल (ग. घ. त) ।

ल्यूँ सालूँ नग्वरौँ, ल्यूँ धरतीसूँ सेह ।
चंपक-वरण्ड बालहड चंदमुखीसूँ नेह ॥५६४॥

चंद्रायणा

वेऊँ चतुर मुजाँण पेम-रँग-रस पिया ।
वरगवा रूति वण वरख लौणि कु हरखिया ॥
भी सिणगार सँवारि क आई सेज परि ।
(परिहौँ) लौणे अपहर इंद्र क वैठा आप वरि ॥५६५॥
दोड मयसंत मुजाँण सेज दिसि बाहुड्ड ।
जाँण धरती-काज असपति आहुड्ड ॥
अहरे अहर लगाइ तने तन भेलिया ।
(परिहौँ) जाँण क गौवी-हाट जुवाने भेलिया ॥५६६॥

५६४—जिन प्रकार मंदकों का प्रेम सरोवरों से और मेघ का प्रेम पृथ्वी से होता है, उसी प्रकार चंपक वर्णवाले प्रियतम (ढोला कुमार) का चंद्रमुखी (माग्वगी) से प्रेम है ।

५६५—दोनों (वंपति) चतुर और मुजान हैं और प्रेमरग का रस पिए हुए है । मानो वर्षा ऋतु में बादल बरसकर हर्षित हुए हों ।

किन् (माग्वगी) शृंगार सजकर सेज पर (ढोला के पास) आई, मानो अप्सरा और इंद्र अपने घर पर बैठे हों ।

५६६—दोनों मदमत्त प्रेमी सेज श्री आर चले, मानों दो राजा धरती के लिये (युद्ध में) जुट रहे हों ।

अधर से अधर लगाकर शरीर से शरीर मिला दिया, मानों गधी की हाट पर युद्धों ने आवा किया हो ।

५६४—सालूँ नग्वर विना (न ग) गालूँ अरु सग्वरौँ (ल) = ल्यूँ • सग्वरौँ । अरु नग्वरौँ (क) । ल्युट (ग) । वरणौँ (क ग ग) वरणौँ (त) । बालहडौँ (न) । चंद-चदनी (त) चंद-मीषी (व) ।

५६५—प्रेम (न) । वग्वन (त) वग्वि (ग) । जाँण (त) । वरग्व कीया (त) वग्वीया (ग) = हरणिया । जाँणि ऊँवर हग्वीया (ग) । वरगवा रूति अति मंत नवदर (कँवर) मन हरपीया (क) । श्री (त) भा (व) = भी । समारि (त) मुजाँरि (ग) । पर (त व ग) । जिनके (ग) = जाँणे । इंद्र (ग) । वैठा (त) । पर (क त व) ।

५६६—दऊँ (ग) । महमत्त (त) महमान (ध) । दिसि (क ग त) । बाहुडे

दूहा

मारवणी इम वीनवइ, धनि आजूणी राति ।
 गाहा-गूढा-गीत-गुण कहि का नवली वाति ॥५६७॥
 गाहा-गीत-विनोद-रस सगुणों दीह लियति ।
 कइ निद्रा, कइ कळह करि, मूरिख दीह गमंति ॥५६८॥
 विरह वियापी रयण भरि, प्रीतम विणु तन खीण ।
 वीण अलापी देखि ससि, किस गुण मेलही वीण ॥५६९॥
 वीण अलापी देखि ससि रयणी नाद सलीण ।
 ससिहर मृगरथ मोहियठ, तिण हसि मेलही वीण ॥५७०॥

५६७—मारवणी यो विनय करती है कि आज की रात धन्य है । आज कोई गाथा या पहेली या गीत या गुणोक्ति या कोई नई कथा कहो ।

५६८—गुणवान् मनुष्यों के दिन गाथा, गीत और विनोद के रस में वीतते हैं और मूर्ख या तो नींद में या कलह में दिन बिताते हैं ।

५६९—ढोला प्रश्न करता है—

प्रियतम के वियोग में कृश शरीरवाली नायिका ने रात भर विरहव्यथा से व्याप्त होकर वीणा बजाई, फिर चंद्रमा को देखकर किस कारण उसे रख दिया ?

५७०—मारवणी उत्तर देती है—

विरहिणी को वीणा बजाते देखकर चंद्रमा रात्रि में उसके नाद में लीन हो गया और चंद्रमा के रथ के मृग मोहित हो गए । इसीलिये उसने हंसकर वीणा को रख दिया ।

(त) । जाण (ख. त) । धरंती (ग) । असपत (ग घ) असपति (त) । आहुडे (त) । अहरां (ग) लगाय (ग) । तनां (ग) । जुवाना (ख ग) जुवाना (त) । मेल्हियां (ग) ।

५६७—मारविणी (त) । अप (घ)=इम । वीनवे (त) । धन (क ख. ग. घ) । वात (त) ।

(ग) में दूसरे और चौथे चरणों का क्रम विपर्यय है ।

५६८—गूढ (ख)=गीत । गुणां (ख)=सगुणा । रमति (क) गमति (क. ग. त) । के (त) का (ग क)=कै । मूरख (त) इम बोलति (त)=दीह गमति ।

५६९—रेण (त) भर (त) । विण (ग घ) विन (त) आलापी (ग) । शशि (क. घ. त) शसि (ख) सिस (क) । वीणां (क) ।

५७०—शशि (क. त) । रेणी (त) । संलूण (त) । शांशहर (क त) ।

सुदरि चोरे संग्रही, सव लीया सिणगार ।
 नक-फूली लीधो नहीं, कहि सखि, कवण विचार ॥५७१॥
 अहररग रत्तड हुवइ, मुख काजळ मसि वन्न ।
 जॉण्यड गुंजाहळ अछइ, तेण न दूऊड मन्न ॥५७२॥
 परदेसों प्री आबियड, सोती अँण्या जेण ।
 धण कर कँवळों भालिया, हसि करि नॉख्या केण ॥५७३॥
 कर रत्ता सोती नुमळ, नयणे काजल-रेह ।
 धण भूली गुंजाहळे, हसिकरि नॉख्या तेह ॥५७४॥

५७१—ढोला—

सुदरी को चोरों ने पकड़ लिया और उसके सब शृगार (आभूषण) उतार लिए परंतु नकफूली नहीं ली । हे सखि, कहो किस विचार से ?

५७२—मारवणी—

नकफूली अघर के रग में लाल हो रही थी और उसका मुख काजल के कारण काले रग का हो रहा था । अतएव चोरों ने जाना कि गुंजाफल है और इसलिये उनका मन उसे लेने को नहीं हुआ ।

५७३—ढोला—

परदेश से प्रियतम आया जिसने मोती लाकर दिए । प्रेयसी ने उनको अपने करकमलों में ग्रहण किया और फिर हँसकर उनको किस कारण डाल दिया ?

५७४—मारवणी—

हाथ लाल (रग के) थे, मोती निर्मल थे और नयनों में काजल की रेखा थी । इन (हाथ और नयनों) का प्रतिविम्ब मोतियो पर पड़ने से

रथमृग (क ग त) । मोहीन्या । (त) । तिणि (क) । ससि (क) हस (त)= हसि । सूँकी (ग)=मेल्ही ।

५७१—सुंदर (त) । चोर (क) । सहि लीधा (ग) शृगार (त) वैसर (ग)=फूली । लीधो (त) । कविण (घ) कोण (त) ।

५७२—अहररग (त) । रता ख त) रातो (ग) । हुवौ (ग) । सुंख (त) । मिम (क) । वंन (त) वन (ग) । जॉण (ग त) । गूजाहळ (त) । तिन (ग) तेणि (घ) । अ (क)=न । डयोको (घ) । मन (ग) मंन (त) ।

५७३—कमले (ख ग) । भलीया (ग) । तेण (क ख ग, त)=केण ।

५७४—निरमळा (क) निमळ (त) । नेणे (त) । गूजा (त) । हसकर (त) । तेण (क ख ग व त) ।

गाहा

तरुणी पुणोवि गहियं परीयच्चय भितरेण पिड दिट्ठं ।
कारण कवण सयाणे दीपक्को धूणए सीसं ॥५७५॥

दूहा

वाल्लभ, दीपक पवन-भय अंचल-सरण पयट्ट ।
कर-हीणउ धूणइ कमळ, जाँण पयोहर दिट्ट ॥५७६॥

गाहा

वनिता-पति विदेस गय मंदिर-मक्के अद्धरयणीए ।
वाळा लिहइ भुयंगो, कहि सुंदरि, कवण चुज्जेण ॥५७७॥

प्रियतमा को उनके गुजाफलों का भ्रम हुआ और इसीलिये उसने हँसकर मोतियों को डाल दिया ।

५७५—ढोला—

प्रिय ने देखा कि फिर तरुणी द्वारा हाथ मे लिया हुआ दीपक अंचल के अंदर से सिर धुन रहा है । हे सजनी इसका क्या कारण है ?

५७६—मारवणी—

हे प्रिय, दीपक पवन के भय से अंचल की शरण में गया परतु अंचल के अंदर पयोधरो को देखा तो हाथ न होने के कारण वह सिर धुनने लगा ।

५७७—ढोला—

स्त्री का पति विदेश गया । अर्धरात्रि को महल में वह वाला साँप का चित्र लिखती है । हे सुंदरि, कहो किस चीज से ?

५७५—पणो (म) पुण्ये (क) । पणव (त)=पुणोवि । विगहियं (क) । परि अंतराय (क) परिच्छेयतेरीयं (घ) परिच्छेरीयं (त)=परी.. रेण । पीड (ख) प्रिय (ग. क. घ) प्रीय (त) । कमण (त)=कवण । अयांणो (क घ) सयाणो (त) । दीपको (घ. त) भूणिये (क) धूणे (त) ।

५७६—वाल्लभ (ग. त) । सरणि (क) । जाम (ख) ताम (त)=जाँण । पयोहरि (क) ।

५७७—तास प्रीय विदेस गयौ (क. घ. त) जाम प्रिय गयौ विदेसे (ग) । मंके (त) मक्केय (ग) मधि (घ) । अट्ट (ख) । अधि-सेरेणी (त) अधरयणाए (ग) अधि सै रयणीए (घ) । लिखै (ग) लिखौ (घ) लिख्यो (त) । भयंगो

दूहा

सा बाळा प्री चितवड, खिणखिण रयणि विहाइ ।
 तिण हर-हार परठुव्यड, व्यू दीवळड बुम्माइ ॥१७८॥
 बहु दिवसे प्री आवियड, समिया व्री सिणगार ।
 निजरि दिस्वाई आदिरस, किम सिणगार उतार ॥१७९॥
 इन्द्रो-वाहण-नासिका, तामु तणइ उणिहार ।
 तस भख हूवड प्राहुणउ, तिणि सिणगार उतार ॥१८०॥

१७८—मागवणी—

वह गला प्रिय का चिंतन करती हुई क्षण क्षण करके रात्रि को बिता रही है । उसने महादेव का हार (अर्थात् साँप) लिखा जिससे कि दीपक बुझ जाय (साँप पवन का भक्षण कर लेता है और पवन न होने से दीपक नहीं जल सकता) ।

१७९—दोला—

गहन दिनों से प्रियतम आया । नायिका ने शृंगार सजाए । फिर एक नजर ने शीशे को देखकर, कहो, किसलिये शृंगार उतार दिया ?

१८०—मागवणी—

पाहुना (अर्थात् प्रत्यागत प्रियतम) इद्र के वाहन (अर्थात् हाथी) की नासिका (अर्थात् नुँड) के समान आकृतिवाले (अर्थात् साँप) का भक्ष्य हो गया इसलिये उसने शृंगार उतार दिए ।

(त) भुयंगा (घ) । कमण (ग) कवल (त) । कज्जेण (क. त) चुजेण (घ) चज्जेण (ग) चुज्जेण (क) ।

१७८—प्रीठ (ग) । चीतवे (ग त) । रयण (क. ख. ग) रेण (घ त) । विहाय (ग त) । हरको=तिण हर (ग) । परठीयो (क ख. ग) परठीउज (घ) । ज्यो (न ग) वं=ज्यू (न) । दीपको (त) । बुम्माय (घ त) ।

१७९—वड (त) । पिउ (क. ग) सर्जीया (ग) । त्रिय (ग) । नजर (क ग. त) । मडिग (घ)=निजरि । आदिरस (ख. त) । शृंगार (त) । उतारि (ग. घ) ।

१८०—ग्रामत (घ त,=वाहण । नास (ख ग त) । तणा (क. त) । टणहार (ग) अनुहारि (घ. त) । हुवो ज=हूवड (क) तिण (ग) ।

नोट—(न ग घ त) में तीसरा और चौथा चरण इस प्रकार है—

हुई न होमी पुणि जुग मारु मरीखी नारि ।

ससनेही सज्जण मिल्या, रयण रही रस लाइ ।
चिहूँ पहुरे चटकउ कियउ, वैरणि गई बिहाइ ॥५८१॥

(श्रष्टयाम वर्णन)

[पहिलइ पोहरे रैणकै, दिवला अंबर डूल ।
धण कसतूरी हुइ रही, प्रिव चंपारौ फूल ॥५८२॥
दूजै पोहरे रयणकै मिळियत गुफागुध ।
धण पाळां, पिव पाखरयौ, विहूँ भला भड़ जुध्व ॥५८३॥
त्रीजै प्रहरै रैणकै मिळिया तेहा-तेह ।
धन नहिँ धरती हुइ रही, कत सुहावौ मेह ॥५८४॥
चौथे प्रहरै रैणकै कूकड़ मेल्ही राळि ।
धण संभाळै कंचुवौ, प्री मूँछौरा बालि ॥५८५॥
पँचमै प्रहरै दीहरै सायधण दियै बुहारि ।
रिमभिम रिमभिम हुइ रही, हुइ धण-त्री जौहारि ॥५८६॥

५८१—स्नेहवाले प्रेमी मिले । रात्रि आनदमय हो गई । चारों प्रहरों ने शीघ्रता की और वैरिन रात बीत गई ।

५८२—रात्रि के पहले प्रहर मे दीपक आकाश मे भूल रहे हैं । प्रिया कस्तूरी हो रही है और प्रियतम चपा का फूल (हो रहा है) ।

५८३—रात्रि के दूसरे प्रहर में टपति टट आलिंगन देकर मिल रहे हैं । प्रिया पैदल है और प्रियतम सवार है । दोनों युद्ध मे भले योद्धा है ।

५८४—रात्रि के तीसरे प्रहर में पति पत्नि खूब गहरे मिलकर एक हो गए हैं—प्रिया धरती हो रही है और कत सुहावना मेघ (हो रहा है) ।

५८५—रात्रि के चौथे प्रहर मे मुर्गे ने बाँग दी । प्रिया चोली को संभालती है और प्रियतम मूँछों के वालों को (संभालता है) ।

५८६—पाँचवे प्रहर दिन को वह प्रिया (छितराए हुए मोतियों को बटोरने के लिये) बुहारी दे रही है । (उसके पायल की) रिमभिम रिमभिम ध्वनि ही रही है और प्यारी एव प्यारे का जुहार हो रहा है ।

५८१—सज्जण (ख त) सजन (ग) । चहु (ग) चुं (झ) च्योंह (त) ।
पहरे (ग त) । हूअौ (ग त)=कियउ ।

५८२-५८०—केवल (ज) मे ।

छट्टे प्रहरँ दिवसकै हुई ज जीमणवार ।
 मन चावल, तन लापसी, नैण ज धीकी धार ॥५८७॥
 सत्तम प्रहरँ दिवसकै धण जु वाडियाँ जाइ ।
 आणै दाख-विजोरियाँ, धण छोलइ, प्रिड खाइ ॥५८८॥
 आठम प्रहर सक्का समै धण ठवै सिणगार ।
 पान कजळ पाखर करै, फूलकौ गळि हार ॥५८९॥
 प्रहरै-प्रहर ज ऊतरयुँ, दिवला साख भरेह ।
 धण जीती, प्रिव हारियठ, वेल्हा मिलण करेह ॥५९०॥

(ढोला मारवणी की क्रीडा)

म्हँ ने ढोलो मूँबिया लूँगे लक्कडियेह ।
 म्हाँने प्रिड्जी मारिया चंपारै कलियेह ॥५९१॥
 म्हँने ढोलो मूँबिया, म्हाँनूँ आवी रीस ।
 चांवा करै कूँपळै ढोळी साहिब सीस ॥५९२॥

५८७—छठे प्रहर दिन में ज्यौनार हुई जिसमे मन चावल, तन लपसी एव नेत्र धी की धारा है ।

५८८—सातवें प्रहर दिन में प्रिया वाटिका को जाती है और दाख एवं विजोरे लाती है । प्रिया छीलती है और प्रियतम खाता है ।

५८९—आठवें प्रहर सध्या समय प्रिया शृंगार सजाती है और पान खाकर एव कालल लगाकर उसको तीक्ष्ण (विशेष मनोमोहक) करती है तथा गले में पुष्पों का हार धारण करती है ।

५९०—जो प्रहर पर प्रहर बीता उसमें प्रिया जीती और प्यारा हारा । हे दीपक, तू इसकी साख भरना और उनके मिलन की वेला करना ।

५९१—मारवणी सखियों से कहती है—ढोला कुमार मुझे लवंग की छडी लेकर भूम गया । प्रियतम ने मुझे चपा की कलियों से मारा ।

५९२—ढोला मुझे भूम गया । मुझे रोष आया और मैंने चोवा (अरगजा) का पात्र स्वामी के सिर पर उँडेल दिया ।

राति दिवसि रंगई रमइ, विलसइ नवरस भोग ।
जोड़ी सारीखी जुड़ी केसव-तणइ सँजोग ॥५६३॥

(ढोला का नरवर को लौटना)

पनरह दिन लग सासरइ रहियउ साल्हकुमार ।
पूगळ भगतौ नव-नवी कीधी हरख अपार ॥५६४॥
सोवँन-जडित सिंगार बहु मारवणी मुकलाइ ।
गय, हँवर, दासी बहुत दीन्हीं पिंगळ-राइ ॥५६५॥
साथे दीन्ही छोकरी दीन्हो पिंगळ-राव ।
ढोलउ नरवरनूँ खडइ, आणँद अधिक उछाव ॥५६६॥

५६३—इस प्रकार दपति रात दिन प्रेम क्रीड़ा करते हैं और नव रसों का विलास भोग करते हैं । भगवान् केशव की कृपा से उनकी अनुरूप जोड़ी जुड़ी ।

५६४—साल्हकुमार पद्रह दिनो तक ससुराल मे रहा । पूगळ (निवासियों) ने अपार हर्ष के साथ (प्रतिदिन) नई नई खातिर की ।

५६५—मारवणी का गौना करके राजा पिंगल ने बहुत से सुवर्णजटित शृंगार, अच्छे अच्छे हाथी, घोडे और बहुत सी दासियाँ दीं ।

५६६—साथ में राजा पिंगल ने सहेली (खास दासी) दी । अब ढोला अत्यंत आनद और उत्साह के साथ नरवर की ओर प्रस्थान करता है ।

५६३—दिवस (क. ख. ग. घ. त) । रंगमां (क्क) । रमँ (क.ख.ग.घ) । विलवे (थ) । नव नव (थ)=नवरस । जुडइ (थ) । साहिव (थ)=केसव । तणो (क्क) । संयोगि (थ) ।

५६४—राज (क. ग. त)=साल्ह । पिंगळ (ग) = पूगळ । अधक (ग. घ त) = हरख ।

नोट—(न) में इस दोहे का पाठ इस प्रकार है—

पुंगळ ढोलो प्रांहुणो रहियो सासरवाडि ।

पनर दिहाडा पदमणी माणी मनहरु हाडि ॥

५६५—जटित (ख. त) । दे (ख) = बहु । मारवणी (ख ग त) । हय (क.ग.क्क) । हय गय (क्क) = गय हँ । दीन्हा (ग) । राउ (ख) राय (ग त) ।

५६६—राइ (ख क) । नँ (ग) । हिव ढोलौ (क) = ढोलउ । उछाह (क. ख ग त) ।

निमि भरि सुंदरी वल्लभ कठ विलसिग ।

माह्यो वेली माकड़े पीयो नाम मुखिया ॥६०१॥

पह फूटी, विंसि पुवरी, दूगद्विषया हय-यहू ।

दीलइ यण ठोळियव, सीवळ सुंदर-वहू ॥६०२॥

सीवळ

आवकि पडठी आळि, सुंदरि कड न सळसळइ ।

बालइ नही न बाळ, यण धर्यणी जाइवव ॥६०३॥

[आवकि पडठी आळि, सुंदरि दीठी सास विण्य ।]

निमि उठोला विच बाळ, निव जाई माक नही ॥६०४॥

६०१—रात्रि भर सुंदरी प्रियतम के कठ से लगकर सोती रही । तयो

माहनलला मारवी को पीयो सप ने पी लिया ।

६०२—पी फटी, दिखार पीली हुई और बोझों के समूह दिनदिनाए ।

दीर्घ ने प्रिय को टटोला तो सुंदरी को सीर सीतल था ।

६०३—दीर्घ के हृदय में सहसा बजला उठी कि सुंदरी क्यों नही हिलती

हिलती । जब सुंदरी नही बोली तो पति ने उसको खूब हिला डुलाकर देखा ।

६०४—सुंदरी को सास विना देखा तो हृदय में सहसा बजला उठ खड़ी

हुई (गीट—वृद्धे का उत्तरार्ध अक्षर है ।)

६०१—विंस (क ग ज) । मारवी (ग व) माकवी (ज) = सुंदरी । वला

माहइ यण (क ख ग घ) = बालूय... विलसिग । मुखिया (क ख ग घ) । पीयो

सुवह भयग (व) । सासवळू सीरग गण पीयो इण पीयो (ज) सासवळू

सीरगि गण पीयो पीयो पयानि (घ) ।

गीट—(ज) और (घ) में यह वृद्धे सारठ के रूप में है ।

६०२—उठी (ख व) फूटी (क घ) । मारवी भयो (क ख ग घ व) =

विंसि पुवरी । विंस (ज) । पुवरी (घ) । कलद्विषया (घ व) । उठोळिया (ग)

= उठोळिया (क) । यण उठोळी उठोळू (ज व) । सास न (क ख ग घ व) =

सीवळ । सुंदरि (ग घ व) ।

६०३—आवकि (घ) । पडठी (घ) । आळ (घ) । साड (घ) = कड । वॉ

बोहै नही (ज) = दीठी सास विण्य । धर्यणी (घ) । जीविया (घ) ।

६०४—कवळ (ज) म ।

मारु त्रिहुँ वरसे वड़ी, चंपारइ उणहार ।
 सा कुमरी परणाविभ्यो, चालउ, राजकुमार ॥६१३॥
 इण भवि मारु काँमिणी, अन-पाणी इण सथ ।
 पूगळनँ ससु को वळउ, न करउ म्हाँकी कथ ॥६१४॥
 टालउ किम परचड नहाँ, सहु रहिया समभाइ ।
 के पुळिया पूगळ-दिसी, के काँही कजि काइ ॥६१५॥
 (योगी द्वाग मारवणी का पुनर्जावित होना)
 इक जोगी आणद-मई आव्यउ तिराहिज घाट ।
 जोगं श्रीपति भेजिया भोजण साल्ह - उचाट ॥६१६॥

६१०—साथ के लोग न्हते ह—

मारवणी ने तीन वरस वड़ी और चपा के समान रूपवाली जो राजकुमारी
 के वह आपनो व्याहेगे, हे राजकुमार, यहाँ से चलो ।

६११—ढोला ने उत्तर दिया इस जन्म में मारवणी ही मेरी स्त्री है ।
 मेरा कुछ बल इसी के साथ है । सब कोई पूगळ को लौट जाओ, मेरी बात
 मत करो ।

६१५—ढोला किसी प्रकार नहीं समझता । सब लोग समझाकर रह
 गए । फिर कुछ तो पगल की ओर चले गए और कुछ किसी काम में कहीं
 चले गए ।

६१६—एक योगी अपने आनंद में उसी रास्ते पर आ निकला मानो
 आत्हतुमान की व्यथा को दूर करने के लिये भगवान् ने भेजा हो ।

६१३—हु तिहु (क ग)=त्रिहु । ता त्रि वरम (त)=त्रिहुँ वरसे । अणुहारि
 (ग) । कुमारी (क) कुमार (ग) ।

यह बोझ (न) में इस प्रकार है—

पिंगल गय कहावियउ ढोला पाछे आव ।

मारु लहुनी बहिननी तोंहि-भरणी परणाव ॥

६१४—अ (ग त) । कामिनी (क ग) कामनी (ग) । अण (ग) =
 गन । उण (ग) अण (क, ग त)=इण । मायी (क) माय (ख, ग) ।
 म्हाँकी (व) । कथ (ग) काथ (ग) ।

६१५—मो तों (व) मो तउँ (त)=ढोलो । कहीं (ग)=किम । महु (ग)
 सहु (क) । परचाट (ग)=समभाट । वळिय (ग)=पुळिया । दिसा (क) । को
 (ग)=के । क्यादी (क) । कजि (क, ग व) विम (क)=कजि ।

६१६—पू (क व) । जोगी (क)=जोगी । आनंद (ग) । आयो (ग) आजा

साथइ सुंदरि जोगिणी, मारवणीसूँ प्यार ।
 तिण जोगी ओळखिखया ढोलउ मारु नार ॥६१७॥
 नर नारीसूँ क्यूँ जळइ, नरसूँ नारि जळत ।
 साल्हकुँवर, जोगी कहइ, अहलउ केम मरत ॥६१८॥
 जोगी सुणि, ढोलउ कहइ, तोनूँ केही तात ।
 थे पंथी, हुओ पंथ सिर, म करि पराई बात ॥६१९॥
 जोगिण जोगीसूँ कहइ, सँभळि नाथ समथ ।
 का जीवाडउ मारुवी, हूँ पिण इणहिज सथ ॥६२०॥

६१७—उसके साथ मे एक सुदरी जोगिन थी जिसका मारवणी से प्रेम था । उस जोगी ने नारी मारवणी और ढोला को पहचान लिया ।

६१८—वह जोगी ढोला को देखकर कहने लगा—नर के साथ नारी जलती है, पर नर नारी के साथ क्यों जले ? जोगी कहता है कि हे साल्हकुमार व्यर्थ ही क्यों मरता है ?

६१९—ढोला कहता है कि हे जोगी सुनो, तुम्हे क्या चिंता है ? तुम पथिक हो, अपना रास्ता पकड़ो, पराई बात मत करो ।

६२०—(तत्र) जोगिन जोगी से कहती है कि हे समर्थ स्वामी, सुनो, या तो मारवणी को जिला दो, नहीं तो मैं भी इसी के साथ (जल मरती) हूँ ।

(क) आन्या (क) । उणहिज वार (ग)=तिणहि ज वाट । चिंता भाजण (क)=भाजण साल्ह ।

६१७—साथे (ख. ग) । जोगणी (ग) । री यारि (क. ख. त)=सूँ प्यार । प्यार (ख)=नार ।

६१८—क्यूँ (ख) । बळै (घ) । अहिलौ (ग) इहलौ (त) । कोँइ (ग) = केम ।

६१९—तूँ काहे कमळात (त)=तोनूँ केही तात । चंपैथी (ग)=थे पंथी । हुओ (क ख ग. घ) ह्यो (त) । न (क ख घ. त)=म । करौ (क ग. त) । म्हाँकी (ग) म्हाँरी (त)=पराई । तात (घ त)=वात ।

६२०—नूँ (घ)=सूँ । समाथ (ग त) । जीवारौ (ग) । मारवणी (घ) । का हूँ इण साथ (ग) । इणही (क)=इण हिज ।

जोगिण जोगी परचव्यउ वयणों अथिक अपार ।
 पाँणी मत्रे पाड्यउ, हुई सचेती नार ॥६२१॥
 हुई सचेती मारवी, ढोलइ मनि आगुंद् ।
 जाणि अवारि रगमई प्रगट्यउ पूनिम चद् ॥६२२॥
 ढोलइ मारु आपणा सब सिणगार उतार ।
 जोगिण जोगीनूँ दिचा तिण वेळा तिण वार ॥६२३॥

(ढोला की पुनः नरवर यात्रा)

ढोलइ मनह विमासियउ, एक करीजइ एम ।
 करइ चढि आपाँ खहाँ, नरवर पहुँचाँ जेम ॥६२४॥
 के मेल्ला पूगल दिसइ, किहीं भळ्याया भार ।
 म ल्हकुँवर करइ चढ्यउ, वाँसइ चाढी नार ॥६२५॥

६२१—जोगिन ने जोगी को अनेक प्रकार की बातों से समझाया । तब जोगी ने जन मन्त्रित करके पिलाया जिससे मारवणी सचेत हुई ।

६२२—मारवणी सचेत हुई और ढोला के मन में आनंद हुआ, मानो अविनाशी रात्रि में प्रणिमा का चद्रमा निकल आया ।

६२३—ढोला और मारवणी ने अपने नारे शृंगार उतारकर उसी समय जोगी और जोगिन को दे दिए ।

६२४—जि ढोला ने मन में सोचा कि एक ऐसी विधि करनी चाहिए कि हम लोग ऊँट पर चढ़कर चलें जिससे शीघ्र नरवर पहुँच जायें ।

६२५—(जि उम्ने) कुछ लोगों को पूगल की ओर भेज दिया और कुछ से नाथ या नामान सम्भदा दिया । जि ढोला ऊँट पर चढ़ा और नारी मारवणी से पास भ चढ़ा गया ।

६२१—जोगिन (ग) । वरि अरुवास (ग)=वयणों अधिक । करहो (व) । मत्रे (त्र ग) । मत्रा (ग) । नरि (त्र. न. ग) ।

६२२—मन (न. ग. व) । उदाह (ग)=आगुंद् । नाह (ग)=चढ ।

६२३—आग (ग) । मनि (न) । उतारि (त्र. न) । जोगीनोनिमनूँ (क) ।

६२४—म / (त्र. ग) । सिचरियउ (ग) । प्रेम (क. न)=एम । आगे (त्र) = मारु । पाणा (त्र. ग) ।

६२५—वेळा (ग) । तिण (त्र) । दिचा (ग) । वहाँ (ग) । वाँसे (त्र) = वाँस । चढ्यउ (त्र) = चढ्यउ ।

ढोलामारूरा दूहा

(ऊमर सूमरे की कथा)

हेरा गया ऊँमर - कन्हइ, कहिजइ एही बात ।
ढोलउ मारू एकला, लहसि न एही घात ॥६२६॥

(ऊमर का पीछा करना)

एही भली न, करहला; कळहळिया कइकाँण ।
का, प्री, रागौ प्रॉण करि, काँइ अचंती हाँण ॥६२७॥
किउँ, ठाकुर, अळगा वहउ, आवउ, अमल कराँह ।
म्हे पिण जास्यौ नरवरइ, एकण साथ खडाँह ॥६२८॥
ऊँमर साल्ह उतारियउ, मन खोटइ मनुहारि ।
पगसूँ ही पग कूँटियउ, मुहरी भाली नारि ॥६२९॥

६२६—(इधर ऊमर सूमरे के) दूत ऊमर सूमरे के पास गए और यह बात कहने लगे कि अब ढोला और मारवणी अकेले हैं, ऐसी घात फिर नहीं मिलेगी ।

६२७—पीछे आते हुए ऊमर सूमरे के घोड़ों की टापों का शब्द सुनकर मारवणी कहती है—

अरे ऊँट, यह तो ठीक नहीं, घोड़ों का शब्द हो रहा है । (फिर ढोला से कहती है कि) हे प्रिय, या तो इनको अपने प्राणों का मोह है (ये प्राणों के भय से भाग रहे हैं) या हमको कोई अचिंत्य हानि होनेवाली है ।

६२८—ऊमर ढोला के पास पहुँच गया तो कुछ दूर से बोला—

हे ठाकुर ! यों अलग क्यों चल रहे हो, आश्रो, विश्राम एव जलपान आदि कर लें । हम भी नरवर जायेंगे, (सभी) एकही साथ चलें ।

६२९—ऊमर सूमरे ने साल्हकुमार को खोटे मन से, आग्रह करके, उतार

६२६—गया (क ख ग घ) । ऊँवर (झ) । कहीज (ख ग) । ये ही (ग) । एकठा (ख) । लहिरिण (ग) हिण (क ख) इसडी (ग ज) ।

६२७—इह (ख ग थ) एक (झ) । कहकहिये (क ख) । थल मथे भेकाणि(थ)=कळहळिया कइकाँण । कै (ख ग) केइ (थ) । प्रिउ (थ) रागे (थ झ) । अवेही (क ग) अचींती (थ) । हाणि (ख थ झ) हानि (क) ।

६२८—किम (ग) । कमल (ख)=अमल । म्हेई (ग)=म्हे पिण । नरवरोँ (ख) । नळवा जाइस्यौ (ग) नरवा जाइस्यौ (झ) । खड्ग वाधि खडाह (क ख ग) ।

६२९—मनुहार (ख त) । पगौ (क ख ग)=पगसूँ ही । कूँटियइ (झ) । मुहरी (ख) । भाले (त घ) ।

पीहर संदी डूमणी ऊँमर हंइइ सथथ ।
 मारवणीनूँ तंतमई कहि समझावइ कथथ ॥६३०॥
 तंत तराकड, पिड पियइ, करहउ ऊगालेह ।
 भल वरलावो दीहड़ा, दई वळावण देह ॥६३१॥
 थळ मथथइ ऊजासडउ, थे इण केहइ रंग ।
 धगा लीजइ प्री मारिजइ, छौंड़ि विडौणउ संग ॥६३२॥

लिया । ढोला ने उतरकर ऊँट का पैर बाँध दिया और मारवणी ने ऊँट की मुट्ठी (वाग) पकड़ ली (और ढोला ऊमर के पास चला गया) ।

६३०—मारवणी के पीहर की एक ढोलिन ऊमर के साथ में थी (उसे यह घात मालूम थी) । वह मारवणी को सब बात बाजे में बजाकर समझाती है ।

६३१—तंत्री (बाजा) भनभन करके बज रही है, पति ऊमर के साथ मय पी रहा है और ऊँट जुगाली कर रहा है । इस प्रकार दिन भले ही बिनागो, यत्रि विधाता विनाने दे ।

६३२—इस थली पर यह उजाड़ जगह है, तुम इस कौन से रंग में हो (तुम्हारा यह क्या रंग है) ? अभी तूनी छीन ली जाती है और पति मारा जाता है । परावा माय छोड़ दो ।

६३०—दूही (ज क थ) । डुंघणी (ज) । घालै नघली वत्त (ज) पाले नघणी वत्त (थ) —ऊमर हइइ सथथ । सडे (त) = हइइ । सथ (ग) । नै (ग) । मारु टोरो उगरे (च ज य) = मारवणीनूँ तंतमई । समझावइ (झ) समझावी (थ) समझावा (ज) समझावे (त) समझाया (च) । वत्त (थ. ज) वत (च) कथ (ग त) ॥

६३१—तनी (च थ) । तराकै (क र. ज) तनके (ग) सुणकै (च) सुणरक (ठ) । प्रीउ (न च) पीउ (न) प्रीय (ग) प्रीव (ज) प्रिय (थ) । पीवे (क न) पिंवे (ग) पीये (च ज) । उगालेह (ग) ऊगालेहि (च ज) उगालेहि (थ) । भला (क. ग य) भले (ग) । वडळावत (च) वडळावता (थ) । दीहड़ा मलां वडळावता (थ) । जड वड (न) देव (च) = डई । गुलावाण (च) । देहि (च) दे (थ) । मित घाजूनी टालेह (न) = उई बलावण देह ।

६३२—मोँ (च ज थ) । उजासडउ (च ज) रोही मके (क र ग घ ष) । काही वड तुमग (च) अही संग तुमग (ज) काँई काँ तुमग (थ) = ये इण रंग । लीजे (थ) । प्रीय (क) पीउ (ग) प्रीव (ज) प्रिय (थ) । मारजे (न) । छौंड़ (न च ज. त) ।

मारवणी, तूँ अति चतुर, हीयइ चेत, गिंमार ।
जउ कंतासूँ कामडउ, करहउ कौवे मार ॥६३३॥
मारू मन चिंता धरइ, करहइ कंब लगाइ ।
करहउ उठ्यउ उतौमळउ, साल्ह अचंभे थाइ ॥६३४॥
ऊंमर ढोलइनुँ कहइ, करह अणावाँ तोहि ।
करहउ केण न भालियउ, हूँ आणेसूँ मोहि ॥६३५॥
ढोलइ करहउ भालियउ, मारू आई सथ ।
प्रिउ, ए ऊंमर सूंमरउ, करिस्यइ थौं भारथ ॥६३६॥

६३३—हे मारवणी, तू बड़ी चतुर है, अरी गँवार, जरा हृदय में चेत ।
यदि कत से काम है तो ऊँट को छड़ी से मार ।

६३४—मारू मन में चिंता करती है और ऊँट को छड़ी से मारती है ! ऊँट हड़बड़ाकर उठा । उसको यों उठता देखकर ढोला को आश्चर्य होता है ।

६३५—ऊमर ढोला से कहता है—

अभी तुझे ऊँट मँगा देते हैं । इस पर ढोला उत्तर देता है कि मेरे ऊँट को (अभी तक) मेरे सिवाय किसी ने नहीं पकड़ा है (इस कारण उसे दूसरा कोई नहीं पकड़ सकेगा), इसलिये मैं स्वयं जाकर लाऊँगा ।

६३६—ढोला ने ऊँट को पकड़ लिया, इसी समय मारवणी भी साथ-साथ चली आई और कहने लगी—हे प्रिय, यह तो ऊमर सूमरा है और आपसे लडाई करेगा ।

६३३—मणहरणि (च) मनिहरणि (ज) मनहरणि (थ)=अति चतुर ।
नाद न भुल्लै मारवी (न)=मारवणी तूँ अति चतुर । हीयै तु छै गिंमार (क)
मनमा एम विचार (ख. ग) हिव तुं वूफि गमारि (च) राभळि नीकी नारि
(ज) हीयै तूँही गिमार (त) हिव तूँ मूधि गमारि (थ) गहिली मुद्ध गिवार
(न) । जे (क. ख) जो (ग. ज) तउ (च) । प्रीतम (क. ख ग. घ)=कंता ।
सू (च) । काम छै (क. ख. ग. घ.) कम्मडो (ज) । कांवा (च) कवे (ज) ।
मारि (च. ज. घ थ) ।

६३४—लगाय (ग) । ऊठी (ख) ऊठौ (ग) । उतात्रलो (ग) । अहचो
(क. ग) अचभौ (ख) । धाइ (ग घ) ।

६३५—अणावौ (क) बंधावु (ग) वीजै कही न भलजै करह वेसागौ
मोहि [(ग) मे द्वितीय पक्ति] ।

६३६—साथ (क ख ग) । डाखी कथ (क)=आई सथ । अहो प्रीय ए
ऊमरो (क) था करिसी (ग) । भाराथ (क. ख ग) ।

पीहर मंद्दी डूमणी ऊँमर हंद्द सथ्थ ।
 मारवणीन् तंतमडँ कहि समम्मावड कथ्थ ॥६३०॥
 तंत तण्णकड, पिड पियड, करहउ उगालेह ।
 भल वडलावो दीहडा, दहे वड्ळावण देह ॥६३१॥
 थळ मय्थइ उजासड्ठ, थे इण देहइ रंग ।
 धरा लीजइ प्री मारिजइ, छौँडि विडोणउ संग ॥६३२॥

लिया । दोला ने उत्तरकर ऊँट का पैर बाँध दिया और मारवणी ने ऊँट की सुहरी (बान) पकड़ ली (और दोला ऊमर के पास चला गया) ।

६३० - मारवणी के पीहर की एक दोलिन ऊमर के साथ में थी (उसे यह बात मालूम थी) । वह मारवणी को सब बात बाजे में बजाकर समझाना है ।

६३१—तंत्रा (बान) क्लमकन करके बच रही है, पति ऊमर के साथ मय्थ पी रहा है और ऊँट चुगाली कर रहा है । इस प्रकार दिन भले ही बिताओ, यदि बिघाना चिन्ताने दे ।

६३२—इस थली पर यह उजाड जगह है, तुम इस कौन से रंग में हो (तुम्हारा यह क्या रंग है) ? अभी न्नी छीन ली जाती है और पति मारा जाता है । पगया माय छोड़ दो ।

६३०—दुर्वा (ज क थ) । दुवणी (ज) । वालें नवली वत्त (ज) पाले नवली वत्त (थ) —ऊमर हंद्द मय्थ । मंटे (त) = हंद्द । सय (ग) । नें (ग) । मारु दोदो उगण (च ज थ) = मारवणीन् तंतमडँ । समम्मावड (क) समम्मावी (थ) समम्मावा (ज) समम्मावे (त) समम्माया (च) । वत्त (थ ज) वत्त (च) कथ (ग त) ॥

६३१—ठनी (च थ) । नण्णक (क ग ज) वत्तके (ग) सुण्णके (च) सुण्णके (त) । पीड (च) पीड (ग) पीड (ग) पीड (ज) प्रिय (थ) । पीवे (क ग) पीवे (ग) पीवे (च ज) । उगालेह (ग) उगालेहि (च ज) उगालेहि (थ) । भला (क ग थ) भले (ग) । वड्ळावत्त (च) वड्ळावत्ता (थ) । दीहडा मत्ता वड्ळावत्ता (थ) जड वड (न) देव (च) = देह । दुलावण (च) । देहि (च) देह (थ) । पिड थ्रावणीं थानेह (न) = देह वलावण देह ।

६३२—मय्थ (च ज थ) । उजासड्ठ (च ज) रोदी सके (क ग. ग. घ. व) । काठी कड उगण (च) यही मग कुमग (ज) कोठे काठे कुमग (थ) = ये टग .. रग । लीजे (थ) । पीय (क) पीड (ग) पीव (ज) प्रिय (थ) । मारजे (न) । छौँट (ग च ज त) ।

डलरवणी, तूँ अतल ऒतुर, हीडड ऒेत, गलडडलर ।
 ऒड कतलसूँ कलडडड, करहड कलँवे डलर ॥६३३॥
 डलरू डन ऒलतल धरड, करहड कंढ लगलड ।
 करहड उठडड उतलँडडड, सलरूड अऒंडे थलड ॥६३ॡ॥
 ऊँडर डलँलडनुँ कहड, करह अणलवलूँ तलहल ।
 करहड केण न डलललडड, हूँ अणलसूँ डलहल ॥६३ॡ॥
 डलँलड करहड डलललडड, डलरू अरूँ सथथ ।
 डुरलड, ए ऊँडर सूँडरड, करलसुडड थलँ डलरथथ ॥६३६॥

६३३—हे डलरवणी, तू वरूँ ऒतुर हे, अरूी गँवलर, ऒरल हृदड डे ऒेत ।
 डदल कत डे कलड हे तलँ ऊँड कलँ लूँडी से डलर ।

६३ॡ—डलरू डन डे ऒलतल करतल हे अरूीर ऊँड कलँ लूँडी से डलरतल
 हे ! ऊँड हडडडडलकर उठल । उसकु डलँ उठतल देलकर डलल कलँ अरलशुवडरू
 हलतल हे ।

६३ॡ—ऊँडर डलल से कहतल हे—

अडल तुडे ऊँड डँगल देते हेँ । इस डर डलल उतुतर देतल हे कलँ डेरे ऊँड
 कलँ (अडल तक) डेरे डलवलड कलँसल ने नहलँ डकडल हे (इस करलण उसे दूसरल
 कलँड नहलँ डकड सकेगल), इसललडे डेँ सुवड ऒलकर ललऊँगल ।

६३६—डलल ने ऊँड कलँ डकड ललडल, इसल डडड डलरवणी डलँ सलथ-
 सलथ ऒलल अरूँ अरूीर कहने लगी—हे डुरलड, डह तलँ ऊँडर सूँडरल हे अरूीर
 अरलडे लडलई करेगल ।

६३३—डणहरणल (ऒ) डनलहरणल (ऒ) डनहरणल (थ)=अतल ऒतुर ।
 नलड न डुल्ललँ डलरवल (न)=डलरवणी तूँ अतल ऒतुर । हीडलँ तुँ छेँ गलडडलर (क)
 डनडल एड वलऒलर (ख. ग) हलव तुँ वूँकल गडलरल (ऒ) सलँडकल नलकी नलरल
 (ऒ) हीडलँ तूँही गलडडलर (त) हलव तूँ सूँधल गडलरल (थ) गलहललल सुदुध गलवलर
 (न) । ऒे (क. ख) ऒलँ (ग. ऒ) तड (ऒ) । डुरलतड (क. ख ग. घ)=कंतल ।
 सूँ (ऒ) । कलड छेँ (क. ख. ग. घ.) कडडडलँ (ऒ) । कलँवल (ऒ) कवे (ऒ) ।
 डलरल (ऒ. ऒ. घ. थ) ।

६३ॡ—लगलड (ग) । ऊँठी (ख) ऊँठी (ग) । उतलवलल (ग) । अरूडलँ
 (क ग) अऒडलँ (ख) । धलड (ग घ) ।

६३ॡ—अणलवलूँ (क) वंधलवुँ (ग) वलँऒे कही न डललऒे करह वेसलसूँ
 डलहल [(ग) डे दुवलतलड डकल] ।

६३६—सलथ (क ख ग) । दलखल कथ (क)=अरूँ सथथ । अहलँ डुरलड ए
 ऊँडरल (क) थलँ करलसल (ग) । डलरलथ (क. ख ग) ।

ढोलइ मनह विमासियउ, सॉच कहइ छइ एह ।
 करह भैकि दोनूँ चळ्या, ऊँट न संभाळेह ॥६३७॥
 [प्रिउ ढालउ, त्री मारुई, करहउ कूँ कूँ व्रन्न ।
 ऊमर दीठा एकठा, वड़ा ज तीन रतन्न ॥६३८॥]
 ऊमर दीठी मारुई, डौँभू जेही लंकि ।
 जौणे हर सिरि फूलड़ा, डाके चढी डहकि ॥६३९॥
 ऊमर ऊतावळि करइ पल्लाणियाँ पवग ।
 खुरसाणी सूघा खयंग चढिया दळ चतुरंग ॥६४०॥

६३७—ढोला ने मन मे सोचा कि यह सच कहती है । तब ऊँट को विठाकर दोनों चढ गए परतु ऊँट के पैर के बधन की ओर ध्यान नहीं दिया ।

६३८—पति ढोला, त्री मारवणी और कुकुम वर्णवाला ऊँट—इन तीन बडे रत्नों को ऊमर ने एक ही साथ जाते देखा ।

६३९—ऊमर ने बर्र जैसी (पतली) कमरवाली मारवणी को देखा । वह ऊँट पर चढी डहडहा रही थी मानों महादेवजी के सिर पर फूल डहडहा रहे हों ।

६४०—ऊमर ने जल्दी करके घोड़ों पर जीन कसे । सीधी खुरासानी तलवारों को लेकर चतुरगिनी फौज बढी ।

६३७—मन (ग) । कह्यो (क ख ग घ) । भैक (ख. ग) । दूने (घ. त) दूनु (क) विन्है (ग) ।

६३८—मारु हउं देसमें दीठा तीन रतन्न ।

इक टोलो इक मारवी करहो कूँकूँ व्रन्न ॥ (न)

नोट—केवल (उ) और (न) में ।

६३९—डिभू (च ज) । जेहे (ज) जेही (च) । लकि (ख) । सिर (च ज) । चढी (थ) । डहुकि (थ) ।

६४०—ऊमरि (घ) । अति ऊतावलि (थ)=ऊतावळि । पाथर्या (ज) सही (य)=खयंग । चढियो (ज) ।

ऊँमर दीठा जावता, हळहळ करइ करूर ।
 पराकी ओखभिया, जइसइ केती दूर ॥६४१॥
 मारू सवणे संभळी, वळि दीठी नयणेह ।
 ऊँमर खडइ उताँमळा लागउ अधिकउ नेह ॥६४२॥
 ऊँमर विच छेती घणी घाते गयउ जिहाज ।
 चारण ढोलइ साँमुहउ आइ कियउ सुभराज ॥६४३॥
 चारण ढालइनुँ कहइ, किस गुण आया, राज ।
 ऊपर थे विन्हें चढ्या, करह कूट किण काज ॥६४४॥

६४१—ऊमर ने उनको जाते हुए देखा और वह क्रूर (दुष्ट) हलबड़ी करने लगा । उसने घोड़े पीछे दौड़ा दिए और कहने लगा कि कितनी दूर जायगा ।

६४२—ऊमर ने मारवणी (के रूप) को कानो से सुना ही था अब आँखों से देख लिया । इसलिये अधिक लगन लगा हुआ ऊमर घोड़ों को शीघ्रता के साथ दौडाने लगा ।

६४३—जहाज (ऊँट) ऊमर और अपने बीच में बहुत फासला डाल गया । इसी समय एक चारण ने ढोला के सामने आकर शुभराज किया ।

६४४—फिर चारण ढोला से कहने लगा—आप किस बूते पर यहाँ तक आए । तुम दोनों तो ऊपर चढ़े हो फिर ऊँट के पैर में बधन किसलिये ?

६४१—हरहळ (ग) । कळहळ (झ) । जावै (क. ग) जस्यै (झ) ।

६४२—नित सुणी (क. त)=सभळी । वळ (ग) वळी (ख) । ऊँतावळा (ख. ग) उतावळौ (झ) । अधिक स्नेह (क. ख) ।

६४३—विच (ख ग) । पडी (ख)=धणी । संमहौ (ख) । साल्ह साम्हौ (क घ)=ढोलइ साँमुहउ । आय (ग) मिल्यौ (क)=आइ । तास करै (क घ)=कियौ ।

केवल (क ख. ग घ त) में ।

६४४—सुं (क घ)=नुँ । वेउं (ख) । करहौ (क ग घ) । कूट्यौ (क. ग घ.) कूटै (ख) ।

केवल (क. ख. ग. घ. त) में ।

कूट कटाड़ी दे छुरी उणही कर तिण तास ।
 चारण, तू देखइ जिसा, कहिज्यउ ऊंमर पास ॥६४५॥
 बीजइ दिन ऊंमर मिल्यउ, पह उगतइ सूर ।
 ढोलउ - मारु एकठा, कहि, केतीहेक दूर ॥६४६॥
 ऊंमर, सुणि मुफ वीनती, दउडि म मार तुरंग ।
 करहउ लंघियउ कूटियउ आडावळ वड वग ॥६४७॥
 ऊंचा डूंगर, विखम थळ, लागा फिर तारेहि ।
 कूट्यइ करहइ लंघिया, घोड़ा म मारेहि ॥६४८॥

६४५—तब उसने चारण को छुरी देकर उसी के हाथ से उस (ऊँट) का बदन कटवाया । और चारण से कहा,—हे चारण, तुम हमको जैसा देखते हो, जाकर वैसा का वैसा ऊमर से कह देना ।

६४६—(चारण वहाँ से चला ।) दूसरे रोज सूर्य के उदय होते हुए मार्ग म ऊमर मिला (और उससे पूछने लगा कि) वताओ, ढोला और मारवणी, जो एक साथ जा रहे हैं, किननी दूर पर है ?

६४७—(उत्तर में चारण ने कहा)—हे ऊमर, मेरी प्रार्थना सुनो, बेचारे घोड़ो को टौडकर मत मार डालो । (वहाँ तो) पैर बँधा हुआ ऊँट आडावळा की महान् घाटी को लाँघ गया है ।

६४८—ऊबड़ खावड़ भूमि को और ऊँचे पहाड़ों को, जो मानो तारों से बातें करते हैं, ऊँट पैर बँधे हुए ही लाँघ गया है । (अब) तू घोड़ों को टौडाऊ मत मार ।

६४५—ऊँट कटारी (ख. ग) = कूट कटाड़ी । काटे कूटौ तास (ख. ग) काटे वंयण ताम (क) = उणही कर तिण तास । जिसी (क) तिसौ (ख) । केवल (क. ख. ग. घ. त. ऋ) में ।

६४६—प्रह (क घ) । कहो स (क. घ) = कहि । केती (क घ) = केतीहेक । एक (ग) हक (क) = हेक । कहो स केती (त) = कहि केती हेक । दूरि (क) । केवल (क. ग. घ. त. ऋ) में ।

६४७—सुणी (ख) । वीनती (क) । न (ख) = म । करहे (ख) । कूँटे करहे लघीया (क ग) । उळवीयीं (घ) । आडावळारों वंग (ख) । केवल (क. ग. घ. त. ऋ) में ।

६४८—ऊंचा (घ) । पंय (ज) = डूंगर । लगा (ज) । कुंयै (ज) कुहटे (थ) । मा (थ) । मी पिण त्रिण पाँवों थका मति घोडा मारेह [(ज) में द्वितीय पक्ति] ।

कूटि कटाडी इणि करह, हिव नरवर नेडेह ।
ऊंमर, सुणि सुभ वीनती, घोडा म म्मारेह ॥६४६॥

(ढोला का नरवर लौट आना)

ऊंमर मन विलखउ हुयउ चारण वचन सुणेह ।
उणिहि ज पैथ पाछउ वळयउ, साल्ह निचत करेह ॥६५०॥

ढोलउ नरवर आवियउ मंगळ गावइ नार ।

उछव हुवउ आयउ घरे हरख्यउ नगर अपार ॥६५१॥

(ढपति विनोद)

साल्हकुमार विलसइ सदा कॉमिण सुगुण सुगात ।

माळवणीनूँ एक निस, मारवणी दुइ रात ॥६५२॥

६४६—ढोला ने इन्हीं हाथों मे ऊँट का बधन कटवाया है और अब तो वह नरवर के निकट होगा । हे ऊमर, मेरी विनती सुन, घोड़ों को मत मार ।

६५०—चारण के वचन सुनकर ऊमर मन मे उदास हो गया और उसी मार्ग से वापिस लौट गया और इस प्रकार साल्हकुमार को निश्चित कर गया ।

६५१—ढोला नरवर लौट आया । वहाँ नारियाँ मंगल गीत गाने लगीं और उत्सव होने लगा । ढोला घर लौट आया (यह सुनकर) सारा नगर बहुत हर्षित हुआ ।

६५२—अब साल्हकुमार सद्गुणवती और सुदरी नारियों के साथ नित्य

६४६—कूँट (क) । करढ (क. घ) = करह । नळवर । (ग) । गढ नेडेह (क घ) = नेडेह । छै तेह (झ) = नेडेह । सुण (ग) । न (ख ग) = म । घोडा दौड न मारेह (झ) ।

केवल (क ख. ग. घ. झ. त) में ।

६५०—मनह (ख) । कियौ (क. घ) । भणेह (झ) = सुणेह । उण (क. ग) । नचीत (ख) ।

केवल (क. ख. ग. घ. झ. त) मे ।

६५१—नळवर (घ) । नारि (क. ख) । हूवा (ग) करि (क. घ) = हूवो । आया (ग) हरख्या (क) ।

६५२—कामणि (ग) । निणि (क) । मारवणी (ख) = माळवणी । राति (ग. त) ।

केवल—(क. ख. ग. घ. त) मे ।

मारवणी नइ साळविण ढोलड तिण भरतार ।
एकणि मदिर रँग रमइ, की जोडी करतार ॥६५३॥

(मारवाड की निंदा)

ततखण साळवणी कहइ, सौंभळि कंत सुरंग ।
सगळा देस सुहॉमणा, मारू देस विरंग ॥६५४॥
वाळऊं, वावा, देसड्ड, पाँणी जिहॉ कुवॉह ।
आधीरात कुहळडा, व्यडँ माणसाँ सुवॉह ॥६५५॥

सुख भोगने लगा । उसने मालवणी को एक रात और मारवणी को दो रातें दीं (एक रात मालवणी के साथ रहता और दो रात मारवणी के साथ) ।

६५३—मारवणी, मालवणी और उनका पति ढोला एक ही महल में आनंद से रग मनाते हैं । विधाता ने यह (अपूर्व) जोड़ी बनाई ।

६५४—उस समय मालवणी कहती है—हे रसिक कंत, सुनो, सारे देश सुहावने हैं, किंतु एक मारू देश (मारवाड) ही विरंग (नीरस) है ।

६५५—हे वावा, ऐसा देश जला हूँ जहाँ पानी गहरे कुँवो में मिलता है और जहाँ पर (लोग) आधी रात को ही पुकारने लगते हैं मानों मनुष्य मर गए हों ।

६५३—मारू अर साळवणी (क. ख. ग. घ.) । ढोलै (क. ख. ग. घ.)
त्याहरे ढोलो (न)=ढोलो तिण । एकण (ग. न) सुखे (न)=रँग । रँग में
(क. ग.)=रँग रमइ । कीई (ग.) करि (न)=की ।

केवल (क. ख. ग. घ. न) में ।

६५४—सौंभळ (ग.) । सिगळा (ग.) ।

केवल (क. ग. ग. घ.) में ।

६५५—वाळूँ (क. ख. ग. घ. न.) । वावा वाळूँ (च. थ.) । ढोला
प्रीतम (न)=वावा । जहाँ पाणी (क. ख.) जिहॉ पाँणी (ज. थ. न. च.) ।
कुवॉहि (च. कुवॉह (ज.) कूआ (न.) कूवेहि (थ.) रातें (न.) रातइ (थ.) । पुंकारण
(च.) कूकवा (ज.) कूकपड (थ.) कूकूआ (न.) जिहॉवाणी (क. ख. ग. घ.) =
कुहळडा । उवाँ (क. ख. ग. घ.) जिउ (च.) जाणें (ज.) जिम (न.) । मांणिसाँ
(न.) माणम (च. न.) । सुवॉहि (च. थ.) सुवेह (ज.) मूआह (न.) सुवां (ग.) ।

वाळुँ, बाबा, देसडु, पाँणी संदी ताति ।
 पाणी केरइ कारणइ प्री छंडइ अधराति ॥६५६॥
 [वाळूँ, ढोला, देसडु, जई पाँणी कुँवेण ।
 कुँ कुँ वरणा हथडडा नहीं सुँ घाढा जेण ॥६५७॥]
 बाबा, म देइस मारुवाँ, सूधा एवाळाँह ।
 कंधि कुहाडु, सिरि घडु, वासउ मंफि थळाँह ॥६५८॥
 बाबा, म देइस मारुवाँ, वर कुँआरि रहेसि ।
 हाथि कचोळु, सिरि घडु, सीचंती य मरेसि ॥६५९॥

६५६—हे बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी का भी कष्ट है और पानी (निकालने) के लिये प्रियतम आधी रात को ही छोड़कर चले जाते हैं ।

६५७—हे ढोला, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी गहरे कुँवो में मिलता है और जहाँ कुंकुमवर्णवाले सुंदर हाथ उसको नहीं निकालते ।

६५८—बाबा, मारु देश में सीधे सादे भेड़ चरानेवालों को मुझे मत देना (विवाहना), जहाँ कंधे पर कुल्हाड़ा और सिर पर घड़ा रखना पड़ेगा और यळी (मरुभूमि) के बीचों बीच रहना पड़ेगा ।

६५९—बाबा, मुझे मारु देश में मत देना, कुमारी चाहे रह जाऊँ ।

६५६—वाळूँ (क. ख. ग. घ) वाळूँ (न) । बाबा वाळूँ (च. थ) । पाँणि (च) । जहाँ पाँणी की (क. ख. ग. घ)=पाँणी सदी की (क. ख. ग. घ. न) हंडी (ज) हुती (च) । तात (क. ख. ग. घ) वात (च. थ) । धण एकली सुइ रहे (क. ख. ग. घ. न) एक घडी के कारणे (ज)=पाँणी केरइ कारणइ । प्रीव (ज) प्रिय (थ) । सीचै (क. ख. ग. घ. न) छाँटै (ज)=छंडइ । आधी (च. ग. थ) । रात (ज. क. ख. ग. घ) ।

६५७—केवळ (ज) में ।

६५८—न (च. थ)=म । देईस (क. ख. ग. घ. ङ) मारुवाडि (ज) मारुई (च. थ) । जावा (ज. थ. च)=सूधा । गोवाळाँह (क. ख. ग. घ. न) एहवळाँह (ज) । सिर (क. ख. ग. घ. ज) । मंफि (थ) मंफि (क. ख. ग. घ) ।

६५९—न (च. थ) । देई (ग. च. ज) । मारुइ (च. थ) मारुवाडि (ज) । थळि (च) वळि (थ) । कुँआरि (क. ख. ग. घ) कुँआरि (च. ज) कुँवारी (थ) । राह (थ) । हुचै पेट भरेस (ज)=वर कुँआरि रहेसि । हाथ (च. ज. क. ख. ग. घ) । सिर (क. ख. ग. घ. च. ज) । पाँणी भरति (ज) सीचता (थ) सीचंती (क. ख. ग. घ) सीचतौ (ङ)=सीचंती य । कूवाह (थ)=मरेसि ।

मारु, थॉकइ देसइइ एक न भोजइ रिड्डु ।
 ऊचाळउ क अवरसणउ, कइ फाकउ, कइ तिड्डु ॥६६०॥
 जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाळा रूँख ।
 आके फोगे छॉहड़ी, हूँछॉँ भॉजइ भूख ॥६६१॥
 पहिरण - ओढण कंबळा, साठे पुरिसे नीर ।
 आपण लोक उभाँखरा, गाडर छाळी खोर ॥६६२॥

वहाँ हाथ में कटोरा (जिससे घड़े में पानी भरा जाता है), और सिर पर घडा, इस प्रकार पानी ढोती ढोती ही मर जाऊँगी ।

६६०—हे मारवणी, तुम्हारे देश में एक भी कष्ट दूर नहीं होता, या तो ऊचाळा होता है, या वर्षा नहीं होती, या फाका या टिड्डी आ पड़ती है (एक न एक कष्ट सदा लगा ही रहता है) ।

६६१—(तुम्हारा देश ऐसा है) जिस भूमि में पीणो सॉप हैं, जहाँ करील और ऊँटकटाग वास ही पेड़ गिने जाते हैं, जहाँ आक और फोग के नीचे ही छाया मिलती है और जहाँ भुरट नामक कँटीली घास के बीजों से ही भूख दूर होती है ।

६६२—जहाँ पहिनेने ओढने के लिये कवल ही मिलते हैं, जहाँ साठ पुरुष नीचे पानी मिलता है, जहाँ लोग स्वयं भ्रमणशील (?) हैं, और जहाँ भेड़ और बकरी का ही दूध मिलता है ।

६६०—मारवाडिके (क) मारवाडके (न) मारवाडिके (क-भू, थ)=मारु थॉकइ । देसमें (क न) देस महि (क-भू) देस मइँ (थ) । मारुकोइ देसमाहि (च) । तीजे (क. न्व) जाँवे (न) जाइ (च) जाई (थ) जात्रै (क-भू) भाजइ । रीठ (क र) रड्डु (क-भू) पीठ (न. क) रिठ (ग) । कवही होई (ग) कवही हुँवे (न) कवही होइ (च) कदीही होई । थ)=ऊचाळउ क । अवरसणा (क-भू) । कवही मेह वरसे नहीं (क) । का (क. ख. घ)=कइ । पाका (ग) फाकउ (क. न्व ग. घ.क) । का (क.ख) । कवही फाका (न)=कइ फाका कइ । तीठ (क र.ग.न.क) ।

६६१—पीयणा (य) । जिहाँ छै मांगर रुखडो (ज)=जिण भुइ पन्नग पीयणा । कटाळो (ज) कूवा कठे (थ)=कयर कँटाळा । हुँचे (ज) फूंगा (घ) । भुख (थ) । हुँछा वणा भुरठ (घ) ।

६६२—पँहगणा (ज) । पुरसे (च) । देस खरो ही कँखरो (ज) ।

(मालव देश की निंदा)

वळती मारवणी कहइ, मारु देस सुरंग ।
 बीजा तउ सगळा भला, माळव देस विरंग ॥६६३॥
 वाळूँ, वावा, देसडउ, जहाँ पॉणी सेवार ।
 ना पणिहारी मूलरउ, ना कूवइ लैकार ॥६६४॥
 वाळूँ, वावा, देसडउ, जहाँ फीकरिया लोग ।
 एक न दीसइ गोरियोँ, घरि घरि दीसइ सोग ॥६६५॥

(मारवाड की प्रशसा)

मारु देस उपनिया, तिहाँ का दंत सुसेत ।
 कूम बची गोरंगियोँ, खंजर जेहा नेत ॥६६६॥

६६३—उत्तर मे मारवणी कहती है कि मारु देश सुरगा है, और सब देश तो अच्छे हैं पर मालव देश विरंगा है ।

६६४—वावा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी पर सेवार छाया रहता है और जहाँ न तो पनिहारिनों का भुड आता जाता रहता है और न कुँवों पर पानी निकालनेवालों का लयपूर्ण शब्द ही होता है ।

६६५—वावा, उस देश को जला दूँ जहाँ के लोग फीके (नीरस) हैं, जहाँ एक भी गोरी (सुदरी) दिखाई नहीं देती, और जहाँ (काले वस्त्र पहनने का रिवाज होने के कारण) घर-घर शोक छाया-सा दिखाई देता है ।

६६६—जो मारु देश मे उपन्न हुई है उनके दाँत बड़े उज्ज्वल होते हैं, वे कुंभ पत्नी के बच्चो की भाँति गौर वर्ण होती हैं और उनके नेत्र खंजन जैसे होते हैं ।

६६३—मारु (क. ख)=माळव । वळ बीजा केइ क भला पिण मालव देस विरंग (न) ।

६६४—ललकार (क) ।

६६५—प्रातम (न) = वावा । फीकरिया (ग. न) । गोरङी (न) घर घर (क. ख. न) ।

६६६—उपनीया (ग) । ताहकां (ग) । सपेत (ग) सुस्वेत (च) । कूमी (ग) । बचा (ग) । खंज गली लांग अगिया (थ) ।

मारु देस उपन्नियोँ, सर ल्यँ पधरियाह ।
 कडवा कदे न बोलही, मीठा बोलगियाह ॥६६७॥
 देस निवारणँ, सजळ जळ, मीठा बोला लोह ।
 मारु कॉमिणि दिखणि धर हरि दीयइ तउ होइ ॥६३३॥
 देस सुरंगट, भुइं निजळ, न दिवॉ दोस थळॉह ।
 धरि धरि चंद वदन्नियोँ, नीर चढइ कमळॉह ॥६६६॥
 सुणि, सुठरि, केता कहॉ मारु देस वखॉण ।
 मारवणी मिळियोँ पछइ जाण्यउ जनम प्रवॉण ॥६७०॥
 म्गाडउ भागउ गोरियोँ, ढोलइ पूरी सखख ।
 मारु लळियाइत हुई, पॉमी प्रीय परखख ॥६७१॥

६६७—मारु देश में उत्पन्न हुई ल्लियोँ तीर की भॉति सीधी होती हैं, वे कर्मी कडुवचन नहीं बोलतीं और स्वभाव से ही मीठी बोलनेवाली होती हैं ।

६६८—वहॉ श्री भूमि नीची और उपजाऊ है, पानी स्वच्छ एवं स्वास्थ्य-प्रद है, और लोग मीठे बोलनेवाले हैं । ऐसे मारु देश की कामिनी, ईश्वर ही दे तो, दक्षिण श्री भूमि में मिल सकती है ।

६६९—ढोला कहता है—

(मारवाड़ का) देश सुरगा है, यद्यपि भूमि निर्जल है—थली को दोष मत दो—वहॉ जल पर खिले हुए कमलों के समान, घर-घर चंद्रवदनी ल्लियोँ हैं ।

६७०—हे नुठरी, तुनो, मे मारु देश का कितना बखान करूँ । मारवणी के मिलने के बाद मैंने जन्म को प्रमाणित (उपल) जाना है ।

६७१—ढोला ने मारवणी की साख भरी (समर्थन किया), और दोनों

६६७—मणि जिम (ज) पधरीयाह (ज ग) पधरीयोँ (च) । कडुआ बोल न जाणही (य) कडवा बोल ए बोलहो (ज) कडवा बोल ए जाणही (च) सो मीठा (च)=मीठा ।

६६८—निवारि (ज) । जळ सजळ (थ) । बोली (ज थ) । वृण धरा (च) वृण वर (थ) । जे हरि (ज) जौ हरि (च =हरि) । जे हरि दिय त होई (थ) ।

६६९—सजळ (ग) । वदनीया (ग) । चंदा (भ) । चटौ (घ)

६७०—कहुँ (च) कइ (थ) । पछे (थ) । जाणों (च) जाण्या (थ) ।

६७१—मे त्रियोँ (ग ङ) । कँवरै (ज)=ढोलै । सखिख (च) साख (ज) मारि (थ) । लळियाइत (ज थ) । पॉव (ज) परख (ज) ।

मालव-देस विखोडिया, मारू किया वखाण ।
 मारू सोहागिण थई सुंदरि सगुण सुजाण ॥६७२॥
 जिम मधुकर-नई केतकी, जिम कोइल सहकार ।
 मारवणी-मन हरखियउ तिम ढोलइ भरतार ॥६७३॥

उपसहार

आणद अति, ऊछाह अति नरवर माँहे ढोल ।
 ससनेही सयणाँ-तणाँ कळिमाँ रहिया बोल ॥६७४॥



स्त्रियों का भगडा मिट गया । मारवणी आनदित हुई । उसने प्रियतम के प्रेम की परीक्षा पा ली ।

६७२—ढोला ने मालव देश की अप्रशसा की और मारू देश की प्रशंसा की । इस प्रकार सद्गुणवती और चतुर मारवणी सौभाग्यवती हुई ।

६७३—जिस प्रकार केतकी से मधुकर का, और जिस प्रकार आम्रवृक्ष से कोकिल का मन हर्षित होता है उसी प्रकार ढोला पति से मारवणी का मन हर्षित हुआ ।

६७४—अत्यंत आनंद और बड़े उत्सवों के साथ ढोला नरवर में रहने लगा । उन प्रेमी स्नेहियों की वार्ता इस कलियुग में रह गई है ।

६७२—मालवणी (क ख. घ. न) । विखोडियो (ग. न) । कीयां (न) । सोहागणि (क ख) सुहागण (ग) । हुई (न) = थई । सुगुण (ग न) ।

६७३—सिर (न) = नई । सुं (न) = मन । ज्यो (क ख ग) = तिम । सु ढोलौ (ग) = ढोलह । ढोलो (न) । ज्युं हंस सोहै मानसर ज्युं ढोलौ मारूरै भरतार [(ऋ) में द्वितीय पक्ति] ।

६७४—अधिक (न) = अति । वाज्या (न) = माँहे । ससनीहौ (क ख) । सयणां (ग न) । तणाँ (क ख) तणी (न) । मैं (ग न) । रहियौ (ग) ।

ढो० मा० दू० २३ (११००-६२)

—

परिशिष्ट

नोट

परिशिष्ट मे भिन्न भिन्न प्रतिलिपियों मे उपलब्ध पद्य अथवा गद्य का वही अश दिया गया है जिसका हमारे अनुसार वाचक कुशललाभ से पूर्व की 'ढोलामारूरा दूहा' की असली प्राचीन प्रति में, यदि प्राप्य होती तो, होना संभव नहीं था ।

जो दोहे मूल में रख लिए गए हैं उनकी संख्या, मूल के अनुसार, परिशिष्ट में उद्धृत प्रतिलिपियों में टे दी गई है जिससे यदि कोई विद्वान् उन प्रतिलिपियों के पूर्ण रूप को खड़ा करना चाहे तो, संख्याओं के स्थान पर मूल के उन्हीं संख्याओंवाले दोहों को रखकर, सहज ही में कर सकते हैं ।

परिशिष्ट (१)

टिप्पणी

शीर्षक

ढोला—अप० ढोल्ला । इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के दुर्लभ शब्द से हुई बताई जाती है (दुर्लभ, दुल्लभ, दुल्लह, दुल्लह, ढोल्लह, ढोल्ल, ढोल्ला) । अपभ्रंश कविता में यह शब्द नायक के अर्थ में आता था । हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण के अपभ्रंश भाग में यह शब्द तीन बार आया है^१ और तीनों बार नायक के अर्थ में । प्राकृत^२-पिंगल-सूत्र में भी एक स्थान पर यह शब्द आया है और टीकाकारों ने यहाँ पर उसका अर्थ ढोल किया है पर वीर, नायक, नेता यह अर्थ भी किया जा सकता है ।

राजस्थानी भाषा में यह शब्द बहुत प्रचलित रहा है और आज भी है । राजस्थान की ग्रामीण कविता एवं गीतों में इसका बहुत प्रयोग हुआ है । इसका अर्थ नायक, पति या वीर होता है और यह बहुधा सन्बोधन में ही प्रयुक्त होता है । दो चार उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(१) गोरी छाई छै जी रूप, ढोला, धीराँ-धीराँ आव ।

१. (१) ढोल्ला सामळा, धण चंभावणणी । (८-४-३३०)

(२) ढोल्ला, मई तुहँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु ।

खिहण गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु ॥ (८-४-३३०)

(३) ढोल्ला; एह परिहासडी जइभ न कवणहिं देसि ।

हऊँ भिजऊँ तउ-केहिं, पिअ, तुहँ पुणि अन्नहिं रेसि ॥ (८-४-४२५)

२ ढोल्ला मारिय ढिल्लि मँ सुच्छिउ मेच्छ-सरीर ।

पुर जज्जल्ला मंतिवर चल्लिअ वीर हम्मीर ॥

चल्लिअ वीर हम्मीर पाअ - भर मेइणि कंपइ ।

दिगमग साह अंधार धूलि सुररह आच्छाहेइ ॥

दिगमग एह अंधार आण खुरसाण कउज्जा ।

दरमरि दमसि विपक्ख मारु ढिल्ली मह ढोल्ला ॥

(२) सावण खेती, भँवरजी, ये करी जी, हँजी ढोला, भादूड़े करयो छो निनाण । सीट्टोरी स्त छाया, भँवरजी, परदेश में जी, ओ जी म्हारा घणा-कमाज उमराव, थोरी प्यारी ने पलक न आँवड़े जी ।

(३) गोरी तो भीजै, ढोला, गोखडे, आली जो भीजै जी फौजो मॉय । अत्र घर आय जा आसा थारी लग रही हो जी ।

(४) दूधोने सीं चावो ढोला जीरो नीं वूडो ओ राज ।

हमारी समिति मे यह ढोला शब्द किसी व्यक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ है । किसी प्रसिद्ध लोकप्रिय व्यक्ति का नाम ढोला (स० दुर्लभराज) रहा होगा और बाद में उसका नाम नायक के अर्थ में प्रचलित हो गया होगा । राधा और कृष्ण वास्तविक व्यक्ति थे परंतु अत में वे समस्त कविता के नायक-नायिका हो गए । यह ढोला या दुर्लभराज कौन था यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सक्ता पर हमारा अनुमान है कि यह ढोला इसी ढोलामारूरा दूहा काव्य का नायक था । यह ढोला एक ऐतिहासिक व्यक्ति है । वह जयपुर के राजवश का पूर्व पुरुष था । जयपुर का कछवाहा राजवश पहले नरवर में राज्य करता था । इस नरवर को नल नाम के राजा ने बसाया था और इसी नल का पुत्र ढोला था । ढोला की दो तीन पीढियों के बाद कछवाहे राज-पुताने में चले गए और वहाँ राज्य करने लगे । इतिहास के अनुसार ढोला का समय सवत् १००० के आसपास आता है । नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है कि इस ढोला के दो छियाँ थीं जिनमें एक मारवाड की और दूसरी मालवे की थी । राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक मुशी देवीप्रसादजी लिखते हैं कि आमेर के कछवाहों की लकी चौड़ी बशावली में लिखा है कि नल नरवर का राजा था जिसकी रानी दमयंती थी और ढोला उसका बेटा था जो बहुत बलवान् और छियों का रनिया था । वह मारुणी नाम की एक स्त्री को बहुत प्यार करता था । ढोला और मारुणी के विवाह तथा प्रेम की कथा का राजस्थान में बहुत प्रचार हुआ और ढोला मारू ये नाम घर घर में प्रसिद्ध हो गए । धीरे धीरे इन्होंने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि ये नायक-नायिका के साधारण अर्थ में प्रयुक्त होने लगे ।

माह—स० मरु से । इसका अर्थ है मरु का या मरु की । यहाँ यह शब्द स्त्रीलिंग है । इस शब्द के अनेक रूपांतर मिलते हैं जैसे मारू, मारुवी, मारवी, मारुवणी, मारवणी, मारवण, मरुवण । राजस्थान में रानी का नाम प्रायः देश के नाम पर रख दिया जाता है, जैसे मीराँ के लिये मेड़तणी राणी (मेड़तावाली

रानी)। इसी प्रकार ढोला की इस रानी का नाम मारवणी प्रसिद्ध हुआ। उसकी दूसरी रानी मालवा की थी और वह माळवणी (माळवे की) नाम से प्रसिद्ध थी। कभी कभी कन्या का नाम भी अपने देश पर रख दिया जाता है। संभव है, ढोला की स्त्री मारवणी का यह नाम उसके पितृगृह का ही रखा हुआ हो।

ढोला की माँति मारु या मारवण शब्द भी राजस्थान में खूब प्रचलित रहा है। गीतों आदि में इसका बहुत प्रयोग मिलता है। वर्तमान काल में नायिका के अर्थ में मारु शब्द नहीं आता, मारवण या मरवण आता है। मारु का प्रयोग अत्र पुँल्लिंग में, नायक के अर्थ में होता है और वह कभी कभी ढोला शब्द के साथ भी आता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) उर चवडी, कड़ पातळी, ठावो - ठावो मंस।

ढोला, थारी मारवण पात्रासररो हस ॥

(२) मारवण थारे तो नैणारो पाणी लागणो।

हो प्यारी मारवण, थारा नैणारो पाणी लागणो॥

(३) मदलुकिया महाराज, थॉने करण तो पियाईं दारूडी।

बोलो नी, दारूरा मारु, पूछै थॉरी मारूडी ॥

(४) इतरा मे, ढोला-मारु, थे ही जी गँवार। नित उठ बुडला थे कसो जी म्हॉरा राज। इतरा में, मरवण, म्हे ही ए सपूत, नित उठ रण में म्हे ही चढाँजी म्हारा राज।

मारु इस काव्य की नायिका है। यह पूगळ के परमार राजा पिगळ की कन्या थी। संभव है कि इसकी कथा के अत्यंत प्रसिद्ध होने के बाद व्यक्तिवाचक मारु या मारवणी शब्द जातिवाचक बन गया हो और नायिका के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा हो।

रा—पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) में सवधकारक का चिह्न रो (पुरानी वर्तनी में रउ या रौ) है। हिंदी की माँति राजस्थानी में भी भेद्य के अनुसार यह चिह्न बदल जाता है—

पुँल्लिंग एकवचन—रो (रउ, रौ) = (हिं०) का

पुँल्लिंग बहुवचन—रा = (हिं०) के

विकारी रूप (पुँल्लिंग)—रे (रइ, रै) = (हिं०) के

(स्त्रीलिंग)—री = (हिं०) की

प्राचीन राजस्थानी कविता में रो के स्थान पर अन्यान्य संबंध कारक के प्रत्यय भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—को (पूर्वी राजस्थानी और व्रज), नो (गुजराती), चा (मराठी), जो (सिंधी), दो (पंजाबी)।

रो प्रत्यय की उत्पत्ति प्रा० और अप० केरो-केरठ प्रत्यय से हुई है।

दूहा—अप० हि० दोहा। इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत दोधक या दोग्धक शब्द से की जाती है। हमारी सम्मति में दोहा अपभ्रंश का ही शब्द है। यह छंद दो पक्तियों में लिखा जाता है इसी कारण इसका यह नाम पड़ा है। राजस्थानी में यह दूहो (बहु० दूहा) कहलाता है। अपभ्रंश काल से यह साहित्य का सबसे अधिक लोप्रिय छंद है। छोटे होने के कारण इसको याद रखने में सुभीता होता है। राजस्थान में आज भी हजारों दूहे लोगों की व्रतान पर पाए जाते हैं।

राजस्थानी में दूहा छंद सब छंदों का मानो प्रतिनिधि है। अतः कभी कभी सामान्य छंद अर्थ में भी इसका प्रयोग कर दिया जाता है।

राजस्थानी में सोरठा भी दोहे के अंतर्गत समझा जाता है और उसे सोरठियों दूहा (= सोरठ देश का दोहा) कहते हैं। जैसे—

सोरठियों दूहो भलो, भलो, मलि मरवणरी बात।

जोवन छाई - वण भली, तारों छाई गन ॥

राजस्थानी में दूहा चार प्रकार का होता है। चारों प्रकारों के नाम ये हैं—

(१) दूहो, (२) सोरठो, (३) वड़ो दूहो या अतमेळ दूहो—१-४ चरण ११ मात्रा के, २-३ चरण १३ मात्रा के, (४) तूँवेरी मा मव्यमेळ दूहो—१-४ चरण १३ मात्रा के, २-३ चरण ११ मात्रा के। तुक सदा ११ मात्रावाले चरणों की ही मिलती है।

गाथा १—गाथा—अप० प्रा० गाहा, स० गाथा। संस्कृत पिंगल में इस छंद का नाम आर्था है पर प्राकृत और अपभ्रंश में यह गाथा या गाहा नाम ने ही प्रसिद्ध है। प्राकृत साहित्य का मुख्य छंद गाथा ही है। हाल कवि की गाथा समझनी इसी छंद में लिखी हुई है। गाथा छंद का प्रयोग बहुत पुगना है। प्राचीन बौद्ध साहित्य में पाली और संस्कृतमिश्रित गाथाएँ मिलती हैं जिनकी भाषा को कई विद्वानों ने भ्रमवश संस्कृत और पाली के बीच की भाषा माना है।

राजस्थानी में (और हिंदी में भी) गाथा छंद का प्रयोग नहीं होता । राजस्थानी के प्राचीन आख्यानक काव्यों में कहीं कहीं गाथाएँ मिलती हैं । वे उपदेशात्मक अवतरणों की भाँति आई हैं । इनकी भाषा बड़ी विचित्र प्राकृत अपभ्रंश एवं राजस्थानीमिश्रित होती है । उसे दूटी फूटी प्राकृत कहना चाहिए । उससे प्राचीनत्व की झलक अवश्य उत्पन्न हो जाती है ।

पूगळि — पूगळ + इ (अधिकरण का प्रत्यय) = पूगळ में ।

पूगळ व्रीकानेर राज्य में व्रीकानेर नगर से कोई ५० मील पश्चिमोत्तर में है । पहले यहाँ परमार राजपूतों का राज्य था और पीछे यह जेशळमेर के भाटियों के अधीन हुआ । व्रीकानेर राज्य की स्थापना के समय यह एक स्वतंत्र राज्य था और इसका शासक बड़ा प्रतापी एवं प्रभावशाली था । व्रीकानेर के संस्थापक राव व्रीकोजी ने अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये उसकी राजकुमारी से विवाह किया । पीछे से यह व्रीकानेर राज्य में मिला लिया गया । इस समय दूसरे दर्जे की रियासत है । पूगळ के ठाकुर को राज्य की ओर से वंशपरंपरागत राव की उपाधि प्राप्त है ।

परमारों का मूल राज्य आबू के आसपास था जहाँ से वे मारवाड़, सिंध, मालवा और गुजरात तक फैल गए । परमारों के दो बड़े प्रतापशाली राज्य थे । एक आबू में और दूसरा मालवा में, जिसकी राजधानी धार थी । आबू के परमारों के राज्य के नौ बड़े विभाग थे जो बाद में स्वतंत्र हो गए । इन्हीं नौ राज्यों के कारण मारवाड़ राज्य अब भी नौ-कोटी मारवाड़ कहलाता है । इन नौ राज्यों में एक पूगळ भी था ।

इस समय पूगळ की प्राचीन महत्ता सर्वथा नष्ट हो चुकी है । साहित्य और जनसमाज में पूगळ की पढ़िनी स्त्रियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं । अब भी उधर की स्त्रियाँ सुंदर समझी जाती हैं ।

पिंगळ—यह पूगळ का परमारवंशी राजा था । इतिहास में इसका पता नहीं चलता । (तत्कालीन इतिहास की अभी पूरी खोज हुई भी नहीं है) ।

राऊ—स० राजा, प्रा० रात्र, राय, राउ ।

नळ—यह कछवाहा वंश का राजा जयपुरवालों का पूर्वज था । उस समय कछवाहों का राज्य ग्वालियर के आसपास था । वे पहले कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों के सामंत थे फिर उनके निर्बल होने पर स्वतंत्र हो गए । नळ ने नळवर या नरवर नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी

वनाया । भाट इसे प्रसिद्ध पौराणिक राजा नल (जो दमयंती का पति था) वतलाते हैं ।

नरवरे—नरवर + ए (अधिकरण प्रत्यय) नरवर में । नरवर ग्वालियर राज्य में एक कस्बा है ।

अदिठा—स० अदृष्टाः, प्रा० अदिष्टा । यद्यपि परस्पर देखे हुए नहीं थे । यह बहुवचन का रूप है, एकवचन अदिठ या अदिठो होगा ।

दूरिष्टा—स० दूरस्थिताः या दूरे स्थिताः ।

वे—स० वे । यह शब्द किसी प्रति में नहीं है, केवल (भू) प्रति में दूरथाव पाठ है । छद् की मात्राएँ पूरी करने के लिये हमने इसे जोड़ दिया है ।

दईय—दई + य (सवध प्रत्यय) = दैव का । स० दैव, प्रा० दइव, दइय, राज० दइ ।

दूहा २—दूकाल—स० दुकाल । आधुनिक राजस्थानी में अकाल के लिये विशेषतः काल शब्द आता है । दुकाल भी कभी कभी कह देते हैं ।

यिथुँ—वर्तमान देशभाषाओं में संस्कृत भू और प्राकृत हुव धातु के अनेक रूपांतर हो गए हैं । गुजराती में 'होना' के लिये 'यथुँ' क्रिया है । हिंदी में वर्तमान और भविष्य में होना के रूप 'है' और 'होगा' होते हैं परंतु भूतकाल में 'था' हो जाता है । राजस्थानी में तीनों कालों में 'ह' ही रहता है (है, हुसी, हो तथा हुवै है, हुसी, हुयो) पर पुरानी कविता में कई प्रकार के प्रयोग मिलते हैं । भूतकाल में हुवउ (हुवौ, हुवो) के अतिरिक्त भवउ (भवौ-भवो), हुवउ, थवउ, थियउ, थायउ, व्यवउ (थ्यौ, थ्यो) आदि रूप पाए जाते हैं । भूतकाल के इन रूपों में लिंगभेद भी होता है । यथुँ थयुँ, थियुँ-थियुँ ये रूप नपुंसक लिंग के हैं । माध्यमिक और आधुनिक राजस्थानी में नपुंसक लिंग नहीं होता पर प्राचीन राजस्थानी के प्रभाव के कारण उम्मे नपुंसक लिंग के कुछ रूप माध्यमिक राजस्थानी में अवशिष्ट रह गए । जैसे नपुंसक लिंग और पुल्लिंग में कोई अंतर नहीं ।

इन शब्द की व्युत्पत्ति स० स्था (स्थित) और प्रा० था (थिय-थिय) में की जाती है ।

किण्ही—मिलाओ—हि० किसी (किस + ही) । संस्कृत किम्, प्रा० क, अप० काँ क्वण, राजस्थानी में कुण या कोण (हि० कौन) हो जाता

है। उसका विकारी रूप क्ण या के (कभी कभी कुण भी) होता है। उसी के आगे ही अव्यय जुड़ा हुआ है। यह 'ही' अव्यय कभी कभी सानुनासिक कर दिया जाता है। जैसे—क्णहीं अवगुण कूँभड़ी कुरळी मॉभिम रत्त। (दूहा ५७)

विसेसि—विसेस (विशेष) + इ (कर्ता का प्रत्यय)।

ऊचाळउ—स० उच्चलन; प्रा० उच्चालो। अकाल पडने पर मरुस्थल की कई जातियाँ अपने परिवार तथा पशुओं के साथ स्वदेश को छोड़कर किसी पानी और घासवाले स्थान को चली जाती थीं। कभी कभी सभी लोग ऐसा करते थे। आजकल सब लोग तो ऐसा नहीं करते किंतु गाय, बैल आदि पालनेवाली जातियाँ कभी कभी ऐसा करती हैं। राजस्थान के लोग प्रायः मालवा की ओर चले जाते थे। ऐसे जानेवाले लोगों को मऊ कहा जाता था—माळवे जातोड़ी मउरी राख लीजो लाज। (नरसी-मेहतोरो मायेरो)

कियउ—सं० कृत, प्रा० कथ-कथ, किय-किय। मिलाओ—हिं० क्रिया। करणो क्रिया का सामान्य भूतकाल। यह रूप कविता में ही विशेषतया आता है। बोलचाल में 'कखो' अधिक प्रयुक्त होता है। सामान्य भूतकाल के अन्य रूप—कखउ, कीधउ, किद्धउ, किद्ध, कीध्यउ।

हिंदी की भाँति राजस्थानी के अधिकांश भूतकालो के रूप भूत कृदत से बने हैं और उनमें, यदि क्रिया सकर्मक है तो कर्म के लिंग-वचन-पुरुषानुसार परिवर्तन होता है।

नरवरचइ—चइ (चै-चे) चो का विकारी रूप है। चो संवध का प्रत्यय है। आधुनिक भाषाओं में मराठी के संवध कारक में चा प्रत्यय लगता है। पुरानी राजस्थानी तथा गुजराती कविता में भी इसका प्रयोग अन्यान्य कई संवध प्रत्ययों के साथ साथ हुआ है। मिलाओ—ऊपर 'रा' प्रत्यय पर टिप्पणी।

दूहा ३—दियउ—सं० दत्त, प्रा० दथ-दथ, दिथ-दिय। सामान्य भूतकाल, पुल्लिंग। अन्य रूप—दथउ, दीधउ, दीध्यउ, दिद्धउ, दिद्ध। मिलाओ—दूहा न० २ में 'कियउ' पर टिप्पणी।

जउ—स० याः, प्रा० जो।

राजवियाँ—राज + अवी प्रत्यय। राजवी शब्द के बहुवचन का विकारी रूप। विभक्ति प्रत्यय विकारी रूप के आगे जोड़े जाते हैं पर पुरानी भाषा में

विशेषणः कविता मे ये प्रत्यय लुप्त भी हो जाते हैं । यहाँ संवध का प्रत्यय लुप्त है । अर्थ है राजवियों के । राजवी शब्द का अर्थ राजा और राजवशी दोनों होता है । राजा के निकट सवधी राजस्थान मे राजवी कहे जाते हैं ।

सवि०—स० सर्व, प्रा० सव्व, सव, सवि । अन्य रूप—सड, सौ, सहु, सह, सव, सव्व ।

रावळा—स० राजकुल, प्रा० राअउल, राउल । बहुवचन । राजस्थानी में 'रावलो' का अर्थ राजमहल या जनाना महल होता है । लक्षणा से 'रानियों का समूह' अर्थ भी ग्रहण किया जाता है ।

अइ—ओ शब्द का बहुवचन=ये । आधुनिक रूप औ, अप० एइ ।

लोग—यहाँ नौकर चाकरो से अभिप्राय है ।

दूहा ४—तण्ड—आधुनिक रूप तणो । सवध-प्रत्यय । इसमें भेद्य सना क लिंग-वचनानुसार परिवर्तन होता है (तणा, तणी, तणे तणै तणइ) ।

राणि—स० रानी, प्रा० रणणी, अप० राणी, हिं० रानी । पुल्लिंग राणो (हिं० राणा०) । छद् की मात्राएँ ठीक करने के लिये णी को ह्रस्व कर दिया गया है ।

दूहा ५—पदमिणी स० पद्मिनी । अन्य रूप—पदमणी-पदमणि, पद-मिण-पदमणि, पदमण । स्त्री की चार जातियों में पद्मिनी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वसुन्दर जाति होती है । सिंहल एव पूगल की पद्मिनी स्त्रियों साहित्य मे प्रसिद्ध है ।

कभी कभी नामान्य स्त्री के अर्थ मे भी यह शब्द प्रयुक्त होता है—पीड सहे विन पदमणी पृत न लेहि उल्लग (कवीर) ।

निणि—स० तत् । मिलाओ—हिं० तिन । 'इ' सवध प्रत्यय ।

नॉम—राजस्थानी मे (और अपभ्रंश म भी) यदि आगे कोई नासिक्य वर्ण हो या व हो तो पूर्व का त्वर सानुनासिक कर दिया जाता है । इसी प्रकार नासिक्य वर्ण र और व भी कभी कभी सानुनासिक बना दिए जाते हैं ।

जोइ—प्रा० जो, जोअ, जोव (पूर्वकालिक रूप) । जोणो या जोवणो द्विवा । इनका अर्थ आधुनिक राजस्थानी मे देखना और खोजना भी होता है । गुजराती मे भी वही क्रिया आती है । मिलाओ—हिं० वाट लाहना ।

धन्न—सं० धन्य, प्रा० धरण । अन्य रूप—धन, धिन, धिन्न ।

कॉम—सं० कर्म, प्रा० कम्म । यहाँ रचना (कृति) का अर्थ है ।

दूहा ६—सारीखी सं० सदश, प्रा० सारिख । ई स्त्रीलिंग का प्रत्यय है ।

जोड़ी—सं० युज् । राजस्थानी में जुड़नो क्रिया बनती है, उसका सकर्मक जोड़नो हुआ । जोड़ना क्रिया के आगे ई प्रत्यय लगाकर सज्ञा बनाई गई है । अर्थात् वस्तुओं का अनुरूप मेल जैसे इन दोनों की जोड़ी है । साथ रहनेवाली (विशेषतः दो) वस्तुओं को जोड़ी कहते हैं । दो के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है । जैसे—हाथों की जोड़ी (कगन), पैरों की जोड़ी (जूतियाँ) ।

जुड़ी—सं० युज् : प्रा० जुड । सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन ।

आ—ओ (यह) का स्त्रीलिंग ।

अउ—ओ का प्राचीन रूप ।

नाह—सं० नाथ = स्वामी, पति, वर ।

रँ—राजस्थानी में करण और अपादान का चिह्न । अन्य रूप—स्यँ-स्यौं-स्योँ, सुँ सूँ साँ सौँ सँ सैं स्यँ स्यँ । कविता में ते तें थी आदि रूप भी आते हैं ।

इसकी व्युत्पत्ति सुतों से बताई जाती है पर बहुत संभव है कि यह संस्कृत विभक्ति स्मात् या सम शब्द से निकला हो । इसका एक रूप सम भी कविता में आता है ।

कहइ—सं० कथा, प्रा० कह । कहणो क्रिया—कह + अइ । अइ वर्तमान अन्य पुरुष का और मध्यम पुरुष एकवचन या प्रत्यय है । आधुनिक रूप—कहै । आधुनिक राजस्थानी में यह सभाव्य भविष्यत् का रूप है । आधुनिक वर्तमान बनाने के लिये, हिंदी की भाँति, है क्रिया के रूप आगे और जोड़ने पड़ते हैं ।

कीजइ—सं० क्रियते, प्रा० किजइ । आज्ञा का रूप । राजस्थानी में कर्तृवाक्य आज्ञार्थ और कर्मवाच्य वर्तमान काल के रूप एक से होते हैं । आधुनिक राजस्थानी में कीजै के स्थान पर करीजै रूप प्रयुक्त होता है ।

मिलाओ—हिं० कीजै, कीजिए ।

वीमाँह—सं० विवाह, प्रा० वीवाह । व और म का पारस्परिक परिवर्तन अपभ्रंश, हिंदी, राजस्थानी एवं गुजराती में पाया जाता है ।

दूहा ७—रूँ—कर्म का प्रत्यय । आधुनिक राजस्थानी में ने आता है । यह समवतया सस्कृत विभक्ति-प्रत्यय आन् (जैसे रामान्) से निकला है ।

विचारड—विचारणो क्रिया । विचार + अड । आज्ञा का रूप, मध्यम पुरुष, बहुवचन । आधुनिक रूप—विचारो ।

विषइ—विखो + इ (अधिकरण चिह्न) । विखो = सं० विषय । इसका अर्थ दुःख के दिन होता है ।

द्यौँ—देखो क्रिया । । सभाव्य भविष्यत्, उत्तम पुरुष, बहुवचन का रूप । आधुनिक रूप—दौँ ।

ढीकरी—राजस्थानी देशी शब्द । हिंदी-शब्दसागर मे इसकी व्युत्पत्ति सं० डिक्क से की गई है ।

हौंसड—सं० हास=हँसी । सजातीय कर्म ।

हसिंसी—सं० हसिष्यन्ति, प्रा० हसिस्सइ । सामान्य भविष्य ।

लोइ—सं० लोक, प्रा० लोश्र-लोय ।

दूहा न कोइलौँ—सं० कोकिल, प्रा० कोइल, आधु० राज० कोयल । बहु-वचन (द्यौँ) ।

सालूराइ—सं० शालूर-सालूर राज० सालूर सालूरो । बहुवचन । अत मे ह छद्म की मात्रा पूरी करने के लिये जोड़ा गया है । राजस्थानी मे ऐसा बहुत होता है ।

राज—सं० राजन् । सवोधन । यह शब्द आपके अर्थ में भी आता है ।

हिवइ—अन्य रूप-हिवै, हवैँ, हवैँ, अचै, अन्न, हणौँ=अव ।

मा—उ० मा; प्रा० मा-म, राज० मा-म-मत । मिलाओ—हिं० मत । यह शब्द विशेषतया आजार्थ मे आता है ।

पौँतरड—सं० प्रमत्त, प्रा० पमत्त, पवंत-पौँत । पौँतरणो क्रिया । आजार्थ ।

घण—यहाँ घण शब्द स्त्री, कन्या के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

अड—ऊपर दूहा ७ मे द्यौँ देखो । आजार्थ बहुवचन ।

अवरौँह—सं० अपर-अवर । बहुवचन, विकारी रूप, सप्रदान कारक, विभक्ति प्रत्यय लुप्त हो गया है । ह पाठ-पूर्वार्थ जोड़ा गया है । अन्यार्थ—अव ।

दूहा ६ ज्यू—सं० यथा या यद्वत्; प्रा० जधा या जद्, अप० जिघ, जेवँ, जिवँ, जिउँ, ज्युँ, ज्यूँ । अन्य रूप—ज्युं, जिउँ, जिउँ, जिम, जिमि, जेम । मिलात्रो—हिं० ज्यों ।

ये—राजस्थानी मे मध्यम पुरुष का बहुवचन । एकवचन मे तू होता है । आदर दिखाने के लिये एकवचन मे भी थे का प्रयोग होता है (हिंदी में ऐसी जगह आप आता है) । बहुत अधिक आदर दिखाने के लिये राजस्थानी मे भी आप आता है पर अधिकतर थे काफी होता है । राजस्थानी का तू हिंदी के तू के स्थान पर और राजस्थानी का थे हिंदी के आप या तुम लोग के स्थान पर है । हिंदी तुम का पर्याय राजस्थानी मे नहीं है ।

जाणउ—सं० जा, प्रा० जाण, राज० जाणनो; हिं० जानना । आधुनिक रूप—जाणो । सभाव्य भविष्य, मध्यम पुरुष, बहुवचन ।
त्यूँ—देखो ज्यूँ ।

करउ—करणो (हिं० करना) क्रिया का आज्ञार्थ बहुवचन रूप ।

आइस—सं० आदेश, प्रा० आएस, मिलात्रो—हिं० आयसु ।

दीध—सं० दत्त । सामान्य भूतकाल । अन्य रूप—दिध, दिधो, दीधो । यह रूप सीधे सस्कृत से आया है । नियमित रूप दियो, दिया, दी होते हैं । दीध या दिध सब लिंगों और वचनों में एक सा रहता है । दिधो या दीधो मे कर्म के लिंग वचनानुसार परिवर्तन होता है ।

ओ—यह अक्षर यहाँ एकमात्रिक है । प्राचीन रूप—ओउ ।

म्हौं—प्रा० अम्हे; राज० न्हे = हम, म्हे का विकारी रूप म्हौं होता है । हिंदी मे जहाँ सप्रत्यय कर्ता आता है वहाँ राजस्थानी मे विकारी रूप का प्रयोग होता है । म्हौं करथो = हमने किया ।

नातरउ—अन्य रूप—नातो, नातरो, हिं० नाता = संबध । यहाँ मतलब विवाहसंबध से है । आधुनिक राजस्थानी मे इसका एक दूसरा अर्थ विधवा के साथ विवाह संबध का है ।

कीध—सं० कृत, प्रा० किद्ध । अन्य रूप—किध, किधउ, कीधउ । मिलात्रो—ऊपर दीध पर टिप्पणी ।

दूहा १० परणिया—सं० प्रा० परिणी । परणनो क्रिया का सामान्य भूत, पुल्लिंग, बहुवचन । इसका अर्थ विवाहित होना है ।

वरदळ—(१) वर = अरुऑा, दळ = दल, समूह, अरुऑे दल का अरुथात् धूमधाम या ठाटुवाट का या (२) वर = अरुऑे । दळ = पत्त, दो अरुऑे पत्तों या कुलों में ।

वि०—इस शब्द का ठीक अरुथ निश्चित नहीं हो सका ।

हुवड—स० भू, प्रा० हुव । हुवणो क्रिया का सामान्य भूत, पुँल्लिंग एकवचन । अन्य रूप—थयड, भयड ।

उरुऑाह—स० उरुसाह, प्रा० उरुऑाह, ऊसाह । अन्य रूप—उरुऑाव । संस्कृत में इस शब्द का अरुथ उरुसाह होता है पर राजस्थानी में यह उरुत्सव और आनंद के अरुथ में भी आता है । यह भी संभव है कि यह स० उरुत्सव, प्रा० उरुऑुव, राज० उरुऑुव-उरुऑुव-उरुऑाव से बना हो ।

दूहा ११ आविषड—स० आ + वा, प्रा० आव । आवणो क्रिया का सामान्य भूत, पुँल्लिंग एकवचन ।

डेसे—उस + ए (अधिकरण का प्रत्यय) ।

थयड—मिलाओ—ऊपर दूहा ० में थियुँ ।

सुगाल—स० सुगाल, प्रा० सुगाल ।

तेण्ण—स० तेन, प्रा० तेण्ण, तेण्ण = तिसमें, उस कारण से, इसलिये ।

गखी—स० रक्त, प्रा० रक्ख, राख, हिं० रखना । राखणो क्रिया का सामान्य भूत, ल्रील्लिंग, एकवचन ।

सामरुह—सामरो + ह (अधिकरण प्रत्यय) सं० श्वाशुर (श्वशुरस्य अय) प्रा० सामुर (देखो - मुरमुंदगी चरित्र ८-१६४)

अजे—स० अजापि प्रा० अजवि = अभी । अन्य रूप—ओजूँ, अजूँ ।

स—एक निरुर्थक अव्यय जो जोर देने के लिये, या पाठपूर्वरुथ, जोड़ दिया जाता है । इसका मूल सो या मु हो सकता है । गानेवाले कभी कभी छुद के बीच में उसे जोड़ देने हैं—जेठ महीनो लागिओ (स) ।

दूहा १२ ज़िम—स० यथा या यद्वत्, प्रा० जहा या जद्व, अप० जैव, लिय, जैव-जियँ ।

अमले—अरुवी अमल = अविकार । यह अधिकरण का प्रत्यय है ।

क्रियट—करणो का वर्तमानकालिक अनियमित रूप = करता है ।

चदनी—प्रा० चड, हिं० चटना, राज० चदणो क्रिया का ल्रील्लिंग वर्तमान कृत (Gem. Present Participle) । मिलाओ—हिं०

चढती = चढती हुई)। आधुनिक राजस्थानी में वर्तमान कृदंत चढतो-चढती होता है पर कविता में चढंतो-चढंती रूप भी मिलते हैं।

जाइ—स० या, प्रा० जा, जाअ, जाव, राज० जावणो क्रिया का वर्तमान काल। आधुनिक—रूप जावे।

तरणापउ—तरण + आपउ। तरण = स० तरण। आपउ या आपो भाववाचक सजा बनाने का तद्धित प्रत्यय है। मिलाओ—बूढापु (हिं० बुढापु)।

थाइ—स० त्या, प्रा० ठा, था। राज० थावणो=होना वर्तमान काल का रूप। मिलाओ—दूहा २ में थियुं। यह क्रिया केवल कविता में आती है।

दूहा १३ चलण—स० चलन = चाल।

कदळीट—ह एक अर्थहीन प्रत्यय है जो पाद-पूर्त्यर्थ या कभी कभी जोर देने के लिये जोड़ दिया जाता है।

जँघ—स० जघा। संस्कृत में यह शब्द प्रायः पिँहुली के अर्थ में आता है पर हिंदी व राजस्थानी में इसका अर्थ सदैव जँघ (उरु) होता है।

केहर—स० केसरी, हिं० राज० केहरी। राजस्थानी में अंतिम ईकार को लुप्त या ह्रस्व करने की (इसी प्रकार अंतिम इकार को लुप्त करने की भी) प्रवृत्ति पाई जाती है।

मुख—मुखमडल, चेहरा।

सिसहर—स० शशधर, प्रा० ससहर। राजस्थानी में कभी कभी शब्द के आरंभ का आधार इकार में बदल जाता है।

खंजर—(१) स० खज (खंजन पत्नी)। स्वार्थ में र प्रत्यय। मिलाओ—ऊपर दूहा ८ में पॉतरउ। (२) यह शब्द संभवतः खजन का ही अपभ्रंश होगा। अथवा (३) खजर का अर्थ कटार लिया जाय। खंजर के समान अर्थात् तीक्ष्ण, कटीले।

श्रीफल—बेल का फल, नरियल भी हो सकता है।

कँठ—कठस्वर।

वीण—वीणा का स्वर।

दूहा १४ इसइ—इसउ (इसो) का विकारी रूप। मिलाओ—हिं० ऐसे, सं० ईदश, प्रा० ईहस, राज० इसो।

ढो० मा० दू० २४ (११००-६२)

आरखइ—आरखउ (आरखो) का विकारी रूप, अधिकरण का प्रत्यय लुन अथवा आरखो + इ (अधिकरण प्रत्यय) ।

सूती स० सुत, प्रा० सुत्त, राज० सूतो । सामान्य भूत स्त्रीलिंग या स्त्रीलिंग भूत कृदन्त । स्वणो या सोवणो क्रिया का नियमित रूप सोई सई-सुई होते है । इन नियमित रूपों की अपेक्षा सूती रूप अधिक प्रयुक्त होता है ।

साल्हकुँवर—ढोला का नाम ।

सुपनई—सुपनो + ई (अधिकरण प्रत्यय) । स० स्वप्न । यह शब्द राजस्थान में प्राकृत से होता हुआ नहीं आया है । अन्य रूप—सुहिणो (प्रा० सुविण) ।

मिल्यउ—मिलनो और मिळनो दोनों रूपों में यह क्रिया राजस्थानी में प्रयुक्त होती है ।

जागि—जाग + इ (पूर्वकालिक प्रत्यय) । अन्य प्रत्यय ए, ई, करि, कै, कइ, नइ, नै-ने, अर ।

निसासउ—स० निःश्वास, प्रा० णीसास, राज० निसासो, निसास ।

खाइ—खावणो (स० खाद्, प्रा० खा, खाव) क्रिया का वर्तमान-कालिक रूप ।

दूहा १५ ऊलवे—स० अवलव्, प्रा० ओलव, राज० ओलव या ऊलव । ये पूर्वकालिक प्रत्यय हैं ।

ह्य्यडा—डो अपभ्रश एव राजस्थानी में एक प्रत्यय है जो कभी कभी स्वार्थ में और कभी कभी अनादर प्रकट करने के लिये जोड़ा जाता है । गुजगती में भी यह आता है । डा डो का बहुवचन है ।

चहदी—चाह (= चाहना, देखना, वाट जोहना) क्रिया का स्त्रीलिंग वर्तमान कृदन्त । यह पञ्जाबी का प्रभाव है । राजस्थानी रूप चाहंती या चाहती अथवा चावती होता है ।

अन्यार्थ—चाह (= प्रेम) + हदी (= की) । हदो सदो राजस्थानी में सर्वध कारक के प्रत्यय है । इनकी व्युत्पत्ति प्रा० हुतो-सुतो से की जाती है ।

घण—स० घन, प्रा० घण ।

ऊमट्यउ—ऊमटणो का सामान्य भूत, पुलिंग, एकवचन । अन्य रूप—ठमड़णो-ऊमड़नो, ऊमहणो-ऊमहनो । मिलायो—हि० उमडना ।

याइ—स० स्थाव, प्रा० थाह ।

निहाळइ—निहाळनो का वर्तमानकालिक रूप । सं० निहाल्; प्रा० गिहाल; राज० निहाळ = देखना, खोजना, पता लगाना । अन्य रूप—निहारणो = देखना ।

मुध्—सं० मुग्धा; प्रा० मुध्वा । अतिम स्वर का लोप । अन्य रूप—मुधा-मुध, मूँधा-मूँध मूध-मुगधा । साहित्य मे एक प्रकार की नायिका जो यौवन मे प्रवेश कर चुकी हो परंतु जिसमे न तो कामचेष्टा उत्पन्न हुई हो और न जिसने विरह संताप भोगा हो ।

दूहा १६—उक्कत्री—उक्कवणो का पूर्वकालिक रूप (उक्कव + ई) । सं० उत्कधा (?); या प्रा० उक्कव = काठ से बाँधना । सिर को हाथों पर बाँधकर अर्थात् रखकर ।

चाहती—चाहणो का स्त्रीलिंग वर्तमान-कृदत । चाह + अती । ऊपर दूहा न० २५ मे चाहदी देखिए । चाह का अर्थ प्रेम भी होता है अतः चाहती का अर्थ प्रेम करती हुई—प्रेममग्न होती हुई भी हो सकता है ।

ऊँची—स० उच्च । राजस्थानी मे यह विशेषण है और इसका प्रयोग क्रियाविशेषण की भाँति होता है । वाक्य मे इसके लिंग वचन विशेष्य के अनुसार बदलते हैं । जैसे—छोरो ऊँचो चढ्यो, छोरी ऊँची चढी, छोरा ऊँचा चढ्या; छोरयाँ ऊँच्याँ चढ्याँ ।

चातृंगि—सं० चातकी, प्रा० चातगी । अपभ्रंश और राजस्थानी में कभी कभी बीच मे र या सानुस्वार र जोड़ दिया जाता है । चातक = चात्रग इस र को फिर ऋ कर दिया गया है ।

मागि—स० मार्ग; प्रा० मग्ग, माग । इ कर्म का प्रत्यय है । अन्य रूप—मारग ।

दूहा १७ गिणइ—स० गण, प्रा० गण, गिण, हि० गिनना । दिन गिणना = निरंतर प्रतीक्षा करना ।

आसालुब्ध—सं० आशालुब्ध = आशा से लुभाई हुई । आशा उसे बराबर लुभाए रहती है अर्थात् बनी रहती है । यह आशा न तो पूरी होती है और न पीछा छोड़ती है ।

घाँघल—प्रा० घंघल; जैसे—जिवँ सुपुरुस तिवँ घंघलई, जिवँ नइ तिवँ कमलाई । जिवँ डोंगर तिवँ कोटरई, हिआ, विषरइ काई ?

(हेमचंद्र—व्याकरण ८-४-४२२)

वणा—सं० वन, प्रा० वण, गज० वणो हिं० घना । राजस्थानी में यह बहुत (संख्यावाचक और परिमाणवाचक) के अर्थ में आता है ।

दूहा १८ जनमिवड—जनमणो का सामान्य भूत पुँल्लिंग, एकवचन । सं० उन्नम. प्रा० उरणम । अन्य रूप—उनवणो, उनमणो । पुरानी हिंदी में उनवना क्रिया बहुत आई है । मिलाओ—

(१) उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः । (मृच्छकटिक)

(२) ऊँनमि आई गढली वरसण लगे अँगार ।

उठि कवीरा घाह टे दाभन है ससार ॥

(कवीर—साखी ५१—२)

उनई वटा चहूँ दिदि, आई । छूटहिं वान मेघ भरि लाई ॥

(जायसी)

इसका एक दूसरा रूप उनरना या ऊनरना भी हिंदी कविता में आया है—

(१) उनरत जोवन देखि नृपति मन भावइ हो ।

(तुलसी—रामलला नहछू)

(२) ऊनरी वटा में आली नू न री अटा पै बैठ । (हरिश्चंद्र)

यहाँ जनमिवड क्रिया का कर्ता मेह (मेघ) लुप्त है । कभी कभी आकाश, या दिशा निघर मेह उमड़ता है, इस क्रिया का कर्ता बना दिया जाता है । जैसे—नम जनम्यड = आकाश उमड़ आया अर्थात् आकाश में मेह उमड़ा । उत्तर जनम्यौ—उत्तर दिशा उमड़ी अर्थात् उत्तर दिशा में मेह उमड़ा । मिलाओ—उत्तर आज स उत्तरथो (दूहा २८६, २६८) ।

दिसई—दिस + ई (अधिकरण प्रत्यय) ।

गाज्यड—स० गर्ज् प्रा० गज, गाज । अन्य रूप—गाजियड । यह क्रिया गजणो और गरजणो इन रूपों में भी प्रयुक्त होती है ।

यहाँ भी कर्ता मेह लुप्त है । यह क्रिया भी जनमणो की भाँति आकाश और किसी दिशाविशेष के साथ भी आती है ।

गुहिर—स० गर्भर; प्रा० गहिर, गज० गहर, गहौर, गुहिर, गहरो । गहर गँभीर राजस्थानी का एक मुहावरा है ।

पिड—स० प्रिय । अन्य रूप—प्रियु, प्री, प्रिव, पी, पिव, पिय, पियु, पीय, पियो ।

समर्यड—समरणो का सामान्य भूत, पुँल्लिंग, एकवचन । स० सर्मृ; प्रा० समर, समल । अन्य रूप—सँमरणो, सँमरुनो, सँमारणो । मिलाओ—

चंदि पितर सत्र सुकृत सँभारे । (तुलसी)

तेहि खल पाछिल वयर सँभारा । (तुलसी)

नयणे—ए अपादान का प्रत्यय ।

वूठउ—वूठणे का सामान्यभूत, पुँल्लिंग, एकवचन । स० वृष्ट, प्रा० चुष्ट; राज० वृठणे । यह क्रिया सस्कृत के भूत कृदंत से बनी है । सस्कृत धातु वृष् या वप् से व्रमणे क्रिया बनती है । मिलात्रो—

हरिया जॉणै लँखड़ा उस पाणी का नेह ।

सूका काठ न जॉणइ कवहू वूठा मेह ॥ (कवीर ५५—१)

परब्रह्म वूठा मोतियाँ घड़ बाँधी सिखराँह ।

(कवीर—साखी ५५—३)

दूहा १६ आखइ—आखणे का वर्तमान । स० आख्या, प्रा० आख । मिलात्रो—जे अत्र के सतगुरु मिलै सत्र दुख आखौ रोय । (कवीर)

काई—प्रा० कइ = क्यों । अन्यार्थ—क्या । आधुनिक रूप—काँई । यह 'क्या' अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

चित्रॉम—राजस्थानी शब्द = चित्र ।

कॉम-चित्रॉम—काम चित्र अर्थात् ढोले की काम जैसी मूर्ति जो मारवणी ने स्वप्न में देखी थी ।

जु—स० यत्, प्रा० ज, जो । यहाँ पर यह शब्द अव्यय है । जोर देने के लिये या पाठ पूर्त्यर्थ या कभी कभी ही के अर्थ में इसका प्रयोग होता है ।

दिष्ट—स० दृष्टि, प्रा० दिष्टि, राज० दिष्ट, दीठ ।

मइँ—अधिकरण का प्रत्यय । मिलात्रो—हिंदी 'मे' । अन्य रूप में, में (आधुनिक राज०) ।

इसकी उत्पत्ति समवतः सस्कृत प्रत्यय स्मिन् और प्रा० म्मि से हुई है । मध्ये शब्द से होना भी संभव है—मध्ये, मज्जे, मष्मि, महि, महिँ, मइँ, मे ।

दिष्ट मइँ—अन्याथ—मैंने देखा है । दिष्ट=स० दृष्ट, प्रा० दिष्ट = देखा । मइँ = स० मया; प्रा० मइँ = मैंने ।

रूप—मूर्ति ।

भूलइ—भूलणे का वर्तमान । प्रा० भुल्ल । यहाँ यह अकर्मक क्रिया है सकर्मक नहीं । अर्थ है—उसका रूप मुझे नहीं भूलता है अर्थात् उसका रूप मुझसे भुलाया नहीं जा सकता है ।

तास—स० तस्य, प्रा० तस्स । अन्य रूप—तासु, ताह ।

दूहा २०—अम्हाँ—स० अस्माकम्, प्रा० अम्हाह, अप० अम्हह ।

सखियाँ—सखी का बहुवचन । सखियों रूप भी होता है ।

एम०—अप० एम्, एव ।

तई—स० वया, प्रा० तई । हिंदी के सप्रत्यय कर्ता तूने की जगह राजस्थानी में तई तै होता है । अप्रत्यय कर्ता हिंदी की भाँति तू होता है ।

अणदिट्ठा—स० निषेधवाचक अ-अन् उपसर्ग के स्थान पर राजस्थानी में अण होता है । अ और अन भी आते हैं । दिट्ठा क्रिया का उलटा है अण-दिट्ठा = नहीं देखा ।

सज्जणों—स० सज्जन, प्रा० सज्जण, राज० सज्जण, साजण, सज्जन, साजन, सयण, सैण, सज्जणो साजणो (बहुवचन में ही) । नासिक्य वर्ण को या नासिक्य वर्ण के पूर्व आनेवाले वर्ण को प्रायः सानुनासिक कर देते हैं । यहाँ आदर के लिये बहुवचन का प्रयोग किया गया है ।

तई इ०—अन्यार्थ—तुझमें अदृष्ट सज्जन के प्रति ।

किउँ—अप० केम्, किम्, किँ, किउँ । ऊपर दूहा ९ में ज्यूँ देखिए । अन्य रूप—किऊँ, क्यूँ, क्यु, क्यो ।

करि—करणो क्रिया का पूर्वकालिक । किउँ करि प्रायः साथ ही आता है । मिलाग्रो—हि० क्योंकर ।

लग्गा—स० लग्न, प्रा० लग्ग । व्याकरण की दृष्टि से लग्गो होना चाहिए । लग्गा इन शब्द पर खड़ी बोली का प्रभाव जात होता है अथवा यहाँ प्रेम को बहुवचन कर दिया है जिससे क्रिया भी बहुवचन हो गई है ।

पेम—स० प्रेमन्, प्रा० पेम्म, पेम ।

दूहा २१ जे—स० जे, प्रा० अप० जे ।

जीवण—स० जीवन । जीवन का आधार या जीवन का कारण अतः जीवन रूप ।

जिन्हों—जिनका विकारी रूप । मिलाग्रो—हि० जिन्हों (का) ।

वसत—वसणो धातु का वर्तमानकालिक रूप । स० वसति । अतः प्रत्यय प्रायः बहुवचन में आता है पर कभी कभी एकवचन में भी प्रयुक्त होता है ।

धारइ—धार या धारा + इ (करण या अधिकरण का प्रत्यय) ।

पयोहरे—पयोहर + ए (अपादान प्रत्यय) ।

काढत—काढणो का वर्तमानकाल । स० कृष्ट; प्रा० कड्ड; राज० कढणो । काढणो कढणो का सकर्मक है ।

तात्पर्य—दूध बालक का जीवन है । वह माता के शरीर में ही रहता है । बालक उसको नहीं देख सकता तो भी निकाल लेता है । इसी प्रकार जो जिसका जीवन होता है वह उसके पास ही अथवा उसके शरीर में ही रहता है ।

दूहा २२ ससनेही—स० सस्नेह । ई मूल से जोड़ दिया गया है । यह शब्द राजस्थानी साहित्य में बहुत आता है ।

समदों—स० समुद्र, प्रा० समुद्, राज० समुद, समद, समँद, समद । आँ विकारी रूप का प्रत्यय है । सवध का चिह्न लुप्त है ।

परइ—स० पर । मिलाओ—हिं० परे ।

वसत—वसणो का वर्तमान । अन्य रूप वसइ-वसै, वसत ।

हिया—स० हृदय । अन्य रूप हियो, हीयो ।

मभार—स० मध्य, प्रा० मब्भ, राज० मंभ । मब्भ आर (मभआर भी) देशी शब्द है । देखिए—देशी नाममाला ६-१२१ ।

आँगणइ—आँगणो (स० अगन) + इ (अधिकरण प्रत्यय)

जॉण—सं० जाने, प्रा० जाणे । अन्यय रूप—जॉणि, जॉणे । मिलाओ—हिं० जनु । आधुनिक राजस्थानी में जॉणे शब्द मानो के अर्थ में आता है ।

दूहा २३ सखिए—ए सवोधन का प्रत्यय है । अप्रत्य कर्ता कारक के बहुवचन में (क्वचित् एकवचन में भी) यही रूप आता है । मिलाओ—

सहिए फिरि समुभावियो (दूहा ५१५) ।

सखिए ऊगट मॉजिणउ खिजमति करइ अनत ।

सवोधन में यह शब्द दूहा ५२६ और ५३२ में भी आया है ।

वल्लहा—स० वल्लभ, प्रा० वल्लह, राज० वल्लहो, व्हालो, बालो । अन्य रूप—वालभ (= प्रियतम) । यह शब्द प्रिय (प्यारा और प्रियतम) के अर्थ में आता है । आदरार्थ बहुवचन ।

जइ—स० यदि, प्रा० जइ । अन्य रूप—जै, जे ।

तोइ—स० तदापि, प्रा० तोवि ।

विसारइ - स० विस्मृ, प्रा० विस्सर, राज० विसरणो, वीसरणो । प्रेरणा-र्थक—विसारणो । विसरणो और विसारणो का एक ही अर्थ होता है ।

खिण खिण इ०—अन्यार्थ—वह प्रियतम क्षण क्षण मे अपनी याद कराता रहता है और अपने आपको भुलवाता नहीं । (सभर = याद करना या याद आना) ।

दूहा २४ एह—यह, अन्य रूप—ए ।

हमारी—राजस्थानी रूप म्हारी है पर प्राचीन कविता में हमारो हमारी भी मिलता है ।

बुभुक्—स० बुब् ; प्रा० बुभुक्, राज० बुभुणो, हिं० वूभुना । वूभुणो क्रिया से भाववाचक मजा बुभुक् या वूभुक् बनती है । इसका अर्थ है समभ । मिलाओ—हिं० पहेली वूभुना । वूभुणो क्रिया का अर्थ राजस्थानी में समभना भी होता है । जैसे—

जाणता वूभुया नहीं वूभुि न कीया गौण ।

भूलाँ कूँ भूला मित्या पथ वतावे कौँण ॥

मुहिरुई—मुहिरुणो + इ (अधिकरण प्रत्यय) स० स्वप्न, प्रा० सुरण, सुविण, मुमिण, सिविण, सिमिण ।

साहित्य तथा दत्तकथाओं के प्रेम वर्णन में स्वप्न का विशेष महत्व है । कभी कभी केवल स्वप्न में दर्शन होने से ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है जैसे उषा का प्रेम अनिरुद्ध के प्रति । साहित्य शास्त्र में स्वप्न को तेतीस सचारी भावों में गिनाया गया है ।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि मारवणी ने ढोला को पहले कभी देखा ही नहीं था उसे स्वप्न में क्योंकर देखा और फिर विरह क्यों उत्पन्न हुआ । परन्तु उषा की भी यही अवस्था है । उसने भी अनिरुद्ध को पहले नहीं देखा था, और स्वप्न द्वारा ही प्रेम उत्पन्न होकर विरह उत्पन्न हुआ था । फिर मारवणी तो ढोला को एक वाग वचन में देख चुकी है—अवश्य ही अब उसे ढोला की आकृति स्मरण नहीं रह सकती । इसी लिये वह स्वप्न में ढोला को देखकर उसे पहचान नहीं पाती ।

मउ—स० मा', प्रा० सो, आबुनिक राज० सो ।

तुभुक्—अप० तुब्भ ।

दूहा २५ मुण्या—मुणनो क्रिया का मामान्य भूत, पुँल्लिग, बहुवचन । स० थु प्रा० मुण, हिं० मुनना ।

की—पूर्वी राजस्थानी में सत्रव प्रत्यय को (की, का, के) जाता है और पश्चिमी राजस्थानी में रो (री, ग, रे) ।

भाल—स० ज्वाला = जलन, ताप, लपट । अन्य रूप—भळ ।
मिलाओ—साहच मिलै न भल्ल बुभै रही बुभाइ बुभाइ । (कबीर)

मिर्च या राई आदि की चरपराहट या तीक्ष्ण स्वाद को भी भाल (हिं० भाल) कहते हैं । मिर्च खाते ही समस्त शरीर में एकदम आग सी लग जाती है । मारवणी के शरीर में भी वैसी ही विरहज्वाला प्रसृत हो उठी ।

ऊपन्नउ—स० उत्पन्न; प्रा० उ'पण, सामान्य भूत, पु०, एकवचन ।

दूहा २६ तनह—तन + ह (अपादान या सत्रध का प्रत्यय) ।

अपभ्रंश काल में अधिकांश विभक्ति प्रत्यय घिस घिसाकर ह के रूप में रह गए । अतः ह प्रायः सभी कारको के प्रत्यय का काम करता है । इससे अर्थ-बोध में असुविधा होने लगी अतः अपभ्रंश के उत्तरकाल में कारक सत्रध प्रकट करने के लिये अन्य शब्द या विभक्ति प्रत्यय जोड़े जाने लगे ।

जावइ—जावणो क्रिया का वर्तमान काल । अन्य रूप—जाइ (यह रूप केवल कविता में आता है) ।

वावहियउ—अप० वप्पीहा, हिं पपीहा । अन्य रूप—वावीहो, पपीहो, पपइयो । इसे संस्कृत में चातक कहते हैं । यह एक प्रसिद्ध पक्षी है । इसकी लंबाई प्रायः ५३ इंच होती है । मध्य भारत, नेपाल, बंगाल, आसाम, अराकान और मलय प्रायद्वीप में यह विशेष रूप से पाया जाता है । इसका रंग हरा और काला होता है । यह वर्ष में दो बार रंग परिवर्तन करता है । यह वागों में कीड़ों की तलाश में फिरता है । मई में अंडे देना प्रारंभ करता है जो सख्या में तीन होते हैं । इसका घोंसला भूमि से थोड़ी ऊँचाई पर कटोरी के आकार का बहुत ही सुंदर होता है ।

भारतीय साहित्य में इस पक्षी का वर्णन बहुत आया है । इसे लेकर भारतीय कवियों ने बड़ी सुंदर सुंदर उक्तियाँ कही हैं । गोस्वामी तुलसीदास का चातक प्रेम वर्णन (दोहावली) साहित्य की एक अपूर्व वस्तु है । चातक का प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है । चातक के विषय में यह प्रवाद है कि वह पडा हुआ पानी नहीं पीता । जब मेह बरसता है तो उसका जल ऊपर से ही ले लेता है । प्यास से चाहे मर जाय पर तालाब और नदी का पानी वह कभी नहीं पीता । यह भी प्रवाद है कि वह स्वाती नक्षत्र के दिन को छोड़कर और कभी बरसता हुआ पानी भी नहीं पीता ।

भाषा के कवियों ने मान रखा है कि वह जो बोली बोलता है सो 'पी कहां, पी कहां' इस प्रकार पुकारा करता है। इसी बोली कामोद्दीपक तथा विरहवर्धक मानी गई है। चातक विषयक कुछ सूक्तियाँ दी जाती हैं—

वप्रीहा, पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुवहि ह्यास ।
तुह जलि महु पुगु वल्लहउ विहू वि न प्रिय्र आस ॥ १ ॥
वप्रीहा, कइ वोल्लिएण निविण वारइ वार ।
सायर भणियइ विमल जलि, लहहिं न एक्कइ धार ॥ २ ॥

(हेमचंद्र)

चातक सुतहि पदावही आन नीर मति लेइ ।
मम कुल यही सुभाव है स्वाति वूढ चित देइ ॥ १ ॥
पपिहा पन कौ ना तवै तजै तो तन वेकाज ।
तन छूटे है कहु नहीं पन छूटे है लाज ॥ २ ॥
पपिहा कौ पन देखि करि धीरज रहै न रच ।
मरते डम जल मे पड्या तऊ न बोरी चच ॥ ३ ॥
ऊंची जाति पपीहरा पियै न नीचा नीर ।
कै मुरपति कौ जाँचई कै दुख सहै सरीर ॥ ४ ॥

(कवीर)

पपेया प्यारे कट को बर चितारथो
मे सूती छी अपणे भवन मे पिउ पिउ करन पुकाखो ।
दाधी ऊपर लूण लगायो दिवडे करवत साखो ॥ १ ॥
पपीहा रे पिउ को नॉव न लेइ ।
काइक जागे विरहिणी रे पीउ कछॉ निउ देइ ॥ २ ॥
पपइया रे पिउ की वॉणि न बोल ।
सुणि पावेली विरहिणी रे यारी रातेली पॉल मरोइ ॥
चॉच कटाऊँ पपइया रे ऊपर गलूँ लूण ।
पिउ मेग मे पीउ क्री रे तूँ पिउ कहे स कूण ॥ ३ ॥

(मीरॉ)

ज्यो चातक वम स्वाति-वूढ के वस ज्यो जीय ।
स्रदास, प्रभु, अति वम तेरे समुक्ति देखि धो हीय ॥ १ ॥
सन्ध री चातक मोहि जिय्रावत ।
ऐनेहि रेन गति हा पिय पिय तेसहि सो पुनि पुनि गावत ॥

अतिहि सुकंठ नाँउ प्रीतम को ताहि जीभ मन लावत ।
आपु न पियत सुधा रस सजनी विरहिन बोलि पिआवत ॥ २ ॥

चातक न होइ, कोउ विरहिनि नार ।

अजहूँ पिय पिय रजनि सुरति करि भूठेहि मॉगत बारि ॥
अति कूस गात, देखि सखि, याको अहनिंसि रटत पुकारि ।
देखो प्रीत आपुरे पसु की मानत नाहिँ न हारि ॥ ३ ॥

हौ तो मोहन के विरह जरी, तू कत जारत ?

रे पापी, तू पखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत ॥
सब जग सुखी, दुखी तू जल विन, तऊ न तन की विथा विचारत ।
सूर, स्याम विन ब्रज पर बोलत, हठि अगिलोऊ जनम विगारत ॥

(सूर)

जो, घन बरखै समय सिर, जो भरि जनम उदास ।
तुलसी, याचक चातकहि तऊ तिहारी आस ॥
उपल नरखि, गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कवहुँ दूसरी ओर ?
मान राखिबो, मॉगिबो, पिय सो नित नित नेहु ।
तुलसी, तीनिउ तव फत्रै, जव चातक मन लेहु ॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
जाचक जगत कनाउडो, कियो कनौडो दानि ॥
वधिक ब्रध्दो, पखो पुन्य जल, उलटि उठाई चोच ।
तुलसी चातक प्रेमपट गरतहुँ लगा न खोच ॥

(तुलसी)

दादुर-मोर-किसान-मन लग्यौ रहै घन मॉहि ।
पै रहीम चातक गटनि सरवरि को कोउ नाँहि ॥

(रहीम)

अरे पपेया बावरा, आधी रात न कूक ।
होळे होळे सुलगती, सो तैं डारी फूँक ॥
पीहू पीहू करणरी बुरी, पपीहा, बाण ।
थारो सहज सुभाव ओ, म्हॉरे लागै बाँण ॥

(राजस्थानी सुभाषित)

आसाढ—चातक का वर्णन वर्षा ऋतु में किया जाता है। वह वर्ष भर प्यासा रहता है, वर्षा के आने पर उसे प्यास बुझाने की आशा होती है (आषाढ में वर्षा का आरम्भ माना जाता है)। आषाढ में ही चातक को मेघ का प्रथम दर्शन होता है, अतः वह जोरों से पुकारने लगता है।

विरहिणि—स० विरहिणी। अन्य रूप—विरहिण-विरहिणि-विरहिणी, विरहण-विरहिणी।

दूहा २७ नह—स० अन्यत्, अन्य रूप—अनइ अने। जोधपुरी और गुजराती में ने और अने 'और' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। बीकानेरी आदि में और का प्रयोग होता है।

दुहुवॉ—दुहूँ = दोनों। ऑ विकारी रूप का प्रत्यय है जो यहाँ वॉ हो गया है। सबब कारक का चिह्न लुप्त।

सहाव—स० स्वभाव, प्रा० सहाव। अन्य रूप—सुहाव सुभाव, सभाव।

जत्र—त्रोत्रचाल की राजस्थानी में जद आता है।

घण—स० घन, प्रा० घण।

प्रियाव = प्रिय + आव = हे प्रिय, तू आ। आव आवणो क्रिया का आज्ञा का रूप है। न शब्द के साथ आवणो क्रिया की भी सधि हो जाती है। जैसे—संटेसा ही नाविया (दूहा १४०)।

कवियो ने पपीहे की बोली के कई अर्थ लिए हैं—(१) पी पी, (२) पी कहीं, पी कहीं, (३) पी आव, पी आव।

दूहा २८ गउख—स० गवान्।

गिरि—यह शब्द अधिकरण प्रत्यय 'पर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कमीर ने इसका ऐसा प्रयोग कई स्थलों पर किया है। जैसे—

विरहिणि ऊभी पथ सिरि पथी पूछै धाइ।

एक सबद कहु पीव का कवर र मिलैगे धाइ ॥

ऊँचदरी—ऊँचड + एरड। स्त्रीलिंग। एरड या एरो प्रत्यय स्वार्थ में लगता है। मिलाओ—वेगहरड (दूहा १३४) आवेरड (दूहा ६३)।

मत ही = कहीं न।

साट्टि—अरवी साहव। कविता में यह शब्द प्रियतम या पति के अर्थ में आता है। आजकल यह आदरार्थ सत्रोवन में प्रयुक्त होता है और पूरोप-वासी के अर्थ में भी आता है। अन्य रूप—सायत्र, सा'व (आवु०)।

बाहुङ्ग—बाहुङ्गो क्रिया का संभाव्य भविष्य । बहुङ्गो और बाहुङ्गो एक ही अर्थ में आते हैं । ये सभ्यतः बहु से निकले हैं । कुमारपाल प्रतिबोध में बाहुङ्गिञ्च शब्द गए हुए के अर्थ में आया है । कोष में इसे देशी शब्द कहा गया है । मिलाओ—हिं० बहुरि, बहुरना ।

को—स० कोऽपि, प्रा० कोवि, राज० कोइ, कोई । अतिम इ छद् की सुविधा के लिये लुप्त कर दिया गया है ।

गुण—इस शब्द के वात, प्रेरणा, वृत्ता, शक्ति, प्रकार आदि कई अर्थ होते हैं । देखो—दूहा ४६१ और ६४४ ।

आवङ्—सभाव्य भविष्य । कविता में सभाव्य भविष्य और वर्तमान कालो के रूप एक से होते हैं ।

चीत—चीत आवणो का अर्थ याद आना है । चीत (चीत भी) सभ्यतः चित् से बना है । मिलाओ—चौतणो=मन में लाना, सोचना और चितारणो=याद करना ।

दूहा २६ पाज—तालाव के चारों ओर मिट्टी जमा करके जो ऊँची भूमि बना दी जाती है उसे राजस्थानी में पाज या पाळ कहते हैं । हिंदी में इसके लिये पार शब्द आता है । उदाहरण—

वाई ऊभी सरवर-पाळ ऊँची चढै नीची ऊतरै ।

(नरसी मेहतेरो माहेरो)

दूहा ३० सोरठा—राजस्थानी में सोरठा दूहे का ही भेद माना जाता है । इसे सोरठियो दूहो कहते हैं । यह सोरठ देश का छद् है । करुणरस में इस छद् का अधिकतर प्रयोग किया जाता है । सुभाषित प्रसिद्ध है—सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी वात ।

चोर—अर्थात् दुष्ट, छिपकर सतानेवाला ।

चौच—स० चंचु, हिं० चौच । अन्य रूप—चंच, चौच, चूच ।

कटाविद्धू—कटावणो का सामान्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन । कटावणो काटणो का प्रेरणार्थक है ।

ज—यह अव्यय पद पूत्यर्थ या जोर देने के लिये जोड़ दिया जाता है ।

दीन्ही—प्रा० दिग्ण; देवणो क्रिया का (अनियमित) सामान्य भूत काल स्त्रीलिंग का रूप । अन्य रूप—(अनियमित) दिग्ध, दीध, दीधो-धी, दीन्ह । (नियमित) दयो दी ।

लोर—मिलाओ—हिं० लोरी ।

प्री—सं० प्रिय ।

दूहा ३१ निल—स० नील ।

पंखिया—पंख+इया (वाला अर्थ का तद्धित प्रत्यय) । निल-पंखिया निलपंखियों का संशोधन है ।

मगरि—स० मुकुल (= देह), प्रा० मउळ, मगुळ । राजस्थानी में मगर पीठ को कहते हैं ।

रेह—स० रेखा प्रा० रेहा, अंतिम स्वर का लोप ।

मति—देखो—ऊपर दूहा नं० २८ ।

पावस—स० प्रावृप् : प्रा० पाउस ।

तळफि—सं० तप् (?), प्रा० तळप्प । प्राकृत पिंगल सूत्र में यह तळप्प शब्द आया है ।

लिड—सं० लीड, प्रा० लीअ, अप० लीड । अन्य रूप—जिव, जिय, जी, जिया ।

देह—देवणो का सभाव्य भविष्य । ह पाठपूर्त्यर्थ जोड़ा गया है अथवा देव के य का स्थानापन्न है ।

दूहा ३२ तग—फारसी=हरा ।

तई—प्रा० अप० तई । देखो—दूहा २० ।

किडँ—क्यों । देखो—दूहा २० ।

चक्रोर—भारतीय साहित्य में जिन पक्षियों को अधिक महत्व दिया गया है वे चक्रवाक, चातक और चक्रोर हैं । चक्रोर साधारण तीतर से कुछ बड़ा होता है । हिंदी शब्दसागर में उसे एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर कहा गया है । यह नेपाल, नैनीताल तथा पंजाब और अफगानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में मिलता है । इसके ऊपर का रंग काला होता है । जिस पर सफेद सफेद चित्तियाँ होती हैं । पेट का रंग कुछ सफेद होता है । चोंच और आँखें रक्तवर्ण होती हैं । यह झुंड न रहता है और वैशाख ज्येष्ठ में बारह बारह अडे देता है । इसके पंख बहुत ही नयनाभिराम होते हैं ।

प्राचीन समय में राजा लोग इसे पाला करते थे और भोजन के समय खाद्य पदार्थ इसे दिग्गुरु खाते थे । यदि उनमें विष होता तो चक्रोर की दृष्टि पड़ते ही उसकी आँखें रक्तवर्ण हो जाती थीं और वह मर जाता था ।

चकोर चाँदनी का बड़ा प्रेमी होता है। चद्रमा की ओर टकटकी लगाकर बराबर देखा करता है। उसके विषय में प्रवाद है कि वह जलती हुई चिनगारियाँ खा जाता है। एक पक्षीप्रेमी सज्जन का कहना है कि उन्होंने चकोर को पत्थर के कोयले की जलती हुई चिनगारियाँ खाते देखा है। साहित्य में चकोर के विषय में बहुत सी सूक्तियाँ हैं। कुछ नीचे दी जाती हैं—

चित्त दै देखि चकोर त्यों, तीजै भजै न भूख ।

चिनगी चुगै अँगार की, चुगै कि चद-मयूख ॥

शीत ऋतु का वर्णन—

लगत सुभग सीतल किरन, निसिसुख दिन अवगाहि ।

माह ससी-भ्रम सूर त्यों रहत चकोरी चाहि ॥

(विहारी)

तै, रहीम, मन आपुनो कीन्हो चारु चकोर ।

निसि वासर लाग्यो रहै कृष्णचद की ओर ॥

(रहीम)

दूहा ३३ वाढत—वाढणो राजस्थानी में काटने या चीरने के अर्थ में आता है। अत वर्तमान का प्रत्यय है। अन्य रूप—वाढंत। नियमित रूप—वाढइ (वाढै) है।

दइ—पूर्वकालिक प्रत्यय कभी कभी लुप्त हो जाता है। अन्य रूप—देई-देई (कविता में)

लूण—स० लवण, हिं० लौन ।

मेरा—खड़ी बोली का प्रभाव। राजस्थानी व्याकरण के अनुसार मेरो होना चाहिए।

स—सो का सञ्चित रूप।

कूण—अप० कवण, हिं० कवन, कौन। अन्य रूप—कुण, कौण। वि० ऐसा ही भाव मीराँ के एक पद में आया है। देखो—दूहा २६ की टिप्पणी में उद्धृत मीराँ का तीसरा भजन।

दूहा ३४ रत—सं० रक्त, प्रा० रत्त, रात।

बोलइ—मीठे मीठे शब्द बोलकर विरह को जगाता है अतः।

काइ—सं० किं०। अन्य रूप—का, कह, कै (देखो-दूहा ६६०)। इसका अर्थ या होता है। मिलाओ—हिं० क्या तो, यह, क्या यह।

लवतउ—लवणो का वर्तमान कृदत्, स० लप्, प्रा० लव।

माठि—स० मष्ट, प्रा० मड । मिलाओ—मष्ट करहु, अनुचित भल नाहीं । (तुलसी)

करि—करणो का आज्ञा का रूप ।

परदेसी—परदेशवासी, प्रवासी ।

आँखि—आखनो क्रिया का आज्ञा का रूप । स० आ + नी, प्रा० आण ।

वि०—परदेशी शब्द के पहले 'काइ' (= या) शब्द लुप्त है ।

दूहा ३५ काइक—काइ + इक = कोई एक । यहाँ एक अनिश्चय के अर्थ म आया है । मिलाओ—केतीहेक (दूहा ६४६) । इस एक का कभी कभी क ही शेष रह जाता है । जैसे—आधीक रात = आधी एक रात (कोई आधी रात, लगभग आधी रात) ।

कहाँ—मिलाओ—हिं० कटे (= कहने से या कहने पर) । कछो का बहुवचन विकारी रूप ।

देह—सभाव्य भविष्य सामान्य भविष्य के अर्थ में अथवा देसी—देही इस सामान्य भविष्य का सञ्चित रूप ।

दूहा ३६ डूंगर दहण—अपने मर्मभेदी स्वर से पर्वतो में भी ज्वाला उठा देनेवाला । जिसके करुण शब्द से पर्वत जैसी कठोर चीजों में भी ज्वाला उत्पन्न हो जाय वह यदि विरही हृदय को जलन से विकल कर दे तो कौन वड़ी बात है ।

छोडि—प्रा० छुडु, छुड । आज्ञा का रूप—छुडणो, छाडणो, छोडनो । बोलचाल में छोडनो प्रयुक्त होता है ।

हमारउ—प्रा० अम्ह + रउ (संबंध चिह्न) । हमारो व्रज में तथा हमारो हिंदी में आता है । राजस्थानी के अपने रूप महारउ, म्हारउ हैं ।

पुकारियउ—पुकारणो क्रिया अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार से प्रयुक्त होती है ।

दूहा ३७ मए—व्रज का रूप, राजस्थानी रूप 'भया' होगा ।

मारु इ०—मिलाओ—चातक न होइ ए विरहिनि नार ।

(सूर)

(प्रग पद ऊपर दूहा २७ की टिप्पणी में देखो ।)

दूहा ३८ बोलग—बोलण चाहिए । बोलणो + अण । मिलाओ—हिं० बोलने ।

कता—रत या सञ्चयन, कंत, कता तीनों रूपों में प्रयुक्त होता है ।

नवि—इसके अर्थ न और नहीं तो (=अन्यथा) दोनों होते हैं ।

कौधउ—स० कृत; प्रा० किद्ध; सामान्य भूत, पुँल्लिंग, एकवचन का अनियमित रूप ।

जोर करणो—प्रबल होना, पूरे बल पर होना, पूर्णत्व को पहुँचना, मन में प्रियतम के लिये तीव्र भावनाओं का उत्पन्न होना ।

दूहा ३६ गहक्किया—गहक्कणो का सामान्य भूत, पुँल्लिंग बहुवचन । कविता में मात्राएँ पूरी करने के लिये कभी कभी अक्षर को द्वित्त कर देते हैं । गहकना=चाह या उमग से भरना, ललकना, उमगित होना (उमगित होकर बोलना भी) ।

मूँक्या—मूँकणो का सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन । स० मुच्, प्रा० मुच, मुक्क; राज० मुक्क या मुक । मिलाओ—गुज० मूँकवुँ । इसका अर्थ छोड़ना होता है । लक्षणा से 'दे देना' अर्थ है ।

धणियाँ—धणी का बहुवचन विकारी रूप । कर्म का प्रत्यय लुप्त । धणी का अर्थ पति और मालिक होता है । मिलाओ—हिं० धनी (द्वार धनी के पड़ रहे धका धनी का खाइ—कवीर) ।

धण—यह शब्द राजस्थानी में नायिका, स्त्री, प्रेयसी इन अर्थों में आता है । इसका पुँल्लिंग धणी है जो धण से ही बनाया गया है । इसकी व्युत्पत्ति स० धन्या से की गई है पर स० धन से भी हो सकती है । पुराने जमाने में स्त्री को भी एक प्रकार का धन ही समझा जाता था । इसका पुँल्लिंग धणी सभवतः धनिन् (धनवाला—स्त्रीवाला) से बना हो । इसका प्रयोग अपभ्रंश काल से मिलता है । राजस्थानी में तो यह बहुत आता है । आधुनिक गीतों में भी इसका प्रयोग खूब होता है । कवीर और जायसी में भी यह आया है । पीछे दूहा ८ में यह सामान्य रूप में स्त्री के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । प्रयोगों के उदाहरण—

ढोला सामळा धण चपावणणी । (८-४-३३०)

सामि पसाउ, सलज्जु पिउ, सीमा सधिहिँ वासु ।

पेक्खवि बाहु वलुल्लडा धण मेल्लइ णीसासु ॥ (८-४-४३०)

(हेमचंद्र)

धन मैली, पिउ ऊजला, लागि न सककौँ पाइ । (५-३६)

(कवीर)

ढो० मा० दू० २५ (११००-६२)

- (१) धनि सूत्रै भरे भादौ मॉहा । अत्रहुँ न आण्हि सींचेन्हि नाहा ।
 (२) वरस दिवस धनि रोइकै हारि परी चित भुखि ।

मानुस घरि घरि वूमिकै वूमै निसरी पखि ॥

(जायसी—नागमती-वियोग—खड १७)

- (१) उदियापुरसँ वीज मॅगाय, ओ धण वारी रे हजा ।
 जोधाखेरी वाइयो मे नीवू नीपजै ओ राज ।
 माखणियारी पाळ वॅधाय, ओ धण वारी रे हजा ।
 दूधो ने सींचावो ढोलाजीरो नीवूडो ओ राज ॥

- (२) धण रे आँगण वाग लगावो
 सायव मिलखेरे मिस आवो ।

- (३) थॉने आय पुजाथ्यो गणगोर,
 सुदर धण, जात्रा दो जी ।

(४) आवो, ए कुरजाँ, वैंडो म्हॉरी पास, कुणारी तो भेजी अठे
 आई जी म्हॉरा राज । थॉरी धणरी तो भेजी अठे आई जी थारी धणरा
 कागद साथ, भँवर, ये वॉच लेवो जी म्हॉरा राज ।

(राजस्थानी गीत)

सालण—सालणे का तुमंत रूप, हिं०—सालने । सालणो = सं० शल्य;
 प्रा० सल्ल ।

वूठैतो—वूठणो + ऐतो (वर्तमान कृदत का प्रत्यय) । अन्य रूप—
 वूठतो, वूठतो । व्याकरण के अनुसार यहाँ विकारी रूप वूठैते होना चाहिए ।

दूहा ४० गुणिय—स० गुणी ।

सगळो—स० सकल प्रा० सगळ, सयल, राज० सगळो । विकारी रूप ।
 सबब का प्रत्यय लुप्त ।

उच्छव—स० उत्सव, प्रा० उच्छव ।

दूहा ४१ उनमि इ०—मिल्लाओ—ऊँनवि आई वादली वरसण लगे
 अँगार ।

(कवीर)

वादली—अन्य रूप—वादली । वादल की व्युत्पत्ति कुछ लोग सं० वार्दल
 से करते हैं और कुछ लोग उसे देशी शब्द बनाते हैं । हेमचद्र ने देशी
 कहा है ।

प्रयोग—

ओ गोरी मुह गिजिअउ वदज्ञि लुककु मियकु ।
अन्नुचि जो परिहविय तरणु सो किवँ भँवइ निसकु ॥

(८—४—४०१)

चित्त—चित्त मे (या स्मृति में)—दूहा २८ ।

यो—इसकी सज्ञा मेह है । वदली को माना जाय तो या होना चाहिए ।

दूहा ४२ दिसई—ई अधिकरण प्रत्यय है, अन्य प्रत्यय ए, इ ।

मेड़ी—प्रा० । देखो—मेडय । मिलाओ—तस्स य सयणट्ठाण सचारिय-
कठमेड्यसुवरिं (सुपाहनाहचरिअ पृ० ३५१) ।

जीवसे—जीवणो का सामान्य भविष्य । से भविष्य का प्रत्यय है । अन्य
प्रत्यय—सी, सइ, स्सइ । आधुनिक बोलचाल की राजस्थानी में सी (जीवसी)
प्रत्यय प्रयुक्त होता है । कई मुसलमान जातियों से का भी प्रयोग करती हैं ।
देहाती बोली में भी से प्रायः आता है । जैसे—जासे ।

सनेह—सनेही । तुक के लिये अंतिम स्वर का लोप किया गया है । अथवा
विशेषण के लिये सज्ञा प्रयुक्त की गई है ।

दूहा ४३ काळी कंठळि—काली गोलाकार घटा । देखो—दूहा ५२१ ।

दूहा ४५ मिलउँली—मिलणो का सामान्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एक-
वचन, स्त्रीलिंग । राजस्थानी में भविष्यकाल के चार पाँच प्रकार के रूप होते
हैं । मिलसूँ मिलूँला (इनमें लिंगभेद नहीं होता), मिलूँली, मिलूँगी (इनमें
लिंगभेद होता है) ।

दूहा ४८ टवक —नगाड़े आदि का शब्द ।

भावार्थ—दादुर, मोर और मेघ का शब्द मानो नगाड़े की आवाज है
और बिजली, जो चमक रही है, मानो तलवार है । इस प्रकार मानो कोई
सेना उस विरहिणी पर चढ़ी आ रही है ।

दूहा ४६ कगार—यहाँ सरोवर आदि के किनारे ।

दूहा ५० नीळजियँ—निल्लज्जा, यहाँ विशेष्य के साथ साथ विशेषण
को भी बहुवचन किया गया है । साधारणतया तथा गद्य में ऐसा नहीं किया
जाता (ओकारात पुल्लिंग विशेषण इस नियम के अपवाद हैं) ।

मधुरइ मधुरइ—जोर जोर से गरजकर विरहवेदना को न जगा किंतु
अपनी धोमी धीमी मीठी आवाज से लोरी की भाँति उसे धीरे धीरे सुला दे ।

दूहा ५१ काइ—स० कापि, प्रा० कावि ।

कुरळी—कुरळनो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन । कुरलना राजस्थानी का एक बडा ही भावपूर्ण शब्द है । इसका प्रयोग विशेषतः कौंच, चातक, सारस, कोयल, मयूर आदि के कर्ण किंतु मधुर शब्द के अर्थ में होता है । उदाहरण—

(१) हूँ चातक ज्यूँ कुरळाऊँ जी ।

फछु वाहर कहि न जणाऊँ जी ॥

(२) मोर असाढाँ कुरळहे घन चात्रग सोई हो ।

(मीराबाई)

सरवर सँवरि हस चलि आए ।

सारस कुरळहिँ, खजन देखाए ॥

(जायसी—नागमती-वियोग खड)

अंवर कुजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सव ताल । (कवीर)

उवै—साधारण रूप वै है । मिलाओ—हिँ० वे, अगला दोहा देखो ।

मेळी—मिलाईँ, बंद की । अखि मेळी = सोई ।

दूहा ५२ कहिजइ—कहणी का कर्मवाच्य, आधुनिक रूप—कहीजै । अन्य रूप—कहियइ वै ।

पसू—पशु की भौति विवेकरहित ।

केग—केरो का बहुवचन । केरो सवध का प्रत्यय है ।

प्रा० केर, अप० केरअ । इसी से राजस्थानी रो, बँगला एर, ब्रज को, एव हिंदी 'का'—ये सवध प्रत्यय बने है ।

अणुराव—अनु + रव = पीछे पीछे बोलना । वैसा ही शब्द करना । अणुराव गूँज को भी कहते है ।

दूहा ५३ तिणका—बहुवचन = उनके ।

जिणकी इ०—अर्थात् जो प्रियतम से विछुड जाते हैं वे सदा इसी प्रकार कवण शब्द से गया करते हैं जो चारों ओर फैलकर गूँजने लगता है । मिलाओ—

अंवर कुजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सव ताल ।

जिनपै गोविद वीछुटे तिनिकै कवन हवाल ॥

अंवर घनहर छाइया वरसि भरे सव ताल ।

चातक ज्यो तरसत रहै तिनिकौ कवन हवाल ॥

(कवीर)

कुरभडियाँ कुरला रही, गूँजि उठे सव ताल ।
जिनकी जोड़ी वीछड़ी तिनका कोण हवाल ॥

(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५४ कूँभडिया—सं० क्रौंच, प्रा० कुच, कौचः राज० कुज-कूँज, कुंभ-कूँभ, कृ भ कूँभ, कृ भो कूँभो, कुरज, कुरभ कुरभो, कुजड़ी कुँभड़ी कुँभड़ी-कूँभड़ी । अनुवाद मे इसका अर्थ कुररी दिया गया है, जो ठीक नहीं है । हिंदी मे इसको करँकुल कहते हैं । यह सारस की जाति का पक्षी होता है और सरोवर आदि के जल के किनारे रहता है । यह झुंड बनाकर आकाश में उड़ता है । इसका स्वर बड़ा ही करुण होता है । राजस्थानी साहित्य में यह पक्षी चातक की ही भाँति महत्वपूर्ण है । चातक राजस्थान में नहीं होता, क्रौंच होता है अतः उसका महत्व और भी अधिक है । क्रौंच के करुण रुदन ने ही भारतीय काव्य रचना को जन्म दिया । आदिकवि वाल्मीकि की कवित्व शक्ति का आकस्मिक स्फुरण एक क्रौंच पक्षी के व्याध द्वारा निहत अपने प्रियतम के प्रति करुण रुदन को सुनकर ही हुआ था और भारतीय साहित्य की उस प्रथम काव्य कृति ने क्रौंच को अमर कर दिया है—

मा, निषाद, प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

थत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

क्रौंच के बच्चे निर्मल श्वेत वर्ण के होते हैं । स्त्रियों के गौर वर्ण से उनकी उपमा दी जाती है (कूँभ वचो गोरगियाँ खजर जेहा नेत—दूहा ४५७) । कहते हैं कि कुज पक्षी अपने बच्चों को छोड़कर जब चुगने जाता है तब वहाँ से उनको बराबर पुकारता रहता है और बच्चे भी बराबर गर्दन ऊँची किए उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं (देखो—दूहा २०२ से २०५) । कबीर ने भी इस भाव का एक दोहा कहा है (देखो—दूहा २०२ की टिप्पणी में अवतरण) ।
उदाहरण —

तूँ छै ए, कुरजाँ, भायेली, तूँ छै धरम की बहरण ।

एक संदेसो, ए बाईं म्हारी, ले उडो, ए म्हारी

राज, कुरजा, म्हारा पीव मिला दे ए ॥

(राजस्थानी गीत)

करळव—स० कलरव । यह शब्द प्रायः मधुर किंतु करुण शब्द के अर्थ मे आता है ।

वरोहि—वण (स० वन) + एहि (अधिकरण प्रत्यय) ।

द्रह—स० हृद, द्रह; प्रा० दह ।

दूहा ५५—दरग+इ । दरग=स० दुर्ग । अन्य रूप—दरंग, दुग्ग । अपभ्रंश और राजस्थानी में कभी कभी आगे का द्वित्त वर्ण Single कर दिया जाता है । कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि पुराने लेखक द्वित्त अक्षर लिखने का परिश्रम बचाने के लिये पूर्व अक्षर पर अनुस्वार का सा एक चिह्न कर देते थे (मिलाग्रो—उर्दू का तशदीद), वही बाद में भ्रम से अनुस्वार हो गया । मकड का मकड हो गया, द्रग्ग का द्रग, इसी प्रकार और भी ।

करवत—स० करपत्र, प्रा० करवत्त ।

बूही—बूहणो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन । राजस्थानी में वहणो (हिं० वहना) क्रिया चलना के अर्थ में आती है । कविता में, तथा कुछ देहाती बोलियों में यह क्रिया बुहणो और बूहणों के रूप में भी प्रयुक्त होती है । प्रयोग—

जिण मारग केहर बुहो लागी वास तिणॉह ।

ते खड़ ऊभा सूकसी नहिं चरसी हिरणाह ॥

(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५६ वइसि—वइमणो का पूर्वकालिक । वइस=स० उपविश्; प्रा० वइस । राजस्थानी में वैसणा और वैठणो दोनों रूप आते हैं ।

सारहली—स० शल्य, प्रा० सल्ल, साल, राज० सार । हली ऊनवाचक प्रत्यय । बढई के छेद करने के औजार को सार कहते हैं ।

सल्टियों—मिलाग्रो—हिं० सालना ।

दूहा ५७ समटॉ—समुटॉ के, यहाँ जलाशय के ।

वीट—(१) स० वृत, प्रा० विट = फल पत्तों आदि के डठल या बंधन । (२) स० विष्ठा । पक्षियों की विष्ठा को राजस्थानी में वीट कहते हैं । वि०—(ख) प्रति का ब्रेट (= ब्रेठकर) पाठ स्पष्टतर है ।

जामोपत्त—जाम (स० जन्म, प्रा० जम्म)+उपत्त (स० उत्पत्ति) । इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट नहीं है ।

मॉफिम रत्त—स० मध्यम रात्रि = आधी रात ।

दूहा ५८—कलिकल—स० कलकल, प्रा० कलयल ।

वाद—स० वातु ।

त्यॉ—विभारी रूप, कर्म का प्रत्यय लुप्त = उनको ।

दूहा ५६ पहलइ—हिं० परला; राज० पैलो, गुज० पेलुं ।

बूहा—(१) देखो दूहा ५५ मे बूही । (२) स० वृष्ट, राज० वूठो, बूहो ।

सोरठा ६० आवी—आवणो का पूर्वकालिक । आवी वहइ सयुक्त क्रिया है—आकर बहती है = आ बहती है (आ निकलती है) ।

एकणि—एकण + इ (अधिकरण प्रत्यय) । ण प्रत्यय स्वार्थ मे लगता है । एकण का अर्थ 'एक ही, अकेला' भी होता है ।

दूहा ६१ आडा—यह विशेषण बीच में क्रियाविशेषण का काम देता है ।

वणइ—वणनो का वर्तमानकाल, हिं० बनता है ।

जाणइ—जाणो कृदत संज्ञा का विकारी रूप, सबंध प्रत्यय लुप्त = जाने की ।

भत्त—हिं० भॉति, राज० भॉत = प्रकार, उपाय ।

वणइ इ०—अन्यार्थ—बीच में बन हैं, उन वनों मे जाने का अर्थात् वनों को पार करने का उपाय नहीं है ।

संदइ—सदउ का विकारी रूप । सदउ (सदो) राजस्थानी में सबंध का प्रत्यय है । ऐसा ही दूसरा प्रत्यय हदो है । इसकी व्युत्पत्ति प्रा० सुतो से की जाती है ।

हिलूसइ—हिलूसणो का वर्तमानकाल । स० उल्लस् ।

दूहा ६२ घउ नइ—मिलाओ—हिं० दो न ।

विनउ—मिलाओ—हिं० बना ।

लघी—लघणो का पूर्वकालिक (लघ+ई)

मिलउँ—अन्य रूप—मिलौँ, मिलूँ ।

दूहा ६३ आवेरि—स० अग्र, प्रा० अग्ग, राज० आगो, आघो, एरो । स्वार्थिक प्रत्यय है । मिलाओ—वेगोरो, जँचेरो ।

दूहा ६४ उपराठियाँ—पीठ किए हुए । देखो—दूहा ३५० और ३६३ ।

नइ—कर्म का प्रत्यय । वर्तमान रूप—ने । अन्य रूप—नूँ ।

इनके अतिरिक्त कूँ, कौँ, को, कौ, कहुँ आदि भी प्रयुक्त होते हैं ।

कहियाँह—कहना ।

दूहा ६५ हवॉ—हुवणो का सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन ।
अन्य रूप—हुवॉ ।

चवॉ—चवणो का सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन । प्रा० चव ।

छॉ—वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन । पश्चिमी राजस्थानी—हॉ;
हिं—हैं ।

पाठविसि—भेजेगी (तो) ।

दूहा ६६ थाहरइ—(१) थाहरणो का वर्तमान काल । अन्य रूप—
ठाहरणो, ठहरणो । (२) आधुनिक रूप—थारे = हिं० तुम्हारे; गुज० त्हारे ।

काजळ—अर्थात् मसि जिससे सदेश लिखा जाय ।

गहिलाइ—गहिलाणो का कर्मवाच्य, सभाव्य भविष्य । सं० गृहीत ।

कहवाइ—कहणो का प्रेरणार्थक, कर्मवाच्य, वर्तमानकाल = कहाए जाते
हैं । प्रेरणार्थक रूप—कहवाणो, कहावणो, कहाड़नो ।

दूहा ६७—गॅमार—किसी शिकारी से अभिप्राय है ।

आखर—स० अक्षर, प्रा० अक्खर = प्रेरणा । प्रयोग—

काटी कूटी माछली छीं के धरी चहोडि ।

कोइ एक आखिर मनि बस्या, दह मै पड़ी बहोडि ॥

(कवीर)

सॅमार—अन्य रूप—सॅवार, सम्हाल ।

दूहा ६८ हुवइ—हुवणो का सभाव्य भविष्य ।

मनों—मन का बहुवचन, विकारी रूप, कर्म का प्रत्यय लुप्त = मनों को ।

वॅधॉड़ॉ—वॅधणो का प्रेरणार्थक वॅधाड़नो । सभाव्य भविष्य, उत्तम
पुरुष, बहुवचन । अन्य रूप—वॅधावणो ।

दूहा ७० भुइ—स० भू, जमीन, वीच की जमीन, अतः फासला ।

मॉगी तॉगी—मिलाग्रो—हिं० रोटी ओटी ।

दूहा ७१ ई—ही ।

किँ—स० किम्, अप० किंव, किवँ । यहाँ किमपि—कुछ का
मतलब है ।

अवाइ—सं० अपवृत्त (?) = विपरीत ।

दूहा ७२ मिळीजइ—मिळनी का आनाथ या कर्मवाच्य = मिलिए या
मिला जाता है ।

हूँ—अपादान का प्रत्यय । यह दूसरे अपादान प्रत्यय सूँ से बना है । राजस्थानी में स का ह प्रायः हो जाता है । मिलाओ—हिं० हू, हूं ।

मेल्लिहयइ—प्रा० मेल्ल, मिल्ल, आज्ञा का रूप । मेल्लिहणो क्रिया राजस्थानी में छोड़ना, भूलना, रखना, भेजना आदि अर्थों में आती है ।

दिणियर—सं० दिनकर; प्रा० दिणियर ।

दूहा ७३ हुति—हेतुहेतुमद्भूत = होता या होते । अन्य रूप—हुत, होत, हुता, होता (आधुनिक राजस्थानी) ।

दूहा ७४ वजउ—(१) सं० व्रजू; प्रा० वज । (२) सं० वा; प्रा० वाय, राज० वाज ।

उआँ—ऊ (= वह) का विकारी रूप । कर्म का प्रत्यय लुप्त । अन्य रूप—वाँ ।

लाख पसाउ—सं० लक्ष+प्रसाद । पुराने जमाने में राजा लोग बहुत प्रसन्न होकर कवियों आदि को कई प्रकार के पुरस्कार देते थे जिनमें लाख-पसाव, कोड़पसाव और अड़बपसाव मुख्य है । इन नामों का मतलब है प्रसाद या अनुग्रह करके लाख, करोड़ या अरब द्रव्य का दान देना । अड़बपसाव करनेवाले राजा इनेगिने ही हुए हैं । पहले वास्तव में इतना द्रव्य दिया जाता था पर बाद में तो लाख आदि का नाम ही नाम रह गया । यह आवश्यक नहीं था कि पुरस्कार में नकद द्रव्य ही दिया जाय । जागीर, घोड़े, हाथी, वस्त्र आदि भी दिए जाते थे । राजस्थानी साहित्य में नीचे लिखे दानी प्रसिद्ध है—

१ (१) सिंध का राजा ऊनड़—इसने नौ लाख गाँववाली सिंध की समस्त भूमि एक ही दिन में दान दे डाली ।

(२) अजमेर का गौड़वशी राजा बच्छराज—इसने अड़बपसाव (एक अरब द्रव्य) दान किया था ।

१. (१) माई एहा पूत जण जेहा ऊनड़ जाम ।

दीधी सातूँ सिंध इम जिम दीजै इक गाम ॥

(२) देतो अड़बपसाव दन धिनो गोड बच्छराज ।

गढ अजमेर सुमेरसूँ ऊँचो दीसै आज ॥

(३) काढ दीध कमधज क्रमै, सवा कोड़ यह सींग ।

बीकाणे दाता बडा, उभै हुवा अरडींग ॥

(३) वीकानेर नरेश राजा रायसिंह ने सवा करोड़ का दान किया ।

(४) वीकानेर के राव लूणकरण का छुठा पुत्र करमसी—इसने एक चारण को करोड़ रुपए का दान दिया । जो कुछ पास था वह सब दे चुकने पर भी जब एक करोड़ की रकम पूरी नहीं हुई तब अपने कीरतसी नामक कुँवर को चारण के हवाले कर दिया ।

दूहा ७५ दिऊँ—आधुनिक रूप—दूँ ।

मेळइ—मेळनो मिळना का प्रेरणार्थक है ।

मुज्झ, तुज्झ—कारक प्रत्यय लुप्त । वि०—भाव के लिये मिलाओ—

काढि कलेजो में धरूँ, रे कौवा तूँ ले जाइ ।

ज्यों देसों म्हारो पिव वसै वे देखै तू खाइ ॥

दूहा ७६ जागवइ—जागवणो, जागणो का प्रेरणार्थक है । अन्य रूप—
जगावणो ।

परि—भों ति, ज्यों । मिलाओ—

तिल तिल बरख परि जाई । पहर पहर जुग जुग, न सेराई ॥

(जायसी)

गावै करि मगल चढि चढि गउखे मनै सूर सिसुपाल मुख ।

पदमिणि अनि फ़्लै परि पदमिणि, रुखमिणी कमोदणी रुख ॥

(कृ० व० री वेलि)

दूहा ७७ भौणी—मिलाओ—हि० भावनी ।

कुँमलौणी—कुमलावणो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन ।
अनियमित रूप । मिलाओ—विक्राणी, लजाणी ।

दूहा ७८ ऊमा देवड़ी—देवड़ा चौहान राजपूतों की एक शाखा है । ये सोनगरा चौहानों से निकले हैं । आजकल सिरोही का राज्य देवड़ों का है । देवड़ा नाम ज्यों पडा, इसका ठीक पता नहीं चलता । ख्यातों में लिखा है कि चौहान राजा आमराज के वहाँ देवी रानी होकर रही और उसके वंशज देवड़े कहलाए । कुछ लोग कहते हैं कि एक राजा का दूसरा नाम देवराज था जिसकी सतान देवड़ा कहलाई । (विशेष देखो, भूमिका)

ऊमा पिंगळ की स्त्री एव मारवणी की माता थी । कुशललाभ और जोधपुरीय कथानकों में उस काव्य का एक धुर सबध (प्रस्तावना या उपोद्घात) भी मिलता है जिसमें पिंगळ और ऊमा के विवाह की कथा दी गई है जो इस प्रकार है —

एक वारं राजा पिंगळ शिकार खेलने को गया । वहाँ उसे एक भाट मिला जिसने ऊमा के रूप की बहुत प्रशंसा की । नगर में लौट आने पर राजा ने अपने प्रधान को ऊमा के पिता सामंतसिंह के पास जालोर भेजा और ऊमा को माँगा । ऊमा की सगाई इससे पूर्व गुर्जर नरेश उदयादित्य (उदयचंद्र) के पुत्र रणधवल के साथ हो चुकी थी पर ऊमा की माता इस सन्ध से संतुष्ट नहीं थी । उसने पिंगळ को कहलवाया कि अमुक अमुक लग्न के दिन तुम आवू यात्रा के वहाने यहाँ आ जा और हम ऊमा का विवाह तुम्हारे साथ कर देंगे । उधर उक्त लग्न के थोड़े दिन पहले एक दूत लग्न लेकर उदयादित्य के पास भेजा गया । उदयादित्य से दूत ने कहा कि मैं मार्ग में बीमार पड़ गया इसलिये पहले न आ सका । उदयादित्य ने देखा कि लग्न पर बरात नहीं पहुँच सकती पर उसने रणधवल को बरात के साथ रवाना कर दिया । उधर लग्न पर पिंगळ पहुँच गया । जब गुजरात की बरात ठीक समय पर नहीं आई तो ऊमा का विवाह पिंगळ के साथ कर दिया गया क्योंकि तेल चढ़ी हुई कन्या कुमारी नहीं रखी जा सकती । उदयादित्य को यह खबर मिली तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ । उसने जालोर को घेर लिया । विवाह के बाद पिंगळ तो पूगळ पहुँच गया पर ऊमा साथ न भेजी जा सकी । इसलिये पिंगळ के प्रधान जेसळ ने एक बैलों की जोड़ी ऐसी तैयार की जो खूब तेज जाकर लौट आ सके और उदयादित्य के सैनिकों द्वारा पकड़ी न जा सके । उस जोड़ी को गाड़ी में जोतकर वह एक रात को जालोर गया और ऊमा को ले आया (विशेष देखो परिशिष्ट में (थ) और (भ) प्रति का प्रारंभिक अंश ।)

कहिवा—कहने (के लिये) । अन्य रूप—कहण ।

भणी—यह एक प्रत्यय है जो कई कारक प्रत्ययों का काम देता है ।

जैसे—

- (१) कर्म—जिम पहुँचो नळवर-गढ-भणी (को) ।
- (२) करण—छाना मिळिया भाऊ-भणी (से) ।
- (३) संप्रदान—घणा गरथ दिया तिण-भणी (को) ।
- (४) अपादान—मॉगी हूती राजा-भणी (से) ।

इसके सिवा यह 'प्रति' और 'पास' का भी अर्थ देता है । जैसे—

ऊमावो हूओ तुभ-भणी (प्रति) ।

नरवरगढ ढोलइ-भणी (पास) ।

(ये सव उदाहरण कुशललाम की चौपाइयों के हैं । देखो—परिशिष्ट में (य) प्रति ।)

दूहा ८० आखय—आखइ । इ का य हो गया है ।

दाइ—दाव (?) ।

दूहा ८१ सॉटिया—सॉट + इया (वाला अर्थ देनेवाला, प्रत्यय) = सॉटवाले, सॉटनी सवार । मिलाओ—ऊँटिया (ऊँटवाला, ऊँट का सवार) ।

पाठवइ—स० प्रस्थापम्, प्रा० पठव पठाव, राज० पाठवणो, पठावणो ।

तेड़न—तेड़नो का तुमंत रूप । तेड़ना क्रिया राजस्थानी तथा गुजराती में चलाने, न्यौता देने के अर्थों में प्रयुक्त होती है ।

काजि—हिंदी में भी यह शब्द 'लिये' के अर्थ में आता है ।

दूहा ८२ को—कोइ । इ लुप्त हो गया है ।

सँदेसड़ा—सं० सदेशक, प्रा० संदेस, अप० सदेसडउ, राज० सदेसड़उ (सदेसडो) । बहुवचन—डो प्रत्यय त्वार्थ में या अनादर में आता है ।

वगड—(१) राज० वाघड़ । (२) वगड़ या वागड़ विना बस्ती के देश को भी कहते हैं । अतः मरुभूमि के जगल के बीच में ।

विचाहू—बीच में ही । विच देशी प्राकृत शब्द है और हू ही का दूसरा रूप है ।

दूहा ८३ आवंत—(१) सं० आयात, प्रा० आवंत । आता हुआ है = आता है । (२) सं० आयाति; प्रा० आवंति । आवत, आवत ये रूप वर्तमानकाल के दोनों वचनों में प्रयुक्त होते हैं ।

वेच्या—वेचे हुए अर्थात् वेचे जाने पर । वेच्याँ पाठ हो तो 'वेचने पर' अर्थ होगा ।

लाख लहत—लाख रुपए लाते हैं, लाख रुपयों में विकते हैं (देखो—दूहा २८० और ३७०) ।

दूहा ८४ करे—कर + ए (पूर्वकालिक प्रत्यय) ।

दूहा ८६ अटभकइ—अचानक । मिलाओ—हिं० औचक ।

छिंजी—चमड़ी । विजली के चमकने के लिये यह क्रिया आती है । यह उगता सूचित करती है ।

सभ—स० सध्या. प्रा० संज्ञा ।

दूहा ८७ सोवन—सुनहरा ।

तहु—सं० तत्स, प्रा० तत्स; राज० तास, तस, तसु ।

अलत्ता—सं० अलक्तक ।

दूहा ८८ सउदागर—इस चरण में एक मात्रा कम है ।

लइ मन्न—मन लेकर, अपने अनुकूल पाकर या बनाकर ।

दीसइ—स० दृश्यते; प्रा० दीसइ, दीखती है, देखी जाती है ।

रायंगण—सं० राजागण ।

व्रन्न—सं० वर्ण । राजस्थानी में आगे के वर्ण पर का रेफ कभी कभी पूर्व वर्ण के नीचे चला जाता है । अन्य उदाहरण—धम्म (धर्म), क्रम्म (कर्म), क्रीति (कीर्ति), सोव्रन्न (सुवर्ण), त्रिमल (निर्मल), स्वग (स्वर्ग) ।

दूहा ८६ किह—प्रा० अप० किह, किहँ; हिं० कहाँ ।

पीहर—पितृगृह ।

विगतइ—विगत (व्यौरा) + इ (करण प्रत्यय) ।

दूहा ६० पुहकर—पुष्कर नामक स्थान ।

दूहा ६२ कन्हे—पास, से ।

एकति—अन्यार्थ—एक ।

दाखँ—दाखणो का सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन । दाखणो राजस्थानी क्रिया है जो संभवतः आँख के साम्य पर बना ली गई है ।

भंति—भॉति ।

दूहा ६३ जिसउ—स० यादृश; अप० जइस, राज० जिसउ, हिं० जैसा ।
लाखँ—हिं० लाखों ।

बगसइ—फा० बखशना ।

भड़—स० भट ।

सिर—पर, ऊपर ।

दूहा ६४ सुधू—सु + धू (स० दुहिता, प्रा० धूआ, धूया) । आधुनिक रूप—धी, धीवडी ।

ढोळइ तिण—ढोले में और उसमें ।

दूहा ६६ कउ—कोउ । देखो—दूहा ८२ में को ।

निरति—खबर, सुध ।

तियउ—अन्य रूप—तिको = वह । सो, वो, जो, इनकी जगह राजस्थानी में तिको, जिको-जको ये रूप भी आते हैं ।

जिकोइ—जिको = जो । अन्यार्थ—जि = जो + कोइ = कोई ।

दूहा ६७ सुँ—छुद पूर्वर्थ ह्रस्व कर दिया गया है ।

कह—कहता है । वर्तमान काल ।

छानी—स० छन्न, प्रा० छरण = प्रच्छन्न, गुप्त, छिपा । स्त्रीलिंग ।

से—सो

तथ्य—स० तथ्य = रहस्य ।

दूहा ६८ सही—सखी ।

समाँणी—समान उम्र की ।

मल्हपत—प्रा० मल्ह (=लीला करना) । लीला के साथ धीमे धीमे चलना ।

नेडी—सं० निकट, प्रा० णिअड, नेड विशेषण, स्त्रीलिंग ।

दूहा ६६ सॉभळिया—स० सभल, प्रा० सभल, गुज० सामळबुं ।

मूक्यउ—सं० मुक्त, प्रा० मुक्क ।

दूहा १०० विमासियउ—स० विमश, प्रा० विमस्स ।

दूहा १०२ माँगणहार—याचक । यहाँ याचक जाति के पुरुष से अभिप्राय है । चारण, भाट, ढोली, ढाढी आदि याचक जातियाँ कहलाती हैं ।

गारा—फारसी गर प्रत्यय, जो सभवतः संस्कृत कार से बना है । राजस्थानी में यह वाला या करनेवाला के अर्थ में आता है । मिलाओ—कामणगारा ।

रीभ्वइ—रीभ्वणो रीभ्वणो का प्रेरणार्थक है । अन्य रूप—रिभावणो ।

ल्यावइ—लावइ का रूपांतर ।

दूहा १०३ मोकळि—स० मुक्त, प्रा० मुक्क, मोक्कल, गुज० मोकळबुं । आशार्थ ।

उत्तिम—उत्तम ।

मगता—याचक । आजकल मँगता बुरे अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

घररा—घर के, अपने ।

जगावइ—सगीत द्वारा विरह को उद्दीप्त करें ।

दूहा १०४ भेदक—स० भेदक ।

दूहा १०५ ढाढी—विवाह, जन्मोत्सव आदि शुभ अवसरों पर बघाई आदि के गीत गानेवाले मुसलमान गवैए । प्रयोग—

हो तो तेरो घर घर को ढाढी सरदास मो नाउँ । (सूर)

श्री गौरीशंकर हीराचद ओभा ने हमारे पूछने पर लिखा है—‘ढाढी जाति की उत्पत्ति का ठीक ठीक पता नहीं चलता, परतु अदाजे से ढाढी शब्द लगभग १६वीं शताब्दी से काम में लाया जाता है। जब वे इस नाम से पुकारे जाने लगे, करीब करीब उसी समय से मुसलमान हो गए थे। सभवतया पहले वे ढोली या भाट थे, परतु मुसलमान होते ही वे अपनी जातिवालों से नीची निगाह से देखे जाने लगे और ‘ढाढी’ कहलाने लगे। ढाढियों और ढोलियों का पेशा एक ही सा है—उत्सवों पर गाना, बजाना, बदीजन और सदेशवाहक का काम करना। ढाढियों का अब तक यही पेशा है और वे सारे हिंदू रीति रिवाजों का पालन करते हैं। वास्तव में मुसलमान तो वे केवल नाम के हैं।

राजस्थान में अब भी कोई उत्सव या मंगलकार्य ढाढियों के सहयोग बिना अधूरा ही समझा जाता है। गढों के द्वार पर नौबत और शहनाई यही बजाते हैं। सवारी के समय नगाड़े और तुरही बजाते हुए और विरुद गाते हुए निशान का (भंडा) हाथ में लिए घोड़ों या ऊंटों पर चढ़कर वही सबसे आगे चलते हैं। जान पड़ता है, पहले युद्धयात्रा के समय भी ऐसा ही होता रहा होगा। वे अपने यजमानों की वीरगाथाओं को कविताबद्ध भी करते रहे हैं और शांति के समय उनका विरुद बखान कर, सगीत सुनाकर तथा वीरता या प्रेमपूर्ण सुदर सुदर कहानियाँ कहकर उनका मनोरजन भी करते रहे हैं। यजमानों का भी उनपर सदा से अटल विश्वास रहा है। राजपूत जाति के इतिहास में युद्ध और प्रेम इन दो बातों का सदा प्राबल्य रहा और ढाढियों ने उनके दोनों प्रकार के कार्यों में पूरा सहयोग दिया है। अब भी इस जाति में बड़े बड़े गुणी, उच्चकोटि के गवैए, सब प्रकार के वाद्य बजानेवाले, कहानी कहनेवाले और अच्छे अच्छे कवि मौजूद हैं। हिंदी के सिद्धहस्त गद्य पद्य लेखक मुशी अजमेरी जी, जिन्होंने आगरा में महात्मा गांधी को अपनी विनोद और हास्यपूर्ण बातों से प्रसन्न किया था और अपने गानों और कथाओं से रिझाया था, इसी जाति के रत्न थे।

बोलाविया—स० बू, प्रेरणार्थक, प्रा० बोलावइ, बुल्लावइ; हिं० बुलाना राज० बोलणो का प्रेरणार्थक बोलावणो, सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन। यहाँ यह शब्द ‘बुला भेजने’ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, ‘पुकारने’ के अर्थ में नहीं।

ताळ—स० ताल । ताली ब्रजाने में जितना समय लगता है, उतना समय ।
क्षण, समय । उदाहरण—

‘तिणि वाळि सखी गळि स्यामा तेही’ । (वेलि १७७)

वागरवाळ—स० वागर, प्रा० वागर = विद्वान्, पंडित । वाळ प्रत्यय
(= हिं० वाला) । प्रत्यय यहाँ पर निरर्थक जान पड़ता है ।

विद्याव्यसनी होने के कारण कदाचित् ढाढियों को इस नाम से पुकारा
जाता है । धीरे धीरे इस शब्द का अर्थ याचक या गा बजाकर माँगनेवाला
रह गया है ।

दूहा १०६ सीख—स० शिन्ना, प्रा० सिक्खा, हिं० सीख । राजस्थानी
मे यह शब्द ‘त्रिदा’ के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है, जैसा कि इस स्थल पर
हुआ है ।

मेल्हि—स० मुच्, प्रा० मेल्ल, राज० मेल्लणो + इ (पूर्वकालिक
प्रत्यय) ।

तेड़ाविया—सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन । राजस्थानी—तेड़णो +
आव (प्रेरणार्थक प्रत्यय) तेड़ावणो + इया, प्रा० तेड़, राज० तेड़ा (संज्ञा) =
न्यौता, निमंत्रण, बुलावा ।

मागणहार - राज० मागणो + अण + हार । माँगनेवाला, याचक ।
मागण—स० मार्ग, प्रा० मग्ग, हिं० माँगना । हार (प्रत्यय)—स० धार;
हिं० हाग, हारा ।

दूहा १०७ दियण—राज० देणो + अण = देने के लिये । स० प्रा० दा,
हिं० देना ।

कज—सं० कार्य, प्रा० कज, हिं० काज = लिये, के हेतु, निमित्त ।

कदे—स० कदा, प्रा० कदा, हिं० कत्र, राज० कद = किस समय ।

चालिस्यउ—(सामान्य भविष्य, मध्यम पुरुष, बहुवचन) स० चल्,
प्रा० चल, हिं० चलना, राज० चालणो ।

विहाण्—(अधिकरण) स० विभात, प्रा० विहाण = प्रभात में । उदा-
हरण—निद्दए गमिही रत्तड़ी ढडवड होइ विहाण् ॥

(हेमचंद्र ८-४-३३०)

अज—(क्रियाविशेषण) स० अद्य, प्रा० अज, हिं० आज ।

दूहा १०८ निसद्—स० निश, निशा, प्रा० निस, निसा = रात्रि में । ह
अधिकरण कारक का चिह्न है । मिलाग्रो—

जल त्रिन इस निसह त्रिन रबू ।

कवीरा कौ स्वामी पाइ परिकै मनैबू लो ।

(२१३—३७६)

म्हे—(सर्वनाम, कर्ता कारक, बहुवचन) स० अस्मत्, प्रा० अम्हे, अप० अम्हइ, अम्हे, हिं० हम ।

बहिस्थ्यो—(भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन) सं० वह, प्रा० वह, हिं० वहना = चलेंगे । राजस्थानी में यह शब्द मनुष्यों के अथवा वाहन के मार्ग चलने के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

पथी—स० पथिन्, प्रा० पथिय ।

जीव्या—(सामान्यभूत, पुल्लिंग, बहुवचन) स० जीव, प्रा० जीव, हिं० जीना = जिए, जीते रहे ।

मुया—सं० मृत, प्रा० मुअ, मूअ, हिं० मुए, मर गए तो ।

त—(अव्यय) स० तद् या तु, राज० हिं० तो, तत्र = त, उस दशा में ।

‘सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाडी भोल’ ।

(कवीर)

किसी शब्द पर जोर देने के लिये राजस्थानी में स, त, ज का निरर्थक प्रयोग भी होता है ।

दूहा १०६ भगताविया—स० भुज्, भोग, हिं० भोगना, भुगतना, भुगताना; राज० भोगणो, भोगावणो (प्रेरणार्थक), भुगतणो, भुगताणो, भुगतावणो (प्रेरणार्थक) । राजस्थानी मुहावरे में यह शब्द सदेस के साथ साधारणतः प्रयुक्त होता है, जैसे—‘सदेसो भुगतावणो’ ।

मारू—स० मरु, प्रा० मरु, मरुअ ।

(१) एक राग जिसको माँड़ भी कहते हैं । इस राग की उत्पत्ति मरुस्थल से हुई जान पड़ती है अथवा मारवाड़ में अधिक गाए जाने से इसका नाम ‘माँड़’ पड़ा, जिस प्रकार पूर्व से ‘पूर्वी’ सिंध से ‘सिंधरा’ और सौराष्ट्र से सोरठ । मारवाड़ में अब तक यह राग सबसे अधिक लोकप्रिय है और उत्सव के अवसरों पर गाया जाता है । ‘सोरठ’ और ‘देश’ का भी राजस्थान में बहुत प्रचार है परंतु उतना नहीं जितना माँड़ का ।

पहले जब राजस्थान भारत का आदर्श युद्धक्षेत्र बना हुआ था, तब योद्धाओं को उत्साहित और उत्तेजित करने के लिये इसी राग में त्याग, वीरता

ढो० मा० दू० २६ (११००—६२)

और यश के गान गाए जाते थे परंतु ज्यों ज्यों यह देश विलासभूमि बनता गया और अपने उच्च आदर्श भ्रष्ट होकर 'दाखड़ा पियो और मारूडा गाओ' तक ही रह गया, त्यों त्यों इस राग ने भी पलटा खाया और इसमें श्रृंगाररस का प्रवाह बहने लगा । रात्रि के समय जब कोई इस राग में विरह की डेर लगा देता है तो हृदय व्याकुल हो जाता है ।

मॉड संपूर्ण राग है । इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । यह श्री राग का पुत्र समझा जाता है । मागवाड़ के गवैए ढोला मारू के प्रसिद्ध दूहे इस राग में बड़े सुंदर ढंग में गाकर मन को लुभा लेते हैं । मॉड राग की चीजों में जब तक ग्रीच वीच में ढोहे नहीं रहते तब तक उसका मजा अधूरा ही रहता है ।

(२) इस शब्द का दूसरा अर्थ मरुत्थल निवासी भी होता है । जयपुर निवासी विहारीलाल कवि ने इस अर्थ में प्रयोग किया है—

मरुधर पाय मतीरु मारू कहत पयोधि । (विहारी)

आधुनिक राजस्थानी में 'ढोला' की तरह यह शब्द केवल 'नायक' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जैसे—पन्ना मारू, जल्ला मारू । उदाहरण—

आई रे आई, मारू, सावणियाँरी तीन, राज सइयाँ,
कसूवो रे म्दारा गाढा मारू ओढियो ।

(प्रचलित 'कसूवो' गीत)

निपाइ—स० निष्पट, प्रा० निष्पात्र, राज० निपाणो, नीपाणो, नीपावणो;
हि० निपजाना = बनाकर, रचकर । उदाहरण—

जिनि नीपायौ तदि निकुटी ए मठ पूतळी पाखाण मै । (बेलि ११०)

तियाँ—सं० तत्; हि० तिन = उनको । विकारी रूप, कारक प्रत्यय लुप्त ।
अन्य रूप—त्याँ ।

दूहा ११० सुहॉमखड—(विशेषण) स० शुभ, प्रा० सोह, राज० सोहणो +
आँमणो (प्रत्यय) । अन्य रूप—सोहणो, सुहावणो, सुवावणो । मिलाओ—
हि० सुहावना ।

पहियाह—सं० पथिक, प्रा० पहिय; राज० पहिय + आ (सवोधन-
चिह्न) + ह (पाठ पूर्ववर्क) = हे पथिको ।

दूहा १११ सदेसा—सदेसाँ होना चाहिए । अनुस्वार का लोप हो गया है । विकारी रूप, करण कारक का प्रत्यय लुप्त ।

लख लहइ—स० लक्ष; प्रा० लक्ख; हिं लखना, राज० लखणो = जान लेता है। 'लख' धातु है जो लहइ से मिलकर सयुक्त क्रिया बनाता है।

लहइ—सं० लभ, प्रा० लह, हिं लहना, राज० लहणो। केवल कविता में प्रयुक्त होता है।

आखइ—(सभाव्य भविष्य) स० आख्या; प्रा० अक्खा, अक्ख, हिं० आखना, राज० आखणो। (क) में, जो अब तक प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है, इस दूहे के प्रथम और दूसरे 'आखइ' के स्थान पर क्रमशः 'देखूँ' और 'देखै' पाठ है, जो 'दाखूँ' (कहती हूँ) और 'दाखे' (कहे) के स्थान पर प्रतिलिपिकार की गलती से लिख गया जान पड़ता है। (क) का यह पाठ रखने से अर्थ होता है—'जिस प्रकार मैं आँखें भरकर देखती हूँ, उसी प्रकार यदि वह देखे'—जो ठीक नहीं जँचता।

दूहा ११२ बलि—सं० बल, प्रा० बल, हिं० बलना, वरना। पूर्वकालिक। प्रयोग—

कमल बालि विरहिणी वदन किय,

अब पाळि सजोगि उर। (बेलि २२२)

महु कतहो गुडट्टि अहो कउ भुंफडा बलति।

(हेमचंद्र ८-४-४१६)

कुइला—स० कोकिल, प्रा० कोइला, हिं० कोयला।

ढँढोलिसि—सं० दुदनम्, प्रा० दुदुल्ल, ददुल्ल, दढोल, राज० ढँढणो, दढोलणो, हिं० ढँढना, ढँढोरना। प्रयोग—

(१) सायर माहि ढँढोलतौ हीरा पड़ि गया हथ्य।

(कबीर)

(२) दुपहर दिवस जानि घर सूनो, ढँढि ढँढोरि आप ही आयो।

(सूर)

दूहा ११३ यूँ—(अव्यय) अप० एम्ब, इम्ब, एवँ, इवँ, राज० एम, इम, इयुँ।

प्राणियउ—प्राण + इयउ (अनादरवाचक प्रत्यय) = बेचारा प्राण।

भळ—स० ज्वाल; हिं० भल, भार = ताप, दाह, उग्र कामना, उत्कट इच्छा। उदाहरण—

(१) भौँखाँणा उरि उठी भळ। (बेलि १४०)

(२) साहिव मिलै न भल्ल बुभै, रही बुभाय बुभाय।

(कबीर)

दूहा ११४ ओळग—स० अपलग्न, अप० ओळग; राज० अळगो, हिं० अलग = दूर, जुदा, भिन्न, पृथक् ।

रूडा—स० रूढ = प्रशस्त, हिं० रूरा = अच्छा, भला, प्रशंसनीय ।
मिलाओ—

लटकन ललित ललाट लट्ट गी,
दमकन द्वै द्वै द्वैनुगिया रूरी । (छर)

दूहा ११७ साव—गजस्थानी में 'साख' फसल को कहते हैं ।

दूहा ११८ उपाड़ियड—स० उत् + पाठ्य, प्रा० उप्पाड़िय; राज० उपा-
दणो, हिं० उपाड़ना = ऊपर उठाना, उखेड़ना । उदाहरण—

ऊपड़ी रजां मफि अरक एहवो । (बेलि ११५)

दूहा ११६ वइसइ—स० उपविण, प्रा० वेस, वईस, गुज० वेसवुँ, राज०
वैसणो = बैठना । उदाहरण—

ते मटिग खाली पड़े, वैसण लागे काग । (कत्रीर)

दूहा १२० मडरियठ—स० मुकुलित, प्रा० मडरिअ, मडलिअ, हिं०
मौग्ना = मजरी युक्त होना । उदाहरण—

मारगि मारगि अत्र मौरिया । (बेलि ५०)

चुटइ—प्रा० चुट । राजस्थानी में (और अपभ्रंश में भी) कभी आगे
द्वित्व वर्ण होने पर उसे एक करके पूर्व वर्ण को सानुस्वार कर देते हैं और
कभी इसके विपरीत अनुस्वार को हटाकर आगे के वर्ण को द्वित्व कर देते हैं ।

दूहा १२१ कण—(स०) धान्य ऋण । उदाहरण—

ऋण एक लिया क्रिया एक मण कण । (बेलि १२८)

करसण—स० कर्षण, प्रा० करिसण । इसी से राजस्थानी में करसा
(= किसान) और हिं० किसान बनता है ।

भोग—(स०) उपभोग, कर । इससे राजस्थानी भोगता शब्द (= जमीं-
दार, जागीरदार) बना है ।

दूहा १२२ फट्टि—स० स्फुटित, प्रा० फट्टिय (सामान्य भूत), राज०
फाटणो, हिं० फटना । जोरण फाट्टि इत्यादि, मिलाओ—

रगर टिया वटन नित जाई । टुक टुक होईकं विहगई ॥

निरत दिवा करटु पिय देण । दीट दवंगरा मेरवहु एका ॥

(जायसी)

तलावडी—सं० तडाग, तडागिका, प्रा० तलाग, तलाइआ; राज० तलाव;
हिं० तलैया । डी ऊनवाचक प्रत्यय ।

पाळि—स० पालि, राज० पाळ, पाज, हिं० पाल, पार = मेड, जलाशय
का किनारा । मिलाओ—

ट्ट पाळ सरवर बहि लागे । (जायसी)

सरवरिवारी, बीग, ऊँची नीचो रे पाळ एक चहूँ दूजी ऊतरुँ ।

(राजस्थानी गीत)

दूहा १२३ पैहचाइ—स० प्र + भू, प्रा० पहुच्च, अप० पहुच्चइ (हेम-
चंद्र), राज० पूचणो; हिं० पहुँचना । प्रेरणार्थक, आज्ञा ।

दूहा १२४ पही—सं० पथिक, प्रा० पहिआ ।

घातउ—प्रा० घत्त, राज० घातणो, घालणो । आज्ञा । मिलाओ—मराठी
घेत, घेतले । उदाहरण—

धर श्यामा सरिस स्यामतर जलधर घेघूचे गळि बाहॉ घाति ।

(बेलि २०१)

दूहा १२५ निकसी वेणी सापणी इत्यादि—ऐसा प्रसिद्ध है कि साँप के मुँह
में स्वाती की बूँद पड़ने से विष बनता है, इससे संभवतः इसे सतोष और
शांति प्राप्त होती है (?) :

कदली, सीप, भुजग मुख, स्वाति एक गुण तीन ।

जैसी सगति बैठिए, तैसो ही गुण दीन ॥

(रहीम)

दूहा १२६ उत्तर—(स०) लक्ष्यार्थ में उत्तर का पवन, शिशिर वात,
जिसके चलने से लता गुल्म आदि जल जाते हैं । उदाहरण—

प्रज उदभिज सिसिर दुरीस पीडतौ

उत्तर ऊथापिया असन्न । (बेलि २४६)

दखिखण—लक्ष्यार्थ में दक्षिणात्य पवन । शीतल, मंद, सुगंधित वासतिक
ज्ञायु, जिसके चलने पर सूखी हुई वनस्पति में फिर से प्राण का संचार होता है
और नवाकुर प्रस्फुटित होने लगते हैं ।

वाजइ—स० वज, प्रा० वच्च, वज, वजइ, वाजइ = चलता है, चलती
है । राजस्थानी में हवा के चलने को 'हवा वाजणो' कहते हैं ।

दूहा १२७ ओखद—स० ओषधि = दवा, उपचार ।

दूहा १२८ सेहर—सं० शिखर, प्रा० सिहर । यहाँ पर शिखर पर गर्जन करने से—नायक का मेघ के रूप में गर्जन करके यौवन रूपी वाघ के दर्प को शान करने से—आशय है । वाघ को मेघगर्जन सुनकर क्रोध होता है, परंतु उस पर उदम वश नहीं चलता ।

दूहा १२९ कॅमळॉणी—सं० कु + म्लान, प्रा० कुम्मण, हिं० कुम्हलाना = मुरझाना, गतप्रभ होना । उदाहरण—

काटन बेलि कृपलै नेल्ही, सींचताड़ी कुमिळॉणी । (कवीर ,
सिसहर—सं० शशधर; प्रा० ससहर = चद्रमा । उदाहरण—
ससिहर कै वरि नूर न आने । (कवीर १५७-२०२)

दूहा १३१ खीर—सं० क्षीर, प्रा० खीर = दुग्ध । जिस प्रकार देवता और अमुंगे ने क्षीरसमुद्र का मथन कर लुर्य, चंद्र, विष, अमृत आदि चौदह रत्न निकाले थे, उसी प्रकार यौवन समुद्र का मथन करके प्रेमरूपी रत्न निकालने के लिये दोला का आह्वान किया जा रहा है ।

कादह—सं० कर्षण, प्रा० कड्दण = निकालना । उदाहरण—
उनि पनाल पाना वहँ काड़ा ।

क्षीरसमुद्र निरुसा हुत वाढा ॥ (जायसी)

दूहा १३२ केळिनि—सं० कदली (स्त्रीलिंग), प्रा० कयली, केळो का स्त्रीलिंग या केलोवाली (केले के वृक्षों की वाड़ी) । मिलाओ—कमलिनी (स्त्रीलिंग) । कहा जाता है कि स्वाती नक्षत्र में वर्षा होने पर कदली में कपूर पैदा होता है । यथा—

साँप गयो मुत्ता भयो, कदली मयो कपूर ।

आदि फन गयो तो गिख भयो, सगत को फल सूर ॥ (नूर)

व्याक सुव विष ज्यों, पीयूख ज्यों पपीहा मुख,

सीपा सुव मोती, कदली मुज कपूर है । (टव)

दूहा १३३ साव—सं० स्वाद; प्रा० साद, साअ, साव । उदाहरण—

(१) नगँ नाहगँ बनदलॉ, पाकॉ पाकॉ साव ।

(पृथ्वीराज)

(२) अरंग प्रेम न चपिआ चपि न लीया साव । (कवीर)

सुष्ट—सं० मञ्ज = गन्ने का भोजन, पायेय ।

वैसासण्ट—सं० विश्वास, प्रा० विस्वाम, वीसास, गल० वैसासणो ।

अरुप्रणय = विश्वास करने से । उदाहरण—

मनि परतीति न ऊपजै, जीव वैसास न होइ ।

(कत्रीर)

पाठांतर—‘सावज सकळ तोडस्यइ वैसासणइ न जाइ’—अर्थात् मेरा यौवनरूपी अदमनीय हिंस्र पशु बधन को तोड़ा चाहता है, उससे (शात) बैठानहीं जाता ।

सावज—स० श्वापद = जगली हिंस्र पशु । प्रा० सावय, गुज० सावज । उदाहरण—

सावज सीह रहे सव मॉची, चद अरु सूर रहे रथ खॉची ।

(कत्रीर)

संकळ—स० शृखला, प्रा० सकल, सकला; हिं० साँकल । बधन, शील-मर्यादारूपी बधन ।

वैसासणइ—सं० उपविश, प्रा० वैस, वईस, गुज० वेसवुँ; राज० वैसणो = बैठना, शात होकर रहना ।

ते मदिर खाली पड़े, वैसण लागे काग । (कत्रीर)

दुहा १३४ हेक—स० एक । एरु और उससे बने हुए शब्दों का ए राज-स्थानी में प्रायः हे हो जाता है । मिलात्रो—हेकठा । उदाहरण—

हेक वडो हित दुवै पुरोहित, वरैसुसा सिसुपालवर ।

(बेलि ३५)

वेगहरउ—स० वेग, राज० वेगो (विशेषण)+एरउ या एरो प्रत्यय (स्वार्थ मे) । मिलात्रो—भलेरउ, आघेरउ, बडेरउ ।

दुहा १३५ भमतउ—स० भ्रम, प्रा० भम, राज० भम या भँव+अतउ (वर्तमान कृदन्त प्रत्यय) ।

कणयर—स० कर्णिकार, प्रा० कणिणयार, हिं० कनेर, कनियर = एक पुष्पवृक्ष विशेष ।

कव—सं० कवा, कत्री, प्रा० कव, कवा = लीलायष्टि, हाथ में रखने की छड़ी, बाँस की छोटी डाली । किसी पेड़ से काटी हुई, हाथ में रखने की अथवा पशु को त्वरित करने की, छोटी डाली ।

सुरत्त—स० स्मृति = याद, ध्यान, सुरति । उदाहरण—

सुरति समॉणी निरति मे, निरति रही निरधार । (१४—२२)

दुहा १३६ सात सलॉम से केवल सात बार ही अभिवादन करने का आशय नहीं है वरन् अनेकानेक प्रणाम का आशय है ।

यी—सं० तः (अपादान विभक्ति चिह्न) = से । मिलाओ—
तरवर थे फल झड़ पडे ऋरि न लागे डार ।

(कवीर)

दूहा १३७ विललंती—सं० विलाप अथवा अनु० शब्द विल विल
करना = विलखना, विलाप करना ।

(१) आघाई सीसी बुलखि विरहवरी विललात । (विहारी)

(२) एरु लड़े ही लहे, और खडा विललाड । (कवीर)

‘पग में महइ लीहटी’—मिलाओ—

चार चगन नग लेखति धरनी ।

नृपुर मुखर मधुर कवि वरनी ॥

स्वभावोक्ति का बड़ा सुंदर उदाहरण है ।

आदृष्ट—बीचनी है, कुरेदती है । मिलाओ—भिन्न प्रयोग दोहा
१३१ में ।

लीहटी—सं० रेखा, प्रा० लेहा, गज० लीह+ते (ऊनवाचक प्रत्यय)

दूहा १३८ हर—सं० स्मर, प्रा० महर, हर = आकाक्षा, अभिलाषा,
उत्कृष्ट इच्छा । गजस्थानी का साधारण प्रचलित शब्द है । उदाहरण—

हर म करो अनि गय हर । (बेलि ७७)

मनह—(सं० मनस्) मन से, मन में । उदाहरण—

(१) मनह मनोर्य छडि दे, तेरा किया न होइ । (कवीर)

(२) मनह उतागी झूठ कगि, नय लागी डोलै साथ । (कवीर)

हन—(१) हि० नहीं या विपर्यय । अथवा (२) ह = भी, न = नहीं ।

दूहा १३९ सावर—सं० सा+वर = वह सुंदरी स्त्री ।

अग्नेद—सं० आ+नी, प्रा० आ+णय ।

कपड़े—सं० कर्पटम्, प्रा० कपड, हि० कपड़े । उदाहरण—

पानि विनटा कपडा, क्या करे विचारी चोन ।

(कवीर)

पाठान—

सावरने नयणेदि—(१) शावरनयनी, मृगनयनी कामिनी के ।

(२) आँवों के प्रत्यक्ष सामने ।

(१) सं० शावर—मृग । (२) सं० सावरत=प्रत्यक्ष ।

दूहा १४० कागळ—अरबी—कागज; गुज० कागळ । उदाहरण—
कागळ दीधो एम कहि । (वेलि ५६)

नाविया—(राज०) न + आविया की संधि । इस प्रकार के प्रयोग प्राचीन राजस्थानी में मिलते हैं । मिलात्रो—गुज० नथी, सं० नास्ति ।

दूहा १४१ थाइ—स० स्था, प्रा० था । वर्तमानकाल । मिलात्रो—
ऊँची डाली पात है, दिन दिन पीले थॉहि । (७२—१३)

मोलइ—स० मूल्य, राज० मोल+इ (अधिकरण और कर्मविभक्ति का चिह्न)

दूहा १४२ वीजउ—स० द्वितीय; प्रा० विइज, राज० विओ, वीजो । गुजराती में भी प्रयुक्त होता है । देखो—‘विइजो वीओ’ । (हेमचद्र १—२४८)

वंभण मिसि वटै हेतु सु वीजो । (वेलि ७३)

आगळि—सं० अग्र, प्रा० अग्ग, स्वार्थ में ‘लो’ प्रत्यय ।

आगळि पितु मात रमती अगणि । (वेलि १८)

ठवइ—स० स्थापय, प्रा० ठव ।

वहिलउ—(अप० वहिल्ल), गुज० वहेलो ।

ऐककु कइअ ह वि न आव ही अन्नु वहिल्लउ जाहि ।

(हेमचद्र ८-४-४२२)

मोकळे = स० मुच् , प्रा० मुक्क (प्रेरणार्थक), गुज० मोकळवुँ, मराठी मोकलणे = भोजना । भविस्सत्तकहा में ‘मोकल्लइ’ का इस अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

दूहा १४३ पारेवा—स० पारावत, प्रा० पारेवय ।

भूज—स० दोला, प्रा० भुल्ल । कबूतर पालनेवाले घर के आँगन में एक लंबे बॉस के सहारे छत की ऊँचाई से कुछ ऊपर कबूतरों के बैठने का एक चौखट लगा देते हैं जिस पर कबूतर विश्राम करते हैं । बिल्ली कुत्ते आदि पशुओं से बचाने के लिये भूल बनाया जाता है ।

त्रुटि—स० त्रुट, प्रा० तुट्ट, तुड । त्रूटै कध मूल जड त्रूटै । (वेलि)

दूहा १४५ चाचरि—स० चर्चरी, प्रा० चचरी=फागुन में होलिकोत्सव के उपलक्ष्य में होनेवाले गान, नृत्य इत्यादि । चर्चरी होली में गाए जानेवाले राग विशेष को भी कहते हैं ।

(१) तुलसीदास चाचरि मिष्ठ कहैं राम गुन ग्राम । (तुलसी)

(२) खिनहिं चलहिं खिन चॉचरि होई ।

नाच कूद भूला सब कोई ॥ (जायसी)

भंपावेसि—(स० भूप्) उछलना, कूद पडना ।

(१) करि अपनो कुल नास, वहिन सो अगिन भंप दे आई । (सूर)

(२) नेनो अतरि आव तूँ, ल्यू हौं नेन भंपेउँ । (कबीर)

दूहा १४६ कुडियोँ—(१) स० कूट = कूटे हुए अनाज की राशि, ढेर । यथा—अन्नकूट । (२) देशीय कुड़ । कुरा, कूड़ा का भी यही अर्थ होता है । राजस्थानी मुहाविरा कूड़ा करना=खलिहान में काटे हुए धान्य की राशि का ढेर लगाना ।

दूहा १४७ वाहळा—(दे०) राजस्थानी में नुद्र बरसाती नदी या नाले के अर्थ में बहुधा प्रयुक्त होता है । उदाहरण—

अनि अँतु कोपि कुँवर उफणियौ, बरमालू वाहळा वरि (बेलि ३४)

दूहा १४८ धड़ि—स० धटिका, धटी । वस्तुराशि का तौल अथवा माप । यहाँ पर पृथ्वी के उद्विज पदार्थों की राशि से आशय है ।

महाग्ग—(स०) महा जलराशि । लान्घनिक अर्थ में यहाँ पर प्रेम-जलाव का आशय है ।

ऊमट्ट—स० उम्मडन, प्रा० उम्मटण, हिं० उमड़ना । बाढ आना, भर जाना, उलगकर चलना । पाटातर—कैना कहूँ = कहाँ तक कहूँ ।

सँभार—(१) सभारणों का आज्ञा का रूप = सम्हाल । (२) प्रिय-संबंधी एकचित्त विचारसमूह, स्मृतियों अथवा हृदयोद्गार ।

दूहा १४९ भवूभडइ—(अनु० शब्द) भवूकणो (= भवू भवू करके चमकना) से सजा । उदाहरण—

(१) मठिर माँहि भवूकती, दीवा केनी जोति । (कबीर ७३—१७)

(२) दृग या वे उच्चरयो गुन की लहरि भवूक्कि ।

(कबीर २५४—७४)

दूहा १५० वाजजियारी तीज—माद्रपद कृष्णपक्ष की तृतीया को 'कजली' अथवा 'वाजजियारी तीज' कहते हैं । राजस्थान में वर्षाऋतु और ऋतुओं से अधिक आनन्दप्रद होती है । जनता का वर्षासंबंधी आनंदोल्लास इस त्योहार के रूप में प्रतिगत हुआ है ।

विपता—स० विप्, प्रा० खिवण = विजली का चमककर प्रेरित होना । राजस्थानी आनन्दान की भाषा में बहुतायत से प्रयुक्त होता है । उदाहरण—

कहौ कौन खिंवै कहौ कौन गाजै कहौ थैं पाणी निसरै ।

(कबीर १७७—२६१)

दूहा १५१ जाळउ—स० जाल, राज० जाळो । मिल्यो—भूत कृदत, स्त्रीलिंग, बहुवचन=जाल की तरह मिल रही हैं । इस प्रकार मिल रही है कि जाल की तरह गुथी हुई दिखाई देती हैं ।

समकि—‘चमकि’ का मारवाडी रूपांतर । बोलचाल में मारवाड के लोग ‘च’ के स्थान में ‘स’ का उच्चारण करते हैं । जोधपुरी मारवाड़ी में ऐसे प्रयोग बहुतायत से होते हैं, जैसे—चतुर्भुज का सतरभुज, चबूतरा का सबूतरा इत्यादि ।

दूहा १५२ चहड़ियाँ—प्रा० चड़ । राजस्थानी में शब्द के बीच में निरर्थक अक्षरों का आगम किया जाता है । यहाँ ‘चड़’ शब्द में ‘ह’ का निरर्थक आगम किया गया है । इस प्रकार—

अवरि का अवरि । (वेलि १४)

उदाहरण—काटी कूटी मछली, छींके धरी चहोड़ि ।

(कबीर ३६—२४)

दूहा १५३ पारोकियाँ—सं० परकीया=परकीया नायिकाएँ ।

नीठ—स० अनिष्टि, प्रा० अणिष्टि । राजस्थानी में प्राथमिक ‘अ’ का कभी कभी लोप हो जाता है । = कठिनता से । हिं० उदाहरण—

(१) सदा समीपिन सखिन हूँ, नीठि पिछानी जाय । (विहारी)

(२) निसा तणा मुख टीठ निठ (वेलि १६३)

बाहुड़े—सं० प्रवूर्णन, प्रा० पहोलन, हिं० बहुरना, राज० बाहुडणो, बहोडणो (प्रेरणार्थक) । उदाहरण—

(१) काया हॉडी काठ की, ना ऊँ चढै बहोड़ि ।

(कबीर २४-३१)

(२) गई बहोरि गरीबनिवाजू । (तुलसी)

दूहा १५४ किया करायइ . . . घणोह—पंक्ति का दूसरा अर्थ=तो मुझसे (किया + कर + आयइ) किस प्रकार आया जा सकता है, क्योंकि बीच में अनेक बाधाएँ (दाधा) हैं ।

दूहा १५५ लाल कमाण—फारसी—कमान । लाल कमान साहित्य में प्रसिद्ध है । लाल रंग की कमान योद्धाओं को विशेष प्रिय होती है । उदाहरण—एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाँइ ।

(कबीर २६-११)

दूहा १५६ लूनी—स० रुदित, प्रा० रुयण ।
उदाहरण—रात्यूँ लूनी विरहनी, ज्यूँ वचौ कूँ कुज । (कवीर ७—१)
लोह—स० लोक, प्रा० लोअ, लोय ।

हाथाळी छाला पडया—मिलाओ—

जीमडियाँ छाला पडया, राम पुकार पुकार ।

(कवीर ६—२२)

दूहा १५७ करकडइ—प्रा० करक = हाड़, अस्थि-पजर
उदाहरण—(१) 'करंकरचयभीसणे मसाणमि' ।

(सुपासनाहचरिअ १७५)

(२) यहू तन जारौ मसि करौ, लिखौ राम का नाउँ ।

लेखणि करूँ करंकर की, लिखि लिखि रॉम पठाउँ ॥

(कवीर ८—१२)

ऊडावेसि—स० उड्डी, प्रा० उडु, प्रेरणार्थक उडुवाव (भविष्यत् रूप) ।

दूहा १५८ पइसि—स० प्र० + विश्, प्रा० पइस ।

उदाहरण—(१) देवाळै पैसि अत्रिका दरसे । (वेलि १०८)

(२) मदिर पैसि चहुँ दिसि भीगे, वाहरि रहे ते सूका ।

(कवीर १४७—१७५)

पलहवइ—स० पल्लव, हिं० पलुहना = फूलना फलना, हरा भरा होना ।

उदाहरण—

(१) सूखि वेलि पुनि पलहवै, जो पिउ सीचै आइ । (जायसी)

(२) पलुहइ नारि सिमिर अतु पाई । (तुलसी)

दूहा १५९ अकथ कहाणी इ०—भाव मिलाओ—

(१) अकथ कहाणी प्रेम की, कछु कही न जाई ।

गूँगे केरी सरकरा, वंटे मुसकाई ॥ (कवीर १३६—१५६)

(२) अकथ कहाणी प्रेम की कहीं न को पत्ययाइ ।

(कवीर ६५—१०)

दूहा १६० प्रीतम तोरइ इ०—इसी प्रकार की ऊहात्मक प्रेमोक्ति के लिये मिलाओ—

कवीर हरि का डरपतौ, ऊन्हों धान न खाउँ ।

द्विरदा भीतर हरि वने, ताथ खरा डराउँ ॥ (कवीर ७६—७ टि०)

दाभण—स० दह्, दग्ध, प्रा० दब्भ, राज० दाभणो की संज्ञा ।
उदाहरण—

आठ पहर का दाभणाँ, मोपै सहा न जाइ । (कवीर १०-३५)

ती—सं० तः (अपादान प्रत्यय) ।

दूहा १६१ उल्हवण—स० उत् + लस=उल्लसित करनेवाला । हिंदी
उदाहरण—

केलि-भवन नव बेलि सी दुलही उलही कत । (पद्माकर)

कदे—स०कटा । उदाहरण—

‘षटरस भोजन भगति करि, ज्यूँ कदे न छाडै पास ।’

(कवीर २०—१६)

दूहा १६२ त्रिवणउ—स० द्विगुण, प्रा० त्रिवण, त्रिउण । देखो-हेमचंद्र-
१—६४ और २—७६, ‘द्विन्योस्तु’ दुउणो-विउणो, दुइओ-विइओ ।

ओहि—सं० भू, प्रा० हुअ; हिं० होहि । पूर्व ह का लोप ।

दूहा १६३ विहूणी—स० विहीन, प्रा० विहीण, विहूण । उदाहरण—

देख्या चद विहूणाँ चॉदिणा, तहाँ अलख निरजन राइ ।

(कवीर १३—१५)

नीव विहूणाँ देहुरा, देह विहूणाँ देव । (कवीर १५—४१)

विणजारा—स० वाणिज्य + कार, प्रा० वणिजार, हिं० वनजारा=मध्य-
काल मे बेलों पर वस्तुएँ लादकर एक देश से दूसरे देश मे वाणिज्य करनेवाले
व्यापारी । इनके बैलो की कतार को राजस्थानी मे ‘वाळद’ कहते हैं । ये लोग
बड़ी लंबी लंबी यात्राएँ करते थे और मार्ग मे विश्राम करते करते आगे बढ़ते
थे । जिस स्थान पर विश्राम करते थे, वहीं पर अग्नि जलाकर भोजन बनाते
थे । विश्रामस्थल से चले जाने पर इनके परित्यक्त स्थल कुछ दिन तक इनकी
यात्रा के स्मारक बने रहते थे ।

भाइ—स० भ्राष्ट्र, प्रा० भट्ट, हिं० भाड़ = भट्टी ।

धुक्ती—स० धुक्त्, प्रा० धुक्ख (=जलाना) = धुखती हुई ।

यह शब्द राजस्थानी मे बहुतायत से प्रयुक्त होता है । इससे आग के
प्रज्वलित होने की उस दशा का बोध होता है जब खूब धुआँ निकलता है,
लपटें नहीं उठतीं । लाक्षणिक अर्थ मे हृदय की वैसी ही उद्विग्न दशा ।

दूहा १६५ डवर—(स०) सव्या समय के आकाश की लाली को अवर-
डवर कहते हैं । उसी से आँखों की लाली की समता दी गई है ।

उदाहरण—अवर डवर साँभ के, वारु की सी भीत ।

विडाणा—का० वेगाना । मिलाओ—हिं० विराना ।

उदाहरण—भोमि विडाणी मे कहा रातो, कहा कियो, कहि मोहि ।

(कवीर)

दूहा १६७ बल्लम—स० बल्लम । अनुस्वार का आगम ।

उदाहरण—वे—स० द्वि प्रा० वि, वे ।

जिणि सेस महम फण फणि फणि वि वि जीह । (वेलि ५)

हिलोर दे—आशयगर्भित नृहावरा है । जिस प्रकार समुद्र की तरंग का हिलोर अकस्मात् तट की ओर बह निकलता है, उसी प्रकार, हिलोर की तरह, पति के आगमन की प्रतीक्षा मारवणी करती है ।

काग उडाइ उडाइ—साहित्य में प्रतीक्षोत्कण्ठित नायिकाओं का काग को उडाकर पति के आगमन की शकुन चिंता करना रूढिसंगत हो गया है । अपभ्रंश और प्राकृत साहित्य में ऐसी उक्तियाँ बहुतायत से उपलब्ध होती हैं । उदाहरण—

(१) काग उडावण धण खडी आयो पीव भडक्क ।

आधी चूडी काग-गळ, आधी गई तडक्क ॥ (राजस्थानी सुभाषित)

(२) पिक चातरु वन वसन न पावहिँ, वायस बलिहिँ न खात ।

सूरश्याम, सदेसन के डर पयिक न उहि मग जात ॥ (सूर)

(३) काग उडावत मोरी भुजा विरानी । (कवीर)

दूहा १६८ बालहा—स० बल्लम, प्रा० बल्लह ।

दूहा १६६ गथ—(१) स० अथ=सामग्री, सपत्ति, एकत्रित धन इत्यादि । या (२) अर्थ (अर्थ=वन) के अनुकरण पर बना हुआ शब्द । अर्थ गथ बोला जाता है ।

अकथ्य—स० अकथ्य, प्रा० अकथ्य । य का आगम ।

दळ बड्या—राजस्थानी मुहावरा 'दळ चडगो' = घमड होना, मद होना ।

दूहा १७० अवर—स० अपर, प्रा० अवर ।

सुपनतरि—स० स्वप्न + अंतर + इ (अधिकरण चिह्न) = स्वप्न में ।

उदाहरण—उया धर्म औ गुरु की सेवा ए सुपनंतरि नाहीँ ।

(कवीर २७६—५०)

सोरठा १७१ पजर—नन-पजर । राजस्थानी और हिंदी में दार्शनिक अर्थ में पद शब्द ऋषि शरीर के लिये प्रयुक्त होता है ।

पुळइ—राजस्थानी देशीय शब्द = चलता है, गतिशील होता है ।

उदाहरण—पुळियै मग पुळियाह, हुवै दरस अदरस हुवा ।

जळ पैठॉ जळियाह, मदा क्रम मँदाकिनी ॥

(राठोड पृथ्वीराज)

दूहा १७२ निघट्टियाँ—स० नि + घट्ट्=उत्पन्न होने पर, घटित होने पर ।

पत्तीजू—स० प्रत्यय (प्रति + इ); प्रा० पत्तिज, पत्तिअ=विश्वास करूँ ।

उदाहरण—

(१) बोल्यो विहग विहँसि रधुवर बलि कहौ सुभाय पतीजै ।

(तुलसी)

(२) जाति जुलाहा नाम कवीरा, अजहूँ पतीजौँ नाहिं । (कवीर)

दूहा १७३ विलक्खा—स० विकल या विलक्ष, प्रा० विलक्ख = दुखी, व्याकुल । उदाहरण—

(१) विकसित कज कुमुद विलखाने (तुलसी)

(२) बहु विलखी वीछड़ती बाळा । (वेलि १७)

दूहा १७४ निसद्—सं० नि + शब्द, प्रा० निसद्, णिसद् ।

दूहा १७५ परिवॉण—सं० प्रमाण, प्रा० पमॉण, राज० परवॉण = सचमुच, निश्चय । उदाहरण—

करता की गति अगम है, तूँ चलि अपरौँ उनमान ।

धीरै धीरै पाव दे, पहुँचेंगे परवॉन । (कवीर १८—१७७)

भावइँ—सं० भास्; प्रा० भाव, हिं० भाना (क्रिया) = अच्छा लगे ।

यहाँ अव्यय । मिलाओ—हिंदी 'चाहे' ।

(१) एम्बहिँ राह पओहरह जं भावइ तं होउ ।

(हेमचंद्र ८-४-४२०)

(२) भावइ पानी सिर पड़इ, भावइ पड़इ अँगार ।

भावइँ जॉण म जॉण—मिलाओ—

जतन करत पतन हूँ जैहै, भावै जॉण म जॉणी । (कवीर २१६—३६७)

म—सं० मा० (निषेधवाचक), अपभ्रंश म । उदाहरण—

लोणु विलिज्जइ पाणिएण अरि खल मेह म गज्जु ।

बालिउ गलइ सुफुपड़ा गोरी तिम्मइ अज्जु (हेमचंद्र ८-४-४१८)

दूहा १७६ पानही—सं० उपानह्, प्रा० पाणही, हिं० पनही ।

उदाहरण—

विनु पानहि हु पयादेहि पाए, सकरु साखि रहेउ यहि धाए ।
(तुलसी)

दूहा १७७ ठाकुर—सं० ठकुर = ईश्वर, सरदार, स्वामी ।
खिसइ—(दे०) = खसकना, स्थान से हटना, गिरना । मिलाओ—
(१) खसी माल मूर्ति मुसुकानी । (तुलसी)
(२) परमाते तारे खिसइ त्या इहु खिसै सरीरु ।
(कवीर २५६-६०)

किसाकउ—स० कीटशकः ।

दूहा १७८ धवाळू—हिं० धधा + आळू (राजस्थानी प्रत्यय , = काम-
कानी ।

बदेस—स० विदेश । मिलाओ—

जिन पाऊँ से कतरी, हाडत देस बदेस । (कवीर)

सघळी—स० सकल, प्रा० सयल, सगल । उदाहरण—

स्वारथ को समझा सगा, जग सघला ही जाणि ।

(कवीर ५२-१५)

सपजे—स० सपद्यते, प्रा० सपजइ = उत्पन्न होती है, एकत्रित होती है ।

दूहा १७९ पहुत्त—स० प्र + भूत, प्रा० पहुत्त । उदाहरण—

जे जम आगे ऊत्ररौ, तो जुरा पहुँती आइ । (कवीर ७२-८)

सोरठा १८० सभारियाँ—याद करने पर । स० स + स्मृ, प्रा० सभर,
सभळ ।

काप—स० कृप्, प्रा० कप्प, राज० कापणो से सज्ञा ।

दूहा १८१ यहु तन इ०—भाव मिलाओ ।

यहु तन जालौ मसि करुँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरगि ।

मनि वे गम दया करै, वरसि बुभावै अगि ॥

दूहा १८२ भग्इ—स० भृ, प्रा० भर । लान्छणिक अर्थ मे राजस्थानी
मुहावरा 'मदेसो भरगो', सदेश भेजने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है ।

पळट्टइ—स० पर्यस्त, प्रा० पलट्ट ।

भी—(राजस्थानी देशीय) = फिर । उदाहरण—

(१) विगहिन ऊटे भी पड़े, दरसनि कारनि राम । (कवीर ८-७)

(२) अजहूँ वीज अकर है, भी ऊगण की आस । (कवीर ८६-६)

दूहा १८३ सांभळे—स० प्रा० अप०—सभल, राज० साभळणो, गुज०
साभळु । ए पूर्वनालिक प्रत्यय ।

उदाहरण—सौंभळि अनुराग थयो मनि स्यामा । (वेलि २६)

मागरवाळ—देखो दोहा १०५ मे वागरवाळ पर टिप्पणी ।

दूहा १८५ हूँतो—प्रा० 'हितो' (अपादान विभक्ति का चिह्न) = से ।

उदाहरण—

(१) हूँ ऊधरी त्रिकुट्याद हूँती, हरि वधे वेळाहरण ।

(वेलि ६३)

(२) कुससथली हूँता कुदणपुरि, किसन पधार्या लोक कहंति ।

(वेलि ७२)

(३) जत्र हूँत कहिगा पखि विदेसी, तत्र हूँत तुम विन रहै न जीऊ ।

(जायसी)

माणसाँ—स० मानुष, प्रा० माणुस ।

दुहा १८६ निचत—स० निश्चित, प्रा० निश्चित=चितारहित ।

दूहा १८७ हूकड़ा—स० दौक् ; प्रा० हुक । हूक + डो (जनवाचक प्रत्यय) = पास ।

डेरा लीध—(राजस्थानी मुहावरा) डेरा लेना, निवासस्थान स्थिर करके रहना ।

दूहा १८८ मल्लार—स० मल्लार । वर्षा ऋतु का राग विशेष । राजस्थान में वर्षा सर्वाप्रिय ऋतु होने के कारण ढाढियों ने उसी ऋतु के राग को अपनाया ।

निवाज—स० निष्पाद्य, प्रा० निवज = बनाकर ।

भड़ मडियउ—स० क्षर, प्रा० भड, हिं० भड़ी । वर्षा की भड़ी लगने के अर्थ में राजस्थानी में “भड़ मँडणो” मुहाविरा आता है । उदाहरण—

भड़ मातौ माड़ियौ भड़ (वेलि १२१)

गुहिरइ—सं० गभीर; प्रा० गहिर । उदाहरण—

सघण गाजियौ गुहिर सदि । (वेलि १६६)

दूहा १८९ जोयणाँ—सं० योजन, प्रा० जोअण, जोयण ।

सेरियाँ—अप० सेरी = लची पतली तग गली । उदाहरण—

सेरी कवीर साँकड़ी, चचल मनवा चोर । (कवीर २८-४)

दूहा १९० सुरहउ—स० सुरभि, प्रा० सुरहि ।

लोद्र—(सज्ञा) देश विशेष का नाम । लुद्र, लुद्रवा, लोद्रवा पश्चिमी राजस्थान के भूभाग (जेसलमेर राज्य) का प्राचीन नाम है जिसकी प्राचीन राजधानी पूगळ थी ।

ढो० मा० दू० २७ (११००-६२)

भीनी—स० भिन्न, हिं० भीगना, भीजना । उदाहरण—

कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रस भीनी ।

(रसखान)

ठोवड़ियाँह—स० स्थान, प्रा० ठाण, अप० ठाव, राज० ठावड़, ठोड;
हिं० ठौर । इयों प्रत्यय ।

दूहा १६१ निहल्ल—सं० निखिल, प्रा० गिंहिल = बहुत अधिक, पूरी,
खूब ।

कचेइती—स० उत् + चाल्य, प्रा० उच्चाल, उच्चाड, हिं० उचाटना ।

सल्ल—स० शल्य, प्रा० सल्ल = काँटा, मार्मिक वेदना ।

दूहा १६२ वेळत—स० वेल्, प्रा० वेल्ल = हिलना, चलना, काँपना ।
यहाँ वेचैनी से चचल होना ।

दूहा १६३ ई—स० इदम्, प्रा० इअम् । उदाहरण—

देवग्य तोड़ि वसुदेव देवकी, पहिलौ ई पूछै प्रसन ।

(वेलि १४६)

रतन तलाव—(स० रत्न + तड़ाग) हृदय भावरूपी रत्नों से भरे हुए
सरोवर की तरह है, जो दुःखरूपी तरंगों से आकुल होने पर बाँध को तोड़कर
चारों ओर बह निकलता है । सगीत ही म यह शक्ति है कि वह भाव तरगा-
वली को पुनः व्यवस्थित करके मर्यादाबद्ध कर देता है ।

दहदिसि जति—मिलाओ—

बनिज खुयानो पूँजी दृष्टि, पाहू दहदिसि गयौ फूटि ।

(कवीर २१५—३८३)

दूहा १६५ मल्हाया—अप० मल्ह = मौज मानना, लीला करना । प्रे-
रार्थक = खिलाना, लड़ाना, गाना । उदाहरण—

दुलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै । (सूर)

दूहा १६६ मेल्हा—स० मुच्; प्रा० मेल्ल् = छोड़ना, परित्याग करना,
भेजना । उदाहरण—

(१) राज लगे मेल्हियौ बखमणी, समाचार इण्णि माँहि सहि ।

(वेलि ५६)

(२) हँसे न बोलै उनमनी, चचल मेल्हा मारि ।

(कवीर २—६)

दूहा १६७ अपछर—स० अप्सरा, प्रा० अच्छरी ।

उणिहार—सं० अणुहार; प्रा० अणुहार = समान, समरूप ।

सार—स० स्मृ, प्रा० सर, हर, हिं० सार = याद, स्मृति, सुधि । उदाहरण—

जन को कहु क्यो करिहै न सँभार

जो सार करै सचराचर की । (तुलसी)

दूहा १६८ चितारेह—स० चित, चिंता करना, याद करना । उदाहरण—

चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारै ।

(कवीर २५३—५०)

दूहा १६६ भडिक—(अनुकरणात्मक शब्द) अचानक, भट, बिना सोचे वृत्ते ।

गाळि—स० गाल = फेंकना, दूर करना ।

हळवह—सं० लघु, प्रा० लहु का विपर्यय हलु हरु, हिं० हरुआ, हौले ।

उदाहरण—

(१) हौळे हौळे सुलगती सो तै दीनी फूँक (राजस्थानी सुभाषित)

(२) ना सो भारी ना सो हलवा, ताकी पारिष लषै न कोई ।

(कवीर १४४—१६६)

दूहा २०० वार—स० द्वार, प्रा० दुआर, वार, वार ।

दूहा २०१ जळ माहि इ.—मिलाओ—

कमोदनी जलहरि वसै, चदा वसे अकासि ।

जो जाही का भावता, सो ताही कै पासि ॥ (कवीर ६७—१)

दूहा २०२ चुगइ, चितारइ इ०—मिलाओ—

चुगै चितारै भी चुगै, चुगि चुगि चितारै ।

जैसे वच रहि कुज मन, माया ममता रै ॥ (कवीर २५३—५०)

थकाँ—(दे०) = होते हुए । उदाहरण—

(१) भीतर थका बाहिर इम भासै,

मनि लाजती सुहाग मुख । (वेलि २१३)

(२) दिवस थकाँ साईं मिलौ, पीछै पड़िहै रात ।

(कवीर २६—१३)

दूहा २०६ आसालुधी—सं० आशालुब्ध, प्रा० आसालुब्ध । हतोत्साह और निराश प्रेमी के मन को भी प्रिय मिलन की संभावना के प्रलोभन द्वारा लुभाए रखने की शक्ति आशा में होती है ।

जजालेइ—(दे०) राजस्थानी में 'जजाल' स्वप्न के माया प्रपंच को कहते हैं ।

सेकड—न० श्रेणण, हिं० सेंकना=गरम करना, भूनना ।

भीण्णे—सं० क्षीण, प्रा० भीण = बुझे हुए । उदाहरण—

(१) पाणी ही तें पातळा, धूर्वा ही तें भीण ।

(कवीर २६-१२)

(२) मनवा तो अघर वत्या, बहुतक भीणां होइ ।

(कवीर २६-१४)

दूहा २०८ जे दिन इ०—मिलाओ—

जे दिन गए मगति विन, ते दिन सालें मोहि । (कवीर ७६-११)

दूहा २०६ सीख—स० शिक्षा । राजस्थानी मुहाविरा 'सीख देखो' विदा करने के अर्थ में आता है ।

मोवन—न० सुवर्ण, प्रा० सुवर्ण ।

नाँख्यड—सं० नाग = फेंकना, गज० 'नाखणो' = डालना, फेंकना ।

उदाहरण—निउल्लावरि नाँखिया नग (वेलि २४०)

उलाळ—(१) न० उट्टी, प्रा० उट्टाव, उट्टाड, गज० उडाड, उडाळ, उळाळ (उलयोरभेडात्) । (२) सं० उन्नमय प्रा० उल्लाल = उडाया जाना, ऊँचा फेंका जाना । उन्नमेस्तथट्प्रोल्लातगुलुगुल्लोपेलाः । (हेमचंद्र ८-४-३६)

दूहा २११ सिंचाणड—स० संचान; अप० सिंचाण, गुज० सिंचाणो, हिं० मचान । उदाहरण—

(१) काज सिचोणाँ नर चिड़ा, औभड औच्यताँ ।

(कवीर ७२—२)

(२) मिग्द अगनि लपटनि सकै, भूपट न मीच सिचान । (विहारी)

टोटीजड—न० टोलन हिं० डोलना = चलकर पार करना, उलथना ।

मिलाओ—मगटी टोही = गहरा ।

महिराँण—स० महारणव; प्रा० महरणव, डिं० महराण = समुद्र । मिं०—
दसदौ तो महाराँण को, ऊटि पड़्यौ थळिपॉह । (कवीर ७७—२)

दूहा २१२ उलाळीजड—देखो दूहा २०६ में 'उलाळ' पर टिप्पणी ।

मूँट—स० मुष्टि प्रा० मुष्टि, हिं० मुट्टी, मूँट ।

दूहा २१३ वींभ—सं० विंघ, प्रा० विंभ । मिलाओ—

भील लुक्या वन वींभ मे, ससा सर मारै । (कवीर १४१-१६१)

दूहा २१४ पसरड—स० प्र० + सृ, प्रा० पसर, हिं० पसरना, राज० पसरणो = फेंकना, बटना ।

दूहा २१६ सळ—(दे०) = सिकुड़न । नाक सळ = नाक सिकोड़ना ।
मि०—हिंदी मुहावरा—नाक भौह सिकोड़ना = अप्रसन्न होना ।

विण्टा—स० विनष्ट; प्रा० विण्टूठ, विगड़ना, नाश होना । मिलाओ—
पासि विनंठा कप्पडा, क्या करै विचारी चोल । (कबीर ३—२४)

दूहा २१८—ग्रामणदूमणा—स० उन्मनाः + दुर्मनाः; प्रा० उम्मण-दुमण;
राज० ग्रामणदूमणो = उदास, खिन्न, उद्विग्न मन । उदाहरण—

यहु मन आमन धूमनां, मेरो तन छीजत नित जाइ ।

(कबीर १६०—३०२)

इवडउ—सं० इयत्, प्रा० एवड, राज० एहड़ो, इतना । मिलाओ—

‘एवडु अतरु’ (हेमचंद्र, ८-४-४०८)

कॉइ इवड़ा हठ निग्रह कियो । (बेलि २८८)

दूहा २१६ धीरवइ—सं० धीर से क्रिया ।

दूहा २२० सयळ—स सकळ, प्रा० सयल, अप० सगल; राज० सगळा ।

चिंता...सिध्द—इस दोहे के भाव से मिलाओ—

ससै खाया सकल जुग, ससा किनहूँ न खद्व ।

जे वेधे गुर अखिखरौं, तिनि ससा चुणि चुणि खद्व ॥

(कबीर ३-२२)

दूहा २२१ दिसाउर—स० देशावर, प्रा० देसावर = दूसरा देश ।

मिलाओ—

पखी चले दिसावरौं, विरषा सुफल फलत ।

(कबीर ७७-७)

दूहा २२२ दीपता—स० दीप, = प्रसिद्ध, प्रकाशित, शोभित । उदाहरण—

(१) दक्खिण दिसि देस विदरभति दीपति । (बेलि १०) ।

(२) द्वार में दिसान मे दुनी मे देस देसन मे ।

देख्यो दीप दीपन मे दीपत दिगत है । (पद्माकर)

दूहा २२३—तंती नाद—तंत्री का नाद, संगीत । मिलाओ—

तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रग । (विहारी)

दूहा २२४ ईडर—ईडर राज्य गुजरात में है ।

अउळगड—स० उल्लघ; प्रा० उलघ, ओलघ, हिं० उलॉघना =
प्रवास यात्रा करना । ‘त्रीसळदेवरासो’ में यह शब्द इस अर्थ में बहुत प्रयुक्त
हुआ है ।

अउथि—स० उतः + स्थ (क्रिया विभक्ति), हिं० उत, राज० अथ, अथिथे । मिलाओ—अप० एत्थु, केत्थु । तेत्थु ।

दूहा २२६ मुळताणी—मुलतान की, मुलतान पजाब में प्रसिद्ध स्थान है ।

सुहंगा—सं० समर्घ, प्रा० समग्ध, हिं० सुहंगा = सस्ता, अल्प मूल्यवाला ।

सेलार—(१) देशी सेराह—सेलिया, घोड़े की एक उत्तम जाति । उदाहरण—

सिरगा, समँदा स्याह सेलिया सूर सुरगा ।

मुसकी पँचकल्याण, कुमेद औ केहरिरगा ॥ (सूदन)

हेडि—(सज्ञ स्त्रीलिंग) प्रा० हेडा, हिं० लेहँडी, हेडी, राज० हेड़ = समूह, झुड । चौपायों के समूह जिनको व्यापारी या वनजारे मेले में विक्री के लिये ले जाते हैं । वि०—ठीक अर्थ अस्पष्ट है ।

तुखार—स० तुषार = हिमालय के उत्तर का एक प्राचीन देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे । प्रा० तुक्खार = उत्तम जाति का घोड़ा ।

दूहा २२७ लडग—स० यष्टि, प्रा० लट्टि, हिं० लड़ी, लड़ = पक्ति कनार, बड़ी सख्या (घोड़ों की) । वि०—ठीक अर्थ अस्पष्ट है ।

टालिमा—(टे०), हिं० टालना = चुनिंदा; चुने हुए, छुटे हुए ।

वाँकड़—स० वक्र, वक, प्रा० वक्र, वाँक = टेढा, तिरछा (बल और साहस का द्योतक) मिलाओ—रणवफा राठौड़ ।

विटग—ठीक अर्थ अस्पष्ट है ।

दूहा २२८ काछी—कच्छ नामक देश का । कच्छ देश के ऊँट प्रसिद्ध होते हैं ।

करह—स० करम, प्रा० करम, करह, राज० करहो, करहलो = ऊँट ।

उदाहरण—(१) वन ते भगि त्रिहड़े परा करहा अपनी वाँनि ।

वेदन करह कामों कहै को करहा को वाँनि ॥ (कवीर)

(२) दादू करह पलाँणि करि को चेतन चढि जाइ । (दादू)

त्रिश्रुभिया—राज० वि० + श्रुभि + ह्या । स० स्तूप, प्रा० थूव; राज० थूही, थूह = ऊँट की कूब, ऊँट की पीठ पर की थूही । ऊँट एक थूहीवाले और दो थूहीवाले भी होते हैं । दो थूहीवाले उत्तम समझे गए हैं ।

घडियउ—सं० घटिका; प्रा० घडिआ, हिं० घडी = काल का एक मान जो २४ मिनट के बराबर होता है ।

एथि—सं० इतः + स्थ; राज० एथ, एथिये = यहाँ पर । मिलाओ—
'अउथि' दूहा २२४ ।

विसाइ—सं० व्यवसाय, हिं० विसाइना = खरीद करना । पूर्वकालिक रूप । उदाहरण—

ओह सुनहि हर नाम जस उह पाप विसाइन जाइ ।

(कबीर २५६-१३७)

दूहा २२६ परेरउ—सं० पर । एरउ प्रत्यय संबंध का अर्थ देता है या स्वार्थिक प्रत्यय ।

द्रग—सं० दुर्ग, राजस्थानी में अनुस्वार का निरर्थक आगम । यहाँ गढ़ अथवा राज्य का अर्थ है ।

भीभळ—सं० विह्वल, प्रा० विंभल, विव्भल = प्रेमप्रतीक्षा में विह्वल, अथवा देखनेवाले को विह्वल कर देनेवाले (नेत्र), विह्वलता (तरलता) के कारण सुंदर (नेत्र) उदाहरण—

वडलसरी मद भीभलु ईं भलु भणि अलि राजु ।

संपति विण सुकुमाल ती मालती वीसरु आजु ॥

(वसंत विलास काव्य-७४)

दूहा २३० मोती हरि—सं० मुक्ताफल, प्रा० मुक्ताहल, मोताहल, हिं० मुताहल ।

दूहा २३१ मरजीवउ—सं० मरजीवक, प्रा० मरजीवय (देखो—प्राकृत श्री श्रीपालकथा ३८५ गाहा), हिं० मरजीवा, मरजिया = वह व्यक्ति जो समुद्र के भीतर उतरकर मोती आदि वस्तु निकालने का काम करता है, पनडुब्बा । उदाहरण—

(१) मोती उपजे सीप में, सीप समुदर माहिं ।

कोई मरजीवा काढेसी, जीवनकी गम नाहिं ॥ (कबीर)

(१) जस मरजिया समोद धँसि मारे हाथ आव तब सीप ।

(जायसी)

उघट—सं० उद्घाटन, प्रा० उग्धाडण, हिं० उघटना, उघड़ना । पूर्वकालिक रूप प्रकट होकर, ऊपर उठकर, ऊपर उल्लुकर ।

दूहा २३२ सँकोडी—सं० सकोच, हिं० सिकुड़ना, सकुचना, सकुचाना = सकुचित हुई । उदाहरण—

संकुडित सम समा सध्या समयै । (बेलि १६२)

दूहा २३३ नाटवि—(दे०) प्रा० सद, हिं० सद्दा = विनिमय करके,
(१) सिर साटे हरि सेविए, छाडि जीव की बाँधि ।

खरोदकर । अवि पूर्णकालिक प्रत्यय । उदाहरण—

(कवीर ७०-३१)

(२) जत्र रे मिलेगा पारिपू, तत्र हीरों की साटि ।

(कवीर ७२-७४०)

वि०—इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट है । यह राज० शब्द सौवट्ट का दूसरा रूप भी हो सकता है ।

परिघळ—(१) स० परि + गृह (?), प्रा० परिघर, परिघल (?) ।
धारण करने योग्य वस्तु, वस्त्रादि । (२) परघळ = बहुत ।

वि०—इसका ठीक अर्थ अस्पष्ट है ।

पट्टोळा—स० पट्टकूल, प्रा० पट्टकल, पट्टोल = रेशमी वस्त्र । उदाहरण—
फाडि पुटोला धज करो, कामलड़ी पहिराउँ । (कवीर ११-४१)

दूहा २३५ दूहवियाह—स० दुःख, प्रा० दूहव । उदाहरण—

'किम केणवि दूहविया' । (कुम्मापुचचरिय, पृ० १२)

वि०—इम दूहे के चतुर्थ चरण का यह अर्थ ठीक जान पडता है—'या हमने दुखी किया है ।'

दूहा २३६ दाखउ—दे० दक्ख, राज० दाखणो = कहना । आशा बहुवचन ।

दूहा २३८ खति—मिलाओ राज० ख्याँत, खॉत, खँति = लगन, सावधानी, चैतन्य, चतुरता । उदाहरण—

खँति लागौ त्रिभुवनपति खेडै ।

धर गिरि पुर साम्हा धावति ॥ (बेलि ६८)

दूहा २४० कुमकुमई—स० कुकुम, हिं० कुमकुम = गुलाबजल । विकारी रूप ।

(१) कुमकुमै मँजण करि धौत वसत धरि । (बेलि ८१)

(२) जहाँ स्वामवन रास उपायौ,

कुमकुम जल सुगवृष्टि रमायौ । (सर)

वीक्षण—स० व्यजन, प्रा० वियण, विंजण, वीजण, हिं० विजन, वीजन = पसा । उदाहरण—

विजन डुलाती से वै विजन डुलाती हैं । (भूषण)

चीभया—'वीभूण' से क्रिया । सामान्य भूत ।

दूहा २४२ ऊन्हाळउ—स० उष्ण + काल, प्रा० उग्रह-आल, उग्रहाल;
राज० ऊन्हाळो = ग्रीष्म ऋतु ।

ऊतारियउ—स० अवतरण; प्रा० उत्तरण, हिं० उतारना = ढलना,
चीतना । स्वार्थ मे प्रेरणार्थक ।

दूहा २४३ गउखे—स० गवाक्ष, हिं० गौखा, गोख = अटारी पर की
खिड़की, झरोखा । उदाहरण—

“गावै करि मगळ चढि चढि गौखे” । (वेलि ४२)

दूहा २४५ नस—स० निश् = रात्रि ।

दूहा २४८ कामण्णारियॉ—राज० कॉमण (जादू) + गर (कर) =
जादूगरनियॉ । देखो इस प्रकार के प्रयोग—मेळगर, निरतगर, चाणगर
(वेलि) ।

पॉगुरियॉह—राजस्थानी 'पॉगरणो' = पनपना, हरा भरा होना, पुनः
पल्लवित होना । सामान्य भूत, बहुवचन ।

दूहा २५३ डुंगरिया—अप० डुगर = पहाड़ । उदाहरण—अम्भा लगा
डुंगरिहिं पहिउ रडतउ जाइ । (हेम० ८-४-४४५)

भंगोर्या—स० भकार; प्रा० भिंगार, राज० 'भिंगोरणो' = मोर का
चोलना ।

दूहा २५६ कादिम—स० कर्दम, प्रा० कद्दम, राज० कादो ।

उदाहरण—करि ईट नीलमणि कादो कुंदण । (वेलि २०४)

तिळकस्यइ—(दे०) तिलकना = फिसलना, राज० तिसळणो ।

दूहा २५७ भाभी—स० दग्ध, प्रा० दग्भ, दाभ, राज० भाभ । इतनी
अधिक शीतल कि जिससे जलने का भाव प्रतीत हो । अत्यधिक शीत भी अग्नि
की तरह जलाता है, अतएव अत्यंत शीतल वायु को भाभी (दग्ध करनेवाली)
वायु कहा है ।

दूहा २६२ समनेहॉ—स० सम + स्नेह । बहुवचन, विकारी रूप । यहाँ
संभवतः 'ससनेहॉ' पाठ रहा होगा, लिखने मे 'स' का 'म' हो गया होगा;
क्योंकि 'समनेहॉ' का प्रयोग राजस्थानी में प्रायः नहीं पाया जाता । ससनेहॉ
का अर्थ 'स्नेहियों' है ।

वयरी—स० वैरी । अपने पति को वैरी सत्रोधन इसलिये किया है कि वह उसे विरह के मुख में छोड़कर जाना चाहता है ।

दूहा २६३ मडव—स० मडप, प्रा० मडव ।

दूहा २६४ वहळ—स० वहुल । उदाहरण—

बहलो धणी सिंघासणवालो,
पाळो होइ हालियो पथ । (पृथ्वीराज)

ताढा—स० स्तब्ध, प्रा० थड्ढ, हिं० ठढा; मराठी तडा, थडा, राज० याढा, ताढा ।

रेस—अप० रेस रेसि, रेसि, रेसिमि = निमित्त, लिये, वास्ते ।

उदाहरण—

(१) हउ भिजउ तउ केहि पिअ

तुहुं पुणु अन्नहि रेसि । (हेमचंद्र ८-४-४२५)

(२) सुणि आगम नगर सहू साऊजम,

रुषमणि किसन वधावण रेसि । (वेलि १४१)

दूहा २७१ घड़—स० घटा, प्रा० घडा, घड; राज० घड़, घटा ।

उदाहरण—

तोड़ॉ घड़ तुरकाणरी मोड़ॉ खान-मजेज ।

दाखै अनमी भोजदे, जादम करै न जेज ॥

(राजस्थानी दूहा)

ओळवा—स० उपालभ; प्रा० ओलभ, राज० ओळभो, हिं० उलहना ।

दूहा २७२ बाहर थाजइ इ०—भाव भिलाओ—

(१) कवीर बादल प्रेम का, हम परि बरब्या आय ।

अतरि भीगी आतमॉ, हरी भई बनराइ ॥ (कवीर ४-३४)

(२) कवीर गुण की बाढली, तीतरवानी छॉहि ।

बाहिर रहे ते ऊवरे भीगे मढिर मॉहि ॥ (कवीर ३४-२३)

बाहर था जइ ऊगरइ—अन्यार्थ—“जो बाहर थे वे वच (उवर) गए” । अनुवाद के अर्थ से वह अर्थ अधिक युक्तिसंगत जँचता है ।

ऊगरइ—स० उद् + उ, प्रा० उगिर, उगिल । राजस्थानी में उगरणो, उवरणो = वच रहना, निकलना ।

दूहा २७३ ढोला, रहिसि इ०—अन्यार्थ—हे ढोला, मेरे रोकने पर रुक जा, विधाता का लेख तो मिलेगा ही ।

निवारियउ—(१) निवारियउ=निवारण किया जाता हुआ, रोका हुआ ।
(२) नि=नहीं+वारियउ=रोका हुआ ।

दूहा २७४ सुचीत—सं० सु+चित=शुभ है चितन जिसका, मनोज्ञ, मनोरम ।

दूहा २७७ सीयाळइ, ऊन्हाळइ, वरसाळइ—स० शीत+काल, उष्ण+काल, वर्षा+काल ।

चीकणी—स० चिकण=स्निग्ध, कोमल, फिसलनेवाली ।

दूहा २७८ तात—देखो दूहा ५२५ ।

दूहा २७९ पाळउ—सं० प्रालेय, प्रा० पालेअ; हिं० पाला=तुषार, हिम का गिरना ।

टापर—(दे०) पशुओं को ओढ़ाने का मोटा कपड़ा । राज० तप्पड़, तापड़ । अंग्रेजी—तारपॉलीन । हिं० त्रिपाल, तिरपाल ।

फुरइ—अप०=क्षीण होती है, व्याकुल होती है । उदाहरण—

दुखिया मूवा दुख कों, सुखिया सुख कौ मूरि ।

(कबीर ५४—८)

दूहा २८० गोरडी—स० गौरी । गौरी शब्द राजस्थानी में स्त्री, पत्नी, नायिका, प्रेयसी आदि के अर्थ में आता है ।

दूहा २८१ नीपजइ—सं० निष्पद्यते, प्रा० णिपज्जइ, हिं निपजना । उदाहरण—

उलटा सुलटा नीपजै ज्यों खेतन मे बीज । (कबीर)

दूहा २८२ तिळ्ली—स० तिल ।

तिड़इ—तड़तड़ से अनुकरणात्मक क्रिया । राज० तिड़कणो, हिं० तड़कना=सूखकर चटख जाना ।

भालइ—सं द्ध्वेल, प्रा० भेल, हिं० भेलना, राज० भालणो=ग्रहण करना, धारण करना । उदाहरण—

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी भालि । (कबीर २६—५२)

गाभ—स० गर्भ; प्रा० गम्म=गर्भाधान ।

आभ—स० अभ्र, प्रा० अभ्म=बादल, आकाश ।

दूहा २८४ नीसरइ—स निः+सृ; प्रा० निस्सर, हिं० निसरना ।

उदाहरण—

कहौ कौन खिवै कहौ कौन गाजै, कहौं थै पाणी निसरै । (कबीर)

दूहा २२६ उत्तर—देखो दूहा १२६ ।

उत्तरङ्ग—सं० अवनृत, हिं० उतर आना=अचानक आ जाना ।

सही—अवश्य, निश्चय करके । मिलाओ—

“हुए हरण हथलेवौ हूओ, सेस ससकार हुवइ सहि ।” (वेलि १५२)

सीह—स० शीत, प्रा० सीअ=सरदी, जाड़ा । उदाहरण—

(१) जहाँ भानु तहँ रहा न सीऊ । (जायसी)

(२) प्रतिहार प्रताप करे सी पालै । (वेलि २२५)

चगा—स० चग, पजात्री चगा, मराठी चॉगळा, हिं० चगा=स्वस्थ, नीरोग, सुदर । मिलाओ—मन चगा तो कठौती मे गगा ।

दूहा २२७ बाहळियाँह—देखो दूहा १४७ मे बाहळा पर टिप्पणी ।

ओले—स० क्रोड, हिं० ओल=ओट, शरण । उदाहरण—

(१) सूरदास ताको डर काको हरि गिरिवर के ओलै । (सूर)

(२) हँदत हँदत जग फिरया, तिय कै ओलहै रॉम । (कबीर)

काहळियाँह—स० कातर; प्रा० काहल=डरपोक, अधीर । देखो, हेमचन्द्र ८—१—२१४ ।

दूहा २२८ पल्लागियाँ—स० पर्याण, पल्लाण=जीन किए हुए, सवार, प्रवास को जाते हुए ।

दरङ्ग—स० दर, हिं० दरकना=विदीर्ण होना, फटना (हृदय का)

अक—स० अक, प्रा० अक, हिं० आक=मदार का वृक्ष ।

दूहा २२९ दोहागिण—स० दुः+भागिनी, प्रा० दुहागिणि=वह स्त्री जिस पर पति का प्रेम न रह गया हो ।

दूहा २२९ रीठ—स० अरिष्ट; प्रा० गिट्ट=विनाशकारी (शीत) रूखी (सटी) । राजस्थानी में ‘रठ’ असहनीय शीत को कहते हैं ।

दूहा २२९ तरत—स० तरत = समुद्र । पाले का समुद्र अर्थात् जोरों का शीत ।

दूहा २२९ रवद—(स० रव ?) जोर शोर का ।

वासदग्—स० वैश्वानर=अग्नि । उदाहरण—

जिहि वैसंदर जग जलया, सो मेरे उदिक समान ।

(कबीर ६३—४)

मद—स० मद्य, प्रा० मद्, हिं० मद्र । अनुस्वार का आगम ।

दूहा २६५ ऊकटिया—स० अत्र + काष्ठ, हिं० उकठना=सूख जाना ।
उदाहरण—जिमि न नवै पुनि उकठि कुकाटू । (तुलसी)

सारेह—सं० शिरीष, प्रा० सरीह । शिरीष का वृक्ष राजस्थान मे बहुतायत से पाया जाता है ।

बेलाँ—स० द्वि, प्रा० वे, वि, एला प्रत्यय,=दो युग्म, दपति ।

दूहा २६६ ऊपड़िया—स० उत्पत्; प्रा० उ'पड़; हिं० उपड़ना ।
उदाहरण—

ऊपड़ी धुड़ी रवि लागी अन्नरि । (बेलि १६३)

कोट—राजस्थानी मुहाविरा 'कोट-रा कोट'=अनत राशि ।

पोयणी—सं० पद्मिनी; प्रा० पोइणी । उदाहरण—

(१) सर पोइणिए थई सुश्री (बेलि २०६)

(२) पोयण फूल प्रतापसी । (पृथ्वीराज)

घोट—सं० घोटक । लक्षणा से घोड़े के समान स्फूर्तिमान् युवा पुरुष ।

दूहा २६७ ऊकठियइ—स० उत् + कर्ष, प्रा० उकड्ड हिं० कठना=
बाहर निकल पड़ना ।

केकाँण—(दे०) घोड़ा । सभवतः केकय शब्द से बना है जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध होते थे । उदाहरण—

केकाणों पाइ सुगह किया । (बेलि १२७)

कमेडि—हिं० कुमरी । पंडुख की जाति की एक चिड़िया, जो सफेद कवूतर और पंडुख से उत्पन्न होता है । राजस्थान मे इसे कमेड़ी कहते हैं । इसकी बोली से 'केशव तू केशव तू' जैसी आवाज निकलती जान पड़ती है ।

दूहा २६६ साले—सं० शल्य, प्रा० सल्ल, हिं० सालना ?

दूहा ३०० ऊलहइ—स० उत् + लस, प्रा० उल्लह । उदाहरण—

दोष वसत को दीजै कहा,

उलही न करील की डारन पाती । (पञ्जाकर)

द्रग—(१) सं० द्रग=वह नगर जो पत्तन से बड़ा और कर्वर से छोटा हो । (२) दुर्ग ।

दूहा ३०१—दखिणाघ—स० दक्षिणतः दक्षिण की ओर का । आधुनिक राजस्थानी में दखणाद या दिखणाद बोलचाल का रूप है ।

दूहा ३०३ सव—स० स. । प्रा० सो, सौ, सव ।

रत—स० ऋतु । अन्य रूप—रिति, रति, रत, रित, रत । आधुनिक राजस्थानी में रत् प्रयुक्त होता है ।

आँवळी—स० अमल, स्त्रीलिंग । निर्मल ।

वि०—इस दूहे के प्रथम चरण का अर्थ अस्पष्ट है ।

दूहा ३०४ हल्लाणउ—अप० हल्ल + आणउ (भाववाचक सज्ञा बनाने का प्रत्यय) ।

भ्रवभ्रव, डवडव—अनु० शब्द ।

भ्रुवइ—प्र० भ्रुप, हिं० भ्रूमना ।

पागड़इ—दे०, रिकाव, ऊँट या घोड़े की काठी का पावदान जिस पर पैर रखकर सवार होते हैं ।

दूहा ३०६ रहवारी—दे० जातिविशेष जो ऊँटों को चराने और रखने का काम करती हैं ।

दूहा ३०७ वग्ग—स० वर्ग, प्रा० वग्ग = बाडा । मिलाओ—

में जाणयो धोळो मुओ, खाली हुयगो वग्ग ।

वाड़े उड़हि ज वाछडू, औरूँ तौडण लग्ग ॥ (बाँकीदास)

दूहा० ३०८ टाय आवइ—पसद आना । राजस्थानी मुहाविरा, जो बोलचाल में अत्र भी आता है ।

दूहा ३०९ दोवड-चोवड़ा—मिलाओ, हिं० दोहरा चौहरा = दुगुने चौगुने, भारी शरीरवाले ।

नागरवेलियाँ—म० नागवल्ली, पान की वेल ।

दूहा ३११ मॉगळोर—संभवतः किसी स्थान का नाम है । इसका पता नहीं चलता । जोधपुर राज्य में मॉगळोद नाम का एक गाँव है पर वह मॉगळोर से सर्वथा भिन्न है ।

दूहा ३१२ घालूँ—अप० घल्ल = डालना ।

वाहूँ—स० वध; हिं० बाँधना ।

लज—स० रज्जु, प्रा० लज्जु, लज=नकेल, लगाम ।

भलेरउ—भला + एरउ (स्वार्थिक प्रत्यय) ।

दूहा ३१४ अगगर—स० आगार=रहने का सुंदर आवास ।

आसगे—स० आ + सग से क्रिया प्रयोग=संग करना । सज्ञा आसंग सामर्थ्य के अर्थ में राजस्थानी में बोलचाल में आता है; जैसे—म्हारी आसंग कोय नो ।

दूहा ३१६ दूमणी—सं० दुर्मना; प्रा० दुम्मण ।

वरग—स० वर्ग=त्राड़ा । देखो—दूहा ३०७ में वगग ।

दूहा ३१७ कन्हइ—हिं० कने=पास, नजदीक ।

(१) मीत तुम्हारा तुम्ह कने तुमही लेहु पिछानि । (दादू)

(२) अत्र आके बुढापे ने किया हाय ! ये कुछ कहर ।

अत्र जिसके कने जाते हैं लगते हैं उसे जहर ॥

(नजीर)

खोड़उ—अप० (देशी नाममाला २-८०) ।

दूहा ३१८ डॉभिज्यउँ—स० दहू, प्रा० डभ, राज० डॉभणो; हिं० दागना । कर्मवाच्य, सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन । पहिचान के लिये अथवा रोगनिवारण के लिये पशु को दागा जाता है ।

रळि—प्रा० रल, हिं० रलना=मिलना । उदाहरण—

कबीर, गुर गरवा मिल्या, रळि गया आटै लूँण ।

(कबीर २-१४)

दूहा ३२० चोपड़िस्यूँ—अप० चोप्पड = स्निग्ध, चिकना करना ।

चपेल—स० चपा+तेल=चमेली अथवा चपा का तेल ।

दूहा ३२१ हळफळ—दे० अनु० शब्द, प्रा० हल्ल फल्ल; हिं० हड़न्नड़ी=स्वरा, शीघ्रता, व्याकुलता । (देखो - हेमचद्र २-१८४)

दूहा ३२२ रूअड़उ—स० रूढ = प्रशस्त, अच्छा, भला ।

वेध्याँ—स० विध् । वेधो का विकारी रूप, बहुवचन, कारक प्रत्यय लुप्त । पारस्परिक प्रेम से विंधकर माला के मनकों की तरह ऐक्यसूत्र में आवद्ध अर्थात् प्रेमसयुक्त ।

वप्पडा—अप० वप्पुड़ा, हिं० वापुरा, गुज० वापडु । उदाहरण—

प्रिय एम्बहिं करे सेल्लु करि छडुहि तुहुं करवालु ।

ज कावालिय वप्पुडा लेहिं अभग्गु कवालु ॥

(हेमचद्र ८-४-३८७)

दूहा ३२३ कळाप—स० कल्प=दुःख की उद्भावना करना, विलखना, विषाद करना । उदाहरण—

(१) सुख कहि कूसन सपमिणि मगळ ।

काँइ रे मन कळपसि कृपणा । (बेलि २८६)

(२) नेकु तिहारे निहारे विना कलपे जिय क्यों पल धीरज लेखौ ।

(पद्माकर)

लोपाँ—स० लुप् = लुप्त करना = न मानना । संभाव्य भविष्य, उत्तम पुत्रप, बहवचन । उदाहरण—

कलि सक्रोप लोपी मुचालि निज कठिन कुचालि चलाई ।

(तुलसी)

दूहा ३२४ सारउ—स० सु (?), हिं० सरना (?), राज० सारो=वश । बोलचाल का शब्द है ।

दूहा ३२६ बतळावणू—राजस्थानी में पुकारने के अर्थ में 'बतळावणो' आता है ।

दूहा ३२६ मॉडि पनाँण—'पलाँण मॉडणो'=ऊँट पर जीन कसना ।

दूहा ३३० कूड़—स० कूट, प्रा० कूड़=असत्य, मिथ्या, झूठा, छल-युक्त । उदाहरण—

जामण मरण विचारि करि, कूड़े काम निवारि । (कवीर)

दूहा ३३१ तेडाविउ—राज० टे० 'तेड़णो'=निमंत्रित करना, बुलाना । प्रेरणाश्रु रूप । उदाहरण—

देवग तेडि वसुदेव देवकी, पहिलौई पूछै प्रसन । (बेलि १४६)

दूहा ३३२ गचउ करहउ डॉभस्यउ—अन्यार्थ—अरे अनजान मूर्खों ।

पाले हुण (गन्ति) ऊँट को (क्या) दाग लगाओगे ?

मँधाण—स० सघान, प्रा० सघाण=दवादारु में ठीक करना, स्वस्थ करने का उपचार ।

दूहा ३३४ खेलाइद—सं० खेल + आड (प्रेरणार्थक प्रत्यय) ।

दूहा ३३६ ऊकरई—अप० उकरड्ड = वृग, गदगी इकट्ठा करने की जगह ।

ढोम—राजस्थानी शब्द—वान्य के पीठे के सूत्रे डठल जो पशुओं के चारे की तरह मम में आते हैं ।

अपस—स० अपशु = कुत्सित पशु, गदहा ।

दूहा ३३७ छेइ—अप०=प्रात, अत, किनाग । (देखो—देशी नाम-माला ३-३८) ।

भेळा—स० भेल् = मिश्रण करना, इकट्ठे । उदाहरण—

भावी सूचक थिया कि भेळा, सिंघरासि ग्रहण सकल ।

(वेलि ६६)

दुहा ३३६ खोटॉ—सं० लुद्र, प्रा० खुड्ड । बहुवचन विकारी रूप ।

दाखवड्—सं० दश्, प्रा० दक्ख । प्रेरणार्थक ।

दुहा ३४० सिंघावउ—स० (प्रेरणार्थक); हिं० सिंघाना = सिद्धि के लिये प्रयाण करना । उदाहरण—

लायक हे भृगुनाथ सो धनु सायक सौपि सुभाय सिंघाये ।

(तुलसी)

दुहा ३४३ कसवी—(दे०) ऊँट पर जीन कसने के लिये पट्टा अथवा मोटा फीता । कसवी जडाऊ अथवा चित्रित के अर्थ में भी आता है ।

सोवनवानी—स० सुवर्ण+वर्ण = सुनहले, सुवर्ण वर्णवाले । 'वानी' के प्रयोग के लिये देखो—

वादल वानी राम घन उनया, वरपै अमृतधारा ।

(कवीर १३७ १५१)

परियाण—स० प्रमाण, प्रा० पस्वाण = वास्ते, लिये । उदाहरण—

कहित्रे को सोभा नहीं देखा ही परवांन । (कवीर २५२-४८)

दुहा ३४५ भेक्यउ—(राज०) ऊँट के बैठने को राजस्थानी में 'भेकणो' कहते हैं । ऊँट को बैठाने समय 'भे भे' शब्द किया जाता है, उसी के अनुकरण पर यह शब्द बना है ।

टहूकड़ा—(दे० अनु० शब्द) ऊँट के बरगलाने का शब्द । कोयल के बोलने को भी 'टहूकड़ा' कहते हैं । साधारणतः सुदर और कर्णप्रिय शब्द के लिये प्रयुक्त होता है ।

दुहा ३४६ कसणा—(सज्ञा) स० कर्षण, प्रा० कस्सण, हिं० कसना = बंधने की रस्सियों या फीते ।

करकउ—(अनु० शब्द) पशु के बोलने का शब्द ।

दुहा ३४८ दौवणि (१)—(फा० दामन) पहिने के वस्त्र का निचला भाग या छोर, अथवा (२) (स० दाम = रज्जु, बंधन)—लाक्षणिक अर्थ में नियंत्रण । दूहे की पहली पक्ति का दूसरा अर्थ यों भी हो सकता है—हे सखी, दौड़ो, दौड़ो, (जब मेरा प्रियतम चल ही पडा) तो अब कौन सा बंधन (मर्यादा बंधन) रह गया, क्या लाज है ।

दो० मा० दू० २८ (११००-६२)

दूहा ३४६ निसॉण—हिं० निशान = नगाड़ा, धौंसा । उदाहरण—

(१) वीस सहस बुग्मरहिं निसाना । (जायसी)

(२) बुरै नीसाण सोइ घण घोर (बेलि ४०)

सेघाण—स० सवि, सधान = शरीर की सधियाँ । दोहा ३३२ में लाल्-
णिक ग्रर्थ मे, भिन्न आशय मे, यह शब्द प्रयुक्त हुआ ।

दूहा ३५० दमाज—फा० दमामा (१) = ढोल, नगाड़ा, धौंसा ।

दूहा ३५१ पडहउ—स० पटह, प्रा० पडह ।

अँवळउ—स० अवर; प्रा० अवर (१), राज० अँवळो = (१) उलटा,
चक्रदार, (२) अस्वस्थ (स्वस्थ का उलटा) । राज० अँवळा-सँवळा=
हिं० उलटा सुलटा ।

दूहा ३५२ पालखी—स० पल्यक = पालकी ।

विसहर—स० विषधर ।

दूहा ३५४ पाड़ा—स० पाटक, प्रा० पाड़य = महल्ला ।

दूहा ३५५ ऊमी—स० उत्+भू=खड़ा होना । उदाहरण—

विरहिन ऊमी पथ सिर, पथी पूछै धाय ।

एक शब्द कहु पीव का, कवर मिलैगे आय ॥ (कवीर)

कड़—स० कटि, प्रा० कडि ।

दूहा ३५८ अवास—स० आवास = निवासस्थान ।

मावइ—स० मा, हिं० अमाना=समाना ।

दूहा ३६० टवूकइ—अनु० शब्द = टप् टप् अथवा टब् टब् शब्द करके
गिरना ।

दूहा ३६१ पड़ताळिया—स० परि+ताड्; प्रा० पडताल = तेजी से
चलाया ।

पूठि—स० पृष्ठ, प्रा० पिठ, हिं० पीठ, पूठ । उदाहरण—

पच्छिम दिसि पूठ पूरत्र मुख परठित । (बेलि १५४)

वावू—स० वायु, प्रा० वाव ।

दूहा ३६२ उवाँ ही—हिं० वहाँ ही ।

बहोइया—स० प्रवूर्ण, प्रा० पहोल = लौटना । सा० भू० बहु० ।

मिलात्रो हिं० बहुरि । उदाहरण—

करीर यहु तन जात हे, सकै तो लेहु बहोड़ि । (कवीर)

दूहा ३६३ सलूणी—स० सलावण्य, हिं० सलोनी ।

दूहा ३६५ मोकळ—(दे०) = बड़ा, घना, बहुत । उदाहरण—
मुकति दुआरा मोकला सहजै आवौ जाउ । (कबीर २५०-१७)

दूहा ३६६ वीखड़ियाँ—स० वीखा=गति, पद, पदचिह्न ।

दूहा ३६७ कुहड़ि—स० कुहेडि, हिं० कोहरा = जल कणों से युक्त शीतल माप । यहाँ कोहरे से लान्घणिक अर्थ में अधकार से आशय है ।

दूहा ३६८ वीज—स० विद्युत्, प्रा० विज्जु ।

दूहा ३६९ राता—स० रक्त, प्रा० रत्त = लाल । उदाहरण—
भृकुटी कुटिल नैन रिस राते । (तुलसी)

दूहा ३७० बाहिरी—स० बहिर्=बिना, विहीन । उदाहरण—
जेहि घर कता ते सुखी तेहि गारू तेहि गर्व ।
कंत पियारे बाहरे हम सुख भूला सर्व ॥ (कबीर)

दूहे के भाव से मिलाओ—

सॉई मै तुम्ह बाहरा कौड़ी हूँ नहि पावँ ।

जो सिर ऊपर तुम धनी, महँगे मोल बिकावँ ॥ (कबीर)

दूहा ३७१ लहक—हिं० लहकना = लहलहाना, प्रफुल्लित होना ।

उदाहरण—

लहर भरे लहकहिँ अति कारे । (जायसी)

दूहा ३७२ सूकण लागी बेलड़ी इ०—मिलाओ—

सूकण लागा केवड़ा, तूटीँ अरहर माल ।

पाणी की कल जाणतौँ, गया ज सीचणहार ॥

(कबीर ७४-३५)

दूहा ३७३ मोजड़ी—अप० = जूती (देशीनाममाला ६-१३६) ।

आ—यह (स्त्रीलिंग) ।

ठाँण—स० स्थान, प्रा० ठाण = घोड़े आदि के चरने का स्थान ।

आहीठाँण—(१) स० अभिस्थान, प्रा० अहिँठाण, राज० आहीठाँण ।

(२) स० अभिज्ञान, प्रा० अहिण्ठाँण, राज० अहिनाण = चिह्न ।

दूहा ३७६ बिलंबी—(१) स० विलब्, हिं० विलमना अथवा (२)

स० अवलब् । पूर्वकालिक क्रिया या भूत कृदत स्त्रीलिंग का रूप । उदाहरण—

(१) जीव बिलंब्या जीव सौँ, अलष न लषिया जाय । (कबीर)

(२) कबीर तहाँ बिलंबिया, करे अलष की सेव । (कबीर)

दूहा ३७७ साई—स० साति, प्रा० साइ, हिं० साई = वह धन जो किसी वस्तु निर्माण के लिये निर्माता को पेशगी दिया जाता है। यहाँ पर 'साई दे' का अर्थ है—प्रचार कर, प्रकट। साई दे दे रोवणो—यह मुहावरा घाड़ मारकर गेने के अर्थ में आता है।

प्रवाली—स० प्रवाल = मूँगिया, लाल रंग का एक पत्थर अथवा रत्न।
उदाहरण—खुंभी पर्ना प्रवाली खम। (वेलि ३६)

चूँन—नं० चूर्ण।

सोरठा ३७८ रगोहि—स० रणरणाय्; प्रा० रणरणक् = दुःखमय निःश्वास व्याकुलता।

सोरठा ३७९ रडी—म० रट, प्रा० रड्, गुज० रडवु।

चढ़ेहि—प्रा० चड = चढकर, बढकर।

सोरठा ३८० गळनी—स० गृ, प्रा० गळ, हिं० गलती हुई = क्षीण होती हुई, समाप्त होती हुई। उदाहरण—

गत प्रभा यिगौ ससि रयणि गळंती (वेलि १८२)

परजळनी—स० प्रज्वल्; वर्तमान कृदत्, स्त्रीलिंग = प्रकाशित होती हुई, रात चांतने के बाद होनेवाले प्रकाश के समय। उदाहरण—

दीपक परजळतो न दीपे। (वेलि १८२)

खदईडिया—अनु० शब्द 'खट् खट्', प्रा० खड खड = आवाज करना, खटकना।

खुरसॉण—ना० खुगसान। यहाँ तलवार से मतलब है। खुरासान की तलवार तथा घोड़े प्रसिद्ध थे। खुरासानी शब्द तलवार, घोडा और शाण-चक्र के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

दूहा ३८१ सिर्वी—स० शृगी, प्रा० सिर्वी, सिर्विया, हिं० सखिया = एक अहुन जटगीली वातु, जिसके खाते ही मौत हो जाती है।

दूहा ३८२ समर—स० स्मर, प्रा० समर।

सदिनाण—स० सज्ञान; प्रा० सण्णाण। देखो—दूहा ४४६।

दूहा ३८३ आपड़ाँ—स० आ + पन्, प्रा० आपड = पहुँचना।

वालने—स० वल्, प्रा० वळ = चलना, लौटना, स्मार्थिक र प्रत्यय।

सद—स० शब्द, प्रा० सद।

दूहा ३८४ घाटा—स० घट = पहाड़ी रास्ता, घाटी।

दूहा ३२६ धाहडी—अप० धाह = चिल्लाना, रोककर पुकारना, हिं० धाह या धाड़ मारना । उदाहरण—

रैणा दूर विछोहिया, रहु रे संष म भूरि ।

देवलि देवलि धाहडी, देसी ऊगे सूरि ॥ (कबीर)

उरळउ—सं० उदार, प्रा० उराळ, उरल, राज० उरलो (?) = विशाल, विस्तीर्ण, विश्रब्ध, शात । राजस्थानी बोलचाल में बहुधा प्रयोग होता है ।

दूहा ३२७ मेहॉ—सं० मेघ, प्रा० मेह = बादल ।

प्रगडउ—स० प्रकट, प्रा० पगड = प्रकाश, सूर्य का प्रकाश । मिलाओ-

कबीर, पगड़ा दूरि है जिनकै विचि है रात ।

का जाणौ का होइगा उगवतै परभात ॥ (कबीर)

दूहा ३२८ सहड़इ—स० शब्द; प्रा० सद । डो स्वार्थिक प्रत्यय, विकारी रूप ।

थळ—स० स्थल, प्रा० थल, राज० 'थळ' । विशेष अर्थ में रेतीली या कंकरीली ऊँची भूमि के लिये आता है । राजस्थान के रेगिस्तान को इसी लिये 'थळी' कहते हैं ।

दाधी—स० दग्ध, प्रा० दध, राज० दाधउ ।

दूहा ३२९ चुणइ—सं० चि, प्रा० चिण, हिं० चुनना, चुगना = इकट्ठा करना, एकत्र करना (देखो—हेमचंद्र ८-४-२४३) ।

दूहा ३३० मथ्यइ—स० मस्तक; प्रा० मथ्यअ, हिं० माथे = ऊपर । राजस्थानी में 'माथे' अधिकरण विभक्ति चिह्न की तरह 'पर या ऊपर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

लवूकी—(टे०) लहलहाना, हरीभरी हो जाना ।

बूरि—स० बूर; प्रा० बूर=एक घास विशेष जो राजस्थान में बहुत होती है ।

दूहा ३३१ जाळ—दे०—राजस्थान का वृद्ध विशेष ।

अग्गाळि—स० अकाल, प्रा० अगाल ।

दूहा ३३३ भीलण—प्रा० भिल्ल, राज० भूलना = स्नान करना ।

'भिल्लइ' का प्रयोग देखो—कुमारपाल चरित में ।

दूहा ३३४ सोळ सिंगार—साहित्य में प्रसिद्ध सोलह प्रकार के शृंगार ।

मुळक्कउ—अप० मुर = खिलना, स्वार्थ में क प्रत्यय । नेत्रों द्वारा हँसी प्रकट करना, मुसकराना । उदाहरण—

आगै थे हरि मुलकिया आवत देख्या दास । (कवीर)

जलहर—स० जलधर, प्रा० जलहर = सरोवर । उदाहरण—

जलहर भब्यो ताहि नहिं भावै,

के मरि जाय के उहै पियावै । (कवीर)

दूहा ३६६ नवसर हार—स० नव + सृक्=नौलडा ।

दूहा ३६७ सड़ा—स० शुक्र, प्रा० सुभ्र + डो प्रत्यय । अन्य रूप—
सूयो, सूवडो, सुग्रडो, सूटो, सूवटो ।

पड़गन—सं० प्रतिग्रहण, प्रा० पडिगहण = प्रतिग्रहीत कार्य का मपादन करना, वचनबद्ध कार्य करना ।

वाळि—स० वल्, प्रा० वल । प्रेरणार्थक । उदाहरण—

वळी मरद श्रगलोक वासिए । (वेलि २०६)

दूहा ३६८ वार—स० वार, प्रा० वार = अक्सर, वेला ।

दूहा ३६९ परिठव्यउ—स० परि + स्थापय्, प्रा० परिठव । सामान्य
भूत, एकवचन । उदाहरण—

परठित ऊपरि आतपत्र । (वेलि १५४)

मोजो—डखो दूहा ३७५ में मोजड़ी पर टिप्पणी ।

दूहा ४०० चदेरी—स० चेदि, एक प्राचीन नगर जो वर्तमान ग्वालियर राज्य क नळवाड़ा प्रात में है । आजकल की वस्ती से ४-५ कोस की दूरी पर पुगानी राजधानी के भग्नावशेष मिलते हैं । पहले यह नगर भारत में प्रख्यात था और समृद्ध दशा में था । रामायण, महाभारत और बौद्ध ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है । महाभारत काल में चदेरी का प्रसिद्ध राजा शिशुपाल था । प्राचीन समय में इसके आसपास का प्रदेश चेदि, कलचुरि और हैहय-वश के अधिकार में था और चदि देश क नाम से प्रख्यात था । चदेल क्षत्रियों के राजा यशोवर्मा ने कलचुरियों के हाथ से कालिंजर का प्रसिद्ध किला छीनकर इस प्रदेश पर स० ६८२ से स० १०१२ तक राज्य किया । अल-बरूनी ने चदेरी का उल्लेख किया है । ई० सन् १२५१ में गयासुद्दीन बलबन ने चदेरी पर अधिकार किया । सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह मल्लिकार्जुन के हाथ में चला गया । सन् १५२० में चित्तौर के महाराजा सांगा ने इसे जीतकर मेदिनीराय को सोप दिया । उसमें बाबर ने जीता । सन् १५८६ क बाद यह नगर बुंदेलों क अधिकार में रहा । अंत में सन् १८११ में ग्वालियर राज्य में सम्मिलित हुआ ।

बूंदी—राजस्थान का प्रसिद्ध राज्य । बूंदी में पहले मीणों का राज्य था । स० १३६८ के आसपास हाड़ा देवीसिंह ने मीणों से बूंदी को छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया । उक्त सवत् से बहुत पूर्व बूंदी का आबाद होना संभव है परंतु इसके बसने का निश्चित संवत् ज्ञात नहीं हुआ (ओम्हा) ।

पुहत्तउ—स० प्र + भू, प्रा० पडुच्च । उ का व्यत्यय । सामान्य भूत, पुँल्लिग । आइ पुहत्तौ कीर—मिलाओ—

पाणी माँहिला माँछली, सकै तो पाकड़ि तीर ।

कड़ी कदू की काल की, आइ पहुँता कीर ॥

(कवीर ७४—३२)

दूहा ४०४ वीहतउ—स० भी; प्रा० वीह । वर्तमान कृदत्, पुँल्लिग ।

अपूठा—स० आ + पृष्ठ; प्रा० आपुठ्ठ, आपिठ्ठ, राज० अपूठा=वापिस; पीछा, पीठ की ओर ।

दूहा ४०६ साई—देखो—दूहा ३७७ ।

दूहा ४०७ पूजउ—स० पूर्यते, प्रा० पूजइ = पूरी हो, सफल हो ।

दूहा ४०८ थकी—अपादान का प्रत्यय; प्रा० थक्क ।

दूहा ४१० चटक्कड़ा—अनु० शब्द = पशु को छड़ी से मारने अथवा ताड़ने का चत् चट् शब्द ।

गय—सं० गति, प्रा० गय = गति, चाल ।

लत्रावइ—स० लत्र (प्रेरणार्थक) = लत्रा करना ।

दूहा ४११ नीमाणी—स० निम्न, प्रा० णिण्ण=नीचा होकर रहना, लाक्षणिक अर्थ में चुप रहना ।

दूहा ४१२ पाखर—सं० प्रखर, प्रा० पखर = घोड़े का कवच, यहाँ पर साधारण अर्थ में कवच के लिये उपयुक्त है ।

दूहा ४१३ पति—स० प्रत्यय या प्रतिष्ठा, हिं० पत, पति = मर्यादा, प्रतिष्ठा, इज्जत, लज्जा । उदाहरण—

अत्र पति राखि लेहु भगवान । (सूर)

दूहा ४१४ बाँवळि—सं० बव्वूर, प्रा० बव्वूल, हिं० बवूल, राज० बाँवळ = काँटेदार वृक्ष विशेष ।

बाढत—राज० 'बाढणो' = काटना, छेदन करना ।

दूहा ४१५ साँवळि—स० श्यामला, प्रा० साँवळी = श्याम रंग की बदली ।

दूहा ४१६ सींगण—सं० शृग, प्रा० सिंग, हिं० सींगी = सींग का वन हुआ वाच विशेष ।

काठी—सं० कठ, कृष्ट, प्रा० कठ्ठ = खूब मजबूती से । राजस्थानी का प्रचलित बोलचाल का शब्द है ।

साहँत—सं० साध् प्रा० साह, हिं० साधना = पकड़ना ।

कोडी—उ० कुड्ड, कोड्ड = हर्ष, प्रसन्नता । मिलाओ—

कुनर अन्नहँ तर अरहँ कुड्डेण घल्लइ इत्थु ।

मणु पुणु एकहि सल्लइहिं नइ पुक्कइ परमत्थु ॥

(हेमचन्द्र ८-४-४२२)

कासी—अरबी खास = प्रधान, राज० कासा, खासा = अधिक, विशेष । बोलचाल की राजस्थानी भाषा में 'ख' का 'क' उच्चारण प्रायः होता है ।

वि०—अंतिम चरण का अर्थ अस्पष्ट है ।

दूहा ४१७ छेत्रगिवाह—उ० गज०, यह शब्द गुजराती में भी प्रयुक्त होता है; 'छेत्रवु' = छलना, कपट करना ।

लाड—सं० लालय्, हिं लाड ।

लडाड—राज० लडाणो, लडावणो=लाड करना ।

दूहा ४१८ वतम्—राज० = वत्तल की गर्दन के आकार की सुराही, जिसमें शराव रकी जाती है ।

दूहा ४२१ विसरे—विसरणो का परोक्ष विधि काल, एकवचन ।

दूहा ४२२ परमडळे—दूसरे के मडल में अर्थात् दूसरे के अधीन । दूसरे का अभिप्राय मारवणी या मारवणी के प्रेम से है ।

हारित्यह—हारेंगे अर्थात् प्रेमशून्य होंगे ।

मिळेत्रड—मिळणो + एन्ने (भाववाचक सजा बनाने का प्रत्यय) = मिलाप । मिलाओ—करेवो, देवो, जाएवो । इस अर्थ में वो वो प्रत्यय भी आते हैं ।

त्यौह—उनका ।

दूहा ४२३ खडति—खडनो का वर्तमान काल । यह इकारात रूप विशेषतः लौलिंग में आता है । विलपन और खडत पाठ लिए जाते तो ठीक होता । इसका अर्थ 'चलना' होता है । इसका प्रेरणार्थक खेडनो होता है । जिसका अर्थ 'चलाना, हँकना' आदि होता है । मिलाओ—

सुग्रीवसेन नै मेघपुहप समवेग बळाहक इसै वहति ।

खँति लागौ त्रिभुवनपति खेडै धर गिरि पुर साम्हा धावति ॥ ६८ ॥

आयौ अस खेडि अरि सेन अतरै प्रथिमी गति आकास-पथे ।

त्रिभुवन नाथ-तणौ वेळा तिण्णि रव सभली कि दीठ रथ ॥१११॥

(कृष्ण-रुक्मिणीरी वेलि)

दूहा ४२४ ऊमाहियउ—स० उन्मद्, प्रा० उम्माय, या० स० उन्मथ् ;
प्रा० उम्माह । उमहणो का प्रेरणार्थक । (आनन्द द्वारा) उमगित किया
हुआ ।

वट्ट—स० वर्त्म, प्रा० वट्ट ।

पुहरि—राजस्थानी मे कभी उ जोड़ दिया जाता है, कभी लुप्त हो जाता
है और कभी अदल बदल हो जाता है, जैसे—पुह (पथ) पुहचाइ
(पहुचाइ), पुहर (पहर) । अन्य रूप—पहर, पहुर, पहोर,
पोहर, प्होर ।

आडवळा—आडावळा नामक राजस्थान का प्रसिद्ध पहाड़ जिसे अंगरेजी
चर्तनी की कृपा से लोग अरवली कहने लगे हैं । अन्य रूप—आडावळ,
आडावळा ।

घट्ट—घाटी ।

दूहा ४२५ तिसाइयउ—स० तृषायित ।

पाइयउ—पीवणो का प्रेरणार्थक; अन्य रूप—पियावणो, हिं० पिलाना ।

दूहा ४२६ खंच—खचणो का पूर्वकालिक, खींचकर । खच का मतलब
नृत्य होकर, पेट भरकर भी होता है । वही अर्थ यहाँ उपयुक्त जान पड़ता है ।

त्रासा—त्रास का पुल्लिंग । आधुनिक रूप = तासो । सम्व है यह तृप्त
शब्द से बना हो क्योंकि तासे का मतलब ज्यादातर प्यास होता है ।

ढूकिस—ढूकणो का सामान्य भविष्य । ढूकणो का अर्थ पास जाना होता
है । जानवरों के पानी पीने के लिये पानी के पास जाने को भी ढूकणो कहते
हैं । पूरा आना, बराबर बैठना, फिट होना, इन अर्थों में भी यह क्रिया
आती है । ढूकड़ा (= ढूके हुए) शब्द पास के अर्थ में ऊपर दूहा न० १८७
में आया है ।

केथि—अप्र० केथु । जेसळमेर एव पश्चिमी बीकानेर की देहाती बोलियों
में केथ, केथिये शब्द प्रयुक्त होते हैं । मिलाओ—किथुँ, किथ्यँ (पजाबी)
प्रयोग—

जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थु विलेप्पिणु सिक्खु ।

जेत्थुवि तेत्थुवि एत्थु जगि मरु को तहे सारिक्खु ॥

(हेमचंद्र ८-४-४०५)

दूहा ४२७ विरगड—विना रग का, नीरस, सूखा ।

ढोलणा—ढोलणो का सवोधन । 'अणो' डा की भॉति उनवाचक प्रत्यय है ।

गमता—मिलाओ, गुज० गमउँ = अच्छा लगना, भाना ।

पाम्या—स० प्राप्, प्रा० पाम, गुज० पामउँ, राज० पाणा, हिं० पामना ।

दूहा ४२८ नीरूँ—नीरणो का सभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन । नीरणो दशी प्राकृत का शब्द है । इसका अर्थ होता है चारे आदि को पशु के आगे उसके खाने के लिये डालना ।

फोग—एक प्रकार का लुप पौधा जो राजस्थान मे बहुत होता है । इसमें छोटे छोटे दाने लगते हैं जिन्हें फोगला कहते है और जिनका रायता बनाया जाता है । देहात मे उनकी बूजी बनाकर रोटी के साथ खाई जाती है ।

थोवड़—हिं० तोवड़ा=घोड़े को दाना खिलाने का थैला; लाक्षणिक अर्थ मुँह ।

दूहा ४३० कुलिगाँमडइ—कुगाँव (?) = बुरा देश । अथवा व्यंग से कुलग्राम = बड़ा ग्राम ।

कइर—स० करीर, प्रा० कइर, करीर ।

पारण्ड—स० पारणा=व्रत के दूसरे दिन का भोजन, यहाँ पर भोजन । यूँही—इसी प्रकार ।

डेलि—हिं० डेलना = आगे चलाना, विताना ।

दूहा ४३२ मासरवाडि—ससुगल ।

जाळि—ऊद्व । राजस्थान मे भी जाल नाम का एक बड़ा पेड होता है पर वह कदंब मे सर्वथा भिन्न है ।

दूहा ४३३ लम कराडिआ—(१) कराड ऊँट की आवाज को कहते हैं अन्. लवाँ आवाजवाले । मिलाओ—ठाढी माइ कराडै टेरे है कोइ ल्यावो गहि रे । (करीर अथावलो, पृष्ठ १३७, पद १५१) । (२) लवे और वाहर निम्ने हुए दाँतोंवाले को भी कराळ कहते है । (गडडवहो) ।

लाग्गीणा—लाग् + ईणा (प्रत्यय)=लाग के, लाग मुद्रा जिनका मूल्य दो, बहुमूल्य, यहाँ स्वादिष्ट ।

दूहा ४३४ म—स० मा, प्रा० म, राज०, हिं० मत । पुरानी राजस्थानी में यह शब्द बहुत प्रयुक्त हुआ है । कवीर में भी जगह जगह इसके प्रयोग मिलते हैं—

हरि गुण सुमिर, रे नर प्राणी ।

जतन करत पतन है जैहै भावै जाण म जाणी ॥

भूर—प्रा० भूर, आज्ञा । भुरणों या भूरणों किसी की याद कर—करके दुखी होने को कहते हैं । क्षीण होने के अर्थ में भी यह क्रिया आती है ।
देखो—दूहा ३८२ । प्रयोग—

भुरै है बाबो नदजी अरे भुरै जसोदा माय ।

सत्र गोपी ब्रज की भुरै वाला राधा रही मुरभाय ॥

(मीरों)

विरोळियउ—प्रा० विरोल = मथना, राज० विलोवणो, हिं० विलोना ।

मेल्हे—खडीचोली का प्रभाव, राज० रूप = मेल्या ।

दूहा ४३५ वसाळ—राजस्थानी शब्द ।

वचालइ—प्रा० विच, राज० विच, वीच, पं० विच । वच+आळइ । आळो का अर्थ वाला है, वचालो का अर्थ बीचवाला स्थान । वचालइ = बीचवाले स्थान में ।

एवाळ—सं० अनपाल, प्रा० अयवाल । मिलाओ—गुवाळ (=गोपाल) ।

दूहा ४३६ घोटडा—घोडा, लक्षणा से युवा घोड़े की तरह सुंदर एवं बलवान् ।

तई—विकारी रूप । सवध प्रत्यय लुप्त ।

कि—किम् = क्या ।

नेहवी—नेह+वी = नेहवाली ।

सी—सं शीत, प्रा० सीअ ।

खाहि—खाता है, सहन करता है । क्या तुम्हारी प्रिया इतना स्नेह करनेवाली है कि तू इस भयकर शीत की पर्वाह बिना किये इस तरह दौड़ा जा रहा है ?

दूहा ४३७ छवडउ—प्रा० छवडी (देशी नाममाला ३—२५) ।

हुती—प्रा० हुतो = से ।

कियइ—पूर्वकालिक रूप मिलाओ—दूहा १२ ।

दूहा ४३८ खीत्यौरी—राजस्थानी शब्द ।

सुँणे—सुणनो का आज्ञा का रूप ।

म्हॉजी—जो सिंधी में सवध का प्रत्यय है ।

गोठणी—स० गोष्ठिनी, प्रा० गोठिणी = सखी, वयस्का ।

सैं—पजावी = हम ।

सैण—सं० सजन, प्रा० सवण = मित्र, प्रेमी ।

दूहा ४३६—आधोफरइ—इसका अर्थ अर्धमार्ग या अधर होता है ।

राजस्थानी में यह छज्जे के अर्थ में भी आता है । इस दूहे में इसका अर्थ या तो ढालू जमीन का हो सकता है जो छज्जे की तरह ढालू हो या यह हो सकता है कि जब ढोला आधा मार्ग तय कर चुका था (उस समय आडावळा पहाड़ में) मिलाओ—हिं० अधभर । प्रयोग—

जळ जाळ अवति जळ काजळ ऊनळ पीळा हेक राता पहल ।

आधोफरै मेव ऊधसता महाराज राजै महल ॥ (वेलि २०३)

अध अधफर ऊपर आकास । चलत दीप देखियत प्रकास ।

चौकी टे मनु अपने भेव । बहुरे देवलोक को देव ॥

(केशव)

एवड़—यह शब्द स० अजा, प्रा० अय से बना है । मिलाओ—हिं० रेवड । एवड़ की निगरानी करनेवाले या रखनेवाले को एवड़ियो या एवाळियो कहते हैं ।

असन्न—स० आसीन या स० आसन्न ।

भागइ—सं० भज्, प्रा० भन = तोड़ता है, खिन्न करता है, शंकाकुल या चल विचल करता है । आधुनिक राजस्थानी में भागणो तोड़ने के और भागणो टूटने के अर्थ में आता है ।

दूहा ४४० क्रम—सं० क्रम = चलना ।

पथ कर—गस्ता पकड़ ।

ढाण—ऊँट की तेज चाल । ढाण घालणो—तेज चलाना । मिलाओ—ऊँटने चढतों ही ढाण नहीं घालणो (कहावत) ।

मढल—स० महिला ।

दूहा ४४१ ऊँमर—ऊमर या ऊमर मूमरा नामक जाति का राज्य सिंध में सवन् ११११ से १४०६ तक रहा । ये किस वंश के थे इसका ठीक पता नहीं चलता । भाट उन्हें सोढा परमारों की ऊमट शाखा में बतलाते हैं । तवारीख जुहके तुल-कराम आदि मुसलमानी इतिहासों में उन्हें अरब जाति का लिखा

है। अन्य लोग उन्हें भाटी राजपूत बतलाते हैं जिन्हें सिंध में मुसलमानों का राज्य होने पर कई अन्य जातियों के साथ मुसलमान होना पड़ा। संवत् ११११ के आसपास उन्होंने ठट्टे से मुसलमानों को निकालकर अपना राज्य कायम किया। सूमरा इस वंश का पहला राजा था। छठे और सोलहवें राजाओं के नाम ऊमर थे जिन्होंने क्रमशः ४० और ३५ वर्ष राज्य किया। यहाँ यह ऊमर व्यक्तिवाचक नहीं किंतु जातिवाचक नाम जान पड़ता है। यह ऊमर स्वतंत्र राजा नहीं किंतु कोई सरदार होगा क्योंकि संवत् १००० के लगभग सूमरे स्वतंत्र नहीं हुए थे। ऊमर मारवणी को चाहता था और उसको अपनी स्त्री बनाना चाहता था। उसने कई बार पिंगल पर जोर डाला पर पिंगल राजी नहीं हुआ। यह जाति का परमार तो नहीं हो सकता क्योंकि परमार कभी परमार कन्या को पत्नी नहीं बना सकता। मुसलमान होना ही अधिक संभव जान पड़ता है। इसकी कथा आगे फिर आती है। (दूहा नं० ५६७ और ६२६ से ६५०)

जातउ—वर्त्तमान कृदत = जाता हुआ। अन्य रूप—जावतो, जावत।
आधुनिक रूप—जातो, जावतो।

भागउ—खिन्न हुआ। देखो—दूहा ४३६।

दूहा ४४२ ऊमहउ = सामान्य भूत, पुँल्लिंग, एकवचन। उमगित होकर चला है। देखो—दूहा ४२४।

सदावेस—(१) सदावणो = सदेश कहना। सदेश कहूँगा। (२) संदा=के। वेसि=वेश, रूप (ऐसा हो गया है)।

तन खिस्या—(१) शरीर खिस गया अर्थात् यौवनापगम होकर शिथिल हो गया। (२) स्तन शिथिल हो गए अर्थात् यौवन वीत गया।

दूहा ४४३ मोड़ो—राजस्थानी शब्द, विशेषण=देरी से, देर करके।

वेस—स० वयस्=अवस्था।

होई—सामान्य भूत, स्त्रीलिंग। अन्य रूप—हुई हुई।

खोरड़ी—सफेद केशोंवाली। खोरा पडना सिर की एक बीमारी है।

जाए—जावणो + ए (पूर्वकालिक)।

दूहा ४४४ आण्यउ—भूत कृदत, पुँल्लिंग, एकवचन आया हुआ।

पाळउ—वि० वापिस।

वळइ—स० वळ्। लौटना, चलना, जाना।

करेह—समान्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन = करें।

दूहा ४४५ कार्स्—यह शब्द सभवतः का और शू (गुजराती) इन दो एकार्थवाची शब्दों को मिलाकर बनाया गया है ।

जो—जोवणो का आज्ञा का रूप । जो प्राकृत की धातु है ।

जकाह—जो (स्त्रीलिंग) । जो वात, जो घटना ।

जाह—जा पूर्वकालिक क्रिया है । ह पाठपूर्त्यर्थ जोडा गया है ।

दूहा ४४६ हुती—होती हुई, होनेवाली, सभव ।

दूहा ४४७ चलपत—स० चलपत्र = पीपल के पत्ते हवा के न होने पर भी हिलते रहते हैं । अत्यत चचल, चलायमान ।

साहइ—स० साध्, प्रा० साह । साधना, सम्हालना । मिलाओ—साहणी = घोड़ों का निगरानीदार ।

वीस्—एक चारण । वीस् सभवतया व्यक्तिवाचक नाम न होकर चारणों की किमी जाति विशेष का नाम है, जैसे—वीठू ।

सुमगज—महाराज का शुभ हो । चारण, भाट, ढाढी, ढोली आदि वाचक जातियाँ अपने जजमान को सुभराज कहकर आशीष देती हैं ।

दूहा ४४८ एकइ—एक का विकारी रूप । राजस्थानी में विकारी रूप सप्रत्यय कर्ता के लिये प्रयुक्त होता है ।

दूहा ४४९ सहिनाँण—स० सज्ञान, प्रा० सनाण । इसी प्रकार अहिनाण (स० अभिज्ञान) । मिलाओ—

यह मुद्रिका, मातु, मै आनी ।

दोन्ह राम तुम कहँ सहिदानी ॥ (मानस = सुदरकाड)

दूहा ४५२ खमणी—खम धातु + अणी (कर्तृ = प्रत्यय) = खमनेवाली । स० जम्, प्रा० खम ।

कच्छ—स० कक्ष, प्रा० कक्ख, कच्छ ।

गरवी—स० गुर्वा, हिं० गरई ।

दूहा ४५३ लरु—लरु का अर्थ भी कटि ही होता है । दो शब्दों के प्रयोग का अभिप्राय संदर्भ पर जोर देना है । अथवा लरु का अर्थ बौकी या लचकीली लिया जाय ।

टसण—स० टशन । सं० ट के स्थान पर प्राकृत आदि में कई शब्दों में ट हो जाता है, जैसे—डम, टड, डस, डम्फ, डंम, डोला इत्यादि ।

दूहा ४५५ पुण्डि—स० फण्डि ।

मयट—स० मृगैट ।

वि०—इस दूहे में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

दूहा ४५६ सियाइ—सुहाय (?) । अन्य संभव अर्थ—(१) गौरवर्णा (सं० सिता, प्रा० सिया) (२) श्री वाली (अप० सिअ = श्री) । इसका अर्थ अस्पष्ट है ।

संपजइ—स० सपजते, प्रा० संपजइ ।

जिम—मिलाओ—जिन=मत । या जि + म ।

ठल्लउ—अप० ठलिय, ठल्ल=खाली, खाली हाथ ।

दूहा ४५७ उपन्नियाँ—भूत कृदन्त, स्त्रीलिंग, बहुवचन । सं० उत्पन्न, प्रा० उत्पण्ण ।

कूँभ इ०—देखो—दूहा ५४ ।

वचौं—देखो—दूहा २०२, २०४-२०५ ।

नेत—स० नेत्र, प्रा० गेत्त । मिलाओ—

तारणी सऊजल सेतदत । वाणी सुवाणि नइ लाजवंत ।

सोहली भूमि वॉका सुभइ । भूभार दियइ करिमाळ भइ ॥

(राउ जइतसीरउ छद, १००) ।

दूहा ४५८ चाही—अ० चाह । भूतकृदन्त, स्त्रीलिंग=देखी हुई अर्थात् देखी जाने पर ।

चख्ख—सं० चख्खु; प्रा० चख्ख, राज० चाख । राजस्थानी में चाख लगना नजर लगने को कहते हैं ।

एकण—एक ही, अकेला, एकमात्र ।

साटइ—अप० सट्ट = बदले । मिलाओ—सट्टा ।

एराकी—इराक देश के घोड़े जो बहुत प्रसिद्ध होते हैं ।

दूहा ४५९ करल—मुष्टि । लक्षण से मुष्टिग्राह्य । मिलाओ—

स्यामा कटि कटिमेखला समरपित

कृसा अग मापित करल (वेलि ६६)

वित्रीह—अप० वप्पीहा । देखो—दूहा २६ ।

विलूधउ—सं० विलुब्ध ।

सीह—स० सिंह, प्रा० सीह, राज० सीँ ।

दूहा ४६० डींभू—राजस्थानी शब्द ।

सर—स० स्वर, प्रा० सर ।

हम्भ—स० हंस ।

निर्वॉणि—स० निम्न, प्रा० रिम्म, निम्ब = नीचा । आण प्रत्यय ।
निचाई = नीचा स्थान = जलाशय ।

दूहा ४६३ भँखइ—भँखणो, भँखो पढनो । भलक दिखाई देना, भलक पढ़ना । मिलाओ—भँकी ।

सोरठा ४६४ वन्न—सं० वर्ण, प्रा० वणण । अन्य रूप वन्न ।

पहिरउ—निवमित रूप पहिरउ या पहिरियउ होगा ।

रूपकउ—स० रूप्यक । चँदी का गहना ।

दूहा ४६५ भमुहॉ—स० भ्रू, प्रा० भमुह-हा ।

सोहली—ललाट पर पहनने का एक आभूषण ।

परिठिउ—स० परि + स्थापय् ; प्रा० परिठव । परठनो राजस्थानी मे एक ऐसी क्रिया है जो कई अर्थों में प्रयुक्त होती है । इसका साधारण अर्थ कोई कार्य करना या सपन्न करना है फिर चाहे यह धारण करने का हो या पहनने का या स्थापित करने का ।

मिलाओ—

(१) प्रोळा प्रोळी तोरण परठीजै (स्थापित किए जाते हैं) ।

(२) परठि द्रविण सोसण सर पंच (धारण करके) ।

(३) पच्छिमि टिसि पूठ पूरन्न मुख परठित (स्थापित किया हुआ) ।
(कृष्ण-रुक्मिणीरी वेलि)

(४) नारिकेळ फळ परठि दुज (पृथीराज रासो—पद्मावती समय) ।

क—मिलाओ—हिंदी कि । जाँणि क=मानो कि ।

दूहा ४६६ निलाट—स० ललाट, प्रा० गिलाड ।

अइहइ—ऐहै—ऐसे ।

घाट—स० घट् = वनावट, गठन ।

वि०—लाटानुप्रास अलकार ।

दूहा ४६८ जाइ—सं० जन्, प्रा० जा=उत्पन्न होना । आजकल केवल भूतकाल म यह क्रिया आती है । जायोजाई = जनमा + जनमी (इनका अर्थ जना-जनी भी होता है) ।

वणराद—स० वनरालि । मिलाओ—

सान समंद की मनि कगे लेखणि सब वणराइ । (कवीर)

दूहा ४६९ लखण वतीसे—मिलाओ—

लखण बत्रीस, बाल-लीला-मै राजकुँअरि हूलड़ी रमति ।
सै—से, समान । (वेलि १३)

दूहा ४७० मखल—(१) स० माखिक, प्रा० मखिलअ । मधुमन्त्रियों
का मधु । (२) प्रा० मंख, राज० मखलण, माखण, हिं० मखन ।

दूहा ४७१ अञ्छियउ—अञ्छ का अञ्छियो बना लिया गया है ।

दूहा ४७२ करि—इ कर्ता का प्रत्यय है ।

भीगी—स० लीण, प्रा० भीग=पतली । देशी नाममाला में भीगी का
अर्थ शरीर भी दिया हुआ है ।

दूहा ४७५ चूडइ—चूड़ो=चूड़ियों का समूह । आजकल चूडे का अर्थ
दूसरा होता है । राजस्थानी स्त्रियों हाथीदाँत की चूड़ियाँ दो भागों में करके
पहनती हैं । पहला भाग कुहनी के नीचे तक रहता है और दूसरा कुहनी के
ऊपर से लेकर कंधे तक । इस दूसरे भाग की चूड़ियों को आजकल चूड़ो
कहा जाता है । पहले भाग को मुठिया कहते हैं ।

त्रीयाँ—त्री + याँ=तीनों ।

दूहा ४७६ कड़ि—स० कली, राज० कळी ।

डहकक—डहडहाती हुई, प्रफुल्लित ।

दूहा ४७७ हेमाळे—सं० हिमालय । इ अधिकरण का प्रत्यय है ।

प्रथम पक्ति का अन्यार्थ—हे ढोला, उस प्रेयसी से रंग करो न, उसकी
पँसुलियाँ पतली हैं (वह पतले शरीर की है) ।

दूहा ४७८ अण—नियमित रूप इण । इकार के लोप की प्रवृत्ति ।
उगहंताह—नियमित रूप उगताह । ग और अनुस्वार के बीच में एक ह
जोड़ दिया गया है ।

दूहा ४७९ भीसुर—स० भास्वर ।

ससदळ—(१) शश है दल में, जिसके=चंद्रमा । (२) शशघर का
अपभ्रंश—ससधर, ससहर, ससहळ ।

दूहा ४८० कुळी—स० कली ।

सीस फूल—सीसफूल सिर का एक गहना भी होता है ।

टँकावळ—टँका + आवळ (=वाला) =टँकाँ वाला । बहुत टँकाँ का ।
'लाख टँकाँ का हार' कहानियों में प्रसिद्ध है । बहुमूल्य । टँका रूप के बरा-
बर एक सिका होता था । (सुपाहनाहचरित्र पृ० ५१३) ।

दूहा ४८१ बहरखा—बोरखा नामक हाथ का एक गहना ।

ढो० मा० दू० २६ (११००-६२)

चानू इ०—इस चरण का अर्थ अस्पष्ट है ।

दूहा ४८२ लँआलियाँ—लँआ या रूआ=स० रूप, प्रा० रूआ । आळी वाला का अर्थ देनेवाला प्रत्यय है, आळियाँ उसका स्त्रीलिंग बहुवचन का रूप है ।

बोलही—प्रा० बोलइ । वर्तमान का इ प्रत्यय आगे चलकर हि एवं ही में बदल गया । ऐसे रूप केवल कविता में प्रयुक्त होते हैं । बोलचाल में तो अतिम अइ आगे चलकर ऐ में बदल गया है । हकारवाले रूप सूर, तुलसी आदि हिंदी कवियों में बहुत पाये जाते हैं । जैसे—

कटकटहिँ मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं ।

दूहा ४८३ नइ—सं० नद, प्रा० णड, हिं० नाला, राज० नाळा, नाडो ।

सरि—(१) सं० शर, प्रा० सर । (२) सं० सरित्, प्रा० सरि ।

पध्धरियाँह—प्रा० पद्धर (देशी नाममाला ६—१०), राज० पाधरो, गुज० पाधरुँ । स्त्रीलिंग बहुवचन ।

दूहा ४८४ बोलणियाँह—बोलनेवाले या बोलनेवालियाँ । इया (=वाला) प्रत्यय ।

दूहा ४८५ सजळ—सुदर, स्वच्छ, निर्मल, नीरोग, प्रकाशमान । देखो—दूहा ५०६ ।

मीठा-बोला—मीठा बोलनेवाले, मीठे हैं बोल जिनके ।

लोइ—स० लोक, प्रा० लोअ, लोय ।

दूहा ४८६ छडइ—इ पूर्वकालिक का प्रत्यय है ।

गहिलउ—स० गृहीत, प्रा० गहित्ल, राज० गैलो, गुन० घेलुँ ।

धापंत—वर्तमान काल । धापणो क्रिया सभवतः सं० ध्रै (तृप्त होना) के प्रेरणार्थक प्रापय् से बनी है । सं० ध्रात (तृप्त हुआ) प्रा० धाअ से राजस्थानी में धायो रूप भूतकृदत और सामान्यभूत में बनता है ।

दूहा ४८८ उदियइ—उदित होकर ।

दूहा ४८९ पसाउ—सं० प्रसाद, प्रा० पसाव । देखो—दूहा ७४ में लाख पसाउ । अनुग्रह या प्रसन्न होकर दिया हुआ दान ।

दूहा ४९० थकइ—होते हुए, रहते हुए ।

दूहा ४९१ डर डवरे—मिलाओ—हिं० अनरडबर ।

नीले—संध्या की कालिमा से नीलवर्ण हो गए । नीलणो नामभाव है ।

देखो दूहा २५१ । अन्य रूप—नीलाणो । मिलाओ—

नीलाणो नीळर न्याइ । (बेलि १६८)

जाया—स० जात; प्रा० जाअ; राज० जायो । सन्नोधन ।

गुणेहि—देखो—दूहा २८ ।

दूहा ४६२ रोंगा—मिलाओ—हिं० रान ।

विहुँ दीपाँ—आकाश और पृथ्वी ।

थी—अपादान का प्रत्यय । गुजराती मे इसका प्रयोग होता है ।

दूहा ४६३ विण सारथा—विण = विना । सारथा = सिद्ध किये हुए (स० सार्य; प्रा० सार = सिद्ध करना) । पाठातर—(१) वेणसङ्घया—विनष्ट हुए (२) विणठा सवि = सत्र विनष्ट हो गए ।

दूहा ४६४ दसिए—दसो, दसों ही ।

एकणि—एक ही (साथ) ।

पूरि—मरकर, एक साथ ।

विहंगडउ—प्रा० विहग = आकाश (पाइअ-सद्-महणणवो)

दूहा ४६५ विं—इस दूहे का अर्थ अस्पष्ट है । प्रथम पक्ति का, अनुवाद मे दिए गए अर्थ के अतिरिक्त, नीचे लिखा अर्थ भी हो सकता है—चाहे वह आकाश में हो और चाहे समुद्र मे हो, चाहे तीर की तरह दौड़ रही हो और चाहे पङ्ख पत्नी की तरह (तो भी मैं उसे जा पहुँचूँगा) । पङ्खियाँह का अर्थ पङ्ख भी ठीक नहीं जान पड़ता ।

दूहा ४६६ काळिया—काळियो काळो का अनादरसूचक है ।

दूहा ४६७ चलणे—स० चरण, प्रा० चलण । ए करण कारक का प्रत्यय है ।

थाकउ—प्रा० थक्क । भूत कृदंत ।

ऊसनउ—स० अवसन्न या उत्सन्न, प्रा० उस्सण = उत्सुक ।

दूहा ४६८ वीख—रानस्थानी शब्द । देखो—दूहा ३६६-३६७ ।

भंभ—शुद्ध पाठ संभवतः सभ्र है । रंभ पाठातर भी मिलता है । अथवा प्रा० भंप् से यह शब्द बना है = शीघ्रता से ।

दूहा ५०० सकती—फा० सक्त ।

वीटुळी—सं, वेष्ट, प्रा० विट, गुज० वीटवुँ । घेर करके बाँधी हुई = पगड़ी ।

मिलाओ—रानस्थानी शब्द = वोटो = विस्तर ऊँटनी ।

सरटी—रानस्थानी शब्द = ऊँटनी ।

दूहा ५०१ अगलूणी—आगलो + ऊणी (= वाली) । आगेवाली, पूर्व की

मिलाओ—आथूणी, उगूणी, आजूणी ।

सुहियाउ—सं० स्वप्न, प्रा० सुविण, सुहिय ।

दूहा ५०२ डरपत—डरपणो क्रिया का वर्तमान कृदत ।

मतिहि—कहीं न । देखो—दूहा २८, २९ । नीचे मति भी इसी अर्थ में आया है ।

दूहा ५०३ छोडही—छोडती है । पलक छोडना = मिले हुए पलकों को अलग करना ।

दूहा ५०४ लवथवती—लवथवणो का वर्तमान कृदत, स्त्रीलिंग । यह अनुकरणात्मक क्रिया है । पाठातर—लुवधवती=पति प्रेम में लुब्धा ।

सोरठा ५०५ वाटली—(१) स० वर्तुली, प्रा० वट्ठुली, राज० वाटळा, वाटली, वाटी = छोटी कटोरी । अर्थातर—अँगूठी ।

जाणू—मानो ।

ढोलूँ—ढोलो का विकारी रूप (अनियमित) या ढोलो का नपुंसक लिंग में प्रयोग । देखो—दूहा ६ ।

दूहा ५०६ नीगुल—विना गुल का ।

छाजइ—ढीवट पर का छज्जा जो प्रायः सर्प के आकार का बना होता है ।

पुणग—स० पन्नग । उ जोड़ने की प्रवृत्ति पुहर, पुह आदि शब्दों में भी पाई जाती है ।

दूहा ५०८ चमकड—हिं० चमक । अनुस्वार का आगम । मिलाओ—नींद्र, चक ।

समईयइ—समय समइ-समई + अइ-यइ ।

दूहा ५०९ हुता—अन्य रूप हुता, हूँता । मिलाओ—गुजराती—हता (= थे) ।

दूहा ५१० याई—आई=आकर ।

फर—फिर । इकार के लोप की प्रवृत्ति के लिये मिलाओ—गत, सर तरणो इ० ।

दूहा ५११ वेल—वे + एल । मिलाओ—अकेल, एकल, एकलो ।

थे—आधुनिक बहुवचन । यहाँ तँ के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

मने—मुझे । ने कर्म का प्रत्यय है ।

बीजां इ०—अर्थ अल्पष्ट है । बीजी को बीबी भी पढा जा सकता है ।

दूहा ५१२ हूँ इ०—सं० अह स्वया दाहिता ।

तानइ—तुमको । तो + नइ (कर्म का प्रत्यय) ।

दूहा ५१३ पामेसि—पाऊंगी । सभान्य भविष्य के अर्थ में सामान्य भविष्य ।

कंठा—कठ मे, कंठ से । एकवचन के लिये बहुवचन ।

ग्रहण—धारण

दूहा ५१४ छेक—छेकणो (स० छिद्) क्रिया से सज्ञा । मिलाओ—
सतगुरु साचा सूरमा सवद जो मारया एक ।

लागत ही भव मिट गया पड़या कलेजे छेक ॥ (कबी०)

दूहा ५१५ सहिए—सखियो ने । ए कर्ताकारक का प्रत्यय ।

सुहिणइ—सुहिणउ का विकारी रूप । कर्म का प्रत्यय लुप्त ।

तोइ—अन्यार्थ—तो भी ।

दूहा ५१६ फरुकइ—स० स्फूर्, प्रा० फुर, राज० फरक, फरक्क,
फरक्क, फरक ।

अहराँह—स० अधर । आ स्वार्थ मे प्रत्यय । ह पादपूर्त्यर्थ ।

दूहा ५१८ किव—अप० किंव । कैसे ।

केण—स० केन=केन कारणेन ।

वीर—भाई । अन्य रूप वीरो । मिलाओ—

वे हलधर के वीर ! (विहारी)

वड—बड़ा ।

दूहा ५१९ आगम—आगे से ही, पहले ही ।

दूहा ५२० निर्माँणी—नीची, ब्रेचारी । देखो—दूहा ४११ ।

लवइ—स० लप्, प्रा० लव ।

दूहा ५२१ काळी कठळि—गोलाकार काली घटाएँ । मिलाओ—

काळी करि काँठळि ऊजळ कोरण धारे श्रावण धरहरिया

गळि चाळिया दसो दिसि जळग्रभ थभि न, विरहिण नयण थिया ।

नीची—द्वितिज के पास ।

(वेलि १९२)

निहल्ल—यह दूहा कुछ पाठातर के साथ पुनरावृत्त हुआ है ।

देखो—दूहा १९१ ।

दूहा ५२२ साभ्नी—साँभ की ।

सामहलि—साँमह + ली (=वाली) । मिलाओ—आगली, लारली,

पाठली, नीचली, ऊँचली, ऊपरली, साँमली ।

कँबाइयउ—कन्न से नामधातु कन्नावणो=छड़ी से मारना । देखो—दूहा
१३५, ४१०, ४१४, ४०३ ।

दूहा ५२३ ऊँडा—अप० उड (देशी नाममाला १-८५), बहुवचन ।
कोहरइ—स० कुहर=कुँआ ।

दूहा ५२४ ऊसारता—स० उत्सारय्, प्रा० उत्सार, राज० ऊसारणो का
वर्तमान कृदन्त, बहुवचन ।

दूहा ५२५ तात—स० तत, प्रा० तात (सञ्ज्ञ)=कष्ट ।

दीहे दीह—दिन दिन, दिन भर ।

दूहा ५२८ कञ्जा—स्वार्थ मे आ प्रत्यय ।

दूहा ५२६ जौहकी—बीच मे इ व्यर्थ जोड दिया गया है ।

हूती—थी । अन्य रूप—हुती, गुन० हती ।

दूहा ५३० सपहुता—स० उपसर्ग है ।

आजूणइँ—आजूणो + इँ (विकारी प्रत्यय । आजूणो=आज + ऊणो
(का)=आज का ।

दूहा ५३१ उळाधियउ—मिलाओ—हिंदी उलटना ।

अमी—स० अमृत, प्रा० अमिअ ।

पयट्ट—स० प्रविष्ट, प्रा० पइट्ट ।

दूहा ५३२ मन इ०—मेरे मन मे चाहते हुए, जत्र मै मन में चाह
रही थी ।

वाड़ी—मिलाओ—रंगला वाडी=घर ।

वधोमणा—स० वर्द्धापन, प्रा० वड्ढावण, वड्ढावण, राज० वधामणा,
वधावणा ।

दूहा ५३३ सु, सू—सो का सक्षिप्त रूप ।

दूहा ५३४ ठरत—ठरणो क्रिया का वर्तमान काल=टटे होते हैं ।

अणपीयइ—अनपिये=न पिए हुए, बिना पिए ही ।

पाण्ण—स० पानक, प्रा० पाण्ण = पीने की कोई वस्तु, विशेषतः मदिरा ।

छाऊ—छरुने का भाव, तृप्ति । विशेषतः किसी नसीली वस्तु द्वारा होने-
वाली तृप्ति । मन्ती, नशा, मद । छरणो क्रिया सभवतः स० चक् से बनी है ।

मिलाओ—खरी विपम छवि छाक । (बिहारी)

दूहा ५३५ ऊगट—स० उद्वर्त्, प्रा० उवट ।

मोजिणउ—स० मजन, प्रा० मज्जण, मजण ।

खिजमति—फा० गिदमत ।

दूहा ५३६ गयगयणी—गयगमणी पाठ है ।

गति—स० गति, राज० गत्ति, गति ।

दूहा ५३७ घम्मघमतइ—(१) घम्म घम्म शब्द करता हुआ; अनुकरणात्मक । (२) घूमना से घूमता घामता; खूब घेरदार ।
मिलात्रो—घूम घुमालो ।

घाघरइ—अप० घघर । इ—विकारी रूप का चिह्न । करण कारक ।
घाघरे से, घाघरे के सहित ।

दूहा ५३८ उलट्टियउ—उलटणो क्रिया उमडने के अर्थ में भी आती है ।

दूहा ५४० पाल—प्रा० पाल, राज० पायल=पैर का एक गहना,
पाजेव ।

रायजादी—राय=स० राज, प्रा० राअ, राय + जादी (फारसी शब्द)=
पुत्री । मिलात्रो—शाहजादी ।

छुटे—छुटे हुए, खुले हुए ।

पटे—हिं० पट्टे, केशपाश ।

छ्छाळ—अप० छिछोळ=छोटी धारा । (देशी नाममाला ३- ७)

दूहा ५४२ वडळावी—वडळावणो क्रिया का पूर्वकालिक । इसका अर्थ
भेजना व बिताना होता है । समवतः बोलना (=बुलाना) का प्रेरणार्थक है ।

दूहा ५४३ एकठि—स० एकत्थ, प्रा० एगट्ट, हिं० इकठी, एकठी ।

दूहा ५४४ चित्त—(१) चित्तपूर्वक, मनोयोग के साथ । (२) हृदय
से । (३) मानसिक ।

दूहा ५४६ भत्रकइ—भत्र भत्र करना, ज्योति की लपटें उठना । अनु-
करणात्मक शब्द ।

वेहा—स० विध्, प्रा० वेह=वीधा ।

दूहा ५४७ सकाणी—सकणो का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग । मिलात्रो—
लजाणी (लाजणो), भराणी (भरणो), विकानी (विकणो), उडाणी
(उडणो), समाणी (समावणो) ।

खुणसउ—हिं० खुनस ।

दूहा ५४८ डेडरिया—स० दर्दुर, प्रा० डड्डुर + इयो—राजस्थानी अना-
दरवाचक प्रत्यय ।

सरजित्त—सजीवित । मिलात्रो—सरजीवन=सजीवन ।

दूहा ५४९ पहिली—पहले, क्रियाविशेषण ।

दयामणउ—दया + आमणो, हिं० दयावना=दया के योग्य । अप०
दयावण (देशी नाममाला ५ ३५, भविस्सयत्तकहा) । मिलात्रो—देवी देव
दानव दयावने हूँ जोरें हाथ । (तुलसी)

आयमण्ड—प्रा० अथमण, राज० आर्थूणो=पश्चिम को, अस्त होने की दिशा को ।

विमण्ड—स० विमना, प्रा० विमण ।

दूहा ५५० सोरमियड—स० सौरम, प्रा० सोरम से भूत कृदंत=सुरमित ।

दूहा ५५१ कचूवा—स० कचुक; प्रा० कचुअ । त्रियों के पहनने का कौचली नामक वस्त्र ।

दूहा ५५२ लूध—स० लुध, प्रा० लुद्ध । मिलात्रो—मूध=मुग्धा ।

दूहा ५५३ गड्डिया—मिलात्रो—हिंदी गड़ना ।

दोहग—स० दौर्भाग्य, प्रा० दोहग ।

खिल्लोखिल्ल—खिलणो या खेलणो से = प्रफुल्ल ।

दूहा ५५४ पचाइण—स० पंचानन ।

पाखरथड—अर्थ अस्पष्ट है ।

महंगळ—स० मदकल, प्रा० मअगळ ।

दूहा ५५५—कतूदळ—स० कुतूहल । उकार का लोप ।

दूहा ५५६ सदियॉ—सदी का बहुवचन ।

वाव—स० वायु, प्रा० वाउ, वाय ।

ताडड—(१) हिं० टाडड (१)=खड़ा हुआ । (२) स० स्तब्ध, प्रा० टड्ड, राज० टाटो = तेज । (३) टडे के अर्थ में भी आता है ।

ताव—स० ताप ।

दूहा ५५७ भए—ब्रजभाषा का प्रभाव राज० रूप—भया ।

दूहा ५५८ आजे—ए स्वार्थ में प्रत्यय । मिलात्रो—काले = कल । यह शब्द ही अव्यय का अर्थ भी देता है तत्र आगे का अर्थ होगा आज ही ।

रळी—आनद । मिलात्रो—

विविध क्रियाँ व्याहविवि वमुदेव मन उपजी रली । (सूर)

आऊ कली न रली करै अली, अली, जिय जान । (विहारी)

गोट—स० गोष्ट, प्रा० गोष्ट ।

दूहा ५६० पाल्हव्या, पाल्हविया—पाल्हवाणो धातु का सामान्यभूत, पुल्लिङ्ग, एकवचन । राजन्थानी में सामान्य भूत में ह्या और या प्रत्यय लगते हैं । जोधपुरी में ह्या प्रयुक्त होता है और वीकानेरी आदि में या ।

दूहा ५६१ मेल्हणी—व्याकरण की दृष्टि से मेल्हणी या मेलही होना चाहिए ।

दूहा ५६२ वेळ—सं० वेला । अत्य आ का लोप । मिलाओ—वाळ=वाला;
मूँघ = मुग्धा ।

लुब्धा इ०—अन्यार्थ—ढोला और मारवणी काम की कुतूहलपूर्ण
क्रीड़ाओं में लुब्ध हुए । इस अवस्था में लुब्धा लुब्धणो क्रिया का सामान्य भूत
का रूप होगा ।

दूहा ५६३ भरखमा—भर = भार । खमा—खमने अर्थात् सहनेवाले
(सं० क्षम) ।

रचणों—रचनेवाले, प्रेम रग में रँगनेवाले । मिलाओ—मेहदी का रचना
या राचना ।

मेळि—मिळनो का प्रेरणार्थक । मेलणो का अर्थ भोजना भी होता है ।

चंद्रायणा ५६५ चंद्रायणा—यह छंद राजस्थानी साहित्य में बहुत प्रयुक्त
होता है । बोलते समय चौथे चरण के पहले 'परिहाँ' शब्द प्रायः जोड़ दिया
जाता है ।

वरख—वर्तमान काल या पूर्वकालिक रूप ।

कु, क—पाद पूर्वार्थ निरर्थक अव्यय ।

चंद्रायणा ५६६ वाहुड़ह—लौटते है, यहाँ जाते हैं ।

वि०—दोनों सेज पर बैठे थे इसलिये उनका फिर सेज की ओर जाना
कैसे कहा ? इसका उत्तर यही है कि लोक गीतों (Ballads) में प्रायः ऐसा
हुआ करता है ।

असपति—सं० अश्वपति । राजस्थानी में यह शब्द राजा के अर्थ में
आता है । मिलाओ—

असपतियो उतमगसूँ ऊँचा छतर उतार ।

रागै दीघा रेणुआँ साँगै जग साधार ॥ (बाँकीदास)

आहुड़ह—आहुड़नो, आभड़णो = भिड़ना ।

जुर्वाने—ए कर्ता का चिह्न ।

मेळिया—मेळनो = धावा करके तोड़ना, लूट लेना, चीजों को अस्तव्यस्त
कर देना । यह शब्द विशेषतया गढ़ या किले के साथ आता है ।

मिलाओ—(१) काची गार किलेह, साचा माँही सूरमा ।

मेळ्या केम भिळेह, रावाँ कोप्याँ, राजिया ॥

(२) आ बिड़ली भिळसी ज दिन घलसी मो सर घाव ।

दूहा ५६७ गृहा—गृहार्थवाले वाक्य, पहेलियों। पहेलियों पृच्छना वाक्य विनोद मा एतु मुख्य अंग है। आजकल भी जब जमाई समुगल जाता है तो नानियाँ एवं अन्य पहेलियाँ उससे पहेलियाँ पृच्छा करती हैं।

अ—काइ = कोई।

दूहा ५६८ लियति—(१) लेते है अर्थात् विताते है (गुणवान्) ।
(२) लब्ध अर्थात् धीनते है (गुणवानों के दिन) ।

गमत—स० गम् = विनामा । मिलाओ—

काव्यशान्त्रविनोदेन कालो गच्छति वीमताम् ।

व्यसनन च नृशरणा निद्रया क्लहेन वा ॥

दूहा ५६९ इन दूहों में जो पहेलियाँ दी गई हैं वे जनसाधारण में प्रचलित पहेलियाँ थीं। एकाव पहेली गाथा छंद में भी है। प्रायः ये सब पहेलियाँ माधवानल-कामरुदला चौपाई में भी ज्यों की त्यों पाई जाती हैं।

दूहा ५७० मनीष—समर्त्तान ।

विण—इस कारण से ।

दूहा ५७१ मरुती—स० मरुट् = पकड़ना ।

नरु फुली—नारु म पढ़ने का एक गहना ।

दूहा ५७२ सुख—नरुफुली का ।

गुजाहळ—गुजाफद । मिलाओ—सुगताहळ, सुताहळ = सुकाफल ।

सुखद—अन्य रूप छद (= है) ।

तेण—तेन कारणेन ।

दूहा—अर्थ 'पास गया' है । वहाँ नरुफुली पर गया ।

दूहा ५७३ वेण—त्रिलने ।

मर्त्तिया—वाग्ग त्रिण, (हाथ में) लिए ।

वेण—तेन कारणेन ।

दूहा ५७४ वृमळ—स० निर्मळ, गज० त्रिमळ, वृमळ । देखो दूहा ८८ ।

गाथा ५७५ तनगी इ०—सन्धुनच्छाया—

तनगा एतर्गपि इतीतं परिच्छ्रिताभ्यनरेण, प्रियेण दृष्टम् ।

सगगा. क गजाने दीपरा धूनयति शीशम् ॥

दूहा ५७६ नाँग—उ० वाग्ग, गज० नाम = जव, ज्योंही ।

गाथा ५७७ गव—सं० गत, प्रा० गव ।

लिहद—स० लिह् ।

सुखेण—चौक से, प्रेम्णा से ।

दूहा ५७८ हर हार—महादेव का हार अर्थात् नाग ।

परद्वयड—देखो दूहा ४६५ ।

न्यूँ—अप० जैम्ब = जिससे, ताकि ।

दूहा ५७६ आदिरस—स० आदर्श; प्रा० आदरिस । मात्राओं का व्यत्यय ।

दूहा ५८० प्राहुणड—स० प्रावुण प्रा० पाहुन, हिं० पाहुना । यह शब्द पति के लिये मी प्रयुक्त होता है, क्योंकि उसकी प्रतीक्षा की जाती है ।

दूहा ५८१ चटकड—चटको=शीघ्रता । शीघ्रता प्रदर्शित करने के लिये अँगूठे और अँगुली को बजाकर चटकारी की जाती है ।

मिलाओ—चटचट = झटपट ।

वैरणि—रात्रि ने शीघ्र बीतकर शत्रुता का कार्य किया, क्योंकि अब प्रियतम त्रिभुङ्ग जायगा ।

दूहा ५८२ टिवला—स० दीप; प्रा० दीव । लो ऊनवाचक प्रत्यय है ।

टुळ—सं० दोल् ।

दूहा ५८३ मिळियत—कर्मवाच्य, मिला जाता है = मिलते हैं ।

पाळी—मिलाओ—हिंदी पैदल । अन्य रूप—उपाळी ।

पाखरयौ—सन्नद्ध । ठीक अर्थ अस्पष्ट है ।

भड—सं० भट; प्रा० भड ।

दूहा ५८४ नहि—मानो । धरा क्या धरती नहीं हो रही है? अर्थात् हो रही है । वैदिक भाषा में 'न' शब्द उपमा के अर्थ में आता है ।

मिलाओ—नाई, न्यूँ = ज्यों ।

दूहा ५८८ छोलइ—अप०—छोल्ल (हेमचंद्र ४-३६५) ।

दूहा ५८६ ठव्यै—सं० स्थापय्, प्रा० ठव्य, ठव । वर्तमान काल ।

पाखर—स० प्रखर ।

दूहा ५९० उतर्युँ—उतरणो का अर्थ यहाँ बीतना है ।

साख—साक्षी ।

मिलाओ—

धरा धाई, पिव छाकिया, घोड़ा घास चरत ।

पखवाड़ो पूरो हुयो, दिवला साख भरंत ॥

(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५६२ म्हेंने—मने, म्हाने = मुझे, हमे ।

म्हेंविया—हि० म्हुमना=घेर लेना ।

म्हेंवै—वै गुजगती में कर्म का प्रत्यय अब भी है ।

कूपली - प्रा० कूप + ली उनवाचक प्रत्यय । लकड़ी का कुप्पी के आकार का बहुत छोटा पात्र जिसमें लियों काजल-टीकी और सुगंध आदि सुहाग का सामान रखती है । राजस्थान में कन्या के दहेज के साथ ऐसी कूपलियाँ दी जाती हैं ।

ढोळी—मिलाओ—हि० ढालना=ढरकाना ।

दूहा ५६४ भगतों—मिलाओ—हि० आवभगत, राज० भावभगत ।

दूहा ५६५ मुकळावणो—मुकळावणो का अर्थ गौना करवाना होता है । यह क्रिया अप० मोकळ से बनी है । मिलाओ—गुज० मोकळवुं ।

हेवर—स० हयवर । अनुस्वार का आगम ।

दूहा ५६६ छोकरी—प्रा० छोयरी । यहाँ साथ रहनेवाली लड़की अर्थात् सहेली अथवा दासी से अभिप्राय है । अन्य रूप—छोहरी, छोरी ।

मिलाओ—हि० छोकडा, छोफरा ।

ढोन्ही—यह शब्द दो बार आया है । पाठ में अशुद्धि जान पड़ती है, पर सभी प्रतियों में यही पाठ मिलता है ।

दूहा ५६७ हेग—दूत । हेग हुवइ—दूतों द्वारा खबर होती है ।

भेणणो—स० भण् (?)=जाना ।

ओळावा—पहुँचाने के लिये, बोलावणो + आवा (तुमर्थ प्रत्यय) ।

नोट्ट—न० नुभट, प्रा० नुहड ।

दूहा ५६८ गेही—राजस्थानी शब्द जगल ।

ऊजल—स० उज्जल ।

जल व—(१) जलाशय । (२) जलवाली भूमि । (३) जल और भूमि ।

दूहा ५६९ पउदिया—अप० पवड्ड=सोना, लेटना ।

चारे—चार्गे ।

चउकी—चौकी, पहरा ।

दूहा ६०० पीण्णु—पीनेवाला । पीवणा राजस्थान में एक प्रकार का सॉप होता है । रात को जब मनुष्य सो जाता है तो यह आकर उसकी सॉस पीने लगता है । हमने मनुष्य की मृत्यु हो जाती है । पीवणा सॉप एक से दो फुट तक लंबा होता है । उसका रंग मटमैला खाकी होता है । पीठ पर

तीन काली धारियाँ होती हैं। फन सिकुडा हुआ और पेट सफेद होता है। चमड़ी खड़ की भाँति चिकनी होती है जिससे लाटियो और पत्थरों से इसे मारना बड़ा कठिन होता है। बरसात में इसके जहर की पोटली फूलती है। इसी ऋतु में यह प्रायः देखा जाता है और सैकड़ों को पी जाता है। यह विशेषतः रेतीले टीनों में होता है। यह काटता नहीं। कहते हैं कि 'पीने' के बाद पूँछ की फटकार में आदमी को सजग करने की चेष्टा करके चला जाता है। दुग्ध, विशेषतः प्याज खाए हुए मनुष्य के पास नहीं जाता। लोग प्याज खाकर या मुँह पर पट्टी बाँधकर सोते हैं। इसके पीने के बाद बहुत से तो सोते ही रह जाते हैं। परंतु यदि ४-५ घंटों में पता लग जाय तो वचना संभव है। दवा के तौर पर ऊँट का मूत्र पिलाया जाता है और यह रामबाण दवा मानी जाती है। इससे कै होती है और जहर निकल जाता है। इसके लिए हुए को फिटकरी और नमक खारा नहीं लगता। लोगों का विश्वास है कि यह सॉप सॉस को पी जाता है पर वास्तव में यह सोते समय मुँह में जहर टपका जाता है। मुँह बंद किए हुए या करवट सोए हुए आदमी को यह हानि नहीं पहुँचाता। यह बड़ा होशियार होता है और छिपकर आता जाता है। इसे देखना या पकड़ना बहुत कठिन है।

विळकुळियड—चंचलता के साथ हिलना। सामान्यभूत।

ढुहा ६०१ भुयगिग—भुजग ने। राजस्थानी में कभी कभी द्वित्त वर्ण को Single करके पूर्ण वर्ण पर अनुस्वार लगा देते हैं तो कभी इसके विपरीत अनुस्वार को दूर करके आगे के वर्ण को द्वित्त कर देते हैं।

ढुहा ६०२ प्रह—मिलाओ—हिंदी पौ फटना=उपकाल होना।

पुडरी—स० पाहुर।

थट्ट—अप० थट्ट, हिं० ठाट।

ढढोळियड—प्रा० ढंढोल्ल्। अकर्मक की तरह प्रयुक्त।

घट्ट—मिलाओ—हिं० घट (घटघटवासी)।

सोरठा ६०३ भावकि—भावककर, तुरत।

भाळि—स० ज्वाला।

सळसळइ—स० स, प्रा० सर। संभवतः अनुकरणात्मक शब्द।

मिलाओ—सळसळइ सेस सायर.सळिळ घड़हड़ कप्यउ धवळहर (जटमल कृत गोरानादळरी बात)

धधूणी—स० धू, प्रा० धूण।

सोरठा ६०४ व्हालॉ—सं० वल्लम ।

दूहा ६०५ करमण्ड—जुनमुनाना, शब्द करना ।

साड—सं० शब्द, प्रा० सड ।

दीवाधरी—दीपक रखनेवाली दासी ।

पडसाड—सं० प्रतिशब्द, प्रा० पडिसाड ।

दूहा ६०६ पलाह—(१) सं० पलाय्, (२) सं० प्रलाप, प्रा० पलाव ।

वाह—अप० वाहा, हिं० धाड़ ।

दूहा ६०६ सारङ्गी—सं० स्मृ, प्रा० सर, सार । सज्ञा । ङी अनादर-वाचक प्रत्यय ।

खोडी खोडी—सं० खड खड=धीरे धीरे ।

दध्य—सं० दग्घ, प्रा० दद्द ।

दूहा ६११ कळाइयो—प्रा० कल (=कोलाहल) से ।

दूहा ६१३ बडी—मारवणी के बहन होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता । बडी बहन तो होना संभव नहीं । छोटी बहन संभव है । कहीं वही चोपाई में लहुडी बहन लिखा है । लहुडी पाठ होता तो ठीक था पर किसी प्रति में मिला नहीं ।

दूहा ६१४ भवि—भाव में=नन्म में ।

अन—सं० अन्न । अन्न पाणी=जीवन ।

दूहा ६१५ परचड—सं० प्रत्यय (? ,=विश्वास करना, मानना, समझना ।

के—कई ।

कॉधी—कहीं ।

कलि—कार्य में ।

दूहा ६१७ ओळन्त्रिया—सं० उपलब्ध, प्रा० ओलकत्र = पहचानना । यह त्रिया गुजराती एवं मराठी में भी आती है ।

दूहा ६१८ नूँ—ने, साथ

अडलड—(१) सं० अफल; प्रा० अहल = व्यर्थ (२) यों ही अर्थात् व्यर्थ ।

दूहा ६२० नीवाडउ—बीवणो का प्रेरणार्थक, आजा, बहुवचन । अन्य रूप—बियावणो, बिवावणो ।

पिण्—मिलाओ—गुञ् = भी । स० पुनर् ।

दूहा ६२१ परचव्यउ—समझाया, प्रार्थना की ।

मने—ए पूर्वकालिक का प्रत्यय है ।

दूहा ६२५ भळाया—आधु० रूप—भोळाया = सौपा ।

वाँसह—स० पार्वे = पीछे ।

दूहा ६२६ न्या = गया, गए ।

कहिजइ—कही जाती है ।

दूहा ६२७ कळहळिया—स० कलकल (= कोलाहल) से ।

करि—सन्ध का प्रत्यय ।

दूहा ६२६ कूँटियउ—ऊँट का पैर मोड़कर पैर से बाँध देने को कूँटणो कहते हैं ।

मुहरी—मोहरी । आधु० रूप—मोरी । ऊँट की नकेल ।

दूहा ६३० हूमणी—हूम जाति की स्त्री । यह जाति गाने बजाने का काम करती है । इसे ढोली भी कहते हैं ।

तंत—स० तंत्री; प्रा० तति = ताँत का राजा । हूम लोग सारंगी पर गाया करते हैं ।

दूहा ६३१ तणक्कइ—तन् तन् शब्द करता है ।

पियइ—(मद्य) पीता है ।

जगाळेह—प्रा० उग्गाळ = जुगाली करना ।

वउळाओ—विताओ ।

दूहा ६३२ मथइ—आधुनिक रूप—माथे = पर ।

ऊजासइउ—उजाड़ भूमि ।

लीजइ—ले ली जाती है । भविष्य के अर्थ में वर्तमान ।

दूहा ६३३ कामइउ—काम + इउ (जनवाचक प्रत्यय)

दूहा ६३४ उताँमळउ—प्रा० उतावळ, हिं० उतावला ।

दूहा ६३५ अणावाँ—आणनो का प्रेरणार्थक । संभाव्य भविष्य, उत्तम ।

पुरुष, बहुवचन ।

मोहि—स्वयं ।

दूहा ६३६ याँ—कर्म का प्रत्यय लुप्त ।

भारथ—भारत, युद्ध ।

दूहा ६३७ कूँट—पैर का बंधन ।

दूहा ६३६ लकि—लकी = लकवाली ।

डाके—राजस्थानी डागो = ऊँट ।

डहकि—डहडहती है ।

दूहा ६५० पवग—स० स्रवग = षोड़ा ।

सूधा—न० शुद्ध । मिलाओ—हिंदी सीधा ।

खयँग—स० खडग, राज० खयँग, खग, खग ।

चतुरग—ऊमर के पास उम समय केवल बुड़सवार थे । फिर भी चतुरंग मेना का चढना कहा गया है । यह केवल परिपाटी का निर्वाह है । लोकरगीत (Ballad) की यह एक विशेषता है । आलखड मे जहाँ जहाँ युद्ध का वर्णन आया है वहाँ वहाँ वे ही शब्द बारबार पुनरावृत्त हुए हैं चाहे उनमे वर्णित बातों के लिये मौका हो या न हो ।

दूहा ६४१ हळदळ—अप० हल्लोहल्ल=हलचल ।

कर—स० क्रूर = दुष्ट ।

श्रोन्भिना—स० उत्कंप, प्रा० उत्कंप (?) = चंचल किया, चलाया ।

जहसइ—बैने । जानणो का सामान्य भविष्य । प्रा० जासइ ।

दूहा ६४३ छेती—स० छिद् । सजा = अतर, फासला ।

घाते—प्रा० घत्त । पूर्वकालिक ।

जिहाज—सवारी, यहाँ ऊँट । मिलाओ—Ship of Desert (मरुभूमि का जहाज) ।

दूहा ६४५ कटाड़ी—कटाड़नो काटणो का प्रेरणार्थक है । सामान्यभूत, लोलिंग ।

निण—उमने अर्थात् ढोले ने ।

ताघ—उसका अर्थात् ऊँट का ।

दूहा ६४६ पद—न० पथ, प्रा० पद ।

दूहा ६४७ बग—बाटी ।

दूहा ६४८ गिर—स० गिर । मिलाओ—

आरंभ मे कियो जेलि उपायो गावण गुणनिधि हूँ निगुण ।

किरि कडनीमपनडी निज करि चित्रारे लागी चित्रण ॥

(वेलि २)

प्राणनाथ प्रीतम मिलयो किरि सरि उड़यो हक ।

दूहा ६५० मिलरउ—स० मिलत्त ; प्रा० विलक्तव ।

दूहा ६५५ कुहकड़ा—कुहकना, कू कू आवाज करना, कूकने का शब्द ।
ज्यउँ इ०—मानो मनुष्यों के मरने पर कूक रहे हों ।

दूहा ६५७ जई—जहँ । अन्य रूप—जँ ।

कूवेण—कुवो से (प्राप्त होता है) ।

कूँकूँ-वरणा इधइड़ा—अर्थात् कुकुमवर्ण हाथोंवाली स्त्रियाँ ।

सुं घाढा—टीक अर्थ = अस्पष्ट है । घाढा = काढा (?) ।

जेण—जहाँ से ।

दूहा ६५८ डेसइ—डेना ।

मारुवाँ—मारु=मरुस्थलवासी । (विकारी रूप) मिलाश्रो—

मरुधर पाट मतीर हू मारू कहत पयोधि । (विहारी)

सूधा—स० शुद्ध=सोभे सादे, गँवार ।

थळोइ—थली के । थली=मरुस्थल ।

दूहा ६५९ वर—भला, भले ही, चाहे ।

कचोळउ—ग० कचोळक=कटोरा जिससे घड़े में पानी भरा जाता है ।

सीचनी—खीचती हुई या खींचकर ढोती हुई ।

य—ही ।

दूहा ६६० भाजइ—स० भज् । भाजणो=भागना, जाना, दूर होना
रिडु—स० अरिष्ट, गिष्ट ।

फाकउ—टिड्डियों के वच्चे ।

तिडु—टिड्डीदल ।

दूहा ६६१ पीयणा—देखो दूहा ६०० ।

दूहा ६६२ पुरिसे—सं० पुरुष । दोनों हाथ फैलाने पर एक की अँगु-
लियों से दूसरे की अँगुलियों तक की नाप को एक पुरस कहते हैं । यह लग-
भग ३ हाथ का होता है ।

आपण—स्वय ।

उभोँखरा—खडे रहनेवाले, कहीं न टिकनेवाले, भ्रमणशील, जिनका एक
जगह निवास न हो (nomad) ।

गाडर—अप० ।

छाळी—स० छागली, अप० छाली ।

दूहा ६६३ वळती—लौटती हुई, प्रत्युत्तर देती हुई ।

ढो० मा० दू० ३० (११००-६२)

दूहा ६६४ कूलरड—समूह । मिलाओ—

सात सदेल्पाँरे मूळरे, पण्हारी ए लो ।

पाणीडेने चालो रे तळाव, वाला जो ॥

(प्रसिद्ध पणिहारी का गीत)

लैकार—सं० लयकार = लयपूर्ण शब्द ।

दूहा ६६५ फीकरिया—फीका + र (स्वार्थ प्रत्यय) + ह्या (अनादर-वाचक प्रत्यय) ।

दूहा ६६६-६६८ ये दूहे पहले आ चुके हैं । देखो दूहा न० ४५७, ४८४ ४८५ ।

निवाँरू—नीची भूमि जहाँ जल भरता है । अतः उपजाऊ ।

दूहा ६६६ नीर चढह—(१) पानी पर चढ़े हुए । (२) पानी के लिये चढती हुई (=जाती हुई) ।

दूहा ६७० बग्वाण—सं० व्याख्यान । प्रशसा ।

दूहा ६७१ पूरी सख्व—साख भरना = उमर्धन करना ।

रुडियाउन—रळी + आइत (वाली) । उ के आगम की प्रवृत्ति ।

पग्ज्य—सं० पगीचा ।

दूहा ६७२ बिलोडिया—अप०—निंदा किया ।

मान्—मरुदेश, माग्वाड़ ।

मोशगिग्—पतिप्रेमवाली । मिलाओ—दुहागिन = पतिप्रेम से वचित ।

दूहा ६७३, नई—ने ।

दूहा ६७४ ढोल—अन्वार्य—नखर में ढोल बजने लगे ।

बीन—रुथा ।

परिशिष्ट (२)

(थ)

[यह प्रति त्रीकानेर के रॉगड़ी श्वेतांबर नैन उपाश्रय के महिमाभक्ति-भांडार मे है । इसका पाठ जोधपुरीय (च) प्रति से मिलता है । यह प्रति प्राचीन जान पड़ती है । इसमे जेसलमेर निवासी वाचक कुशललाभ द्वारा रची हुई चौपाइयों भी सम्मिलित हैं । इसका पाठ अत्यंत शुद्ध है ।

ढोला मारवणरी चोपई

श्रीसारदाय (शारदायै) नमः

दूहा

सकळ सुरासर सामिनी, सुणि, माता सरसत्ति ।
विनय करीनइ वीनवुँ, मुक्त छउ अविरल मत्ति ॥
जोताँ नवरस एणि जुगि सविहूँ धुरि सिणगार ।
रागई सुर नर रँजियइ, अबळा तसु आधार ॥
वचन विलास, विनोद रस, हाव भाव, तिहों हास ।
प्रेम प्रीति, संयोग सुख, ए सिणगार अवास ॥
गाहा-गूढा गीत गुण कउतिग कथा कलोळ ।
चतुर तणा चित रंजवण, कहियइ कवि कल्लोळ ॥

गाहा

मणहर नवरस मळ्हे सुंदरि नारीण सरस संवधा ।
निरुवम कव्व निवद्धा सुणउ, सयणा जणा सगुणा ॥
नरवर नयर नरिंदो नळराय सुउसु सलहकुमर वरो ।
पिंगळराय स धूआ वनिता मारवणी वरगोसु ॥

कवित्त

पंथ उदड प्रचंड सदा चंगो पुरसाणी ।
वीजी निर्मळ वल्ल पक विणु गगानउ पाँणी ॥

पट्टकल पट्टणी देस भोगी घर दक्षण ।
 मुंजल म्पट्टीगुड विप्र तेरोतगी विचक्षण ॥
 निम चद्र वदनि, चंजळ वरणि, दत भवुकड दामिनी ।
 नाग्य नवणि न्मनि इणि मनोहर मारू कॉमिनी ॥
 मरुवर देस मभारि मवल धन धन समिद्धउ ।
 नामइ प्गळ नरग पुद्वि सगळइ परसिद्धउ ॥
 राज म्पै रिण्णगइ प्रगट पिंगळ पृथिगीपति ।
 प्रतपै जन परताप दानि जळहर निम दीपति ॥
 देवडी नाम ऊमा वरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि ।
 चौसठि वळा सुदग्नि कुंमरि चतुर कथा कहिस्युं सुपरि ॥

चउपई

प्रगळ नयगी मरुधर देन, निरुपम पिंगळ नामि नरेस ।
 मान्वाटी नवजोटी धणी, उत्तर सिंधु भूमि तसु तणी ॥
 मोटा नगर लोंग लुजि वरइ, चावउ कुंवर कुळ छइ चिहुं दिसइ ।
 श्राठ गृहस ह्यवर तसु म्पिळइ, पत्र सहस पायदळ तसु जुडइ ॥
 वग्ग वाग्मद वड्टउ गजि, अरि भाजइ सभळि आवाजि ।
 निग्नि वग्ग माहि निज प्राणि, साधी सुधु मनावी आण ॥
 पनर वग्ग पोटाउ राजान, रूपवंत रतिराय समाण ।
 पाळउ राज सुपी आपणउ, तिणि अवसरि हूत्रो, ते सुणउ ॥
 प्पणि दिवसि हुंउस आपणी, भूप चटइ अहेडा भणी ।
 प्पट्ट गृह नारंगी वेदि, वदिया जूजू जनइ वेदि ॥
 रानि मभतउ राप्यउ (थाक्यउ) राय, व्याप्यो तृया ऊन्हाळइ वाय ।
 वरुणो राजा पट्टिया वाट, तत्तळ वड्टउ दीठउ भाट ॥
 ताणु पाणि छागळि जळि मरी, टाकुर तणी दृष्टि वे ठरी ।
 देसा भाट दीयो दीवायु, रेवेंत थी जतरियो राय ॥
 निरमळ सीतळ पायउ नीग, सुधी हूत्रो नरगाय करीर ।
 भट्ट पानि तत्र प्पट्ट भूप, कवण काजि, तुम्ह किसउ सन्प ॥
 नाग्य गद मुभा अनिना टाउ, मागड रानळ हुंनु पनाड ।
 नाग्य गद जळ सीती सुधी, पिंगळ राजा मेदण भणी ॥
 मोटा नगर लोंग लुजि वरइ, चावउ कुंवर कुळ छइ चिहुं दिसइ ।
 श्राठ गृहस ह्यवर तसु म्पिळइ, पत्र सहस पायदळ तसु जुडइ ॥

वरस वारमइ वइठउ राखि, अरि भाचइ सभळि आवाजि ।
 पॅचाग तेहनइ कीध पसाउ, भाटइ ओळखियउ नरनाह ॥
 कहउ भट्ट, तई कुण कुण ठाम, कुण कुण देस, नगर कुण नाम ।
 वस्तु अपूरव दीठि जेह, मुक्त आगळि परगासउ तेह ॥
 भाट कहइ, सभळि मुक्त वात, मइ दीठा मरहठ, मेवात ।
 दीठा वंग, गौड, बगाल, कुकण, नइ काबिल, पचाळ ॥
 दीठौ सगळउ दक्षण देस, चतुर नारि तनि चचल वेस ।
 माळव नैइ काबिल, मुकराण, कासमीर, हुरमुज, पुरसॉण ॥
 सिहळ दीप पदमिनी नारि, परम उल्लेखि रयणायर पार ।
 गुजरात, सोरठ, गावणउ, जोयउ देस तिहाँ स्त्री तणउ ॥
 सिंधु, सवालख, नै सोवीर, पूरव गगा पइलइ तीरि ।
 दीठा मई इण्णि परि बहु देस, आपणि हरखि भाट नै वेसि ॥
 पिंगळराय कहइ तिण्णि वार, कोई वळी (? वसत) अपूरव सार ।
 दीठि हुइ, सा मुक्तनइ दाखि, गम गोवर मन माहिँ म राखि ॥
 उत्तम दीठि वस्त अनंत, ते कहताँ किम आवइ अंत ।
 ताहरइ मनि जे अचरिज होइ, कहउ तेह जिम दाबुँ सोइ ॥
 नेडइ मडळि काई नारि, रूपवत हुय राज-कुमारि ।
 अति अद्भुत सुदर आकार, ते परणेवा हरख अपार ॥
 भाट भणइ, सुणि पिंगळराउ, मुक्त भुइ जोवा तणउ सुभाउ ।
 बरस वीस लागि इणइ वेसि, जोई वनिता देसि विदेसि ॥
 रमणी घणी रूपि रतनि, निरखी एकाएक असम ।
 पण जाळोर नगर पदमनी, दीठि गडधि, जाणि दामिनी ॥

दूहा

सिरि अठार आबू घणी, गढ जाळोर दुरग ।
 तिहाँ सामंतसी देवडउ, अमली आण अभंग ॥

चउपई

सबल सेन, सोवन-गिरि-घणी । पटराणी भाली (सोढी) तसु तणी ॥
 तसु पुत्री ऊमा देवडी । जाणि विधाता सइहथि घडी ॥

दूहा

चढ वयण्णि, चपळ वरणि, अहर अलत्ता रगि ।
 षजर नयणी, खीण कटि, चंदन परिमळ चंग ॥

अनि अद्भुत ससार इणि, नारी रूपि रतन्न ।
 पन्नर नयणी खीण कटि, कुमरि सु कचन वन्नि ॥
 जौ तुक्त सारीखड जुडइ भाभिरि तिरिण भरतार ।
 जोडी गही कान्ह ज्जळ कर मेळै करतार ॥

चउपई

भाट वचन गजा सॉमली, कउतिग ए हियडइ अटकळी ।
 व्हड भाट, का बुधि विनाखि, जिणिए ए कारज चडइ प्रमाणिए ॥
 राजा तया कटक असवार, ते आधी मिळिया तिरिण वारि ।
 भाट साथि लीखड करि भाड, आपण नयर पवाखड राय ॥
 गजा पासि भाट ते ग्हइ, नित नित नवा कणहता लहइ ।
 गजा मनि ऊमा देवडी, नवि वीसागइ एक जि घडी ॥
 तेडि प्रधान मत्रि आपणउ, कइ आळोचन परिणेवा तणउ ।
 तेह जि भाट मूक्यउ परधान, देई अनगळ वळित दान ॥
 साधर वेखळ नाम पवाम, गयड मूक्या मन वेसास ।
 घणी भनामण घेहनइ नरी, तू साचड मित्र माहगड सही ॥
 काई वृद्धि नुमति वेळवे, जिम तिम ए जोडी मेळवे ।
 सर्व साजरनु परवड्या, आधी जाळोरइ ऊतखा ॥
 वट छत्रीस साप मॉहि वटउ, चावड सामंतसी देवडउ ।
 पिगळराय तगा परधान, आया नुणी द्वियउ बहुमान ॥
 मगनि की परधानइ तणी, पृच्छर, कहउ (जात) आपणी ।
 पूगा इनी पिगळराय, दिणि कारणि मूक्या इणि ठाइ ॥
 एर वीननी द्विव अम्हतणी, समळि तू सोवनगिरि घणी ।
 नुंअरि नुन्दारी अपहर जिनी, पिगळराय तणइ मनि वसी ॥
 शंगे सुणीवड कुमरी रूप, उच्छक थयउ आप मनि भूप ।
 अग्नर मोनळिया इनि ठाइ, कुमरि नुन्दारी मागइ राय ॥
 वाळउ सामंतसी शेळीयउ, कुमरि नातरड पहिलउ कीयउ ।
 पहिली ज्ञानादनो घणी, मॉगी हेंती राजा मणी ॥
 नेहनइ भे तड ऊतर द्वियउ, वसे वटठ वीट निगपीयउ ।
 उदयचंड गजा चावडउ, छट गिणधवळ कुमर तनु वडउ ॥
 राण सरत सुजरघर घणी, तिणि प्रधान मूक्या अम्ह भणी ।
 कुमरि मंगवी मीनति घणी, वीन्ही ऊमादे कुंथरी ॥

भाली अजी न मानी वात, रोगिल देस गंड गुजरात ।
 निवळ पुरुष नइ नीळज नारि, किम तिहाँ दीजइ राजकुमारि ॥
 करते तउ कीधउ नातरउ, पाणि जाणे पडीयउ पाँतरउ ।
 कहइ वात जेसळ सत्र कहिउ, तउहिव सीख अम्हानइ दीयउ ॥
 एह वात भाली सँभळी, ते प्रधान तेडाया वळी ।
 एक उपाय बुद्धि तिणि लह्यउ, वळतउ, जेसळनइ इम कह्यउ ॥
 कुमरि-वात जोतिष ए कही, वरस एक लागि सूभइ नही ।
 पाछइ लगन-तणउ दिन नही, एह बुद्धि म्हे करिस्याँ सही ॥
 कुमरी लगन परिणवा चार, आगळि एक दीह असवार ।
 मूँकेस्योँ रिणधवलॉह-भणी, सकिस्यइ नही आवि ते-भणी ॥
 लगनि थकी पहिलइ इक मासि, माणस मूँकेस्योँ तुम्हि पासि ।
 छानी वात विमासी वहु, सभि सहू को आविसी सहू ॥
 आवू तणी जात्रनइ मिसइ, लगन तणी वेळा हुइ जिस्यइ ।
 आवि इहाँ ऊतरियो तुम्हे, कुमरी परणावेस्योँ अम्हे ॥
 उदयचद रिणधवळह भणी, कुमरि वीवाह लगनि दिन गिणी ।
 आगिमि एक दीह असवार, मूँकेस्योँ परिणवा विचार ॥
 किम आवेस्यइ इक दिन माहि, लगन दीह वहि आघउ थाइ ।
 दोस न कोई इम अम्ह-तणउ, साच वचन होस्यइ इम आपणउ ॥
 सीष माशि चाल्या परधान, दीधा अरथ गरथ बहुमान ।
 पूगळ नयरि पहूता आइ, मिळिया हरषइ पिंगळराय ॥
 समाचार सविस्तर कह्या, पिंगळराय हीय गहगह्या ।
 छाना नितु पुहचइ परधान, रळियात थ्या चिति परधान ॥
 मास दीह आगळि असवार, आया पूगळि नयरि ति वारि ।
 करी सजाई जानह तणी, पिंगळ चाल्या परणण भणी ॥
 सवळसेन साथइ बहु थट्ट, याचक चारण वॉभण भट्ट ।
 आप सरीषा राजकुँमार, साथइ एक सहस परिवार ।
 पहिरण पट्टकूल सवि-तणइ, चडीया आडंवर घणइ ।
 वाजित्र वाज पच सवह, रिण कोळाहळ काहळ सह ॥
 सवळ सेन साथइ परिवळा, जाइ जाळोर नयरि ऊतरथा ।
 चाचि (ग) दे सगली परि सुणी, परि माडी परिणावा-तणी ॥
 लोक सहू पाषतियइ मिळ्या, देषी कटक देस खळभळ्या ।
 पूळइ प्रजा, कवण ए राय, कवण काजि, जास्यइ किणि ठाइ ॥

बळता ऊतर एहवा करइ, रणे कोइ मन माहे डरइ ।
 पिंगल गणा पृगक्ष घणी, जास्यइ जात्रा आबू भणी ॥
 गौडळिक वेळ क्व हूई, जोवा जान पधागी जूई ।
 तव पिंगळ तेडी सुभ वाग, परिणाव्यउ करि मगलच्यारि ॥
 निरपयउ नरगणे पिंगळगाय, राजाइ तसु आर्यउं दाय ।
 रूपयत नई सुदर देह, मोदी मनि निरपता सनेह ॥
 सोळइ वग्ये परग्यउ गउ, अति सुकमाळ असभय काय ।
 अगइ वरम-तणी देवडी, लोक व्हइ, ए चोडी जुडी ॥
 एर कड; नूठउ दरतार, पाम्यउ तिणि पिंगळ भरतार ।
 गणे वीपउ वीवाह नुग, विहूँ ना मनि वाधुड उछरग ॥
 भगति जुगति मीचप अति घणी, सामुहणी सा मोदी तणी ।
 परच्या सरथ नगरि जालोगि, रूचई गिरि वाजिबह घोर ॥
 आगळिशाना पाटण जामि, वीचउ नकर गयउ तिणि टामि ।
 उदयचदनय त्रियउ जूडार, परग्यावउ रिणधवळ कुंमार ॥
 उळतउ पूरुद जन विपेन, लगन विचई थायइ दिन एक ।
 पयद वडताँ मॉडउ पञ्चउ, तिणि कारणि मोडउ आपत्यउ ॥
 नरा वाप दरथउ मन माहि, नकर कदाव्यो वाहइ साहि ।
 गत्रा उरइ न वीत्रउ ब्रोड, जउ मुक्क मागी परगुड मोट ॥
 रगी मरइ परगुण-तणी, चडी जान रिणधवळॉह-तणी ।
 रणी टगावळि मउ परवरथउ, मोवन गिरि नेडउ मंचरथउ ॥
 वीचइ दिनि चाचिगड गड, वडठउ मन मॉहि करइ उपाय ।
 मा प्राण रिणधवळॉह जान, करिची भुंभ पिगराजान ॥
 प्रळमाँ यो ऊपडनी खेड, देणी राजा पळ्यउ सदेह ।
 नरी एर गिर पडवड विवान, विगसेव्यइ दिव सगळी वात ॥
 नर रोडा पिंगळ नरनाथ, सवल एह रिणधवळर माथ ।
 मागेनाइ भुंभ मॉडित्तइ, कुळि कळक माहरइ लागिस्यइ ॥
 चाचिगड मनि पण्डितो खोच, मोदी माथि करइ आळोच ।
 नर जगोवड पिंगळ गय, वीठइ कर्क ह्यॉडि किम जाय ॥
 करि मरडोच तेड नर कडउ, आपॉँ विहूँ नेह तउ रहइ ।
 ये पटुचउ शिप प्रगत मागे, तउ अविहइ रोइ प्रीति आपणी ॥
 ब्रई प्रवटि मरिनीँ अउभगुड, तडि इहनागुड कुमरी तगुड ।
 पीरारि गणी गणकृमादि, पिंगळ गय चाल्यउ तिणि वारि ॥

चाल्यउ कटक सहू दळ चडी, पीहरि छइ ऊमा देवडी ।
 परणा नइ दळ साथइ करी, पहुता कुसळइ पूगळ पुरी ॥
 तव आवी रिणधवळह जान, मिळियो चाचिगदे राजान ।
 मोडा आंव्या हिव किणि काज, नफर तणउ दोस महाराज ॥
 नगन वेळा लगि जोई वाट, नाया तुम्हे थयउ ऊचाट ।
 नेह लगन जउ किमही टळइ, वळतउ वरस पच नवि मिळइ ॥
 तिणि वेळा पूगळनउ धणी, जात्रा जातउ आवू तणी ।
 अरडइ ते वहतउ आवीयउ, पिंगळ राजा परणावियउ ॥
 रीसाणउ रिणधवळ कुमार, वाप भणी मूक्यउ समाचार ॥
 एहवउ छळ चाचिगदे क्रीयउ, पिंगळ राजा परणावियउ ।
 उदयादीतइ जाणी वात, चाचिगदे इम पेळी घात ।
 करी कोप मन माहे घणउ, तेडाव्यउ कुमर आपणउ ॥
 उदयचढ चाचिगदे राय, रोस चड्या वे घेलइ दाव ।
 माहोमाहि मॉडाणउ पेध, वधियौ वयर हुयउ बहु वेध ॥
 सोवनगिरि हूँती चिहुँ टिसइ, लूसे देस कदे नहु वसइ ।
 पिंगळ राजा ते परि सुणी, मॉड्या सेन सबाई घणी ॥
 उमादेस्यउ अविहड प्रीति, वाळपणा लगि लागी चीति ।
 कहवारथउ चाचिगदे भणी, आवाँ भीर अम्हे तुम्ह-तणी ॥
 वळतउ चाचिगदे वीनवइ, रषे कटक ले आवउ हिवइ ।
 नही सोनगिरि केहनइ पाडि, जास्यइ आपण ही गढ छाडि ॥
 हिव ते जेसळ नामि षवास, मनि आपणइ सुबुद्धि विमासि ।
 पूगळ माहि बुद्धि क्लेळवइ, गोवळ सहि गोवर मेळवइ ॥
 धवळ धेनुवे धवळइ वरणि, सारीषा वाळुडा सुवर्ण ।
 घोणा-तणी वाळि माहि आणि, पाइगहइ वाँध्या तिणि ठाणि ॥
 घोडा समउ ग्रास ते लहइ, मापणि वाँधी साथइ रहइ ।
 पीयइ दूध मनगमता ग्रास, वेगइ ते हारवइ ब्रह्मस ॥
 वेआसणी वहिल अति चंग, कीधी एक अपूरव अंग ।
 वेवइ धवळ जोतरिया तेणि, जाणे पषी चाल्या जेणि ॥
 जेसळ आप वडइ असवार, कोस वधरइ वारावार ।
 जोयण एक घडीमइ जाइ, हारइ नही न थाका थाइ ॥
 इम दीहाडी करइ अम्यास, जाँ लगि हूआ वारइ मास ।
 जोनन थउड घडी माहि नीम, वळी जाइ आवइ करि सीम ॥

शरि परि घोरी लीपवि दोइ, राजा प्रति वीनवियउ सोइ ।
 वरस एक जत्र पूरण हुवा, तत्र पिंगळ चिंतातुर थया ॥
 इरु आपणउ पुत्रप पाठवड, कहउ त आवणउ कीजय द्विवइ ।
 तउ वटि जाइ गजानइ भिळवड, माग्ग सहू सुधउ सँभळवड ॥
 धवळा आसण मउइ गउ, तउही वैधि न वडइ काइ ।
 वणी सफार्द थई अउफणइ, त्रेवडि छइ ऊमादे तणइ ॥
 साथउ जउ गाटर असवार, आथर ऊठ चलावइ भार ।
 मवळ साथ जउ वाटइ वइइ, तउ रिणधवळ नही सा सहइ ॥
 रू (१) रू) वी वाट कटक मग्राम, अनरथ थास्यइ जाइमॉम ।
 चाचिगड तिगि आगइ वहु, कही वात मारगनीसहू ॥
 लउ प्रछत्र आगइ एकलउ, पहिली आणउ कीधउ भलउ ।
 रुमणी वरि पुहुचावी पछइ, सगळी वात सोदिली अचइ ॥
 ते आवणउ जेसळ परधान, हगपित मिळवउ पिंगळ राजान ।
 माग्ग-नणी वान सहू कही, तेवड भुभ म करियो सही ॥
 एवणि वटिलइ जेसळ साथ, इम त्रेवडि मॉडी नरनाथ ।
 इतलउ वटिड माहरउ मान, कहियउ चाचगडे राजान ॥

दूहा

जेसलनउ पिंगळ कहइ, करि आणा परिआण ।
 दिन एवणि मॉदि देवडो, निम आवइ इणि टामि ॥
 साचउ छॉन तू सही, तू सेवक हूँ सॉमि ।
 आगउ ते परणावियउ, करि वळि एतउ कॉम ॥
 शोवनगिगिहें चिहें दिमइ, रूवा मारग घाट ।
 पयो कोइ प्रगळ तणउ, वहे न सकइ वाट ॥
 कटनी जउ आपे वर्रा, तउ रीसावइ गय ।
 नॉमनामी लटइ थकट, वैधि न वइसइ काय ॥
 वचन रुगी गजा तणउ, जेसळ कीवउ प्रणॉम ।
 तउ तू छॉन नाहरउ, जउ सानें ए कॉम ॥

चउपई

गव कउर जेसळ इफ वान, मउ फोस जावउ एवणि रात ।
 शणि पर वटिभ्यउ जेवण घटी, आणेस्यउ ऊमा देवटी ॥
 गीष मानि जेसळ वीनवड, लूण हलाल करेमु द्विवड ।
 तउ ताहरउ छॉरु महाराज, जउ मेळावडें वहिली आन ॥

तेह जि वहिल सज तिणि करी, धवळा ते धोरी जोतरी ।
 पहिली जे सीषविया हुता, जोयण घडी जाइ आवता ॥
 जोजन घडीयइ भाभुउ थाय, लोहा भरइ न थाका थाइ ।
 दीवइ मारगि जेसळ वहइ, वाटवाट सगळी विधि लहइ ॥
 सभई भूमइ अवरइ नाम, कहइ अवर मुभु अवर काम ।
 सॉभु समइ कीधइ रमभोला, जायइ ऊतरीयउ जाळोर ॥
 चाचिगदे राजा सॉभळिउ, जेसळनइ तत्र आवी मिळिउ ।
 सोढी भणी जणावी त्रात, सहू समारथा एकणि राति ॥
 बीजइ दिनि ते छानउ रहिउ, कुमरि हलाणउ किणि नवि लहिउ ।
 एक लाप नउ छइ तु (? उ) भणउ, ते मडाविउ कुमरी तणउ ॥
 तों लागि इहाँ करि राषिउ अछइ, पूगळि कुमरी पहुता पछइ ।
 मोकळिस्याँ मोटइ मडाण, ताहरइ छइ बहुलउ परिपाण ॥
 सहू जडाव साथि तनु दीयउ, सॉभु समइ मुकलावउ कीयउ ।
 चाली ऊमादे कुँअरी, दीधी साथइ दीवाधरी ॥
 न लियइ वीसाम उनविरहइ, पवन वेग ते वाटे वहइ ।
 कहइ उडइ पंघी आगासि, प्रगडइ आया पूगळ पासि ॥
 वहिल छोडि ऊतरिया जिसइ, पिंगळराय पधारिउ तिसइ ।
 साथे कटक मेळि परिवार, करइ भइ तिहाँ जयजयकार ॥
 चामर ढालइ छत्र सिरि चग, वाजइ तंती नाद मृदग ।
 पइसारउ तिणि इणि परिकीयउ, पटराणी ले घरि आवीयउ ॥

दूहा

सुणी बात रिणधवळ, सहि काळउ थयउ कुमॉर ।
 पाटण पहुनउ आपणइ, आरति करइ अपार ॥
 पाछु सामंतसी सुपरि, मोटउ करि मंडाण ।
 ऊमादेरउ ऊभणउ, इणि परि चव्यउ प्रमाण ॥
 पटराणी पिंगळ तणी अपछरनइ अणुहारि ।
 आछइ उमा देवडी सुंदरि इणि ससारि ॥
 सुंदरि सोळ सिंगार सजि सेज पधारी संभि ।
 प्राणनाथ प्रीतम मिल्यउ उर सरि वइठउ संभि ॥
 अद्भुत रूप असंभ जग जोवइ इणि परि जपइ ।
 राणी परतखि रंभ कहउ उपम केही कहाँ ॥

सोरठा

प्रीत नुँ अविक्कड प्रेम, ख्यणि दिवस रगइ रमइ ।
 मोरउ मधुकर जेम कुमुम साँणि केनकि तणउ ॥
 मायउ वोई मेदि ऊभी खूरज साँमुही ।
 ताइ उपरी पेटि मोहरावेली मारुई ॥

चउपई

गजा मन मई घणउ उद्धरग, पट्टराणी नुँ प्रेम प्रसग ।
 मनइ मनोग्थ नुँ नवमान, हुआ पूरा पूगी आस ॥
 गान पिता मनि आण्डे घणउ, जनम हूओ मारवणी तणउ ।
 गीसा अघासा नगर मभानि, पुत्र तणी परि मगळचार ॥
 अनि सुदर नरूप आमान, अपछर रभ तणी अणुहारि ।
 पणिमळ मधुकर पावट न्हइ, भिदि पदमनी महु को कहहु ॥

वृहा

वरम अउठ वडळा पळे, देव न वृठउ देसि ।
 पट पापइ नयि लोग पडि; वसिवा गया विदेसि ॥
 माव्याडिमा देसमई, एक न जाई गहु ।
 रुदि ही होइ अवरगणउ, कइ फाकउ कइ तिडु ॥
 पिगाळि पणिवणि पृच्छिउ, कीजइ तेवटि काइ ।
 ठाम नु ठाम नु अटकली, जेथी वसिजइ जाइ ॥
 उक पट कारणि पोत्रिवा, देसउ वउ इणि ठामि ।
 पुणरि पट पाणी प्रयळ, समळि पिगळ राय ॥

चउपई

पुणरुभी अचाळा गीसा, वण गोवळ सवि नायई लीया ।
 नगर मरळ लोकि पणवग्या, आनी पुनि पुणरि जनरथा ॥
 नीला पट नई नीमळ नीर, परिवळ अन्न वणा दधि पीर ।
 गाइ गां णिग विणि ठामि, महु को पुसी यवा निणि गामि ॥
 निनि नेला ने माउ माउ, विषमा पथ र चहुला बाट ।
 नरळ न गट पोस्तउ आण्णइ, गजा आदरि तेन्पउ वणइ ॥

सगळी वात सविस्तर कही, पिंगळगाय तणी परि सही ।
 भाऊ भणी द्यह राजा घण्ट, हिव साल्हकुमरनी उत्पति सुणउं ॥
 नळराजा नळवरगढ राय, वडरी दड भजइ भड वाइ ।
 पाइक लाप एक परिवार, सात सहस सेना असवार ॥
 पच सहस माता उ मता, षग त्यागि नहु काइ षता ।
 भरिया रिधि नवनिधि भंडार, परिथळ गाम अंत नहु पार ॥
 त्रीस वरग तसु करहा तणा, जावई पथि घणी जोयणा ।
 ताजी बहुत राय तस तणय, भुपति सवळ सहू को भणइ ॥
 नहीं रायनइ पुत्र संतान, तिणि अहनिंसि चिंता असमान ।
 दिनि प्रति पूजय देवी देव, सारइ जती व्रतीनी सेव ॥
 ओषध मत्र यंत्र आदरइ, भरणा पुत्र काजि बहु भरइ ।
 पुत्र काजि मन चिंता घणी पेषइ अथिर रिधि आपणी ॥
 इक परदेसी इम ऊचरइ, जउ पुष्कर तणी जात्रपति करइ ।
 कुट्टेव सहित पहुचउ तिणि थानि, तौ सही हुवे पुत्र सतान ॥
 मानी वात राइ मनि षरी, पुष्कर तणी जात्रपति करी ।
 अनुक्रमि राणी थ्या आधान, हरष्या नगर लोक राजान ॥
 पुत्र जनमि हरष्यउ राजान, मनि आण्यौ नळ राजान ।
 धरि धरि उछत्र मगळ घणा, कीया वधावा पुत्रह तणा ॥
 मायताय मनि पूगी हाम, साल्हकुमर तसु दीघउ नाम ।
 मृतवच्छा माता भय होइ, ढोलउ नाम कहइ सहू कोइ ॥
 अति सरूप सुदर आकार, अभिनव कामदैव अवतार ।
 कुमर हुवउ त्रिहुं वरसोह तणउ, जनम सफल जाणे आपणौ ॥
 राजा सुहणउ पाम्यो रात्रि, जाणे जायो पुष्कर जात्र ।
 तेहि प्रधान मत्रि ऊचरइ, जात्रा तणी सजाइ करे ॥
 साथइ सेज वाला पचास, सहस ऊठ, एकसउ ब्रहास ।
 राज भळायो मुहता भणी, राजा चाल्यो जात्रा भणी ॥
 भले दिवस कीया परियाण, पच सवद वाजइ नीसाण ।
 वाटे निरभय सुषीयाँ वडइ, सूरु सगळे आदर लहइ ॥
 घणी रिधि साथइ वळ घण्ट, सघ चलयउ ए राजा तणउ ।
 वाटइ मास एक ते वही, परि सिरि पुहकरि आव्या सही ॥
 विधि भेटिया आदि वाराइ, अधिकउ कीयो सवळ उछाइ ।
 भगति जुगति पूजा तसु तणी सफल जात्र हुई राजा तणी ॥

दूहा

झिण्ण अक्खरि घण्ण ऊनभ्या, प्रगव्यउ पावम मास ।
 पासइ पिंगळ रायनट, क्रिया ऊनारे वाम ॥
 उनमियो ऊनर दिसा' गयण गरवने थोर ।
 वइ दिसि चमच्चइ दामिनी, मंडइ तडव मोर ॥
 च्यारि मास निरचळ रद्या, सरवर तणे प्रसनि ।
 पिंगळ नेइ नळ भूपती, मिळिया मनि अनि रगि ॥

चउपई

सुर वीण देवड मुळमाळ, वीसे वीळउ भजा भूपाल ।
 रयीण वीहि नगनि ते रमइ, भूपति वे अहिडइ ममइ ॥
 एक दिवम आडेडा आळि, नळ राजा चडियो पुहगाळि ।
 एक ससउ अग्हे नीमचो, तिण्णि पृटे आवड संचरगुड ॥
 नाटे ससउ पिंगळ आनामि, वसइ राजा चञ्चइ ब्रह्मसि ।
 वरि उता छट रागी नदी, नळ राजा क्रिणि लवियउ नदी ॥
 पोती छट ऊमा देवडी, जाणि विघाता सट्टहि वडी ।
 असि पाँवी नइ ऊमउ ग्यो, जोवे त्रिणि दिसि ससउ गयो ॥
 गयो ससउ वड लंका हेटि, वीटा नळ राजा ते ट्रेटि ।
 पटनगी पिंगळ नगी, वीटी नळवर गढनट वणी ॥
 पोती माग्गी पल्लण्ट, सोवन्न वन्न चीर आदणइ ।
 पेयी राजा साह्यउ वळ्यउ, इनी दुद्धि मन मॉहि अटक्की ॥
 कुमरि नाल्हडुमनइ जाणि, नातौ वीजे तौ सुव हुइ आजि ।
 ए नातौ वै क्रिणि विवि मिळ, तौ मनइ मनोरथ सगळा फळ ॥
 तिण्णि प्रभानि नळ राजा तिहाँ, आपण्ण आयो पिंगळ जिहाँ ।
 मगति अग्हे मॉडी तुम्हतरणी, तुम्हे पवानी कृपा करि वणी ॥
 तिहाँ पवारड पिंगळ राय, राजा मनि आण्णट न माइ ।
 अमृत समा सरस आहार, जीमान्णउ पिंगळ परिवार ॥

दूहा

ॐ सो वग्गा स सहि सवट्ट, कोडीवन्न केकाण्ण ।

अग्हे सग्गा आविया, प्रीति चडी परवाणि ॥

ॐ पाठांतर (३)—सोना वागा सावट्ट=सो वग्गा० । आग्हा मॉग्हा
 आपिका वडे=चडी । परिवॉण्ण ।

चउपई

करि भोजन बइठा एकठा, आख्या पासा नइ सोगठा ।
 रंगई रभ्या विन्हई राजान, बोल्यो नळराजा परधान ॥
 प्रीति विहुँ भूपाळह तणी, सगपण हुइ तौ वाघइ घणी ।
 दस दीहे आपणडइ देसि, वसिस्यइ सहु का गया विदेसि ॥
 साल्हकुमर सजी सिणगार, करि सरूप ए देष कुमार ।
 आपण रँगि रमतउ आवियउ, पिंगळि राजा षाळ लियउ ॥
 विनय करे नळराय वीनवै, ए सगपण आपॉ जउ हुवइ ।
 तउ आपॉ हुइ अविहउ प्रीति, राजॉनॉ घरि एह जि रीति ॥
 पिंगळि राजा कियो पसाउ, करि सगपण सतोष्यो राउ ।
 दी मारवणी डोला भणी, प्रीतै प्रीति जु अधिकी वणी ॥
 घरे पधाखउ पिंगळ राउ, मारवणी तेडी मनि भाइ ।
 घणुँ लडावइ आदरि घणै, लै ऊमादे इणि परि भणै ॥
 मारवणी किणि कारणि आज, घणुँ लडावइ काइ महाराज ।
 पिंगळ राजा हसि बोलियो, नात्र साल्हकुमरिसुँ कियो ॥

दूहा

आषै ऊमा देवडी, वालेंभ हिय (यै) विचारि ।
 मनह सकोडी, मारुवी दीन्ही समुद्रह पारि ॥
 कता, अणदीठइ कुमरि कीयो नातरउ काँय ।
 प्रीय पति पट्टराणी भणै, जिहॉ सिरज्यउ तिहँ जाइ ॥

चउपई

पाणिग्रहण तणउ परियाण, माळ्यौ विहु भूपति मडाण ।
 महोळ्व तोरण वदरमाळ, वृधि वाघइ वारणइ विसाळ ॥
 सुभ वेळा सुभ दिनि सुभ घडी, तेवडि लगन तणी तेवडी ।
 चवरी मॉडइ मंगळचार, जानी मानी मिळ्या ति वारि ॥
 मायताय विहुँ बधी गठि, परण्या पुष्करि तीरथि कंठि ।
 धवळ मंगळ गीतध्वनि कीया, साल्हकुमर मारु परणिया ॥
 अरथ गरथ परचीया अपार, बालक वेवइ विन्हय कुमार ।
 थॉभइ नाम सविस्तर लिष्या, आया गया सहू ओळष्या ॥

इणु अढसरु ढावस ऊतखुड, सढ्ढुड सीतकाळ सखुड ।
 आढाढणु ढेसे ढनु धरइ, ऒालणु तणुी सढाई करइ ॥
 नळु कढुरावुड ढुढुढुढु ढाथु, ढारुवणुी ढूँकड अढ्ढु सथु ।
 वुलइ ढुढुढु, कुढुरी वळु, न रइइ ढात ढढु इकताळ ॥
 ढुँढु सतुँ ऒरसुँ ढुँढु, तुँ लणु कुढुरी इहँकणु अढुइ ।
 कुढुर ढूँकुरी आणु कळु, कुढुरी ढूँकेसुँ, ढहाराज ॥
 सीढु ढाणु ढुढु गळु सुढु धणुइ, ढहुता ढेसे आढाढणुइ ।
 ढूढु नढुरी ढुढुढु राडु, नळवर गढु आवुड नळगडु ॥
 अळगुी ढूढु न कु ढरु लइइ, वढु वढु ढथु नवु वइइ ।
 सढाढार नहु सुढु न कुइ, अळगुे सगढुणु ँ ढरु हुइ ॥
 इणु अढसरु नळवरगढु धणुी, आळुढुढु ऒेवडु आढणुी ।
 ढरुणुी थुी ढारुवणुी तणुी, सुधु न कढुयो ढुलाढणुी ॥
 ढारुवणुी ढरुणुी लुणुसुड, आणु कळु नई आणुसुड ।
 धणुी ढूढु, ढारणु ढडु वणुा, तुणु ढालुढा ढाणुस आढणुा ॥
 ढळुइ नळुराजु ढरुवान, तुणु तेडु ढुी वहु ढानु ।
 ऒुहु ढुसु सगढुणु कळु ऒालवइ, ढूँकुरा सरस ढेस ढाळुवे ॥

दूढा

ढाळुव ढेस ढहरीढतइ ढीढ नुँढ ढूढाळु ।
 ढाळुवणुी धू तसु-तणुइ, सुढरु अतु सुकढाळु ॥
 ढरुवानइ नळुराडुने ढुँगुी धणुइ ढुँढुणु ।
 कुतुँ कुडुवइ कुडुइ ढुीतु ऒडी ढरुढुणु ॥
 ढीढसेनु ढगतावुीढ नलराडुँ ढरुधानु ।
 नळुनढुनरडु नतरडु ढुलुढुयो वहु ढनु ढानु ॥

ढडुढुई

कुीयो नतरडु ढुला तणुड, वुँहुँ राजु ढनु आणुँढु वणुड ।
 थुढुड लगनु, ढूँकुरा ढरुधानु कुगतु ढधारी ढुला नानु ॥
 खरढुढु अरथु गरथु अतु वणुा, सतुढुढु ढरीडुणु आढणुा ।
 ढाळुवणुी ढरुणुी ढनु रणु, अइ नुसु ढुला ढनु उळुुरणु ॥
 हाथु ढलुहलुँ गनु ढुँढुसइ, नगर ढुँढुस गाम सुढु वसइ ।
 ऒारु सइस तेनुी तुढुढु, ढरुवुा ररुवु नवनुधु ढडुार ॥

महीपति सबळ सु माळवधणी, तिणि परणावी धू आपणी ।
 माळवणी तसु कुमरी नाम, अति सरूप सुदरि अभिराम ॥
 ढोला साथइ लागी प्रीति, चतुराईस्युं बधतइ चींति ।
 नळवर गढ परणी आवियौ, करि मॅडाण पइसारउ कीयौ ॥
 परण्यउ मारुवणी सघाति, ढोलउ तेइ न जाणइ वात ।
 पूगळ दिसा न आवइ कोइ, मारुवणीनी नीरति न होइ ॥
 पनरह वरस गया जत्र वही, सउदागर इक आव्यउ सही ।
 तिणि साथइ छइ घोडा घणा, ढोलइ मोलविया तसु-तणा ॥
 ढोलउ नितु फेरवइ प्रभाति, सउदागर पणि तेडइ साथि ।
 भगति जुगति जीमण तसु-तणी, पूरी हउंस साल्ह तसुतणी ॥
 मास पॉच सउदागर रह्यउ, लेइ मोल घरॉनइ वह्यउ ।
 वहतउ रहतउ पूगळि आवियउ, पिंगळि राजा भगतावियउ ॥

दूहा

सॉभ समै सउदागरी आप तयौ उतारि ।
 वइठी गउषै तिणि समइ नयणे निरषी नारि ॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८६, ६० और ६१ नंबरवाले दूहे हैं ।]

चउपई

पिंगळराजा तणउ षवास, बइठउ थउ सउदागर पासि ।
 धुरि हूँती मॉडीनइ घणी, वात कही मारुवणी तणी ॥
 वळतउ सउदागर इम भणइ, साल्हकुमार नळवर गढि रहइ ।
 मइ धोडा तिहाँकणि वेचिया, ढोला सुँ भाइपण किया ॥
 तेहनइ घरि माळवणी नारि अपछर तणी जाणि अणुहारि ।
 ढोलारइ तिणस्युं बहु प्रीति, चतुराईं लणि लागौ चीत ॥
 रूपइ रूडउ ते राजान, कुमर न कोई साल्ह समान ।
 षरचइ लाष लाष विद्रवे, लाषे कोडे लेषा हुवइ ॥
 वसिया पॉच मास तिणि ठामि, निसि दिनि हूँता ढोला गामि ।
 समाचार सहि ढोला तणा, कहिया सउदागर अति घणा ॥
 मारुवणी तव चिति चळवळी, छानी वातॉ सहि सॉभळी ।
 साचे मनि सउदागरि (कही), मारुवणी हीयडै गहगही ॥

ढो० मा० दू० ३१ (११००-६२)

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६ और १८६ नंबर के दूहे हैं ।]

ॐ वॉह्रियाँ रूँयाहिया धगा वके नयगाँह ।

वाधी चंदन महमहै मारु गोरटियाँह ॥

चलपई

सहियर चाली साथहँ करी, मारुवणी आधी सचरी ।

पपी हुवइ तौ उडी मिलइ, मारुवणी प्रीतम सभरइ ॥

[इसके आगे मूल क ३४, १८, ६० (वडो दूहो), ६२, ६४, ६५, ५३, ६७, और ६८ नंबर के दूहे हैं ।]

चलपई

सउदागर पेपी सुव लहइ, मारुनइ सँधळावी कहइ ।

सिरननधारइ सहइथि वडी, ए जोडी सारीपी जुडी ॥

किहों नगरगढ मालहकुमार, रूपवन नई सुगुण दातार ।

दानि करनि बलि पडव निमठ, भोग पुरंदर सुदर तिसठ ॥

मारुवणी हुई तसु नारि, तउ सही जनम सकल दातार ।

जोवन सही लु लहरे बाद, कउ तेम निम मेळउ थाइ ॥

सहि वातों सौमली प्रवासि, आव्या पिंगळ राजा पामि ।

वात महू दोलानी रही, सउदागर ते तेड्यउ सही ॥

पिंगळराय सहित परिवार, सउदागर पूछइ तिगि वारि ।

वातों सगली दोला तणी, सउदागरे कही नृप भणी ॥

सहि वातों पिंगळ सौमली, आपण हिय विमानइ सही ।

दिव काइ वेवडि कीजइ साइ, जिणि दोलउ आवइ इणि टाइ ॥

देई मीष सउदागर भणी, ते पहुता धरती आपणी ।

पिंगळरायनइ चिता धणी, एह वात मारुवणी सुणी ॥

सुणि मारुवणी आवइ वरे, व्याप्यउ विरह मयण वळ धरे ।

सूती सेज करे वेवास, मोडइ अग, मूँकइ नीसास ॥

सपियाँ साथि वात नवि करइ, वेदन विरह नयण जळ भरइ :

बीबी सर्पी गई वरि सही, दीवाधरी इक पासइ रही ॥

छ पाटावर (छ)—दोरुक्रियाँ=रूँयाहिया । सहि अर दोलविवाह =
धय वंके इ० ।

आडा जडिया विन्हइ किमाड, दीवाधरी बोळावई माड ।
 आज काई वेदन तसु तणइ, रम्यो हउंस नहि कारण किणइ ॥
 सुणी सुद्धि बाल्लभ तणी, विरह विथा तिणि छेइ मुफ्त घणी ।
 जीवण पषइ जमारउ जाइ, भानइ दुष जै मेळउ थाय ॥
 सषी नयण तव नीद्रई घुळइ, मारुतणी आँषि नवि मिळइ ।
 मध्यराति वउळी जेतळइ, ऊमादे चिंतइ तेतळइ ॥
 किणि कारणि मारवणी आज, घरे न आवइ केणइ काजि ।
 बोलावण करि जे ते तिहाँ, माता आवी मारु जिहाँ ॥
 माता छानी ऊभी रहइ, सषी प्रतइ मारवणी कहइ ।
 मुफ्तनइ नीद्र न आवइ आज, विरह वियापी मूँकइ लाज ॥
 कुफडियाँ मिळि दूहा कहइ, माता साँभळि छानी रहइ ।
 वार वार प्रीतम संभरइ, करि विलाप नै आँसू भरइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५१, ५५, ५६ और ५४ नंबर के दूहे हैं ।]

प्रीतम तणा सँदेसडा मारवणी कहियाह ।
 - माता मन माहि जाणियो विरह वियाप थयाह ॥

[इसके आगे मूल के ७६, ८०, ८१, ८२, और ६६ नंबर के दूहे है ।]

चउपई

इणि प्रस्तावे साल्हकुमार, माळवणीसुँ प्रीति अपार ।
 वे पहरे उन्हाळा तरौ, पोळ्यउ छे मदिर छे आपणे ॥
 सुषसेजइ माळवणि सँघाति, बैठो करि प्रीति सुष वात ।
 तिसडइ माता चपावती, अलगाथी दोठी आवती ॥
 ते देषी लीजियो कुमार, छानी निद्रा करइ ति वार ।
 माता आवी ऊभी रही, जाणयो सुत पोळ्यउ छे सही ॥
 वहू कन्हा जणणी इक वार, आरीसउ मॉग्यउ तिणि वार ।
 देता लागी अधिकी वार, आणयो मन माहे अहँकार ॥
 सासू वहू प्रतइ ऊचरइ, काँई बड़ाई एवडी करे ।
 जो मारवणी अळगी रही, तौ तुँ करे वड़ाई सही ॥
 पिंगळराय तणी पदमिनी, अळगी रही वहू मुफ्त तणी ।
 तउ तूँ न्याय करइ अहँकार, इम कहि माता गई ति वारि ॥

वात सहू ढोलइ सॉभली, माळवणी हुई आकुळी ।
 कंत कन्हे मागइ बहुदान, कीजइ एक वातनो दान ॥
 जे पूगळथी आवइ कोइ, ते पथी नितु मो वसि होइ ।
 ढोलइ तेह जि क्रियो पसाउ, माळवणी इम मॉडियउ दाउ ॥
 आडा रपवाळा आपणा, भूमि घणी वहसारथा घणा ।
 पूगळथी आवता मारियो, ते पथी ऊटे रापियो ॥
 ढोला लगे न आवइ कोइ, मारु तणी निरति नवि होइ ।
 इणि तेवडि मालवणी रहइ, पूगळ पथि न कोइ वहइ ॥
 पूगळराय ते जाँणी वात, माळवणी इम पेलइ घात ।
 भीमसेन प्रोहित आपणउ, मन वेसास तेहनद घणु ॥
 ते नेडी पिंगळराय कहइ, नळवरि पथि न कोई वहइ ।
 ढोलउ तेडावी जइ इहाँ, प्रोहित तुम्हे पधारउ तिहाँ ॥
 सहू सामहणी प्रोहित करइ, पूगळ मॉहि वात विस्तरइ ।
 प्रोहित ढोला तेडण भणी, एह वात मारुवणी सुणी ॥
 मारुवणी सुनि वात विमासि, राते आवी माता पासि ।
 माता जाइ चापने कछउ, ये इणि वात मरम नवि लहउ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के १०३ और १०४ नवर के दूहे हैं ।]

तीयाने आप्या तुरी, दीया गरथ अपार ।

सीष लेई पिंगळ कन्हा आया मारु पासि ॥

[इसके आगे मूल के १०६, ११३, ११४, १६८, २०३, २०४, १६, ४२२, १४८, १४७, १४६, १५१, १५४, १४५, १५६, ११५, १३६, १४६ और १५७ नवर के दूहे हैं ।]

पथि (१ थि) पसारण जग भमण कछा सदेसा भट्ट ।

तियाँ देसॉरॉ मॉणसा कदि हूँ जोडुँ वट्ट ॥

[इसके आगे मूल का १०८ नवर का दूहा है]

चउपई

सगळाई दूहा सीषव्या, सीष मागि मारग सिरि थया ।

पथि वहता पूळइ कोइ, देस अनेरा दापइ सोइ ॥

भाट वेसि ते मारगि वहइ, पूगळ नाम प्रगट नवि लियइ ।

गढ नळवरनइ आया घाटि, माळवणी तिहाँ वॉधइ वाट ॥

तीए भाल्या मारु जाणि, ततषिण बोल्या बीजी वाणि ।
 पाँच दिवस ओळगिया तेइ, भॉट जाणीनइ छॉड्या बेउ ॥
 रातइ नळवर गढ आविवा, ऊतारा कुभारे किया ।
 भाऊ भाट तणइ आवाशि, नाँम ठॉम पूछइ जण पासि ॥
 छाना मिळिया भाऊ भणी, वात कही पिंगळराय तणी ।
 दीधी भेट व्ह्या सदेस, म्हे छाना आव्या पबी (थ) वेसि ॥
 वळतउ भाट तियाँनइ कहइ, ए परि जउ माळवणी लहइ ।
 माळवणी थॉनुँ माराविस्यइ, सहि त्रेवडि घेरूँ थाइस्यइ ॥
 छाना रहउ प्रजापति घरे, एतउ कहियौ माहरउ करे ।
 टाणउ हूँ जिणइ टिने लहेसि, साल्हकुमर तुम्ह भेटावेसि ॥
 ते कुँभार तणइ घरि रहइ, वेला मिलण तणी नवि लहइ ।
 एक दिवसि माळवणी सही, सषी साथि वनि रमिवा गई ॥
 गाई गीय (त) मधुर स्वर सादि, कोकिल कठि अनोपम नादि ।
 जाणइ छत्रीसे राग विचार, ते जउ तेडावउ इक वार ॥
 भाऊ भाट ने साल्हकुमार, वेउँ तेडाव्या माँगिणहार ।
 साँभ समइ तेडाया तेह, निरष्या ढोलइ ते नयणेहि ॥
 ढोलइ सइमुषि तेडाविया, मान महुत अधिका आपिया ।
 मारु दूहा सीषाया जेह, सुसरि कठि आलाप्या तेह ॥
 दूहा सगळा तीए कह्या, ढोलइ ते हियडइ संग्रह्या ।
 ढोलउ पूछइ भाउ कन्हा, ए दूहा कहिया केहना ॥
 कुण ढोलउ, कुण मारु नारि, रूपइ रूडी राजकुमारि ।
 वळतउ भाउ तेहनइ कहइ, तू परणी तणी सार नवि लहइ ॥
 पिंगळराय तणी कुँमरी, अपछर रूप धरी अवतरी ।
 ते उपकंठइ पुष्कर तणइ, परणी ते तइ बालापणइ ॥

दूहा

ए माणस तिणि पाठव्या साल्हकुमर तसु कानि ।
 मालवणी हूँ बीहता मइ मेळविया आज ॥
 १ ढोलइ नरवर सेरियाँ घण पूगळ गळियाँह ।

१ मूल के १८६ और १६० नंबर के दूहे मिलाओ । मूल का १८६
 नंबर का दूहा इस (थ) प्रति में ऊपर भी आ चुका है ।

भीनड लोट महक्कियड मारू लोवडियॉह ॥
 मारुवणी सइमुपि कइया दूहा मिसि सदेस ।
 मन मारू मेळावा करइ पधारड उणि देसि ॥
 सइमुपि ढोलइ पूछिया मारू तणा वृतति ।
 ढोलड नइ भाऊ विन्दइ वेसारी एकति ॥
 माटे मारुवणी तणे वारू वरण वखाण ।
 मारू जिणि निरपी नही जनम तियो अप्रमाण ॥
 भाऊ ढोलानै कहइ कीजइ सीष पसाड ।
 इयॉरी वात (? ट) उतावळी जोवे पिंगळ राड ॥
 जड ए मोडा जावित्यइ मुक्क पाषइ सदेस ।
 तड मारुवणी मालती पावकि करइ प्रवेस ॥

चउपई

साल्हकुमरनुइ करी जुहार, करइ वीनती मागिणिहार ।
 विहुँ मॉसनड अम्हसुँ वोल, करी आवी तुम्ह पासै ढोल ॥
 हिव जड तू तिह आपिसि नही, मारू अगनि प्रवेसै सही ।
 मया करीनइ थे महाराज, सीष पसाड करड हम आज ॥
 वीस तुरी आपिया ब्रहास, फदिया दिया सइस पचास ।
 वागा वख्र अपूरव वळी, संतोषीया, पूगो मन रळी ॥
 भाऊ भाट दियड तिहॉ साथि, आपि अनर्गळि तेहनइ आयि ।
 भला ग्रहणा मारू भणी, मोकळिया प्रीतइ अति घणी ॥
 भाऊ भाट नै मागिणहार, सीष मागि चाल्या असवार ।
 आहेडा मिसि साल्हकुमार, पडुचावी आव्यो तिणि वार ॥

दूहा

सदेसा सहि सविगता कहियो तियो सँभाळि ।
 माळवणी मनि सकतो सीष देइ ततकाळ ॥
 भाऊ भाट, सदेसडड दिसि सयणॉ कहियाह ।
 कीयड मारू अळजड, बाहॉ दे मिळियाह ॥
 विगॉसिया विरुओ कियड रषे इम म करेसि ।
 ढोलाँ तणॉ सँदेसडा अळगॉ थकॉ कहेसु ॥

सोरठा

अह युँ भानइ एम ढोलउ घण ऊमाहियउ ।
पंप विहुणा एम मन सीचाणउ भडपिस्यइ ॥

[इसके आगे मूल का २०१ नंबर का दूहा है ।]

चउपई

कुमरि चलाव्यो भाउ भाट, मारु मिळिवा तणउ उमाह ।
चिंता करतौ आव्यो घरे, चालण तणी सजाई करे ॥
ढोला मनि अति चिंता घणी, पाँति घणी मारुवणी तणी ।
आवीनइ पौढ्यउ आवासि, माळवणी आवी प्रिय पासि ॥
दीठउ प्रीतम चित्ति उदासि, माळवणी पूछियौ षवासि ।
कुमर कहौ किणि कारण जीये, दीसइ आज उचटियो हीये ॥
जाणउ तुम्ह सुँ कारण केइ, माळवणी सतोषइ सोई ।
वळती कही पवासे बात, भाऊ भाटे पेली घात ॥
पिंगळराय कन्हा आविया, साल्हकुमरि ते तेडाविया ।
पूगळ थळ नै प्रिय भुय घणी, कही सुद्धि मारुवणी तणी ॥
भाऊ भाट नै साल्हकुमार, अळगा तेडी मागिणहार ।
समाचार सुणि मारु तणा, ढोलइ हरष किया अति घणा ॥
सीष देई ते पट्टुचाविया, भाऊ भाट पणि साथइ दिया ।
घणा गरथ दिया तिणभणी, करइ सजाई हालण तणी ॥
कही पवासे सगळी बात, माळवणी आवी प्रिय पासि ।
हासा मिसी पूछइ विरतत, काँइ सचीता दीसउ कत ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६, २२५, २३०-२२८ (प्रथम पंक्ति २३० का पूर्वार्ध एव द्वितीय पंक्ति २२८ का पूर्वार्ध), २२६, २३२, २३३, २३६, २३८; २३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५६, २७०, २६१, २५७, २६३, २५२, २५३; २६२, २७३, २७५ और २७७ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

मालवणीसुँ प्रेम अपार, ढीलउ रहियउ माच ने चारि ।
सुदरि नेह तिलूधउ सही, तोइ मारुवणी वीसारइ नहीं ॥

इण्डि अरुवरि ते मागिण्डिहार, सरि सउ भाऊ भाट अपार ।
 त्रिण्डि मास ते मारग वही, पूगळि नवरि पवारथा सही ॥
 साम्हड आवड पिंगळराय, भगति बर्णा मंडइ बहु भाइ ।
 मनवलित ऊतारा दीया, भोजन विगति कणहता दीया ॥
 समाचार सदि दोला तणा, विस्तरि ईगुइ कहिया घणा ।
 दोलै सीप कही मुफ भणी, कहियो सामहणी आणा नणी ॥
 जाँहूँ आहुँ एणइ ठामि, तौ थे रहियो पूगळ गामि ।
 दीया ग्रहणा मारु नणा, हरप थया मनि सगळा घणा ॥
 इण्डि प्रतावइ साल्हकुमार, चिंता चालण तणी अपार ।
 माळवणी मनि भगतावीयो, तेतळइ दसराहड आवीयड ॥
 दोलौ माळवणीनइ कहइ, हिव सव कोई वॉटौ वइइ ।
 हिव वइ हसिनइ औ आडेस, तो पहुँचा मारवणी देसि ॥
 माळवणी ए परि सॉमळी, आप हुई विरहाकुळी ।
 कंता सॉमळि साल्हकुमार, प्रीतम प्रीव जीवन नर नारि ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के २७६, २८१, ३७०, २८३, ३०४, ३०५, ३०७, ३०८, ३११, ३४३, ३१६, ३२२, २२३-३१७ (प्रथम पंक्ति ३२३ का पूर्वार्ध एव द्वितीय पंक्ति ३१७ उत्तरार्ध), ३१८ और ३२० नंबर के दूहे हैं ।]

१ करहड गइह न वारियड भूळफळ लग्गी काइ ।
 ऊन्हौँ डॉम दिवारिसी डॉभौँथी मरि जाऊँ ॥
 करहा माळवणी कहइ समळि बोल्यो सब्व ।
 तातो लोहड ताहरइ वळि लागो ना वद ॥

चउपई

इम करहा समझावी नारि, माळवणी आवी घरि वारि ।
 दोलउ करहड आँख्यौ बेथ, कूडइ मनि पग राषइ सोइ ॥
 साल्हकुमार मनि चिंता बर्णा, कहे हव नेवडि कोजइ किसी ।
 तेडी आणया तिण्डि लोहार, आँका दिवगवणने काजि ॥
 लेइ लोहड ताता कीया, लोहार हाथे भालीयो ।
 आवी कहइ माळवणी तिसइ, कोई रपे करहा डॉमित्वइ ॥

१ मूल का ३२१ नंबर का दूहा मिलाओ ।

इण्डि गामे नर सहु अजाण, जाणइ नही करह सघाण ।
कारी वीजी सहु परिहरउ, एतउ कहियउ माँहरउ करउ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ३३३ और ३३५ नंबर के दूहे है ।]

रे ढाँढाँ करि छोहड़ी करइ करहारी काणि ।
अकरडे डोका चुणे सो आप डँभायो आणि ॥

चउपई

करहउ मूँक्यउ वरग मभारि, प्रिय आग (१गे) इम जपइ नारि ।
जउ हालिवा कीयउ मन परउ, तउ एतउ कहियउ माहरउ करउ ॥
जाँ लगी तेह नइ तूँ प्रिय पासि, ताँ लगी प्रीत म चडे ब्रहासि ।
भाभती निद्रा व्यापइ अंगि, तिणि वेळ प्रिय चड्यउ पवगि ॥
प्री पासे इण परि मागती, पनरइ दीह रही जागती ।
भाभती नींद्रे व्यापी नारि, तउ करहउ आगे भेयउ वारि ॥
सोनइया पाहौरा साथि, सोवन जडित कनडी हाथि ।
सोनारा घूघरडा गळें, पषीनी परि मारगि पुळइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ३४५, ३४८, ३४९, ३६३, ३६८, ३६९, ३७९,
३६२, ३८१, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९ और ३९० नंबर के दूहे हैं ।]

थळ मथइ ऊजासडउ जाणे उग्यउ तूर ।

चकवा मनि आणंद हुश्रो किरण पसारथउ सूर ॥

[इसके आगे मूल के ३९१, ३९२, ३९३, ३७५, ३७७, ३९७ और
३९९ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

पूगळ पथइ ढोलउ वहइ, सूडानइ माळवणी कहइ ।
जिम तिम करिहि नइ पाळुउ वाळि, पपी ए पडिवन्नउ पाळि ॥
तव आकासि सूअउ ऊडियो, पहरि एक चदेरी गयउ ।
ढोलउ सरवरि दाँतणि करइ, सूडौ जाए इम ऊचरइ ॥

^१मूल का ३३६ नंबर का दूहा मिलाओ ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ४०२, ४०६ और ४०८ नवर के दूहे हैं ।]

चउपई

सूडौ तिहॉथी पाछुड वळै, आवे माळवणीनइ मिळै ।
 ढोला तणी वात सहि कही, माळीवणी अणवोली रही ॥
 सरवरथी टोलौ ऊतरे, करह पंपि जिम पगला भरे ।
 चढेरी वहुटे आवीयो, तिसइ वणिक इक बोलावियो ॥
 कुण पग्देसी जाइसि किहॉ, माहरइ काम अछे इक तिहॉ ।
 ढोलउ तउ राष्यउ नवि रहे, विवहारियो ति वारइ कहइ ॥
 जो कागळ माहरउ ले जाइ, आपॉ सोना मॉगउ दाइ ।
 जोयण वीस अछइ ते गाम, मुभू कागळ आयउ तिणि ठामि ॥
 ढोलउ तेहनइ कहइ ति वारि, ऊमा रहण तणी नही वार ।
 विवहारियउ करे वेसास, तू सापुरिस, म मूँकि निरास ॥
 ढोलउ कहइ, हो व्यवहारिया, जो कारिल जोवे सारिया ।
 ऊठ तणइ पूठइ थिर थापि, कागळ लिखिनइ मुभूनइ आपि ॥
 ऊमे ऊठि चडे ते साह, कागळ लिखण तणी तसु आहि ।
 ढोलउ करह चलावइ सुषइँ, ऊपरि वइठउ कागळ लिखइ ॥
 कागळ लिखिनइ पूग क्रीया, तिसइ तेह गामइ आविया ।
 साह उतारी पूछइ कोइ, एह ज गाम सही ते होइ ॥
 विवहारिया असंभम वात, जाँणी तास फिरी तन धात ।
 एती वेळा किम आवियो, हियडउ फूटि हस ऊठियौ ॥
 ढोलउ पुष्कर सरवर तीरि, ततषिण करइउ पावियो नीर ।
 कुण सरवर, नर इक पूछियो, तिणि पुष्कर तीरथ दापियो ॥
 ढोलउ कहइ सरोवर थंभि, आपर लिष्या पुरष दाषति ।
 तिये साथि थई देषियो, परण्या ते नामउ वाँचियउ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ४२६, ४२७, ४३२ और ४२८ नवर के दूहे है ।]

जहाँ चीना कर कूँवळा नीळी लूँव लइक ।

ते जो वन लघन करे मरे न चरही अक ॥

[इसके आगे मूल का ४२४ नवर का दूहा है ।]

पिंगळ राजा रूसव्यौ, चारण कोई चाड ।
 साल्हकुमर तिणि ओलष्यो, तव बोलावियो माड ॥
 [इसके आगे मूल के ४४२ और ४४४ नंबर के दूहे हैं ।]
 एक ज चारण पथि सिरि, जोई करहा वट्ट ।
 ढोलउ चलतउ देषि करि, तिणि मनि थयउ उचट्ट ॥

चउपई

साल्हकुमर मुक्त वचन जु सुणउ, ए चारण ऊमरराय तणउ ।
 मारु ते माँगण आवियो, पिंगळ ते देसा काटियो ॥
 ऊमर मारवणीनइ काज, घणा दुष देषइ महाराज ।
 पिंगळराय न करइ नातरउ, मोटँनइ न पडइ पॉतरउ ॥
 ढोला तुक्त अवाज सु सुणी, कुँमरी मूँक्यो हूँ तुक्त भणी ।
 जउ मारु अवगुण सँभळौ (१६), तौ किम ढौलो पाछुउ बळै ॥
 ढोला सँभळि माहरी वात, ऊमर पेल्लेस्यइ घणी घात ।
 मारवणीसुँ लागो मोह, तुक्तसुँ घणी माडिस्यइ द्रोह ॥
 [इसके आगे मूल का ४५० नंबर का दूहा है ।]

चउपई

तिणि वातइ सभळि गहगह्यो, ढोलउ पूगळि वाटइ वहइ ।
 वारहट्ट पिंगळराय तणो, गामि एक आव्यउ प्राहुणउ ॥
 तिणि ढोलउ दीठउ महाराज, माटे आवि कीयो सुभराज ।
 ऊठ षॉचिनइ ऊभो रह्यो, पिंगळरा सदेसा कहइ ॥
 समाचार मारवणी तणा, कहिया हरष थया अति घणा ।
 भाऊभाट ने माँगणहार, आवा जउ छइ साल्हकुमार ॥

दूहा

जउ तइ दिठी मारुइ, को सहिनाण प्रगट्ट ।
 गळि षोलाह रूपको, सो भाषो सोवन्न ॥
 [इसके आगे मूल के ४७३ और ४५६ नंबर के दूहे हैं ।]
 उर जु गययर पग धणु, दाडिम दत सुतेज ।
 कुम्भी भावस (१) गोरियो, षजन जेहा नेत्र ॥
 सदा उलक्री नक्कि सळि, भीणी लक मँभाह ।
 दड सुत्ता सप्प जि, षजी कटे साह ॥

[इसके आगे मूल के ४७४, ४६८, ४८४, ४८५ और ४७५ नंबर के दूहे हैं ।]

डौभू लक, मराळ गति, पिक सर जेही भख्ल ।
ढोला, एही मारुई, चाही लागे चख्ल ॥

[इसके आगे मूल के ४६०, ४७०, ४८२, ४६५, ४७१ और ४८७ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

जेता दूहा चारण कद्या, सोनईया तेता तिणि लद्या ।
चारण ते तिणि थान कि राह्यउ, ढोलउ प्रगळि वाटइ वह्यउ ॥
थाकउ करहउ आळस करइ, भारी भुई पग माठा भरइ ।
थळ मोटा तिणि सुसतउ वहइ, ढोला त करहानइ कहइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६७, ४६८, ५००, ५२१ और ५२२ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

जिणि दिन ढोलउ वाटइ वहइ, तिणि दिन मारु सहिणउ लहइ ।
मिलियो प्रीतम नींद्र मँभारि, माता आगळि कहइ विचार ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ५०६ नंबर का दूहा है ।]

सारति सद्दारेह, भूषउ माँस पत्राखियाँ ।
अडियो अत्रारेह, जाणे ढोलउ आवियौ ॥
सुरहि सुंगधी वाट, जाणे किर मोती जड्या ।
सूती माभिम रात्रि, जाणे ढोलौ आवियौ ॥

[इसके आगे मूल के ५१२ और ५१३ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

इणि परि सुहिणउ लाघउ राति, मातानइ कहियो परभाति ।
कही विचार सषी ए सही, ढोलउ तेउ पधारइ वही ॥
मारु तिणि दिन हरप अपार, साथई सषी तेणि परिवार ।
समी साँभनी वेळा थई, कूआ कठई रमिवा गई ॥

^१ मूल के ४६० और ४६८ नंबर के दूहे मिलाओ ।

^२ मूल के ५०५ और ५०७ नंबर के दूहे मिलाओ ।

डावउ नेत्र फरुक्यउ तिसइ, सहियर आगइ कहिनइ हसइ ।
मनि सतोष चींति उल्हसइ, आज संघी प्रिय मेळउ हुस्यइ ॥
तिणि वेळा आणद उल्हासि, आव्यो ढोलउ पूगळ पासि ।
मालइ बइठा हाळी रहइ, ढोलउ तिणि थळि पूठइ वइइ ॥
थाकउ करइ क्रहूका करइ, थळ भारी पग माठा भरइ ।
नवउ क्रहूको सुणि गहगहइ, हाळी नारी प्रति इम कहइ ॥

दूहा

केहउ करइउ क्रहूकियउ, भाभा मक्ति वणाइ ।
ढोलइ ते कवावियो, जमाहियो धणाइ ॥

चउपई

कोहरि कोळाहळ बहु सुणी, ढोलउ आयो पाणी भणी ।
सगळे तिणि साम्हौ जोंईयो, आणि अवाहि करहो ढोइयो ॥
कोउ लखे नही तिणी वार, मारु जमी कूपदुवारि ।
करइउ कूवइ पीवइ अंब, कियो अजाणे वाही कन्न ॥
लागी कन्न करइ कूदियउ, रयचारी सधीगौ कीयउ ।
मारु ढोलइ परणी जेथ, सरही दीकर मेल्हाण तेथ ॥
सही ए साल्हकुवर तेहनउ, दीसइ तेज रूप एहनउ ।
ढोलउ हूंतउ आवणहार, उमे लोके कियो जुहार ॥

दूहा

जिणि काँवे परहो कियो, तिणि तो करइ म मार ।
कंन चडका ते सहइ, अवरॉ लइइ गमार ॥

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है ।]

ढाँचे पाणी भाडि घर, संबळ सुरहि वणेहि ।
साइ सकोडी मारवी, ऊचळि गई वणेहि ॥
कामिणि मारु कारणे, नळवर छुड्यउ राज ।
सुधण सुहावी हूँ कहूँ, मूँध न मिळिस्यइ आज ॥

[इसके आगे मूल के ५२४ और ३२५ नंबर के दूहे हैं ।]

जिणि कारणे थळ लंबिया, तीयो चित्त न कोइ ।
साजण केहा कूव सरि, करइउ तिसियउ होइ ॥
करहा पाणी षचि पीउ, जउ ढोलाकउ होइ ।
जउ म्हे जाणत वालहउ, करइ न मारत कोइ ॥

चउपई

सहियर ढोलउ हसिनइ कहइ, ढोला मारवणी किम लहइ ।
जउ साचउ वालहउ सुनाण, तउ मारवणी कहि अहिनाण ॥

दूहा

सव्वे लोवडियाळियाँ, न जाणु धण काइ ।
उजल ढती मारुवी, लसण जु डावइ पाइ ॥
सव्वे लोवडवाळियाँ, सव्वोँ ही गळि हार ।
एकणि मारू वाहिरा, सव्वोँ साथि जुहार ॥

चउपई

कूवा कठइ सहु परिवार, सगळोँ मनि आणद अपार ।
मारवणी तिहोँ घूँघट करी, सहियर भूल माहि संचरी ॥
सेवक एक वधावा भणी, मेल्हो पिंगळ नवरी भणी ।
ढोल पधारयउ कूवा कठि, पिंगळ मनि अधिक उतकठ ॥
राजा प्रजा सहू हरपिया, हयवर एक वघाई दिया ।
साम्हो चड्यउ घणइ मडाणि, ढोला मिलण तणइ परियाण ॥
माथद मेवाडवर छत्र, वाजइ पच सवद वाजित्र ।
कूवा कंठइ राय परिवार, मिलि ढोलानइ कीयो जुहार ॥
समाचार नळराना तणा, पिंगळ राजा पूछया घणा ।
ढोलउ गजा साथइ करी, घरे पधारया आणद धरी ॥
सुरहा तेल तणा मानिणा, अघोलइ सीतल वीजणा ।
ऊगटि चदन केसर घोळ, किरइयु भोजन रगि तँवोल ॥
हरपित थयो सहु परिवार, साँभइ कीजइ सहू सिणगार ।
सोळ सिंगार सभइ मारुई, जाणे परतधि अपछर हुई ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ५३५ नंबर का दूहा है]

ते साजण पावधरिया, जे जोवती वाट ।
ते साजण नयणे देषिया, मनि हूओ उच्छाह ॥
तनि सिंगारइ मारुई, सिंगारयउ सहू साथ ।
अंगइ चदन महमइइ, वीडउ सोइइ हाथि ॥

^१ मूल का ५४१ नंबर का दूहा मिलाओ ।

१ सषी वडळावी घरि गई, प्रिय मिलियो एकंति ।
हसताँ ढोलउ चमकियो, वीजुळि षिवइ जु दत्त ॥

चउपई

मारवणी ढोलउ मनि रॅगि, प्रातई सुषि वैठा पल्यकि ।
प्रेमि प्रसगे वार्ता करइ, अरवळा प्रति ढोलउ इम कहइ ॥
मारवणी तुम्ह माँगिणहार, आव्या नळवर गढ जिणि वार ।
लाधी निरति पळइ तुम्ह तणी, जमाहो हूश्रो तुम्ह भणी ॥
एह गुनह षमियो माहरउ, मय वियोग कीयो ताहरउ ।
निरति पषइ कुण जाणइ लोइ, अणजाण्याँ नर दोस न होइ ॥
मावीत्रे पहिलउ वीवाह, वाळपणइ कौधउ उच्छाह ।
हूँ परणयउ जाणु ही नही, तेह वात सहु वीसरि गई ॥
मइ माळवणी परिणी नारि, तिणिसु वाधी प्रीति अपार ।
परण्या पळइ निरति तुम्ह लही, पाळइ परवसि रहियो सही ॥
पहिलइ भत्रे पाप मइ किया, तउ तुम्ह विन एता दिन गया ।
सयमुषि करता करइ वषाण, जीवित जनम आज परियाण ॥
ढोला प्रति मारुवी नवइ, स्वामी, मेळउ सिरज्यउ हुवइ ।
तुम्हे परिणि पहुता नळवरई, पूगळ अम्हे आविया उरइ ॥
अतर विचि हूयउ अति घणउ, सदेस्यउ नाव्यौ तुम तणौ ।
हूँ आवी जोवन वइ देह, सतावइ मुम्ह काम ज देह ॥
जोई तुम्ह माणसरी वाट, मूक्या वाँभण पथी भाट ।
वळतउ कोई आव नही, घडी चीत मावीत्रे हुई ॥
तिणि वेळा ऊमर सुमरउ, मुम्ह परिणवा कियउ मन षरउ ।
मूक्या पिंगळनइ परधान, आवइ घणा करइ केकाण ॥
कहियउ तुम्हे माहरउ करउ, मारु मुम्ह कीजउ नातरउ ।
आपुं तउ हूँ आधौ राज, इणि परि घणा कीया आगाज ॥
कूडी वात तुम्हारी घणी, फोकट ऊडावी मुम्ह भणी ।
मात पिता मुम्हने पूछियो, वळतउ मई ऊतर आपियो ॥
इणि भवि मुम्ह ढोलउ भरतार; प्रीतम जीवन-प्राण-अधार ।
एह वातनउ निश्चय करुं, वीजउ वीजइ भवि आदरुं ॥

१ मूल का ५४२ नंबर का दूहा मिलाओ ।

ऊँमर अजी लगी ते पपइ, रयणि दिवसि जोगी ज्यउँ जपइ ।
 एह वात मारवणी कही, ढोलउ मनि सतोष्यो सही ॥
 भाऊ भाट तणी मनि वात, ढोला तणी वसी मनि घात ।
 मागणहारउ दूहउ कहियउ, तिगण ढोलइ दूहइ चिति रह्यउ ॥
 कणयर कव जिसी पातळी, प्रिय वियोग पीणी पातळी ।
 दीसइ छइ अति सुदर देह, ढोलारइ मनि पड़यउ सँटेह ॥

दूहा

‘पही ममतउ जो मिलइ, तउ तूँ आपे वत्त ।
 घण कणयररी कव यु, सूकी तोय सुरत्त’ ॥

चउपई

ढोलउ ते दूहउ ऊचरइ, मारवणी मनि सका करइ ।
 प्रीतम तुफ सरिपा मनि वहइ, ढोलउ मारु प्रति इम कहइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५४६, ५४७, ५४८, ५४९ नवर के दूहे हैं ।]

चउपई

ढोला मनि अति आर्षेद घणा, वचन सुय्या चतुराई तणा ।
 मारु वोलती सुष सास, कमल ममर कसतूरी वास ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५५२, ५५७, ५५१, ५५५, ५२८, ५२३ और ५५४ नवर के दूहे हैं ।]

चउपई

भोवन नित नित नवला करइ, अधिकी भगति जुगति आदरइ ।
 मारवणी मनि भावई परइ, पनरह दीह रह्यउ सासरइ ॥
 भाऊ भाट कन्हइ नितु रहइ, एक दिवस ढोलउ इम कहइ ।
 करउ सजाई चालण तणी, जिम पहुँचाँ नळवरगढ भणी ॥
 भाऊ भाट कहिउ अति घणउ, कीजइ मारवणी अउभणइ ।
 पिंगळ राय सजाई करइ, ऊमाटे इया परि ऊचरइ ॥
 सोवन रतन जडित सियागार, पट्टकूळ सुगताफळ हार ।
 सोळ सिगार सुंदर सुपवेस, ए सगळा, प्रिय, हूँ आपेसि ॥
 अरथ गरथ करइ केकाण, पाग पयग सुद्ध खुरसाण ।
 ए सगळउ ही पिंगल तणउ, माँड्यउ समहूरति उँभणउ ॥

तिणि वेळा ऊमर-सूमरउ, इणि वेळा जो षळ सूमरउ ।
 मारगि सिरि ढोलउ मारेसि, मारवणी घरिवास करेसि ॥
 इसउ आळोच करइ सूमरउ, नगर पासि भमइ एकलउ ।
 देस पूगळ नगरी भमइ, ढोलउ मारू रगइ रमई ॥
 जिणि वेळा ढोलउ नीकळइ, केता वउळावा साथइ करइ ।
 सोभ करेवउ इणे वातरउ, पडिस्यइ रषे तुम्हों पॉतरउ ॥
 तो हूँ ऊमर साचउ राय, इणि वेळा जउ खेलउँ दाउ ।
 च्यारि पट्टर मारगि लागिस्यइ, सॉभ समय नळवर जाइस्यइ ॥
 मास एक रह्यउ सासरइ, चालण तणी सजाई करइ ।
 सहू अउभवणउ साथइ करी, माँगे सीप हरष मनि धरी ॥
 सगा सणीजा एकणि षगि, मारू मोकळिवी मनि रगि ।
 प्रस्थानौ समहूरति क्रियउ, पिंगळ पट्टुचावा आवियो ॥
 साथइ सउ कीया असवार, कीयउ हलाणउ मगळचार ।
 सवळ सीरावण सहू करी, मुकळावह ऊमा देवडी ॥
 सपरिवार मित्या सहू कोइ, करहउ वले पलाण्यउ सोइ ।
 पूगळ नयरीहूँ चालिया, मात पिता सहू मुकळाविया ॥
 जोयण च्यारि इक दिन वह्या, थाकउ साथ, थळ माथइ रह्या ।
 असवारे ऊनारा कीया, भोजन परिघळ भुगताविया ॥
 सॉभ पडी आथमियो सूर, करइ साथरा विछावणा भूर ।
 ढोला पाषिलि चउकी फिरइ, मारू स्त्रीसु निद्रा करइ, ॥
 घणी वार जागी धण कत, निद्रा भरि पउढ्या निश्चंत ।
 तिणि भुई फिरतउ आयो नाग, आयो ढोला तणइ अभगि ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८ और ६१० नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

बोलावे मन विलषा किया, देवसूत्र एहवा थया ।
 वार ढोलउ करइ वेष्वास, वळि वळि जोवइ मारू-सास ॥
 सहि साथी समभावइ घणु, वीनती एक अम्हारी सुणउ ।
 पिंगलरायनी राजकुमारि, चंपावती मारू अणुहारि ॥

ढो० सा० दू० ३२ (११००-६२)

मारु त्रिहुँ वरसँ आँतरउ, आत्रो व्यउँ कीजइ नातरउ ।
 आपँ सगपण उभउ गृहइ, वळनउ ढोलउ नाँह प्रति कहइ ॥
 इण भवि मारवणी मुक्क नारि, सइहथि दीधी सिग्जनहार ।
 माइ जो परमेसर सग्रही, मुक्क मरगाउ इण साथइ सही ॥
 पनगृह वरस विछोइउ हूथो, वणइ कटि मेळावउ थयउ ।
 बळ विछोही जउ करतारि, तउ इण भवि मुक्क एह ज नारि ॥
 वउळाग्रो प्रति ढोनउ कहइ, ए दुप जीवेनइ कुण सइह ।
 एहु र वरत्यउ जोडउ हाथि, पइसिसि पावक मारु साथि ॥
 वउळावू सगळा विलविलइ, ढोलउ किउदी पाछुउ वळइ ।
 साथी मारु दागण सर्पो, वणुँ कहइ पणि न गृहइ घणी ॥
 पपी पपी सहि पीका थया, वउळाउ सहि पूगळनइ वळया ।
 ढोलउ मारु दीनाघरी, रहिया छे थळ माथइ करी ॥
 सँफ यई आयमणी वार, जनारथा मारु सिणगार ।
 कइउ आणे वइसारिवउ, सगळे ग्रहणे सिणगारिवउ ॥
 हारडोर पूठइ वविया, सत्रळ माग सीवे सविया ।
 करहा, मुक्क वात ज तूँ मुणे, नळवर गटि जाए घर-भरणी ॥
 सजे समूके सलहकुमार, वइटा विह माहे तिण वार ।
 अगनि जगाडी दीनावरी, करहा-तरणी डोरि सँभरी ॥
 मत कइउँ कटाळइ भाडि, चरतौ विलगो रहित्ये डाळि ।
 ने देधी कइउ आरडइ, रंनि जाणि दुपियो नर रडइ ॥
 उणि वेळा कोई जीर्गाद्र, आवउ तिहाँ करतउ आणुट ।
 मत्र जत्र जाणइ अति घणा, ओषध नागा पीणा-तणा ॥
 तिणि साथइ सुदरि लोणिणा, सजोगिणी मारवणी-तरणी ।
 ते रमता आव्या तिणि थानि, ढोलउ ओळपियो सहिनाणि ॥
 चोगी ढोला प्रति इम कहइ, काँह रे काहर फोऊट मरइ ।
 प्री पूठइ अन्नौ परलळइ, पणि नारी पूठि पुरप नवि वळइ ॥
 आ ते माँडी अउली रीति, वात न वेइसइ ढोला चीति ।
 ढोलउ कइइ, आवस, सुणि वात, कीजइ नहीं पराई ताति ॥
 जोगिणि जोगी प्रति इम कहइ, आपँ प्रीति लु अविहइ रहे ।
 जे तूँ जीवाडइ ए नारि, वालँभ ए वीनती अवधारि ॥
 जउ ए त्री जीवाडिसि नही, तउ हुँ प्राण तजेस्युं सही ।
 पासइ ओपव पीणा तणा, मंत्र जत्र तुक्क पासइ घणा ॥

जोगिणि हठइ मनावी वात, ओषध गोक्षी वाटी सात ।
पाणी सरिस वलेपन किया, पाणी विण ऊतरि नवि गया ॥
पाणी पयउ गुणनइ मंत्र, वळी अनेरा कीया तत्र ।
मारवणी तिहाँ साजी थई, जोगिणि मनि हरषी गहगही ॥
ढोलउ आरांदिउ अपार; जोगिणि दीधउ नवसर हार ।
जोगीनई सोवन सॉकळा, पहिराया अति ऊतावळा ॥
जोगिणि जोगी वहता वाट, ढोला तणउ भागउ उचाट ।
मारु मनि विमणो उछरग, साचइ छइ मइ प्रियस्यु रग ॥
ढोलइ तेडी दीवाधरी, वात आ ज पूगळ विस्तरी ।
सगलानइ मनि छइ बहु सोग, ढोला मारु तणउ वियोग ॥
तू हिव पूगळ भणी पधारि, मारु जीवी मत्र अधारि ।
ते आव्या दीठो विरतत, मारवणी घण ढोला कत ॥
तिणिमु मुकि दीवाधरी, आवी पूगळि आरोंद करी ।
पिंगळ राय वयण अवधारि, जीवी मारु राजकुमारि ॥
तेडाया ते वभण राय, ते बोलइ सुणि पिंगळ राय ।
मारवणी प्री ढोलउ नाह, म्हे दीठा अति घणइ उच्छाहि ॥
नगर मॉहि वाजइ नीसाण, घणा महोछव घणा मंडाण ।
तळिया तोरण वदरमाळ, गावइ गीइ मधुर सुर बाळ ॥
लोक सहू मनि हरषि थया, दुख दोहग दुरइ टळि गया ।
पूगळ माहि वधावा घणा, हिव ऊमर करइ सा परि सुणउ ॥
हेरू पूगळ ऊमर तणा, नित छाना रहता अति घणा ।
ढोलउ जिणि दिनि हालणहार, साथइ दीठा सो असवार ॥
हेरू जाइ ऊमरनइ कहइ, ढोलउ एकणि ऊठइ वहइ ।
जावइ छइ लीधइ अउभणइ, प्राण नहीं.....आपणौ ॥
मारु तणउ मरण सॉमळी, वउळाऊ आव्या सहि वळी ।
हेरू जाइनै ऊमर कहै, पुणि मारवणी कुण दुष सहइ ॥
त्रीजा हेरू आव्या राति, मारवणी जीवी ए वात ।
ढोलउ लियै जाइ एकलो, हिव धाडउ कीजइ तउ भलउ ॥
मनि हरष्यउ ऊमर सूमरउ, मारु षति मन कीयो षरउ ।
सुमट सहू नै साथइ करी, ऊमर चढियो आरोंद घरी ॥
तिणि थळि रातइ ढोलउ रछउ, ऊमर तिणि थळि पूठइ वह्या ।
आगळि जाइ विषमा घाट, ऊमर बेलि सिरि वधी वाट ॥

ढोलउ मारगि करहउ चड्यो, आडो एक विपम थळ अड्यो ।
कोई एक थल आडो फिरइ, मारु देपी इम ऊचरइ ॥

दूहा

[इमके आगे मून का ६२७ नवर का दूहा है ।]

चउपई

मारगि वहतौ मॉभो वाग, ऊतरिया दीटा असवार ।
ऊमर ढोलउ जाणइ नहीं, ढोलउ आवि भराणउ सही ॥
ऊंमर मन महे हरपियो, जिम ढोलो नयरो निगपियउ ।
अणबोला रहियो सहु कोइ, जिम ढोलउ वेमासै होइ ॥
सगळ मनइ विमासी बात, वारु आइ जुडी छुइ बात ।
ढोलउ तिनरउ आडो वहइ, ऊमर ऊठीनइ इम कहइ ॥
कोइ, ठकुराळा, आडउ वहइ, आवउ इहा जु वहसी रहइ ।
महे पणि नास्यौ आपणि काजि, जायो तुम्हे तुम्हारइ ठामि ॥
ऊमर मनि मारुवणी मोह, ढोला उपरि मॉव्यउ ढोह ।
कूडइ मनि आदर अइ वणु, करइ उपपी ढोला तणउ ॥
आदर दई आडा फिर्या, करहउ देपीनइ ऊनरथा ।
सुहरी भाली मारु हाथि, कूच्यो करइ पटोळी साथि ॥
सहु को वडटा एकगि पति, आगइ हूव वजावइ तंति ।
गावइ गायण मधुरइ सादि, मारुवणी लीणी तिणि नादि ॥
साथइ भोभा मठ अयराक, मने ढोहनइ पाई छाक ।
ढोलउ अति परिबळ मठ पीयइ, बीना आछी छाका व्हइ ॥
ऊमर छाक्यउ सुहउइ कहइ, ते हूमणी सहु परि लहइ ।
ढोला नइ मारुवणी तणी, पीहररी साथइ हूमणी ॥
छाक्या सगळा वहकल करई, मारुवणी लेवा मनि धरइ ।
तिणि वेळौ गावतौ हूमणी, करी सॉमि मारुवणी भणी ॥

दूहा

[इमके आगे मूल के ६३०, ६३१ और ६३२ नंबर के दूहे है ।]

चउपई

दूहउ मारुवणी सॉभळ्यौ, पइठी, भोक चित्त भळपळ्यौ ।
आकुळ व्याकुळ चीता करइ, हूमणी वळी ऊचरइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३३ नंबर का दूहा है ।]

चउपई

मारवणी मनि चिंता घणी, करहा भणी कौंवि तिणि हणी ।
 करहउ त्रा ?ना) ठउ अळगउ जाइ, ते भालण वीजउ ऊ जाइ ॥
 जउ आपण पहुचे घर घणी. इणि करहा भालेवा भणी ।
 तउ करहउ आणेस्यइ सही, को वीजउ भालेस्यइ नहीं ॥
 सहि ठकुराळा ऊभा रहउ, ढोलानइ ऊमर इम कहइ ।
 करहउ भाली आणउ उरहउ, रषे अळगउ जायेस्यइ परहउ ॥
 ढोले जाई भाल्यउ हाथ, मारवणी पुणि आई साथि ।
 करहउ भेकी ऊभउ रह (इ), मारवणी ढोलानइ कहइ ॥
 कंता, ए ऊमर सुमरउ, तुभ मारिवा मन कौयउ षरउ ।
 गीत मॉहि कहियउ हूमणी, मद पावे तो मारण भणी ॥
 स्वामी, सभळि माहरी वात, पहुर एक वउळी छइ राति ।
 चाल्लभ, हिव तू म करि विलंब, करहइ चड्यउ व जोडउ कव ॥
 ढोला तणइ वात मनि वसी, करहउ पलाण्यउ कसणउ कसी ।
 चड्यउ ढोलउ पागडा समारि, पूठइ चडी मारुई नारि ॥
 छोडी नहीं कूटि वीसरी, करह चड्ढक्यउ कौंवे करी ।
 ए वन वेगि पषी जिम वहइ, ऊमर देषीनइ इम कहइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६३६ और ६४० नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

ऊमर अति ऊतावळि करे, षयंग सूधा पाषरइ ।
 आपण चढियो ढोला केडि, वहताँ पडिया ऊजड वेडि ॥
 ढोलानइ आपडइ जि कोइ, अघराजियो हमारो होई ।
 के मारइ, कइ आडउ फिरइ, ते वेटी माहरइ वरइ ॥
 ऊमर अति आरहडा षडइ, तउ ढोलउ किम ही नापडइ ।
 पषीनी परि ऊड्यउ जाइ, करहउ मिळियो वाउवाइ ॥
 आरहडा त्रिहुँ दीहाँ लगई, षडिया तोइ न आपडि सकइ ।
 तउ ही तुरी पुलाई जाइ, अळगा पथी देषी थाइ ॥

ढोलइ कुँव्यइ करहइ चडिउ, ऊमर तोही नवि आपड्यउ ।
 मारवणी मनि चिंता करइ, माहरा पग ग्गे प्रिय मरइ ॥
 ढोलउ पृछइ, कौइ धण रई, किणि कारणि मनि विलपी थई ।
 स्वामी, हयवर ऊमर तणा, तानी तरळ तुरकी घणा ॥
 करहउ मति पथइ थाकिस्यइ, तउ वळक मुभनइ लागिस्वइ ।
 कहिस्यइ मारवणीकइ काजि, ऊमरि साल्ह विणास्यउ आज ॥
 वळतउ ढोलउ धणनइ कहइ, करह निरति मूँध नवि लहइ ।
 मारणि पूगळि आधोफरे, एकणि पुहरे पुहकर परइ ॥
 मिलियो मुभ इक व्यवहारियो, मडँ तेहनो एक कारज सारियो ।
 जोयण वीस ऊठि चाडियो, लिपियो कागळ ऊतारियो ॥
 कागळ लिपतौ जोई वार, जोयण वीस लँव्या तिणि वार ।
 चिंता म करि मूँध मन माहि, एक दिवस मुभ पटुचण आहि ॥
 इणइ अचसरइ विहाणी राति, ऊग्यउ सूर हूवउ परमात ।
 चारण इक आयो तिण वार, साम्हउ जोई कियो जुहार ॥
 सभळि राउत, चारण कहइ, करहउ कुँटियउ दोहगु वहइ ।
 केहो अचगुण करहय कियो, ऊपरि भार पाउ कूटियउ ॥
 एह वात ढोले सौंभळी, विलपउ थयो विमासइ वळी ।
 मुभ वराँसउ मोटउ पड्यउ, कुँहेट न छोडी ऊपरि चढ्यउ ॥
 कडारीहूँ काढी करी, वागहइ ने ढीधी छुरी ।
 कडिहूँ वाढि पयोळी भणी, तेह व दीधी चारण भणी ॥
 ढोलउ चारण प्रति इम कहइ, आवे कटक पथ इणि वहइ ।
 माँभी छइ ऊमर सूमरउ, परे पयाणे पेडइ परउ ॥
 तेहनइ छुरी तणउ अहिनाण, पट्टोली कापी सहिनाण ।
 एह दिषाडीनइ इम कहे, हिवइ रणे ऊतावलि वहइ ॥
 दूहउ एक वहे माहरउ, अरडइ मिलइ ऊमर सूमरउ ।
 ढोलइ भुइ लघी अति घणी, कही वात छइ उमर भणी ॥

दूहा

गहिरावत वावळा, तुरी न मारि न थारि ।
 जे न मुया घर अंगणइ, ते क्यो मरिस्यइ वारि ॥
 कुँहेटे करहे लघिया, जे थळ हुता दुंग ।

* ऊमर आगइ इम कहे, मा मारियो तुरंग ॥
 पंथी, एक सँदेसडउ ऊमर कहे सुलम ।
 करहा से थल लंधिया, जे थळ हुता दुलम ॥
 [इसके आगे मूल का ६४८ नंबर का दूहा है]

चउपई

तिहाँ ढोलउ आधौ सचरइ, भागउ मनि आणद धरइ ।
 चारण तेणइ मारगि पुळइ, त्रीजइ दिनि ऊमर ते मिळइ ॥
 ऊमर षडइ जतावळा, करइ ति हलहल अति आकुळा ।
 पूळइ वाताँ मारगतणी, गढवी कहोउ निरति अम्ह-भणी ॥
 अम्ह आगळि ऊठी इक वहइ, अम्ह उणि विचि मुइ केती रहइ ।
 चारण कहि सुणि ऊमर राय, फोकट हयवर मारउ काँइ ॥
 ऊठी तुग्हि विहुँ दिनि आँतरउ, लोलै करह जाइ सॉमरौ ।
 कुँहटे करहे थळ लंधिया, छुरी पटोळी मुभनइ दीया ॥
 ते पहुता नळवरगढ भणी, तिणि साथइ नारी पदमिनी ।
 हूँ अ(? ओ) लपूँ न मरम नवि लहूँ, दुहो एक सदेसउ कहूँ ॥
 ऊमर मुहडउ विलषउ थयो, ते सहिनाण नयण निरषीयो ।
 मारगि मूँक्या वीस ब्रहास, चारण वयणे थयो निरास ॥
 तिणिहिज मारगि पाळउ वळइ, षीजे चिचि, हीयउ कळकळइ ।
 वळिनइ आव्यो आपाण गामि, ठेस विदेस गमाडी माम ॥
 ऊमर आयो पाळउ वळी, वात सहू पूगळि सॉभळी ।
 कुसल पेम मारवणी नारि, पहुता नळवरि साल्हकुमार ॥
 तीजइ दिनि नळवर गढि गया, वाडी माहि ऊतारा कीया ।
 राजा, सुत आव्यउ, सॉभळी, साम्हउ आव्यउ नळवर गळी भणी ॥
 पइसारउ सँमूहरति करइ, जय जयकार भट्ट ऊचरइ ।
 सिणगाख्या मइगळ मदमत्त, ढोलउ मारवणी सजुत्त ॥
 मारवणीसु वाध्यउ नेह, प्रमदा प्रीतम अधिक सनेह ।
 पच सवद वाजइ वाजित्र, ढाळइ चामर सिरिवर छत्र ॥
 धवळ मँगळ सूहव धुनि करइ, वारु विप्र वेद ऊचरइ ।
 मोटउ घणु करी मंडाण, पइसारउ चढियो परमाण ॥
 सात भूमि मदिर उचु गि, मारवणी वासी मन रगि ।

❁ मूल का ६४७ नंबर का दूहा मिलायो ।

दासी तास पचसह पासि, मारु मनि अति पूगी आस ॥
 पगि ससुगानइ कियो प्रणाम, तिहाँ दीया मोटा सउ ग्राम ।
 साखू प्रणामी कियो जुहार, दीया सहि मोवन सिंगुमार ॥
 हिव पूगळहूँती जभगाउ, भाउ भाट ले आव्यउ वणउ ।
 साथइ वणा करइ केकाण, सेन सुपासण नइ मउण ॥
 पिगळ गजा साथ थई, सीम लगइ वउळाव्या सही ।
 सउ अमवार साथइ निगि दीया, कुगलपेम नळवरि आविया ॥
 तिहँ मगळउ मॉडिवउ अउभणउ, मतोप्रियउ परिवण आपणउ ।
 लाग हुता सहि विवणा दिया, एम मोभाग मागवणी लिया ॥
 ढोलउ राइ मान्सउ प्रीति, चतुरपणइ लागउ प्रिय चित्ति ।
 दिनि दिनि अविक्का करइ पसाउ, टिमतरियउ मारु जस वाय ॥
 मागवणी माळवणी विन्डइ, वेवइ वइठी ढोला कन्हइ ।
 मन मोहइ अथिकरो माण, पीटर तणौं करइ वपाण ॥
 मोटउ महिवळि माळव देम, सुदर रमणी, सुदर वेम ।
 वारु मठस अठारइ लाप, गता राम भली अति नाष ॥
 पगि पगि नदियौं नीर निवाण, वणा गरथ नइ लोक मुजाण ।
 सगळ वग्मे होइ सुगाळ, सुपनतरि नवि हुवइ तुकाळ ॥
 अविक्का केता कहुँ वपाण, देसौं मॉहि मुकुट समान ।
 माळवणीनइ ढोलउ कहइ, तूँ देसौं तणी निरति नवि लइइ ॥
 ढोलइ जिमि कहिया एतळा, बीजा देस अउर सहि भला ।
 मारवाडी वगती अति बुरी, मॉसस...छ वेडँ सुँह पगी ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६५६, ६५८, ६५७, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे ह ।]

चउपई

अति अवगुण मारु-मुट-नगा, माळवणी कहिया अति वणा ।
 ढोलउ वात मुगी गहगहइ, हसिनइ मारवणी प्रति इम कहइ ॥
 कहि मारवणी ताहणु देस, केइवा माणस केइवा वेस ।
 वळनी मारवणी इम कहइ, प्रीय आपे सगळी परि लइइ ॥
 मारवणीसु मनरी प्रीति, ढोलउ दापे देसौं गीति ।
 सगळा देस भला छइ सही, पणि को मारु उपम नहीं ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६८, ६७० और ६७१ नवर के दूहे हैं ।]

चउपई

मोटा महल अनह माळीया, छोह पक काचे टाळिया ।
 गउष अपूरव चदण तणा, रतन जडित मोती भूमणा ॥
 पँचय करण पउठ्या पत्यक, मनि गमता सुष सेज मयक ।
 सोकि चिन्हे महलि आपणे, कृष्णांगर वासित धूपणे ॥
 सँभ समय सोळह सिंगार, वेवइ रमणी करइ अपार ।
 राति दिवस प्रिय साथइ रमइ, सुप्रभाति साखूनइ नमइ ॥
 मारवणीनइ वारा दोइ, वारउ एक माळवणी होइ ।
 करइ वेस दिन प्रति नवनवा, इद्रलोकि अपछर जेहवा ॥
 सुदरि अति माळवणी नारि, तोइ नही मारु ग्रणुहारि ।
 रूप देषि भापइ सहु कोइ, परतपि मारु अपछर होइ ॥
 एक कहइ तूठउ करतार, पूजी गोरि घणे परकारि ।
 तो मारवणी ढोलइ मिली, विहुँ सरीषी जोडी जुडी ॥
 मालवणीसु प्रेम अपार, वालपणाइ सतोष अपार ।
 तोही मारवणीसुं घणउँ, लागो छइ मन ढोला तणउ ॥
 विहुँ तणइ पुत्र संतान, दिन दिन कत अधिक बहु मान ।
 मनवच्छित ते पाम्यउ भोग, सुष सपति सज्जन सजोग ॥

गाह सातसइ एह प्रमाण, दोहा नइ चउपई वषाण ।
 जादव रावळ श्रीहरिराज, जोडी तासु कतूहळ काजि ॥
 जेणइँ परइँ हुँती सँभळी, तिणि परि मइ जोडी मन रळी ।
 दूहा घणा पुराणा अछइ, चउपई वध कियो मइँ पछइ ॥
 अधिकउ अछेउ जोढ्यउ वहु, सुकत्री ते सा सहियउ सहू ।
 पडियउ वळी बिहाँ पाँतरउ, तेह विचारि करियो षरउ ॥
 सवत सोळह सत्तोत्तरइ, आषा त्रीजि दिवसि मनि षरइ ।
 जोडी जेसळमेरि मभारि, वंछ्या सुष पामइ ससारि ॥
 सभळि सगुण चतुर गहगहइ, वाचक कुसळलाभ इम कहइ ।
 रिद्धि वृद्धि सुष सपति सदा, सँभळता पामइ सपदा ॥
 इति श्री ढोला मारवणी चउपई सपूर्ण ।

(क)

[यह प्रति वीकानेर राज्य-पुस्तकालय में है । यह सवत् १७२२ के लगभग की लिखी हुई है । इसका पाठ अत्यन्त शुद्ध है । इसका बीच का एक पत्र, जिसमें दोहा न० २३५ से २५६ एव २५७ का कुछ अंश लिखा हुआ था, नष्ट हो गया है ।]

ढोला मारवणी दूहा

श्रीगणेशाय नमः

दूहा

सकल सुरासुर सौमिनी, सुखि, माता सरसत्ति ।
विनय करीनै वीनबुं, सुभ्र औ अविरळ मत्ति ॥ १ ॥
जोतों नवरस एरिण जुगि, सविहुँ बुरि सिणगार ।
रागें सुर नर रजीयै, अत्रळा तसु आधार ॥ २ ॥
वचन विलास, विनोद रस, हाव भाव रति हास ।
प्रेम प्रीति, सभोग सुख, ए सिणगार आवास ॥ ३ ॥
गाहा गृहा गीत गुण, उकति कथा उल्लोल ।
चतुर तणा चित रजवण, कहीयै कवि कल्लोल ॥ ४ ॥

गाहा

मणहर नवरस मज्जे सुदर नारीण सरस सवधा ।
निरुवम कविहि निवद्धा सुणतु सयणा जणा सगुणा ॥ ५ ॥
नळवर नयर नरिंदो नळराय, सूऊय साल्हकुमार वरो ।
पिंग (ळ) राय सुधूवा वनिता मारवणी सु वर्णविसु ॥ ६ ॥

कवित्त

पाणी पख पवग, षग चंगौ बुरसौणी ।
वीजा निर्मळ वल्ल निर्म्मळ गगानौ पोणी ॥
पट्टकूल पट्टणी देस भोगीधर दक्षण ।
कुजर कदळी षड विप्र तेरोतरी विचक्षण ॥

तिम चंद वदन चंपक वरण, दंत भ्रुकै दामिनी ।
 सारग नयण ससार इणि मनोहर मारु कॉमिनी ॥ ७ ॥
 मुरधर देस मभारि सत्रळ घण धन्न समिद्धौ ।
 नामै पूगळ नयर पुहवि सगळै परसिद्धौ ॥
 राज करै रिमराह प्रगट पिंगळ प्रियवीपति ।
 प्रतपै जग परताप दान जळहर जिम दीपति ॥
 देवडी नाम ऊमा घरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि ।
 चौसठि वळा सुदरि चतुर, कथा तासु कहिसुं सुपरि ॥ ८ ॥

दूहा

गिर अठार आवू धणी गढ जाळौर दुरग ।
 तिहाँ सामंतसी देवडौ अमली माण अभग ॥ ९ ॥
 चद वदनि चपक वरणि अहर अलता रग ।
 पंजर नयणी धीण कटि चदन परिमळ चंग ॥ १० ॥
 अति अद्भुत ससार इण नारी रूप रतन्न ।
 आळै ऊमा देवडी कुमरी कचनवर्ण ॥ ११ ॥
 जौ तुभ सारीखौ जुड़ै भाणिण तिणि भरतार ।
 तौ राही नै कान्ह ज्युं कर मेळै करतार ॥ १२ ॥
 जेसळने पिंगळ कहै, करि आणां परियाण ।
 दिन एकणमे देवडी जिम आवै इण ठाण ॥ १३ ॥
 साचौ छोरु तू सही, तू सेवक हूँ सामि ।
 आगे तै परणावीयौ करि बलि एतौ काम ॥ १४ ॥
 सोवनगिरिहूँ चिहूँ दिसै रूधा मारग घाट ।
 पंथी को पूगळ तणौ वही न सककै वाट ॥ १५ ॥
 कटकी जौ आपै करौ तौ मन रूसै राइ ।
 सामंतसी रूठै थकै बंध न वैसै काइ ॥ १६ ॥
 वचन सुणी राजा तणौ जेसळ किद्ध प्रणाम ।
 तौ हूँ छोरु ताहरौ जौ सारुं ए काम ॥ १७ ॥
 सुणी बात रिणधवळ सहु काळौ थयौ कुमार ।
 पाटण पहुतौ आपणै आरति करै अपार ॥
 पाळै सामंतसी सुपरि मोटै करि मंडाण ।
 ऊमादेरौ ओभणौ इण परि चड्यौ प्रमाण ॥ १८ ॥

पटराणी पिगळ तणी अपछरनै अणुहारि ।
 आळै ऊमा देवडी सुंदरि इण ससारि ॥ २० ॥
 सुंदरि सोळ सिंगार नभिक सेज पधारी सभिक ।
 प्राणनाथ प्रीतम मिल्यो किर सरि वैठो हभिक ॥ २१ ॥

वडा दूहा

अद्भुत रूप असभ, नग नौरै, इण परि जपे ।
 कही उपम केही कहाँ, राणी परतपि रंभ ॥ २० ॥
 प्रियसु अधिकौ प्रेम, रयण दिवस रंग रमें ।
 कुसुम नाणि केनकि तणो, मोह्यो मधुकर जेम ॥ २३ ॥
 माथो धोए मेटि ऊभी सूरिज सॉमुही ।
 मोहण वेळी मारुई, ताह उपची पेटि ॥ २४ ॥

दूहा

भूपति (भाऊ) भाटनै कीचौ कोडि पसाउ ।
 चाल्यो नळ्वर गढ भणी प्रणमी पिगळराउ ॥ २५ ॥
 वरस दौद वोळ्या जिसै, तिसै देव न बुठो देस ।
 पड पाखे सत्र लोक पडि, वसिवा गया विदेस ॥ २६ ॥
 मारुआडिकै देस महि, एक न जाओ ग्दु ।
 कवही होइ अवरमणा, कै फाका कै तिडु ॥ २७ ॥
 पिगळ परीअण पूछियौ, कीजे त्रेवडि काइ ।
 काई ठाम नु अटकळौ, जेथि वमीजे जाइ ॥ २८ ॥
 जळ खड कागण सोभिया देसे हुद दुवाइ ।
 पुइकर खड पाँणी प्रथळ, समळि पिगळराउ ॥ २९ ॥

[इसके आगे मूल के १, २, ३ नवर के दूहे हैं ।]

इण अवसरि वण ऊँनम्यौ, प्रगथ्यौ पावस मास ।
 पासै पिगळराइनै, कीया उतारे वास ॥ ३३ ॥
 ऊनभियौ उत्तर दिसा, गयण गरजे घोर ।
 वड दिसि चमकै दाभिनी, मडै तडव मोर ॥ ३४ ॥
 आरि मास निश्चळ रह्या, सरवर तणै प्रसग ।
 पिगळ नै नळ भूपती, मिलिया मन नै रग ॥ ३५ ॥
 सॉपा वागा सावट्ट, कोडीघज केकाण ।
 आम्हो सॉमा आवी (ऽपि) या, प्रीति चडी परमाण ॥ ३६ ॥

[इसके आगे मूल के ४, ५, ६; ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २६, २८, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, और ५७ नंबर के दूहे हैं ।]

कूँझड़ियो कळह कियो टोळइ टोळइ वीस ।

मारु पउटै एकली उर सचापे ईस ॥ ६१ ॥

[इसके आगे मूल के ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७, १०८, ११०, १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १२३, १२४, १२६, १२५, १२२, १२९, १३०, १३३, १२८, १३१, १२७, १३२, १३७, १३५, १८२, १४०, १४४, १८४, (?), (?), १८९, १९१, १४९, १४५, - १४७, १५५, १४६, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७०, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, ३७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, ३०१, २९७, २९३, २९६, २८९, (दुबारा), २९५, २९८, २९९, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४,

[यहाँ एक पत्र नष्ट हो गया है ।]

३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२२, ४२०, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२, ४९९, ५००, ४९६, ४३३, ४२८, ४९४, ४३६, ४३७, ४३८, ४४२, ४४५, ४३९, ४४४, ४४७, ४४८, ४५०, ४४९, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५,

❁ (क) प्रति में ७१ नंबर के दो दूहे हैं ।

४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५६, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२,
४६५, ६६६, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९,
और ४९० नवर के दूहे हैं ।]

गंसू महुर पधारियौ, कहण सँदेसा काज ।

अमल सुरगा साल्ह कीये, आयौ चढे जिहाज ॥३२८॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५,
५०८, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२६, ५२७, ५३५,
५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५३७, और ५४२
नंबर के दूहे हैं ।]

मालु अति वेंण पतळी, पॉन फडकै खाइ ।

नाह धड़कै भीड़नाँ, मति मूव कड़कै जाइ ॥३५५॥

मिड मिड, नाह, निसक मिड, अँगलूँ अग लगाइ ।

कळी लु काची केतनी, ममर न भगी जाइ ॥३५६॥

[इसके आगे मूल के ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२,
५५५, ५५५, ५५६, ५५६, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४,
५६५, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५,
५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०,
५८१, ५८३, ५८४, ५८५, ५८७, ५८६, ५८८, ५८९, ६००, ६०१,
६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६,
६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६,
६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६,
६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०,
६५१, और ६५२ नवर के दूहे हैं ।]

[कुल दूहा सख्या ४३४ है]

॥ इति श्री ढोला मारवर्णा दूहा ॥

(१४)

[यह प्रति बीकानेर-राज्य-पुस्तकालय में वर्तमान है। यह संवत् १७५० के लगभग की लिखी हुई है। लिपि सुन्दर है एवं पाठ शुद्ध है।]

ढोला-मारुरा दूहा

[पहले मूल के १, २ और ३ नंबर के दूहे हैं।]

सुणि पिंगल नरवर कहे, बडा बडेरी रीति ।

न आढोणौ नातरौ, ना लाषीणी प्रीति ॥ ४ ॥

[इसके आगे मूल के ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, X, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७, १०८, ११०, १११, ११२, ११५, और ११६ नंबर के दूहे हैं।]

ढाढी जै प्रीतम मेळै, इउँ दाषवीया जाय ।

मारु पके अष (१ ब) ज्यु, फिरे अलगे भाय ॥७२॥

[इसके आगे मूल के ११८, ११९, १२२, १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७०, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १४९, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८९, १९२, X, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०६, १९८, २००, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१६, २१८, २१९, २२१, २२२, २०४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २५९, २६०, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, X, २७७, २७८,]

X ऐसे चिह्न जहाँ है उन संख्याओं के दूहे प्रतियों में नहीं हैं।

२८०, २८१, २८२, २८६, X, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१,
 २९२, ३०१, २९३, ३६७, २९५, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९,
 ३१०, ३१२, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ६२०, ३२१, ३२२,
 ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६,
 ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७
 ३६२, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००,
 ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४११, ४१०, ४१२,
 ४१३, ४१४, ४१७, ४१६, ४१५, ४१०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६,
 ४९१, ४९२, ४९९, ५००, ४९६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४
 ४४५, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५,
 ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२,
 ४६५, ६६६, ४६६, ४६७, ४६८, ४५९, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९,
 और ४९० नम्र के दूहे हैं ।]

वीक्ष् मुहर पधारियों, कहण सडेमा कान ।

अमल मुरगाँ साल्ह कीय, आयाँ पडे जिहाज ॥२७३॥

इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५,
 ५०८, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२६, ५२७,
 ५३५, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५४२,
 ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५,
 ५५६, ५५९, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७,
 ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७,
 ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५८१, ५९३,
 ५९४, ५९५, ५९७, ५९६, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५,
 ६०६, ६०७, ६०८, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९,
 ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९,
 ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२,
 ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३,
 ६५४, ६५५, ६५६, ५५८, ३५९, ६६०, ६६३, ६६४, ६६५, ६७२,
 ६७३ और ६७४ नम्र के दूहे हैं ।]

॥ इति श्री ढोलामारूरा दूहा ॥

(४)

[यह प्रति ब्रीकानेर राज्य पुस्तकालय में वर्तमान है । यह संवत् १७५२ में लिखी गई थी । इसका क्रम जोधपुरीय कथानक से मिलता है, यद्यपि उसकी भाँति इसमें प्रस्तावना नहीं है ।]

ढोलै-मारुरा दूहा

श्री गणेशाय नमः

[पहले मूल के १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ नंबर के दूहे हैं ।]

मा ऊमादे देवड़ी, नानौ सामँतसीह ।

पिगळराय पमाररी, कुमरी मारवणीह ॥१०॥

[इसके आगे मूल के १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २१, ७७, २३, २७, २९, २८, ३०, ३१, ३२, ३३ और ३४ नंबर के दूहे हैं ।]

वात्रहिया रत पंषीया, मगर ज लाली रेष ।

सुती राजिंद संभरथौ, वात ज सजन देष ॥३२॥

[इसके आगे मूल के ३५, ५२, ६०, ६२, ६५, ६४, ५३, ५४, ५, ५७, ६७ और ६८ नंबर के दूहे हैं ।]

सहि प्रीतम संदेसड़ा, मारवणी कहियाँह ।

माता मन महि जाँणियौ, विरह वियाप थयाह ॥४५॥

[इसके आगे मूल के ८१, ८०, ८३ और ८५ नंबर के दूहे हैं ।]

इक दिन सोदागर तिहाँ, आप तगै उतार ।

वैठा हसै तिण अवसरै, नयणे निरषी नार ॥५०॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८९, ९०, ९१, ९३, ९४, ९५, ९६, ५ और ८२ नंबर के दूहे हैं ।]

पिगळ मन चिता हुई, करै मालवणी घात ।

प्रोहित भीम राजा तणौ, मान महुत सुभ जात ॥६१॥

ढो० मा० दू० ३३ (११००-६२)

पिगळ कहे प्रोहित सुनौ, जावौ ढोलै देस ।
 ढोलो ल्यावो इह कियौ, कहे एम नरेस ॥६२॥
 चळती मागवणी कहे, वात न भली एह ।
 जमादेस, वीनती, भाखै यु ससनेह ॥६३॥
 वाप ए वात न थे कहौ, वैण विचार कहेस ।
 अणविचार नवि कीजिये, विचार नैह कहेस ॥६४॥

[इसके आगे मूल के १०३, १०५, १०६, १०६, १०७, १०८, ११२, ११६, १२६, ११६, ११८, १२५, १८२, १४५, १५५, १५४, १४७, १४६, १६१, २०७, १७०, १७३, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १६२ और २०८ नवर के दूहे हैं ।]

वागरवाळ तेडाविथा, साल्हकुमर तिण वार ।
 रात्यो गाया निसह भर, पूछण तास विचार ॥६४॥

[इसके आगे मूल का १६५ नवर का दूहा है ।]

माटे मारवणी तरौ, वपु वर्गावी वषाण ।
 मारवणी निरखी नहीं, जनम तियाँ अग्रमॉण ॥६६॥

[इसके आगे मूल का १६७ नवर का दूहा है ।]

ए माणस तिण पाठव्या, साल्हकुमर, तो कान्च ।
 मालवणीहूँ वीहते, मै मेळाया आज ॥६८॥
 जो म्हे मोडा जाइस्यौ, तुम्ह पापै संदेस ।
 तो मारवणी मॉननी, प्री (?पा) वक करै प्रवेस ॥६९॥
 वागरवाळौ इस कहै, साल्हकुमर नरेस ।
 जो मारु मिळवा करो, तौ पधारौ उन देस ॥१००॥

[इसके आगे मूल के १६८, २०३, २०१ और २०६ नवर के दूहे हैं ।]

सुण ढाढी ढोलौ कहे, सीख करै सुन राज ।
 फढीया सहस पचास दे, दीया ब्रहास सुसाज ॥१०५॥
 मनमे चित ढोलौ कहे, मुह विलपाँणौ राउ ।
 मन आळोचै आपणौ, तत्र रॉणी चि... (?)लाउ ॥१०६॥

[इसके आगे मूल का २१५ नंबर का दूहा है ।]

ढौलौ पूछे मारवणि (? मालवणि), संभळ बात सुजाँण ।

आज ज घरा दयामणा, बात सुणौ प्रमाँण ॥१०८॥

[इसके आगे मूल के २१६, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३६, २३५, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २८७, २८९, ३०१, २९७, २९३, २९५, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७३, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०७, ४०९, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४२०, ४१५, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२, ४९९, ५००, ५९६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०, ४४९, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ५५६, ४५७, ४८५, ४५९, ४६०, ४६१, ४५८, ४६२, ४६३, ४८२, ४६५, ६६९, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६९, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, और ४९० नंबर के दूहे हैं ।]

वीसू सुहुर पधारीयौ, कहन सँदेसा काज ।

अमल सुरंगा सात्हकीय, आयौ चढे जिहाज ॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२६, ५२७, ५२५, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५९, ५५३, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५८१, ५९३, ५९४, ५९५, ५९७, ५९६,

५६८, ५६९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०,
 ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२,
 ६२३, ६२४, ६२५, ६२७, ६२६, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२,
 ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५,
 ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६,
 ६५८, ६५९, ६६०, ६६३, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६७०, ६७१,
 ६७२, ६७३, और ६७४ नगर के ढूहे हैं ।]

[कुल ढूहा संख्या ३६५ है ।]

॥ इति श्री ढोलै मारुग ढूहा संपूर्णम् ॥

संवत् १७५२ वर्षे कार्तिकमासे शुक्लपक्षे नवम्या तियो
 पंडित केसूदास लिपत मुकाम श्री सगर मध्ये ।

(घ)

[यह प्रति बीकानेर राज्य पुस्तकालय में वर्तमान है । यह संवत् ११८८ में लिखी गई थी । इसका पाठ अशुद्ध है ।]

ढोलामारवाणी रा दूहा

[इस प्रति में दूहों का क्रम इस प्रकार है—]

[पहले मूल के १, २ (पंक्तियों का क्रम विपरीत है), ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५६, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, X, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७ और १०८ नंबर के दूहे हैं ।]

[इसके आगे नीचे लिखी गद्य पंक्ति तथा दूहा है ।]

मारु आसीस दीवी

दूहा

अचरावर अंमर हूवौ, वेगौ आवे वीर ।

संदेसा सयणों तणों, पहुचावौ पर तार (तीर ?) ॥

[इसके आगे मूल के १३० (केवल दूसरी पंक्ति), १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १२२, १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७०, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १४९, १७५, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, १९८, २००, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८,

३३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४६, २५०,
 २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५६, २६०, २६८,
 २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२,
 २८६, २८७, २८६, २८८, २६०, २६१, २६२, ३०१, २६७, २६३,
 २६५, २६४, ३०४, ३०५-३०४ (पूर्वार्ध ३०५ की प्रथम पंक्ति और उत्त-
 रार्ध ३०४ की द्वितीय पंक्ति), ३०५, ३०६, ३०८, ३०६, ३१०, ३१२,
 ३१३, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३,
 ३२४, ३२५, ३२६, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१,
 ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२,
 ३७०, ३७१, ३७३, ३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३६७, ३६८, ४००,
 ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०६, ४१०, ४१२, ४१३,
 ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४६१,
 ४६२, ४६६, ५००, ४६६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५,
 ४४७, ४४८, ४५०, ४४६, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६,
 ४५७, ४५८, ४८५, ४५६, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२, ४६५,
 ६६६, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८६
 और ४६० नंबर के दूहे हैं ।]

वीस मुहर पधारीयौ, कहण सँदेसा काज ।

अमल सुरगाँ साल्ह कीयौ, आयौ चढे जिहाज ॥२८२॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८,
 ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१८, ५१६, ५२६, ५२७, ५३५,
 ५२६, ५२८ नंबर के दूहे हैं ।]

सजण आया हे सखी जाँह की हुती चाहि ।

दियौ हेम भर भीयौ वूभी वलंती भाइ ॥

[इसके आगे मूल के ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६,
 ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५,
 ५५६, ५५६, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८,
 ५६६, x, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८,
 ५७६, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४६, ५५०, ५८१, ५६३, ५६४,

५६५, ५६७, ५६६, ५६८, ५६९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६,
 ६०७, ६०९, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९,
 ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९,
 ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२,
 ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६५०, ६५१, ६५२ और ६७४,
 नंबर के दूहे हैं ।]

[कुल दूहा संख्या ३६६ है ।]

[अंत में नीचे लिखी पुष्पिका है ।]

इति श्री ढोलामारवणीरा दूहा संपूर्णम् ।

संव(त्) १८१८ वर्ष मिति फागुण वदि ३ गुरुवारे ।

श्रीरस्तु ।

(६)

[यह प्रति वीकानेर राज्य पुस्तकालय में है । इसमें बीच बीच में गद्य है और नए दोहे भी बहुत से हैं । इसका पाठ (ज) प्रति से अधिकतर मिलता है । इसके आरंभ के कई पृष्ठ नष्ट हो गए हैं । यह प्रति पुरानी नहीं जान पड़ती ।]

ढोलामारूरी बात ।

.....
.....(ढा) लोली पुगळरै नलीक आया ।

दूहा

करहो पवनां रूप फीय, पथी छुडि इक पाय ।

एकण आय फरूकडे, पुगळ पोहोतो आय ॥५६॥

करहो पेडे मन समो, आयो ढोलो एह ।

एती घरा उलघतां, पगो न लागी पेह ॥५७॥

मीमा भाटण वायक

मारवणी ढोलो आवीयो, करहो कहके एह ।

सही तें तुठा साहयो, दूधै वूठा मेह ॥५८॥

वारता

इम करता गुदहळक वेळा हुई । तारै कोहर उपर पधारीया । पळे करहाने पाणी पावण लागा । तद करहो पाणी पीवै नही । तारै ढोलोली कहै ।

दूहा

करहा चरे करेळीयाँ, पान चितार म रोव ।

सरवर लाभ सरिजीयो, पाहेडीया मुह षोय ॥५९॥

वारता

मारवणी सहेलीयाँ समेत ढोलैजीरो रूप जोवण लागी । तिया समें मारवणी बोलीया ।

दूहा

ढीचा पाणी ढंवर, सरवर सुहयणाह ।

मानस चीती मारुई, वहते गह बनाह ॥६०॥

ढोला वायक

[इसके आगे मूल का ५२४ नंबर का दूहा है ।]

सहेली वायक

[इसके आगे मूल का ५२५ नंबर का दूहा है ।]

वारता

तिण समै सहेली करहानें कौब वाही । तारै करहो चमकनें षेळी ढाकनें
पैली कान्नी जाय ऊभो रह्यौ । तारै ढोलो कहै ।

दूहा

षळ गुळ एक पटतरै, एकण अग म मार ।
काव चटका जे सहै, दूजा करहा गिमार ॥६३॥

मिमा भाटण वायक

ज्या कारण थळ लघीया, त्यारे चित न काय ।
साजन बैठे कोप सिर, करहो तिसायो जाय ॥६४॥

मारवणी वायक

रहि रहि मिमा माठ करि, करहो काव म मार ।
कोइ वटाउ पथसिर, ढोलारै उण्हिहार ॥६५॥

मीमा वायक

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है ।]

करहा वायक

ढोला मारु मारु थे करो, मारु ढेढणीयाह ।
पौणी पीतो करहलो, मारुणों कावडीयाह ॥६७॥

मारवणी वायक

करहा, पांगी खंच पीय, जो ढोलारो होय ।
भोळै वाही कावड़ी, वळे न वाहै कोय ॥६८॥
भेकी करहो बैसीयौ, जो तुं ढोलो होय ।
जे भे जाणत वलहा ती करहौ न मारत कोय ॥६९॥

वारता

मारवणी जाणीयौ ओ तो और पथी छै । मीमा मोसुं रामत करै छै ।
नें बीजी सहेलीया जाणीयो सही ढोलोजी छै । ढोलैजी पिण जाणीयो ए तो
मारवणी नें सहेलीया छैः । युं जाणनें ढोलोजी कहै ।

दूहा

सवे लोवळवाळीया, न जाणुं धण फाय ।
 ऊजळदती मारवण, पदम जडावे पाय ॥७०॥
 सवे लोवडवाळीया, सवहीके गळि हार ।
 एकाण मारु बाहिरी, बीजी सगळीनें जुंहार ॥७१॥
 खजन नेत्र विसाल गति, नासिका दीपक लोय ।
 ढोलो रळियायत हुवौ, जे धण दीठो जोय ॥७२॥

वारता

इतरी वात हुई नें मारवणी जाणियो औ तो सही ढोलोजी छुः । तिवारै लाज करनें सटकेंसुं सहेलीयामें आऽ । पिण साध्यात चद्रमा सोभै तिम सपीया में सोभै छै । इम औलै होयनें रथमें बैसनें घरे पधारीया । पछै । ढोलोजी पिण कोहरस अस्वार हुवा । सो रावळै वागमें जाय डेरा कीया । नें करहानें वनमाळी फनासु बधायो । पछै ढोलीजी भात भातरा अमल करण लागा । पान कपूर मुखवास आरोगीया तितरै पुगळ माहै पिण राजलोक षवर हुई । जो ढोलोजी पधारीया । मगर ढाढो कहै ।

दूहा

राजाजी ढाढो कहै, वात सुणी नरपत ।
 ढोलोकुमर पधारीया, भगत करो बहु भत ॥७३॥

वारता

राजाजी इतरो साभळनें कुवरारो साथ ढोलाजी साम्हा मेलीया सो गया । जद ढोलाजी सर्व साथनें राजी होयनें मिलीया । घणी मनवारा करी नें अमल कपूर पान बीडा आरोगीया । सुधा अतर लगाया । पछै कुमरारौ साथ सहित ढोलोजी सहिरमें पधारीया । तारै राजाजी पिण ढोलैजीसु मिलिया । साम्हा आया । राजाजी कह्यो ढांळाजीरा साथनें डेरो दिरावो । तद राखा कहै ।

दूहा

नळवर हुता पोह समा, करहो पडै तछेक ।
 हलकारा कर आवीया, कुवरजी एकाएक ॥७४॥

वारता

तारै राजाजी कह्यो ढोलाजी एकाएक भलाई पधारीया । इतरो कहिनें राजाजी दर्राघाणें जाय वैठा । पछै ढोलैनी राजलोक माहै जुहार कहाडी ।

तांहरै राणीया पिण आसीस कहायनें नाळेर पान बीड़ा मेलहीया । पछै सहेलीयां गीत ग्यान करिनें मोतीयारै आषै वंदाया । पछे ढोलोजी महिला पधारीया । पछै माल (?र)वणीजी पिण सिनान मंजन तिलक वणाव करिनें भात भातरा आभूषण पैहरीया छै । जितरै मारवणीजीनें वेळा लागी जाणी । तारै मीमा भाटणीनु कह्यौ । जावो वाली वार्हनें लेने ढोलैजीसु रामत करावो । तारा सहेलीया भेळी होयनें ढोलैजी कने रमावणनें ले गया । पाछै ढोलैजी कहै ।

दूहा

वालहा कावे दतड़ा, हीरा हारा वृत्र ।

जो थे मारु परण घर, तो थे आभो पत्र ॥७५॥

वारता

वितरा माहे मारवणीजी विलत्र करता पान बीड़ा आरोगता सहेलीया संघातै आवण लागी ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५३७ और ५४० नंबर के दूहे हैं ।]

वारता

मारवणीजी ढोलैजा कने आयनें मुजरो कीयो । तारै ढोलैजी पिण आदर सनमान दे मेलीया । मारवणीजी पुण्य(१) ल होयनें कह्यौ ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५३१ और ५४२ नंबर के दूहे हैं ।]

आज भला दिन उगीयो, ग्रहपति गयो सुभ गेह ।

सुपने मिलती सल पिव, सो दीठा नयरोह ॥८०॥

[इसके आगे मूल का ५२६ नंबर का दूहा है ।]

सजन मिलीया हे सषी, दीहाड वळीयाह ।

संजोगी जस सजना विजोगी टळियाह ॥८२॥

[इसके आगे मूल के ५०४ और ५४१ नंबर के दूहे हैं ।]

सजन मिलीया हे सषी, कासुं भगत करेस ।

अहिरां कहिरां पयोहरा, रमता आड न देस ॥८५॥

घन आजूणो दीहडो, घन आजूणी रात ।

कुंवर रिव ज्युं सुरकळा, अविचल राजै अति ॥८६॥

ढोलो रूप अनगमें, मारु रित अवतार ।

मिलीया वेहु रँग महल, कुमरी राजकुमार ॥८७॥

वारता

तद सहेलीयां मारवणीमें रमावणनुं आई हुती । त्यां कह्यो राचवाईरो मुष जोवाडो । तारै ढोलोजी घुवटो जंचो करनै कह्यो देघो ओ मुख छै । पछै ढोलोजी पिण देपण लाग़ा तद मारवणी मुळक्या । पिण ढोलैजीसुं भर निजर सारुहो जोवणी न आयो । तद ढोलोजी कहै ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५४६ और ५४८ नंबर के दूहे हैं ।]

वाता दुहा विलवीया, आछी विरहो न पमाय ।

कुसळ पछै ही पुञ्जा, टुक एक प्रेम चपाय ॥६०॥

[इसके आगे मूल का ५५१ नंबर का दूहा है ।]

[नोट—यहाँ इस प्रति का १३४वाँ पत्र नष्ट हो गया है ।]-

वाग्ता

तारै ढोलोजी बोलीया, म्हाने तो भो कोई नहीं । नै करहो पिण हसो छै तिको पोहचवा देवै नहीं । तारै पिणळ राजा कह्यो । भला एक मजल तो म्हारो साथ ले जावो । तारै ढोलैजी कह्यो, प्रमाण । तद पिणळ राज मुकळावारी साथरी तयारी करण लागो । घणा हाथी घणा घोडारथ पालषी दीघा । ढोला-र्जानै पिण ऋडा मोती जनेऊ किलगी अमोलष वसता दीघी । मारवणीनै तात वीसी सहेलियाँ, एक एकसुं चढती रूप कळामें इसड़ी ही, सो दीघी । कुंमारों साथ पोहोचावणने विदा कीयो । मारवणीजी रथ माहै बैठा छै । सहेलियाँ पिण साथ छै इण तरैसुं ढोलोजी सीप करने असवार हुवा । पछै, एक मजल तो साथ समेत पडाव घाय कीयो । पछै, कुमरानु (सीप) दीघी । कुमरा पिण ढोलैजीसुं मुजरो फाने सीप कीघी । पछै आप आप आघा घडीय सो पुगळधी फोस वीस ऊपरै आया । पछै एक थळ माथै पाणी देखनै उतरीया । तंबू डेरा पढा कीया । पापती सिरदारंगे साथ उतरीयो छै । पछै ढोलोजी ने मारवणी ढोलैजीयं पोढीया छै । तिण समें मारवणीजीरे वासना कन्वूरी सरीपी वास रही छै । विहुँ जणा सुपमे पोढीया छै ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ६०८ और ६०० नंबर के दूहे हैं ।]

वारता

तितरै परमात हुवो नै ढोलोजी जागीया नै मारवणनै वतळाया । तारा चोली नहीं । जद मरण जाणनै ढोलोजी चमकीया नै कहै ।

सोरठा

[इसके आगे मूल का ६० ँ और ६०० नंबर का दूहा है ।]

वारता

पछै सहेलीया नें ढोलैजी साद कीघो । सषीया दोड़नें तुरत आई । देखै तो मारवणीजी मुवा निजर आया । सहेलीयाँ कहै छै ।

[इसके आगे मूल का ६०६ नंबर का दूहा है ।]

ढोला वायक

[इसके आगे मूल का ६१० नंबर का दूहा है ।]

घण धूण वाता करी, वार विचारै सद ।

तिण वेळा तिण छोकरी, सरळो कीघो सद ॥१६॥

[इसके आगे मूल का ६११ नंबर का दूहा है ।]

वारता

तारै ढोलैजी कह्यो, थे तो गरे पधारो । म्हे तो मारवणी लारे जीवत काठ लेसो । तद ढोलैजी काठ मेळो करनें आरोगी चिणाई । पछै लापो दैणरो हुकम कियो । तिण समें श्री महादेवजी पारबतीजी आय नीकळया । तारै श्रीमहादेवजी कह्यो, अरै तो ढोलो मारवणी दिसै छै । पिण मारवणी मुई छै । तारै ढोलोकुवर सत करै छै । तारै पारबती बोली । महाराज आप तो तें पधारीया छो । तो मारवणी मरण न पावै । इतरी अरज पारबतीजी महादेवजीसुं कीघी । तारै महादेवजी ढोलैनुं कहण लागा । जो तु उलटी रीत मतां कर । अस्त्री लारै पुरुष कदेई बळ नहीं । आरोगी माहेसुं परो उठ । तारै ढोलोकी महादेवजीनें कहै ।

दूहा

ते हुंता ढोलो तवै, कुडी गल्लु म कय ।

हुवै तो जिवणो एकठो मरणो मारु सथ ॥

वारता

पछै महादेवजी इमृतरो छाटो नाबीयो । सचेत कीवी । पछै महादेव पारबतीजी अलोप हूवा । पछै मारवणी सचेत होय नें बैठा छै । पछै सीर-दारानें सहेलीयांनें ढोलैजी सीष दीघी । ढोलोकी नें मारवणी करहै चढनें हालीया । पछै उमर सुमरांरो साथ आडावळारो घाट रोकनें बैठा छै । ढोलोकी पिण उणहीज मारग षडै छै । पिण मारवणीजी बोलीया । कुंवरकी राज, अरै तो मारग माहा भुंठा निजर आवै छै जिणसु वीजो मारग लो तो

भलो छै । पछै ऊमर सुमरारै साथ ढोलोजीने श्रावता दीठा । पछै उमर-सुमरा विछायत कराई । मुँहड़ा आगै डुंवड़ा गावै छै । तारै ढोलोजी साथ वैठो देपनें मारगसुं टळीया । तारै उमर पॉच सै श्रसवारासुं आडो श्रायने फिरीयो, ने बहो, कुमरजी, आळगा फाय नीसरो ! आत्रो वड़ी एक तो श्रमल पाणी करने भेळा बैसा । पछै थारे मारग जावो ने म्हें म्हारै मारग जासां, युं कहिनें ऊंमर ढोलोजीरो करहो बानडोर भालनें जैकीयो । ऊँठरी म्होरी मारवणीनें भनाई । ढोलोजी उमररि पापती जानम ऊपरै जाय वैठा । तारै उमर बाणीयो, ढोलोजी हिवै माहरै सारू छै । पछै उमर श्रापरा सिरदारानें सेंन करने समभावरण लागा । जे ढोलोजीने श्रमल पाणीसुं छिकावनें मागे । उमर बहो, ढोलोजी, दारू पीवावै । ढोलोजीरै नाकारो करणरी आपड़ी छै । पछै ढोलोजी दारू श्रमल पीवण लागा । तद मोसर देखने मागणहार कहै ।

दूहा

पीहर हटी डुंवणी, राग श्रलापै तेण ।

ढोलो मारू ऊगरै, कहि समभावे वेण ॥१६॥

[इसके आगे मूल का ६३१ नंबर का दूहा है ।]

वारता

बीजो तो साथ सगळोई छीकीयो । ढालोजी पिण छिकड़ लागा । मागण-हारदी वउ मागणहार तारै गावती थकी कहण लागी ।

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३२ नंबर का दूहा है ।]

वारता

साथ सारो ही छिकीयी हुतो तिणसू कोई समज्यो नहीं नें मारवणी चिंता करण लागी । वळ मागणहारी बोली ।

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३५ नंबर का दूहा है ।]

करहौ कस्तूरी लदीयो, ऊपर भीणी लोय ।

साथ सदीता सुमरा, जो निरवाहु होय ॥

वारता

पछै मारवणीजी कहानें काव वाही नें करहो चमकनें भागो । तारे उमर जाणीयो, करहो जाण पावै नहीं । पछै रजपूतारो साथ करहौ भालणनें उठायो । ठाकुरे करहां थारे हाय न श्रावै । औ तो कंवरजीरो

ई ज वेसास करै छै । तद उमर बोलीयो, ढोलाजी करहो भालो । तद ढोलाजी उठनें करहानें पकड़न लाग़ा । तद उमर बोलीयो । ऊंठारै नेडा रहिजो । तिण समें मारवणीजी पिण ढोलाजीरै लाहरें ई ज हुवा । ढोलैजी जायनें करहौ भालीयो । तारै मारवणीजी जाणीयो नें क्ह्यौ, भोळा सिरदार दुसमणारा चित्या वयु करो छो, अठासु चढने षडो तो भला छै, नहीं तारा क माथै चूक छै । तारै ढोलैजी नें मारवणी करहानें पकड़नें असवार हुवा ।

दूहा

मारु चढती मारीया, दोय नैणाकै बाण ।

साथ ईति राय सुमरो, पडीयो जाण पठाण ॥२४॥

[इसके आगे मूल का ६३६ का दूहा है ।]

वारता

तारै लारांसु उमर-सुमरे 'जाय जाय' करनै लारै हुवा । क्ह्यौ, जो ढोलो जावण पावै नहीं ।

दूहा

करहौ कथ कुवेरीया, सुगणी मारु संग ।

वासै उमर सुमरौ, ताता षडै तुरग ॥

वारता

तारै उमर बोलीयो । ठाकुरे निकोई ढोलैनें पकड़ै जिणानुं आधों राजपाट देखै । नें वेटी परणाऊँ । तीसरै ढोलैजीरै नें उमर-सुमरैरै कोस चाळी सरो आतरो पड़ गयो । तिसरै मारग माहै ढोलैजीने चारण मिलीयो । क्ह्यो जे ठाकुरा, उठ षोडावै नें वेऊँ जणा ऊपर चढोया । सो इसो करहामें कासूं षून छै । तारै ढोलैजी छुरी कमर माहा काढनें दीनी । तारै चारण उंठरै पग माहा वाढलो काटोयो । उंठ न्यारूँ पगा हूवौ । उ वाढलो चारणनें दीयो । जो थाने उंमर मिलै तो वाढलो देषाळजो । ढोलैजी चारणनें पचास मोहर दीनी । क्हो ।

दूहा

ढोला जे थल लधीया, दोहरा नें दुरंग ।

कहजे उबर सुवरनुं मत्त मारजे तुरग ॥

वारता

चारणनें सीष देनें आधा षड़ीया । चारणनुं उंमर बीजै दीन मिलीयो । तारै चारण वाढलौ देषाळीयो । सगला ही सहिनाण बताया ।

चारण वायक

[इसके आगे मूल के ६४८ और ६५० नंबर के दूहे हैं ।]

वारता

उमर तो चारणरै करै पाछा बळीया । मुँहडो भुडो करने आपरै टिकाणो गया । तितरै साम्क हुई, ढोलोजी घरे आया । राजाजीरै पाए लाग़ा । राजाजी मारगरा समाचार पुछीया तारै ढोलैजी सारा ही कह्या । नितरा माहै रात पोहोर गई । तारै कह्यो, ढालाजी ये थारै म्हेल जाय पोहटी । तितरै ढोलाजीनें माहै वधारनें लोधा, नें कुलदेवीरी पूजा कीधी । मातारै पाए लागी (? गा) मारवणी पिण सासरै पावा लागी । सारा-ही साथसु पावा लाग़ा । बग्गा उछाह हरष हुवण लाग़ा । मारगरा समाचार पुछ्या । कटो । जायो सोय रहो, रात घणी गई छै । तारै ढोलोजी माहि पनारीया, सहेलीयो हथियार घोलाया । फुल्ले कुमकुमाग पाणीस मजण सिनान कराया । मालवणीये मारवणी हजूर तेड़ीया । तारै माहिलो राजलोक भाषवा लागो । माहिलो राजलोक समाचार सुणै छै । माळवणी समाचार पुछै छै । ढोलोजी कहै । एक वाणीयो मिलीयो । एक एवाळ मिलीयो । फेर लुणपाळ में डु (म) मिलीयो । पीवणो साप पावी । तारै महादेव पारवती मारवणीनु जीवाड़ी । तिके समाचार सारा ही कहीया । माळवणी सामळीया । राजलोक साग सी सामळीया । तितता माहै माळवणी मारवाडनें निदण लागी ।

दूहा

ढोला, मारु देशमें, पाणी नीठ कढाय ।

भलो अमीणो देसडो, सेवज, जळ पीवाय ॥ १ ॥

[इसके आगे मूल के ६५६, ६५५, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं ।]

वारता

श्रीतरी वात माळवणी कही । हमै ढोलोजी उतर देवै छः ।

[इसके आगे मूल का ६६६ नंबर का दूहा है ।]

दूहा

माळवणी ढोलो कहै, सुज मन दाषां सच ।

मारु मिलीयां ध्रित हुई, उर सगळा जग साच ॥

मारवाणी वायक

दूहा

बाबा म देई माळवै, जिहां छे पुरुष कुरूप ।
 ऊघड़ पेट घण षऊ रोगीला कुमीठ ॥
 बाबा म देई माळवै, जिणरा पुरुष मजुर ।
 घर वैठां हुकम करै, मॉणस नहीं ते मूढ ॥
 बाबा म देई माळवै, जिण देसे कुरूप ।
 जव मकीरो षावणो, माणस नहीं ते मूढ ॥

ढोला वायक

[इसके आगे मूल के ६७०, ६७१, और ५५४ नंबर के दूहे हैं ।]

इति श्री ढोला मारुरी बात संपूर्ण ।

श्रीरस्तु । श्रेयं सुषकारी पुत्रपौत्रकारी वाचै सुणै सो कलपवृत्त
 नों फळै । श्री ।

(च)

[यह प्रति बोगपुर की सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी में वर्तमान है । इसका लिपिकाल संवत् १६६६ है । इसका पाठ अत्यंत शुद्ध है । इसमें बीच का एक पत्र नहीं है जिससे कुछ दोहे नष्ट हो गए हैं । इसमें कुशललाम की चौपाइयाँ भी हैं । आगे जहाँ पर × × × ऐसा चिह्न है वहाँ इस प्रति में कुशललाम की चौपाइयाँ हैं जिनका पाठ (य) प्रति से बहुत कुछ मिलता है । टिप्पणी में (ऋ), (ञ) तथा कहीं कहीं (छ) प्रति के पाठांतर दिए गए हैं ।]

ढोला मारुई चउपई ।

श्रीसारदाई नमः

सकळ सुरासुर सॉमिनी, सुणि माता सरसत्ति ।

विनय करीनइ वीनबुँ, मुझ टिड अविरळ मत्ति ॥ १ ॥

जोतों नवरस एणि युगि, सविहुँ धुरि सिणगार ।

रागइ सुरनर रंजीयइ, अबळा तसु आघार ॥ २ ॥

वचन विलास विनोदरस, हावभाव रति हास ।

प्रेम प्रीति संभोग रस, ए सिणगार अवास ॥ ३ ॥

गाहा गूढा गीत गुण, कवित कथा किल्लोल ।

चतुर तणा चित रंजवण, कहइ कवि किल्लोल ॥ ४ ॥

१—सरसत्त मात पसाव कर, टे मो अविरळ मत्ति ।

भोगी भमर भुवाळ जे, गुण गाऊँ तसु मत्ति ॥ (ऋ)

२—नरवर इण जुगइ (ऋ)=नवरस...युगि । सब (ऋ) । धुर (ऋ) रंजीये (ऋ) ।

३—रति (ऋ)=रति । कै (ऋ)=ए । आवास (ऋ) ।

४—रस (ऋ)=गुण । किल्लोल (ऋ) । मन रींभवैः (ऋ)=चित रंजवण । कर्दीया (ऋ) किल्लोल (ऋ) ।

गाथा

मणहर नवरस मञ्जे, सुंदरि नारीण सरस संबधा ।
 निरुवम कविह ति (१ नि) वद्धा, सुण तुं सयणा जणा सुगुणा ॥ ५ ॥
 नळवर नयर निरिंदो, नळराय सुउ सल्लकुमर वरो ।
 पिगळराय सुधूया, वनिता मा (र) वणि वर्णविसु ॥ ६ ॥

कवित्र

षाणी पंथउ पवंग खंग चंगउ खुरसाणी ।
 विज्ञानगरी वल्ल, एक विण सुर सिरखाणी ॥
 पट्टकूळ पट्टणी, देस भोगी घर दक्षण ।
 कुंजर कदळी खंडि, विप्र तिरुहती विचक्षण ॥
 तिम चंद्रवदन चंपकवरण, दंत भवक्कह दामिनी ।
 सारंगनयण संसार इणि, मणहर मारू कामिनी ॥ ७ ॥
 मुरघर देस मभारि, सयळ धणा-धन्न-समिद्धउ ।
 नामइ पूगळ नयर, पुहवि सगळइ परसिद्धउ ॥
 राव करइ रमिराह प्रगट पिगळ पृथवीपति ।
 प्रतपइ जसु परताप दान जळहर जिमि दीपति ॥
 देवडी नामि उमा घरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि ।
 चउसठि कळा सुंदरि चतुर, कथा तास कहिसुं सुपरि ॥ ८ ॥

× × × ×

दूहा

गिरि अठार आवू धणी, गढ जालोर कुरंग ।
 तिहाँ सामंतसी देवडउ, अमली माण अभंग ॥
 × × × ×
 चंदवदणि चंपकवरणि, अहर उळत्ता रंगि ।
 खिजरनयणी खीणकटि, चंदन परमळि अंगि ॥३१॥

५—निरुवम कहे निबंधा (क)=निरुवम...वद्धा । सुणत ।

७—पंथ तुरंग (क)=पंथउ पवंग । खग (क) । बीजानगर सहस्रत
 निरमळ गंगानो पाणी (क)=विज्ञानगरी...खाणी । धुर दक्षिण (क) ।
 विपरीति नीति (क)=विप्र तिरुहती ।

८—धान (क) । रिरिणिराह (क) । तपंतौ (क)=पृथवीपति ।
 दीपंतौ (क)=जिमि दीपति । मरुवणि (क) ।

३१—प्रीण (क)=स्त्रीण । कोमल नेत्र कुरंग (क)=चंदन...अंगि ।

अति अद्भुत ससार यण, नारी रूप रतन ।
 अछइ जमा देवडी, कुमरी कचनवन्न ॥३२॥
 जउ तुम सारीखउ जुडइ, भामणि तुम भरतार ।
 तउ जोडी जुडि धान्ह ज्यु, जउ मेळइ फरतार ॥३३॥

× × × ×

जेसळनइ पिगळ कहइ, करि आपण परियांग ।
 एकणि दिन माहि देवडी, जिम आवइ इण वाणि ॥१०३॥
 साचउ छोरु तउ चही, तुँ सेवक, हूँ म्वांमि ।
 आगइ ते परणावियउ, करि हिव एतउ कॉमि ॥१०४॥
 सोवनगिनिहूँ चिहूँ दिसइ, रुधा मारग वाट ।
 पंथी कोइ पूगळ तणउ, वहे न सकइ वाट ॥१०५॥
 कटकी जउ आपे करौं, सउ रोसावइ राय ।
 साँमतसी रुढइ थकइ, वधि न वइसइ वाय ॥१०६॥
 वचन सुणी राजा तणउ, जेसळउ कीयउ प्रणॉम ।
 तउ हूँ छोरु तापरउ, जउ ए सारुँ कॉम ॥१०७॥

× × × ×

सुणी वात रिणववळ सहि, काळउ थयउ कुमार ।
 पाटिण पहुतउ आँपणइ, आरति करइ अपार ॥१२०॥
 पाछइ साँमतसी सुपरि, मोटउ करि मंडाण ।
 उमादेरउ ऊभणउ, इण परि चढचउ प्रमाँणि ॥१२१॥

३३—सारखी (क) । जोडी राही (क) = तउ जोडी जुडि ।

१०४—तइ (क) = ते । वळि (क) = हिय ।

१०५—हेरा कीया (क) = हूँ...दिसइ । रुध्या (क) । को (क) = कोइ । वही (क) ।

१०६—आपौं (क) । तउ मति रुसइ (क) = सउ रोसावइ । चाच-कटे (क) = साँमवसी । काय (क) = वाय ।

१०७—जेसळि कीय (क) । हुँ (क) । जइ (क) । सारउ (क) ।

१२१—पाछिइ । चाचिगटे = साँमँतसी । मोटइ । मंडाणि । इणि । चढिउ । प्रमाण । (क) ।

पटराणी पिगळ तणी, अपळरनइ अणुहारि ।
 अळइ उमा देवडी, सुंदर इणि ससारि ॥१२२॥
 सुंदरि सोळ सिंगार सजि, सेज पधारी सॉंभि ।
 प्राणनाथ प्रीतम मिलउ, उ सरि बइठउ हस ॥१२३॥
 अद्भुत रूप असंभ, जगि जोगी इणि परि कहइ ।
 राणी पति.....भा, कहीयउ एम कवी सरइ ॥१२४॥

सोरठा

प्रीयसुँ अधिकउ प्रेम, रयणि दिवस रगय रमइ ।
 मोह(उ) मधूकर जेम, कुस्सम जाणि कतक तणाय ॥१२५॥
 माथउ घोइ मेटि, उभू सूरिज साँमुही ।
 तउ ऊपन्नी पेटि, मोहणवेळी मारई ॥१२६॥

दूहा

भूपति भाऊ भाटनइ, कीधउ कोडि पसाउ ।
 चाल्यउ नळवरगढ भणी, प्रणमी पिगळराय ॥१२७॥
 × × × ×
 वरस दउढ वउळ्या जिसइ, तिसइ देवन बुठउ देसि ।
 खड पाखइ सवि लोक खडि, वसिवा गया विदेसि ॥१२९॥
 मारु कोइ देस माहि, एक न जाइ रिडु ।
 कदही होइ अवरसणउ, कइ फाकउ कइ तिडु ॥१३२॥
 पिगळ परियण पूछीयउ, कीजइ त्रेवड काय ।
 काई सु ठाम ज अटकळउ, जेथि वसीजइ जाइ ॥१३३॥

१२२—ऊमा (क) ।

१२३—सेजि । संभि । मिल्यउ । उरसरि । वयठउ । (क) ।

१२४—अद्भुत । जोई = जोगी । जपइ=कहइ । परतधि=पति..... । कहियौ
 ए अद्भुत कथन । (क) ।

१२५—प्रय । रयणी । रसि=दिवस । रंगइ । (क) ।

१२६—घोयउ । तिहाँ=तउ । चंपावरुणी=मोहण वेळी । (क) ।

१२७—कीया=कीधउ । राउ=राय । (क) ।

१२९—घउढ वउळा पळे=दउढ.....जिसइ (क) ।

१३२—मारिवाडिके देसमें=मारु माहि । पीड=रिडु । कवही मेह वरसै
 नहीं का फाका कै तीड । (क) ।

१३३—कीजै । त्रेवड = त्रेवड । जु ठाम । अटकळी । (क) ।

बलखड कारणि खोजीया, देसे दोऊ दरवाँन ।
पहुकर खड पाणी प्रवळ, पिंगळ सुणि राजाँन ॥१३४॥

× × × ×

इणि श्रवसर घण उन्हयउ, प्रगट पावस मास ।
पासइ पिंगळरायनइ, फीयउ उतारे तास ॥१५४॥

उनमीयउ उतर दिसइ, गयण गरजइ घोर ।
वह दसि चमकइ दामिनी, मंडइ ताडव मोर ॥१५५॥

च्यारि मास निश्रळ रखा, सरवर तणइ प्रसगि ।
पिंगळनइ नळ भूपती, मिळीयउ मानइ रगि ॥१५६॥

× × × ×

जदिकी चाई मारुवणि, तत्रका बोलया बोल ।
पिंगलरायरी मारुई, नळगजारउ ढोल ॥२०४॥

आषइ उमा देवडी, बाल्लम, हीयइ त्रिचारि ।
मनइ सिकोडी मारुवणि, दीन्ही समुटाँ पारि ॥२०५॥

कंता, श्रणदीठइ कुँवरि, फीयउ नातरउ फाँ ।
पटराणीनइ पिउकहइ, जीहाँभिरिज्यो तिहँचाइ ॥२०६॥

× × × ×

माळवदेस महीपती, भीमसेन धूपाळ ।
मालवणी धूय तसु तणी, सुंदरि अति सुकमाळ ॥१८६॥

परधाने नळवर तणे, मागी घणइ मँडाणि ।

जोतों जोढाव्यउ बज्यउ प्रीति चढी परिमाण ॥२६०॥

१३४—सोकीया । देस प्रदेसे जाय=देसे० दरवाँन । साँ-ळ पिंगळराय=सुणि० राजाँन । (क) ।

१३४—ऊम्ह्याँ । प्रगट्यौ । फीयो राय तिहँ वास । (क) ।

१३५—मडे तडव गिर मोर । (क) ।

१३६—नळराइ=नळ नळ । मिळीया मन में रँग । (क) ।

२०५—चात समंदा पार (क)=दीन्ही० ।

२०६—पाउ पटराणीनु कहइ (क) ।

भीमसेन परणावीया (?), नळराजा परधान ।
नळ नंदनसुं नातरउ, मिलीयउ मनि बहु माँनि ॥२६१॥

× × × ×

सॉभ समइ सउदागिरी, आप तणइ उतारि ।

वइठी गउखइ तिणि समइ, नयणे निरखी नारि ॥३०१॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८६, ६० और ६१ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६, १८६ और १६० नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के १८, ३४, ४६, ४५, ६०, ६२, ६४, ६५, ६६, ६६, ७०, ७१, ७२, ५३ और ६७ नंबर के दूहे हैं ।]

कउआ म चुणि कठंजरइ, उडे नरवरि जाउ ।

लेउ हमारी पॉसुळी, लोभी देख च (?त) खाउ ॥३३२॥

[इसके आगे मूल के ७५ और १६७ नंबर के दूहे हैं ।]

नाही नयण समारीया, उरि आरी सु लेइ ।

द्रठि लगेसी मारुई, क्युं क्युं जितन करेइ ॥३३५॥

नाहे घोए नख रँगे, नयण करे निन्न बाँण ।

जिणि दिणि सजण प्राहुणा, तिणि दिनि तें परियाँण ॥३३६॥

[इसके आगे मूल के ७३, ७४ और ६८ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ५१, ५५, ५६ और ५४ नंबर के दूहे हैं ।]

क्रुंभडीयाँ कळिअळ कीयउ, सुणी उपंखइ वाइ ।

ज्याँकी जोडी वीछुडी, त्याँ निसि नीद न आइ ॥३५६॥

[इसके आगे मूल का ५६ नंबर का दूहा है ।]

सहु प्रीतम सदेसड़ा, मारवणी कहियाँह ।

माता मन महि जाणीयउ, विरह वियापि थियाँह ॥३६१॥

[इसके आगे मूल के ७६, ८०, ८१, ८२ और ६६ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

३३६—(छ) पाठांतर—नव रंगे ।

३६१—(ज २४८) मारवणी । विलाप ।

(इसके आगे मूल के १०३ और १०४ नंबर के वूहे हैं ।)

तीर्यौनह वागा वितजइ, वारु दीजइ ग्रास ।

• सीख लेई पिगळ फन्हा, आव्यउ मारु पासि ॥३८३॥

(इसके आगे मूल के १०६, ११३, ११४, ११८, २०२, २०३, २०४, २०५ और १६ नंबर के वूहे हैं ।)

नामि सुकौमल कमळ मुख, वील सु सीतळ गच ।

तिणि फाटमि पुत्र (ठ) विग्ही, मन मयगळ मयमत्त ॥३९२॥

(इसके आगे मूल के १३५, ४२२, १५५, १४८, १४७, १४६, १५०, १५१, १५३, १४४, १४५, १५६, ११६, ११५, १२०, ११७, १३५ (दुवारा) ११८, १२१, १२२, १७७, १३६, २०६, १४६, १३८, १३६, १४२, १४३ और १५७, नंबर के वूहे हैं ।)

ढोला तो मारु विज्जळी, खानो फालु साप ।

योवन थामु रूठि चल्या, ढोला रखा चित लाइ ॥४२१॥

(इसके आगे मूल का १४४ नंबर का वूहा है)

सदेसउ जन पठवइ, यौही त्यौही साथि ।

एकसउ मिलि जाइ नई, कपडीयौरइ साथि ॥४२३॥

(इसके आगे मूल के १४३, १११, १६६, ४८६ और १८२ नंबर के वूहे हैं ।)

पंख पसारण जग भमण, फह्या सँदेसा भइ ।

तीर्यौ सँदेसौ तीर्यौ माणसौ कदि हुँ जोबुँ वइ ॥४२६॥

ढोलउ चलुँ करइ, पलार्णिया केकाण ।

कइ जाणइ कुण चालिखी, पहिला प्रीयु कि प्राण ॥४३०॥

(इसके आगे मूल का १०८ नंबर का वूहा है ।)

× × ×

ए माणस तिणि पाठव्या, सालइकुमर तुम्ह कालि ।

मालवर्णायी वीहता, मई मेळवीया आन ॥४४७॥

मारुवर्णायी सइमुखि फह्या, दूहा मिसि सँदेसि ।

वउ मारु मिलित्रा करइ, तउ पघार उणि देसि ॥४४८॥

३८३—(ज २७०) तियां । वंतिने । दीया ब्रह्म ।

४२६—(ज २६८) भाट । सदेसां तिण माणसां=तीर्यौ... वाट ।

४३०—(ज ३१५) तिण । काज । सुं=थी । वीहतां ।

४४८—(ज ३१६) संमुख । मिस । सदेस । करो । उण ।

सइमुषि ढोलइ पूछीयउ, मारु - तणउ वृतांत ।
 ढोलउ त (? न) इ भाऊ बिन्हइ, वइसारी एकांति ॥४४६॥
 भाटे मारुवणी तणे, वारु कल्या वर्षण ।
 मारु जिण निरखी नहीं, जनम तीय^१ अप्रमाण ॥४५०॥
 भाऊ ढोलानइ कहइ, फीजइ सीख पसाउ ।
 इयॉरी वाट उतावळी, जोवइ पिंगळ राउ ॥४५१॥
 जउ ए मोड़ा जाइस्यइ, तुभ पाखइ संदेसि ।
 तउ मारुवणी कुँअरी, पावक करइ प्रवेसि ॥४५२॥
 × × ×
 सदेसा सहि सविगता, कहीया तिहाँ सँभाळि ।
 मालवणीहूँ संकतउ, सीख दीयइ ततकाळ ॥४५८॥
 भाऊ भाट संदेसडेउ, दिसि सयणा कहीयाँह ।
 ढोलउ मारु अळजयउ, साई दे मिळियाँह ॥४५९॥
 वीरासीयाँ विरुओ कीयउ, रखे एम म करेज ।
 ढोला तणा सँदेसड़ा, अळगा थका कहेज ॥४६०॥
 अहजउ भौजउ एम, ढाल घण ऊमाहीयउ ।
 पंछ विहूणउ प्रेम, मन सीचाणउ भडपसी ॥४६१॥

[इसके आगे मूल के २१३, २१४ और २०१ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

४४६—(ज ३१७) सँमुखि । पूछीया । तणा । वृतांत । नै=तइ ।
 वेसात्या ।

४५०—(ज ३१८) भाटें । मारवणी । तणा । वयु वर्णव्या=वारु
 कल्या । तिहाँ=तीय ।

४५१—(ज ३१९) पसाव । राव ।

४५२—(ज ३२०) जाइसी । संदेस । सही मारु माननी=मारुवणी
 कुँवरी । करिस्यै । प्रवेस ।

४५८—(ज ३२६) सुं=हूँ । संकतै । दीधी ।

४५९—(ज ३२७) दिस । उळजयो=अळजयउ ।

४६०—(ज ३२८) वीरास्यां । विरो । रखे । एम=एम म । तणो ।
 संदेसडो । अळगां थकां ।

४६१—(ज २२९) अलजउ । भाजै । ढोलो । भरि करि मूठि उढाय=
 पंछ...प्रेम । सीचाणा । जेम तूं=भडपसी ।

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६ (पंक्तियों का क्रम उलटा है), २२७, २२४, २२५, २३०, २३१, २२८, २२६, २३२, २३३, २३६, २३८, २३९, २४०, २३७, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५६, २७०, २६१, २६२, २५७, २६३, २५२, ४७, ४८, २५३, २७३, २७५ और २७७ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २७६, २८१, ३७०, २८०, २८३, ३०४, ३०५ और ३०७ नंबर के दूहे हैं ।]

प्यारी प्रीतम पहिलकी, सकइ तउ मन मॉहि आणि ।

आधी रातइ रे पिसुण, किसी पलाणि पलाणि ॥५२७॥

[इसके आगे मूल के ३०८, ३११, ३१२, ३१३, ३४३, ३१६, ३२२, ३२३, ३१७, ३१८, ३२०, और ३२१ नंबर के दूहे हैं ।]

करहा मालवणी कहइ, सभलि बोल्य सच्च ।

तातउ लोहउ ताहरइ, वयण न लागो जच्च ॥५४०॥

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३३३, ३३५, और ३३६ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

इसके आगे मूल के ३४५, ३४८, ३४९, ३५३, ३६३, ३६८, ३६९, ३७८, ३७६, ३६२, ३८४, ३८५, ३८१ और ३८६ नंबर के दूहे हैं ।]

ऊ सरवर हू पदमिनी, हू जउ करहुउ जाइ ।

पूगळ जाइ प्रगटीयउ, करइ मारवणी दाइ ॥५६३॥

[इसके आगे मूल के ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३७५, ३७७, ३९७ और ३९९ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ४०२, ४०५, ४०६ और ४०७ नंबर के दूहे हैं ।]

[इसके आगे मूल के ४२६, ४२७, ४२८, ४३२, ४३०, ४३३, ४३४ और ४३१ नंबर के दूहे हैं ।]

५२७—(ज ३८२) प्रीत=प्रीतम । पिसुँण ।

५४०—(ज ४०७) सांभळ बोलां । लोह । तणावसी=ताहरइ । वपि लागै तो वच्च । (छ) बोले । लोहद । सच्च=वच्च ।

जे ही चीना करहला, नीळी लुंब लहक ।
ते पणि जो लंघन करइ, मरइ न चरही अक ॥६०१॥

[इसके आगे मूल का ४२४ नवर का दूहा है ।]

पिंगळ राजा रुसिविउ, चारण फाई चाड ।
साल्हकुअर वव उलष्यउ, तव बोलायउ माडि ॥६०३॥

[इसके आगे मूल के ४४२, ४४४ और ४४५ नवर के दूहे हैं ।]

इक संघाती पंथ सिरि, जोअइ करहा वाट ।
ढोला चलवउ देषि करि, तिणि मनि थयउ उचाट ॥६०६॥

× × × ×

[इसके आगे मूल का ४५० नवर का दूहा है ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ४४६ नवर का दूहा है ।]

जो ये देषी मारइ, तउ अहिनाण उगट्टि ।
चंदा जेहइ मुखकमळि, केहरि जेहइ कट्टि ॥६१६॥
मारु आवी चउहट्टइ, गंधी केरइ हट्टि ।
हट्ट लूसायउ वाणीयइ, वळद गमाया सट्टि ॥६१६॥

[इसके आगे मूल के ४६४, ४७३, ४५६ और ४५७ नवर के दूहे हैं ।]

सदा उळंकी नाक सळ, भीणी लंक म जाह ।
दंडी सुता सप ज्युं, खंजी कटे सहाइ ॥६२१॥
दंडी सूता सप्य ज्युं, षंजी षघइ साह ।
तिणि षण अंदोहउ कीयउ, वीष न वळणे पाइ ॥६२२॥

६०१—(ज ४७२) चीनी । लुंब लहिक । जो घण=ते पणि । लंघण ।
अंत चरेवो = मरइ न चरही ।

६०३—(ज० ४७५) रीसयो । कोई एक = काह चाड । नें = वव
ओलष्यो । बोलीयो । वीवेक=माडि ।

६०६—(छ) एकरसों तो पंथसिर । वळतउ=चलवउ ।

६२१—(ज ४६२) उळकी । लंब मजीह । कटे । सीह ।

६२२—(ज ४६४) सूता दंडी । खधै खंजी । साहि । हिंदो । उं
कीयो । वीष चलयो जाहि ।

[इसके आगे मूल का ४७४ नवर का दूहा है ।]

इडम पडम वाणीयड, उथि न जापड जाइ ।

मारु सदा सुवास छुड, अंगइ तगइ सुमाइ ॥६२४॥

[इसके आगे मूल के ४८४, ४८५, ४७५, ४६०, ४६० (पाठांतर) ४७०, ४८२, ४६५, ४७१ और ४८७ नवर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६७, ४६८ और ५०० नवर के दूहे हैं ।]

पगरउ फटेकरउ, ढोली मेल्हे वग ।

ढीवा वेळा सचर, तड वाढे चारे पग ॥६४६॥

[इसके आगे मूल के ५२१ और ५२२ नवर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ५०६ नवर का दूहा है ।]

सारत संदारेइ, मोगो मास उ पत्राखीयड ।

अटीयड अचारेइ, जाणु ढोलउ आईयड ॥६५१॥

[इसके आगे मूल के ५०५, ५१२ और ५१३ नवर के दूहे हैं ।]

[इसके पश्चात् कुछ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं ।]

× × ×
.....न ।

मारु ढोलउ ऊगरइ, कहि समभीवा वन ॥७६७॥

[इसके आगे मूल के ६३१ और ६३२ नवर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६३३ नवर का दूहा है ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६३६ और ६४० नवर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६४८ नवर का दूहा है ।]

× × × ×

६२४—(ज ४६६) ओथि न । चंपो । जाय । सुभाय ।

६४६—(छ) पाठांतर—पगरी काढे कङ्करी । न तो=तड ।

६५१—(ज ५२०) सारस । भूगो । पत्रीलियो ।

इसके आगे मूल के ६५६, ६५८, ६५५, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६८, ६७० और ६७१ नंबर के दूहे हैं ।

चौपाई

यादव रावल श्री हरिराज, जोड़ी तास कतूहल फाज ।
.....॥

दूहा घण पूराणा घण्टइ, चोपाई वंघ फीयउ मइ पळइ ।
.....॥

सवत सोळह सचोतरइ, आपा वीज दिवस मन खरइ ।
जोड़ी जेखळनयर मभारि, वाच्या सुष पामइ संसारि ॥
संभळिसगुण चतुर गहगहइ, वाचक कुशळलाभ इम कहइ ।
.....

इति श्री ढोला मारुई चउपई संपूर्ण

१६६६ वर्षे काती सुदि ८ हि (? दि) न नागउर मध्ये श्री उपकेस-
गच्छे भट्टारक श्रीसिद्धिसूर स्वराणे शष्य (सूरिणः शिष्य) मेहा लिषतं
वाचनार्थ ।

कल्याणमस्तु । शुभं भवतु । श्रीरस्तु । श्री ।

(४)

[यह प्रति जोधपुर के श्री सरदार म्यूलियम में वर्तमान है। इसमें वाचक कुशललाभ की चौपाइयाँ भी हैं। इसका पाठ बहुत अशुद्ध और विकृत है। इसलिये मूल में इसके पाठांतर, और परिशिष्ट में इसका मूल देना उचित नहीं समझा गया।]

[इसका आरंभ इस प्रकार होता है—

श्री हरिः

अथ वारता ढोला ने^० मारवशीरी लिख्यते

प्रथम दोहा

सकळ सुरासुर सामिणी, सुण माता सरसत्त ।

विनय करेनै वीनवूँ, मूझ दौ अवरळ मत्त ॥ १ ॥

[अंत इस प्रकार है—]

गाहा सात सयँ ए परिमाँण, दोहानेँ चौपई बखाँण ।

जादव रावळ श्रीहरराज, जोड़ी तास कुवूहल फाज ॥

जेयण पर कवि मुख साँभळी, तिण पर में जोड़ी मन रली ।

दोहा घण पुराणा अळै, चौपाई वंघ कियौ में पळै ॥

.....

संवत सोळसे सचोचरै (१६०७), अखातीज दिवस मन पखरै ।

जोड़ी जेसळनयर मझार, वाचें सुख पों (? पाँ)में संसार ॥

संभळ सगुण जुतर गहगहै, वाचक कुशललाभ इम कहै ।

ऋद्धि वृद्धि सुख संपति सदा, संभळता पामें संपदा ॥

इति

आ परत बिणामें वात कुशलचंद जती बनायोड़ी छै । पैहला ढोला-मारवशीरी वात छै तिणामें वारता नेँ दोहा छै । इण कवी जती संवत् १६०७ में जेसळमेर रावळजी हरराजकारै विनोदार्थ दोहा और वारता तिके चौपाई वंघ आपरी उक्तीसूँ कीया है । तिणारौ स्पष्ट लिख दियौ है कै म्हेँ रावळजी साहकारै विनोदार्थ पुराणा दोहा वे चौपाई वंघ किया है । पहली ढोला-मारवशीरी पुराणा वातरौ उलयौ कुशलचंद कियौ छै ।

(ज)

[यह प्रति पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी, जोधपुर, में वर्तमान है। यह (च) प्रति का अनुसरण करती है, पर इसमें नए दोहे भी अनेक हैं। इसके प्रथम ६ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। इसका लिपिकाल संवत् १७८१ है।]

ढोला-मारू-चउपई

दूहा

[आरंभ के १६८ दूहे-चौपाई नष्ट हो गए हैं।]

सांभू समें सौदागरें, आप तणह उतारि।

वैठा हसै तिण अवसरै, नयणो निरखै नारि ॥१६६॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८६, ६० और ६१ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६ और १८६ नंबर के दूहे हैं।]

बाँहडीयाँ रतनालियाँ, सहीयर ढोलनीयाँह।

वासी चंदन महमई, मारू लोवडीयाँह ॥२१२॥

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के २७, ३६, ३१, ३० (दूहा) २६, २८ और ३४ नंबर के दूहे हैं।]

बावहिया वाली भणों, हुंगर कइखे म रोय।

घाँ(?) श्रावण मुज सासरै, कोड न घ (?) जो कोय ॥२३०

[इसके आगे के मूल के १८, ६०, ६२ और ६३ नंबर के दूहे हैं।]

[यहाँ पृष्ठ ११ नष्ट हों गया है।]

नोट—जहाँ × चिह्न है वहाँ चौपाइयाँ हैं।

[इसके आगे मूल के १८, ६०, ६२ और ६३ नंबर के दूहे हैं ।]

[यहाँ पृष्ठ १ नष्ट हो गया है ।]

[इसके आगे (च) का ३३१ नंबर का तथा मूल के ७६, ८०, ८२ और ६६ नंबर के दूहे हैं ।]

X X X X

दृष्ट

[इसके आगे मूल के १०३, १०४, (३८३ च) १०६, ११३, ११४, १६८, २०३, २०४, १६, १८२, १३७, १३५, ४२२, १५५, १४८, १४७, १४६, १५१, १५४, १४५, १५६, १४६, ११५, १३६, १४६, १५७, १५८, २४४, १७२, (४२६ च) और १०८ नंबर के दूहे हैं ।]

X X X X

[इसके आगे (च) प्रति के ४४७, ४४८, ४४६, ४५०, ४५१ और ४५२ नंबर के दूहे हैं ।]

X X X X

[इसके आगे (च) प्रति के ४५८, ४५६, ४६०, ४६१ और के २०१ नंबर के दूहे हैं ।]

X X X X

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६ (पंक्तियों का क्रम टलटा है), २२७, २२४, २२५, २३०, २३१, २२८, २२६, २३२, २३३, २३६, २३८, २३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५६, २७०, २६१, २६२, २५७, २६७, २६०, २६८, २६३, २५२, २५३, २७३ और २७५ नंबर के दूहे हैं ।]

कागळ लिपि कुंकुं अथर, पाठवीयाः सेरोह ।

उर्धा रहने वाचीयो टपकटे नयरोह ॥ ३३५

[इसके आगे मूल का २७७ नंबर का दृष्टा है ।]

X X X X

[इसके आगे मूल के २७६, २८१, ३७०, २८३, २८४, २८५, ३००, ३०४, ३०५, ३०७, (५२७ च), ३४४, ३०८, ३११, ३१२,

३१३ जहाँ कोष्ठक में नंबर डेकर (च) लिखा गया है वहाँ समझना चाहिये कि वह दृष्टा (च) प्रति का है और मूल में नहीं लिखा गया है । उस दूहे को पगिष्ठ में (च) प्रति में

३१३, ३४३, ३१६, ३२२, ३२३, ३१७, ३२६, ३२८ और ३१८ नंबर के दूहे हैं ।)

टुंठो हुंठो डाभिजुं, वाधो भूख मरुंह ।

जावुं ढोलाजीरै सासरै, तो नागरवेळि चराह ॥४०४॥

[इसके आगे मूल के ३२०, ३२१ और (५४० च) नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३३३, ३३५, ३३६, ३४५ और ३४७ नंबर के दूहे हैं ।]

सोरठा

रण करहो ने रात बढो पुंन्य आगलो ।

खडीए एकण राति ढोलो धण उमाहियो ॥

[इसके आगे मूल के ३६४ और ३६५ न० के दूहे हैं ।]

दूहा

चिंता डायण मनि बसी, घण जिम तूटे खाय ।

कवहेक तो कटारिया कवहेक जीव ले जाय ॥

× × × ×

मार सरीखो बलहो, पहिली रचण काज ।

विरतौ पछै बलहो, चितथी हाली आज ॥

[इसके आगे मूल का ३८२ नंबर का दूहा है ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३४८, ३४९, ३६३, ३६८, ३६९, ३५७, ३८०, ३८१, ३७९, ३६२, ३८६, ३८७, और ३८८, नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

सारस के मिस पातरी, जाणुं करहो याय ।

देखे थल उपर चढी, जाण पंखेरु जाय ॥ ५३०

[इसके आगे मूल के ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ४१४, ४१५, ४१९, ३५५, ३९३, ३७५, ३७७, ३९७, ३९८, ४०१, ४०३, ४०४, ४०५, ४०९, ४११, ४१२, ४१३, ४१७, ४१८, ४२३, ३९९, ×, ×, ४०२, ४०६, ४०७, ×, ×, ×, ४२६, ४२७, ४३२, ४२८, ४३०, ४३३, (६०१ च) ४२४, (६०३ च) ४४२, ४४४ और ४४५ नंबर के दूहे हैं ।]

ढो० मा० दू० ३५ (११००-६२)

एक रैवारण पंथ सिरि, लोवै करहा वगग ।

ढोलो फिरतो देखनैं, तिण ढालो कियो अडिगग ॥४७८॥

× × × ×

[इसके आगे मूल का ४५० नंबर का दूहा है ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ४४६, ४६३, ४७३, ४५६, ४५७, (६२१ च),
×, ×, (६२२ च), ४७४, (६२४ च), ४८४, ४८५, ४७५, ४६०,
४६० पाठांतर, ४७०, ४८२, ४६५, ४७१, और ४८७ नंबर के दूहे हैं ।]

मारु हदा नयगा टोउ, जेहा अर्जन बाण ।

जहि दिस देखे निजर भर, त्या दिस पडै चंगाण ॥५०६॥

[इसके आगे मूल के ४८६, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६७,
४६८, ५००, ५२१, ५२२, ५१८, ५०६, (६५१ च), ५०५, ५१२ और
५१३ नंबर के दूहे हैं ।]

करहा कांह कहुकियो, भाभी माहि वगाह ।

ढोलो तौ ए कंवाईयो, उमाहियो वगाह ॥५२६॥

× × × ×

जिण कवै खरह कियो, तिण तू कइ म मारि ।

कव चटका ले सदे, अवर लहै गिमार ॥५३४॥

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है ।]

ढोवै पाणी भाडि घरि, संवळ खरह थरोहि ।

साइ सफोढो मारुई, जचळि गई वरोह ॥

कामण हदै कारणों नळवर छंड्यो राव ।

सयण मुंहा वेहुं कहां, मो धंण मिलस्यै आज ॥

[इसके आगे मूल के ५२४ और ५२५ नंबर के दूहे हैं ।]

जिण कारण थळ लंघीया, तिथा चितन काइ ।

ते सावन वैठा खुह सिर, करहो त्रिसीयो जाइ ॥५४०॥

करहा पाणी दूक पीव, जे ढोलाको होय ।

ज्या वरि ए जुग मोहियो, रागि न छीतो कोय ॥५४१॥

भोलै वाहा कोखडी, फेर रा वाहै कोय ।

वैसै फीस कीकर छांहडी, जेतू ढोलोको होय ॥

जो म्हे बाणात वालहो, तौ करह न मारत कोय ॥५४२॥

× × × ×

सबे लोवडवालियां, न जांगुं घण काह ।
 उवळदंती मारुई, लसण षोडावै पाय ॥५४४॥
 सबे लोवड वालिपां, सन्नाई गळि हार ।
 एकणि मारु वाहिरो, बीजा सहू जुहार ॥५४५॥
 × × × ×

[इसके आगे मूल के ५३५ और ५४१ नंबर के दूरे हैं ।]

तन शृंगारुओ मारुवी, सिणमारणो सहू साथ ।
 अंगै चंदन महमहै, बीडौ सोरै हाथ ॥५५५॥

[इसके आगे मूल का ५४२ नंबर का दूरा है ।]

उजळ दंत कपूर करि, मारु मुरठै दंत ।
 कैरै इणा हर लोडीया, कै लीया हाट विकत ॥५५७॥
 ना र यणायर लोडिया, ना लिया हाट विकत ।
 वेह दिया साई, लिख्या, मारु मुंहठे दंत ॥५५८॥
 × × × ×

[इसके आगे के मूल के १२४, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५२, ५५७, ५५९, ५५१, ५५३ और ५२८ नंबर के दूरे हैं ।]

जिम अरहट आरमें, जळ सूफी गरि धाह ।
 सापरि आहै सजना, असा अरि सयणाह ॥५८७॥

[इसके आगे मूल के ५५५, ५६३, ५५४, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८ और ५८९ नंबर के दूरे हैं ।]

करि सा कति सेभें चढी, मिडेक भाजै नाह ।

[इसके आगे मूल के ५९०, ५९१ और ५९२ नंबर के दूरे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६०० और ६०१ नंबर के दूरे हैं ।]

मारवणी मुख सास में, कस्तूरी महिकाय ।
 पीधी पनग पीयणो, सास तणे सभाय ॥६२१॥

[इसके आगे मूल के ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०९ और ६१० नंबर के दूरे हैं ।]

धुंण धधूणी वितागरी, वार वेचार सबद ।
 तिण वेळा तिण छोकरी, सरळा कीधा सद ॥६२६॥

[इसके आगे मूल के ६११, ६०७ और ६०८ नंबर के दूहे हैं ।]

जिण घरा मभि पीवणा, भणावै भीव भवग ।

.....॥६३३॥

× × × ×

पीहर हंदी डुंबणी, घाले नवले घत्त ।

मारू ढोलो उगरै, कहि समभावा वत्त ॥६८२॥

पीहर हंदी डुबणी, कीधी नवली घेन ।

मारू ढोलो उगरै, कहि समभावा वैण ॥६८३॥

[इसके आगे मूल के ६३१ और ६३२ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६३३ नंबर का दूहा है ।]

करहा कस्तूरी कस्तूरी, उपरि भी (?) णी लोय ।

साथ सुरंगो छाकियो, जौ निरवाहु होय ॥६८८॥

× × × ×

मारू चढती मारीया, दोय नेशाके बाण ।

साथ सहे ते सुमरो, पढीयो जाड पछा (ठा ?)ण ॥६९६॥

[इसके आगे मूल के ६३६ और ६४० नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

करहो फत कवेरियो, सुगणी मारू संस ।

वो सै उमर सुमरो, ताता खडै तुरंग ॥७०३॥

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६४८ नंबर का दूहा है ।]

ऊंचा पंथ विषम थल, करहै लघा एह ।

सो पिण त्रिण पावा, थला,मति घोडा मारेह ॥

× × × ×

ढोला मारू देस में, पाणी नीठ कढाइ ।

मलो अम्हीणी देसडो, सेंवज जल पीवाइ ॥

[इसके आगे मूल के ६५७, ६५६, ६५५, ६५६, ६६१, ६६२ और ६५८ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६६ और ६६८ नंबर के दूहे हैं ।]

मालवणी ढोलो कहै, सुजमणि देखां साच ।
मारु मिलिया धृत हुई, उर सकल जग काच ॥

[इसके आगे मूल का ६७० नंबर का दूहा है ।]

भगडो भागो नारिया, ढोलइ पूरी साख ।
मारु खंड अमोल त्रिय, वीवी गल्लु म दाख ॥ ७६१ ॥०

[इसके आगे मूल के ६७१ और ५५४ नंबर के दूहे हैं ।]

ढोलो मारु परणीया, जदिका ए सहिनाण ।
घण भटियॉणी मारवणि, प्रीव ढोलो चहुवाण ॥७६४॥

× × × × ×

यादव रावळ श्री हरिराज । चोडी तासु कुतूहल काज ।

दूहा घणा पुराणा अछै । चौपई वध मैं कीधो पछै ।
इधिकौ ओछो जे जोड्यो बहु । सो कवियण सॉसहि ज्यो सूर ।
पडियो छै बिहा वळी पातरो । तेह विचारी करिज्यो खरो ।
संवत सोलह सतरौतरै । आखात्रीज दिवस मनि खरै ।
जौडी जैसळमेर मभारि । वाच्या सुख पामै संसार ।
सामळ सैण चतुरि गह गहे । वाचक कुसळलाभ इम कहै ।

इति श्री ढोला मारु चउपई समाप्ता ।

सं० १७८१ रा पोषमासे शुक्ल पक्षे पंचम्या तिथौ बुधवासरे
लि० पं० श्री किसनदासेन ग्राम शिवपुरी मध्यै ।

(५)

[यह प्रति वीकानेर निवासी बाबू जयपालसिंह द्वारा प्राप्त हुई थी एवं उन्हीं के पिता के निजी पुस्तकालय में है । इसमें पूरी प्रस्तावना दूहों में है जो किसी अन्य प्रति में नहीं पाई जाती पर वहाँ का एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से कई दोहे अप्राप्य हो गए हैं । इसका क्रम वीकानेरीय कथानक के अनुसार है । इसमें जो दोहे मूल से अधिक हैं वे ही नीचे दिए गए हैं । इसका पाठ शुद्ध है ।]

६० ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीरामजी ॥

मारवणीरी उत्तपति हुई । ढोलैजीरी कथा

दूहा

- १- सरसत मात पसाव कर दे मो अविरल मति ।
भोगी भमर मुवाळ जे गुण गाऊँ तसु भक्ति ॥ १ ॥
- २- चोतौं नरवर इणि जुगै सबहुँ धुर सिगागर ।
रागै सुरनर रंजीयै अबला तसु आघार ॥ २ ॥
- ३- वचन विलास विनोद रस हाव भाव रति हास ।
प्रेम प्रीति संभोग रस कै सिगागर आवास ॥ ३ ॥
- ४- गाहा गूढा गीत रस कवित कथा कल्लोल ।
चतुर-तणा मन रंभियै कहिया कवि कल्लोल ॥ ४ ॥

गाहा

- ५- मणहर नवरस ममे सुंदरि नारीण सरस संवंधा ।
निरुपम कहै निबंधा सुखंत पैणा जाण सुगणा ॥ ५ ॥

दूहा

- ६- देसौं मोंहै टीपतो परगट पूगळ देस ।
तिहाँ नरनारी नीपलै निरुपम नोकै वेस ॥ ६ ॥

७ इस चिह्न से अंकित पद्यों के अतिरिक्त कोई पद्य किसी अन्य प्रति में नहीं मिलता ।

कवित्त

मुरघर देस मभार सयळ धण धान समिद्धौ ।
 नामै पूगळ नयर पुहुवि संगळै परसिद्धौ ॥
 राज करै रिणिराह प्रगट पिंगळ तपंतो ।
 प्रतपै जगत प्रताप दान जळहर दीपंतो ॥
 देवडी नाम ऊमा घरिणि, मारवणी तस धू कुँवर ।
 चौसठि कळा सुंदर चतुर, कथा तास कहिसु सपरि ॥ ७ ॥

दूहा

ऊँचा मंदिर चौपणा ऊचा धणुँ आवास ।
 अजत्र भरोखाँ जाळीयाँ सीस्वाँ सूँधावास ॥ ८ ॥
 राज करै राजा तिहाँ पू (पि)गळ जाण प्रवीण ।
 सीभळियाँ भीमो रहै निशि विं(दि) न नेहै लीण ॥ ९ ॥
 अतारौँ अमल करै सबळ सुहड़ अति रंग ।
 कोटडीयाँ कळहळ हुवे राग छतीसे रग ॥ १० ॥
 भला सुहड़ ब्रहास भल भली राजरी रीत ।
 राज लोक राणी सहू पाळ अहिनिशि प्रीत ॥ ११ ॥
 मन सुधि जेसळ मानिजै षरो जाणि षवास ।
 इक दिन चढी रामतै सुहड़ सुहले पास ॥ १२ ॥
 चढीयो मनरी चूँपसूँ खडीयो साथ खवास ।
 राजा म्रिग देखी करी वासै दीयो ब्रहास ॥ १३ ॥
 राजा तिहाँ किणि आनीयो पड़ीयो अटवी माहि ।
 त्रिषा बहुत लागी तरै त्रिष नीचै वहि जाहि ॥ १४ ॥
 त्रिष नीचै वैठो तिहाँ माणास छागळ साथ ।
 ब्रहम आउ दीधौ तिरौ भाट ऊँचो करि हाथ ॥ १५ ॥
 अति शीतल अम्रित जिसो पायो परघळ नीर ।
 राजानुँ आणोँद भयो सुख पामीयो सरीर ॥ १६ ॥
 त्रिगानुँ राजा पूछीयो, कुरा तु, जाइस केथ ।
 भाट कह्यौ राजा भणी, मोंगणा आयौ एथ ॥ १७ ॥
 राजा तूठा त्रिणि भणी, कीयो पँचाँग पसाव ।
 वेऊँ वैठा एकठा, पूछै त्रिगानु राव ॥ १८ ॥

अहो भाट, दीठी कित्ती धरती रामति काय ?
 कहौ फाई नवली वारता, जिणा मो अचरिज थाय ॥१६॥
 कहौ (? हे) भाट, गजा सुणो, दीठा वोहळा देस ।
 रामत ख्याल विनोद रस नारी निरुपम वेस ॥२०॥
 फाई अनोपम कामिनी दीठी किराही ठाई ।
 जिणा दीठै मन रीझियै, मोनूँ साच वनाय ॥२१॥

कविच

☞ पाशीपथ तुरग, षंग चंगो पुरसाणी ।
 वीचा नगर सहु सत, निरमळ गंगानो पाणी ॥
 पटकूळ पडणी, देस भोगी धुर दक्षिणा ।
 कुंजर फदळी खड, विपरीति नीति विचक्षिणा ॥
 तिम चदवदन चपकवरणा दंत भवकै दामिनी ।
 सारंगनेणा संसार इण मनहर मारु कामिनी ॥२२-२४॥

दूहा

☞ गिरि अठार आवू घणी गढ चाळोर दुरग ।
 तिहों सामंतसी देवडो अमळी माणा अभग ॥२५॥
 सवळ सेन तेहनै घणी मोटो बस सुभाव ।
 दुसमणा डर मानै वणो देखी तिसारो दाव ॥२६॥
 पटराणी अपछर जिषी रभाकै अणुहार ।
 तसु थो ऊमा देवडी अवर नहीं ससार ॥२७॥
 ☞ चंदवदन चपक वरणा अहर अलता रग ।
 पजरनेणी प्री (? खी)णा फटि कोमळ नेत्र कुरग ॥२८॥
 ☞ अति अद्भुत ससार इणि नारी रूप रतन ।
 आळै ऊमा देवडी कुमरी फंवन - वन ॥२९॥
 जो बुभ सारीषी जुडै मामिणि तिसा भरतार ।
 जोडी राही कान्ह ज्युं जो मेळै करतार ॥३०॥
 राजा सामळ रीभीयो चाग्यौ अधिक सनेह ।
 प्रापति हुवै तो पामीयै सैणा मिळणा सनेह ॥३१॥
 साथ सवे आयो वही राजा ऊठ्यौ जाम ।
 भाट भणी साथे लीयो आण्यो पूगळ टाम ॥३२॥

उतारौ तिणनै दीयो कीयो पँचौंग - पसाव ।
 वळि पूछै तिणि भाटनै, कहि कोई दाव - ऊपाव ॥३३॥
 राजा मन खटकै घणूँ ऊमा अहनिंसि जेह ।
 भूप गई तिस बीसरी नवि दीठारौ नेह ॥३४॥
 इक अणदीठौ मिट्टडा इक दीठौ ही मिट्ट ।
 इक अळगौ हो मिट्टडौ ते मै विरळा दिह ॥३५॥
 राजा परधाना - भणी कही ज लेइ नाम ।
 वळि पढ़खण वेळा नही कीयो चाणज्यौ काम ॥३६॥
 तेहि ज भाट परुचीयौ जेसळ साथ षवास ।
 साथै सत्रळौ साथ ले आयो चाळोरै पास ॥३७॥
 बंस छुतीसौमै वडौ सामतसी महाराय ।
 आए मिळीयो चूपसूँ आणूँद अंग न माय ॥३८॥
 आदर मान दीयो घणो, कीधी भगति तएण ।
 आया भुँइ अळगी घणी, कहो स, कारण केष ॥३९॥
 सुगण मॉणस कहै तिके, कारण एहो चॉण ।
 पिगळराजा कुवरी मॉगी घणै मँडारण ॥४०॥
 तब सामँतसी बोलीयौ, आया ते परिमाण ।
 कुँवरी-इंदो नातरो पहिली कीधो, जाण ॥४१॥
 सातसै गुज्जर-घणी उदैचंद तसू राइ ।
 कुवरी रिणववळौ भणी पहिली दीधी जाइ ॥४२॥
 बळतो जेसळ बोलीयो, कीलै तो हिव सीख ।
 बिम भ्हे जावाँ •आपणै देस ऊतर दीख ॥४३॥
 जितरै भाली साभळयो, पूगळरा परधान ।
 आया ऊमा मागवा जावै पाळौ जाण ॥४४॥
 राजानै राणी कहै बात विमासी जोह ।
 कुमरी पिगळ दीधीयै तो जोड़ी सम होइ ॥४५॥
 गॉडा लोक गुज्जर-तणा रोगे देही पूर ।
 ऊँहाँ किम ऊमा दीजीयै देस भूमि अति दूर ॥४६॥
 बात नवीनी पाइकै लगन ज नैडौ थाप ।
 तियनुं माणस मूँकस्यौ आह न सकसी आप ॥४७॥

लगन दिनै पूगळ-धणी वो इहाँ किणी आवाइ ।
तो कुमरी परणाविस्थीं एहवो कीयो उपाई ॥४८॥
जेसळ मिळायो राइनै पिंगलनै कहि वात ।
आपै गढ पूगळ-भणी जाइ करेस्थीं जान ॥४९॥
जान सहू सभि करी सुभट घणा ले साथ ।
चाह्यो राजा चूँपसूँ अनरगळ लेई आय ॥५०॥
गोधूळक वेळा हूई जोवता नाई जान ।
पिंगळ आयो जाणनै दीजै आदर मान ॥५१॥
राजा राणी परि सहू निरखै पिंगळराइ ।
... .. ॥५२॥

[५२ से ७६ तक के दूहे, पन्ना खो जाने से, अप्राप्य हो गए हैं ।]

मवड़ बाधी मारवी आई अरवतरी पेट ।
पूरे मासे पदमणी जनमी रतन ज पेट ॥७७॥
उछव कीया अति घणा, हरख्यो साजण लोक ।
राणी मन हरिखिति हुई, निम रवि दरसण कोक ॥७८॥
* सुंदर रूप सुहामणो, अपछररै अणुहार ।
पदमिण एह सहू कहै भ्रमर करै गुंजार ॥७९॥
* वरस पाँच बोलया पछी, तिसडै मेह न बुठ ।
खड़ पाखै सहू एकठा, हुआ माणस मन मठ ॥८०॥
* पिंगळ ऊचाळो कीयो, आयो पुहकर तीर ।
खड पाणी परवरळ तिहाँ, सुख पामीयो सरीर ॥८१॥
इतरी तौ मारवणोरी उतपति कही । हिव ढोलारी उतपति कहै छै ।
हिव किम ढोलो नीपजै, देव-तणै परमाण ।
लेख मिलै अणवाणीया, भावै जाण म जाण ॥८४॥
नळ राजा नरवर रहे, आछै रिद्ध अपार ।
भली अनोपम भाभिणी, सुख माणै ससार ॥८५॥
इक चिंता मनमै धणूँ, नहीं ज पुत्र रतन ।
तिण पाखै लागै इसो, जाण अलूणो अन ॥८६॥
ढाहा माणस पूछीयो, तिण कही एह उपाय ।
पुत्रा सही यास्यै भली, पुहकर देव मनाय ॥८७॥
जात्रा बोली राइ तिण, हूवो पुत्र रतन ।
उछत्र कीया अति घणा, सहू को कहै धन धन ॥८८॥

- राजा मनमै चिंतवै, जाए करिवी जात ।
 राखि खूपि परधाननै, 'राय चढीयो परभात ॥८६॥
 साधे रिधि लेह घणी, आयो पुहकर तीर ।
 जत्र करे मन हरखीयो, निरमळ सरोवर नीर ॥९०॥
 तिहाँ किण पूगळ आवीयो, नेड़ी वसती दिट्ट ।
 जाइ मिळीयो राजा तिहाँ, मन सहेजै मिट्ट ॥९१॥
- * इणि अवर घण उमट्यो, प्रगट्यो पावस मास ।
 पासइ पिगळराइनै, कीयो राय तिहाँ वास ॥९२॥
- * ऊनमीयो उतर दिसा, गैण गरज्यो घोर ।
 चिहुँ दिसि चमकी विजली, मडै तंडव गिर मोर ॥९३॥
- * न्यार मास निश्चळ रह्या, सरवर तणै प्रसंगि ।
 पिगळ नळराइ भूपती, मिळिया मनमै रग ॥९४॥
 इक दिन नळ राजा तिहाँ चढ्यो सिंकार प्रभात ।
 रमतौं सिसळो नीसर्यौ दीयो घोड़ो दे लात ॥९५॥
 चातो पिगळराइनै गयो अतैउर मॉहि ।
 सूती ऊमा देवडी कडि नीचै वहि जाय ॥९६॥
 देखी ऊमा देवडी राजा थमी वाग ।
 जे माणै इणि नारिसुं तिणरो मोटो भाग ॥९७॥
 तुरत राय पाळो वळ्यो आयो सगळो साथ ।
 पिगळ आडो आवीयो मिळीयो भरनै वाय ॥९८॥
 राजा ऊतरथौ करि मया पीयो पछाडी पैण ।
 कह्यो अतर क्युं राषीयै जे ससनेही सैण ॥९९॥
 साथ सहू तिहाँ ऊतरथो नळ राजा ससनेह ।
 कीषी भगति भली परै पिगळ राजा तेह ॥१००॥
 आए वैठा एकठा करण कुतूहळ केळ ।
 सारी पासा सोकठा राजारै मन मेळ ॥१०१॥
- * सुप्या वागा सावटु कोड़ीघज केकाण ।
 आम्हो साम्हो आपीया प्रीत चढै परिमाण ॥१०२॥
 कुमर अनोपम माहरो दीजै देव कुमार ।
 तिणनै मारु दीजीयै सम जोड़ी संसार ॥१०३॥
 तव राजा पिगळ कहै वात एह प्रमाण ।
 सही करेस्या नातरो पूछीनै परमाण ॥१०४॥

राजा ऊटी आपणै डेरे श्रायो चाम ।
 पिगळ राणीनुं कहै कुमरी देवाँ श्राम ॥१०५॥
 आखइ उमा देवडी वालँभ हीयइ विचार ।
 मन सकोडी मारवी वात समंदा पार ॥१०६॥
 कंता अण्दीटो कुमर कीयो नातरो कांइ ।
 पीउ पटराणीनुं कहइ निहां सिरजी तिहॉ जाइ ॥१०७॥
 अति मोटे आढवरै कीयो वीवाइ तएण ।
 अरथ गरथ बहु खरीचिया नरवर राय निएण ॥१०८॥
 इति दुर-सबंध छै ।

[मारु रूप-वर्णन]

मारु कुच युग कठिन अति कंचण-कळश शृगार ।
 रूपावलि विचमै वर्णा विसन दैत आधार ॥

गाहा

विरळा जणंति गुणा विरळा चारुंति निरघणा मेहा (? नेहा) ।
 विरळा परफज्व करा पर दुपे दुषोया (? दुषीया) विरळा ॥

(मारवली का सदेश)

लह सरै मुरह बडो, वसंत मास च कोइला सरए ।
 विभू सरै गइंदो, तह अम्ह मणं तुमं सरई ॥६०॥
 सहरै सीयरायो सू पणि कन्हौ इन लोइद वदंती ।
 गोरी सरै ति नयणो तह अम्ह भणं तुम्हं सरई ॥६१॥
 पडार जेम भरीय मह हीयं सवणा रा गुणवाए ।
 अरवगुण एक न पुज्जै पढमं चिय न थितं ठारुं ॥६२॥
 जेण विणा नहयाय वडिय वडिया अ अद्ध अद्ध च ।
 तेण विणा गय फाळ हा हीया वज वडिओ सि ॥६३॥
 तुम्ह नाम उयर धरीय तुह गुण गुणोण गुथिया माळा ।
 तुम नाम कयं मंतं जपतो वासरं गमई ॥६४॥
 चित्रं वृह सय वृह गुण वृह गुणोण अरवण संतोसो ।
 लीहा नाम गहणे एग दिट्टी तडकडए ॥६५॥
 मा चारुसि मित्र तुम्हं निधिवासर वीसरेण ।
 खिणमंतं नह व फंयण सूरं चंद्रं नहा चकोरेण ॥६६॥

नेहो कहै वि न कजै अह किजै किल रंग सारिखो ।
 जेतलाह मभि दिनो तह विन रंगं व (? न) छडंति ॥६७॥
 नेहो कहि वि न किजै अह किजै रत्न कंब सारिखो ।
 सन्नय गुणाण संगौ नहु विडै जाव जीवति ॥६८॥
 सजन वसति दूरे चिति नेहेण हुति आसंगो ।
 गर्जति गयण मेहा मोरा नाचति भूवळए ॥६९॥
 मम आणिस वीसरीयं तुम्ह मुह कमळ विदेस गमणसि ।
 सूनो भमै करंको जय तुम्ह जीवीयं तं तय ॥१००॥

दूहा

सज्जन हम तुम एक हैं अवर मित्या ए लेख ।
 मुक्त तुक्त हीयडौ एक है भावै कांठी देख ॥
 प्रीतम प्राण अघार तू मनमोहन भरतार ।
 प्रीतम सभळि प्रेम भरि संदेसा सुविचार ॥

गाहा

मुंडे मुडे मतिभिन्ना कुंडे कुडे नव पयः ।
 देशे देशे नवाचाराः नवा वाणी मुखे मुखे ॥

दूहा

हंसानुं सरवर घणा कुसुम घणा भमरौह ।
 सुगुणां सज्जन घणा देस विदेस गयाह ॥

[ढोला-मारवणी-मिलन]

मारवणीका विधै सुख ढोळौ विलसे जेह ।
 ते सुख जाणे ईसवर कै वळ जाणौ तेह ॥
 मनमोहन इक कामनी वळे सुरंगा मेह ।
 रंग लुबध राचा रह्या जिम मइण नै मेह ॥

(कुल दूहा संख्या ४६२)

इति श्री ढोलामारुरा दूहा संपूर्णा ॥

(६)

[यह प्रति जोधपुर राज्य की पुस्तक प्रकाश लाइब्रेरी में वर्तमान है । पाठ अशुद्ध है । नए दोहे बहुत से हैं । लिपि काल सवत् १८१२ है । परिशिष्ट में केवल नए दोहे दिए गए हैं ।]

श्री ढोलामारूजीरी वाचा

× × × ×
खड बळ कागणि सोभीया देसे दंघ दुकाळ ।
नरवर देस सोहामणो नरवर देस सोकाळ ॥
× × × ×
घन वड कुल आप वड जे वड चोरु होय ।
तिहुँ परकारे सरता फंय करीजे चोय ॥
× × × ×

सोराटा

माफी अचली माण पुंगळरे घरे पवारीया ।
सवर्हा मिली मुजाण वरणो ढोलारि कीड ॥
× × × ×

दूहा

मारु सिर महेलीया, ढोलो सिर कुंअरा ।
फडुआ बोल न बोलही, मीटा बोलहीया ॥
× × × ×
गळि (?) नेमे मढही, तोरण रंभा मोल ।
गांम ववेरे परणीया मारवणी ने ढोल ॥
× × × ×

सोरटा

राजा भीम नरंद, तणरी धु माळवणी ।
सुंदर सिर मकरंद, ढोलो मारु परणिया ॥
× × × ×

दूहा

× × × × अण गळ दीन अहय ।
 ढोलो अत सुख भोगवे मालवणीरे सथ ॥
 × × × ×

सौदागर वाक्य

सो जोजने मेळीया ढोलो कुंश्रर तंमेह ।
 फहुँ गुण केही परहरी वध दापवुं अमेह ॥
 देस घणार्ह जोवीया रूडो पाटण पीठ ।
 नरवर ढोलो रंजीयो मारू पुंगळ दीठ ।

सखी

सजण अण सजण हुश्रा ओह अळथा भार ।
 विरह महासिर उलटे फंन न कौधी सार ॥
 × × × ×
 सखी सहिजां माणसा सपनंतर मिळियाह ।
 फट रे नयण पापीया जागे निगमीयाह ॥
 × × × ×

चंद्रायणा

सुती थी सुख सेज सुपना पाईया ।
 जव जागुं भटकाय फवु नही पाईया ॥
 विषना लखत जंजाळ फि धंधा लाईया ।
 × ॥

× × × ×
 साभे सुपना पाईया घण जोवण मिमंत ।
 जाणु ढोलो जागवी केसर भीने कंत ॥
 सो पीउं छुंदि हथडे सरस पत्रीमत ।
 जाणुं ढोलो जागवी गळती मभूम रत ॥
 × × × ×
 आडा हुंगर वखवन ढोलो हिश्रडा माहि ।
 स अमलं जां बीछुडे × × × सुणाह ॥
 कागळ गळीया मिस दुळी सरफन आहुवद दध ।
 ढोले मन वीसारिया केवाटं आया वग ॥

ढोलो ढाली हट मझ दीठा वणे जणेह ।
लाल सुरगे कपडे सावर धन अंगणेह ॥
वरह मारी चो करे सकि न ऊमी होय ।
दई वह मारी जीवकुं हाहा करे न कोय ॥

× × × ×

आधा दोधे न पीउ...न पख वाउ लहत ।
दीठा विण ढोलो कुंअर मारु किम जीवत ॥

× × × ×

मागण माहिल सदेसडा पुहचाया प्री लग ।
काचळ तिलक निलाट को मो उमा ही भग ॥
कागळ गळीया आसुए तिलक किसी गुण तंग ।
पड पड पणग पहावरि श्रु छटि छटि लग ॥

× × × ×

उतर खंड उमंडीयो प्रालुवंन सहति ।
मुंदर हेवि म्हा सीखदे मनवे रुळीया अति ॥

× × × ×

छरति वारे मास गणि फिर आवीयो वसत ।
सो रित मुझ वताइदे त्रीय न सुआवे कंत ॥

× × × ×

ढोला—

ढोलो कहे म साहणी वाली अंतळ आस ।
सौंके पुंगळ पुचवे कोइ एहडो वरहास ।

मसाहणी कहे—

ढोलो हेकण दीहाडे तुरी न पुंहचे कोय ।
पतो पुजे करइलो मन उमाहो होय ॥

× × × ×

सूत्रे आण सुणावीया ढोला कहीया जेह ।
थह मरछागति माळवणी सखीयां चापे देह ॥

× × × ×

ढोलोजी चालता थका ततरा माहे ववेरारे ताळव आयां नीसरीया
ढोलेनी तोरण थभो दीठो हेकण माणसने पूंछीयो, ए थंभ तोरण छै सो
कुण परखीया छै, तड उणि आदमी दूहो कहीयो ।

ऐ थे ज चोक पूरावीया परणी पढे पुराण ।
 घन भटीयाणी मारवणी ढोलो कूरम राण ॥
 पुगळ वाजा वाजीया नरवर हुश्रा उछाह ।
 ढोलो मारू परणीया वघेरे बीवाह ॥
 पोहकर पींगळ आवीया तोरण थंभा तेथ ।
 नव अखर लखीया खरा ढोलो परणीया जेथ ॥

× × × ×

श्रेत न चंदण वावनो नागर वेल न थाय ।
 भुरट थळ मझि फोक वह करहो कासुं खाय ॥
 करहा को पंजर वडो ओछी बुध सरीर ।
 चाखत लोही नीसरे मुख घातीयो करीर ॥
 करहा पीपळ पान चर आगे मरषि भूख ।
 जासा उणहीज देसडे वे फळ वहीज रूख ॥

× × × ×

ढोलोजी ऐवाळने मारग पूछण लागा । ऐवाळे कहीयो पूगळ थाहरे कासु
 काम छै, ढोलैजी कहीयो म्हारे सासरो छै ।

× × × ×

जण गांम ऐवाळ रँहतो हुतो अण गाम ऐक लुगाईरो नाम मारुणी
 हुंती । ऐवाळजाणीयो वा मारू । ऐवाळ कहण लागो मारू तो माहरा साथ
 मांह छै । काले म्हारी छाल चारती हुंती ।

× × × ×

ढोला

थळ माथे जळ बाहिरी कोयल रूप करूर ।
 मीठा बोला घण सहा वे सजण रहीया दूर ॥

× × × ×

ऊमर सुंमर सारंग भाट मेलीयो—.....

× × × ×

ढोला

पूगळ हूँ पाछो गयो ऐतो गढ दसाय ।
 मारग हेक पंथी मले ढोलो पूछे ताय ॥

पिंगळरायर्गी पदमर्गी तो मारुर्गी दीट ।
 उभो ग्हे वात करी सा करहंती मीट ॥
 × × × ×
 हेक रेवारण पंथ सर सोवे करहा वाट ।
 दोलो वळतो देखकर मन(?)उण ययो उचाट ॥

रेवारण

दुग्धु केग वोलडा मत पंतरज्यो घोय ।
 अण हुंती हुंती कहे सगळो साच न होय ॥
 × × × ×
 ये दोला तीन गरमरा बन वारे छ मास ।
 मारु किम हुंती मई लो ये लील वलास ॥

रेवारण ह्युं ष्हे तने आया गडीया । साता थमां करहानें कंव वाही ।
 फाहो करहुंकीयो । वाड । चार गहेली गमवा नीकरी थी । तणे वृह्ये कतके ।
 सहेली गरम गरमै छे । के पण गरम गरमै छे । तके सहेली करहारो करहुंकी
 सामळाने वूहो कहे छे ।

केथ भंगुं करहुंकीयो (वूजो कहे) मझ थळांइ ।
 (नीकी कहे) नदीटे कंघंट ये (लोथी कहे) उमाहियो बराह ॥
 × × × ×
चारण.....दोलोकी ने सामो मिळयो.....

दोला

पथ मलंता मांमहा गढर्गी दीटी जात ।
 ह्दते दोलां पूळीयो कडो कांइ मारु वात ॥
 × × × ×
 वागी अवरळ मुच वचण गुणुसागर वडगात ।
 दोलो पुसळ आवता पंथ मळे कवि पात ॥
 गढर्गी दोलाने ष्हे तु माणे नरपति ।
 म्हांधूं सानो अखजे मारु केही गत ॥

गढर्गी चारण

दोला दीटी मारुं खरी लुटाडे इट ।
 हाट लुटाई चारणिये वळद गमाया जट ॥

अरक दं (? चं) दण निस केवडो कसतुरी कडि कटि ।
ढोला दीठी मारुई खरी लद्राडे हट ॥

× × ×

अहर पयोहर नख नयण मारु ? एह ? मुख ।
ढोला दीठी मारुई अर थोक चख्खे ॥

× × ×

नख जेहा चंपा-कुळी, नयण छुतीसेइ वाण ।
मारु मीर ववा जम ताणे हणे जयाण ॥

× × ×

संध कळाई नयण सर गुण पापेणि ताणेह ।
मारु मीर च वाव ज्युं, नह चुके बाणेह ॥
वदन तसु ससिहर धुंइ (? भुह) भमर उरि गम र गेहज ।

मारु पारे अहर जम, आँखी राता मभ ॥
ओढण आसी अंबरी, हाथे ककण फळ ।
मे घर दीठी मारुई, हीम वरणो वंड ॥

× × ×

मारु पुगळ उपनी, हीरा दत सुसेत ।
गंगा जेही गोरडी, खंजन जेहा नेत ॥
उर भीणी कटि पतळी भुह वक व्रवंक ।
चाडे मेली कत्राण कळ मारिसुं धन संक ॥

मारु हंदा दोय नयण, जाणे मार कत्राण ।
जन दिस देखे नयण भरि तिण दिस पडे भगाण ॥

× × ×

म्हेतो मारु नथीये, म्हे मारु की दास ।
जो छाडी तोही पतळी, दुध न पूजे वास ॥
खंजन नेत्र मुणाल गति, नासा दीपक लोय ।
ढोलो रूळीयायत हुयो, जव धन दीठी जोय ॥

× × ×

महादेव पारवती आया—

तो हुंता ढोलो कहे, कूडी गल मा कथ ।
हवे तो जीवण एकठा, मरतो मारु सथ ॥

× × ×

तात ढङ्गके प्रिव पिवे, करह उगाळे वेत ।
 ढोलो चकीयो डाक्यो, मारु करहो मेल ॥
 सयण पल मङ्ग मंडीया, एहा रंग सुरंग ।
 धण लीजे प्री मारजे, छाड विढोखो संग ॥

× × ×

करहो कावे भेगीयो, सुगणो मारु सग ।
 वासे उमर सुमरो, ताता खडे तुरंग ॥

× × ×

मे (? उमर) दीटी मारुई, चीता जेही लफ ।
 वानर श्रावा डाळज्यु, त्रापे चडे डरफ ॥
 प्रीयु ढोलो त्रीय मारुई, करहो कुंकुं वन ।
 उमर दीटा एकटा, वडा न तीन रतन ॥

इति श्री ढोलो मारुणीरी वात लंघ्येते ॥ सं० १८१२ वर्षे शाक १६७७
 प्रवर्तमाने श्री ५ श्री षट्माली मनराधी भाँण्णी लघत जेधीली षर्पनाथ मगर
 षोष वटं २ दने श्री ५ श्री जोरावरसंघनी सत्त से जी ॥

—————

(४)

[यह प्रति जोधपुर राज्य की पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी में वर्तमान है ।
पन्ने आपस में चिपक गए हैं जिससे पढ़ने में नहीं आती । इसके कुछ नए
दोहे नीचे दिए जाते हैं ।]

॥ दूहा ढोला-मारु छै ॥

कान कडी पग नेउरी हाथे कंकण कछ ।
म्हे घर दीठो मारुआँ हेम वर नु वछ ॥
कंधा अणदीठी कुँअरि करि न सनमंध कोइ ।
अज विषि द्या दीकरि हासुं करसी लोइ ॥
घन वड कुळ वड आप वड जे वड चोरु होय ।
तिहुँ परकारे सरतौं कंध करीजै कोइ ॥
नळवर-राजा-तणे ढोलो कुँअर अनूप ।
राणी पिंगळ रावरी रीभी देवे रूप ॥
मारु सिर महेलीयाँ ढोलो सिर कुअरौं ।
कडूआ बोल न बोलही मीठा बोलहीयाँ ॥
कूभडीयाँ कळीयर कीयौ टोलें टोलें वीस ।
मारु पउडे एकली उर सुं चपे इंस ॥

(त)

[यह प्रति बीकानेर के राज्य-पुस्तकालय में वर्तमान है । इसका पाठ प्राचीन नहीं है पर शुद्ध है ।]

अथ ढोले माखरी वात ।

[इसके आगे मूल के १, २ (पक्तियों का क्रम विपरीत है), ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५६, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०८, ११०, १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १२२, १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, २१४, ११७, १७२, १७३, १७४, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, १९८, २००, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, ३०१, २९७, २९३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७३, ३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२,]

[४६६, ५००, ४६६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०, ४४६, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५६, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९ और ४९० नंबर के दूहे हैं ।]

वीस मोहर पधारीयो कहण सँदेसा काल ।

अमल सुरगा साल्ह कर, आयो चढे निहाज ॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१६, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५६, ५५३, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५८१, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६६, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६५०, ६५१, और ६५२ नंबर के दूहे हैं ।]

[कुल दूहा संख्या ३६१]

इति श्री ढोलेमारुरी वात संपूर्ण ।

सींगालो अर खेलणो, जस कुळ एक न थाय ।
 तास पुरांणी वाड जुं, दिन दिन माथे पाय ॥१५६॥
 × × ×

चौपई

मायताय मन पुगी हाम, साळ कुमर तस दीधो नाम ।
 मरतवंझा माता पै होय, ढोलोनांस कहै सहू कोय ॥१६१॥
 × × ×

दूहा

खाणा पीछा खरचणा, जग रेखी गलाह ।
 सा पुरसा का जीवणा, थोडा ही भलाह ॥१६३॥
 × × ×

जत्र नळ जातै अटकळघो, परतख जात पुआर ।
 लक वळै दोइ तीसरो, ससलो पुळ समार ॥१७७॥
 × × ×

माळवदेस महीपती, भीमसेन भूपाळ ।
 फनका कुमरी तस तणै, सुंदर अति सुकमाळ ॥२१२॥
 परधाने नळ रायने, मांगी वडे मडाण ।
 जोता जोडावो मिल्यो, प्रीत वधी परमाण ॥२१३॥
 भीमसेन भगताविया, नळराजा वरधान ।
 नलनंदनसुं नातरो, मेल्यो बहु मान ॥२१४॥
 × × ×

कर मोचन दै कुमरिनै, मणी माणकनी कोड ।
 हय गय रथ पायक दिया, फनक कुडळना कोड ॥२१८॥
 वागा वेस सोहामणा, मुखण मोती माळ ।
 फनक कचोळा जडावरा, सुंदर सोवन थाळ ॥२१९॥
 पंचरंग दीघा ढोलिया, पुतळी पागे जाण ।
 सेभ सुंहाळी अति भली, रेसम वणीयो वांण ॥२२०॥
 सोवन चोकी सोवटा, पासावळि नवि रंग ।
 दीवा भ्तारी गाल मसुरी, उभउ सीसा अति चंग ॥२२१॥
 × × ×

चौपई

कनकावती तसु कुमरी नाम, अति सरूप अपहृर अभिराम ॥२२३॥

दूहा

× × ×

मिसरी मीटी सहु कहे, तिणयी मीठो दुष ।
मीटी वात सवणा तणी, आदि कहे कुल सुष ॥२४०॥

× × ×

वीजळीया भलमलै, आभै आभै दोय ।
कदी मिलू उण साहिवा, कस फंजुकी खोय ॥२४६॥
वीजळीया भलमलै, आभै, आभै तीन ।

कदी मिलू उण साहिवा, सावण पहली तोज ॥२५०॥
वीजळीया भलमलै, आभै आभै च्यार ।

कदी मिलू उण साहिवा, लावी वाढ पसार ॥२५१॥
वीजळीया भलमलै, आभै आभै पच ।

चण दिन वाला लागसी, सोडउ सीसै मच ॥२५२॥
वीजळीया चहला बहल, आभै आभै षट ।

कदी मिलू उण साहिवा, करी उवाडा गच ॥२५३॥
वीजळीया चहला बहल, आभै आभै सात ।

कदी मिलू उण साहिवा, करी उवाडा गात ॥२५४॥

× × ×

वीजळिया गळ वालला, मेहा साथे छत्र ।
कदी मिलू उण सवणा, करी उवाडा गत्र ॥२५८॥

× × ×

करभडि हाथ सदेसडा, नवि दीजे अजाण ।
पंख गळै नै मसि गळै पढी संदेसै हाण ॥२६१॥
साथर उडा जळ व्रणा, पर धर पेट नराह ।

मागी तागी पंखड़ी, बेती वार लहाह ॥२६२॥

× × ×

कुरभडि चाश्रे माळवे, कहे अमीणा फंत ।
ढोला आगळ यूं कहे, तो विण किर्सा वरतंत ॥६४॥

× × ×

वावा कुरभड़ी मरावहो, के सरवरियो फोड़ाव ।
जब म्हे सूता नींद भर, तब बोली मंभूम रात ॥२६६॥

× × ×
सदेसा ही वीज पडो, नै कागद आवी तोट ।
सही सलुंणा सजना, का मनमाही खोट ॥२६८॥

× × ×
सेउ सब जग मीत कर, वेर न कर इक ठाम ।
घर घर मीत न करि सकै, (तो) एक मीत एक गाम ॥३०६॥

× × ×
जब जागै तब सॉभळै, तंत तणो भुणकार ।
जीवो घनको वालहो, म मरो मागणहार ॥३१६॥
नाभि सकौमळ मुख कमळ, डील सु सीतळ गात ।
तिण का दव खुध्या रहै, मन मयगळ मयमंत ॥३१७॥

× × ×

सोरठा

फिट काकादवराह, अण पाणी अळगा थया ।
फट काजल काळाह, सजन विण साजो रहै ॥३२६॥

दूहा

चितारिआ चीपट पडै, विसारिआ चित भाळ ।
तो ढोळो किम वीसरै, दीघो छाती साल ॥३३०॥
ऊभी थी घर आगणे, सजन साभरीयाह ।
चारे पोहरे चुंनडी, रोइ रोइ भीजवियाह ॥३३१॥

× × ×

वडतो साखा पसरियो, थण कंचुओ न माय ।
ढाढी हाथ संदेसडो, लग ढोला पोहचाय ॥३३४॥
वाडी फूली बहुत है, मे चाहुं सो नाह ।
बलहारी उस फूलकी, वास रही मन माह ॥३३५॥

× × ×

जोवन पाको अंब जु, सुवटो रह्यो लुभाय ।
पंख पसारै उडणकुं, रसभर रह्यो न जाय ॥३४२॥

× × ×

दव उड्या सारे हुंगरे, वळे मुफ घराँह ।
विण्ण अरवगुण घण परहरी, मोटी खोड नॅराँह ॥३४४॥

× × ×

दोला वेगा आवजो, मन मुफो वेसास ।
दही विलोयो वी लियो, पाछै रही त छास ॥३५०॥

× × ×

फागद फाटो मसि दळी, लेखण पडो दुकाळ ।
वीज पडो उण सदेसडे, रही निहाळ निहाळ ॥३५६॥

× × ×

दूहा कहिया मारवण, पिउची तेडन फाज ।
दाढा हाथ सदेसडो,(वे) वीनवज्यो म्हाँ फाज ॥३६३॥

× × ×

कुच फाटै फर कुंअळै, अघर लाल थश्रे ।
मारु घड तेरे पुरघ, केते जतन कीश्रे ॥३८७॥

× × ×

सो फोसे सजन वसै, सो होयै हीयटा माँह । -
जाण क मिळीया उटकर, देस वणा सुभाय ॥४०२॥

मन उहा पजर दूहा, किमफरि मिलणो थाय ।

टैव न दीधी पाखडी, ते सजन मीलाय ॥४०३॥
× × ×

सोरटा

पहली प्रीत करेह, उंडो पैसि आळोच्यो नहीं ।
मिखडीआ भवेह, मीठा बोला माणसा ॥४०५॥

श्रेक दुकडा जेवे गळा, ज्यो चित उड्याह ।
ज्यो वसता चिहु श्राँगळा, लायण फनन दीठ ॥४०६॥

फाव्यं

गिरो फलापी गगने च मेघा
लचांतरे भानु जले च पद्मम् ।

द्विलक्ष सोमो कुमदीवानानां
षो जस्य चित्ते न कदापि दूरे ॥४०७॥

× × ×

दूहा
भीग पटोळी जळ थळी, बुंदत आया गार ।
ओळंगणारा सेल जु उमा भीगा वार ॥४५४॥

× ×
उतर आज स उजमी, सकै तो पडसी सीय ।
कै विस्वानर सेवीयै, कै सासूरी घीय ॥४७३॥

× ×
उतर आज स उजमी, पाळा पडे विहाण ।
भाजै गात्र कुमारीआ, देखे मुगल पठाण ? ॥४७५॥

× ×
थे सिधावो सिध करो, वेगेरा वळज्योह ।
पगळ देसरी मारवण, लेने घर वळज्योह ॥५११॥

थे सिधावो सिध करो, सातायी मळ ज्योह ।
रमज्यो सेभे रगसुं, मनवळित फळ ज्योह ॥५१२॥
साळा सळखु इम कहे, वैरा मले वजोग ।
तो नै कुअर जाँणे रावळो, मालण भाँणै भोग ॥५१३॥

× ×

सोरठा

जातां समो न जोय, जोह सी तोही जायसी ।
भर भर नयण म रोय, कर कायर काठो हियो ॥५१६॥

दूहा

अध तिलारो अध तिल, तिण अधारो अध ।
अवगुणी ओ सजन तणो, म्हे एतोही न लष ॥५१७॥
सजन दीठां सुख होवै, प्रगटै प्रेम अपार ।
जिण दिन सजन घर नहीं, सुनो जांणि संसार ॥५१८॥

सोरठा

अगर तणै अणुहार, पीडातां परमळ करै ।
ते सजन संसार, जोया पण जुडिया नहीं ॥५१९॥

दूहा

विछुड मिलतां बहुत गुण, जो सन उणी भाव ।
प्रेम पळटै हे सखी, विछुडे मिलत कहाव ॥५२०॥

× ×

सवन चाल्या हे सखी, करह पलाणी जाय ।
 ओ कामण ओळुं घणी, ओका (श्रयो) श्राव्यउ दाय ॥५२४॥
 × × ×
 ढोलो ढीले हठ (१२) डे, दीठो वणे जणेह ।
 लाल सुग्गे कपडे, सावरते नयणेह ॥५२७॥
 × × ×
 पली वधावो हे सखी, मोत्यां थाळ भरेह ।
 जोवन पूर श्रयग बळ, उतरीया कुसळेह ॥५७६॥
 × × ×

रैवारण

साहसियां सतवादिवा, घीरां एक मनाह ।
 दैव करेसी चंतढी, श्रग्ढ फवेसी ताह ॥५६८॥
 दंटी सुत्ता सापजुं, खडा खवो सीड ।
 तिण वण श्रणढोडीयो, त्रखा न चाले पीड ॥५६६॥
 × × ×
 मारु ऊधी गोल तळ, सर मोकळाणा केस ।
 जानुक रावा छत्रपति, मारण चढियो देस ॥६०२॥
 × × ×
 वण सडाने नुपीयो, नैनन वाके वाण ।
 मारु कुरभ वचाह लुं, ताण हणै कवाण ॥६१०॥
 × × ×
 च्यार चउपद च्यार थ (प) प, पोहप च्यार फळच्यार ।
 पुरवदत जो पाह्ये, ओहवी मारु नार ॥६१४॥
 भानु नु साब विप कमळ, मारग लोधण उणहार ।
 गत गयवर कट सीहकी, ओ चउपद लक्षण च्यार ॥६१५॥
 × × ×
 भुं भुहरा सुर कोकला, फंठ कपोत ठार ।
 पवन चपळा इसट पर, ओ पंपी लक्षण च्यार ॥६१७॥
 दाडम दंत नुपक फळ, कुच नारंग उणहार ।
 सर श्रीफळ कुप नुपात्रा नीपलै, ओ फळ फहिश्रै च्यार ॥६१८॥
 × × ×

सुपनामै सजन मित्या, में भर घाली बाथ ।
जागुं तव देखुं नहीं, हय हय रह गया हाथ ॥६४०॥
हियडा डोल म वायजु, ते सजन वेहीज ।
बो करतार मत्रा करै, तो तै दरसण दीज ॥६४१॥

+ × ×

ढोचे पाणी भाड घर, संबळ सुहष थरोह ।
सही संकोडी मारवण, उचळ गई वरोह ॥६५५॥
देस परायो परमडळ, किण ही न कीजै आळ ।
किणहीकी दोय लाफडी, किणहीकी दस गाल ॥६५६॥
पाजै (?) पाणी न थाहरै, थरहर कपै देह ।
हाथ सुहाळी मारवण, विरहण पाडे वेह ॥६५७॥

× × ×

सुना केरा तुवडा, सरही केरी तंत ।
कुमारीरी कड वसै, तिण जोवारी खंत ॥६५६॥
भटकै भाजो तुंवडा, तटकै तोडु तंत ।
कुंमारीरी कड वसै, तिण कीषा जोवारी षत ॥६६०॥
मेतो जोगी सारखा, जोगी मारे लाग ।
कोहक जोगण परणस्या, अमा सरीखी आज ॥६६१॥
मारवणी तुम्ह कारणौ, तजीया देस विदेस ।
पहेला हुंता कापडी, हवै जोगीरेवेस ॥६६२॥

× × ×

करहा पाणी खच पी, जो ढोलारो होय ।
आखडिया जग मोहियो, राग न भीनो कोय ॥६६७॥

× × ×

उजळ दती मारवण, ते कव साया दंत ।
हे वस म्हारो विहांगडो उड्यो केळ करंत ॥६७१॥

× × ×

वळी विसेखे तेहनै, पंगळ ते राजान ।
आपै उलट मन घरी, सोवन रस नादान ॥६७५॥

वाजा वाज्या हरपना, गुज्या गुहिर निसाण ।
 सामाता आगम सुणी, माळ्या बहु मंडाण ॥६७६॥
 रोम रोम तनुं उलस्या, नवा विरह विजोग ।
 नयण कमळ विगस्या वणु, मित्या सयळ सयोग ॥६७७॥

× × ×

जाचकने सतोखीआ, आपी अविचळ दान ।
 सजन जनने तिम वळी, दै आदर सनमान ॥६८१॥
 नगर लोग आणदिया, वाध्या तोरण बार ।
 बर घर गुडी ऊछळी, सपै चयचयकार ॥६८२॥
 इम ओछव अधिको करी, आव्या निज आवास ।
 पुगी सवनी मन रळी, सफळ फळी मन आस ॥६८३॥

× × ×

तेज प्रतापै दीप्तो, कांत फळा सु प्रकास ।
 देखी अविरच उपनो, साचो सुख विलास ॥६८८॥
 माठा दिन मिटिया ह्वै, सेवक थया सनाय ।
 सफळी सेवा चाकरी, आल थई अम नाय ॥६८९॥

× × ×

सीह सवोग सापुरत कश्रण, केळ फळै ओक वार ।
 सती पद्दोवर विप्रघन, चढसी हाय मुआह ॥७०५॥

× × ×

असत्री पीहर नर सासरै, संबमीया सहवास ।
 अ्रेता होअै अलखामणा, जो माडै घर वास ॥७२६॥
 ते माटे उतावळा, राब पधारो अ्रेथ ।
 निघर दोलत निज सामनी, पामीजै कहो केथ ॥७२७॥
 राज्य भोज्य सज्या वळी, अस्त्री वाहणा नै पान ।
 सुना मेल्या नहिं मला, मन घरज्यो अ्रे ध्यान ॥७२८॥
 ओहवो चीत माई चीतवी, पंगळराय पासै जाय ।
 अनुमति मागी चालवा, ढोलैवी चित लाय ॥७२९॥
 दै अनुमति अवसर लही, आपै बहुळा आय ।
 हाथी घोडा अति घणा, सुंच्या वेटी साय ॥७३०॥

× × ×

सुखरो सासु सवि मिळी, ढोलानै बहु प्रेम ।
 निज पुत्रीनो अति धणी, दै भलामण अम ॥७४०॥
 तुंकारो दीधो नथी, बाळपणा थी सार ।
 किसी भलामण दातनै, जोभतणी सुविचार ॥७४१॥
 इम मारवणी कुमरी प्रतै, समभावी सुभ वाण ।
 होली मीली हित हेवसुं, कीधी सुख सुंजाण ॥७४२॥
 मया करीने मुकज्यो, कुसळ-वेमना लेख ।
 लीला पति लखजो वळी, स्माचार सु विसेख ॥७४३॥
 अतर को राखो रखे, अे छै तुमचो ठाम ।
 देज्यो देव मया करी, सेवक सरीखो काम ॥७४४॥
 कारज समय सभारज्यो, चतुर तमे निच चित्त ।
 मनथी मत विसारज्यो, थे मोटा महिपच ॥७४५॥
 मात पिता वधव सहु, सयण सकळ परिवार ।
 बोळावी पाछा वळ्या, जुगतै करी जुहार ॥७४६॥
 साथै सैन्य सबळ कटक, सुभट-तणा वळि थाट ।
 वंदीजन विरुदावळी, वोलै भोजग भाट ॥७४७॥

×

×

×

ये ठाकुर ये छत्रपति, थानै तिहा बहु थोक ।
 पाणी नखमै पातळी, छास कहै सहु लोक ॥७४६॥
 राणी इम. रूढी परै, धरती अवीहड प्रीत ।
 आलै सीख भली परै, राखी रूढी रीत ॥७५०॥
 राज सिधाओ सिध करो, वळि वहला मिलज्योह ।
 डुगरजीवी जीवज्यो, डंवर ज्यु फळज्योह ॥७५१॥

मेहा मोटी खोड, माणसनें मरवातणी ।
 बीबी छै लख कोड, अे समोणी अेको नहीं ॥७५६॥

मारवणी मन मोहियो, 'मनह न मेलो न जाय ।
 जिम जिम हियडै सांभरै, तिम तिम नयण भुराय ॥७६३॥
 ढो० मा० दू० ३७ (११००-६२)

मारवणी मन वालही, मनकी पुरी आस ।
 जत्रथी विसहर डंफियो, हुंती लील विलास ॥७६४॥

×

×

×

(ध)

[यह प्रति बीकानेर के रागड़ी-जैन-उपाश्रय के अभयसिंह भंडार में है ।
यह भी प्राचीन नहीं है । यहाँ केवल नये दूहे लिये गये हैं ।]

दूहा

वरस डोढ वोळयो जिसह अद्भुत सुंदर वेस ।
षड पाषड सहु देसना, छोडो गया विदेस ॥१३०॥

× × ×

पींगळ रायनी मारुई, नळ राजानो ढोल ।
जत्रथै वेहु जनमीश्रा, तत्रथी वोल्या बोल ॥१६६॥
मारु ढोलो जनमीश्रा, तिहारा ए सहनाण ।
घन भटिश्राणी मारुई प्रीय ढोलो चहुआण ॥१६८॥

× × ×

तन तुरग अस्वार मन, नयन पयादे सथ ।
सुंदर चली सिकारकुं, विरह बाज करि ह्य ॥२०७॥
मारु ऊभी सामुही, जिम तुरका हाथ कवाण ।
जिण दिस नाषे भालडा, तिण दिस पडे भगाण ॥२०८॥

× × ×

विबळी आगले वाउला, मोरा माथे छत्र ।
कदहि मिलुंगी सजना, करी उघाडा गात्र ॥२२७॥

× × ×

सजन सोंपीनइ आवज्यो, मो गळ घली सोय ।
नरपति नयण न षोलिश्रो, जाणों विछोही होय ॥४५१॥

× × ×

उनहीश्रो वरसे नही, करे वपीहा [संतोस ।
ते सजन अणदीठा भला, मिळतें लेत न सोस ॥२८३॥

वासर ना रयणी सुख, घरे सुख नावंत ।
वालिम व्रीह्युडिआ तणो, मरंम स लागो मन ॥२८४॥

× × ×

उचे चित्रसाळी माळिआ, या हुं चतुरा नार ।
साहिव चतुर सुजाण रस, नित विलसो भगतार ॥२८८॥

× × ×

परम सनेही परम प्रीय, श्रवधारो श्ररदास ।
महलें श्रावो मोहना, साहिव पूरण श्रास ॥२९२॥
सुगुण सनेही नाहला, वाला वेग पधार ।
श्रलवेला श्रलसो घणो, देखण पीय दीदार ॥२९३॥
जुं मंछी जळ विन मरे, जळ मन जाणे नाह ।
तुं पिउको जिय अति फटिण हुं चाहुं पीय छाह ॥२९४॥
प्रीतम परम मुचाण छो, जाणत हो सव रीत ।
समयो एहि विचारीह, जुं ए न घटे प्रीत ॥२९५॥
में तो श्रविहड श्राटरो, निहा लगें जीवन देह ।
मनु तनु वयसो जीवसुं, पीउसुं कीनो नेह ॥२९६॥

× × ×

सोरठा

वृषा ? टपटपीश्राह, विण वादळे विछुटीआ ।
आखे श्राभ ययाह, नेह तुम्हारे साहिवा ॥२९६॥
साहिव नवलो नेह, जिण तिणसुं कीजे नहीं ।
वळे सुरंगी देह, विपे न धुंश्रो उठसी ॥३००॥

× × ×

श्रास धराऊ उंनसो, श्रायो घट श्रण पुर ।
हुं सवर्दीकुं वलही, मो वलहां सो दूर ॥३०३॥

× × ×

चिंतास्या चीवट पडे, संभरथा न समाय ।
सजन तुरी पटाट जुं, टिह विळगा जाय ॥३०७॥

× × ×

सोरठा

पहली प्रीत करेह, उंडो आळोव्यो नहीं ।
भुलाळिओ भवेह, मीठावोले माणसे ॥३११॥

दूहा

पहली प्रीत लगाय कर, पछे चौरायो चित्त ।
राही केरा रूप जुं, त्यो माँहें घोड़ा चित्त ॥३१२॥

×

×

×

सोरठा

कटका कादव नाह, नीर विजोगे जे हुआ ।
फिट काळवा काळा, सजन विन साजा रखा ॥३१४॥

दूहा

साहिन सख समुद्धको, मै सुणीओ वाजंत ।
नीर मितके कारणें, घर घर घाह दियंत ॥३१५॥
नवण तपत तुम दरिसकुं, सवण तपे तुम वेंण ।
कर माळा प्रभु नाम की, गये जपत दिन रेण ॥३१६॥
मन चाहतु हे मितकुं, जाणुं मिलिह ईस ।
पिण ओतो अळगो घणो, कहा करुं जगदीस ॥३१७॥

×

×

×

ढोला ढिली घर कीआ, दिठो घणे जणेह ।
लाल सुरंगी पघडी,रते नयणेह ॥३२१॥
इक उपरइकुं आवटे, इक नाणे मन मांह ।
वाली इताकी प्रीतडी, देषत उठे दाह ॥३२२॥
आरति अभूय (ष)ओ(न), तामरो सोस्या लोहा गास ।
वाला तुभ विण जुं हुई, पाको पान पलास ॥३२३॥
कहिओ लागे कारसु, लिभिह केहो लाह ।
अंतरगत जो पीड छे, ते जाणे जगनाह ॥३२४॥

×

×

×

फागुण मास वसंत रित, नव तरणी नव नेह ।
कहो सखी कैसेँ सहु, च्यार अगन इक देह ॥३२८॥

×

×

×

आदि विदेशी वालहा, नवि वीसाल्ल हीयाह ।
 नयणा दाडिम फूल ज्युं, रोइ रोइ लाल कीयाह ॥३३०॥
 भावे सजन इहां रहो, भावे रहो विदेश ।
 प्रीत पुरांगी होइ नहि, जे बंधी लघु वेस ॥३३१॥
 लागो होइ तो छोडीइं, हाथ हायसुं लाय ।
 मनको कहा छोडाहये, जाके हाथ न पाव ॥३३२॥
 मन वारंतो नवि रहे, सो घण ढोलण सथ ।
 मो मन चकरी डोर जुं, गह्यो डोरो तव हथ ॥३३३॥
 सो हु एसी चाणती, प्रीत कया दुख होय ।
 देस दुहाइ फेरती, प्रीत करो मत कोय ॥३३४॥

×

×

×

के फाई कांमण करयुं, रे रदिआळा मिच्च ।
 तिणकी सुव भूली गई, चोरी लीधो चिच्च ॥३३५॥
 निस टिन मो मन पिय वसे, पिय विन पल न सुहाय ।
 पिय विन दीठइ सुख नहीं, घडी जमारो थाय ॥३३६॥
 जाणु चई ऊढी मिलु, सुअडा आपि न पख ।
 दरिसण मिटा साहिवा, जेहवि आवा संख ॥३३६॥
 हुं रति अनेकसुं, पंथी पीउ कहेस ।
 रही न सकुं तास विन, ए अपराव खमेस ॥३४०॥

×

×

×

मागण चाल्या नळवरइं, करी वाईरी सीख ।
 जो जीवा तो फिर मिला, वेग आवा लेई सीख ॥३४३॥

×

×

×

मारु रते लोयणे, उर तीखे विच खीण ।
 मारु बोले माळिइ (चारो), पडदे वाजी वीण ॥३६५॥
 उर लकी सासा कमळ, नीळ निभ छळ पेट ।
 एक न दीटी मारुईं, आवा पाको जेट ॥३६६॥
 उजळ दति कपूर कर, मारु लख गुणेइ ।
 एकज अवगुण हे सखी, वाली घणे वणेइ ॥३६७॥
 हेमवग्ण सीतल ललित, गति गवरीरी जोय ।
 मुख परिमळनो पदमर्णा, मारु सरीखि न कोय ॥३६८॥

पन्न सु पतळ कुच कठिण, भिणी लंक मृग चख ।
 सो सुंदर किम वीसरइं, ढोला एक जीभ गुण लख ॥३६६॥
 कुच कठिही अर कर कमळ, अहर अलचा रंग ।
 मारु किरतारे घड़ी, दोते किए जतन ॥३७०॥

×

×

×

खंजन नेत्र विसाल गति, चहिओ न लग्यो चष ।
 एको मारु वारणो, माळवणीको लख ॥३७२॥
 मारु उभी गोंख तळ, हाथे लाल कवाण ।
 भर भर वाहे भालड़ा, तिण दिस पडे भगाण ॥३७३॥
 मारु केरा दोय नयण, मोती महले लाल ।
 आणजाण्याको पेखणो, सुजाणाने साल ॥३७४॥
 भाउ ढोलाने वीनवे कीजे सीख पसाय ।
 उहों वाट उतावळी जोए पिंगळ राय ॥३७५॥
 वही बघेरा देव गाम तोरण मंड्या अवंग ।
 ढोला मारु परणीया चित्ता जेहा लंक ॥३७६॥
 वही बघेरा परणीयो, अहनिस वजो, वज ।
 चिता करी रे ढोलणां, इण हथलेवा कज ॥३७७॥
 जो म्हे मोडा जायसा विण पाखइ सदेस ।
 तो मारवणी कामणी पावक करे प्रवेस ॥३७८॥

×

×

×

दूहा

संदेसा सविगता कहिया तसु संभाळ ।
 माळवणी थी वीहता सीख दीधी ततकाल ॥३८४॥
 भाउ भाट संदेसड़ा दिसि सजन कहिआह ।
 माता मन माहे जाणयो वीरहें पीड ययाह ॥३८५॥

×

×

×

जिण दिठे मन ऊलसे, वीछड़ीया वेराग ।
 ते सजन किम राखीइ, जिभ वाभण गलत्राग ॥३८६॥
 जव सुध आवत मिचकी, विरह उठत तन जाग ।
 जुं चूनेकी कंफरी, जव छिरकुं तव आग ॥३८७॥

चाहत पण देखत नहीं, वत न मीठे तार ।
दोड लनाळु माणसां, मेलो दे किरतार ॥३६१॥

सोरठा

मारु ताहरी आँख, हिइ माहरे वसाही ।
तांगी तीर म नाख, जो मीली न सके मुभनें ॥३६२॥

×

×

×

सलोक

चिंतातुराणां न सुखं न निद्रा कामातुराणां न भयं न लज्जा ।
अरथातुराणां न भयं न वध्या क्षुधातराणां न भयं न तेजाः ॥३६७॥

×

×

×

माळवणी वायक

सजन दुरपनके फइइ लागी प्रीत म तोड ।
जु रग लगो चोळिआँ ल्युं चीत लगो तोह ॥४२७॥
मांका आगळ नींफळ्यो भरि गयो लाँबी मीख ।
सही विरतो वलहो सुणी पकराई सीख ॥४२८॥
ढोत्रो हुँतो ते नहीं उतरी आतो लेय ।
साकर हुतो विस ययो दुरखणरे वयणेह ॥४२९॥

×

×

×

तुम मत जाणो प्रीत गई दूर वसेथें वास ।
नयन विछोहॉ पर गयो प्राण तुम्हारे पास ॥४४७॥
इफ वेगळा ते दूकड़ा पासैं वसैं ते रान ।
न्यार अंगुळनें आतरे नयण न देखे कौन ॥४४८॥

×

×

×

आठ दिसा नव सिंसा दिन पनरहकी ऋड ।
चोमासा पाखें दिसा मुंघ निहाळे वट ॥४६०॥

×

×

×

वाकी छो राती खुरा चिरमी राती माय ।
ओलाळी पवने मिल्यो घडिया जोयण लाय ॥४६१॥

×

×

×

रहो अली मठ करि करहो नीगमीआह ।
काची दाख न चारीओ, गुणे न रीभत्री आह ॥४८६॥

×

×

×

ढोला थे जाई आवजो, आसा सहु फळजो ।
माको कहीउ जो करो, तो मारवणी मरजो ॥४६६॥

× × ×

ढोलो चाल्यो हे सखी, वडरी डाहल मोड ।
हिउ कळेवो काळजो, तिनुं ले गयो तोड ॥५००॥
ढोलो चाल्यो हे सखी, हंगर पहली पाज ।
नगरीथी नव ते रही, ऊबड होइ गइ आज ॥५०१॥

ढोलो चाल्यो हे सखी, आवा केरी भोल ।
हिउ हेम जळ होइ रळो, नयणे मंडी कोल ॥५०२॥

ढोलो वोळाव्यो हे सखी, जिहाँरी थी हुं दास ।
दही विलोया घी लिया, मोनें करि गयो छ्वास ॥५०३॥

ढोलो वोळाव्यो हे सखी, पाळें चढियो दिठ ।
लागो भटको काळिजे, घरे ले गई नीठ ॥५०४॥

× × ×

ढोलो वोळाव्यो हे सखी, ऊपर वडि जोय ।
चुले छाणो घालकर, घुआढा मिस रोय ॥५०७॥
ढोलो गयो तो दुख दे, धुरि चहोडी लड ।
ऊभी मेली पंथ सिर, जुं धुर तुटी गड ॥५०८॥

सोरठा

तुं जाणे कीरतार, वालिम, जो मुभ वीसरइ ।
दिहडा माहें दस वार, सासा पहली साभरइ ॥५०९॥

दूहा

मेरे अचग लघु अटळ, संसि खडो निकळंक ।
सायर खारो रवि तपे, कुंण विण तोलु कंत ॥५१०॥
माछि तुं मत तडफडइ, वनसी लागो दंत ।
वीळडियां मेळो नहीं, तो सरवर मा कत ॥५११॥

× × ×

मेर सरीखो वलहो, पहली पाळण काळ ।
विरता पाळे वलहो, चितयी मेली टाळ ॥५१३॥
बाणयो थे वड वृष्य थो, सेविस काळो काळ ।
फूल भळ्यो फळ नीगम्यो, नीवडि गयो पलास ॥५१४॥

जाणयो थो वढ वृष्य थो, एको विपो विनाण ।
 छापर हंडी लीहडी, इळा तुटी नाण ॥५१५॥
 जाणयो थो वढ समुद्र थो, पडि गयो नगर तळाव ।
 काठे कुते विटोळिउ, हस न देवे पाव ॥५१६॥

× × ×

सदेसे जे गम करे, गम करि घर समरंत ।
 ते बंध्या वेकाण ज्यु छट्टे मास मरत ॥५२०॥
 सजन किमही न वीसरे जासुं घणो सनेह ।
 अह निस मन माहे संभरइ, जिम वापेयो मेह ॥५२१॥
 तिण सवणारा विग जनम, जिणयें ठिक न टोर ।
 चित्त ओरा हित ओगसु, मुख भाखे कळु ओर ॥५२२॥

× × ×

नयणे हुगर अतरइ, मन अतरो न कोय ।
 अम्हहि तुम मिलावडो, जो दैव करे तो होय ॥५२४॥

× × ×

सजन चाल्या हे सखी, करहो पलाणयो जाय ।
 एका मन ओळुं घणी, एका आवइ दाय ॥५२८॥

× × ×

ढोला हुं तुभ वाहरी, भीलण गई तळाव ।
 पंखडिया पचो सही विरइ पहुंतो आय ॥५३५॥

× × ×

ढोलो फहे संदेसदा सो सुअडा फहेस ।
 सुरछाणी हुई माळवण वेटी हाथ घसेस ॥५५३॥
 आस करती तास कर निगुणी नेह निवार ।
 सालकुमरने फरहलो वळे न थारे वार ॥५५४॥
 हापळहिओ हे सखी खोटो अथिर सनेह ।
 एक पखो फर नेहलो फाप चळावे देह ॥५५५॥

× × ×

दूहा

एक वाग्दृष्ट उंमर तयो जोवे वाट ज ढोल ।
 तिण देखी कुटो चव्यो तिण ही फयो कुबोल ॥५७७॥

× × ×

उजळपणो सवही भलो एक न भलो केस ।
आहेडी हरणां रमे तो तरुण तन वेस ॥५७६॥

× × ×

नारहट्ट वाक्य

आोर गईविन्नो पग पदम दामिनी दंत सुस्वेत ।
कुच वीजोरी रंग जुं षजन जेहा नेत ॥५६२॥

+ × ×

कडि सुपचल कडि घनप लंची वेण लहक ।
मारु मारे पंथ जुं कटिथी काढी भल ॥६००॥

× × ×

हेम वरण सीतल ललित गति गवरीरी जोय ।
परिमळ पुहप पग पदम मारु समहि न कोय ॥६०८॥

× × ×

सज सुपनें आवीओो अम गळ घली वथ ।
जागी अनुरागी भई हो हो रही गई हय ॥६२५॥

× × ×

सके हे तो ढोलो आवीयो तिको तेहको तोड़ ।
अंगे आळस रळि गयो मारुरे मन कोड ॥६२७॥
मारु निस भर निस सुई वेगें थाय विहाण ।
सके हे तो ढोलो आवीओो चिषल चहु चडिआंह ॥६२८॥

× × ×

करहा काय कहुकियो भ्नाभा मांह थळाह ।
ढोलो मारु उमाहियो आयो घणा दिनाह ॥६३४॥
आष फरके कड लवे पुले त पटडिआह ।
मो सगुणीको वलहो सके तो वटडीआह ॥६३५॥

× × ×

डावो पाणी जळ घरो सवळो सुह थणेह ।
मन संकोडी मारुई उजळ गई वणेह ॥६४४॥

× × ×

करहा पारणी दूक पीय जो ढोलाको होय ।
 आखड़ीया जग मोहीओ राग न भेट्यो कोय ॥६४८॥
 देस पीआरो परमडळ करहा न कीजे आळ ।
 किणहीरी दोय लकड़ी किणहीरी दस गाळ ॥६४९॥

× × ×

मारु वाक्य सखी प्रति

मीठो फठ सहेलिया तुरिया मीठो राव ।
 मेलो मीठो सजना आगम मीठो व्याव ॥६६५॥

× × ×

अगर चंडनरो ढोलिओ सूरुङ्गीओ आवास ।
 घण जीव्यो ढोला तणो मारुसुं घरवास ॥६६७॥

× × ×

सोरठा

फहता नावे फाय, सजन मित्या जे सुख होवइ ।
 ज्वाळासी बुझि वाय, सीव्यो अमृत सजना ॥६६०॥

× × ×

दूहा

जैम अरहट आरण्णें, सजन सोइणां माइ ।
 सापुरिस हंदा सजनां, आसा मुझ फळियाइ ॥७०१॥

× × +

करहो कसतुगी लडिओ ऊपर भीणी लोय ।
 साथडलो मुरंगडो चो (ढोला) निरवाहु होय ॥७१८॥
 प्रथम मेलारों आविया ढोलो मारु सोय ।
 डेरा बहु तंतु दिया पोढ्या छे सह कोय ॥७१९॥

× × ×

सोरठा

सालकुंवररो साद, किओ नहीं सो कृयकुर्ये ।
 सो चार्गा वरो साद, दासी तास दीवाघरी ॥७२६॥

× × ×

दूहा

इहां छे गुणवेलड़ी, उहा छे रसवेल ।
 जम रॉणा साटो करां, वानेई लेओ मेेल ॥७३०॥

× × ×

दूहा घणा पुराणा अछै, चोपई वंध कीओ मेे पछै ।
 संवत सोळह सतरोतरे आखात्रीज दिवस मन खरे ॥

× × × ×

— — —

(न)

[यह प्रति नागौर-मारवाड़ के श्वेतावर-जैन-उपाश्रय में वर्तमान है ।
इसका लिपिकाल सं० १७७१ है । पाठ प्राचीन ज्ञात नहीं होता ।]

ढोला-मारवाणीरा दूहा

सरसति मात पसाव फगी, दे मो अविरळ मच्चि ।
भोगी चतुर भुवाळ जे, गुण गावुं तस भच्चि ॥
देसों माहे दीपतो, परगळे पूंगळ देस ।
जिहों नर नारो नीपजै, निरुपम नीकै वेस ॥
उंचा मंदिर चौषणा, ऊंचा घणुं आवास ।
अबव भरोखा जाळीयाँ, सीस्यौं सुंघावास ॥
रास करै राजा तिहाँ, पिंगळ जाण प्रवीण ।
भामनीयाँ भीनो रहै, निस दिन नेहै लीण ॥
अतारौं अहनिस करै, अमल सुहड अति रंग ।
कोटडीयाँ फळियळ हवै, राग छतीसे रंग ॥
भला सुहड ब्राह्मण भला, भली राजरी रीत ।
राज लोक राँणी भली, पाळै अहनिस प्रीत ॥
गिर अढार आवू घणी, गढ जाळोर दुरंग ।
तिहाँ सामंतसी देवडो, अमली माण अभंग ॥
तस घी ऊमा देवडी, अवर नहीं संसार ।
छट्टी-हंदे अघरे, परणी राइ ति वार ॥
पटरौंणी पिंगळ तणी अपछरकै अणुहार ।
अछै ऊमा देवडी सुंदर इण संसार ॥
सुदर सोळ शृंगार सभ्नि, सेभ्नि पवारि सौंभ ।
प्राँणनाथ आप भिळी, सर सिर वइठौ हंभ ॥
रानि दिवस रंगइ रमै, प्रीउसुं इघको प्रेम ।
कुसम जाँण केतफ वनै, मोह्यो मधुकर जेम ॥

मवड बधी मारवी, आइ अवतरी पेट ।
 पूरे मासे पदमणी, जनमी रतन ज नेट ॥
 सुंदर रूप सुहामणी, अपछुरकै अनुहार ।
 सहु को आषै पदमणी, भमर करइ गुजार ॥
 वरस पाँच वउळ्या जिसै, इसै देव न बुड ।
 षड पाषै सहु एकटा, माणस हुवा मनमट्ट ॥
 मारवाड़कै देसमै, एक न जावै पीड ।
 कवही हुवै अवरसणो, कवही फाका तीड ॥
 पिंगळ परीयण पूछियो, कीजै त्रेवड काइ ।
 कोई गाम ज अटकळी, जेथ वसीजै जाइ ॥
 जळ षड कारण षोजीया, देसे दुं दुं षाँव ।
 पुहकर षड पौणी प्रघळ, सॉभळ पुंगळ राव ॥
 पिंगळ ऊचालो कीयो, आयो पुहकर तीर ।
 षड पाणी प्रघळ तिहाँ, हुवो सुख सरीर ॥
 हिवै किम ढोलौ नीपजै, देव तणो परिमाण ।
 लेख मिलै अणर्चीतव्यौ, भावै जाण म जाण ॥
 नळ राजा नळवर रहै, आछै रिद्ध अपार ।
 भली अनोपम भामणी, सुख माणै संसार ॥
 एक चिंता मनमै घणी, नही पुत्र रतन ।
 तिण पाखै लागै इसों, जाणी अलूणो अन्न ॥
 डाहा माणस पूछीया, तिण कह्यो षह उपाय ।
 पुत्र सही थाइं भलो, पुहकर देव मनाय ॥
 जाना बोली राइ विण, हुवौ पुत्र रतन ।
 उळ्व हुआ अति घणा, लोक कहै धन धन ॥
 राजा मन मै चींतवै, जाए करवी जात ।
 राजा भळायो आपणो, परधानां परभात ॥
 साथे रिद्ध लेई घणी, आयो पुहकर तीर ।
 जान करी मन हरषीयो निरमळ सरवर नीर ॥
 इण अवसर धन ऊमट्यो, प्रगट्यो, पावस मास ।
 पिंगळ राजा पिण तिहाँ, मिळीया मन उलास ॥
 ऊनमीयो उत्तर दिसा, गयणे गरज्यो धोर ।
 चिहुँ दिस चमकी वीजली, - मंडे तंडव मोर ॥

च्यार मास निहचल रह्या, सरवर (त) सौ प्रसंग ।
 रांमति घ्याल विनोद रस, रहै मन उछरंग ॥
 एक दिन नरवर राजवी, चढ्यौ सिकार प्रभात ।
 सिखलो दीठी नासतो, दीयो घोडो दे ढाल ॥
 जाँतो पिंगळ रायनै गयो ज गाढा माँहि ।
 सूती ऊमा देवडी, कडि नीचै वहि जाहि ॥
 दीठी राजा देवडी राणी दीठो राय ।
 मन माहे अचिरिल मयो, अई यो रूप अथाह ॥
 देपी ऊमा देवडी, राजा थमी वाग ।
 जो मासौ इण नारिनै, तिणका मोटा भाग ॥
 तुरत राय पाछो वढ्यो, आयौ सगळो साय ।
 पिंगळ आडो आवीयो, मीळीया भरनै वय ॥
 राज ऊतरो करि माया, पीयो पछारी पैण ।
 कहि अंतर किम राखीये, जे ससनेहा सयण ॥
 साथ सहु तिहाँ ऊतरयो, नळ राजा ससनेह ।
 कीधी भगति भळि परै, पिंगळ राजा तेह ॥
 आए बैटा एकठा, करण फतूहळ केल ।
 सारी पासा सोगटा, राजा ये मन भैल ॥
 लुंपी वागा सावटू, कोडी घज केफाँण ।
 आँम्हो सॉम्हा आपीया, प्रीत चढा परमाँण ॥
 सगपण हुवै तो सौगुणी, वघह प्रीत असमान ।
 नरवर राजा पिंगळै, वकीया एहवी वाण ॥
 तिसडै मारु नीसरै, जाणे वीय मयंक ।
 ऊ भौँखो आ निरसनी, कोई नही कळक ॥
 कुँवर अनोपम माहरै, दीसै देव कुमार ।
 तिणहुँ मारु दीक्षियै, समजोडी संसार ॥
 तव ते राजा पिंगळ कहै, वात एह परबाण ।
 सहि फरेस्या नातरो, पृछीनै परोयाण ॥
 राजा ऊटा आपणौ, डेरै आयो जाम ।
 पिंगळ पृछे देवडी कहो त घरौँ ए काम ॥
 आपै ऊमा देवडी वालंभ हीयै विचार ।
 मनह सकोडी मारवी, दोघ समुद्रा पार ॥

के(?) ताश्रण दीठै कुंमर, नातरो कीयो स कोय ।
 प्रीऊ पटराणीनु कहै, जिहाँ सिरजी तिहा जाय ॥
 अति मोटै आडवरै, कीयो विवाह तिष्ण ।
 अरथ गरथ बहुषरचीया, पिंगळ नरवर जेष्ण ॥

[इसके आगे मूल का ११ नवर का दूहा है ।]

नळ राजा हिवै आँपणै आयो नरवर देस ।
 ठॉम ठॉमरा लोक सहु, ते ळ आया पेस ॥
 साल्हकुमर आयौ हिवै, यौवनमै भरपूर ।
 तत्र राजा मंन जाणोयो, पुंगळ हुई ज दूर ॥
 मत कोई जणाइजो, मारवणी विरतात ।
 भुँइ अळगीमै भुँच नर, भवनइ भुरट अनत ॥
 माळत्र देस सुहामणो, जिहाँ सुपीया सहु लोक ।
 परणावीजै साळनु, देसी सगळा थोक ॥
 माळत्र देस सुहॉमणो, भीमसेन भूपाळ ।
 माळवणी घी तसु तणी, सुदर नै सुकमाळ ॥
 साल्हकुमरनो ना तरो, कीयो मन आणद ।
 सोहै जान्याँमै कुमर, जिम तारामै चद ॥
 षरच्या अरथ गरथ सहू, परण्या अघिकी प्रीत ।
 सारीषी दा (?) त्रिना चिहटै नहीं ज चीत ॥
 हाथ मुकावण हाथीया, दीन्हा तीन सै पच ।
 नगर पचास दीपावळी, अइराकी सै पंच ॥
 चतुरपणै लागी हिवै, ढोला सेती प्रीत ।
 लागो रं (ग) मजीठ ज्यु, चतुरपणै बहु चीत ॥
 आया नरवर गढ हिवै, पैसारो संघात ।
 आया मन अति रगसुं, सुष माहे दिन जात ॥
 ढोलौ मालवणी हिवै, करै कतूइळ केळ ।
 ढोलै मन मानि घणुं, मालवणी मन मेळ ॥
 सोळा वरसा माळवी, कतो वरसा वीस ।
 इसडी लोढी जौ मिलै, जो तूसै जगदीस ॥
 हसै विहसै माळवी, अरु गळि लग्गी फंत ।
 ढोलो मोह्यो अति घणु, दाडिम जेहा दत ॥

ढो० मा० दू० ३८ (११००-६२)

माळवणी जाणै षणु, मारु मर्त्ये साल ।
 पिता ढोलो जाणै नर्ही, वीछडीया वय वाळ ॥
 वयण न लोपै माळवी, नयण न पडे जेह ।
 प्रीत वधारण सुख करण, वळि मीठे वयणोह ॥
 नित नवली मोज करै, नित नित नवळी सेभ ।
 ढोलो माळवणि एकठा, अधिकै अधिकै देव ॥
 ढोलो मोह्यो माळवी, विम मधुकर व...ह ।
 विहु मन लागो इसु, एक जीव दीय देह ॥
 ढोलो मोह्यो माळवी, राति दिवस मन रंग ।
 नेह नवल नै नवल धण, सही न छोडै सग ॥

[इसके आगे मूल का १२ नवर का दूहा है ।]

वाळापण तो वहि गयो, विहा मन लाव नसाव ।
 आयो जोवन उमगसुं, सहु सुख माणण राव ॥

[इसके आगे मूल के १३, १४ और ७६ नवर के दूहे हैं ।]

सुपनतर सजन मिल्या, मै भर घाती वर्य ।
 नीद गई प्रीउ वीछुडे, जागत पटकत हाथ ॥
 सुपनै सजन पाईया, हुं सूती गळ लाय ।
 मारु न पोलुं श्रपटी मत त्यजन फिर जाय ॥

[इसके आगे मूल का २६ नंबर का दूहा है ।]

मारवणी सहीया कहै, मो परगाई केथ ।
 प्रीउ कठे जाणु नही, हुं एकलटी एय ॥

[इसके आगे मूल के २४ और २५ नवर के दूहे हैं ।]

सूती सेभै मारवी, विरहण करै विलाप ।
 कुरभा सुणे करुकडा, लागी विरहा ताप ॥

[इसके आगे मूल के ५३ और ५५ नवर के दूहे हैं ।]

कुचकीयाँ कळियळ कीयो टोलै टोलै वीस ।
 मारु ढोलो साभरै, उरसु भागी ईस ॥

[इसके आगे मूल का ५६ नवर का दूहा है ।]

कुचकीयाँ कळियळ कीयउ सारी माभिम राति ।
 मारु पनरमै वूही, करवत आवत जात ॥
 कुचभा फाई करकीयाँ, याकुं केहो दूख ।
 कुण मारु विरहै दधीया, ऊपर लायो लूण ॥

कुरुभा तणा करुकडा, सामळ सोवै सोय ।
सेभ अंगीठी तन दहै, कहिवा लागी जोय ॥

[इसके आगे मूल के ६२ और ६५ नंबर के दूहे हैं ।]

राणी ऊभी सामळघा, मारु तणा ज वैण ।
ऊमा मनमै बाणीयो, मारु मेळो सयण ॥

[इसके आगे मूल के ७७, १०१, १०३, १०४, १०७, ११०, ११५,
१२६, ११६, ११३, १२२, १२३, १३०, १३३, १२७, १३१, और १३५,
नंबर के दूहे हैं ।]

केता सदेसा कहुं, केता वयण कहेस ।
ढाढी प्रीतम आणियो, तो उपगार बहेस ॥

[इसके आगे मूल का १८४ नंबर का दूहा है ।]

तिहाँ मालवणी राखीया, पीहर पहराइत ।
पंथी कौ पूंगळ तणौ, सो मारै वो नित ॥

[इसके आगे मूल का १८२ नंबर का दूहा है ।]

कूड कपट मन केळवी, आया नरवर देस ।
नरवर राजा भेटीयो, मनमै चीत अजेस ॥
राजा घणो आदर दीयो, पूछी कुसला पेम ।
नरवर मन पिंगळ तणो, प्रगट्यो रवको प्रेम ॥

[इसके आगे मूल का १८७ नंबर का दूहा है ।]

आद्य जाइनै ऊळगो, साल्ह झुमर सुजाण ।
ढाढी मन हरषित हुओ, वदी राइ ए वाण ॥

[इसके आगे मूल के १८८, १८६ और १६१ नंबर के दूहे हैं ।]

संघ परा सो जोयणा, बीजा भिवै विदेस ।
घण पुंगळ मै एफली, नाह तो नरवर देस ॥

[इसके आगे मूल का ४७ नंबर का दूहा है ।]

बीजळिया भूबूळीया जव देपीजै नयण ।
वाह पकड्या वालपिण जाइ मिलीजै सयण ॥

[इसके आगे मूल के १४७, १४६, १४५ और १६२ नंबर के दूहे हैं ।]

प्रह फाटी रवि ऊगीयो, आयो पूछण दत्त ।
कहो ज तिणकी वारता, चिणकी गाई रत्त ॥

तेही दाषवज्यो तुम्हे, जेही आया जोय ।
 पर मन रजन कारणै, भरम म दाषवि कोय ॥
 एकरा चीह किम कहां, मारु रूप अपार ।
 कै हरि तूटै पाइयें, कै तूटै करतार ॥
 ढाढी ले कागळ दीयो, लिपीयो मारु जेह ।
 ढोलै लेईं मोडीयो, सयणा तणै सनेह ॥
 कागळ अपर गहि लीया, कामस धणो जयाण ।
 कै भीना पंथ आवतै, कै लिपणहार अजाण ॥

[इसके आगे मूल के १८२, १६८, २०३ और २०४ नंबर के दूहे हैं ।]

सता सूपनतर मिलै, इक सातै सो वार ।
 मन राष्यो ही नवि रहइ, कर मेलो किरतार ॥

[इसके आगे मूल का १५७ नंबर का दूहा है ।]

प्रीतम जो आयो नहीं, थोडा दिना ज माहि ।
 तो ये आया लाभस्यौ, मारु मंगळ माहि ॥
 प्रीतम जो आयो नहीं, माणस इयां मिळियां ।
 आयां धण आतुर हुसी, पाछां इया पहियां ॥
 कै कहीयै कै अपियै, सयणांसुं वयणांह ।
 वयर विलूषो वल्लहा, नींद अनै नयणा ॥
 जोवत आप्पा थकीया, सोवत नाहीं सुष ।
 प्रीतम अणमिलीया इसो, दाभै देहां दुष ॥
 ढोले कागळ वांचीयो, चाग्यो नवल सनेह ।
 मिळवा हीयडो जलस्यौ, सिम वाकहीयै मेह ॥
 षागळ मूँकै नै कहै, ये मलै मिळीया आज ।
 सयणा तणा सटेसडा माणस हंदा साज ॥
 सीप समपी ढाढीया, देईं लाषपसाव ।
 ढोलो मन वणुं हरपीयो, हरख्यो नरवर राव ॥
 श्रवण सँदेशा सामळी, प्रीतम तणा ज वयण ।
 मारु ढोलो मोहीयो, सहु भूलेगा सयण ॥
 मन्ह चमकी माळवी, सुणि ढाढी हदा वयण ।
 कोढि गुणा अयगुण हुवै, जो हुवै दूनो सयण ॥

तां लागि प्रीत अर्षंडीया, जा लागि एको मित्त ।
 जब मन राषै अवरसुं, चतुर विरञ्चै चित्त ॥
 पिण मुंहडैरी प्रीतडी, अरु अगळि नयणा ।
 आहचै इम किम छाडही, ससनेहा सयणा ॥
 मन चिंता मिळवो सयणा, मंडाणो आलोच ।
 मालवगी मन जाणियो, सही ज कोई सोच ॥

[इसके आगे मूल के २१८ और २२१ नंबर के दूहे हैं ।]

लिके ज बाभण वाणिया, तिकों दिसावर जाय ॥
 राजकुंवर राजा तणा, तोइ दिसावर काय ।

[इसके आगे मूल के २२३, २२६, २२७, २२८ और २२९ नंबर के दूहे हैं ।]

चपावरणी कामणी, सौहै तुम्भ सरीर ।
 हरणाषी इसनै कहै, तो आँणा दष्यणी चीर ॥

[इसके आगे मूल के २३३, २२४, २२५, २३०, और २३१ नंबर के दूहे हैं ।]

सुणि सुंदर ढोलो कहै, काई चाकरी कराह ।
 काई माई वेटका, घर बैठा रहाह ॥
 कत म जाए चाकरी, फिण ही कुठाकुर साथ ।
 दत्त थोड़ो सेवा घणी, पहरो देशो राति ॥
 सुणि सुंदर ढोलो कहै, रीता राजवीयाह ।
 घर बैठा टामक हवै, वाहिर सोह समाह ॥
 ऊचळ चित्ता ऊभाषरा, पग न भैलै ठाय ।
 सजन उनहारै इसा, तिण नो मन डोलाय ॥

[इसके आगे मूल के २३६, २३८ और २३९ नंबर के दूहे हैं ।]

वल्लभ सज्जण वीछुडण, वळी सवका साल ।
 कर जोडी कामिण कहै, सुणि कंता सुकमाळ ॥

[इसके आगे मूल का २४१ नंबर का दूहा है ।]

नेह बंधन बधीयो, वळि रहिया दुह मास ।
 ससनेही क्यु वीसरै, मन मारवणी पास ॥
 चहुं दिस चमकी वीजळी, याडो बादल छाह ।
 पावस आयो पदमणी, कहो व पुंगळ जाह ॥

[इसके आगे मूल के २४६, २४८, २५१, २४४, २५३, २४६, २५०
२७३ और २४५ नंबर के दूहे हैं ।]

बिगा रित सी आगम करै, टापुर तुरी सुहाय ।
तिगा दिन कामिगा मुंकिनै, कवगा दिसावर जाय ॥
बिगा रितिमै कोरड कुडै, हिरणी गाम धराय ।
तिगा टिहारी गोरडी, दिन दिन लाप लहाय ॥

[इसके आगे मूल के २८२, ३०१ और २६४ नंबर के दूहे हैं ।]

उत्तर ग्राजस उत्तरो, सही पडेसी सीह ।
कटीयौ दूव कटोरीया पावै, साधु हुंदी धी ॥

[इसके आगे मूल के २८७, २६०, २८६, २६५ और २६८ नंबर के
दूहे हैं ।]

उत्तर पाळो पवन वरा, कहो किम कीजै ।
हरिणाखी जै तूं करै, ती साम्हो सी लीजै ॥
इसके आगे मूल के ४१२ और ३०५ नंबर के दूहे हैं ।]

रैवारी टोलो करै, करहो सोइ दिखाय ।
पलाणीयो पवने मिलै, घडीयै जोवन जाय ॥
टोळा माहे टाळिमो, विगताळो वीपइ ।
रुठो रैवागी आणीयो, ढालो सो निरपइ ॥

[इसके आगे मूल के ३०६ (पक्षियों का क्रम उलटा है), ३१२ और
३१३ नंबर के दूहे हैं ।]

भाटि भूटिक करहलो, आँखे वॉन्वो वार ।
विरह टावनळ वीहती, करै मालवणी नार ॥

[इसके आगे मूल के ३१७, ३१८, ३२० और ३२१ नंबर के दूहे हैं ।]

धहियो कीयो करहलो, पोडो हुवो ति वार ।
दीचण लाग टामडा, करै माळवणी नारि ॥

[इसके आगे मूल का ३३३ नंबर का दूहा है ।]

करहा नुगि दोलो करै, रहीयो पोडो होइ ।
मुक मिळावै मारकिण, इसो सयण न कोइ ॥

[इसके आगे मूल के ३०४, ३६३, ३६७ और ३५८ नंबर के दूहे हैं ।]

बीठइता ही सजना, नीसाना स मूक ।
के मरीया के वार्ळाया, के दावा के सुक ॥

[इसके आगे मूल के ३४६, ३६६, ३७६, ४१६, और ३८१ नंबर के दूहे हैं ।]

षडीयो ढोलौ करहलो, मिळीयो वावोवाय ।
वासै मूकै माळविण, सूवेनुं समभाय ॥

[इसके आगे मूल के ४००, ४०१ और ४०४ नंबर के दूहे हैं ।]

ससनेही को विछज्यौ, मूंथो न सुणीयो कोइ ।
तंबोली कैरा पान ज्युं, भूरि भूरि पजर होइ ॥
सूआ एक सदेसडो, माळवणी बाळेह ।
सौ मण सूकड नै मण अगार, म्हाकी हुंती देह ॥
सुओ पाछौ आवीयौ, ढोलो गयौ अलज्ज ।
कहीया ही वळीयो नहीं, तोसुं केहो कज्ज ॥
ढोलै तणा सदेसडा, सूवे कहीया आइ ।
मुरछागति हुई माळवी, ऊभी हाथ मळाइ ॥

[इसके आगे मूल के ४२५ और ४२६ नंबर के दूहे हैं ।]

चढीयो ढोलो करहलै, मिळीयो, वावोवाय ।
ढोलो मन ऊमाहीयो, घडीयै जोजन जाय ॥
जंगळ देस अजग थळ, कोहरे ऊंडा नीर ।
ढोलो षडै उतावळो, सयणां तणौ सहीर ॥

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है ।]

आगळि जाता एकलो, ऊभो जड गिवार ।
वहतो देषी वाटलै, लागो कहण ति वार ॥

[इसके आगे मूल के ४३६ और ४३७ नंबर के दूहे हैं ।]

उवा मारु पिंगल तणी, छाळीयाँ छागा सत्य ।
रमता वाथळ कुंडीयै बहुली वाती वत्य ॥

[इसके आगे मूल के ४३६ और ४४५- नंबर के दूहे हैं ।]

पग आघा पाछा पडै, मन पाछौ मे जाइ ।
सयणा वयणा साभल्या, वघइ प्रीत घट जाइ ॥
इतरै आघा चालता, मिळीयो मागणहार ।
साम्हे हुइ सुमराज कीयो, ढोलै कीघ जुहार ॥
पूछघो तिण मागण भणी, कठा आवीयो फदेह ।
पूंगळ रावा ओळगे लाष पसाव लहेह ॥

तिगानु ढोलो पृथ्वीयो, मानसगी विगत ।
 बोलो वारट नै गुनी, केना गुण गटा ॥
 जे तै दीटी मागपी पा मदिनाल प्रमट ।
 चटा जेरी गुणधमल, फटि फगुगी ट ॥

[इसके आगे मूल के ४७०, ४७१ (पन्नि-ने या नाम उलटा है),
 ४६३, ४५६, ४६०, ४६२, १३, ५८८, ५५५ और ५८७ नंबर के दूहे हैं ।]

तिग ढोलोसु सीप नी, नीनी टंने नीना ।
 धरहा चानि उगमळो, एत वदिनी नम नीप ॥

[इसके आगे मूल का ५६६ नंबर का दूहा है ।]

ढोलो वाहे फरती, दीट दीट एणन पूर ।
 जिण गौरी सजन बने, सो तो प्रनेम दूर ॥
 पीडी वावे पावडी, टोली नेने पग ।
 दीवे वेळा न मचल, तो वाहे च्याव पग ॥

[इसके आगे मूल का ५६७ नंबर का दूहा है ।]

फरहे परको सामळी, भग नानी उत्रिक ।
 माभिम राते मारवी, सोयो मत्रप भावति ॥

[इसके आगे मूल का ५४३ नंबर का दूहा है ।]

ढोलो घरे पधारीयो, दरप्या समळो गाम ।
 पूगळ राजा आवायो, दरपे कीदी प्रणाम ॥
 कीजे ऊगट माजणी, बीजे सगत महेज ।
 सेभ पवारी मारवी, सुंदर सुगण सहेज ॥

[इसके आगे मूल का ५४१ नंबर का दूहा है ।]

तन सिणगारयो मारवी, सिणगारयो सह दरप ।
 अने चंदन महमडे, मोहे बीडो दरप ॥
 मारु हसी मुळकनै, बीचळी पिवेइ फ दंत ।
 च्यारे दिस सुवस बसी, एस गळ लग्गी फत ॥
 ढोलै दीटी मारवी, अदमुन रूप अचम ।
 हसकरि पूछे बत्तडी, फटि तू केण अचम ।

[इसके आगे मूल के ५४६, ५४८ और ५४६ नंबर के दूहे हैं ।]

आपा मेळो दिवे दूत्रौ, गया वरस साळेह ।
 हुं तुभ पूछू मारवी, पहिली माँणी केण ॥

अधर तबोलै मॉणीया, कै दीण्यणी चीरेण ।
थणहर कंचू मॉणीया, नयण न जाणुं केण ॥

[इसके आगे मूल के ५५७, ५५१, ५५३, और ५२८, नंबर के दूहे हैं ।]

मूंई हूंती रे वल्लुहा, तूं भलै मिळीयो आय ।
कुसल पळे ही पूछ्स्यां, पहिली प्रेम चपाय ॥

[इसके आगे मूल के ५५५, ५६३, ५६१ और ५५४ नंबर के दूहे हैं]

ढोलो निरखे जोईयो, अपछरकै अनुहार ।
हूई न होस्ये एण युग, मारु सरषी नार ॥
वालंभ जे विरचै नहीं, जे दूहवीया होय ।
अधर अमृत-रस घटता, कवही त्रिपति न होय ॥
घणां दिनाहुं प्रीउ मिळ्यो, मनमानीतो कंत ।
अंगो अंग भीडै घणुं, मिळै हसत हसंत ॥
पुंगळ ढोलो प्राहुणो, रहीयो सासरवाडि ।
पनर दिहाडा पटमणी, माणी मनहर हाडि ॥
सगळो साथ संतोषीयो, पूजी सगळी आस ।
मारु चो तिणहीज गुणोइ, दीन्हा लाख पचास ॥
ऊमर रावा सांभळघौ, जे रावाचो राय ।
मारु चाली सासरै, ढोलो लीयै जाय ॥
पंच सहज पवंगे मित्या, रहीया वनह मभारि ।
माटी तो मारु लीया, मारग ढोलो मारि ॥
ढोलै मरम न जाणियो, चढीयो करह पलाण ।
साथे सो असवार हूआ, इक पहिलडै पर्याण ॥
पिंगळ राजा मारवी, पडुचाई हरषेण ।
मनह सकोडी मारवी, सुषवंत सोहागेण ॥
पुंगळ-हुंती मारवी, चाली ढोलै सत्य ।
चंपावरणो वल्लुहो, घणुं सकोमळ हत्य ॥
पहिलो वासो थळ रह्या, माहे करणुं माग ।
निस भर सुती मारवी, पीषी पैणै नाग ॥
प्रह फाटी सहु जागीया, मारु सुती काय ।
ढोलो कहै हिव तागरी, मारवणी लगाय ॥

जीवो मारु कोटि युग, तूं ना पटो जितान ।
 दोलै फरदो पिलान्गीयो, वजे नखर वास ॥
 धूमि धधूमिनि तानगी, वार पि च्याम युवद ।
 तिरु वेला तिरु छोग्गी, सरळा पीसा नर ॥
 देव ज वसु विन्गासी भो, पोयो ज पाप आधार ।
 मारु तन विन्गासीयो, कत रणो निरवार ॥

[इसके आगे मूल का ६०८ नखर का दूहा रं ।]

विहु नखरो आसु भर, वळि वळि परे विलाप ।
 हा हा देव तिसु कावो, मारु पापी राप ॥
 पिरु रोवै पिरु विलवले, मारु पास वयट्ट ।
 वर धरु दोसो नाट विगु, वरु विरु नाहम विट्ट ॥
 वळनो टोला उम कहै, फळि प्रपीयात फरेट्ट ।
 मारवणी पैरो वसी, हु नव दर राषि वट्टेड ॥
 विळविळीया विलपा हुआ, गसा ज पिगळ पास ।
 मारवणी पश्यौ उती, दोलो साथे जास ॥
 पिगळ राय फटावीयो, दोला वाट्टो प्राव ।
 मारु लहुडी वहिनडी, तोहि-मणो परगाव ॥
 वळतो दालो इम कहै, एएना वचन म भाप ।
 मारुतुं तन कळपीयो, ब्रणा विगन सवि साप ॥
 वन मोडे फठ आणीयो, सगळ किसो जुहार ।
 मारुतु दोलो वळे, हुग्ये ज हाहाकार ॥
 मारवणी दालो ब्रहै, दोलो वैटो माहि ।
 दीवाधरी रै फरदलो, इषपी करै अपाहि ॥
 फरहानै वचीचने, पहिराया सिणमार ।
 नरवर जाए नै कहै, दोला-तणा जुहार ॥
 आरड भीरड करहलो, मिळीया तर मभार ।
 ईसर तेथ पधारीया, साथे उमया नारि ॥
 उमया वोलै ईसरा, किसो अचमो एह ।
 घण केडे कतो वळे, आवी देषा एर ॥
 संफरनै गवरी कहै, प्रीतम ली फिण पाडि ।
 जौ सामी कहीयो करो, तौ मारु जीवाडि ॥

संकर गवरीनुं कहै, आपा फिरां विदेस ।
 मूंआ अनता देषस्थां, कहि केता जीवाडेह ॥
 गवरी थळ फळै छिपी, सकर बहुत विललाय ।
 इम लागे पारवती, अगळि ऊभी आय ॥
 देखी दीन दयामणा, दया करै मन माहि ।
 अमृत आणो छाटीयो, संकर सै हथ साहि ॥
 विस विसहर पासै गयो, ततषिण हूई सचेत ।
 ढोलो मनमा हरषीयो, कै सा पुर संकेत ॥
 ईसर ले उपावीयो, का कीजै अरगाध ।
 गवरी इन पुत्रिका, तेइ न दोधो आघ ॥
 मारु पूछै-कंत सुणि, किण कारण चिह ठाण ।
 तुभ मरंता मारवी, मइ कळपीया प्राण ॥
 हिरणा ही फूटै हीया, टोळासु टळियाह ।
 कहि कैडै रहिवौ किसु, सयणा वीछडीयाह ॥
 ढोलो मारु एकठा, हस वैठा वन माहि ।
 तिहां तेडी दीवाधरी, कीघो लाख पसाव ॥
 पुंगळ जा दीवाधरी, सहु वाता करि आज ।
 धन जीवी प्रीऊ हरषायो, सरीया सगळा काज ॥
 पिगळ राव पधारीयो, कीघो लाख पसाव ।
 घरि घरि हूआ वधामणा, घरि घरि अधिक उछाह ॥
 ढोलो चाल्यो करहै चढि, मारवणी सयुच ।
 ऊमर मारग रोक्यो, ततषिण आइ पहुंच ॥

[इसके आगे मूल का ६२७ नंबर का दूहा है ।]

ऊमर दीठा करहलो, दीठा मारु ढोल ।
 आदर दे मद पावीयो, बोले मीठा बोल ॥

[इसके आगे मूल का ६३८ नंबर का दूहा है और पंक्तियों का क्रम उलटा है ।]

गीत गावंती झूंमणी, पेली नवली घात ।
 एकरस्युं ढोलो ऊवरै, कहि सयभावै तात ॥

[इसके आगे मूल के ६३१, ६३२ और ६३२ नंबर के दूहे हैं ।]

कंब चटककै करहलो, गयो दुरंत ऊठ ।
 मारवणी जे मारीयो, डोलै झाली मूंठ ॥

ततपिण मारवणी कहै, साभल फत सुबाण ।
 आ पाचूको ऊमरो, किम रोलि स अपाण ॥
 भवके करहो भेकीयो, कुंट न बोडी मूळ ।
 धण ढालो मारग वहै, ऊमर भागी सूळ ॥
 मारु चढनी मारियो, त्रिहु नयणाचे वाण ।
 साय म हिततु ऊँमरो, पडीयो तिण्यै ठाण ॥
 हलो हलो ऊमर कहै, पवगे पडै पलाण ।
 सो भू लै तसु लाप घुं करहैनुं केकाण ॥
 ऊमर आरहडा पडे, पहुँच न सककै कोद ।
 उवे कीम पहुचे वप्पडा, करहो पंथी सोय ॥
 भाऊ भाट पवारीयो, ढोलै साम्हो जोय ।
 पोडो करहो किम खडो, हँसि करि पूछै सोय ॥
 माहरै वासै ऊँमरो चढीयो आवै राय ।
 तिण कारण ऊतावळा, मारवणी ले जाय ॥
 ढोलै भाउनुं छुरी, दीधी वाढै कुंट ।
 पंथ विपम सही लघीया त्रिहुं त्रलणामैऊट ॥
 पथी ऊमरनुं कहै, म मारिजे तुरंग ।
 पोडै करहै लंघीया, जे थळ हुता अजग ॥
 भाऊ ऊमरनै मिल्यो, जव जन बोल्या सात ।
 ऊँमर तव पाछो वळयो, साभळ ढोला वात ॥
 ढोलो धरे पवारीयो, पूगो सगळी आस ।
 मनवद्रित सुख भोगवै, मारवणी आवास ॥

[इसके आगे मूल के ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५८, ६६३, ६६५,
 ६७२ ६७३ और ६७४ नंबर के दूहे हैं ।]

इति श्री ढोलामारुरा दूहा संपूर्णम् ।

सवत् १७७१ वर्षे मति श्रावणमासे शुक्लपक्षे तृतीया-
 तिथी नोमनारे लिपितं आखंडविनय गुंद वच
 नगरे । श्रीश्रीशुभ भवतु कल्याणम् ।

(५)

[आनंद काव्य महोदधि, मौक्तिक ७, मु में प्रकाशित । सं० १८०१
आसु सुदि १० वार शुक्र को लिखित । इसमें कुशललाभ की चौपाइयों तथा
गद्य वार्ता भी सम्मिलित है । यहाँ केवल वही दूहे लिए गए हैं जो मूल में
या अन्य किसी प्रति में नहीं आए हैं ।]

ढोला-मारवणीरी चौपई वात

मठ माहे तापस वधै, विचै दीजै जीकार ।
हम तुम ऐसा रग है, जाणत है करतार ॥
गोहुं पैहला नीपजै, सिर पोतर वर तास ।
पहिलै चोथी मातरा, हमचो है तुम्ह पास ॥
पीउ कारण पीली हुई, लोक जाणै पिंड रोग ।
छाना लाघण भ्हे करा, बालम-तणै विजोग ॥
फौज घटा घट दामनी, धनुष बुंद सिर लेह ।
श्रेकतोही ज विण साहिवा, (मुज)भारण लागो मेह ॥
धण सूती मेले गयो, कत गलती राति ।
वळीयै दिन वळीयो नहीं, बुठै तो वरसात ॥
केता भीड सभीड करि, कडि पतळी म देषि ।
काठी लाल कवाण ज्युं, वळती करो विसेष ॥
सब ही लोवडआळीया, न जाणू धण काय ।
नीले चरणे मारवी, पदम जडावै पाय ॥
मारू लंक नै अगली, पान ज पतल षाय ।
नाह न भीडै डरपतो, मुंघ कडके जाय ॥
करहै जे थळ लंघीया, दोहरा नै दुरग ।
तुं उंमर-मुंमरनै कहै, म मारजे तुरग ॥

ढोरठा

ढोला मारू वात, सांभळता सुख उपजै ।
 कैहवो सखरा पात, भांत भांतसुं वर्णवै ॥
 चतूराइ फडि चोप, जे पिण्णमै जैषी होयै ।
 मरदा देज्यो मोह, लाहो घन जोवन लीयौ ॥

इति श्री ढोला-मारवणीरी चौपई वात संपूर्णः ।

सकल पंडित शिरोमणि पंडित श्री ५ श्री दर्शनविषय गणि शिष्यः पं०
 टीपविषयगणि लिपित संवत् १८०१ वर्षे आसु सुदि १० वार शुक्रे लिपिकृतं
 श्री फडला ग्रामे । सिधल राघ श्री फल्याणसिधवीराज्ये चतुर्मासिक कृता ।
 श्री शुभं भवतुः श्री ॥

— — —

शब्दकोष

शब्द कोष

अ

अखि=आँख ५१
 अंखी=आँख ४७४
 अगणइ=आँगन में ४३, ५४०
 अंगणि=आँगन में २००
 अंगळ=अंगुल, नाप विशेष ४३३
 अगारेह=अगारे में-० से २०६
 अंगुलों=अंगुलों (की), अंगुल एक
 नाप है ४६१
 अतर०-रि-रे=अंदर, भीतर, हृदय
 में २३, २१८, २३६ दूरी, फासला,
 ६१ । बीच में ४६४
 अधारी=अँवेरी ६२२
 अंब-०वा=आम ८, ४७१, ४७२
 अँवळउ=व्यथित, टेढा ३५१ ।
 अइ=ये, ऐसे ३, ४३०
 अइहइ=ऐसे ४६६
 अउ (पुं)=यह ६, १०
 अउभकइ=अचानक ८६
 अउधि=वहाँ २२४
 अउलगउँ=यात्रा या प्रवास कल्लें
 २२४
 अउळगण=यात्रा या प्रवास करने
 को २२५
 अकयथ्य=अकारथ, व्यर्थ १६६
 अकक=आक २८६
 अगलूणी=पहिलेवाली, पूर्व ५०१
 ढो० मा० दू० ३६ (११००-६२)

अगास-०सि=आकाश, ०में २०१,
 २६०, ५२२
 अग्गणि=आँगन में ३६६
 अग्गर=आगार, महल ३१४
 अग्गळि=अकाल में, असमय में
 ३६१
 अग्गि=अग्नि १८१, ५१२
 अचती=अचित्य, आकस्मिक ६२७
 अञ्ळ=स्वञ्छ, अञ्छा, सुंदर ४५२
 अञ्छियउ=स्वञ्छ, अञ्छा ४७१
 अछइ=है ११४, ५७२
 अजइ=अभी, अभी तक १५३, ३२२
 अजोण=विना जाने हुए, छिपे हुए
 १८५ । अनजान, अज्ञान, भोला
 भाला ३३२, ४१६
 अजे=अभी, अभी तक, आज तक
 ११, ४१०
 अज=आज १०७, २१६, ३१२
 ३६३, ५००, ५२०
 अणंद=आनंद १०१
 अण=अन, अ (उपसर्ग) २०,
 २३, ४४६, ५३४
 अण=इस ४७८
 अणदिट्ठा=नहीं देखे हुए २०, २३
 अणपीयह=नहीं पीए हुए, पिए
 बिना ५३४
 अणहुती=अनहोनी, असंभव ४४६

अणावाँ=मँगवाते हैं ६३५

अणुराव=अनुरव, शब्द का अनुकरण
५२

अदिटा-०दीटा=नहीं देखे हुए १,
५२३

अध्व=ग्रथ, आघा ५७७

अन=अन्न २६४, ६१४

अनइ=और ४५६

अपहर=अपहरा १६७, ५६५

अपस = कुत्सित या दीन पशु ३३६

अपूटा=वापिस, पीछे ४०४

अप्याणु=आत्मान, अपने आप को
२३४

अमितरेणु=अभ्यतरेणु, अदर से, बीच
में से ५७५

अभोखणु=आभूपण, गहना ४७१,
४७२

अभम=अभ्र, आकाश ४८७

अमल=अफीम, जलपान व विश्राम
६२८

अमले=अविकार अमल १२

अम्हाँ=हमारे २०

अम्हीणइ=हमारे ४०१

अम्हीणी=हमारी १३५, ५५६

अर=और १६८

अलत्ता=अलक्तक, महावर ८७

अनापी=वर्षाई ५६६

अळगा=दूर, अलग ४२०, ६२८

अळग=दूर ३०७

अवसरणउ=अवर्षा, पानी न बरसना
६६०

अवरॉह=औरों को, अब ८

अवसि=अवश्य, परवशता के कारण
२००

अवाङ्गु=विपरीत ७१

अविध=अविद्ध, बिना बिंवा हुआ...
२३०

असन्न=आसीन, बैठा हुआ, ३३६
आसन्न, पास में ४४१

असाधि=असाध्य २६८

अस्स=अश्व ५६६

असप्पति=अश्वपति, राजा ५६६

अहंचो=अचंभा (क ६३४)

अहर=अघर ८७, ४७०, ४७२,
५१६, ५१७, ५१८, ५६६, ५७२

अहलउ=व्यर्थ, योही ६१८

अहिनाँणु=अभिज्ञान, चिह्न ५१६

आ

आँखयो-०खियो=आँखें ११६, ५१६,
५३१

आँगळड़ी = अगुली १४४

आँणु=लाकर ५१५

आँणि-०णो=ला ३४ लाकर ३३६,
३४४, ५८८

आँणी=लाई गई ५४४

आँणवा=लाया ५७३

आँचउ=आम ११७

आँमली=विमल ३०३

आँसुआँ=आँसुआँ से १३७

आ=यह (स्त्री०) ६, ८, १०,
१७८, ४४०

आइ=आकर १७, ११२, ११६,
१२१, १२३, १२५, १३२, ३७१,
४००, ४२७, ४४७, ५०४, ५०६,
५५८, ६४३ । आता है ५८ । आ
११५, १६७

आइस=आदेश, आज्ञा ६

आई=आ गई २१५, ५६५, ६३६ ।
आकर ५६१

आए=आना १५५ । आकर १८५

आएस्त्यों=आवेगे ४६०

आके=आक में ६६१

आखइ=कहता है १६, २०, २४,
१११, ४४० कहे १११

आखय=कहता है ८०

आखर = अक्षर (आतरिक प्रेरणा)
६७

आखे = कहना १२४, ३१४ । वर्णन
करो ४६७

आगम = पहले से, आगे से ५१६

आगली=आगेवाली, बढकर २३७

आगळि=आगे १४२, १८३, २४०

आधी=दूर, अलग (थ ६०)

आघेरि = दूर ६३

आछुउ=अच्छा ३०६

आजूणउँ=आजका ५३०, ५३१

आजूणी=आज की ५६७

आजे=आज ही ५५६

आठम=आठवाँ ५८६

आउड=आड़ा, बीच में ११३

आडवळा-ळे = पहाड़ विशेष, राजे-
पूताने का आरावली पहाड़ ४२४,
४३६, ६४०

आढा=बीच में ६१, ६६, ७०, ७२,
१६४, २१२, २१३, ४१६

आण्णदियउ=आनदित हुआ ५५०

आण्णउँ, आण्णूँ,=लाऊँ २२६, २३०

आण्णौँ=लावें २३२

आण्णौँवेसि=मँगावेंगे २३३

आण्णिसि=लावेगा २२८

आण्णैँ=लाऊँगा ६३५

आण्णयउ=लाया ३२६

आतम=आत्मा ११४

आथमणउ = अस्त होने की दिशा
५४६

आदिता = सूर्य ४६४

आदिरस=आदर्श, शीशा ५७६

आदीता=आदित्य, सूर्य ४६३

आधौँफरइ = आकाश और पृथ्वी के
बीच में, बहुत ऊँचे पर, ढालू
जमीन पर, अधित्यका पर, छुज्जे
पर ४३६

आपण्णौँ=पकड़े, पहुँचे ३८४

आपण्ण=स्वयं, अपने आप १५२,
३०७, ६६२

आपण्णइ=अपने में ५१, अपने ५२५

आपण्णउ=अपना ७५

आपण्णा=अपने ६२३

आपणी=अपनी ४१

आपौँ=अपन, हम ६२४

आमइ=आकाश में ४३, ४४

आभय=आकाश में ४६

आमण - दूमणउ = उदास, उद्विग्न
२१८, २३७

आय = आकर १२४ । आ १३४

आया=आए १०६, ५२८, ६४४

आरखइ=अवस्था, दशा १४

आरति=लालसा २०८

आलिंग=अलग, प्रवास में ५२२

आळिगण=आलिंगन ५४४

आवतइ=आगामी ३६५

आवि=आ, अओ १७७, २६८,
४१८ । आकर २०७, ५५०

आविज्यउ=आना ३६८

आवियउ = आया ११, ३०, ३२,
१५१, २५७, ४०१, ४०६, ४२२,
४४७, ५०१, ५२६, ५७३, ५७६,
६५१

आविया=आए, आ गए १०४,
१७६, १६५, १६६, ५२६, ५५२,
५३३, ५३१

आविस्यइ=आवेगा २२७, ५१६

आविसि=आता है १५७

आविस्यो=आवेगे १०८

आवी=आई २७४, ३०३, ३१६,
५६२ । आकर ६०

आवेस=आना, आवेगा १४४ ।

आवणउ=आया हुआ ४४४, आया,
६१६

आवणे=अंगोपार करना ३१४

आसालूष=आशालूष ५५२

आस्यो=आवेगे ३६७

आही = यही २७०, ३७५, ३८२

आहुडइ=जुट रहे हो ५६६

इ

ईणि=इस ३७७

इ=ही २५३

इण=इस २४६, ४३०, ४५३, ४८८,
५०८, ६२३

इणहि=इसी ६२०

इणि = इसमें ५१, २५३ । इस ७६,
७६ १८३, ४२३, ६१४, ६४६ ।

इस (के) ६१४

इद्राँ=इद्र का ५८०

इवइउ=ऐसा २१८

इसइ=ऐसे १४

ई

ई=यह १६३ । भी ही ७१, २००,
३६६

ईडर=देश विशेष २२४, २२५

उ

उआँ=उन (से) ७४

उककवी = उत्कथा, गरदन ऊपर

उठाए हुए १६

उगहँताँइ = उदय होते हुए ४७८

उघट=उकल २३१

उचाट=उद्विग्नता ६१६

उच्चळ चिचो=चंचल चित्तवाले ४८७

उजळी=उज्ज्वल, गौरवर्ण ४६४

उज्यउ = उठा ६३४

उडदउ=उड़ता हुआ ३८०

उडियर=उडकर ४०६

उण=उस ४४, १४१, ४५०, ६४५
 ठण = उस १०८, ६०५
 उण्हि, उडहिन=उसी ६५०
 उण्हार=अनुहार, समान ५८० ६१३
 उताँमळउ = जल्दी से ६३४
 उताँमळा = तेजी से : ३८, ६४२
 उतार = उतारा ५७६, ५८० । उतार-
 कर ६२३
 उत्तर=उत्तर, उत्तरी पवन २८६,
 २१६, ३०१
 उत्तरइ=उतरता है, चलता है १६८,
 २६६ । उतरकर २३०
 उत्तरउ=उतरा, उतर आया २८६,
 २८७, २८६-२६५
 उत्तिम = उत्तम १०३, १८७
 उथापियो=हटा दिया (ज ४४४)
 उदधिर्घियाँ=समुद्रों ४१५
 उदियइ=उदय होने पर (भाग्य)
 ४८८
 उपड़इ=उमड़ता है २६६
 उपराठउ = पीठ किए हुए, विमुख
 ३५०, ३६३
 उपराठियाँ=पीठ की ओर किए हुए
 ६४
 उपन्रियाँ=उत्पन्न हुए हुए, उत्पन्न हुईं
 हुईं ४५७, ४८४, ६६६, ६६७
 उपाड़ियउ = उठाया, उचाट किया
 ११८, ३२४
 उपाड़ी = उठाई
 उभाँखरा = भ्रमणशील ६६२
 उमाहउ = उमग, उल्लास ५१८
 उमाहियउ = उमंगयुक्त हुआ ३०२

उरळउ = हलका ३८६
 उलहियउ = उमड़ा ५३८
 उलाधियउ = उतरा ५३१
 उलाळनो=उलटा करना, नाश करना
 २०६
 उल्हवण=उल्लसित करनेवाला १६१
 उल्हास = उल्लास ४०७
 उवाँ = वहाँ ३६२
 उवा = वह २७१, ४०८ । उस ४११
 उवै = वह ५१ । वे ५२
 उसागिस्वोँ=निकालेंगे, खींचेंगे ५२५
 उहाँ = वहाँ २, १३

ऊ

ऊँचइरी=ऊँची २८, २६
 ऊँट-कटाळउ = (ए० व०) = ऊँट-
 कटारा नामक वास ३०६, ४२७
 ऊँडा = गहरे ५२३, ५२४
 ऊँमर, ऊँमर सूमरउ = ऊँमर सूमरा,
 एक राजा का नाम ६२६, ६२६,
 ६३०, ६३५, ६३६, ६३८ ६४३,
 ६४५ ६४७, ६४६, ६५०
 ऊ = वह ७४, ३६३
 ऊकटियइ=निकलता है २६७
 ऊकटिया=मुखा दिया २६५
 ऊकरड़ी=घूरा ३३६
 ऊगनइ=उगते, उगते हुए १६४,
 ६४६
 ऊगइ=उग, उदय हो-०होना १२६
 १३० । उगने पर ५४६
 ऊगउ=उगा, उदय हुआ १५८
 ऊगट = उबटन ५३५

ऊगरइ=गिरता है, उगलता है
२७२

ऊगसी=उगेगा, उदय होगा
३६५

ऊगाळेह=जुगाली करता है ६३१

ऊचाळउ=प्रयाण या कूच, देश
त्यागकर परदेश गमन २, ६६०

ऊची=ऊँची १६

ऊचेइती=उखेलती हुई १६१, ५२१

ऊजासदउ=उजाड़, जंगल ६३२

ऊठ = उठ ४१६

ऊडइ=उड़ता है ३६०

ऊडावेसि=उड़ावेगा १५७

ऊढी=उड़ी ६७

ऊतरइ=उतरता है ३५८

ऊतावळि=उल्दी, शीघ्रता ३४०

ऊनमि-०निमि=उमड़कर ४१, २५७

ऊनयउ = उमड़ा २७१, २७२

ऊनयउ=उमड़ा, -०हुआ २४३

ऊन्हाळउ=ग्रीष्म ऋतु ३४२, २७६,
२७७

ऊपड़िया=उमड़े, चले २६०

ऊपत्रउ=उत्पन्न हुआ २५

ऊपरइ=ऊपर ५२, ५३०

ऊमउ=मड़ा हुआ ४४७

ऊर्भा=खटी हुई २३७, ३५५, ३५६,
४४७

ऊमगउ=उमंगयुक्त हुआ ५६४

ऊमटइ=उमड़ता है १४८

ऊमथ्यउ=उमड़ा १४

ऊमछउ=उमंगयुक्त हुआ २८१,
३२५, ४४२

ऊमछा=उमंगयुक्त हुए, उमड़े
३१७

ऊमा = ऊमादे, मारवणी की माता
का नाम ७६, ८०

ऊमाहियउ = उमंगा हुआ, उमंग-
युक्त हुआ ४२४

ऊलइइ = उमड़ता है ३००

ऊलाळीनइ=उड़ा दिया जाय,
उड़ाइए २१२

ऊलवे=अवलचित करके-०किए
हुए १५

ऊसनउ=खिन्न हुआ ४६७

ऊसारता=निकालते हुए, ऊपर
खींचते हुए ५२४

ए

ए = यह १६, १८७, २०८, ३१७,
३८३, ४४५ । हे २३ ये ५२, ७३

एकत=एकात (में) ५४२

एकइ=एक ने ४४८

एकण = एक (ने) ४५८, ६२८

एकणि=एक (में) ६०, ६५३ ।

एक (से) ४८८ । एक ४६४

एकनदी=अक्रेनी २२३

एकल्लो=अल्लो को २६५

एछांतरे=एक सौ एक २३०

एण = इस ५२६

एता=इतने ४५५

एथि=यहाँ २२८

एम = यों, इस प्रकार २०, ७३
१७३, ४४८, ६२४

एराकी=हराक देश का प्रख्यात घोड़ा
४५८, ६४१

एवढ़=भेड़ों का भुंठ ४३६

एवाल=गढ़रिया ४३५, ४४०

एवाळॉह=गढ़रियो (को) ६५८

एह=यह, इसमें, इसके २४, १००,
३०६ ३११, ४४१, ६३७

एहवां=ऐसे ३३६

एहवी=ऐसी ४८३

एही=ऐसी, जैसी ४५६, ४६०, ४६५,
४७०, ४७३, ६२६, ६२७

ओ

ओ=यह ६

ओलभिया=छोटे ६४१

ओछइ=ओछे, छिलछिले, कम १६२

ओछउ=ओछा, कम १६२

ओछॉ=ओछे, लुद्रहृदय ३३८

ओढण=ओढने ६६२

ओलइ=ओट में, आड़ में ५६

ओले=ओट में २८७

ओळवा=उपालम, उलहने २७१

ओलखिया=पहचाना ६१७

ओलग=अलग, दूर ११४

ओळग्या=चले, प्रवास किया १८५

ओहि=वह, होता है १६२

क

कचवउ, कचुवौ, कचूकी, कंचूवा =
कचुकी, कंचुली ४६, ३५७, ५५१,
५५२, ५८५

कंटाळउ=कंट-कटारा, एक घास विशेष
४२८७ ६६१

कठळि=कठुला, कठा (एक आभरण,
कठुले के आकार के मेघ ४३, २६७
५२१, ५२२,

कंठा=कंठ से, गले में २१४, ५१३

कठाग्रहण=आलिंगन २१४,

कॅणयर=कनेर, कर्णिकार १३५

कघ=गर्दन २०१।

कधि=कधे पर ६५८

कव=छड़ी, डाली १३५, ४७३, ६३४

कवड़ी = छड़ी ४६२, ४६४

कवळा = कम्मल ६६२

कंवाइयउ = छड़ी से मारा ५२२

कॅमळणी=कुम्हलाई १२६, १३०

कॅवारियोँ,=कुमारियोँ, अविवाहित
कन्याएँ २८६

क=या, अथवा १४०, १४१, ५४२,
६६०। पादपूरक अव्यय ३८१,
४०१, ४६४, ४७३, ५६१, ५६५,
५६६

कइ=की, के, कर, करके ७१, १४५
१८६, २०१, २०२, २७३, ३३३,
३७१, ३७२, ४१७, ४४१, ५२३।
या, अथवा, या तो १४१, २६४
३६१, ४७७, ६६०। क्या, या
२००, २१७, ३६१

कइकाँण=घोड़े ६२७

कइरॉ=करीलो का ४३०, ४३१

कई=क्या, या १४६

कउ=फा ३६, ८०, २३८, २६१,
२२३, ३३३, ५३१। कौन

१७७; २६४। कोई २८, २६,
३३२, १४८

कचोळउ=कटोरा ६५६

कछ्छु = कच्छ देश २२६

कजळ=काजल ५८६

कज=लिये, कार्य १०७, २१६, ३६३,

कजळ = कदली ५३८

कजा = कार्य ५२८

कजि=कार्य ६१५

कटाड़ी=कटारी, छुरी ६४५ ।

कटवाई ६४६

कटाविगूँ = कटाऊँगा ३०

कटोग = कटोग ३७२

कड़=कमर, कटि ३५५

कड़ि=कली ४७६

कड़्या=कड़ी पर (ऊँट वॉवने की)
३७५

कणमण्ड=कुनमुनाती है, हिलती-
ढोलती रे ६०५

कणथर=कनेर, कणिकार ४७३

कण्य=हृ ४०१, ४११ । कथा, वात
६७, ६१४, ६३०

कट=कव १५, १६

कदलीह=केला १३

कर्म=कर्म, कर्मा ४४, १७६

कटे=कट कर्मा १६१, १७६, ६६७

कन=कान ४३३

कन्दा=नास, आने ६५, १००, १०५,
३१७, ६२६

कन्दा=पस १०६

कन्हे=नास १०६

कप्पड़=वस्त्र, कपड़े १३६, २४८
४६३

कवाँड़=कमान, धनुष ३५५

कमदणी=कुमुदिनी १२६

कमेड़ि=पडुखी, पत्नी विशेष २६७

कयर=कैर, करील ६६१

करकउ=(ऊँट के बोलने का) शब्द
३४६—

करकड़इ=अस्थि पजर पर १५७

करकँवळो=कर कमलों (से) ५७३

करळ=कराग्र परिमाण, मुष्टिग्राह्य
४५६

करळव=कलरव ५४, ५५

करवत=आरी ५५

करसण=कपण १२१ । कृपि २६४

करह=ऊँट २२८, ३४६, ३८७, ४३५
५२२, ५३५, ६३५, ६३७, ६४४ ।

करता है ३२३ । हाथों से ६४६

करहइ=ऊँट ने, ऊँट पर ३१७, ३०५,
४३६, ६२४, ५२५, ६३४, ६४८

कणहळउ=ऊँट २५६, ३०६,
३०६, ३१०, ३११, ३१२,
३२१, ३४३, ४२५, ४३१,
६३१, ६३३, ६३४, ६३५,
६३६, ६३८, ६४७

कणहला=ऊँट ३२०, ४६१, ६२७

कणहा=ऊँट ३०७, ३१४, ३१६,
३२२, ४२६, ४२८, ४२९,
४३०, ४३२, ४३३, ४३४,
४४४, ४४५, ४६३, ४६६, ४६६

करही=ऊँटनी ३२३

कराँ=करें ४४५

कराँह=हाथों का ४१५ । करें
६२८

कराड़िया=लंबी गर्दनवाला,
बलवालेनेवाला ४३३

करायइ=लिए हुए (?) १५४

करि=कर, करी, करके, करता
है ३४, ६८, १५८, १७४,
२५४, २७८, ३४७, ४३०,
४८६, ४९७, ५३३, ५५१,
५७४, ६१६ हाथ में ३४६,
४७३ । का ६२७ । से ३३५, ५६८

करिजउ=करियों, करना १७६

करिया=करना १८३

करित्यइ=करेगा ६३६

करी=करके ३३७

करीजइ=करना चाहिए ६२४

करीरों=करीलों के भाड़ ४३२

करर=दुष्ट, क्रूर ६४१

करे=करके, करे ८४, १०६, ३५७,
४०५

करेस=करे, करेगा २६४, ४४३

करेसि=करूँ ५१३

करेह=करे, करके, करना, करता है,
करो २७६, ३१७, ४४४, ५६०,
६५०

करेहि=करता है ३८४

कळहळिया=शब्द किया ६२७

काळप=विलाप ३२३

कळाह्यो=विलाप किया ६११

कळि=कलियुग ६७४

कळिअळ=कलरव ५८, ५६

कळिजइ=पहचानता है २३४

कळियळ=कलरव, कलराव २८३

कळिवेह=कलियों से ५६१

कळी=कली १२०, काने, जीव ४८०

कळजउ=कलेला ७५

कवई=काँड़ी ३७०

कवण=कौन १६५, ३१२, ५७१,
५७२, ५७७

कत=कंधन, ४६

कतरा =कसने, कंधन, जीन को बाँधने
का रसियों ३६६

कसर्वा=कसवी, लजी हुई ३४३

कह=कहता है ६७

कहण=कहने को ३८२

कहना भर्णा=कहने को ७६

कहय=कहता है ३६७

कहों=कहें ६७०

कहिए=कहने से २४२

कहिलइ=कहा जाता है ४०३, ६२६

कहियउ=कहियों, कहना १३६,
६४५

कहियउ=कहा हुआ, कहा है १००,
२११, ३२३, ४४८

कहिया=कहना ६४, ११०, ११२ ।
कहे, कहा ४८६

कहिलाइ=कहलाया जाता है ६६

कहियों=कहेंगे ४४५

कही=किसी (ने) ३४४

कहीजइ=कहा जाय ३४०

कह्यौं=कहने से ३५

कौंइ=क्या, क्यों, कैसे १६, १०७,
१२२, १७७, २१७, ३३४, ३८६,
३६०, ४१४, ४१५, ४१६, ६०३ ।

कोई, कुछ ५१ । या ६२७

कौंवे=छड़ी ४१०

कौंवेदी=छड़ी ४१४

कौंवे=छड़ी से ६३३

कौंमण=कामिनी ४८५

कौंमिण=कामिनी २२२, २३५, २६७,
३२२, ६५२

कौंही=कहीं ३५१ । किसी ६१५

का=या ३४, १०७, २३५, २७८,
२६४, ५६७, ६२०, ६२७ । का,
के, की १४३, १५६, १७२, १८५,
२६२, ६६५ । कोई २१७ । क्या
२३६

काइ=क्यों १६८, ३८६ । कोई २७७,
३२१, ४०३, ४५१ । वा, या तो
३४ । किसी ६१५

काइक=कोई एक ३५

कागळ=कागल १८०, १४१

काछी=कच्छ देश का (जँट) २२८
४६६, ४६६

काळिया=कलगी त्वाहार १५०

काभा=कमे हुए ४१५

काटी=कठफर. मधुचूनी से (?)
४१६

काटियइ=निकालेगा ५२४

कादिम=काटा, कीचट २५६

काने=कानों में ४८०

काप=काट, कटाव १८०

कामडउ=काम ६३३

कामणगारियौं=जादू करनेवाली २४८

काय=या तो २६६

कारणइ-०णि=कारण से, के वास्ते,
लिये ६१, १६०, ३४४, ४३६,
४६७, ५२३, ६५६

कालर=कीचट ४६५

कालह=कल २१६, ४३४

काळउ=काला ३७१

काळ=काला ३६३, ६०८

काळिया=काला (जँट) ४६६, ४६६

काळी=काले रंग की, श्याम, काली
(जँटनी) ३१, ४३, २६७, २७१
४६१, ५२१

काळेजा=कलेजा १८०

कासी=खूब (?) ४६६

कासू=कैसे, किस कारण, क्या १७८,
४४५

काइळियाँइ=कातर २८७

किगाइ=बोलता है (य ३८८)

किगार=फरार (जलाशय का) ४६

किडँ=क्यों, कैसे, क्योंकि २०, ३२,
७१, १५०, ५५६, ६२८

कि=क्या ४३६

किअइ=किए हुए. करते हुए १२

किणु=किम ६२, ३६५, ६४४

किणसूँ=किसो से ५५६

किणहिं=किसी को ६३

किणहिं=किसी ने २२०

किणही=किसी २ । कौन से ५७

किणि=किध (के) ३१२

किनाँ=क्या, या ४०१
 कियइ = करके ४३७ । किया ६४३
 कियउ=किया १, ५४, ५५, ५८, ५९
 ३४३, ४४७, ५८१
 किया, ० याइ=किया, किए हुए १३८
 १५४, १८४, २३५, ३४५, ३६६,
 ५१६, ५६८, ६०७, ६७२
 किर = मानो ६४८
 किरणौह = किरणों ४६६
 किव = किस ५१८
 किसइ=कौन से १३८, १४०
 किसउ = कौन सा २१८, २२२, २२३,
 २५२
 किसा=कैसे, कौन से १७७, ४८८
 किह=कहाँ ८६
 किहि = किसी ३५०
 किहीं=कुछ ४०१ । किन्हीं को ६२५
 कीजइ=किया जाय, कीजिए ६
 कीघ=किया ६, १८५, १८७, ५५४
 कीघउ=किया ३८
 कीघी=की ५२, ५६४
 कीन्हीं=की १६७
 कीयाह = कर दिए ५३०
 कीयो = किया ३५७
 कुँअरी=कुमारी ६०
 कुँअळ=कमल ४७३
 कुँभड़िया=कुंज पत्नी, कुरभ ५८
 कुँभड़ियाँह=कुरभों का २४५
 कुँभड़ी=कुरभ ६७
 कुँभौं=हे कुरभों ६२
 कुण=कौन १६५

कुँमळाइ=कुम्हला जाती है ४७१
 कुँमलाणी=कुम्हलाई ७७, १६३
 कुँवेण=कुए में ६५०
 कु = पादपूरक अव्यय ५६५
 कुअरउ=अविवाहित, कुमार, कुँवारा
 ३२२
 कुहला=कोयला ११२
 कुड़ियाँ = फटने पर १४६
 कुण=कौन ८६, २३७, २८४
 कुमकुमइं=गुलाबजल से २४०
 कुरंगउ = हरिण ३६४
 कुरभड़ियाँह=पत्नी विशेष, कुँभ,
 कौँच २८३
 कुरभौं=कुरभों, हे कुरभो ६३, ६४
 कुरभी=कुरभ पत्नी २०२
 कुरळइ=कलरव करती है ३८६
 कुरळाइ = कलरव करती है २६१
 कुरळाइयाँ = कलरव किया ५६
 कुरळिया=कलरव किया ५३
 कुरळी=बोली, कलरव किया ५१,
 ५७
 कुळ सुद्ध=शुद्ध कुलवाली १७४
 कुहकड़ा=पुकारने के शब्द ६५५
 कुहड़ि=कुहड़ (कुँए की) ३६७
 कुहाइउ=कुल्हाड़ा ६५८
 कु=को ६७, ५३६
 कुँआरि=कुमारी ६५६
 कुँकुँ=कुंकुम ४६६, ६३८, ६५७
 कुँभ, कुँभौं, कुँभडियाँ, कुँभड़ियाँह,
 कुँभळी = कुंज पत्नी ५४, ५५, ५६,
 ५७, ५९, ६५, १६८, ४१७

कूँट = जानवर के पैर का बंधन ६३७
 कूँटियड = बोंध दिया ६२६

कूँपळ = कौपल ४३१

कूँपळै = कौपला, डिविया की तरह
 एक पात्र ५६२

कूकड़ = मृगा ५८५

कूट = ६४४, ६४५

कूच्यह = बँधा हुआ ६४८

कूटि = ६४८

कूटियड = बँधा हुआ ६४७

कूदर = भूठे ही ३३०, ३३५

कूण = कौन ३३

के = कौन ११८ । के १६६ । कुल,
 फई, जिन्ही को ६१५, ६२५

केक = कुट्ट ३३०

केकाण = बड़ा २६७, ३०६, ३७५

केकाणो = यज्ञों ने ३२६

केणु = का कारण ५१८, ५७३ ।
 निरी ने ६३५

केता = गिने १८८, ६७०

केता = निर्माता ७०, १२२, ६८१

केती शेष = निर्माता एक ६३६

केप = बड़ा १२६

केर = ७ ६३६

केण = का, ने ५८, ३३८, ४११, ६४

केनी = की ३३७, ३३३, ३६६, ४००

केरे = ने, का १०३, ५२८

५६१, ५६२

केला, कलि = केने का पैर ४७६,

५६३ । कलि, कीला ५५५, ५६२

केलि-ग्रम = फदली गर्भ, केले के अंदर
 का भाग ४५४

केलिनि = फदली १३२

केवढो = केवदा ४७६

केहइ = कैसे ६३२

केही = क्या, कैसी, कौन सी ५२५,
 ६१६

केहे = कौन से ५४६

कै = के ५८२, ५८३

को = का ३५ । कौन, कोई ८२, २४७,
 २८१, ३८८, ६१४

कोइ = कोई ६६, १११, २१३, २४६,
 २६२, ३८६, ४१२, ४६७, ५१५

कोइक = कोई एक ६७, ३५६

कोड़ि = करोड़ों, कोटि ४६, २३५

कोडी = प्रज ४१६

कोय = कोई ४४६

कोहरह = कुशों में, ५२३

कोहरे = कुएँ में ५२३

का = का ५८६

कयउँ = क्या, कैसे, क्याकर २५४,
 २५६, २६१, ४८०

कयाही = कुल भी ३८२

कया = कैसे ५२०

कयूँ = क्या, कैसे ६१८

कम = का ११०

कु भादि = मुगल के २०५

कु भि } = कुराफ पत्नी ६०, २०४
 कु भो }

ख

खंच=खींचकर, छुककर, तृप्त होकर
४२६
खंचिया=खींच लिया, रोक लिया
४६६
खजर=खंजन, पक्षी विशेष १३, ४५७
४५८, ६६६
खडियउ=खडित किया ३६५
खंडी=खडित किया ३६५
खति=अभिलाषा २३८
खग=खग २५५
खडंति=हाँक रहा है ४२३
खड़इ=चलाता है ५१६, ६४२
खड़हड़=बड़ाम से २३६
खड़हड़िया=खटके ३८०
खड़ों = हॉके, चल दें ६२४
खड़ोंह=चले ६२८
खड़ि = चलाकर ४६०
खड़िस्यौं=हाँक देंगे (सवारी को),
चल देंगे २७८
खध्व = खाया ३८१
खमणी=क्षमाशीला ४५२, ४५६
खयँग=तलवार ६४०
खरउ=पूरा पूरा, निश्चय ही ३०२
खळकह=शब्द करता हुआ बहता है
२६५
खवास = नाई, राजमहल का एक
भृत्य (जो प्रायः नाई जाति का
होता है) ८०
खौण=खानेवाला ३०६
खाअउ=खाओ, खाते हो ११७

खाइ=खाता है १४, ८२, २०१७
२१६, २५४, ३७१, ३६३, ४२७,
५८८
खाहि=खाता है १६० । सह रहा है
४३६
खिवी=चमकी ५४२
खिचमति = सेवा ५३५
खिरा = गिरे २६४
खिल्लोखिल्ल=गड्डुमड्डु (मिल गए) ५३
खिचताँ=चमकते हुए १५०
खिवइ=चमकती है १६१, २६०, ५२१
खिवियोँ=चमकी १८६, १६०
खिवी=चमकी ८६
खिस=खिसकर ३४६
खिसइ=क्षीण होता है, उतरता है
१७७
खिस्या=शिथिल हो गए ४४२
खीच=खींचकर, मुँभलाकर १४६
खील्यौरी=गडरिया ४३८
खुणसउ=खुनस ५४६
खुरसाँण=तलवार ३८०
खुरसाणी=खुरासानी ६४०
खूँटइ=खूँटे पर ३७४
खूदइ=खोदता है २३७
खेत्रि=खेत १४६
खेलाइइ=खेलाता है ३३४
खेह=खेह, धूल ३६०
खोजे=खोजता है, ढूँढता है ३६१
खोटइ=खोटे ६२६
खोटों=भाग्यहीन, अभाग्य २३६

खोड़ड=लॅगडा ३१७, ३१८, ३१९,
३२०, ३३३, ३३५

खोड़ी=श्रीमी ६०६

खोरड़ी=वृद्धा ४४३

ग

गह=चनी गई, बीत गई ४४३, ४६६

गहय=गई ३६३

गडल = गोला, गवाज २८

गडये=भुगये में २१३, ३६२, ३७३

गडि=गडकर ५०

गडवदप्रड=डन्मच हो गया है
(य ११५)

गट्टिया = गट्ट गण ५५३

गमनि=विनाता है ५६८

गमाया=गँवाए, विताए १६५

गय=गति, चाल ४१०, ४५८, ४६०,
४७४ । गज २३१, ५६५ । गया
५७७

गयोँह=जाने से १६२ । गए हुए १५२

गरय=द्रव्य १६६

गरम = भीतरी भाग ४७६

गल्लत = म्परीत होती हुई ३८०

गळोँह=गडे से ५५२

गळि गयोँ=गल गई १४४

गळिगोर = गलने से (तपस्या करते
गए) ४७७ गलियों में ६८६

गळियाह=गल गए ५६०

गळिहार=गले का हार १८६

गह=गह, गर ८८६

गहियाया=उत्पुष्टन हुए ३६

गहगहह=प्रसन्न होता है २५१

गहियं=ग्रहण किया हुआ ५७५

गहिलड=पागल ५८६

गहिलाह=त्रह जावे ६६

गाँमढह=गाँवडे में ४२६

गाडर = भेड़ ६६२

गादह=गधा ३३३, ३३५

गाभ=गर्म २८२

गार-०रि=कीचड़ २६६, २७०

गाळि=त्याग १६६

गाहा=गाथा, एक छंद का नाम

५६७, ५६८

गिँभार=गँवार ६३३

गिगुत=गिनना है २०८

गिरह=पर्वत का ४७

गिलतह=प्रास करते हुए ४६६

गोरी=गोरवर्ण ४५२

गुंनारहळ=गुंणफन ५७२, ५७४

गुलिगदे=गुंन लटे ५३

गुजगर=गुजरात देश २३२

गुण=सद्गुण १६४, ३७४, ४८७

ज्ञान २८ । डोगी, रसी १५५ ।

प्रत्यक्षा २४६ । गुणोक्ति ५६७ ।

कारण से ५६६ । बल, श्रुता ६४४

गुणिय=गुणी १०

गुणे=गुणों में ३७६, ४६८

गुरोह=गुण से १८२

गुरोदि=गुण मे, श्रुत से ४६१

गुफकागुध्व=हृद आलिंगनपूर्वक

५८३

गुहिर = गहरा, गहन १८
 गुहिरइ = गंभीर १८८
 गूँथूँ = गूँथती हूँ ३६६
 गूढा = गूढार्थ ५६७
 गोठ = गोष्ठी ५५६
 गोठणी = साथिन ४३८
 गोरंगियोँ = गौर अंगवाली ४५७, ६६६
 गोरकी = गौर, सुदर स्त्री २२३, २८०,
 २८२
 गोरियोँ = सुंदरियोँ ६६५, ६७१
 ग्या = गए ६२६
 ग्रह = पकड़कर ५४४
 ग्रहवास = घर में निवास करना ४०६
 ग्रहि = पकड़कर ३४६

घ

घटा = घनघटा २५५ । घाटियोँ
 (पर्वत की) ३८५
 घट्ट = शरीर (में), शरीर २६०, ६०२ ।
 घाटी ४२४
 घड़ = परत पर परत, घटा १७१
 घड़ाऊँ = वनवाऊँ २२४
 घड़िप, घड़ियउ = घड़ी में २२८,
 ३०८
 घड़, घणउ, घणा, घणे = बहुत १७,
 २७, ४८, ६६, ८३, ६५, १३६,
 २१२, २६०, २६८, ३६५, ३६०,
 ४२३, ४२६, ५१८, ६०८
 घणाह = बादलों, १५४ । बहुत २६६
 घणी = ०णीह = बहुत ७२, ६४, ६४३
 घराँह = घर के ५१६

घरेह = घर के २७२
 घाँघळ = कष्ट, बखेड़े १७
 घाउ = घाव २६७
 घाघरइ = घाघरे से ५३७
 घाट = गठन (शरीर का) ४६६ ।
 वनावट, ढग ४६६ । मार्ग, रास्ते
 ६१६
 घाढा = निकाला (?) ६५७
 घातउ = डालो १२४
 घाति = डालकर ३४३
 घातूँ = डालूँ (ख ३१२)
 घालउ = डालो ३१३
 घालो = डाली ३४५
 घालूँ = डालूँ, बाँधूँ ३१२
 घूघरा = घुँघरू ३१२, ३४३, ५३६
 घोट = युष्क २६६
 घोटड़ा = हे युष्क ४३६

च

चग = पतंग ४६५
 चगा = अन्धे २८६
 चंगी = अन्धड़ी, सुदरी २८८
 चंदउ = चंद्रमा २०१, ४३७, ५३८
 चंदेरी = एक स्थान का नाम ४००
 चंपउ = चंपक, चपा ४६८
 चपेल = चमेली का तेल ३२०
 च (सं० प्रा०) = और २३४
 चइ = के २
 चउ = का १०
 चउकी = चौकी, पहरा ५६६
 चकल = (चक़ु), नगर ४१८
 चटकउ = शीघ्रता ५८१

चढफडा=मार से, शीत्र ४१०
 चढेहि=चढकर ३७६
 चढ्या=चढे, चढने पर १६६
 चढत=चढता है ५३४
 चढती=चढती १२
 चढीत्रद=चढा जाता है ५२३
 चढ्यउ=चढा ११५, ६२५
 चढ्या=चढे ६४४
 चमकउ=चमकना चमक ५०८
 चमक=चौकर १५०
 चमकियउ=चौका ५१२
 चरती=विचरती हुई, ६०, ६७
 चरद=चरता है ३१०, ३११ । चरे
 ४२८
 चर०गि=चर, ला ४२६, ४३४
 चरीय=चरित्र २३१
 चरने०लेह=चाऊँ ३१६, ४३१
 चलंतह=चलने हुए (ने) ३६६
 चलतउ=चलता हुआ ३६२, ४२६
 चलती=चलने हुए ४१५
 चलगा=गाति, चाल १३
 चलगे=पथ पर, चरगा १६७
 चरपत=चनपत, पापन ४८७
 चल्ल=चल ३६६
 चरदा महडि=चरदपहन (चुन)
 ११, ११, ४३
 चरौ=(हम्) फी, कदने है ६५,
 ३३८
 चरदुिरी=चरी, चरी हुई १५२
 चरौउ=चरा १३०

चाह=चाह ५२६
 चाचरि=चर्चरी, नृत्य विशेष १४५
 चाढो=चढाई ६२५
 चातृंगि=चातक, पपीहा १६
 चारण=एक जातिविशेष ४४१,
 ४४४, ६४३-६४५, ६५०
 चाल=चल ३५६
 चालह=चलता है २४६
 चालउ=चलो ६१३
 चालण=चलना २७७, ३४३
 चालणहार=चलनेवाला २७५
 चालियउ=चला ३४८, ३५०
 चालिया=चले ३११
 चालिस्थउ=चलोगे १०७
 चालिस्थौ=(हम्) चलेंगे १०८
 २७८, ३०६
 चाली=चली ५३७ ५३६, ५६६
 चाल्यउ=चला ३१६, ३५३
 चाल्या=चले ३५१, ६१०
 चाधु=चुम्त (?) ४८१
 चाहती=साचमगा १६ । देखती हुई
 २०४ । चाहती हुई ५४८
 चाहदी=प्रेम की, प्रेममगा १५ ।
 चाहती हुई ५३२
 चादी=देखी हुई, देखी जाने पर
 ४५८
 चितनह=चिान करना है ५७८
 चितारियो=चमगा किए से ६१२
 चितारउ=याद करना है २०२
 चितारेह=याद फाना है २०२
 चित्रौम=चित्र, तखवार १६

चियारि=चार ६५
 चिह्न=चारों २१४, ३६६, ४६७,
 ५८१
 चींत्यउ=सोचा हुआ (१६८ थ)
 ची=की १०
 चीकणी=चिकनी, कीचड़वाली २७७
 चीतारती=याद करती हुई २०३,
 २०५
 चीतारेह=याद करता है १६८
 चीति=चित्त में २३७
 चुगइ=चरता है, चुगता है २०२,
 ३३६
 चुगतियों=चरती या चुगती हुई २०३
 चुगि=चुगकर, चुनकर २०२
 चुज्जेण=चोज से ५७७
 चुइइ=चुनता है, तोडता है १२०
 चुइ=चूड़ा ४८१
 चुणइ=चुगता है ३८६
 चुणवा=चुने हुए (थ)
 चून=चूर्ण ३७७
 चूके=चूकना ४४०
 चूइइ=चूहा ४७५
 चूड़ी=चूड़ी, बलय ३४६
 चूरि=चूरकर ५६२
 चेत=सावधान हो ६३३
 चेत्रि=चैत्र मास में १४६
 चोपड़िधूँ=चुपड़ूँगी, मलूँगी ३२०
 चोल, चोली=मजीठ १३६, ४०३
 चोवड़ा=चौगुने (देह में) ३०६
 चोवा=अरगजा का लेपन ५६२

च्यार-०रि=चार ४२, १८८, ३३१,
 ५४३
 च्यारह-०रे=चारो २६०, ५२८, ५६६

छ

छछाळ=फवारा ५३६, ५४०
 छंडइ=छोड़कर, छोडता है १६६,
 ४८६, ६५६
 छडियइ=छोड़िए १६६ । छोड़ा-
 जाय २८६
 छंडिया=छोडे १८६
 छइ=है ६४, ११३, २३७, ३३३,
 ४०८, ६३७
 छहँ=छठे ५८७
 छवडउ=वृत्त की छाल ४३६
 छाँ=है ६५
 छाँटी=छींटे दिए २४०
 छाँडि=छोड़ ३६, ६३२
 छाइयउ=छा गया, छाया २४५,
 ३६०
 छाफ=नशा ५३४
 छाजइ=छज्जे पर ५०६
 छाडियइ=छोड़ा जाय, छोड़ा जाता है
 २८५
 छानी=छिपी ६७
 छाला=छाले १५६
 छाळी=बकरी ६६२
 छीलरियउ=छीलर गढैया, छिल्लर
 ताल ४२६
 छुटे=खुले हुए ५४०
 छुटो=छूटा है, चला है ५३६
 छेक=छेद ५१४

छेत्री=ठग लिया ५११

छेत्रियाह=ठग लिया ४१७, ४१८

छेत्री = फासला ६४३

छेह=किनारा ३३७ । अंत ३३८

छोकरी=दासी ५६६

छोहरी=दासी ३३४

छोलह=छोलती है ५८८

ज

जव, जव=जंघा १३, ४१४, ४७३

जनालेह = स्वप्न से २०६

जति=जाता १६३

ज=अवधारणवृत्तक ज पादपूरक

अवयव ३०, ३१, ५१, १०८, ११६

१३१, १३३, १५३, १५६, १७५,

२००, २०६, २१८, २६७, २७३,

४२४, ४३३, ४३५, ४४२, ४४६,

४७२, ४६५, ५०४, ५०५, ५०८,

५४८, ५८७, ५६०, ६१६, ६२०,

६३८, ६५०

जहँ=जहाँ ६५७

जह=जो, यदि २३, ७३, ११०,

१११, ११८, ११६, १२४, १४२,

१४५, १४६, १७०, १७१, २११,

२१८, २२४, ३३३, ३४८, ३६६,

४३७

जहहर=जाधिया ६५१

जउ=जो, यदि ३, १०८, १११,

१३५, १४७, १४६, १५१, १५४,

१७१, १६३, २१४, २२८,

२४१, २५०, २७१, ३३८, ४२२,

४२८, ४७५, ५६३, ५०६, ६३३

जऊ=जो, यदि २०३

जफाह=जो, जौन सी ४४५

जण=जन, मनुष्य ४०, ६६, ४८२,
५१४

जणोह=जन से १३६

जद=जव ५११, ५१४

जमराँगाँ=यमराज (ने) ६१०
(ज० घ० थ०)

जय=जो, यदि

जळत=जलता है ६१८

जळह=जले, जलता है ६१८

जळह=जल के, ०से १६३

जळहर=जलधर, मेघ, ५० । सरोवर
३६४

जळि=जल में ६६

जाँ=जहाँ २८६ । जव ४२०

जाँगाँ=मानो २२, ३८१, ५३७ । जान
१८५, ५१६ । जानकर ३३६ ।

मानकर ३२६ । ज्योही ५७६

जाँगाँह=जानता है ३३२

जाँगाँ=मानो ८६, २६७, ३७७,
४१६, ४६२, ४६३, ४६५, ४७३,

५३६, ५६१, ५६५, ५६६, ६२२ ।
जान १८६ । जानकर ३४२

जाँगे = मानो ५३८, ५५५, ५६५,
५६६, ६१६, ६३८

जाँगाँउ=जाना ३०, ३२, ५४, ५७२

जाँह=जिन, जिनफा २२३, ५२६,
५४१ । जावें २२३, २२४, २४४,
२४५, २६६, ४६८, ४६६

जा=जा (आज्ञा) ४०६ । जिस
२६२

जाइ=जाकर ६८, १०१, ११२,
१८३, २११, ३६८ । जाता है,
जावे १२, ७६, ८२, २२८, २३१,
२४६, २६१, ३८७, ५४६, ५४८,
५५८ । जा १२०-१२२, २६६,
४५६ । उत्पन्न होता है, जनमता है
४६८

जाइयइ = जाइए २२६, ३००

जाइसि=जावेगा २२६

जाउँ=जाऊँ ३१६

जाए=जावे, जाता है २८३ । जाकर
३०७, ४४३

जागंती=जागती हुई ४१८, ४१६

जागइ = जगती है, जग रही है । ३५

जागती=जगती हुई ३४२

जागवइ=जगाता है ७६

जागवी=जगाई ५०५, ५०७

जागियउ=जगा १२३

जागी=जगकर ३७८ । जगी ३४५

जागूँ=जगूँ, जगती हूँ ७६, ५११,
५१४

जाण=जाने २२५

जाणइ=जानता है १७, २२१, ४१३
जाने का ६१, जाने १११ । मानो
३८८

जाणइला=जानेंगे २१३

जाणउ = जानो, समझो ६

जाणही=जानता है ४८४

जाणिजइ=जाना जाता है २३४

जाणी=जानी ७६

जाणूँ=मानो, मुझे ऐसा भान होता है
५०५, ५०७, ५१६

जाणी=जानी ७६

जाणे=मानो १६२, १६६, २३६,
४७०, ६७०

जात=जाता है ३७३ । जाओ तो
४६०

जातउँ=जाता हुआ ४४१

जातौं = जाते हुआ की ३७८

जामोपत्ति=मतान का जन्म ५७

जाय=जाता है ४७३

जायइ=जाता है १३४

जाया=उत्पन्न हुआ ४६१

जारी=जलाकर १८१

जाळ = जाल, वृक्ष विशेष, कदव (?)
३६१, ४१०

जाळि=जाल, वृक्ष विशेष ४३२

जाळि=जलाकर २८६

जाळउ = जाला, जाल, समूह १५१

जावइ=जाता है २६, ७८

जावउ=जाओ १०५, ११०, ५२५

जावता=जाते हुए ६४१

जास=जिसका, को १६५

जास्यौं=जावेंगे ६२८

जाइ=जाता है २८४ । जाओ ३४०,
४६८ । जाकर ४४५

जाहि=जाता है २८१, ४३६, ५३८ ।
जावे १८१

जि=जो ६६, पादपूरक व अवधारण
सूचक अव्यय ४५६

जिउ=जीव, प्राण ३१, ३५
 जिउं=ज्यो १६, ५६, १४३, १६३,
 २०५, २१४, ३६३
 जिए=जिसके १६६
 जिभा=जो, जिनके (?) ३०३
 जिण=जिस, जिन ५३, १०३, २४६,
 २४७, २५६, २६१, २६२, २६५,
 २६६, ४४२, ५०१, ५४६, ५५८,
 ६६१
 जिण्णि=जिस, जिन, जिसने, जिसमें,
 जिससे ७४, २८०, २८३, ६०८
 जिन=मत १४३
 जिन्हों=जिन२१
 जिसउ=जैसा ६३
 जिसा=जैसे ४८०, ६४५
 जिषी=जैसी ४७६
 जिहा=जहाँ ३०१, ३८६, ६५५,
 जिहाज=जहाज, जैट ६४३
 जीण=जीन २४८, ३७५
 जीमणार=मोज, रसोई ५८७
 जीवण=जीवन २१
 जीणसे=जिण्णि ४२
 जीर्ण=(दम) जिण १३८
 जीवाइउ=जिण्णिओ ६२०
 जीर्णइ=जिया साय २५५
 जीर्ण, जीर्ण=जिण्ण १४०, २६३
 जीर्ण=जिण, जीर्ण रहे १०८
 जीर्ण=जिण, जीन ३४०
 जी-जा, अण्णारण्णवण व पादपूरक
 अण्णय १६, ५१, १३२, १८४,

२५८, २६२, २६६, ३४१, ३४४,
 ३८५, ४५२, ५८८
 जुवाँण=युवा, जवान ५६६
 जुवाँने=युवाओं ने, जवानों ने ५६६
 जुहार=प्रणाम ३४७
 जैण=जहाँ, जिसने, जिससे (?)
 ३५६, ६५७
 जे=जो (बहुवचन) २१, १०४,
 २०८, २२०, २५४, ४२१, ५५७
 जो, यदि ११३, ११५, ११६,
 १७६, ३२७, ४४६, ४५६, ४८८,
 ४६४ । जो (ए० व०) ४३२,
 ४३४ । जिस (के) ४३६
 जेण=जिससे ३४०, ३७६ ।
 जिसने ५७३
 जेता=जितने ४८७
 जेती=जितनी १७१
 जेम=ज्यो, जैसे १७३ इ०
 जेहवी=जैसी ४६६
 जेहा=जैसे २१६, २१४, ३३६, ४५७,
 ४६०, ४७०, ५६३, ६६६
 जेही=जैसी ४६७, ५६३, ६३६
 जेसइ=जायगा ६४१
 जो=देख ४४५
 जोअणे=योजना पर १६०, १६१
 जोइ=देखकर ३१४, ५०७ ।
 देख ३०६
 जोइणि-०न=योजना २२८, ३०८,
 ५२०
 जोइउ=देना ३०७, ६०३
 जोई=देखकर ३७६ । देखी ६०४

जोएह = देख, देखना ४०६
जोती = देखती ५४१
जोवन-०ण = यौवन ३८, ११५, ११७
११६, १२०, १२२, १२४, १३४
जोयइ = देखकर ३७८
जोयण = यौवन ५१२, ५१५
जोयणों = यौवनों पर १८६
जोवइ = देखता है ६०६
जोवण-०न = यौवन १३१, १७७, ४५०
जौहारि = जुहार, प्रणाम ५८६
ज्यउँ = ज्यों, जैसे ७३, १३५, १६२,
१६३, १६८, २०४, २६७, ३६८,
३८७, ४१८, ४८४, ४६५, ६५५,
६६७
ज्यउ = ज्यों, त्यों १११
ज्यउ = जो २०१
ज्यऊँ = ज्यों, जैसे
ज्यों = जिन ४२, ५८, २१६, ४११
ज्योँह = जिनको, जिनका ७१
ज्योँही = जिस, जिसी २०१
ज्युँ = ज्यो ६, ७३, १११, ३६४,
३६७, ३८०, ३८२, ४१२, ४५२,
४७२, ४७४, ४६८, ५१३, ५२८,
५३४, ५४५, ५५३, ५६४, ५७८,
६१२

झ

झँखइ = झलकता है ४६३
झँखरा = झखाड़ ४६८
झपावेधि = कूद पड़ेंगी १४५
झंभ = दीपको की झमझमाहट ४६८
झटक = तुरंत ३३८

झक्कइ = झलकता है ५४६
झक्कभव = झक्क झक्ककर ३०४
झबुकड़ा = चमक, जगमगाहट १५२
झबुकड़इ = चमक से १४६
झबुकड़ा = चमक, जगमगाहट,
चमचमाहट २६८
झरइ = झरता है, झड़ी लगाकर गिरता
है, टपकता है २४७, २६१, २६२,
२६६, ४७२
झळनो = लौ का जलना; झलना ११३
झळ रहियाह = झल रहे हैं ११३
झँखउ = झँकी, झलक ४६४
झँझर = पैरों का एक गहना ४८१
झाभी = गहरी, श्रत्यत २५६
झाड़ि = झाड़ी ४३२
झाबकि = सहसा ६०३, ६०४
झाबुकइ = झक्ककर, चमककर, चमक
के साथ ३६८
झालइ = पकड़ता है थामता है २८२
झालियाउ = पकड़ा ६३५, ६३६
झालिया = पकड़े, थामे, लिए ५७३
झाली = पकड़ी ६२६ । झाला नामक
राजपूत वंश की स्त्री (थ)
झालि = ज्वाला ६०३, ६०४
झिँगोरघा = कूके, बोले २५३
झीणा = भीने महीन, झीण, ४६३
झीणी = भीनी, सुकुमार ३६०, ४७३,
४७७
झीणो = भीने, आधे बुझे २०६ । हलके
५३७
झीलण = स्नान करने ३६३
झीलोलण = झकोरना (द)

भुरइ=भूरता है, रोता है, विकल होता है २७६

भुळकते = भ्रममलाते ५०७

भूँ पड़ा = भ्रोंपडे ३१४

भूँ बह = भ्रूमता है ३०४

भूँ बणहार = जानेवाला ५६७

भूँ बणा = भ्रमके, कर्णफूल (थ)

भूँ बिया = भ्रूमा ५६१, ५६२

भूँड=भ्रमत्य ४४०

भूर = दुःखी हो, रो ४३४

भूल = भ्रूना १४३

भूलरड=भ्रुंठ ६६४

भेकि=विठाकर ६३७

भोयड = विठाय ३४५

ट

टैफावळ = बहुमूल्य ४८०

टवका = गढ, रव ४८

टचूकइ = टपक रहा है ३६७

टहूकड़ा = शब्द ३४५

टापर = टापर, तपपद्, योद्धों को शीत से बचाने के लिये उटाने का मोटा बख २८६, २८० । जीन के नीचे का मोटा कपड़ा ३४५

टाँडिमा = चुने हुए २२७

ठ

ठरत=गोदल होता है ५३१

ठल्लुइ=ठाली (घाय) १५३

ठरइ = गपकर १४२

ठरडे=पत्राता है ५८६

ठाँण = ऊँट इत्यादि पशुओं को बाँधने का स्थान ३७५, ३८२

ठांम = स्थान ६०

ठाइ = स्थान ६००

ठाकुर = स्वामी २६५, १७७ । सर-दार ६२८

ठेलि = विता ४३०

ठोवडियाँह=ठौरें, स्थान १६०

ड

डवर=लाल १६५

डंवर = संध्या समय के रंग-विरगे बादल ४६१

डँभायड=दाग दिलाया ३३६

डवडव = डवडवाकर ३०४

डर डंवर = श्रंवर डंवर छा गए ४६१

डरपाहि = डर कर ३०१ । डरता है ।

डसण = दशन, दत्त ४५४

डहक=विलखाई हुई ३७२ । डह-टहाता है ४७६, ६३६

डॉम = दाग ३२०, ३२१, ३३२

डांमण=दाग देने ३२७

टाँभियडँ=दागा जाऊँ ३१८, ३१६

टावं=ऊँट पर ६३६

डीभू=वर ४६०, ६३६

डूंगर=पहाड़, पहाड़ी ३६, ६१, ६६,

७०, ७२, ७३, १६४, २१२, ३३८,

३६१, ३८६, ६१८

टूँगरिया = पहाड़ २५२

टूँगे = पहाड़ी पर २६

झमणी=ढोलिन, गाने बजानेवाली
एक जाति की स्त्री ६३०

झल=भूलता है ५८२

डेडरिया=मेंढक ५४८

डेरउ, डेरा=डेरा, निवासस्थान १८७,
५६८

डोका=डंठल (घास आदि के)
३३६

डोहीजह=पार किया जाय २११

ढ

ढकियउ=ढका हुआ ४७२

ढँढोलियउ=टटोला, भकभोरा ६०२

ढँढोलिसि=ढूँढेगा ११२

ढळह=गिरता है ३७७

ढळि=मुरझाकर ४१५

ढाँढा=पशुओं (य ३३६)

ढाढी=याचक - जाति - विशेष १०५,
११२, ११३, ११५, ११६, १२२,
१७३, १८२, १८४, १८८, १९२,

ढाण=ऊँट की एक चाल ४४०

ढाल=ढालू जमीन ४४०

ढुकउ=ठहरा, जमा, लगा ५७२

ढुकड़ा=पास १८७

ढुक्सि=ठहरता, पास पहुँचने की
इच्छा करता है ४२६

ढोल=ढोला २४३, ३६०, ६७४ ।

ढोल बाजा ३५३

ढोलह=ढोले, ० फो, ० फा, ० से,
० ने, ० के, ढोला ६०, ६४, ६५,

६६, १०५, ११०, १२०-२२, १२५-
३४, २०८, २०९, २१०, ३०६,
३६१, ४२५, ४३५, ४३९, ४४४,
५०७, ५२२, ५४३, ६२२, ६२४,
६३५, ६३६, ६४३, ६४४, ६७१,
६७३

ढोलउ=काव्य का नायक, ढोला ४,
१०, ४१, ७६, १०२, १२३, १८१,
१९५, २४३, २७६, २८१, ३०४,
३०८, ३४३, ३५३, ४१०, ४२३,
४४१, ४४७, ४४८, ४८६, ५०१,
५४२, ५४४, ५५०, ५६२, ५९६,
५९९, ६१५, ६१७, ६१९, ६२६,
६३८, ६४६, ६५१, ६५३

ढोलणा=ढोला ४२७

ढोला=हे ढोला ४३, ६४, ८१, ११७,
१३८, १३९, १४६, १५०, १५१,
१५४, १५७, २३७, २७३, ३१९,
४३१, ४३८, ४४०, ४४३, ४५९,
४६०, ४६५, ४७०, ४७३, ४७७,
४८३, ४९४, ५६०

ढोळी=उँडेल दी ५९२

ढोलूँ=ढोला ५०५

ढोलो=ढोला, ५१२, ५६०

ण

ण=न, नहीं २२५, ६०५

त

तंत=तंत्री, बाजा ६३०, ६३१

तंती=तंत्री, वाद्य २२३

तंबोळ=ताबूल २२३, ३५३ त=तो,

पादपूरक अण्वय ६५, १०८, २११,
२४४, २४५, २५७, ३८६, ४८५,
४८८, ५५७

तई=तू, तुझसे, तूने २०, ३२, ३६४।
४४६, ६०६। से १६५। तैरे ४३६
तइ=उस ४३७, ५१२

तड=तो, पादपूरक अण्वय १०८,
१२८, १४२, १४६, १६७, १७०,
२०३, २१६, २२५, २६०, २७७,
३१८, ३१६, ३४७, ३६६, ४५६,
६६३, ६६८

तजेसी=झाड़ देगी ४०२

तज्या=ओढे ३५३.

तगई=कं, का १४६, १५७, २१०,
२४२, २८५, ४३६, ४८६, ५८०,
५६३। से ६००

तगउ=जा ४, २३१, ३१५, ३३२,
४४१

तगफइ=तनतन तनतन शब्द करता
है ६३१

तगा-गौं=कं, का २१, ६६, ८२,
१०४, १६४, ३४८, ५१६, ६७४

तगौं=फी ४, ६३, १७१, २३८,
३८८, ४१३

तगो=ते ५५०

तगण=उगी समय ६५४

तचा=गर्म, संतन २४१

तघ्य=तघ्य, रहस्य ६३

तद=त २६८, ५११, ५१८, ६०५

तनइ=वन का, ० से ०६, ७८

तनि=वन में ११६

तने=तन से ५६६

तण्यउ=तपा २३६

तरत=चोरों का, तीखा २६३

तर=गहरा ३२

तरणापउ=यौवन १२

तरतर=तैरते तैरते ३७६

तर्लाण=लीन हुआ

तळाइ=ताल में ३६३

तळि=नीचे ३६२

तस=उसका ५८०

तसु=उसका ८७, ६०

ताँ=तब ४२०

ताँइ=उससे २१२, २८२

ताँइ का=उनका ४५७

ता=उसके ३०१

ता फहूँ=उसको १४८

ताकि=मख करके ३०१

ताढउ, ताढो=ठढा २६६, ५५६

ताढा=ठढा २६४

तात=चिता, दुख २७८, ५२५, ६१६,
वेगवती, तेज ३६४

ताता=गर्म १६०

ताति=चिता, फर्मी ६५६

तार=ऊँचा १२

ताळ=प्रमय १०५

ताव=ताप ५५६

ताय=उसका, उसके १६, १६४,
१६६, २२२, २२३, ४३७, ५४५,
६४५

तासु=उसके ५८०

ताइ=उस २१२

तीनइ = तीन ही २५३
 तीने = तीनों ३५३
 तुँ = तो, पादपूरक अव्यय २०४
 तुँही = तू ही १७५
 तु = तो, अवधारण पा० पू० अव्यय
 २२४
 तुखार = घोड़ा २८६
 तुम्ह = तेरे ११४, १५५, ३६३
 तुम्ह = तेरा, तेरे, तुम्हे, तुमसे २४,
 ७५, २३२, २३६, २७६, ३२७,
 ३६८, ४१३
 तुम्ह = तुम ५२५
 तुम्हारउ = तुम्हारा १६५
 तुरि, तुरी = घोड़ा २२३, २७६
 तुरियाँह = घोड़ों पर २८०
 तुहारइ = तुम्हारे २३७
 तूँ, तू = तू ३० इ०, तुमको ४०१
 तेंग = उसमें ३५६, उससे
 ते = वे ४२, २२०, ४३४ । उनसे ६६
 उस (के)
 तिके = वे २४६
 तिहु = टिह्ठी ६६०
 तिण, तिणियाँ = उस ३७ इत्यादि ।
 इसीलिये ५००, ५७०
 तिणका = उनका ५३
 तिणहि = उसी ६१३
 तिणहीँ, तिणही = उसी १०५
 तिणा = उन्हें १०३
 तिणियाँ = तैसे, वैसे, त्यों १२, ६८, ५१३
 ६०३
 तियउ = वह ६६

तियाँ = उनसे ७२ । उन्हें १०६ । उन
 २८०
 तिल = तिल जितना स्थान, रोम ७६
 तिलकस्यइ = फिसलोगा २५६
 तिलाह = तिलों (तिल की फलियों)
 का २८३
 तिल्ली = तिल (की फली) २८२
 तिसाहयउ = प्रासा ४२५
 तिहाँ = वहाँ ८६, २२६, ६६६
 ती = से १६०, २३७
 तेङ्गो = बुलाना ८१, ८४, १००,
 १०१, १०४, १०६, १०७, ३३१
 तेण = उससे २३४ । उसमें ३७६ ।
 इसलिये ५७२
 तेणियाँ = उसको ११
 तेता = उतने १७१, ४८७
 तेह = वह ३३६, ५४६ । उसने ५७४
 तेहा, तेही = वैसे २१६, ४६७
 तेहातेह = तह पर तह, खूब गहरे
 ५८४
 तो = तेरा, तेरे १६६, १७३, ४६३ ।
 तुमको, तुम्हे ३२५, ५१२ । तो ६८
 ३६५, ४२१
 तोइ = तो भी १२३, ५१५, ६०५ ।
 तेरी १३५
 तोइसइ = तोडेगा १२४
 तोइस्यइ = तोडेगा १३३
 तोनूँ = तुमको ६१६
 तोरइ = तेरे १६०
 तोहि = तुम्हारी ३४१ । तुमसे ३७३ ।
 तुम्हे, तुम्हें ५१४, ६३५

त्वाँ=उनको ५८, ० से २१६
 त्वाँह=उनको, उनका ७१, २२३;
 ० में, ० से ४२२
 त्वाँही = उसी २०१
 त्वाँ=त्वाँ, वैसे ६, ७३
 त्रासा=प्यास ४२६
 त्रिङ्ग=फटती है २८२, २८३
 त्रिया=स्त्री ३१३
 त्रिसूळउ=त्रिशूल, बल २१६
 त्रिहुँ=तीन ६१, ४५०, ६१३
 त्रीनह=तीसरे ४२४
 त्रीज=तीसरे ५८४
 त्रीयाँ=तीनों ४७५
 त्रूटि=टूटकर १४३

थ

थई=हुई २०४, ५२२, ६७२
 थकह=रहते हुए ३३६, ४६०
 थकीं = से २०२, २१४
 थकी=थक गई ३०६ । से ४०८
 थकीयाँ = थकी, थक गई १६७
 थकी=थक गए ३८५
 थक=ठाठ, आविम्बना २६० । समूह
 ६०२
 थकउ=हुआ ११, १६२, ३३०
 ४४७
 थकाह=हुए ४२२
 थकाह=ही गया ५५३
 थक=थक, नून ४६, २४१, २४८,
 २६५, २८६, ३६०, ३६१, ४६८,
 ६४८ । ऊँना स्थान ३८८ । गह-
 मयी ६३२

थळह=स्थल ४१४, ६६८ । मर-
 स्थलो के ६५८
 थळे=कँकरीले ऊँचे स्थानों पर ५२३
 थोँ=तुम, आपके, आपसे, आपने
 ५२, ११३, २३५, ३०६
 थोँकह=आपके, तुम्हारे १६६, ६६०
 थोँकउ=तुम्हारा ६२
 थोँकी=तुम्हारी ४०७, ४०८, ४५६
 थोँके=तुम्हारे ३२८
 थोँमा=खमे ५४१
 था=थे २१६, ५३३, ५६०
 थाह=होता है १४१, १७१, २१६,
 ४०३, ५४६, ६३४
 थाकउ=थक गया है ४१७
 थाकिस्यह=थक जाओगे ५२४
 था (? छा) जह=छज्जे पर, जो थे
 २७२
 थाढा=ठढे २८५
 थाय = रोगा ३८८
 थागा=तेरे ४२८
 थारी = तेरी ३०
 थाह=गहराई १५, १७
 थाहगह=टहरता है, तेरे ६६
 थियाह = हो गए, ४६५
 थियुँ = हुआ २
 थी=थी २३६, ५१२, ६१० । १३६,
 ४६२ । से ।
 थे=आप, तुम, तुमने ६, १०७,
 ३४०, ३४१, ५११, ६१६, ६३२,
 ६४४

थोडो=थोड़ा-सा ४७८

थोवड़=त्रड़ा मुँह ४२८

द

दंती=दाँत, हाथीदाँत ४७५; दाँतों-
वाली ६११

दइ=देकर ३३ । दी ४०६

दइव = दैव, विधाता ४७, ४८

दई=दैव, विधाता २०८, २७३,
५६३, ६३१

दईय=दैव के १

दउढ=डेढ ६१, ४५०

दखणी=दक्षिण का २३२

दखिण=दक्षिण ४८५

दखिणाध=दक्षिण दिशा ३०१

दखख=दाख, ब्राह्म ४७०

दखिलण=दक्षिण (का पवन) १३६

दग्ग=दाग ३३०, ३३१

दणयर = दिनकर, सूर्य ४७८

दध=धली ६०६

दमॉज=ढोल ३५०

दयामणउ=दयनीय, दयनीय दशा
को प्राप्त ५४१

दरक=दरकता है, फटता है २८६

दळ=नशा, मद १६६ । सेना ६४०

दळिद=दरिद्र, दारिद्र्य २०६

दस=दिशा २७१, २७२

दसराहा=दशहरा २७३, २७४

दसिए=दस, दसदस ४६४

दह=दस १६३

दहइ=जलता है, जलाता है ६३

दहण=दाहक, जलानेवाला ३६

दहियउ=जलावे ५१२

दहिसी=जलेगा, जलावेगा २८८-
२८९, २६२

दहेसइ=जलेगा, जलावेगा २६६

दाँतण=दाँतुन ४००

दाँवणि=दामन, ऊँटकी लगाम ३४८
दा=का ४३८

दाइ=उपाय, श्रौचित्य ८० । प्रसन्नता,
पसंद आनेवाली बात ३८७

दाखउँ=कहूँ ४८७

दागे=जलाना ४०५

दाभइ=जलाता है २८४

दाभण=जलना १६०

दाभोला=जलोगे २४१

दाधा=जला, जलाया १५४

दाधि=जलाता है २६८

दाधी=जली ३८८

दाध्यउ = जलाया ३३५

दाय=पसंद ४०८

दाहवी=जलाई, जलाई गई ५१२

दिउँली=दूँगी ७५

दिऊँ=दूँ ७५

दिखणि=दक्षिण देश में ६६८

दिखाई=दिखलाई, देखकर ५७६

दिङ्ग=देखा ५७५

दिङ्गु=देखा, दृष्टि १६०, ४२०, ४५५,
५२३, ५३१, ५७६

दिङ्गियाँ=देखी ६०

दिणियर=दिनकर, सूर्य ७२

दियइ = देना (आज्ञा) १२७ । दे

(विधि) ४८५, ४८८

दियउ=दिया ३, ८५ । देना, दो
३३१, ४०७

दियण=देने १०७, २३१

दियाँ=दो, देना ६६६

दिये=देना है ५८६

दिराज=दिलार्ज ५१४

दिगवइ=दिलावे, दिलाता है ३२१

दिवला=दीपक ५८२, ५६०

दिसाउर=रि, दिसावर=देशातर,
प्रवास २२१, २२२, २२३, २३१,
२४६

दिसी=दिशा में, ओर ६१५

दिहों=दिनों २८०, २८२

दी=दी २०६, २१० । फी १५,
२६६

दीकरी=पुत्री ७

दीवती=दिव्याई देती ५५७

दीनइ=दीनिए, दिया जाय १६६,
२३०, ३३३

दीठ=देवा ३६२

दीठउ=देवा १३६, २४३

दीठा=देगे ६३८, ६४१

दीठां=देखी ८६, ४४६, ४६०, ६०४,
६०६, ६३६, ६४२

दीध=दिया ६

दीधन=दिए १८३, ४४१

दीधन=दिए ३४४, ३६१, ४१६

दीपका=दीपक, दिया ५०५

दीपन=देदीपमान, दीप्त, प्रविद्ध
२२२

दीपसिका=दीप-शिखा, दिये की लौ
४७६

दीपाँ=द्वीपाँ ४६२

दीयइ=दिए, देने से १०६ । दे० ६६८

दीवउ=दीपक ५०६

दीवळउ=दिवला, दीपक ५७८

दीवाधरी=दीपकधारिणी, दासीविशेष
६०५, ६०६

दीसइ=दीखता हे ८८, २३८, ५२४,
६६५

दीसता=दीखते (ये) ४२१

दीह=दिन २८६, ३६४, ४६१, ५६८,
५८६

दीहइउ=दिन ५३१

दीहइ=दिन २००, ३८३, ६३१

दीहे=दिन में २६१, २६५, २६६,
२७६, २८०, २८२

दीहे दीह=दिन दिन, दिनभर

दुकाळ=अकाल २

दुख सहणा=जिसमें दुख सहना पड़े
२३१

दुजण=दुर्जन १६८, १६६, २३४

दुहुवाँ=दोनों २७

दुख=दुःख १५८

दुधे=दूध से ५५६

दुमर=दुःसख ४६

दुमणो=उन्मनस्का, उदास ३१६

दुग हुना=दूर से २०३

दुगिठ्ठा=दूरस्थित, दूर दूर रहनेवाले १

दुगियवाँ=दूर से, दूरस्थित २१४



दूहड़ा=दोहे ४८६
 दूहवियाह=नाराज किया, ० हुए २३५
 दे=दे, देना, दो १६७, २७८, ४१६ ।
 देकर २०६, ३७१, ३७७, ५४४,
 ६११, ६४५
 देइ=दे, देना, ६५८
 देइस=देना ६५६
 देख=देखकर १५० । देखता है १५२
 देखइ=देखता है ४४५, ६४५
 देखण=देखने (को, से) ३००, ३०२
 देखती = देखती (थी) ५५८
 देखि=देखकर २१५, ४४१, ५६६,
 ५६८ । देख २७३
 देखी=देखकर ६३, ८६ । देखी
 ४७८
 देखूँ = देखूँ ५१०
 देखे = देखा ४३५ । देखकर ४
 देख्यो=देखे, देखने से ३८२
 देज्यो = दीजिएगा, देना ४०६
 देवड़ी=देवड़ा वश की स्त्री ७८, ८०
 देसंतर=देशांतर, अन्य देश ४२१
 देस, ० सि=देगा ६२, ६३, १४४,
 २२५
 देसइइ = देश में ६६०
 देसइउ=देश ३८५, ६५०, ६५५,
 ६५६, ६६०, ६६४, ६६५
 देसी=देगी २७१
 देसे=देश में ११, ७४, १८४, ६०८
 देस्यइ = देगा ४०२
 देह=दे ३१, ३०४, ३०५, ४६० ।
 देवे, देगा ३५, ६३१ । देता है

१४७, १८२, ३०४ । शरीर १६१,
 ४६२
 दोड़ेह = दौड़ता है ३५५
 दोनूँ = दोनों ६३७
 दोवड़ = दुगुना, दूना (मोटा)
 ३०६
 दोहग=दुर्भाग्य ५५३
 दोहागिण = दुहागिन, पति से त्यक्त
 स्त्री २६०, २६१
 घउ = दो (देना) ८, ६२,
 घाँ=दोँ ७
 द्रग = दुर्ग २२६, ३००, ३५१
 द्रंगि = दुर्ग में, ० पर ५५
 द्रव = तरल वस्तु, प्रवाह ६१२
 द्रह=हृद, हौज ५४
 द्राख=दाख, द्राक्षा ४२६, ५८८
 ध
 धँण=धन्या, प्रेयसी १२६, १३०
 धघाळू=धधेवाली १७८
 धधूणी=हिलाया, डुलाया ६०३
 धड़ि = धरा ने १४८
 घण=नायिका, प्रेयसी, प्रिया, प्रियतमा,
 पत्नी ८, ३६, ११२, १३५, १३७
 इत्यादि
 घणि=धन्या, प्रेयसी १११
 घणियो=स्वामियो को, पतियो को
 ३६
 घन=प्रिया ५८४ । घन्य है ५३१
 घन्न=घन्य ५
 घनि=घन्य है ५६७



घरइ=घारण करता है २६५, ६३४

घरण=पृथ्वी २५८

घाइ घाइ=दौड़ी दौड़ी ३८८

घापंत = तृप्त होता ४८६

घार=धारा ५८७

घारइ = धारा (रूप) में २१

घाह = क्रंदन ६०६

घाहड़ी = घाह, क्रंदन ३८६

धीरवइ=वैर्य धरते हैं २१६

धुकनी=धुखती हुई, सुलगती हुई
१६३

धू=दुहिता, कन्या ६४, १६६, १६७

धूआ=धुँवा १८१

धूहि = धूल से ३६१

धूणइ = धुनता है ५७६

धूणए = धुनता है ५७५

न

नइ=कर १४३, ४१८ । के ३६८ ।

श्रीर ३६४, ५५४

नइ=श्रीर २७, २२६, २४३, ४२८,
४७४, ५५४, ५६२, ६५३, ६७३ ।

न ६२ । कां ६४, ११४, ३२६,

५१२ । करके २०१, २३१, कर
२२६, के २६६, ३८२

नइगु=नयन ४१

नरुफुकी = 'नाभूपग विशेष, नाक में
पहनने का जेवर ५७१

नगर=नगर ३५४

नइ = पर्यनीय करने ४८६

नदी निराणउ=धमुद्र २३०

नमणा=नमनशील ५६३

नमणी=विनयशीला ४५२, ४५६

नयरे=नगर में १

नरवर=प्रात विशेष, नलवाड़ा, ढोला

का देश २, ४, १०, ६०, १०५,

११०, १८६, २२२, ३३२, ४४५,

६२४, ६४१, ६५१, ६७४

नरवरइ=नरवर को ६२८

नरवरे=नरवर में १

नरौ=मनुष्यों को २१६ । ० से २६६

नळ=राजा नल, ढोला का पिता

१, २, ३, ४

नव=नवीन, नया ३०२, ४६५, ५६३

५६४ । नौ की संख्या ३५४, ३६६

नवला=नये ८१, १५८, ५५६

नवली = नई २१७, ५६७

नवि=नहीं ३८, १५७, ४६१

नवी=नवीन ४७६

नस=निशा २४५

नॉखी नॉख = गिरा गिराकर ३३७

नॉखिया=डाले, गिराए ३६६

नॉख्यउ=डाला २०६

नॉख्या=डाल दिया ५७३, ५७४

नागरवेलड़ी, नागरवेलि=नागरवेल

३०६, ३११, ४२८, ४३०, ५५५

नातरइ=विवाह, संबंध ६

नाळा=नाले २५६

नावत=नहीं आता ६१२

नावियउ = नहीं आया १४७, १४८,

१५०, १५१, १५८

नाविया=(न+आविया) नहीं आए
१४०

नि=नहीं २७३

निकसी=निकली १२५

निकस्यउ=निकला ३७३

निकस्यु=निकला ३७३

निघट्टियाँ=निकले, निकलने से १७२

निचत=निश्चित १८६, ३४२, ६५०

निचती, निचिती=निश्चित ३०६,
६०८

निचोइ=निचोड़कर, निचोड़ते हुए
१५६

निचोवण=निचोड़ने ३५७

निजरि=दृष्टि (से) ५७६

निजळ=निर्जल, जलहीन ६६६

निट्टु=कठिनता से ५२३

निपाइ=बनाकर १०६

निमाँणी=फड़कती हुई ५२०

निरति=खबर ६६

निरधगाँ=पत्नीरहित, विरही २८८

निरेस = चरने को डालूँगा ३२६

निल=नीला २१

निळज = निर्लज ३७३, ५२०

निलाट=ललाट ४६६, ४६६

निवाज=बनाकर, प्रसन्न होकर १८८

निवाँणि = जलाशय ४६०

निवाँणु = नीची (उपजाऊ) भूमि-
वाला ६६८

निवारि = रोको, बंद रखो २७०

निसइ=शब्द १७४

निसइ=रात्रि, ० में १०८, १५६,
१८८, १६२, ५०४

निसाण=नगारे ३४६, ३५२

निसासउ=निःश्वास १४

निहल्लु=अत्यंत, बहुत १६१, ५२१

निहाळइ=खोजता है १५, १७।
देखता है १६

नी=की

नीगमताइ=जाते हुए १५४

नीगमियाइ=गई १५३

नीगुळ=गुल-रहित ५०६

नीभरण=भरने २५६

नीभरणेहि=भरने (से) ४६१

नीठ=कठिनता से १५३, ३६२

नीद्र=निद्रा ५०६

नीमाणी=बोलती रह, चुप रह ४११

नीपजइ=उत्पन्न होता है, निपचता है
२८१

नीरती = चरने को देती ४२६

नीरूँ=चरने को दूँ २२६, ३२०, ४२८

नीलाणियाँ=हरी हुई (न २५०)

नीली=हरी ३६१, २५१

नीले=नीलायमान हुए ४६१

नीळजियाँ = निर्लजाएँ ५०

नीसरइ = निकलता है २८४

नीसरियाँइ = निकल पड़ी ४८३

नीसॉसॉ=निःश्वास १६६

नीहाळंती = देखती हुई २०५

नूँ=को ७, ६, १६, २४, २५, ८४,
८८, १०१, १०२, ११०, ५२६,

५६६, ६१४, ६२३, ६३०, ६३५,
६४४, ६५२

नेड़ी=पास, निकट ६८

नेडेह=निकट ६४६

नेत=नेत्र ४५७, ४५८, ६६६

नेत्रि=नेत्रवाली ८७

नेहवी=प्रेममयी ४३६

नेहाळदी=देखती हुई, प्रतीक्षा करती
हुई २०४

नेही=स्नेह करनेवाली ४६५

नृमळ = निर्मल ५७४

प

पंखइ=पख की (?) ५८

पंखडियॉह=पाखो (पर) ६५

पंखड़ी=पाँख, पत्त ६२, ६६, ७१

पंखि=पक्षी, पँखेरू ५१

पंखिया=पाँखोंवाले ३१-३४

पंयी=पक्षी ५२, ३६७

पखुड़ी = पाँख, पत्त ७०

पँनमै=पाँनवें ५८६

पंचाइण=पंचानन, सिंह ५५४

पछी=पक्षी ४०६

पंजर=विहारा, श्रियि पंजर (अतः
शरीर) १३, १७१, २१३, ३८२

पंजरे=पंजर में, शरीर में ५२६

पटर=रवेत, पाटुर वर्ण ४४२

पटुरियॉह=पटुर, पक्षी विशेष (?)
४६५

पथ=पै, पास ८३

पट्टी=पैटा, टटो ६०३, ६०४

पट्टे=पैटा, प्रवेश किया ४२०

पट्टइ=पट्टे, उभ ओर के ५६

पट्टि=पैठ पर, प्रवेश पर १५८

पउठिया=पौठे, सोए ५६६

पखालण=घोनेवाला ४७

पगइ=पैर में—० से २६६, २७०

पगि पगि=पगपग पर २४४

पग्ग=पैर २०५, ३३०

पग्गे=पैर में—० से ३८८

पकुइ=पीछे ६१, १६७, ४०३,
५६८, ६७०

पज=पान, पाल (?) ३५४

पटे=पट्टे, केशपाश ५४०

पट्टन=शहर ४६८ (च, ज, थ)

पट्टोला=पट्टकूल, रेशमी वस्त्र २३०

पड़ती=पड़ती ५६८

पड़=पड़ता है २८०

पड़इ=पड़ता है, गिरता है, पड़े
२७७, २७६, २८०, २८३, ४३१,
४७८

पड़गन=भाईचारा, प्रतिष्ठा ३६७

पड़तउ=गिरता हुआ २८२

पड़ताळिया=चलाया ३६१

पड़साद=प्रतिशब्द ६०५

पड़सी=पड़ेगा, गिरेगा २८७

पड़इउ=पट्टइ, दुंदुमी ३५१

पड़िनइ=पड़कर १४३

पड़ियॉह=पड़े, पड़ने पर ५३

पड़ियउ=पड़ा, गिरा ४३७

पड़िया=पड़े, गिरे,—० हुए

पटी=गिर पड़ी, पड़ी हुई २३६,
३५६, ३७८

पटेसी=पड़ेगा २८६, २८८

पड़पउ=पड़ा ६१

पणिहारी=पनिहारी ६६४
 पति=पत, विश्वास, प्रतीति ४१३
 पत्नीजू=पतियाऊँ, भरोसा करूँ
 १७२
 पधारउ=पधारते हो, चलते हो २६३
 पधारियाँ=पधारे हुए ५४८
 पधरियाँह=सीधे ४८३, ४८४, ६६७
 पधरियउ=पधारा, आया ५२७
 पनरह=पद्रह (१५) ३४२, ४६४
 पन्न=पर्णा, पत्ता ४३३
 पयट्ट=प्रविष्ट हुआ, पैठा ५३१, ५७६
 परइ=परे, उस पार २२, १८६,
 १६०, १६१
 परखल=परीक्षा ६७१
 परचह=समभक्ता है ६१५
 परचव्यउ=समभाया ६२१
 परजळती=उजाला होने पर ३८०
 परजा=प्रजा ४०
 परठवो=भैजो (न ६५)
 परठव्यउ=लिखा ५७८
 परठिया=बने, बनाए ३६६
 परणिया=विवाहित हुए १०
 परणी=विवाहित हुई ६०, १६७
 परण्यो=विवाहित हुए, ब्याहे जाने
 (के) ६१
 परतल=प्रत्यक्ष ५१३
 परदेशो=परदेशो (मे, से, को) १७२,
 २८४, ५७३
 परदेसी=प्रवासी ३४
 परदेह=परदेश ४३

परभौ=पराभव, दुख, कष्ट ७० (य)
 परहर=छोड़ १८०
 परहरियाह=छाड़ दिया ४१७, ४१८
 परहरे=छोड़कर ३६५
 पराया=पराए, दूसरे के २५४
 परायौ=पराया, दूसरा, दूसरे का
 ५१८
 परि=भौति, समान ७६, ७६, ३७७,
 ४५३ । पर, ऊपर ५६५
 परिघळ=बहुत, वस्त्र (?) २३३
 परिठव्यउ=बनाया, बना ३६६
 परिठिउ=पहना ४६५
 परिणाविख्यो=विनाहेंगे ६१३
 परियाँण = प्रमाण, अनुसार ३४३
 परिवौण=प्रमाण, सच्चा १७५
 परिहरह=छोड़ता है २६५
 परि हाँ=पर हाँ, निरर्थक अव्यय
 ५६५, ५६६
 परीयच्चय=आँचल (?) ५७५
 परेरउ=पराया, दूसरों का २२६
 पलटेहि, पलट्टह=बदलता है १८२
 पलौल=जीन (कैंट का) ३२६,
 ३४३
 पलौणि, पलौणि = 'जीन कसो, जीन
 कसो' का शब्द, चलने की तैयारी
 ३४४
 पलौणिया=जीन कस करके चलाए
 ३६३
 पल्लौणियउ=जीन कस करके चलाया
 हुआ ३०८

पल्लारिगो=जीन कर्मी, चलाए ६४० ।
बचते हुए, चलते समय बचनेवाले
३५०

पल्लानेह = प्रयाग क्रमा ३०५

पल्लवड = पल्लवित होता है १५८

पल्लड = पलते है २०३

पल्लास=गल्लस, दुष्ट १६८

पल्लाड=पलायन ६०६

पल्लग=ल्लवग, बाढ़ा ६४०

पल्लन=हवा २८५

पल्लरिनि=प्रसरित होता-०होता है
२१४

पल्लरिड=प्रसरित होता है २१४

पल्लरियड=प्रसरित हुआ, व्यापा २३६

पल्लाड=प्रसाद, 'पसाव' (एक प्रकार
का दान) ४८६

पल्लारिड=फैलाता है १६६

पल्लारि=फैलाकर ४५

पल्लाव=प्रसाद, दानविशेष ७४

पल्ल=पो ६४६

पल्लरिड=पहना ४६४

पल्लरिड=पहने, प्रथम १४७

पल्लरिड=पथिक ४७५

पल्लरिड = हे पथिक ११०, २४१

पल्लरिड=पहने, पहनता है ४७५

पल्लरिड=पहनने का ६६२

पल्लरिड=पहनने से ८६३

पल्लरिड=पहनी ३६३, ४१२

पल्लरिड=पहने ३६६

पल्लरिड=पहनेगा २३३

पल्लरिड=पहने ५८२

पल्लरिड=पहली १४६ । पहले, प्रथम
५४६, ४१७

पल्लरिड=पथिक १२४, १३५

पल्लरिड=पहुँचा ७६, १७६

पल्लरिड=प्रहर ५४७

पल्लरिड=पॉल्ले, पंख ७१

पल्लरिड=पॉल्ले, पंख ३६६

पल्लरिड=पॉल्ले, पंख ३६४

पल्लरिड= पंख पर ६६

पल्लरिड=हरे हुए, अंकुरित हुए
२४८

पल्लरिड=पानी, खल ४२५

पल्लरिड=पानी, खल २५०, २४४, ३१०
६१४, ६२१, ६५५, ६५७, ६६४

पल्लरिड = पागलपन करो, पागल बनो
८

पल्लरिड=बोला खाओ, पागल बनो
४४६

पल्लरिड=पाइए, पाई जाय ४८८

पल्लरिड=पाई ६७१

पल्लरिड=पैसुलियों ४७७

पल्लरिड=पॉव, पैर २४६, २५७

पल्लरिड=पिलाया ४२५, ६२१

पल्लरिड=पक गया १२१

पल्लरिड=कच, बखतर ४१२

पल्लरिड=लगाता है ५८६

पल्लरिड=कचयुक्त मद्य को खाया
हुआ (?), सवार (?) ५५४, ५८३

पल्लरिड=रिफाव पर, रिफाव से ३०४,
४११

पाछइ = पीछे १०४, ४१७
 पाछउ = पीछा, वापिस ३६७, ४०६,
 ४४४, ६०५, ६०६
 पाछिले = पिछले, पीछे की ओर के
 ५४, ५५
 पाछी = पीछी, वापिस १५३, २७४
 पाछे = पीछे ३५४
 पाज = तालाब की पार २६
 पाठवइ = मेजता है, भिन्नवाता है ८१,
 ६६, १३८ । मेजना १४३
 पाठविसु = मेजेगी ६५
 पाडा = मुहल्ले ३५४
 पाणी = पानी, जल ६६, १७३,
 २३१, ३११, ४२६, ५२३, ५२४,
 ५५३, ६५६
 पान = पत्ता, तांबूल ५८६
 पानहो = पागरखी, जूती १७६
 पामियउ = पावा ५१३
 पामेसि=पाऊँ, पाऊँगी, पावेगी ५१३
 पाम्या = पाए ४२७
 पाय = पैर २५८
 पाय = पाए ३८०
 पारणउ = कलेवा ४३०
 पारेवा = कबूतर १४३
 पारेवाह = कबूतर ४७४
 पारोकियाँ = परकीयाँ १५३
 पाळंखी = पालखी ३५२
 पाल्हविया = पल्लवित हुए ५३३, ५६०
 पाल्हव्या = पल्लवित हुए ५३३, ५६०
 पाळ = सरोवर की पार, पाज १६६,

३८३, ३६४, ५३६, । पायल, पैरों
 का एक गहना ५४०
 पाळउ=पाला, सरदी, ठंड २७६,
 २८०, २८३, २६१, २६६
 पाळि=पाल, निभा ३६७
 पाळी=पैदल ५८३
 पाळीजइ=पालिए, पालना चाहिए
 १६८
 पाळेह = पालता है, पालना २०२
 पासइ = ओर, पास में ७७, ११४,
 २६०, ६००
 पिंगळ = पिंगल, पूगल देश के राजा
 का नाम १, २, ४, ५, ११, ७६,
 ८०, ८१, ८४, ८५, ६०, १०६,
 १६६, १६७, ५२६, ५६५-५६७
 पिवइ = पीता है ६२१
 पीउ = प्रिय, प्रियतम, पति ३७, ४३,
 २५५, २६०, ५७५, ६३१ । पी
 ('पीना' का आज्ञा) ४२६
 पिउपिउ = पी पी, पपीहे का शब्द
 २५२
 पिछताइ = पछताता है १५६
 पिण = भी ६२०, ६२८
 पिय = पी करके ४१८
 पियइ = पीता है ६३१,
 पिया = पिए हुए ५६५
 पिसुणौं = पिशुनों, दुर्जनों, १६८ (य)
 पीउ = प्रिय ३७
 पीणइ = पीने सॉप ने ६१०
 पीष = पिया ५५४
 पीधी = पी ली, डस ली ६०१

पीयशा = पीने, पीनेवाले सॉप, सॉपों
का प्रकार विशेष ६६१

पीळी = पीली, पीतवर्णा ३५४, ४०३

पीवड = पीता है ३१०, ३११

पीवणउ = पीना सॉप ६००

पीवी = पी लो, काट खाई ६१०

पुंडरी = श्वेतवर्णा हुई २५१, ६०२

पुकारियउ = पुकारा ३६

पुणग = लो (दीपक को) ५०६

पुण्णिद = फण्णोद्र, सॉप ४५५

पुणो = पुनः, फिर ५७५

पुरिसे=पुरुष पर (पुरुष एक नाप है)
६६२

पुळह = चलता है १७१

पुळि = चलकर ३८५

पुळिया = चले ६१५

पुह = पथ, मार्ग १८५

पुह करह = चलता है १८५

पुहकर = पुहकर, तीर्थ विशेष ६०,
४२५

पुहरा = पहरा, चौकी २३१

पुहरि = प्रहर में ४२४

पुहवीण = पृथ्वी पर २३४

पुहुँचो = पहुँच ६२६

पुगळ = एक देश श्रीर उत्तरी राक्ष-
धानी का नाम २, १०, ११, ८३,
६६ इत्यादि

पुगळह = पुगळ में ८२

पुगळि = पुगळ में १

पुहुँद = पहुँचा है ४८३

पूळण = पूळने को १६४

पूळी करी = पूळकर ३१६

पूळउ = पूरी हो ४०७, ४०८

पूजियाँ = पूजने से ४७७

पूठ = पृष्ठ, पीठ, पीछे, पीठ पीछे, पीठ
पर ३६१, ४१६

पूनिम = पूर्णिमा ३६५, ५२८, ५४५,
६२२

पूर = धारापात, धारा प्रवाह १४७,
२५६

पूरह = पूर्ण करता है ३६५

पूरउ = पूरा ३६५

पूरि = भरकर, साथ ४६४ । पूरा कर,
तय कर ४६७

पूरी = भरी ६७१

पूहतउ = पहुँचा ४००

पेट = उदर, गर्भ ३१५

पेम = प्रेम २०, ४१२, ५००, ५५४,
५६५

पैहचाह = पहुँचा (आज्ञा) १२३,
१२५-१२६, १२६

पैहन्याह = पहुँचा (आ०) १२७,
१२८, १३०-१३३

पैहन्याय = पहुँचा (आ०) १३४

पोइणिए = पद्मिनियों ने, कमलिनियों
ने, — से २४५

पोयणी = पद्मिनी, कमलिनी

पोहरे = प्रहर में ५८२, ५८३

प्रगट्टियउँ = प्रकट हुआ २५८

प्रगत्यउ = प्रकटा, प्रकट हुआ २४२,
२४४, ६२२

प्रगड़उ=प्रभात ३८७

प्रयाँण = प्रस्थान १८४, १८५

प्रवाँण = सच्चा, सार्थक, वास्तविक
६७०

प्रवाळी = प्रवाल, मूँगा ३७७

प्रह = पौ ६०२

प्रॉण = प्राण जीव २११, ४०२, ६२७

प्रॉणियउ = प्राणी, जीव, आत्मा ११३

प्राहुणउ = पाहुना, अतिथि ११३,
१३४, २७३, २८३, ५८०

प्रिउ = प्रिय, प्यारा, पति, प्रेमी १८,
३३-३६, ६५, १६२, ५८८, ५९१,
६३६, ६३८

प्रियाव = (प्रिय + आव), हे प्रिय,
आ २७

प्रियु = प्रिय, पति २१७

प्रिव = प्रिय, प्यारा, पति २१७, ३६५,
४१५, ५५८, ५८२, ५९०, ६०४

प्री = प्रिय, प्यारा, प्रेमी, पति २६,
३०, ६२, १२४, १५२ इ०

प्रीउ = प्रिय, प्यारा, प्रेमी, पति ३३,
३५

प्रीतम = प्रियतम, प्यारा, प्रेमी, पति
७५, ११२, ११८, १४४ इत्यादि

प्रीतमा = हे-प्रियतम २३३

प्रीति = प्रेम ४१३

प्रीय = प्रिय, प्रेमी, पति ५०४, ६७१

प्रेमइ = प्रेम से, प्रेम में २५, २७५

प्रोहित = पुरोहित १०१, १०३, १०४

फ

फट्टि = फटी १२१

फर गया=लौट गया, फिर गया
५१०

फरुकइ = फड़कता है ५१६

फळॉ=फलों (के) १७२

फळियाँह = फलने पर ३६८ । प्रफुल्लित
हुई ५२८

फळियाह = फल गए ५३३, ५६०

फाकउ = टिड्डियों के बच्चे ६६०

फाग = फाग, होली का खेल ३०२

फागण = फागुन ३०२

फाटइ = फटता है १८०

फाटही = फटेगा ३३०

फाड़तॉ=चीरते हुए ४००

फिरइ = फिरता है ५९६

फीकरिया=नीरस, फीके ६६५

फुरंत=फड़कता है ५१७

फुर=फड़ककर ५१७

फुरइ=फड़कता है ५१७

फुरकइ=फड़कता है ५१७, ५१८

फूटणहार=फूटनेवाला ६११

फूटि = फूटकर, फटकर १४३

फूटी=फूटकर, फटकर १९३ । फटी
६०२

फूलड़ा = पुष्प ६३६

फूलॉ = पुष्पो ५८६ फूलों के १७२

फोग=मरुस्थल की एक पत्रविहीन
भाड़ी ४२८

फोगे = फोग में ६६१

ब

बंके=बाँके ४८२

बंग=घाटी ६४७

बंधन = बंधते हो १२२

बंधा = बंधा ६८

बंधन = बंधा हुआ २२०, २७५

बहटा = बैठे हुए ६६, २२५, २२७,
२३३, २४१, २४३

बहती = बैठती ३७१

बहसत = बैठते ११८

बहसासण = विश्वास से १३३

बहसि = बैठकर ५६

बगड़ = दुष्ट, निर्जन जंगल ८२

बगसह = दान करता है ६३

बचाँ

बचाँह } = बचाँ १६८, २०४,
बचाह } २०५, ४५७
बचाहि }

बची = बचे ६६६

बचियत = बचा, चला २८८

बच्या = बचे ३५३

बटाळ = पथिक ३८४

बढ़ = बढ़ा, ज्येष्ठ ५१८, ६४७

बढ़र = बढ़े १४१

बढ़री = बढ़ पेड़ की ३२०

बढ़ी = बढ़े ५०६, ६१३

बतलावसुं = पुकारेंगी, बुलाऊँगी
३२६

बतीसे = सीढर्य के बचीस लक्षण (से)
४६६

बत्त = बत १३५, ५४६

बदल = बदल १८१

बदली = बदली ४१

बधोमणो = बधाइयाँ, उत्सव ३५१

बध = बधा, दमन किया २२०

बध्दा = बधारे २५७, ३२२

बन्ने = बर्ण के १३६

बसंतह = बसते हुए २४८

बसह = बसता है २७, ४१

बसत = बसो, बसाओ ११६,
१३२

बसे = बस ६१३

बल्लाहा = प्यारे २४६

बलि = बालकर, बलाकर, बलकर
११२, २८६

बहह = बहता है ६८। दौड़ता है
३६४

बहतो = चलते हुए ५६८

बहरसा = बाहुओं का एक आभूषण
४८१

बहळ = बहतेरा २६४

बहि = व्यतीत हो गया, चला गया
४५०

बहि गयत = गया था ३६२

बहुच = बहुत १७६

बहुगुणी = अनेक गुणोंवाली ४५२,
४५३

बहोङगा = लौटे, लौटाए ३६२

बाँधि = बाणी, बोली ३४

बाँध = बाँधे, धारे २६५

बाँधुँ = बाँधूँगा ३२०

बाँधियत = बाँधा ३१६

बाँधियो = बाँधेंगे, जीन लेंगे १४६

बाँधे = बाँध लो ५००
 बाँध्यु = बाँधा हुआ ३१८
 बाँवलि = बबूल का वृक्ष ४१४
 बाँहड़ियों = भुसाएँ, बाँहे १६७, ४८२
 बाजरियाँ = बाजरी के २५०
 बाजारण = बाजारू, नीच ३३४
 बाट = मार्ग, पथ ५४१
 बाड़ी = बाटिका, बाग ३११
 बाढ़त = काटता है, काटते, घाव
 लगाता है ३३, ४१४
 बाघइ = बढता है १६१
 बादलियाँह = बदलियाँ २४८
 बावहियउ = पपीहा २६, २७, २४७,
 २५२
 बावहिया = पपीहे २८-३६
 बाबा = हेबाबा, हे पिता ३८६, ६५५
 ६५६, ६५८, ६५९, ६६४, ६६५
 बाबीहउ = पपीहा २६१
 बायड़ा = बेचारे २५८
 बालम = बल्लम, प्यारे २८५
 बाल = बालिका ११ । मुग्धा, बाला
 ६०३, ६०४
 बाळउँ = जला हूँ ६५६
 बाळपणइ = बचपन में ६१, १६७
 बाळा = बाला नायिका ५७७, ५७८
 बाळापण = बालपन ४४३
 बाळि = बाल ५८५
 बाळियउ = जलाया १२६
 बाळूँ = जला हूँ ३८५, ६५७, ६६४,
 ६६५
 बावड़ी = बावली, बापो ३८३

बाहि = चला, प्रहार कर ४९२, ४९४
 बाहिरी = बाहर, बिना, अलग ३७०,
 ३६० । बाहिर ३६१, ३६३
 बाहुदइ = लौटे, लौटता है, चले २०
 २६, ४१०, ५६६
 बाहुड़े = लौटे १५३
 बाहे = बाहुओं में ४=१
 बिकाइ = बिकते हैं १४१
 बिचाहू = बीच में ही ८२
 बिन्नी = ,, ,, ४००
 बिछोहउ = वियोग ५०२
 बिज्जुलियों = बिजलियों ५०
 बिण्णारा = बनजारा १६३
 बिथूंभिया = दो थुई वाले (जँट)
 २२८
 बिन्हे = दोनों ६४४
 बिन्नीह = दो दो ४५६
 बिलबिलइ = विलाप करते हैं ६०७
 बिवणउ = दूना १६२
 बिहुँ = दोनों ३१८, ४९२
 बिहु = दो ३६६
 बिहूँ = दोनों
 बीभ = विंध्य, घना २१३
 बीळइताँ = बिछुड़ते हुए ३८१
 बीज = बिजली १५०, १५२
 बीजइ = दूसरे ५६८, ५४६
 बीजउ = दूसरा १४२
 बीजळड़ी = बिजली ४८
 बीजळ = बिजली १४६
 बीजा = दूसरे १६६, ५३०, ६६३
 बीजी = दूसरी ४४०

घोजुलियाँ = विजलियाँ १५३
 बुभाई = बुभु चाय ५७८
 बुभावह = बुभावे १८१
 बुभावउ = बुभाओ १२३
 बुभूभ = समभ, ख्याल २४
 बुहारि = बुहारी ५८६
 वूँदी = नगर विशेष ४००
 वूटइ = वरसता है ५४८
 वूटउ = वरसा १८, २५०, ३६१,
 ३६२
 वूटों = वरसने पर २६४
 वूँतैनी = वरसते ही ३६, ४०
 वूँदी = विगतयोवना, वृद्धा स्त्री २७६,
 ४४८
 वूर = एक प्रकार का घास ३६०
 वे = दो, दोनों १६७, ४३३
 वेलइयाँ = वेलें, लताएँ २६६
 वेलों = वेलों में २५०
 वेलो वेलों = दो दो को, जोड़ी को,
 युग्म को, टपति को २६५
 वेल्ल = दो, युग्म ५११
 वेसागइउ = विनास ४६३
 वैठा = बैठे ५६५
 वैगलि = वैरिन ५८१
 वोलंत = बोलता है २४७
 वोल = वचन, वार्ता, कथन, बोली
 २४३ ४८४, ६७४
 वोलइ = बोलता है ३५, ६०३
 वोलइइ = बोल, वचन (से) ३५६
 वोकदा = ,, ,, ४८६
 वोलरा = बोलना ३८

बोलगियाँह = बोलनेवाली ४८४, ६६७
 बोलही = बोलता है ४८२, ६६७
 बोलयउ = बोला ४६१
 बोला = बोलनेवाला ३६०
 बोलाविया = बुलगाए १०५
 बोलया = बोले ५२
 बोलि = बोल ४०४
 बोलिया = बोले २१८
 बोळावा = भेजने के, पहुँचाने को ५६७

भ

भंत = भोंति १८६
 भइ = भय ३०१
 भक्ख = कह ११४
 भख = भक्षण ५८०
 भगताँ = खातिरें, भक्तियाँ ५६४
 भगताविया = कहे, सुगताए १०६
 भइ = भट, योद्धा ५८३
 भइँ = भटों ६३
 भइँक = एकाएक १६६
 भगकैइ = मँडराता है ५५०
 भइँयो = भजनक उठी ४६२
 भखी = खो, खे, लिये ७६, ६०
 भचि = भोंति ६१
 भमतउ = वूमता हुआ १३५
 भमता = भ्रमण करते हुए १२४
 भमर = भ्रमर ७३, ११६, ४१५, ४७४
 ५५०, ५६१
 भमुइँ = भौइँ ४६५
 भइ = नरता है, (संदेशा) कहता है
 १८२

भरखमा = सहनशील ५६३
 भरण = भरनेवाला ४७
 भरम = भ्रमपूर्णा वात ४६७
 भरिस्वो = भरेंगे ५२२
 भरेह = भरता है १३७, ३३७, ५६०
 भरेसी = भरेगा ३६१
 भरखुड = भरा हुआ २००
 भल = भलेही ६३१
 भलमाणस = भलामानस ११४
 भला = भले, अच्छे २५७, २५८, ५८३
 ६६३
 भली = ठीक ६२७
 भलेरउ = भला, भले (ऊँट) का
 (छाया) ३१२
 भलहलइ = भिलमिलाता है ४८०
 भलाया = सौँपा ६२५
 भौंजइ = दूटे, दूर हो २३८ । मिटती
 है ६६१
 भौंजण = दूर करने, तोड़ने ६१६
 भौंणी = भावती ७७
 भागइ = भौंज दिया, खिन्न कर दिया
 ४३६
 भांगउं = खीभ गया ४४१ मिटा ६७१
 भाजइ = दूर होता है ६६०
 भाद्रवउ = भादवा २५०
 भाय = भाई, भाव १२४ । भाड़, भठी
 १६३
 भारथ = लड़ाई ६३६
 भावई = चाहे १७५
 भी = फिर १८२, २०२, ५६५

भीगा = भीगता हूँ २७२
 भीजइ = भीगता है ४३, २४४
 भीजू = भीगती हूँ ४३
 भीति = भीत २३७
 भीनी = भीगी हुई १६०
 भीभळ = विहळ २२६
 भीसुर = दीतिमान् ४७१
 भुँइ, भुँई = भूमि, फासला ४८५, ४६६
 ४६७ इ० ।
 भुयंग = भुजंग ५०४, ६०८
 भुयगि = भुजग (ने) २३६
 भुयंगो = सर्प ५७७
 भुयगिग = भुजंग ६०१
 भूरा = भूरे रंग का ४६८
 भूलउ = भूला हुआ २२६
 भेळिया = भेजा ६१६
 भेदंती = भेदती हुई १६१-५२१
 भेदक = भेद जाननेवाला १०४
 भेळा = एकत्र ३३७, ६०७
 भेळिया = घावा किया ५६६
 भोग = भोग ५६३ । भाग १२१
 भोगवूँ = भोगता हूँ १७०
 भोळे = भ्रम ४७८
 भ्रंति = भ्राति २३६
 म
 मं = मत ६४८
 मंगता = याचक १०३
 मंगळ = मंगल गीत ६५१
 मँगवियउं = मँगवाया ३२६

मभक्त = मध्य, में ५६, ८६, ४१४, ४२०,
४७४, ६५८

मंभक्त = मध्य, में ५६, ८६, ४१४, ४२०,
४७४, ६५८

मंभक्ति = मध्य में ५७, ५६८

मंढले = मढल में, राज्य में ४२२

मंढव = मढव, नृत्य २६३

मंढियड = वना १८८

मंत्रे - मंत्रित करके ६२१

मंढ = मय, मदिगा २६४

मस = मास, मांसक ४६१

म = मत, नहीं, न ४७, ४८; १५६,
१८५, २६६, २७८, ३०५, ४३४,
४६०, ४५६, ४६७, ४८२, ४६२,
४६४, ५६१, ६१६, ६४७, ६४६,
६५८, ६५६

मई = मेंने १६, ३०, ३२, ६४, ३६२,
४५५, ५१०। में ३२। मुभक्ते २६१।
में १६, ७८, १६५, २२७, ५४४,
५५६, ५६६, ६१६, ६२०, ६३०

मईमल = मडकल, हाथी ५५४

मई = में ५४८

मडर = मौर, मंजरी २७१

मडरियड = मुट्टिलित या मंजरीयुक्त
दुप्रा १२०

मडन = मनु, गृह्य ४७०

मडरि = पीठ पर ३१

मडग = मानं २०५, ३८४

मडरिठौ = मडरिठौ, न चिठौ ५६३

मडने = मडने, में ५७७

मडरु = मडर, नालीन मर ४०५

मडरुगता = मडरु, मडरुनी ६१८

मति = बुद्धि, विचार १८७, ४५१।

मत, नहीं ३१, ५०२, ५०३। कहीं
न ३१

मयथइ = ऊपर ३६०, ३६१, ६३१

मधुरइ = घीमे ५०

मनइ = मन से

मनगमता = मनोवांछित, मनको अच्छा
लगनेवाला ४२७

मनगरवी = बड़े मनवाली ४५२

मनइ = मनसे १३८। मन के २१३।

मनमें २१७, २३२, ६२४, ६३७

मनों = मनों को, मन में ६८। मनोंसे,
मन से १६८

मनावण = मनाने के लिए ३६६

मनि = मन में ६०, ६७, १७१, २०१,
२०८, ३१६, ३२२, ५४७, ५५१,
६२२

मनुहरि = मनोहर ४८१

मनुहारि = आग्रह करके ६२६

मने = मुझे ५११

मन = मन ८२, ४३६, ४४१, ५७२

मयंद = मृगेंद्र, सिंह ६५५

मयण = मडन, काम ३००

मयमंद = मडमच ५६६

मरत = मरता है ६१८

मरकीवड = पनलुववा २३१

मरळि = रंज, हंखिनी ४६०

मराविषु = मराउंगी ५१४

मरि छाइ = मर लावे, मर सावना ३२१

मरित्यड = मरुंगी १४३

मरुंग = मरुंगी १५१

मरेसि=मरूंगा ६५६
 मरेसी=मरेगा १४६, १५०
 मरेहि=मरता है ३८४
 मल्हपंत=जाता है, चलता है ६७
 मल्हपंति=चलती है ५३६
 मल्हपह=चलता है ४६१
 मल्हाया=गाया १६५
 मल्हार=मलार राग १८८
 मळेहि=मलता है ३७८, ३७९
 मस=मसी, स्याही १४०
 मसकत=महकता हुआ उड़ता है
 ४७६
 मसांण=श्मशान ३५२
 मसि=मसी, स्याही, कौयला, १४१
 १८०, ५७२
 महकाह=महकता है ६००
 महकी=सुगंधित हो उठी ४६८
 महक=महक ४०६
 महकियाँ=महके १६०
 महमहह=महकता है ६०० (ज)
 महल=महिला, स्त्री ४४०
 महलौं=महलो
 महाघण=प्रलयकालीन मेघ १५
 महाजनि=गुरुजन (ने) १५६
 महारस=नशा ३००
 महिराँण=समुद्र २११
 महिलौं=महिलाओं ४५१
 महीं=में ८८
 मों=में ४१६, ६७४
 मोंह=में, भीतर ४१३

मोंगण=मोंगनेवाले, याचक १८६
 मोंगणहारा=याचक १०२
 मोंगणहार=याचक, चाति विशेष १०२
 १०४, १८६, १६४
 मोंगणहारों=याचकों (को) २०६,
 २१०
 मोंगणों=याचकों (को) ६३
 मोंगळोर=स्थान विशेष ३११
 मोंगीतोंगी=मोंगी हुई ७०
 मोंषिणउ=मजन, स्नान ५३५
 मोंभू=मध्य, में २७२, ४६१
 मोंभिम=मध्य ५७, २७८, ५०५,
 ५२५
 मोंडि=वनाकर, सजाकर ३२६
 मोंण ने=उपभोग करो न ४४७
 मोंनसर=मानस सरोवर ६७३
 (झ)
 मोंनसराह=मानस सरोवर में ५५२
 मा=मत ८
 माइ=समाता है २६, २६६, ५०६,
 ५२६
 माई=हे माँ २६३
 मागरवाळ=याचक १८४
 मागि=मार्ग १६
 माठ=मष्ट, चुप ३२१, ४११
 माठि=मष्ट, चुप ३४
 माणस=मनुष्य ६५, २२०, २८१
 माणसों=मनुष्यों १८५, ४०७, ४४५
 ६५५
 मात=माता ३३४

मायड=माथा, सिर २८३, ५३१
 माथि=माथे वा सिर में २१६
 माय = माई, हे माँ ३८८
 मार = (वृ) मार ६३३
 मारह = मारता है ६६ । मारण करता है ४७५
 मारवण = मारवणी, काव्य की नायिका का नाम ३००
 मारवणी=मारवणी, काव्य की नायिका का नाम १२, ६०, ६७, २४३, ४४८, ६६३, ५२३, ५३६, ५६७, ६१७, ६३३, ६५२, ६५३, ६६३, ६७०, ६७२
 मारवा = मारवणी ४७, ४८, ४८६, ४६८, ५५१, ६२२, ६४७
 मारि=मार ६४७
 मारिज=मारा जाता है ६३२
 मारिवा = मारि ५६१
 मारह=मारवणी ८०, ४५१, ४५६, ४७०, ६७३, ६६२, ५५४, ६०१, ६३८, ६३६
 मारवणी = मारवणी ५, १८, ६०, ६६, १०६, १६७, २१०, ६६४, ५६१
 मारवा=मार वा मारवाइ देग के निरासिरो (ण) ६३८, ६५६
 मारवा=मारवणी १८, ६१, १६५, ४३८, ४६५, ६६७, ४६६, ५५४, ५६२, ६२०

मारु=मौड़ नामक रागिनी १०६
 मारु=मारवणी १०, ११, १७, १६, २४, ३७, ७६-७६, ८२ ८६, १०१, १०६, १०७, ११०, १५७, २०६, २०८, २१०, २३८, ३०७, ३१७, ४११, ४१४, ४३७, ४४०, ४४२, ४५४, ४५५, ४६१, ४६६, ४७१, ४७२, ४७४, ४७५, ४७६, ४७८, ४८२, ४८६-४८६, ४६३, ५०१, ५२७, ५३५, ५३७-५३६, ५४३, ५४५, ५५०, ५६७, ५६६, ६११-६१४, ६१७, ६२३, ६२६, ६३४, ६३६, ६४२, ६४६, ६५४, ६६०, ६६३, ६७१, ६७२
 मारु=मारवाइ, मरुस्थल देश २५०, २५१, ४५७, ४८३, ४८५, ६६६-६६८, ६७०
 मारुह = मारता है, पीड़ा करता है २६५
 मारुह = मार ६४६
 मारुहि=मार ६४८
 मारु = संपत्ति, धन २५४
 मारुव=मारुवा ८४, ६६३, ६७२
 मारुवणि=मारुवणी, काव्य की उपनायिका २१७, २६२
 मारुवणी=मारुवणी, काव्य की उपनायिका ६६, ६७, १८५, २१४, २२१, २२६, २३६, २४२, २७४-२७६, २७८, २१६, ३१७, ४२३, ६५२, ६५४

माळवणीह=मालवणी ६४
 माळविण=मालवणी २६६
 माळवी=मालवणी २२२, २४०
 माल्हवणी=मालवणी २२४
 मावइ=समाता है ३५८
 माह=माघ महीना ३६०
 मित्र=मित्र ६६, १७५
 मिलउली = मिलूंगी ४५
 मिलण=मिलने के लिये ५३५ ।
 मिलना ५६४
 मिलावइ=मिलावे, मिलवाता है
 ३१२, ५१५
 मिलियत=मिलता है ५८३
 मिलियाँ = मिले ६७०
 मिलिया=मिले ५३२, ५३४, ५५३,
 ५५७, ५८४
 मिलिसि=(तू) मिलता है, मिलेगा
 १५७, २७३
 मिलूली=मिलूंगी ४६
 मिलेस = मिलना (आज्ञा) २०७
 मिलेसी=मिलेगा १६१
 मिल्यउ, ०ळ्यउ=मिला १४, २४,
 ८४, ८५, ६४६
 मिल्याँ = मिलीं, मिली हुई १५१
 मिल्या=मिले १८५, ५०२, ५०३,
 ५३०, ५६०, ५८१
 मिळइ=मिले, मिलता है, मिलेगा
 ११३, ११५, ११६, ११८, ११९,
 १२४, १३५
 मिळई=मिलेगा ४६३

मिळउँ=मिलूँ ६२
 मिळत्याँ=हम मिलेंगे ३४७
 मिळि = मिलकर ६२
 मिळियाँ=मिले, मिलने पर १७२
 मिळियाँह=मिले, मिलने पर-० से
 ३६८
 मिळिवा=मिलने के लिये २३८
 मिळीजइ=मिला जाय, मिलिए ७२,
 २११, २१२
 मिळेवउ = मिलन ४२२
 मिस=ब्रहाना १४५
 मिसि=ब्रहाने (से) १८३, ५४
 मिहर=मेहर, कृपा ३२५
 मीठउ=मीठा ३५६
 मीठा=मीठे ३६०, ४७०, ४८४,
 ६६७
 मीठाबोला=मीठे बोलनेवाले ४८५,
 ६६८
 मुँघ=मुग्घा, प्रिया ४३६
 मुँघा=मुग्घा २७२
 मुइय=मरी २०६
 मुई=मरी, मरी हुई, मर गई ३६८,
 ४०३, ६०६
 मुकळाइ=गौना करवाकर ५६५
 मुक्कइ = छोड़ता है, रखता है २५७,
 २६२
 मुक्क=मेरा ४६, १३६, १८१, ५४७,
 ६४७, ६४८ । मुक्के ५०३, ५०३
 मुक्कूँ = मुक्कसे २१८
 मुक्क = मुक्के, मेरा ७५, २३६,
 ३२८, ३६८

मुख=मुरगा १५-१७, १७४, ५३३
 मुया=मर गए १०८
 मुलतार्गी=मुलतान की २२६
 मुळकन=मुसकुराते ५४२
 मुळक्यड = मुसकुराया ३६४
 मुवाँह=मरने पर ६५५
 मुद्गा = महँगे २२५
 मुद्गर=मोद्गर, विककाविशेष ४८६
 मुद्दगी = ऊँट की चाग ६२६
 मुद्दा = मुँहवाले २२७
 मुँ=मेरा ४३२
 मुँकती=छोड़ती १६६
 मुँक्या=छोड़े ३६, १३८
 मुँह्यो=मुँह्यो ५८५
 मुँट=मुट्टी २१२
 मुँटही = बंद करता है ५५८
 मुँव=मुग्धा १४६, २८७, ३१२,
 ३१५, ५००
 मुँद=मर गई ४०४
 मुँकउँ=छोड़ूँ, मारूँ ३८६
 मुँक्यड = छोड़ा ६०
 मुँक्या=छोड़े ३६०
 मुँटदियॉँह=मुट्टियाँ ३६६
 मुँटि = मुट्टी ३६१, ४१६
 मुँगवाँ=मुँगो ३३२
 मुँगग=मुँग ५६८
 मुँगरथ = चंद्रमा का मुँगों का रथ
 ५७०
 मुँगपी=चंद्रमा ४६६
 मुँगमद् = मुँगरी ४६६

मृगरिपु = सिंह ४६६
 मृगलोयणी=मृगलोचनी ४७६
 मेड़ी = अटारी ४२
 मेरा=मेरे ३३
 मेलउ=मिलो, मिलन ४०७
 मेलाँह=मेले २२४
 मेलि=छोड़कर ६१०
 मेली=छोड़ी ३२३
 मेलूँ = मिलाऊँ ३१५
 मेलह=छोड़, मेन १६३
 मेलहंत = छोड़ता है २४७
 मेलहइ = छोड़ता है, रखता है २४६,
 २५८, २६७, ६०६ । मेखता है
 ३३१
 मेलहउ=मेजो १०२
 मेलहणी = छोड़ी ५६१
 मेलिहयड=मेजा ४०१
 मेलिह = छोड़कर २०२ । मेजकर
 १०६
 मेलिहयइ=रखिए, छोड़िए, मेजिए,
 भूलिए ७२
 मेलही=रखी, टी ५६६, ५७०,
 ५८५
 मेलहे=छोड़कर, छोड़ता है, छोड़ा,
 छोड़, रखकर २०३, २६६, ३४१,
 ४३४, ५००
 मेल्या=मेजे ६६६, ६२५
 मेळइ = मिलाये ७५
 मेळउँ=मिलाऊँ ५००
 मेळउ=मिलान ७१
 मेळि=मिला (आशा) ५६३

मेळिया = मिलाया ५६६
 मेळी=लगी, वंद की ५१
 मोइ=मुझे ३१४, ४६७, ५०८ । मेरा
 ५३२
 मोकळउ=मेजो १४४
 मोकळा=खूब, बहुत ३६५
 मोकळि=मेज १०३
 मोकळे=मेजना (आशा) १४२
 मोजडी=जूती ३७५
 मोर्चा=जूतियाँ ? ३६६
 मोडेह=मोडता है ३५५
 मोडो=देर से ४४३
 मोतियाँ=मोती ४७५
 मोतीहरि=मुक्ताफल, मोती, मुक्तासरि
 २३०
 मोराँ=मोर २६३
 मोलइ=मोल पर १४१
 मोहण=मोहन, मुग्धकर ५५४, ६०१
 मोहि=मुझे ३७३ । स्वयं ६३५
 म्हाँ=हमने ६, २३५ । हमको २७६,
 २७८
 म्हाँकउ=हमारा २४१, ३४८, ४०५
 म्हाँका=हमारे ३३२
 म्हाँकी=हमारी ६१४
 म्हाँली=हमारी ४३८
 म्हाँनूँ=हमें ५६२
 म्हाँने = हमें ५६१
 म्हाँरी=हमारी ५२५
 म्हाकउ = हमारा ३२५
 म्हेँने=हमें ५६१, ५६२

म्हे=हम ६३, ६५, १०८, १४६,
 २७८, ३०६, ४०६, ६२८

य

य = पादपूरक अव्यय
 यतन्न=यत्न, चेष्टा ३३५
 यहु=यह १८१
 यार्ई=आकर ५१०
 यूँ=यों, ऐसे ११३, ११५, ११६,
 ११८, ११६, ४३०
 यूँही=योंही ३३०
 ये=जो १
 यो=यह ४१

र

रंग, रँग=प्रेम, क्रीड़ा ८४, ५६५,
 ५७२, ६५३ । रंग ढंग ६३२ ।
 लाली ४७२ । रंगवाली ४६५ ।
 सुरग (विशेषण) ३५६
 रंगइ=रंग मे, आनद में ५६३
 रंगि = प्रेम में, प्रेममग्न ६० । रंगवाली
 ८७
 रंजन=प्रसन्न करनेवाला, प्रसन्नता
 १६१, ४६७
 रइ=के १६७, २६०, ३१६, ६१३
 रइणि=रात्रि ५७८
 रइवारी=ऊँटों का रखवाला, एक जाति
 जिसका काम ऊँट चराना होता है
 ३०६, ३०८, ३३१
 रउ=का ४२४, ४५०
 ररुख=रख ११४
 रखियउ=रचा ४३७
 रचण्णों=रंग रचानेवाले ५६३

रन्वड=रन्वा, सजाया ५३५
 रङ्गी=रोङ ३७६
 रणोहि=रोती है ३७८
 रत=नाल ३८, रात्रि ५७, ऋतु ३०३
 रतन = रत ५६६, ६३८ । नेत्र ३६६
 रचड=लाल ५७२
 रचड़ा = ,, ४५६
 रचा = ,, रक्तवर्ण ४७४, ५७४
 रमती=रमण करते हुए ५६१
 रम्यगर्ग=ऊँटों का रखवाला ३१०
 रलि मिल्यड=हिल मिल जाओ ३१८
 रली=आनद, मोज ३५१, ५५६
 रवंद = तेल, जोरों का २८८
 रसवेलि=रस फी लता ६१०
 रहत=रहती ४१५
 रहनि=रहती ७३
 रहह=रहता ८ ७०, १७३, २५४ ।
 ककता है २७५
 रहडै=रहूँ २६३
 रहड=रहो, रहने हो, रहे २३५,
 २५४
 रहतड=रहता ६५
 रहॉ=रम कक जाती है ६३
 रहाड=रहे, रहा साथ २७६
 ररि=रह ४११
 ररियड=रहा ६५, २४३, ३५६,
 ५६४ । कक गरा, रह गया २७५
 रहिया=रहे, रह गया, कक गया, थक
 गए, छार गए २७६, ६१५, ६७४
 रहियाह=रहे ११३, २४१
 रहियि=रहता है २७३

रहु रहु=रहो रहो, वस वस ३२१
 रहेस=रह जा ३२७
 रहेसि=रहूँ, रह जाऊँ ६५६
 रहेह=रह जा ३१७
 रह्यड=रहा २७८, ३७३
 रहॉ=रहने से २५२
 रह्या=रहे १६५
 रॉगॉ=रानों से ४६२
 रॉणी=रानी ४, ६, ७, ६, ७७, ७८,
 १००, १०२, ५२७
 रा=का, के ४२, १०३, ३३६, ४४२,
 ५८५
 राइ=राना ८०
 राड= ,, ४
 राज= ,, १
 राखइ=रखता है ५५७ । रखे, रोके
 ३४८
 राखड=बचाओ ३३२
 राखण=रखना, रोकना ८०, ३२७
 राखती=रखती ४१६
 राखिवइ=रखी जानी चाहिए २८७,
 ४५३ । रोक लीजिए १०३
 राखियड=रखा, रोका १०४, ३३१
 राखिया = रोके हुए २३५
 राखी=रखी ११
 राखीयड=रखा ३३६
 राखे=रखता है ३३०
 रागॉ=मोह, रानों में ६२७
 राज=श्राप ८, १६८, ६४४ । राज्य
 १७६
 राजदुआरि=राजद्वार में ३४५

राजदुवारइ = राजद्वार में ८४
 राजदुवारि = राजमहल में ६५
 राजविर्यो = राजाघो, राजवशियों में ३
 राजॉन = राजा लोग ८५
 राजिद = स्वामी, राजा, पति ३५०
 रावि = आप ४०४
 राज्येद = राजन्, प्रियतम ११५, २५४
 रात = रात्रि ३६४, ४६०, ५०१, ५२५
 रातइ = रात को ३७७
 राता = रक्त वर्ण, लाल ३६६
 रात्यू = रातौरात १८६
 रायगण = राजागण, राजमहल का
 आँगन ८६
 राय = राजा ६०, १००
 रायजादी = राजकुमारी ५४०
 राळि = बाँग ५८५
 राव = राजा ५२
 रावळा = राजमहल के अन्तःपुर ३
 राइ = राहु ४६६
 रिउ = का ४५०
 रिठ = शीत २५७
 रिडु = दुख, कष्ट ६६०
 रिति = ऋतु में २५३, २६६, २७६,
 २८१
 रितु = ऋतु ४१
 रिमभिम = छुमाछुम आवाज ५८६
 री = वी ६१, १३५, १५०, २७४,
 २८०, २६१, ३३४, ४१८, ४५०,
 ५३६
 रीभत्रइ = रिभाता है १०२
 रीभी = प्रसन्न हुई ४
 ढो० सा० दू० ४२ (११००-६२)

रीठ = कड़ा, अत्यंत तीक्ष्ण २६१
 रीस = रोष, क्रोध २१८, ५६२
 रुत = ऋतु १४५
 रुति = ऋतु २४६, २४७, २४६, २५२,
 २५६, २६०, २७४, ५६५
 रुत्ति = ऋतु २७७
 रुळियाइन = आनदित ६७१
 रूँआळियाँ = रूपमयी ४८२
 रूँख = पेड़ १५८, ४३७, ६६१
 रूँन-०नी = रोई १५६, ३७७
 रूअडउ = अच्छा ३२२
 रूखडउ = वृक्ष ५५५
 रुडा = भले ११४
 रुनी = रोई ३७६
 रूपकउ = चोँदी (का गहना) ४६४
 रे = अरे ४६, ३३२, ३३४
 रेस = लिये २६४
 रेइ = रेखा ३१, ५७४
 रै = के ५८६, ५६१
 रोइ = रोकर ५०२, ५१०
 रोकियउ = रुक गया = ३८१
 रोवहियाँइ = रोते हैं, रोए २०३
 रोही = उजाड़, जंगल ५६८, ६३२
 (क, ख)
 रौ = का ५८२

ल

लक = लचकीली, बाँकी ४५४ ।
 कमर ४६०, ४६१
 लकी = कटिवाली ८७
 लळि = कमर ६३६

लंघण=लंघन, उपवास ४३१
 लंघियउ = लॉघ गया, लॉघा ६४७
 लघिया = लॉघ दिया ६४८
 लंघी=उलॉघकर ६२
 लंघण=ढोष, लाघ्न ४०२
 लंघउ=लंघा ३८४
 लघावद=दुत करता है (?) ४१०
 लह = लेकर ३६, ११५, ४३७ ।
 ले ८८, १२०, १२१, १२२
 लघदियेह=छड़ी से ५६१
 लक्ष्म=लाघ ८५८
 लघ=ढेल, समभ १११
 लघरा=वक्षरा ४६६
 लग=नक १२३, १२५-१३४, २७३,
 २७४, ४१०, ५६४
 लगर = लगता है २५५ । लगातार,
 निरंतर ३६४ । तक ४२०
 लगाइ=लगाता है ६३४
 लगार्इ=जगापर ५६६
 लगारियां=जगाया ३६६
 लगि=नक १२०, १२१, १२२
 लगे=नगर ७४
 लगइ=जगता है ६८ । लगते ही
 ४७१
 लगगी=जगा, सुरगा ७४
 लगगा=जगा २० । जगे २००
 लग्गि=जग ५६२
 लग्गी=जगी ३२१
 लग्गे=जगते ही ४७२
 लग्गइ = जगा ३
 लघावद=राक्षस करने ३७३

लज्ज=लगाम (नकेल) ३१२,
 ५००
 लज्जि=लज्जित हो ५०
 लडंग=घोड़ा २२७
 लड़ाइ=लाड़ प्यार करके ४१७
 लख = ली, पाया १६, ३८१, ६०६
 लखवती=ढगमगाकर ५०४
 लवूकी = डहडही ३६०
 लल्लउ = 'ल'कार, 'ल'वर्ण १४२
 लवइ = बोलता है ५२०
 लवंतउ=बोलता हुआ ३४
 लहत = लेता है ८३
 लह=ले ३५
 लहइ = लेता है, ले १११ । पावेगा
 ४२८
 लहकी=लहलहाई ३६० (ज. थ.).
 लहक = भूषणकर ३७२
 लहर=तरंग, लहर २६८, ६१२
 लहरी = लहरें ५५६
 लहाँ = हम पावें ३२३
 लहाँइ=पाता है, लेता है २८० ।
 पाती, लेती ३७०
 लहि=ने कर, देखकर ५०१
 लहिरी=लहरें ३
 लहिस=पावोगे ६२६
 लहुड़ी=छोटी ६१३ (न)
 लहेन=लूंगा ७० । पावेगा १७८
 लहेसि=पाओगे ४२६
 लांघा=लघे २०५
 लॉघी=लंघी ४५, २७१, ३८४, ४१०
 लाइ=जगाती है ५०४ । लाकर ५८१

लाख पसाव=दानविशेष जिसमें लाख का दान किया जाता है ७४ (देखो-टिप्पणी)

लाखों=लाखों ६३

लाखीणा=बहुमूल्य ४३३

लाखे=लाखों २२७, २३३, ३७०

लागत=लगता है २६७, २६८

लागइ=जगती है ४१२, ४५८

लागउ=लगा (भ्रूषटा) २६७।

लगा हुआ ६४२

लागा=लगा ३८। लगे हैं ६४८

लागि=लगी ४१५

लागी=लगकर १५२। लगी ३७४,

५४१। लग गई ५०२, ५०३

लागे=लगता है २४५, ३६६

लागो=लगा ३००, ३५६

लाज=लज्जा ३२५, ३८४। लगाम ३४६, ३४८, ४४७

लाड=लाड़ प्यार ४१७

लापसी=लपसी ५८७

लाभे=प्राप्त हो सकती है ४७७

लाय=लाता है ४७२

लिखताँ=लिखते हुए १४१

लिखि दे=लिख दे ६५

लियंति=विताता है ५३८

लियइ=लिये, कारण २४६। लेकर, लेती है २६८

लियउ=लो १२१

लियोँ=लिये हुए

• लिहइ=लिखती है ५७७

लीजइ=छीन ली जाती है ६३२

लीघ=लिया १८७

लीघी=ली ५७१

लीय=लेता है १५२

लीया=ले लिया ५७१

लीहटी=रेखा १३७

लुडंदउ=लुटता हुआ, शीघ्र ३८७

(च)

लुध, लुध्वी=लुध १५, १७, २०६

लुबघा=प्रेमलुध ५६२

लुमाह=लुभाकर २५४

लूगे=लवग की ५६१

लेखणहार = लिखनेवाला १४०

लेखि=लेख २७३

लेटियउ=लेटा ५००

लेसि=लेता है, ग्रहण करता है १५७

लेगा, पावेगा १७७। लूंगा २२५

लेस्यौँ=लेंगे हम २२७

लैकार=लयपूर्णा ध्वनि ६६४

लोइ=लोग, लोक ७, १५६, २१३, ४०२, ४८५, ६६८

लोद्र=देशविशेष, जैसलमेर १६०

लोपोँ=हम उल्लंघन करें ३२३

लोर=टेर, शब्द ३०, ३१, ३२

ल्याव=ला १०१

ल्यावइ = लावें १०२

व

वखौँण = वर्णन ६७२

वंन्न = वर्ण ४६४

वइठी=वैठी ५४५

वइराग = वैराग्य, विरक्ति, विकलता

१७१

वडरी=वैरी ३८५
 वहसट=वैडता, वैडे ११६
 वडळाड=भेज ३७१
 वडळ'वी=मे नकर, पहुँचा कर ५४२
 वडळ'वा=विनाश्रो ६३१
 वडळिया=पार किया, लौवा ३८५
 वग=व ग, लगान ३२४ । शाला,
 वर्ग, सुट, टाला ३०७, ३३३
 वनद=वनन ३३५
 वनार=विनार ४८१
 वयाळर=वीच म ४३५
 वडड=वनो, वडो ७८
 वडिपड=वनार, वडने लगा २६७
 वट=मान ४२१, ४४६
 वडमर=विनाश टटयवाला, महामना
 २८१
 वग=वन २६५
 वगार=वनार ८६१
 वगार=वगारि, वनारि ४६८
 वगी=वगारि वृत्ति ४१६
 वगी=वन म ५१३
 वगारि=, ५१
 वगार=वगारि वृत्ति ४१८
 वगार=वगारि वृत्ति २१७
 वगारि=वगारि, वगारि
 ६६८
 वगारि=वगारि १००
 वगारि=वगारि ७५
 वगारि=वगारि ५३२, ५५७, ५५६
 वगारि=वगारि ५५३

वनखँड=वनरावि, जंगल का भाग
 २८४, ४१६
 वनि=वन में १२८
 वयट्टउ=वैठा ५६१
 वयणु=वचन २५, १६८, ४११, ४१२
 वयणो=वचनो ६२१
 वयणो=वहने से २७५
 वयरा=वैरी २६१
 वर=पति २८ । नुन्दर ४६१ । भले
 ही ६५६
 वरख=वरस कर ५६५
 वरखा=वर्षा २७४, २७६, ५६५
 वरग=(ऊँटो की) शाला ३१६
 वरखड=वर्षा ५६४
 वरखा=वर्षाजाले ६५७
 वरदल = धूमवाम से, श्रेष्ठ कुल १०
 वरद=वर्षा रग ४७५
 वरस=वर्षा ६१, ४५०
 वरसड=वरसा १२५
 वरसा=वर्षा ६१, ४५०
 वरसाळर=वर्षा जल में २७७
 वरगि=वरगकर १=१, २६७
 वर्ण=रग ८७
 वरग=वर्णना २६४
 वलाकरा=विनाश ६३१
 वल्लुगार=वलनेवाले ३७४
 वल्लुहा=विपतन, प्यारे, प्राणवल्लुम
 २२, १५५, २४७, २५५, २५६,
 २६१, २६२, ३०८, ३७६, ४१८
 वलने=वले नद ३७४

वळंतइ = जलते समय, बलते समय

४६८, ४६९

वळइ=लौट चले (विधि) ४४४

वळउ = जात्रो ६१४

वळती=लौटते, उचर में ६६३

वळाव्यउ=भेज दिया, चला दिया

३६०

वळि=फिर १५३, २३६, ३६७, ४८६

५१०, ५५६, ६४२ । बलिहार होना

५३०

वळियाँह=लौट आई १५३

वळिहारी=बलिहार होना १७६

वळी=लोटी २७४

वळे=फिर ३४७, ४२२

वळयउ=लौटा ६५०

ववळाइ=भेजकर ३७२

वसइ=रहता है, बसता है ७४, १२७,

१२८, १७५, २०१, ५१२, ५१५,

५२०

वसच=वस्तु ५०६

वसाळ=भेड़ ४३५

वसेस=बसते हैं ३६५

वहइ = बहता है, जाता है, चलता है

६०, ३३८, ४२४

वहउ = चलते हो ६२८

वहताँ=बहते हुए, चलते हुए ३३८

वहाँ=चले, बढें ४४६

वहि=चलकर ४६८

वहिलउ=शीघ्र, जल्दी १४२, १५५

वहिस्योँ = हम चलेंगे १०७

वहेसि = बनाऊँगी ६२, चलेंगी ६३

वहेसी = बहेगा, चलेगा १४७, ३२४

वाकडमुहाँ = बक्रमुख, बाँके मुखवाले

२२७

वाँचण=बाँचने को, पढने को १४४

वाँण=त्राण ४१२

वाँणि=वाणी ४६०

वाँध्यउ=बाँधा ३६२

वाँसइ=पास ३६८ । पीछे ६२५

वाइ = हवा, वायु ५८, २४०,

२५७ । बजती है, चलती है २७७

वाइस=कौवा १५७

वाउ=वायु ७४, २६७

वाग=बागडोर, लगाम ३४५, ४११

वागरवाळ=ढाढी, याचक १०५, १८७

वाजंती=बजती हुई ५४०

वाजइ=बजता है २६६, २६८,

३५६ । बज, चल १२६

वाज्यउ=बजा ३५१

वाजा=बाजे ३५६

वाज्या=बजे ३४६, ३५२

वाटइ=मार्ग पर ६०, ३५६

वाटड़ी=वाट, मार्ग ३५६

वाटली=पात्र ५०५

वाटि=बत्ती ६०६

वाडियोँ=वाटिकाओं में ५८८

वाड़ी=बाड़ी, वाटिका, ७३ । घर

३८३, ५३२

वाधाऊ=बधाई देनेवाले ५१६

वानी=वर्ण के ३४३

वाय=वायु २६६, ४७२

वार=वार, समय, दफा ३७, ७०,

८४ इत्यादि । कार्य ३६८

वारौं=वार, दफे ३६६

वारियउ=रोका हुआ २७३

वाल्लम=प्रियतम, वल्लम १६७, १७१,
२१५, २८६, ५७६, ६०१

वालरे=चले गए ३८४

वालहउ=प्रियतम, वल्लम १६८

वालहा=दे वल्लम १६८

वाल्लिम=वल्लम, प्रिय १६६

वळू=जलाऊँ १५५

वाव=वायु ३८५, ५५६

वावू=पास ३६१

वासउ=ठहराव रहना, टहरना ४६३
६५८

वासो=गौँ, वास ३६५

वाभेर=वैवानर, अग्नि २४४

वाहउ=वाँगे ३१३

वाहळ=नाले १४७, ३३८

वाहळायौं=नालो में, नरियों में
२८७

वाही-वही ६१०

वाहउह=जाटना है, निरता है ३६६

वाहउह=बीदा ४०४

वाहू=वाँगे ३१२

विह=विना ६०४

विह=दा २४२, ५७८

विह=आपनि फल में ७

विहउ=उह १७

विहोहिन=अप्रमंसा भी ६७२

विहउह=योरिगर ८६

विचइ=वीच में १४७

विचि=वीच में ३१८ । वीच के अंग
(कटि) में ४६२

विजउरा=विजौरा ४२६

विजोरियो=एक फल विशेष ५८८

विहंग=बोड़ा ? २२७

विहौंइउ=पराया ६३२

विहोणा=पराए १६३

विहो=विना १५५, १६३, १६८,
१७३, २०८, २५५, २६७, ४१७,
६०६

विहोहो=विनष्ट हुआ २१६

विहोसाखा=विना पूर्ण किए हुए, या
निनष्ट ४६३

विहो=विना ५६६

विहोम=विहोम, मूंगा ४५४

विहउ=देश, रूप ६२

विहो=दानों २७६

विहोउ=उदास ५४६

विहोनि=गोवज ३१६

विहोसियउ=विवाह, लोचा १००,
३०७, ६२३, ६३७ । समझाया
४३५

विहोपा=व्यात ८०, ५६६

विहोम=विहोम, नीरव ६५४, ६६३

विहोउ= ,, ,, ४२७

विहोउह=वृत्तान २०८, ५७७

विहोहियउ=दान डाला, पार किया,
गोजा ४०४

विहोनी=शायित, लगी, हुई, लिपटी
हुई २६६, ३७६

विलखड=उदास ६५०
 विलकला=उदास, व्याकुल १७३
 विलगिग=लगकर ६०१
 विलगी, विलग्गी=लिपट गई २३८,
 ५५१, ५५५
 विलवह=लिपटता है, लगता है २७०
 विललंती=विलाप करती हुई १३७,
 १८२
 विललाह=विलाप करता है २४०
 विलसह=विलास करता है, भोगता है
 ५६३, ६००
 विलजुलियउ=सगराया, निकला
 ६००
 विलूधउ = विलूध ४५६
 विनह=विविध २३४
 विस = विष १२७
 विसहर = विषधर सॉप ३५२, ६०८
 विसाह=खरीदकर २२८
 विसारि=भूलकर १३८
 विसाल = विशाल ४५८
 विह = दोनों ४२२
 विहसह=विकसित होता है ५४६
 विहाँगडे = पत्नी, आकाश (?) ४६५
 विहाँण = प्रातःकाल १६२
 विहाइ=नीतती है, जिताती है, ७६,
 ५८१, ५७८
 विहाणह = प्रभात मे १०७
 विहाय=नीते २५८, २५६
 विहावउ=रहो, दिन जिताओ ४२२
 विहूँ=दोनों ५८३
 विहूणी=विरहित, रहित १६३

वीट=पत्तियों की विष्टा (?) ५७
 वीख = कदम, डग ३८४, ४६४
 वीखड़ियाँह=पदचिह्न ३६६, ३६७
 वीछड़ी=विछुड़ गई ५८
 वीछुड़तो=विछुड़ते ३६६, ४०७
 वीछुड़ियाँ=विछुड़ते हुए १७१, ४०३,
 ५५६
 वीज = विजली, विद्युत् ३६८, ५०८
 वीजळ=,, ,, ५४२
 वीजळि=विजली २६०, २६८
 वीजळियाँह=विजलियाँ १६०
 वीजली=विजती ५४३
 वीजी वीजी=दूसरी दूसरी, नए नए
 ५११
 वीजुळियाँ=विजलियाँ ४४, ४५, ४६,
 १५७
 वीजुळियाँह=विजलियाँ १६६
 वीजुळी=विद्युत् ५२१
 वीक्षण=पंखा २३६
 वीक्षया=हवा की २४०
 वीटळी=पगड़ी (वेष्टन) ५००
 वीनवइ=विनती करती है २३५, २६३
 ३४१, ५४७, ५६७
 वीमाँह=विवाह ६
 वीर=भाई ५१८
 वीसरिसि=भूलता है १५७
 वीसारउ=भुलाओ ४०८
 वीसारण=भुलानेवाला १६३
 वीसारिया=विसार दिया ४२१ ।
 भुलाने से १८०, ६१२
 वीसारेह=भूलता है, भूलना १६८

वीसू=एक चारण का नाम ४४७,

४४८, ४८९, ४९०, ५२६

वीहगडउ=पत्नी, आकाश (?) ४९४

वीहतउ=डरता हुआ ४०४

वूठउ=वरसे हुए ५५६

वूठा = वरसा ५५६

वूडा=वरसा ५६

वूटी=वही, चला ५५

वेऊँ=ढोनों, वपति ५६५

वेगडउ=गोत्र २३४

वेगड=गोत्र २०७

वेध्याँ=सयुक्त ३२२

वेनदी = बलनरी, बेल ८३३

बेलदा=बेला, समय ५९०

बेल=गागर बेला ५६२ । समय ६२३

बेटन=नदपते हुए १९२

बेऊँ=समय ३८१

बेळा= ,, १७९, ५२२, ६०७

बेस=बेग, बख १०८, २०२, ४४३

बेहा = बेघा है ५४६

बै=बह ३८३

बैस=शर्मा, वनन ४३८

बोतापिसा=बुलाया १९४

ब्र-ग्र = बृह २६९

बज = बज ८८, ४६३, ५७२, ६३८

बराता=बारे, मिगजन ६०४

स

संफार्ता=सफित हुए ५४७

संशोनी=संशान्त हुई २१५

संधोदा=संशान्त होनेवाली २३२

सग्रही=पकड़ा ५७१

सजोगणी=पतिसयुक्ता, संयोगिनी

२६८

संजोगे=संयोग से १

सभ=सध्या ४९९

संभा=संध्या ५८९

सत=रहती, होती (?) ४१६

संदउ=के, का ६१, ५५६

संदावेस=सदेशा कहूँगा ४४२

संदियों = की ५५६

संदी=की ६३०, ६५६

संदेसउ=सदेशा ६५, १३८, १४३

सदेसदह=सदेश (कहना) १७९,

१२७-३०, १३२, १३७ । समाचारों

से ४८६

सदेसदउ=सदेश ६४, ११२, ११४,

११७, १२०-२३, १२५, १२६,

१३१, १३३, १३४, १३६, ३४८

सदेसदा = सदेशे ६६, ८२, ९९,

११०, १४१, १८२, ३४४

सदेशों = सदेशों (से) १०९, ११९

सदेशा = सदेशे १०७, १४०, १४४,

१८३, १८४

संशेने=संदेश से २००

संधाँण=शरीर की संधियों ३४९

संधियउ = संधान क्रिया ६७

संधसद=मिल जाय ४५६

संधजे=संशान्त होती है १७८

सपहुता = आ पहुँचे ५३०

सघड=भोजन १३३

संभरड=भ्रमण करता है, याद आता है २३, ६७, १८२ । सुनता है १९८

संभरउ=संभरण किया १८
 संभरया = याद किया ५४, ५५
 संभलि=सुन ८०, ५४७
 संभली=सुनी ६४२
 संभार=समहालकर, समहाल ६७, १४८
 संभारिया=स्मृत, याद किये हुए १८०
 संभारयउ=याद किया २४३
 संभाळ, संभाळ=याद कर करके ३८३
 संभाळूँ=समहालूँगा ३२०
 संभाळेह=समहाला ६३७
 संभाळै=समहालती है ५८५
 संमुहा=सामने, सम्मुख ७३
 स=वह, सो ३३, १४७, २८६, २८७ ।
 श्रवधारणसूचक व पादपूरक श्रव्यय
 ११, १६, १४४, १७४, ३४१,
 ४२६, ४३०, ४८१
 सउ=सो, वह २४, २०१ । सौ
 संख्या १८६, १६१, २३०, ५१५,
 ५२०
 सउसहसे=सौ सहस्र, एक लाख २३०
 सकइ = सके, सकता है १६७
 सकती=कसकर, सख्ती से ५००
 सकूँ=सकता हूँ ४०४
 सखरौँह=शिखरों पर २७१
 सखिए=सखियाँ, सखियों २३, २६,
 ५३२, ५३५ । हे सखी ५२६
 सखियाँ=सखियों ५०१
 सखल = साख ६७१
 सगळाँ=सबके ४०
 सगळा=सब ६५४, ६६३
 सगळाइ = सभी ४७१

सगळी = सब, समस्त ४४६
 सगाइ=संबंध, विवाह संबंध १
 सगुण=गुणवान् ३८६, ४०५, ६७२
 सगुणौँ=गुणवानो (के) ५६८
 सगुणी=गुणावती ३४४, ४५६
 सघण=सघन ५०८
 सघळी=सारी १७८
 सचेती=सचेत, सावधान २४०, ६२१,
 ६२२
 सच्चउ=सच्चा २३८
 सज=सजित ३४३
 सजण=सज्जन, प्रियतम ५६०
 सजल=स्वास्थ्यप्रद ४८५ । जलता
 हुश्रा, उज्ज्वल ५०६ । स्वस्थ, ताजा
 ६६८
 सजि=सजाकर ३४६, ३६४
 सजण=(सज्जन) प्रियतम २३, २५
 ५६, ५६, ६१, ६८, ७०, ७३,
 ७४, १५८, १७५, १७६, १७६,
 १६६, २१६, २३४, ३१८, ४२०,
 ४२१, ५०६, ५३०, ५३२,
 ५३३, ५३४, ५४१, ५५३,
 ५६३, ५८१
 सज्जणौँ=प्रियतम, ०से, ०फी, ०का
 ०को, ०ने २०, १६२, १७६, २०४,
 २०५, ४१७, ४२२, ५१६ । प्रेमी,
 ०से ४८७, ५३४ । प्रेमियों, ०के
 १६१, ५२१ । प्रियतमा ४०६
 सज्जणा=प्रियतम १५४, १७२ । ०फी
 २०४
 सज्जणिया=प्रियतम १४८, ३७१,
 ३७२

सज्जन्ये=प्रिय ने ३६१, ३६२
 सज्जनन=प्रियतम १५३, १७६, २०६,
 ५१३
 सज्जना = प्रियतम ४५, ४६, ३७३
 सक्ति=सत्कार २१४
 सक्तिवा = सत्कार ५७६
 सडसड=बैत से आवात करने का
 सडसड गठ ४६२
 सत=सी १८६, ३१०
 सत्तम = ज्ञातव्य ५८८
 सत्य=गाम ५०१, ६१४, ६२०, ६३०
 ६३३
 सदा=निश्चय ६५२
 सदा=गाम ३८८
 सदा=समान ८३
 सदेव=प्रमत्त, प्रेम २। प्रेम २७८,
 ५१३
 सदेव=सदेव से १४३
 सदा=वर्णित, प्रीति, कर्मिणी महिन
 ३१६
 सदा=वर्णित १८२
 सदा=गाम ४८३
 सदा=गाम १५३, २८७
 सदा=गाम १५३, ५२६
 सदा=गाम १५३
 सदा=गाम १५३, ३२६,
 ६१६
 सदा=गाम १५३, ३२६
 सदा=गाम १५३, ५२६
 सदा=गाम १५३, ५२६
 सदा=गाम १५३, ५२६

समनेहो=समान प्रेमवालों २६१
 समर समर=याद कर करके ३८२
 समोणी=समवयस्क ६८
 समी=समाई, वसी हुई २२१
 समुद्र=समुद्र ३७६
 समुद्र=समुद्र १३१
 समै=समय में ५८६
 सयरा=प्रियतम, (सज्जन) ३८४
 सयरा=सज्जनों, प्यारों, प्रियतम के,
 ०को ६६, ३६४, ४११, ५०६,
 ६७४
 सयरो=प्रियतम ने ३८५ । प्रेमियों में
 ५४३
 सयल=सकल २२०
 सदाये=हे सज्जनी ५७५ ।
 सर = तालाब ४७, ५२, ३८३, ४६५
 ५१० । वास ६७, २२५, १८६,
 ६६७ । स्वर ६६० । लड़ियों ३६६
 सर्ग=स्वर्ग में १८१
 सरगदर=विद्या ३०७
 सर्ग=स्वर्ग में ५८८
 सर्ग=स्वर्ग में ३१५, ५००
 सरग=स्वर्ग ५७६
 सरग=स्वर्ग ३२५
 सरग=स्वर्ग ४५१
 सरग=स्वर्ग ३२५
 सरग=स्वर्ग में ५१ । सर ६८३
 सरग=स्वर्ग ५२८
 सरग=स्वर्ग ६३२
 सरग=स्वर्ग ३६८

सलूणी=लावण्यवती, सलोनी ३६३
 सळ=वल २१६ । शलाका ४६२
 स=सळइ=हिलती-डोलती ६०३
 सल्लु=शल्य १६१, ३६६, ५२१
 सल्लिया=सालते रहे ५६
 सल्लिहयाँ=सालीं, व्ययित किया ५६
 सव=सौ ५१२ । वही ३०३
 सवळी=सत्र ३२५
 सवाद=स्वाद, रस २५२
 सवारि=सजाकर ५६५
 सवि=सत्र ३
 ससदळ=चंद्रमा ४७६
 ससनेही=सच्चे प्रेमी २२, ५८१,
 ६७४
 ससहर=शशधर, चंद्र ३२
 ससिहर=शशधर ५७०
 सहकार=ग्राम्राइत ६७३
 सहणउ=सहा २६१
 सहराँइ=शिखरों के १५२
 सहस=सहस्र २३०
 सहसे=हजारों २३३
 सहा=सहनेवाला ३६०
 सहाइ=रक्षा, सहायता २७६
 सहाव=स्वभाव २७
 सहावो=स्वभाव २३४
 सहि=सभी ३६८, ५६०
 सहिए=सखियों, ० ने ५१५, ५१६
 सहित=समेत, साथ ४५५
 सहिनाण=चिह्न ३८२, ४४६
 सही=सखी ६८ । अवश्य ही २८६ ।
 सभी ५५७

सहीज=निश्चय ही ५१६
 सहु=सत्र ८२, १६६, ४६८, ५१७,
 ५२८, ६०७, ६१४
 सहू=सभी, सब २२१
 सहेसि=सहूंगा १५१, ३१८, ४२६
 साँभइ=साँभ को ५१७
 साँभ्नी=सध्या २५१, ५२२
 साँधाण=उपचार ३३२
 साँभरइ=याद आता, स्मरण होता
 ३७६
 साँमळइ=सुनता है ३३७
 साँमळि=सुनकर १८४, २०८ ।
 सुनो ६२०, ६५४
 साँमळिया=सुना, सुने ६६, ६०५
 साँमि=स्वामी, मालिक ३१५, ३२३
 साँमुहउ=सामने, संमुख, ३६१, ३५०
 ६४३
 साँमुही=सामने २४१
 साँम्हो=सामने २६६
 साँवणि=सावन में २५१
 साँवळि=श्यामल बदली ४१५
 सा=वह (त्नी) ११२, २०४, २३६,
 ३४०, ३५६, ४५३, ५७८, ६१३
 साइ=वह ३३७
 साइधण=प्रेयसी, प्रियतमा ४८३
 साई=वाँग, धाड़, रुदन ३७७
 ४०६
 साख=फसल ११७ । साक्षी ५७०
 साचइ=सत्य ५०६
 साचेई=सत्य ही, सचमुच ही ३०५

साजगु=प्रियतम ५५, ५५, १०४,

१६५, ४६४, ५१२, ५५६

साजनिवा=प्रियतम ३७५

साजगा=प्रियतम से ५११

साजि = साज-सामान ८१

साटर=उदने में, सट्टे में ४५८

साटविदु=उदले में, खरीदकर ?
२३३

साठि=साठ सलवा ६६२

साठिया=साठनी सवार ८१

साथट=साथ में ६१७

साथे=साथ में ५६६

साठ=गुब्ब, आवाज २४५, २५२,
३८१, ३८५, ६०५

सामहलि=सामने ५२२

सामुदड = सम्मुख ३६३

सामुदड=सामने ४४७

सामुहौ=सामने, आंग ४०६, ५१६

साप=गह ३५५

सापवन्=मेवरी ४७७, ५८६

सापर=सागर ६२, ५५६, ६१२

सापेन=सयूर १७८

साप=सुधि, सुति १६७

सापड=वग ३२४

सापेरी=सुधि ६०६

सापव=गुब्बो-विशेष ५१, ३८८

सापेरी=सापव, पत्नी-विशेष ३८८

सापहली=साप ५६

सापेरी=प्रत्यय, सट्टा, ६, ५६३

सापिड=सिगोर, वृद्ध - विशेष २६५

सापल=प्रत्यय, दूध ३०५ । ढाला,

साहदुमार ४१०

सालई=सालता है ३७५

सालगा = सालने, मताने ३६

सालूगी = दादुर, मेटक १६८, ५६४

सालूग=मेटक १७३

सालूराह=ददुर, मेटक ८

साले = शल्य (के) ? २६६

सालह=सालह कुमार, ढोला ७७, ७८,
१००, १०२, १८४, १८७, १६२,

२३१, २४२, ५०८, ५६४, ६१६,

६२५, ६२६, ६५०, ६५२

सालह कुँवर=ढोला का नाम १४, २४
६२, ६३, ५०७, ६१८

सालहकुमार=ढोला का दूसरा नाम
२७५, ४८६, ५२६

साव = स्वाद १३३

सावगा=श्रावगा १३३, १४८, १४६,
१५१, २६६, ३६८

सास=श्राव ३५८, ६०४, ६०६

सासरह=समुगल में ११, ३१६, ५६४

सासरड = समुगल ८६

सासगवादि = समुगल ४३२

सासु = सास ३३५

साहँत = पकड़ने ४१३

साहई=सम्हालता है ५४७

साहिब = स्वामी २८, २६, ११६,
११६, १४६, १७३, २१८, २२६,

२३५, ३१७, ३२४, ५१५, ५१६,

५००, ५२८, ५२६, ५३१, ५३२,

५६२

साहिवा=प्रिय स ४८ । हे प्रियतम

३८, २६६

सिंगार=शृंगार २०८, ३६४, ५६५

सिंघी=सिंहनी ३८१

सिंधु=समुद्र १८६, १६०, १६१

सिखाइ=सिखा १०६, १८३

सिणगार=शृंगार २१४, ३०३, ३४७,

४८०, ५३६, ५६५, ५७१, ५७६,

५८०, ५८६, ६२३

सिध=सिद्धि ३४०, ४०७

सिध्व=सिद्ध, योगी २२०

सिधावठ=सिधाओ, प्रयाण करो
३४०, ४०७

सियाइ=सुहावनी ४५६

सिर = शिर ३५७ । ऊपर, पर ५४५,
६१६

सिरजियाँ=बनाया ४१४, ४१५

सिरजिया=सिग्जा, बनाया ४१६

सिरि=शिर पर ६३६, ६५८, ६५६ ।
ऊपर, पर, में २८, २४४, ३६७,
४२३ । लड़ी, सुमेर २३०

सिसहर = शशधर, चंद्र १३, १२६

सिहरों=सिखरो के २६८

सींगण=नरसिंहा ४१६

सींचती=पानी निकालती ६५६

सींचाण=बाज, पक्षी विशेष २६७

सींचाणउ=बाज २११, २१२

सींची=सींची गई २६१, ३६२

सी=शीत, सर्दी २७७, २६६, ४३६ ।

जैसी ४७८

सीख=बिदा १०६, २१०, २७६,

२७८, ४०६

सीघा=सरल ५५७

सीय=शीत २८८, २६०

सीयाळइ = शीतकाल २७७

सीळ=शील ४५१

सीह=शीत २८६ । सिंह ४५६

सुं=से ६७, २५२ । उसको ६५७

सुंणे=सुन ४३८

सुंदर=सुंदर ३६४, ४६६, ६०२ ।

हे सुंदरी ५४६

सुंदरि=सुंदरी २४, ८७, २३८,
३२१, ३६७, ४८१, ५७१, ५७७,
६१७, ६७०, ६७२

सु=पाद-पूरक अव्यय ७६, १०४,
२१३, २३३, ४६८, ५६३ । वह
लो ५१६, ५३३ । अच्छा १६७,
२२६

सुकळ = सुंदर कलवाली ४५२

सुकमाल = सुकुमार ४७६

सुकोमळी=सुकोमल ४५२

सुखल=सुख ५४६

सुगंधउ = सुगंधित २२३

सुगधी=महक ४६८ । सुगंधित ५०५,
५०७

सुगात = सुंदर शरीरवाली ६५२

सुगाळ=सुकाल ११

सुगुणत्तसुगुणी ६५२

सुगुणी=सद्गुणोंवाली ४५३

सुचग=अत्यंत सुंदर, बहुत अच्छा
३१०, ४५३, ४६२

सुचीत=मनोहर, सुंदर २७४

सुजॉण=वतुर १४२, १५५, १८४,
 १९२, ५६५, ५६६, ५९९, ६७२
 सुणउ=सुनो ९७
 सुणावे=सुनावे ३९८
 सुणि=सुन ३१, २३८, ३१४, ३४६,
 ३९७, ४३१, ४४८, ४९०, ६१९,
 ६४७, ६४९, ६७०
 सुणिवउ = सुना १९२
 सुणिव्वा = सुनने को ९९
 सुर्गी = सुनी ५८, १५६, २१७
 सुर्गेगि = सुर्गेगी १४५
 सुर्गेगी = सुर्गेगी ५४४
 सुर्गेह = सुनकर ४४४, ६५०
 सुर्दु = सुदूर ? ३८५
 सुर्दू = सुदूरा ८१
 सुर्गया = सुने २५
 सुर्गारु = पाली ४७३
 सुर्गनर = स्वप्न में ५१३, ५५७
 सुर्गनरि = स्वप्न १७०
 सुर्गनर्ह = स्वप्न में १४
 सुर्गनरु = स्वप्न में ५०२, ५०३
 सुर्गनउ = स्वप्न ५०३, ५५८
 सुर्गनाकापन
 सुर्गने = स्वप्न में ५५८
 सुर्गाध = सुर्गाध, आर्शावंचन ४२७
 ६४३
 सुर्गाह = स्वप्न ४५१
 सुर्गर = वाट फरके १५९
 सुर्ग्या = सुर्गा ३९९
 सुर्ग = सुर्ग, सुर्गावना, सुर्गा, रमिक
 ३११, ३५६, ६५४, ६६३

सुरंगइ = सुरंगो २५२
 सुरंगउ = सुरंगा ६६९
 सुरंगा = सुरंगो, हरे भरे ५४६
 सुरंगी = रँगीली ५३६
 सुर = स्वर १८८
 सुरच = याद, स्मृति १३५
 सुरपति = इद्र ९३
 सुररु = सुरभि, सुगंधित द्रव्य ५०५,
 ५०७
 सुररुउ = सुरभि, सुगंध १९०
 सुरहि = सुरभित २२३
 सुवइ = सोता है ६०८
 सुसेत = सुरवेत, उज्ज्वल ४५७, ६६६
 सुहंगा = सस्ते २२६
 सुहामणउ = सुहावना ११०, २४५,
 २५१, ३०२, ४३२
 सुहॉमणा = सुहावने ६५४
 सुहावउ = सुहावना ४८५
 सुहावा = सुहावने २६८, ५३५
 सुहानी = सुहावना ५८४
 सुहियइ = स्वप्न को ५१५
 सुहियाउ = स्वप्न २४, ५०१
 सुहिया = स्वप्न ५१२, ५१४
 सुँ = से ६, ५७, ७७, ९२, १३७,
 १५९, १७३, २१८, २४८, ३४२,
 ३६२, ५०१, ५४७, ५६४, ६१७,
 ६२०, ६२९, ६३३। साथ, से
 ६१८
 सुँउ = सुना ३५४
 सुँर = जमर सुमरा ५१७

सू=सो ५३३, ५६०
 सूकड़=सूखता है १५८
 सूकण=सूखने ३७४
 सूका=शुष्क ५३३, ५६०
 सूकिया=सूखी २४८
 सूकी=सूखी १३५
 सूड़उ=सुग्गा ४०२
 सूड़ा=हे सुग्गे ३६७, ४०५
 सूधी=सीधी सादी, १०३ (छ)
 सूतॉ=सोते हुए ३०५, ३०६
 सूती=सोई, सोती, सोई थी, सोती
 हुई १४, ४७, ४८, ५४, ५५,
 ३४१, ३४२, ३७८, ५०४, ५०५,
 ५०७, ५१२, ६०१, ६१०
 सूधा=सीधे सादे, सरल ६४०, ६५८
 सूना=सूने, शून्य ३५८
 सूनी = खाली ५०
 सूर=सूर्य ४६६, ५५१, ६४६
 सूरिज=सूर्य १३०, ३०१
 सूवउ=सुग्गा ४०६
 सूवा = हे सुग्गे ३६८, ४०१
 सूळी = सूली १६६
 से=वह ६७, १६५, २००, ३८०
 सेकतॉ=सेकते हुए ३२१
 सेकड़=सेकता है २०६
 सेजइँ=सेज में ४७, ४८
 सेभडी = सेज, शय्या १६६
 सेरियाँ=गलियों (में) १०६
 सेलार=घोड़ों की जाति २२६
 सेवंत=सेता, पाता ४१४
 सेवार=शैवाल ६६४

सेवियइ = सेवन करना चाहिए २६४
 सेहर = शिखर १२८
 सैं=हम ४३८
 सै=जैसे, से ४६६
 सैण=मित्र ४३८
 सो=वह १६४, ३०८, ३०९, ३६६,
 ४२६, ४७२ । सा (परिमाण
 सूचक) । सौ ५६७
 सोइ=वह, वही, उसे, उसी, २३,
 १११, १७०, ४२६, ४६४, ५१०,
 ५३२, ५४१
 सोऊँ=सोती हूँ ७६, ५११, ५१४
 सोग = शोक, दुःख ३५७, ६६५
 सोने=सोना ५३६
 सोरंभियउ=सुरभित ५५०
 सोळ=सोलह संख्या ३६४
 सोर्वन=सोने का ५६४
 सोवन = सुनहला, सोनेके, सोना ८७,
 २०६, २४३ । सुहावने ४७१
 सोवन्न = सुवर्ण, सुवर्णमय आभूषण
 ४६४, ४७५
 सोवन्न=सुवर्ण ४६३
 सोहड़=सुभट ५६७, ५६६, ६०७
 सोहण=स्वप्न ५१०
 सोहणा=सपना ५११
 सोहणो=सपना ५०६
 सोहली = एक आभूषण विशेष ४६५
 सोहागण=सौभाग्यवती ५१०
 सोहागिण=सौभाग्यवती, पतिसंयुक्ता
 २६०, २६१, ६७२
 सोहामणइ=सुहावनी २६८

स्युँ=से ३३२

स्वात=स्वाति नक्षत्र (का जल) १२५,
१३२

स्वानि=स्वाति नक्षत्र (का पल) १६६

स्वास=श्वास ५३

ह

हंभत=हम १६०, १७१

हृदिज=उ=प्रमा जाता है, वृमना
चादि २३४

हंठ=उे ६३०

हटा=उे ५०६

हउ=है ता है ५११

हउदा=हंम ५५२

हंसकी=हंस की हण ५१७

हणानकी=हंस की की गतिवाली
२०७

हंसउ=हंस २६४

ह=मदप्रम प्रमम १३८

हउ=ह, प्रम. ४७, १८, ३७३।
है ७१। हौम ३६७

हउ=हौं ३५६

हउ हउ=हंम, हंम ३२३

हउम ५४७=हउ १३२ ५७०=
(५ ५ ५)

हउम ५४७=हउ १३२ ५७०=

हउ=हंम ५०६

हउ, ह=हंम १६६

हणियार=हणियार २६६

हउ=हंम १६६, १२२

हउ, ह=हंम १६६, १२२, २०७, ३६१
६५७

हमयी=हमसे २३७

हय हय=हे हे ६०७

हर=महादेव, शिवजी ४७७, ६३६।

प्रेम, दर्प आनंद १३८, १३६,

हरियाली २६५

हरखयउ=हर्षित हुआ ५२७, ६५१

हरखियउ=हर्षित हुआ ६७३

हरखिया=हर्षित हुए ५२७, ५६५

हरखी=हर्षित हुई ५२७

हरगा=हरनेवाला १६३

हरगावियाँ=मृगावियाँ २२२

हरगाव्या=हरिगाव्या, मृगनयनी २२८,
२६६

हरहार=शिव का हार सर्प ५७८

हरिया=उरे २५२

हरियाळियाँ=हरी दो गहूँ २५०

हरियाळी=हरियाळी की २६०

हलहल=हलचल ६४१

हलनउँ हलनउँ=चलता हूँ ३०५

हलनग=चलना, चलने की बात ३३७

हलनयउ=चलोगे ३०५

हलनारउ=चलना, प्रथान ३०४

हलियार=चलने ३०५

हलियार=चलना, उ, उडा ३२१

हलियार=हलियार १६६

हलियाँ=हौ ६५

हलान=हाल ५३

हलन=हलते हौ २१८

हलन=हंसकर ६११

हलियार=हंसकर २२८, ५७०, ५७४,

हलियार=हंसकर २७८, ५७३

हसि नइ=हँसकर २२१, २२६
हसिसी = हँसेगा ७
हस्ती=हाथी ११५
हाँण=हानि ६२७
हाँसउ=हँसी ७
हाय करत=हाथ में लेते ४१६
हाथाळी=हथेली १५६
हाथि = हाथ में ५०५, ६५६
हाथे = हाथों में ३४६
हारियउ=हारा ५६०
हारिस्यइ=हार जायँगे ४२२
हालती=चलती है ४७४
हालयउ=चला ३७५
हिंडोलण हारि=भ्रुकभोरनेवाला ४७
हि = ही, पादपूरक अव्यय ७२, १०८,
२०६, ५०२
हित=प्रेम ४१७
हियइ=हृदय में ३६६, ५१४
हियउ=हृदय ६१
हियइइ=हृदय में १५८, १७५, ३०५
३६७
हियइउ = हृदय १६३, ३६०, ३६२
५२६
हियइा = हृदय १६०, ४१६
हियॉह = हृदय से २०३
हिया = हृदय २०, ३०३, ४२२
हियाह=हृदय ५३३
हिये = हृदय में ३५८
हिरणाक्षी = मृगनयनी २२१, २२६
हिरणी=हरिणी २८२
हिलोर = लहर १६७

हिलूसइ = लालायित होता है ६१
हिव = अत्र २७६, ३२५, ३४१, ४४०,
४६०, ५६७, ६४६
हिवइ = अत्र ८
हिवइउ=हृदय ६११
हिवडे = हृदय में ६१२
ही=भी, ही २१, ५०, ७४, १११,
१४०-१४४, १७५, २००, २०१,
२१४, २२५, २२७, २३३, २५७,
२५८, २७६, ४०७, ४३०, ६२६
हीसरियाँह=भ्ररने लगी ३६७
हीण = क्षीण ४६२
हीणउ=हीन, विना, रहित ५७६
हीयइ = हृदय में ६३३
हीयउ=हृदय ३८६
हीयडे=हृदय पर ५०६
हीया=हृदय १४३
हीयाह=हृदय में ५३०
होर=हीरा ४५४
हु=मै २३५ । होऊँ ३१८
हुंकारइउ=उत्तर, हुकार ६११
हुंता = से २०३ । थे ५०६
हुति=होता, होते ७३, १६३
हुती=से ४३७ । संभाव्य बात, होनी
४४६
हुँदउ=का ३०७
हुअउ = हुआ ४०, १२१, ४८६
हुई=होवे, होगा, हो रहा है, हो जाय
१३१, ३४०, ५८४, ५८६, ६२७
हुइ चाइ=हो जाय ५०३
हुइ रखउ=हो रहा ४६

हुहस=होगा २७३

हुह=होगा १४२ । हुई, हो गई १६५

२०८, २४०, ३७२, ४०४, ४३७,

४४४, ४४५, ४४८, ५१६, ५८२,

५८६, ६२२

हुउ=होओ ६१६

हुता=ये ५३३

हुय=हुआ ५५८

हुयउ=हुआ ६५०

हुया=हुए, हुए हुए १४८, २५३,

३४६, ४२७, ५१६

हुवह=होवे, हो, होता है ६८, २११,

३३३, ५४६, ५४८, ५७२, ५६७

हुवउ=हुआ १०, १०१, ३५७, ४६३,

५४५, ५४८, ५५१, ६५१

हुवा=हुए ५३२ । चले गए ४२१ ।

हो गए ४४२

हुँ = में ४३, ५१, ७२, १५१, १६३,

१७६, २०६, २२५, २६३, २६३,

३१३, ३१८, ३४१, ३६२, ४६७,

५०२, ५०३, ५१२, ६२०, ६३५

से १८७, ३४२, ४२०, ४६३,

४६४

हुओँ=मुग्ट ढाढ के बीजे से ६६१

हुँतो, हुँना=से १८६, १८५, १६४ ।

से ५३०

हुँती=से ३७० थी ५२६

हुआ=हुए ३८५

हुई=हो गई ३७८

हुया=हुए २०५

हुवउ=हुआ ५८०

हुवर=हयवर, श्रेष्ठ वोढे ५६५

हुक=एक १३४, ४०४, ४७५, ५१४

हुकली=अकेली ३२३

हुडि=भुंड २२६

हुमोंगिर=हिमालय ५२६

हुमाळे=हिमालय में ४७७

हुरा=दूतों द्वारा खबर ५६७, ६२६

हुरा हुवह=खबर होती है ५६७

हुलउ=पुकार ३७१

हुळ=खेल, क्रीडा ५११

हुँ=है ३८५

हुओह=होवे ५०६

हुओ=हो, हो जाय, हो जाता है, हो

सकता है, हुओर ६६, १८१, २६२,

३०६, ३१७, ३८६, ४८५, ५०२,

५०८, ६६८

हुओँ=हो गई है ४४२

हुओय=हो, हुओर, होता १६५, ३२८,

४४६, ५४६

हुओली=होलिका १४५

हुओर=होगा ५३६

प्रतीकानुक्रमिका



प्रतीकानुक्रमणिका

अ		आडवळे आघोफरइ	४३६
अकथ कहाणी प्रेम की	१५६	आडा हूँ गर दूरि घर	६१
अंगि अभोखण अञ्जियउ	४७१	आडा हूँ गर भुईँ घणी, तियाँ	७२
अति आणद उमाहियउ	४२४	आडा हूँ गर भुईँ घणी, सज्जण	७०
अति वण ऊनमि आवियउ	२५७	आडा हूँ गर वन घणा, आडा	१६४
अंत्र तनइ नहिँ कोइलौं	८	आडा हूँ गर वन घणा, खरा	६६
अवही मेली हेकली	३२३	आडा हूँ गर वन घणा, तौँ	२१२
अम्हों मन अचरिज भयउ	२०	आडा वनखँड दे गया	४१६
अबसर जे न (हि) आविया	१७६	आणंद अति ऊझाह अति	६७४
अहर अभोखण ठकियउ	४७२	आदीतौँ हूँ ऊजळी	४६३
अहर पयोहर दुइ नयण	४७०	आवि विदेसी वल्लहा	४१८
अहर फुरककइ तन फुरइ	५१७	आवी सव रत आँमळी	३०३
अहर रंग रचउ हुवइ	५७२	आसा लुध्वी हूँ न मुइय	२०६
		आसा लूँध उतारियउ	५५२
आ		इ	
आँखडियाँ डबर हुईँ	१६५	इद्रौँ वाइण नासिका	५८०
आँख निमाणो क्या करइ	५२०	इक जोगी आणंद मँइ	६१६
आखय उमा देवडी	८०	इणि परि ऊमा देवडी	७६
आज उमाहउ मो घणउ	५१८	इणि भवि मारु काँमिणी	६१४
आज ज सूती निसह भरि	५०४	इसइ आरखइ मारुवी	१४
आज घरा दस ऊनम्यउ, काळी	२७१	इहाँ सु पजर मन उहाँ	२१३
आज घरा दस ऊनम्यउ, महलौं	२७२	ई	
आज निसह म्हे चालित्यौं	१०८	ईडर की घर अउळगउँ	२२४
आज फरुकइ आँखियाँ	५१६	ईडर की घर अउळगण	२२५
आज्जणउ घन दीहइउ	५३१	उ	
आजे रळी वधोमणाँ	५५६	उककंजी सिर हत्यडा	१६
आठम प्रहर संभ्रा समै	५८६	उज्जलदता घोटडा	४३६

उत्तर आन न चाइयइ	३०१	ऊँडा पॉणी फोहरइ, थळे	५२३
उत्तर आन स उत्तरइ	२६८	ऊँडा पॉणी फोहरइ, दीसइ	५२४
उत्तर आनस उत्तरउ,		ऊँमर ऊतावळि करइ,	६४०
ऊरुटिया	२६५	ऊँमर ढोलइ नूँ कहइ	६३५
उत्तर आनस उत्तरउ,		ऊँमर ढीठा जावता	६४१
ऊपड़िया	२६६	ऊँमर ढीठा मारुई	६३६
उत्तर आनस उत्तरउ,		ऊँमर थिचि छेती घणी	६४३
सीय पडेनी	२६०	ऊँमर मन विलखउ हुयउ	६५०
उत्तर आनस उत्तरउ,		ऊँमर सालइ उतारियउ	६२६
पल्लोरियाँ	२८६	ऊँमर सुणि मुक्क वीनती	६४७
उत्तर आनस उत्तरउ, पालउ	२६१	ऊनमि आई बहळी	४१
उत्तर आनस उत्तरउ,		ऊनमियउ उत्तर दिसइँ, काळी	४३
पाळउ पड़इ	२६२	ऊनमियउ उत्तर दिसइँ गाल्यउ	१८
उत्तर आनस उत्तरउ,		ऊनमियउ उत्तर दिसइँ, मेड़ी	४२
पाळउ पड़इ तरंत	२६३	ऊलवे सिर हत्यडा	१५
उत्तर आनस उत्तरउ,		ए	
पाळउ पड़इ खद	२६४	एकणि सीम फिसा कडूँ	४८८
उत्तर आनस उत्तरउ, सही	२८६	एक दिवस पूगळ सहर	८३
उत्तर आनस उत्तरउ,		एरा समईयइ आवियउ	५२६
पड़सी	२८७	ए वाड़ी ए बावती	३८३
उत्तर आनस उत्तरउ,		ए सारस कहिजइ पसू	५२
काटिया	२६७	एही भली न फरहला	६२७
उत्तर आनस उत्तरउ,		क	
मीय	२८८	कंठ पिलगो मारवी	५५१
उत्तर मि मि उण्ठाटियाँ	६४	कडपा ठिऊँ बराहयाँ	७५
उत्तर मी सुँ नूँ उषइइ	२६३	कपपइ पीइ कमाण गुण	२४६
उत्तर मी सुँ नूँ उषइइ	३८७	कग गचा मोती नूमळ	५७४
उत्तर मी सुँ नूँ उषइइ	५७८	कगहा इणि कुठि गरामइइ	४३०
उत्तर मी सुँ नूँ उषइइ		करटा कटि कासूँ कगॉ	४४५
उत्तर मी सुँ नूँ उषइइ		करहा काष्टी काटिया, चाली	४६६
उत्तर मी सुँ नूँ उषइइ		करहा काष्टी काटिया	४६६

करहा चरि चरि म चरि चरि	४३४	कूँभड़ियोँ करळव कियउ,	
करहा तूँ मनि रूश्रडउ	३२२	घरि पाछिले द्रंगि	५५
करहा तो वेसासडउ	४६३	कूँभड़ियोँ करळव कियउ,	
करहा देस सुहामणउ	४३२	घरि पाछिले वरोहि	५४
करहा नीरूँ लउ चरइ	४२८	कूँभड़ियोँ कळिघ्रळ कियउ, सरवर	५६
करहा नीरूँ सोइ चर	४२६	कूँभड़ियोँ कळिघ्रळ कियउ, सुणी	५८
करहा नूँ समभाइ कह	३२६	कूँभड़ियोँ कुरळाइयोँ	५६
करहा पाँणी खत्र पिउ	४२६	कूँभोँ घउ नइ पखडी	६२
करहा माळवणी कहइ	३२७	कूट कटाडी दे छुरी	६४५
करहा लत्र कराडिश्रा	४३३	कूटि कटाडी इण करह	६४६
करहा लत्री वीख भरि	४६८	के मेल्ह्या पूगळ दिसइ	६२५
करहा वामन रूप करि	४६७	क्रम क्रम ढोला पंथ कर	४४०
करहा सुणि सुदरि कहइ	३२५	ख	
करहउ पाँणि तिसाइयउ	४२५	खंवर नेत विसाल गय	४५८
करहउ कूँइइ मनि थकइ	३३६	खूँटइ षीण न मोलडी	३७५
करहउ मन कूँइइ थयउ	३३०	खोड़उ हूँ तउ डाँभिज्यउँ	३१६
कवण देस तइँ आविया	१६५	खोड़उ हूँ तउ डाँभिज्यउँ	३१८
कसतूरी कड़ि केवडो	४७६	ग	
कहिण माळवणी तणइ	२४२	गउखे वइठा एकठा	२४३
कहि सूवा किम आवियउ	४०१	गढ नरवर अति दीपता	२२२
कागळ नहीं क मस नहीं, नहीं	१४०	गति गंगा मति सरसती	४५१
कागळ नहीं क मवि		गति गयंद जैष केळिग्रम	४५४
नहीं लिखतौ	१४१	गयगमणी गूजर घरा	२३२
काळी करह विथूमिया	२२८	गया गळती राति	३८०
काळी कठळि दादळी	२६७	गह छुँडइ गहिलउ हुअउ	४८६
काळी कंठळि बीजुळो	५२१	गादह दाध्यउ दग्ग करि	३३५
काया भन्नकइ कनक लिम	५४६	गाहा गीत विनोद रस	५६८
किउँ ठाकुर अळगा बहउ	६२८	गिरवर मोर गहकिया	३६
किणि गळि घालूँ घूघरा	३१२	गिरह पखालण सर भरण	४७
कुँशरी पिगळरायनी	६०	घ	
कुसळ विहावउ सज्जणाँ	४२२	घम्म घमतइ घाघरइ	५३७

घम्म घमतह घूत्रह	५२६	बह सँखाँ मारू हुई	४३७
घर नोगुळ दीवउ सलळ	५०६	बउ तूँ ढोला नावियउ, कह	१४६
घरि बहटा ही आविस्यह	२२७	बउ तूँ ढोला नावियउ, मेहाँ	१५४
घाली टापर वाग मुवि	३४५	बउ तूँ साहिव नावियउ, सावण	१४६
		बउ साहिव तूँ नावियउ, मेहाँ	१४७
च		बब सुपचळ करि कुँश्रळ	४७३
चढण देह फपूरस	१६१	बब जागूँ तद एकळी	५११
चढमुली हंसी गमण	२०७	बब सोऊँ तब जागवह	७६
चदवदण मृगलोयणी	४७६	बळ थळ, थळ बळ हुइ रखउ	४६
चढा तो फिण षडियउ	३६५	बळ माँहि वउह कमोदनी	२०१
चढेगी बूँदी चिची	४००	बिउँ मन पसरह बिहुँ टिसह	२१४
चषा फेगी पापडा	३६६	बिण दिन ढालउ आवियउ	५०१
चषावरनी नाफ सळ	४६२	बिण दीहे पावस भरह, बावीहउ	२६६
चहूँ दिम दामिनि मवन वन	३७	बिण दीहे पावस भरह,	
चागण एक जंमर तगाउ	४४१	खमनेहोँ	२६२
चागण ढोलह नूँ फटह	६४४	बिण दीहे वण हर घरह	२६५
चाल मंणी निण मदिरहूँ	३५६	बिण घण कारण कमलउ	४४२
चिा टाडणि ज्या नरौ	२१६	बिणनूँ नुपनँ देखनी	५५८
चिा वायउ मयळ चग	२२०	बिण भुह पजग पीयणा	६६१
चोतारनी चुगी बौँ	२०३	बिण मुवि नामखेलदी	३११
चोतारनी लजगौँ	२०५	बिण गित नाग न नीमरह	२८४
चुगह चितारह भी चुगह	२०२	बिण रुति चग पावस लियह	२४६
चोर नन आळम करि रहह	२५४	बिण रुति बहु पावस भरह	२४७
चोथे प्रहरे रौँके	५८५	बिण रुति बहु चाडळ भरह	२४६
चुपारह पावह पण वणउ	२६०	बिणि दोहे तिणनी थिठह	२८२
		बिणि दीहे पाळउ पदह,	
छ		टापर दुरी	२७६
छत्रे प्रहरे दिवस के	५८७	बिणि दीहे पालउ पदह	
छोटी धंणी डुम सुगट	२४०	टापर पद	२८०
छोटी पीण न आवणी	३८४	बिणि दीहे पाळउ	
ज			
जह नूँ टागा नावियउ	१३०		

दादुर मोर टक्क घण	४८	नितु नितु नवला सौँढिया	८१
दिन छोटा मोटी रयण	२८५	निसि भरि सूती सुंदरी	६०१
दिसि चाहती सज्जणा	२०४	प	
दीसइ विवहचरीयं	२३४	पँचमें प्रहरै दीह रै	५८६
दीह गयउ डर डबरे	४६१	पंचाहण नहँ पाखरखउ	५५४
दुख वीसारण मनहरण	१६३	पंथी एक सँदेसइउ, कविज्यउ	१३६
दुज्जण वयण न संभरइ	१६८	पथी एक सँदेसइउ, भल	
दुरजण केरा बोलड़ा	४४६	माणासनइ	११४
दूजा दोवड़ चोवड़ा	३०६	पंथी एक सँदेसइउ, लग	
दूजै प्रहरे रयण कै	५८३	ढोलइ पैहचाइ, तनमन	१२६
दूहा संदेसा मिसइँ	१८३	पंथी एक सँहेसइइ, लग	
देस निवाणूँ सजळ जळ	६६८	ढोलइ पैहचाइ, धँण	१२६
देस विरंगउ ढोलणा	४२७	पंथी एक सँदेसइउ, लग ढोलइ	
देस सुरगउ भुइँ निजळ	६६६	पैहचाइ, निकसी	१२५
देस सुहावउ जळ सवळ	५८५	पथी एक सँदेसइउ, लग ढोलइ	
दोउ मयमंत सुजौण	५६६	पैहचाइ, विरह	१२३
ध		पथी एक सँदेसइउ, लग	
घरती जेहा भरखमा	५६३	ढोलइ पैहच्याइ, जंधा	१३२
घर नीळी घण पुंडरी	२५१	पथी एक सँदेसइउ, लग	
घावउ घावउ हे सखी	३४८	ढोलइ पैहच्याइ, जोवन	१३१
न		पंथी एक सँदेसइइ, लग	
न को आवइ पूगळइ	८२	ढोलइ पैहच्याइ, धँण	१३०
नदियाँ नाळा नीभरण	२५६	पंथी एक सँदेसइइ, लग ढोलइ	
नमणी खमणी बहुगुणी, सगुणी	४५६	पैहच्याइ, विरह महाविस	१६७
नमणी खमणी बहुगुणी, सुकोमळी	४५२	पथी एक सँदेसइइ, लग ढोलइ	
नर नारी सूँ क्यूँ जळइ	६१८	पैहच्याइ, विरह-वाघ	१२८
नरवर देस सुहौमणउ	११०	पथी एक सँदेसइउ, लग ढोलइ	
नरवर नळ राजा तणउ	४	पैहच्याइ, सावज	१३३
नळ राखा आदर दियउ	३	पंथी हाथ सदेसइइ	१३७
नागरवेली नित चरह	३१०	पंथी हेक सँदेसइउ	१३४
ना हूँ सींची सज्जणे	३६२	पगि पगि पाँणी पंथ सिर	२४४

पनरह दिन लग सासरइ	५६४	त्रिव माळवणी परहरे	३६५
पनरह दिन हूँ बागती	३४२	प्रीतम कॉमणगारियोँ	२४८
परदेसों प्री आवियउ	५७३	प्रीतम तोरइ कारणइ	१६०
परमन रजण कारणइ	४३७	प्रीतम बाछुडियोँ पछइ	४०३
पल्तागियउ पवने मिलइ	३०८	प्रीतम हूती बाहिरी	३७०
पटिग्या ओदण कंवळा	६६२		
पहिलइ पोहरें रेणु कै	५८२	फ	
पटिली होय दयामणउ	५४६	फागण मास सुरामणउ	३०२
पही भगतउ, बइ मिलइ, तउ	१२४	फागुण मासि वसंत रत	१४५
पही भगतउ, बइ मिलइ, कहे	१३५	फूलों फलों निवट्टियोँ	१७२
पुण नुठउ न पवारियोँ	५४८	फौज घटा खग दौमणी	२५५
पाँ एटियोँ ई किउँ नही	७१	व	
पोने पांणी थारइ	६६	बहतौं दिन बीजइ पछइ	५६८
पादर प्रोदित गलियउ	१०४	बहु दिवसे प्री आवियउ	५७६
पावस आयउ सारिवा	३८	बहु वंवाळू आव धरि	१७८
पावन मास प्रगट्टियउं, जगि	२५८	बाँवउँ बड़गी छोहड़ी	३२०
पावन मास प्रगट्टियउं, पगइ	२७०	बाँवलि फौइ न थिरजियोँ	४१४
पावन मास पिडेस प्रिय	१७४	बाँवट्टियोँ लँआलियोँ	४८२
पिगळ पुनी पदभिणी	५	बाँहे मुंदरि बहगला	४८१
पिगळ पूगळ आवियउ	११	बाजियोँ हरियालियोँ	२५०
पिगळ राभा नूँ मिलियउ	८४	बाजहियउ नइ थिरहियोँ	२७
पिय नाटों ग पहवा	३३६	बाजहियउ पिउ पिउ करइ	२५२
पोहर मडी हँमणी	६३०	बाजहिया चढि गउम थिरि	२८
पूगळ देस दुकाळ थियुँ	२	बाजहिया चढि हँगरे	२६
पूगळ हुंता आविया	१६६	बाजहिया हँगर दहण	३४
पूगळ हुंता पुदरगइ	१८८	बाजहिया तर पगिया	३२
पूगळ पिगळ गळ	१	बाजहिया तूँ चोर	३०
पुगा पापर देमकी	४१२	बाजहिया निलपंगिया, बाढन	३३
प्रह फूटीं दिमि पुदगी	६०२	बाजहिया निलपंगिया, मगरि	३१
प्रहने प्रह ल ऊनरगुँ	४६०	बाजहिया प्रिउ प्रिउ न कहि	३५
प्रिउ दोळउ प्री माकई	६३८	बाजहिया रतपंगिया	३४
		बाबा बाळू देसइउ	३८६

बाबा मं देसइ मारुव, सुधौं	६५८	मंभि समंदौ वीट घर	५७
बाबा म देइ मारुवौ, वर	६५९	मदिर हूँतौ ऊतरघउ	१९४
बाळउ बाबा देसइउ	६५६	मत चाणे प्रिउ नेह गयउ	१६२
बाळू ढोला देसइउ	६५७	मन मिळिया तन गड्डिया	५५३
बाळू बाबा देसइउ, जहाँ पॉणी	६६४	मन सीचाणउँ जइ हुवइ	२११
बाळू बाबा देसइउ, जहाँ फौकरिया	६६५	मनह सँकाणी माळवणि	२१७
बाळू बाबा देसइउ, पॉणी जिहाँ	६५५	मनि सकाणी मारुवी	५४७
बिज्जुळियाँ नीळजियाँ	५०	मरलीवउ पॉणी तणउ	२३१
बीछुइतौ ही सजणा, क्याँही	३८१	महि मोरौ मंडव करइ	२६३
बीछुइतौ ही सजणा, राता	३६९	मॉगणहारौ सीख दी, श्रायउ	२१०
बीजइ दिन ऊँमर मित्यउ	६४३	मॉगणहारौ सीख दी, ढोलइ	२०९
बीज न देख चहड्डियाँ	१५२	माणस हवौ त मुख चवौ	६५
बीजुळियाँ चहळावहळि, श्राभइ श्राभइ एक	४४	मारवणी इम वीनवै	५६७
बीजुळियाँ चहळावहळि, श्राभइ श्राभइ कोडि	४६	मारवणी तूँ अति चतुर	६३३
बीजुळियाँ चहळावहळि, श्राभइ श्राभइ, च्यारि	४५	मारवणी नइँ माळविया	६५३
बीजुळियाँ जाळउ मित्यौ	१५१	मारवणी मुख ससि तणइ	६००
बीजुळियाँ परोकियाँ	१५३	मारवणी मनि रंगि	६०
बेऊँ चतुर सुजाँण	५६५	मारवणी सिणगार करि	५३६
बोखि न सककूँ बीहतउ	४०४	मारुवणी पिगळ सुधू	१९७
बोली वीणा हंस गत	५४०	मारुवणी भगताविया	१०९
भ		मारुवणी मुँइ वन्न	४६४
भमुहाँ ऊपरि सोहली	४६५	मारु घूँ घटि दिट्ट मइँ	४५५
भरइ पलट्टइ भी भरइ	१८२	मारु चाली मंदिरा	५३८
भाईँ कहि बतळावसूँ	३२६	मारु तोइ खू कणमणइ	६०५
भूली सारस सदइइ	३८८	मारु त्रिहुँ वरसे वडी	६१३
म		मारु थॉकइ देसइइ	६६०
मइँ घोडा वेच्या घणा	६५	मारु देस उपनिया, तौँइ	४५७
		मारु देस उपनिया, तिहाँ	६६६
		मारु देस उपनिया, नइँ	४८३
		मारु देस उपनिया, ...जाणही	४८४
		मारु देस उपनियाँ ...बोलही	६६७

		य	
मारुनूँ आखइ सखी	१६		
मारुनूँ आखइ सखी, पह	२४	यहु तन जारी मसि करुँ	१८१
मारु वइठी सेज गिर	५४५	र	
मारु मन चिंता घरइ	६३४	रहवारी तेडावियउ	३३१
मारु मारइ पहियड़ा	४७५	रह रह मुदरि माठ करि	३२१
मारु मारु फळाँइयाँ	६११	रहि नीमाँणी माठ करि	४११
मारु लँक दुइ अंगुळाँ	४६१	रौणी राजा नूँ कहइ	१०२
मारु सनमुख तेडिया	१०७	राखउ करइउ डाँमखउँ	३३२
मारु सी देवी नहीं	४७८	राजा कउ जग पाठवइ	६६
मारु लवणे संभळी	६४२	राजा परबा गुणिय जग	४०
माळव गढ राबा मुधू	६४	राजा प्रोहित तेडियउ	१०१
माळवणी इण विवि थणउ	४२३	राजा प्रोहित गलिजइ	१०३
माळवणी फउ तन तप्यउ	२३६	राजा रौणी नूँ कहइ	७
माळवणी टोलउ कहइ	२७६	राजा रौणी हरखिया	५२७
माळवणी नूँ मन सभी	२२१	गति ज जाडळ सवण घण	५०८
माळवणी मनि दूमणी	३१६	गति ज रूँनी निसइ भरि	१५६
माळवणी म्हे चानिश्वा	२७८	गति सु सारस कुण्डिया	५३
भाळवणी गिरगार सक्ति	२१५	गति दिवस रगउँ गमट	५६३
भाळव देस भिगोइया	६७२	गति उनी इगि जाल मउँ	५१
भाळ महारस भयण मन	३००	रूँनी रङी चणेहि	३७६
भाळ उ वइ तीस वरी	६०६	रुप अनूपम भाववी	४५३
भाळ नोरावा मूँनी	१६६	ल	
भाळ गरी न मन वरी	३२६	लगण वरीसे भाववी	४६६
भाळ गूढा मन गज	२६१	गहरी सायन सदियाँ	५५६
भाळ गति ताड गूढा	३१३	ताँवी पौव नटगइ	४१०
भाळ गति ज इगि	५०५	ताँवी माट मुहँमणउ	२४५
भाळवणी सारवति मनी	६६६	लोमी टाहूर आभि गति	१७७
भाळवणी सारवती	६३	व	
भाळ नोरावा मूँनी	५६२	वगिता पनि विदेस गय	५७७
भाळ नोरावा मूँनी	५६१	वदनी माळवणी ताडइ	२७५
		वइठी माळवणी फइइ	६६३

वलि माळवणी वीनवइ	२३६	संभारिया संताप	१८०
वहिलउ आए वल्लहा	१५५	सकती बोंघे वीटुळी	५००
वागरवाळ विचारियउ	१८७	सखिए ऊगटि मॉजिणउ	५३५
वायस बीजउ नॉम	१४२	सखिए सज्जण वल्लहा	२३
वाल्लंभ एक हिलोर दे	१६७	सखिए साहिन्न आविया,	
वाल्लंभ दीपक पवन भय	५७६	१ जाँह की	५२६
वालिभ गरथ वसीकरणा	१६६	सखिए साहिन्न आविया मन	५३२
वासर चित्त न वीसरइ	१७०	सखि वउळावो फिरि गई	५४२
वाही थी, गुण वेलडी	६१०	सखियाँ रॉणीसूँ कहइ,	
विरह वियापी रयणा भरि	५६६	तनह	७८
विहॉगडे ल उदधियाँ	४६५	सखियाँ रॉणीसूँ कहइ, मारु	७७
वीण अलापी देख सखि	५७०	सखि हे राजिंद चालियउ	३५०
वीसारियाँ न वीसरइ	६१२	सखी० नयण सुंदरि सुरया	२५
वीसू कहिया दूहडा	४८६	सखी सु सज्जण आविया	५३३
वीसू सुणि ढोलउ कहइ	४६०	सगुणी-तणा संदेसडा	३४४
वीसू सुणि ढोलउ कहइ		सजण मिल्या मन ऊमग्यउ	५६०
एकह	४४८	सजि कसणा करि लाज ग्रहि	३४६
स		सज्जण अळगा तॉ लगइ	४२०
सउदागर खवास नूँ	८८	सज्जण गुणे समुह तूँ	३७६
सउदागर पिंगळ मिळ्यउ	८५	सज्जण चाल्या हे सखी, दिस	३५५
सउदागर राजा कन्हइ कहि	१००	सज्जण चाल्या हे सखी,	
सउदागर राजा कन्हे अरज	६२	नयणे	३५७
सउदागर राजा तिहाँ	८६	सज्जण चाल्या हे सखी,	
सउदागर राजासुँ कह	६७	पढ़हउ	३५१
सउदागर संदेसडा	६६	सज्जण चाल्या हे सखी, पाळे	३५४
सउ सहसे एकोतरे	२३०	सज्जण चाल्या हे सखी,	
संदेसउ जिन पाठवइ	१४३	बाजह	३५६
संदेसा मति मोकळउ	१४४	सज्जण चाल्या हे सखी,	
संदेसा ही लख लहइ	१११	वाज्या	३५२
संदेसे ही घर भख्यउ	२००	सज्जण चाल्या हे सखी,	
संपहुता सज्जण मिल्या	५३०	सूना	३५८

सज्जग ज्यूँ ज्यूँ संभरइ	३८२	साल्हकुमार विलसइ सदा	६५२
सज्जग दुज्जग के कहे	१६६	साल्हकुँवर सुरपति बिसउ	६३
सज्जग देसंतर हुवा	४२१	साल्ह चलतइ परठिया***कूवा	३६७
सज्जग मिलिया सज्जगों	५३४	साल्ह चलतइ परठिया***	
सज्जग बल्ले गुण रहे	३७४	सो मई	३६६
सज्जगिया वडळाइ कहइ,		साल्ह चलंतउ हे सखी; गउखे	३६२
मदिर	३७१	सावण आयउ साहिवा	२६६
सज्जगिया वडळाइ कहइ,		साहिब आया हे सखी	५२८
गउमे	३७२	साहिब कल्लु न छाइयइ	२२६
सज्जगिया सावण हुया	१४८	साहिब तुल्फ सनेहइ	४१३
गदसइ वाहि म कबदी	४६२	साहिब म्होंका वापकइ	३३३
सत्तम प्रहरँ दिवम कै	५८८	साहिब रहउ न राखिया	२३५
सयगों पौँवों प्रेम की	३६४	साहिब हसउ न बोलिया	२१८
ससनेही सज्जग मिल्या	५८१	सिधु परइ सउ जो अणे	१६१
ससनेही समदों परउ	२२	सिधु परइ सउ खोयगों	१८६
सहने लागे साटविमु	२३३	सिधु परइ सत जो अणे	१६०
सदिस निरि समभवावियउ	५१५	सीगण फौँइ न सिगजिया	४१६
सदिस साहिब आविन्यइ	५१६	सीख करे पिगळ फन्हों	१०६
सहीं समौली साधिक्कि	६८	सीयाळइ तउ सी पइइ	२७७
साइसगइ हलनगइ सौँसइइ	३३७	नुदर योंके ही कहइ	३२८
साई दे दे सज्जना	३७७	नुदर सोळ सिगार सखि	३६४
सौँभी चेला सामहळि	५२२	मुदरि चोरे सग्रही	५७१
सौँधळि फौँइ न सिगनियों	४१५	मुदरि मो सारउनहीं	३२४
सायइ सुंदरि जोगिणी	६१७	सुंदरि सोवन चर्पा तनु	८७
साये दीनहीं मोर्णी	५६६	सुणि फरहा दौलउ कहइ	३१४
साय करे निम मुकुट दे	३८५	सुणि दौला फरहउ कहइ, मो	४३१
सा काल प्री निनकर	५७८	सुणि दाला फरहउ कहइ, सामि	३१५
सासही मोर्णी नुगइ	३८६	सुणि सुदरि केना कहों	६७०
सासग्या सोर्णी नौँ	६	सुणि सुंदरि सयउ चर्पा	२३८
साल्ग सौँदी विना	१७३	सुणि सूझा सुदरि कहय	३६७
सासइ सुँदर सुँदउ करइ	४०२		

सुपनइ प्रीतम मुक्त मिळघा हूँ गलि	५०३	खवण सॉभळे सँदेसा ह	१८४
सुपनइ प्रीतम मुक्त मिल्या हूँ लागी	५०२	हंस चलण कदळीह जँव	१३
सुरह सुगंधी वास	५०७	हह रे जीव निलज्ज तूँ	३७३
सुहिणा तोहि मराविस्सूँ	५१४	हल्लुँ हल्लुँ मति करउ	३०५
सुहिणा हूँ तइ दाहवी	५१२	हित विण प्यारा सज्जणा	४१७
सडा सुगुणज पंखिया	४०५	हियइह भीतर पइसि करि	१५८
सडा सुगुणज पंखिया	४०६	हियमाँ करइ वधॉमणाँ	५५७
सती पढी रणेहिँ	३७८	हिव माळवणी वीनवह	३४१
सूवा एक संदेसइउ, वार	३६८	हिव सूमर हेरा हुवइ	५६७
सेज रमंताँ मारुवी	५६१	हुता सज्जण हीयडे	५०६
सोई सज्जण आविया, जाँह की	५४१	हुई सचेती मारवी	६२१
सोवँन नडित सिंगार बहु	५६५	हूँ कुँमलाणी फंत विण	१६३
सोहइ सहू भेळा किया	६०७	हूँ बलिहारी सज्जणा	१७६
सोहण याई फर गया	५१०	हेरा ग्या ऊँमर कन्हइ	६२६
		हे सखि ए परदेस प्री	२६